श्रीहरिः

‘कल्याण’के ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१–‘कल्याण’के सन् १९७९का विशेषाङ्क—‘सूर्याङ्क’ पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४३२ पृष्ठोंकी पाठ्यसामग्री है। सूची आदिके ८ पृष्ठ अतिरिक्त हैं। यथास्थान कई बहुरंगे, सादे एवं रेखा-चित्र भी दिये गये हैं।

२—जिन ग्राहक महानुभावोंके मनीआर्डर आ गये हैं, उनको विशेषाङ्क फरवरीके अङ्कसहित रजिस्ट्रीद्वारा एवं जिनके रुपये नहीं प्राप्त हुए हैं, उनको वी० पी० द्वारा ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार भेजा जा सकेगा।

३–मनीआर्डर-कूपनमें अथवा वी०पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या कृपया स्पष्टरूपसे अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या स्मरण न रहनेकी स्थितिमें ‘पुराना ग्राहक’ लिख दें। नया ग्राहक बनना हो तो ‘नया ग्राहक’ लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर ‘व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय’के पतेपर भेजें, किसी व्यक्तिके नामसे न भेजें।

४–ग्राहक-संख्या या ‘पुराना ग्राहक’ न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिख जायगा। इससे आपकी सेवामें ‘सूर्याङ्क’ नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे सम्भवतः उसकी वी०पी० भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी०पी० भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप वी० पी० लौटायें नहीं, कृपापूर्वक प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको नया ग्राहक बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका ‘कल्याण’ व्यर्थ डाक-व्ययकी हानिसे बचेगा और आप ‘कल्याण’के प्रचारमें सहायक बनेंगे।

५–‘सूर्याङ्क’ परिशिष्टाङ्क(क)के साथ सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग शीघ्राति-शीघ्र भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सभी ग्राहकोंको भेजनेमें लगभग ४–५ सप्ताह तो लग ही सकते हैं। ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार ही जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहक हमें क्षमा करेंगे। उनसे धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनेकी प्रार्थना है।

६–आपके ‘विशेषाङ्क’के लिफाफे (या रैपर) पर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी०पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये और उसके उल्लेखसहित पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

७–‘कल्याण-व्यवस्था-विभाग’ तथा ‘व्यवस्थापक—गीताप्रेस’के नाम अलग-अलग पत्र, पार्सल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये। पतेकी जगह केवल ‘गोरखपुर’ ही न लिखकर ‘पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)’—इस प्रकार लिखना चाहिये।

८–‘कल्याण-सम्पादन-विभाग,’ ‘साधक-संघ’ तथा ‘नाम-जप-विभाग’को भेजे जानेवाले पत्रादिपर भी अभिप्रेत विभागका नाम लिखनेके बाद ‘पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)’—इस प्रकार पूरा पता लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’ पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर २७३००५ (उ०प्र०)

सू० अं० क—

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थरत्न हैं। दोनों ही ऐसे प्रासादिक एवं आशीर्वादात्मक ग्रन्थ हैं, जिनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक—दोनोंमें अपना कल्याण कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदिकी कोई बाधा नहीं है। आजके नाना भयसे आक्रान्त, भोग-तमसाच्छन्न समयमें तो इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है; अतः धर्मप्राण जनताको इन मङ्गलमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ'की स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंको—जिनकी संख्या इस समय लगभग चालीस हजार है—श्रीगीताके छः प्रकारके, श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके एवं उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणीमें यथाक्रम रखा गया है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन एवं उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होवें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम २४९२०४ (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ०प्र०)

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्मविकासपर ही अवलम्बित है। आत्मविकासके लिये सदाचार, सत्यता, सरलता, निष्कपटता, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका संग्रह और असत्य, क्रोध, लोभ, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। मनुष्य-मात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ३० वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना की गयी थी। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको .४५ पैसेके डाक-टिकट या मनीआर्डर अग्रिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। सभी कल्याण-कामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क नियमावली मँगवाइये। संघसे सम्बन्धित सब प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये।

संयोजक—साधक-संघ, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर २७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानस मङ्गलमय दिव्यतम जीवन-ग्रन्थ हैं। इनमें मानव-मात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको पढ़कर भी अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारसे लोक-मानसको अधिकाधिक उजागर करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग बीस हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४५० (चार सौ पचास) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर कार्ड भेजें—

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम २४९३०४ (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

'सूर्याङ्क'की विषय-सूची

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

रेखा-चित्र

मङ्गलाशंसापञ्चकम्

सूर्याङ्को मङ्गलं कुर्याद् दद्याद् भक्तिं जने जने।
कल्याणं लभतां लोको धर्मो विजयतेतराम् ॥ १ ॥

श्रीसूर्यनारायण-सम्बन्धी यह विशेषाङ्क विश्वका मङ्गल करे और प्रत्येक व्यक्तिमें—जन-जनमें भक्तिका भाव भर दे। सभी लोग कल्याण प्राप्त करें और धर्मकी अतिशय विजय हो।

आर्याणां देवता सूर्यो विश्वचक्षुर्जगत्पतिः।
कर्मणां प्रेरको देवः पूज्यो ध्येयश्च सर्वदा ॥ २ ॥

श्रीसूर्य भारतीय-धर्मशील जनताके मूलतः देवता हैं। वे विश्वनेत्र (लोकलोचनके अधिदेव) और जगत्पति हैं—विश्व-स्वामी हैं। वे शुभकर्मोंके प्रेरक, विश्वमे सर्वाधिक तेजस्वी—ज्योतिर्घन हैं। वे नर-नारी, बाल-वृद्ध—सब प्राणियोंके सदा पूज्य और ध्येय हैं। उनका पूजन और ध्यान सदा करना चाहिये।

सूर्यं सम्पूजयेन्नित्यं सावित्रीं च जपेत् तथा।
सूर्यार्घ्यं सन्ध्ययोर्दद्यान्नमस्कुर्याच्च भास्करम् ॥ ३ ॥

श्रीसूर्यनारायणकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और सावित्री-(गायत्री-) मन्त्रका जप भी करना चाहिये। दोनों सन्ध्याओंमें (प्रातः-सायं—दोनों वेलाओंमें) अर्घ्याञ्जलि देनी चाहिये और 'सूर्य-नमस्कार' करना चाहिये।

देशोऽयं भारतश्श्रेष्ठः पञ्चदेवप्रपूजकः।
सौरधर्मप्रवर्त्ता च सूर्योपासक आदितः ॥ ४ ॥

यह भारतवर्ष (कर्मभूमि होने एवं अपनी विशिष्ट उपासनापद्धतिके कारण) सबसे उत्तम देश है। यह पञ्चदेवोंका आरम्भसे ही पूजक और उपासक है। सौरधर्मका प्रवर्तन (सर्वप्रथम प्रचलन) इसीने किया एवं यह स्वयं सृष्टिके आरम्भसे ही सूर्यकी उपासना करता चला आया है। (अतः हम सब भारतवासियोंको सूर्यकी उपासना-अर्चना सदैव करनी चाहिये।)

प्रज्ञाविज्ञानसंयुक्ता सूर्योपास्तिर्दिने दिने।
सदाचारोऽपि वृद्धस्स्याद् वैराग्यं बोधयेत् तथा ॥ ५ ॥

हमारी सूर्योपासना प्रज्ञा (प्रकृष्ट ज्ञान) और प्राचीन-नवीन विज्ञानसे समन्वित होती जाय—दिनानुदिन हमारे देशमे उपासना, आराधना और सद्व्यवहारोंका आचार भी बढ़ता जाय तथा चरम परम सिद्धिके लिये विषयोंका विराग, बोधका विषय बने—वैराग्यकी भी महत्ता बढ़े।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

भगवान् भुवन भास्कर
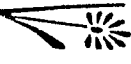
ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥

(यजु० अ० ७ म० ४१)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

वर्ष ५३ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०४, जनवरी १९७९ { संख्या १, पूर्ण संख्या ६२६

सवितृ-प्रार्थना

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥

(ऋक्० ५ । ८२ । ५, शु० यजु० ३० । ३)

समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले—सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एवं जगत्को शुभकर्मोंमे प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सविता देव ! आप हमारे सम्पूर्ण आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों (बुराइयों—पापों)को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायँ, दूर करें, किंतु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, श्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे (भलीभाँति) ले आयें, दें—'यद् भद्रं तन्न आ सुव ।'

सूर्यादिके मूलस्वरूप ब्रह्मको नमस्कार

ॐ यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(—अथर्व० १० । ७ । ३३)

सतत उदय होनेवाले सूर्य और चन्द्र जिनकी आँखें हैं, जिन्होंने अग्निको अपना मुख बनाया है, उन महान् ब्रह्म (व्यापक परमेश्वर) को हम नमस्कार करते हैं ।

ॐ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

(—शुक्लयजु० ३२ । १)

वे ही अग्नि हैं, आदित्य हैं, वायु हैं, चन्द्रमा हैं, शुक्र हैं, परम ब्रह्म हैं तथा जलाधिपति वरुण और प्रजापति हैं—सब उन्हीं परमात्माके नाम हैं ।

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

(—शुक्लयजु० ३१ । १८)

मैं आदित्य स्वरूपवाले सूर्यमण्डलस्थ महान् पुरुषको, जो अन्धकारसे भी परे, पूर्ण प्रकाश देनेवाले और परमात्मा हैं, उनको जानता हूँ । उन्हींको जानकर मनुष्य मृत्युको लाँघ जाता है । मनुष्यके लिये मोक्ष-प्राप्तिका दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं है ।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥

(—कठो० २ । १ । ९)

जहाँसे सूर्य उदित होते हैं और जहाँ वे अस्त होते है उस प्राणात्मामें (अग्नादि और वागादिक) सम्पूर्ण देवता अर्पित हैं । उनका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता । ये ही वह ब्रह्म हैं ।

ॐ असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥ (—शतपथब्रा० १४ । ४ । १३०)

हे भगवन् ! आप हमें असत्‌से सत्‌की ओर और तमसे ज्योतिकी ओर तथा मृत्युसे अमरताकी ओर ले चलें ।

ॐ स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥

(—अथर्व० १ । ३१ । ४)

हमारे माता, पिता, गौओं, जगत्‌के अन्य सब प्राणी और पुरुषोंका कल्याण हो । हमारे लिये सब वस्तुएँ कल्याणकारक और सुगमतासे प्राप्त होने योग्य हों । हम दीर्घकालतक सर्वप्रकाशक सूर्य भगवान्‌का दर्शन करते रहें ।

ॐ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ (—ऋक्० १ । ९० । ८)

हमारे लिये वनस्पति, सूर्य और उनकी किरणें माधुर्ययुक्त हों । (सबके मूल परमज्योति ब्रह्म भ्राजिष्णवेको नमस्कार है, विश्वहेतवे नमः)

सविताकी सूनृत श्रुति-सूक्तियाँ

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (—शुक्लयजु० ७ । ४२)

जो तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं; मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्वके प्राणियोंके नेत्र हैं और स्थावर तथा जङ्गम—सबके अन्तर्यामी आत्मा है, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष-लोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हो रहे हैं।

× × ×

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ (—शुक्लयजु० ३६ । २४)

देवता आदि सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाले और सबके नेत्ररूप वे तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशामें उदित हो रहे हैं। (उनके प्रसादसे) हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहें, सौ वर्षोंतक सुनते रहें, सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दीन-दशाको न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे भी अधिक कालतक हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं अदीन बने रहें कभी दीन न हों।

× × ×

ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

(—शुक्लयजु० ७ । ४१)

सम्पूर्ण जगत्को भगवान् सूर्यका दर्शन कराने (या दृष्टि प्रदान करने)के लिये जगत्में उत्पन्न हुए समस्त प्राणियोंके ज्ञाता उन सूर्यदेवको छन्दोमय अश्व ऊपर-ही-ऊपर शीघ्रगतिसे लिये जा रहे हैं।

× × ×

न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद् यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥

(—ऋ० ४ । ५४ । ४)

हे सवितः! आप सबको उत्पन्न करते हैं। आप दिव्य गुणोंसे युक्त और सम्पूर्ण भुवनोंको धारण करते हैं। आपका यह कर्म अविनाशी है। आपके हाथ शोभन अङ्गुलियों (किरणों)से युक्त हैं। आप उनके द्वारा भूमण्डल तथा द्युलोकके सभी प्राणियोंको अभ्युदयके लिये प्रेरित करते हैं। आपका यह कर्म सतत अबाधगतिसे होता रहता है।

× × ×

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।

(—शुक्लयजु० २० । २१)

हे सविता देव! हम अन्धकारसे ऊपर उठकर स्वर्गलोकको तथा देवताओंमें अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्यदेवको भलीभाँति देखते हुए उस सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्माको प्राप्त हों।

सूर्योपनिषद्

हरिः ॐ ॥ अथ सूर्याथर्वाङ्गिरसं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । आदित्यो देवता । हंसः सोऽहमग्निनारायणयुक्तं बीजम् । हृल्लेखा शक्तिः । वियदादिसर्गसंयुक्तं कीलकम् । चतुर्विधपुरुषार्थ-सिद्ध्यर्थे विनियोगः । षट्स्वरारूढेन बीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम् । सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरदहस्तं कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः । ॐ भूर्भुवःसुवः । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते । सूर्याद्यज्ञः पर्जन्योऽन्नमात्मा नमस्त आदित्य । त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि । त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि । त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि । त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि । त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वासि । त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि । आदित्याद्वायुर्जायते । आदित्याद्भूमिर्जायते । आदित्यादापो जायन्ते । आदित्याज्ज्योतिर्जायते । आदित्याद्व्योम दिशो जायन्ते । आदित्याद्देवा जायन्ते । आदित्याद्वेदा जायन्ते । आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति । असावादित्यो ब्रह्म । आदित्योऽन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहङ्काराः । आदित्यो वै व्यानः समानोदानोऽपानः प्राणः । आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणाः । आदित्यो वै वाक्-पाणिपादपायूपस्थाः । आदित्यो वै शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । आदित्यो वै वचनादानागमनविसर्गानन्दाः । आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः । नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि । भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः । सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु । सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च । चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः । आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् । सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म । घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इत्यक्षरद्वयम् । आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि । एतस्यैव सूर्यस्याष्टाक्षरो मनुः । यः सदाहरहर्जपति स वै ब्राह्मणो भवति । स वै ब्राह्मणो भवति । सूर्याभिमुखो जप्त्वा महाव्याधिभयात्प्रमुच्यते । अलक्ष्मीर्नश्यति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । पतितसम्भाषणात्पूतो भवति । असत्सम्भाषणात्पूतो भवति । मध्याह्ने सूर्याभिमुखः पठेत् । सद्योत्पन्न-पञ्चमहापातकात्प्रमुच्यते । सैषा सावित्रीं विद्यां न किंचिदपि न कस्मैचित् प्रशंसयेत् । य एतां महाभागः प्रातः पठति स भाग्यवाञ्जायते । पशून्विन्दति । वेदार्थं लभते । त्रिकालमेतज्जप्त्वा क्रतुशतफलमवाप्नोति । यो हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति य एवं वेद ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥ (—इति सूर्योपनिषद् ।)
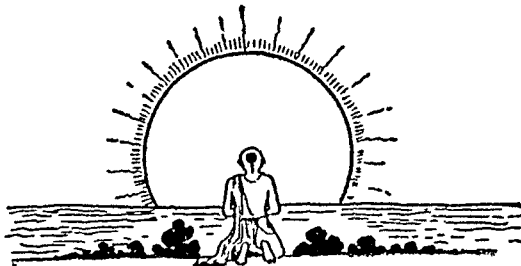
अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद्का भावार्थ

आदित्यकी सर्वव्यापकता—सूर्यमन्त्रके जपका माहात्म्य

हरिः ॐ । अब सूर्यदेवतासम्बन्धी अथर्ववेदीय मन्त्रोंकी व्याख्या करेंगे । इस सूर्यदेवसम्बन्धी अथर्वाङ्गिरस-मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं । गायत्री छन्द है । आदित्य देवता हैं । **'हंसः' 'सोऽहम्'** अग्नि नारायणयुक्त बीज है । हृल्लेखा शक्ति है । वियत् आदि सृष्टिसे सयुक्त कीलक है । चारों प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिमें इस मन्त्रका विनियोग किया जाता है । छः स्वरोंपर आरूढ़ बीजके साथ, छः अङ्गोंवाले, लाल कमलपर स्थित, सात घोड़ोंवाले रथपर सवार, हिरण्यवर्ण, चतुर्भुज तथा चारों हाथोंमें क्रमशः दो कमल तथा वर और अभयमुद्रा धारण किये, कालचक्रके प्रणेता श्रीसूर्यनारायणको जो इस प्रकार जानता है, निश्चयपूर्वक वही ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) है । जो प्रणवके अर्थभूत सच्चिदानन्दमय तथा **भूः, भुवः** और **स्वः** स्वरूपसे त्रिभुवनमय एवं सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले हैं, उन भगवान् सूर्यदेवके स श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा देते रहते हैं । भगवान् सूर्यनारायण सम्पूर्ण जङ्गम तथा स्थावर-जगत्के आत्मा हैं, निश्चयपूर्वक सूर्यनारायणसे ही ये भूत उत्पन्न होते हैं । सूर्यसे यज्ञ, मेघ, अन्न (बल-वीर्य) और आत्मा (चेतना) का आविर्भाव होता है । आदित्य ! आपको हमारा नमस्कार है । आप ही प्रत्यक्ष कर्मकर्ता हैं, आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं । आप ही प्रत्यक्ष विष्णु हैं, आप ही प्रत्यक्ष रुद्र हैं । आप ही प्रत्यक्ष ऋग्वेद हैं । आप ही प्रत्यक्ष यजुर्वेद हैं । आप ही प्रत्यक्ष सामवेद हैं । आप ही प्रत्यक्ष अथर्ववेद हैं । आप ही समस्त छन्दःस्वरूप हैं ।

आदित्यसे वायु उत्पन्न होती है । आदित्यसे भूमि उत्पन्न होती है, आदित्यसे जल उत्पन्न होता है । आदित्यसे ज्योति (अग्नि) उत्पन्न होती है । आदित्यसे आकाश और दिशाएँ उत्पन्न होती हैं । आदित्यसे देवता उत्पन्न होते हैं । आदित्यसे वेद उत्पन्न होते हैं । निश्चय ही ये आदित्यदेवता इस ब्रह्माण्ड-मण्डलको तपाते (गर्मी देते) हैं । वे आदित्य ब्रह्म हैं । आदित्य ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप हैं । आदित्य ही प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान—इन पाँचों प्राणोंके रूपमें विराजते हैं । आदित्य ही श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण—इन पाँच इन्द्रियोंके रूपमें कार्य कर रहे हैं । आदित्य ही वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—ये पाँचों कर्मेन्द्रिय हैं । आदित्य ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विषय हैं । आदित्य ही वचन, आदान, गमन, मल-त्याग और आनन्द—ये कर्मेन्द्रियोंके पाँच विषय बन रहे हैं । आनन्दमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय आदित्य ही हैं । मित्रदेवता तथा सूर्यदेवको नमस्कार है । प्रभो ! आप मृत्युसे मेरी रक्षा करें । दीप्तिमान् तथा विश्वके कारणरूप सू नारायणको नमस्कार है । सूर्यसे सम्पूर्ण चराचर जीव उत्पन्न होते हैं, सूर्यके द्वारा ही उनका पालन होता है और फिर सूर्यमें ही वे लयको प्राप्त होते हैं । जो सूर्यनारायण हैं, वह मैं ही हूँ । सविता देवता हमारे नेत्र हैं तथा पर्वके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण जो पर्वतनामसे प्रसिद्ध हैं, वे सूर्य ही हमारे चक्षु हैं । सबको धारण करनेवाले धाता नामसे प्रसिद्ध वे आदित्यदेव हमारे नेत्रोंको दृष्टिशक्ति प्रदान करें ।

(श्रीसूर्यगायत्री—) 'हम भगवान् आदित्यको जानते हैं—पूजते हैं, हम सहस्र (अनन्त) किरणोंसे मण्डित भगवान् सूर्यनारायणका ध्यान करते हैं, वे सूर्यदेव हमें प्रेरणा प्रदान करें ।' (**'आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् ।'**) पीछे सविता देवता हैं, आगे सवितादेवता हैं, बाँयें सवितादेवता हैं और दक्षिण भागमें भी (तथा ऊपर-नीचे भी) सविता देवता हैं । सवितादेवता हमारे लिये सब कुछ प्रसव (उत्पन्न) करें (सभी अभीष्ट वस्तुएँ दें) । सवितादेवता हमें दीर्घ आयु प्रदान करें । **'ॐ'** यह एकाक्षर मन्त्र ब्रह्म है । **'घृणिः'** यह दो अक्षरोंका मन्त्र है, **'सूर्यः'** यह दो अक्षरोंका मन्त्र है । **'आदित्यः'** इस मन्त्रमें तीन अक्षर हैं । इन सबको मिलाकर सूर्यनारायणका अष्टाक्षर महामन्त्र—**'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्'** बनता है । यही अथर्वाङ्गिरस सूर्यमन्त्र है । इस मन्त्रका जो प्रतिदिन जप करता है, वही ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) होता है, वही ब्राह्मण होता है ।

सूर्यनारायणकी ओर मुख करके जपनेसे महाव्याधिके भयसे मुक्त हो जाता है। उसका दारिद्र्य नष्ट हो जाता है। सारे दोषों—पापोंसे वह मुक्त हो जाता है। मध्याह्नमें सूर्यकी ओर मुख करके इसका जप करे। यों करनेसे मनुष्य सद्यः उत्पन्न पाँच महापातकोंसे छूट जाता है। यह सावित्रीविद्या है, इसकी किसी अपात्रसे कुछ भी प्रशंसा (परिचर्चा) न करे। जो महाभाग इसका त्रिकाल—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल पाठ करता है, वह भाग्यवान् हो जाता है, उसे गौ आदि पशुओंका लाभ होता है। वह वेदके अभिप्रायका ज्ञाता होता है। इसका जप करनेसे सैकड़ों यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो सूर्यदेवताके हस्त नक्षत्रपर रहते समय (अर्थात् आश्विन मासमें) इसका जप करता है, वह महामृत्युसे तर जाता है, जो उस प्रकारसे जानता है, वह भी महामृत्युसे तर जाता है।

अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद् समाप्त।

श्रीसूर्यस्य प्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभि-
र्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नतमर्चितं च।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं
त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं
गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥

श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातःकाले पठेत्तु यः।
स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

मैं उन सूर्यभगवान्‌के श्रेष्ठ रूपका प्रातःसमय स्मरण करता हूँ, जिनका मण्डल ऋग्वेद, तनु यजुर्वेद और किरणें सामवेद हैं तथा जो ब्रह्मा और शङ्करके रूप हैं। जो जगत्‌की उत्पत्ति, रक्षा और नाशके कारण हैं, अलक्ष्य और अचिन्त्यस्वरूप हैं ॥ १ ॥ मैं प्रातःकाल शरीर, वाणी और मनके द्वारा ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंसे स्तुत और पूजित, वृष्टिके कारण एवं अवृष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तरणि (सूर्यभगवान्) को नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जो पापोंके समूह तथा शत्रुजनित भय एवं रोगोंका नाश करनेवाले हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण लोकोंके समयकी गणनाके निमित्तभूत कालस्वरूप हैं और गौओंके कण्ठबन्धन छुड़ानेवाले हैं, उन अनन्तशक्तिसम्पन्न आदिदेव सविता (सूर्यभगवान्) को मैं प्रातःकाल भजता हूँ ॥ ३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल सूर्यके स्मरणरूप इन तीनों श्लोकोंका पाठ करेगा, वह सब रोगोंसे मुक्त होकर परम सुख प्राप्त कर लेगा ॥ ४ ॥

अनादि वेदोंमें भगवान् सूर्यकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नाय श्रृङ्गेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका शुभाशीर्वाद)

जीवात्मा परमात्माका अंश है। सांसारिक दुःख-द्वन्द्वोंसे छुटकारा जीवको भी मिल सकता है, जब वह अपना वास्तविक स्वरूप जानकर भगवत्स्वरूप ब्रह्म बननेका प्रयत्न करे। अपना वास्तविक स्वरूप ठीक तरहसे जाननेका एकमात्र उपाय भगवान्‌की कृपाको पा लेना है। गीता (७ । १४)में भगवान्‌ने कहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

'जो मेरी शरणमें आते हैं, वे मायासे पार पा जाते हैं—तर जाते है।'

वह कृपा हमको तभी मिलेगी, जब हम बाह्य संसारसे उपरत होकर उस परमात्मस्वरूपकी निष्ठासे उपासना करेंगे। उपासनासे ज्ञान और ज्ञानसे परमपद मिलता है। यदि लौकिक श्रेष्ठ कामनाको लेकर हम उपासना करें तो भगवत्सम्पर्कसे उसकी सिद्धि होनेके पश्चात् भगवत्प्राप्ति भी हो जाती है। इस प्रकारकी उपासना अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंका साधन बनती है। उपासनाएँ अनेक प्रकारकी है। हम शालग्रामशिलामें विष्णुबुद्धि करके उसकी जो पूजा करते है, वह भी उपासना है। शास्त्रोंमें इस प्रकार अनेकानेक वस्तुओंको प्रतीक बनाकर उसमें परमात्म-भावना करनेका विधान है। अन्य देवताकी परमात्म-भावना करनेका विधान है। अन्य देवताकी स्वतन्त्र उपासना श्रेष्ठ नहीं है। भगवद्भावनासे किसी भी देवकी उपासना ही श्रेष्ठ है। जो अन्य देवोंकी स्वतन्त्र उपासना करते है, वे बुद्धिमान् नहीं हैं—

अथ योऽन्यदेवतामुपासते पशुरेव स देवानाम्।
(—बृहदारण्यक०)

भगवद्भावनाओंसे की जानेवाली उपासनाओंमें श्रीसूर्यमण्डलमें परमात्माकी भावना करना भी एक और बड़े ही महत्त्वका विषय है। अनादिकालसे ऋषि-महर्षियोंने इस प्रकार उपासनाकर, अपने जीवनको धन्य बनाया और हमें मार्ग-दर्शन कराया है। उनके बताये मार्गपर चलनेवाले हम आस्तिक लोग प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं। मध्याह्नमें की जानेवाली उपासनामें यह मन्त्र पढते हैं—

य उदगान्महतोऽर्णवात्
विभ्राजमानः सलिलस्य मध्यात्।
स मा वृषभो लोहिताक्षः
सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु ॥
(—तैत्तिरीयसंहिता)

'सारे भूमण्डलपर व्याप्त हुए महासमुद्रके जलके बीचसे ऊपर उठकर सुशोभित हुए, वे रक्तनेत्र, अरुण-किरण, समस्त मानव-कृत कर्मोंके फलाभिवर्षक, सकलकर्मसाक्षीभूत सर्वज्ञ श्रीसूर्यदेव कृपापूर्वक मुझे अपने मनसे पवित्र करें।'

वैदिक-संस्कृतिमें पले हुए हम भारतीय हिंदू संध्याकी बड़ी महत्ता मानते हैं। संध्या उषाकाल और सायंकाल—दो समय तो अवश्य ही करनी चाहिये। मध्याह्नमें माध्याह्निक संध्या भी करना आवश्यक है। उन उपासनाओंमें भगवान् सूर्य ही उपास्य होते हैं। हम उन भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं। जिस गायत्रीमन्त्रसे भगवान्‌का चिन्तन करते हैं, उसका अर्थ शास्त्रोंमें सूर्यपरक भी बताया गया है—

यो देवः सवितास्माकं धियो धर्मादिगोचराः।
प्रेरयेत् तस्य यद् भर्गः तद्वरेण्यमुपास्महे ॥
(—बृहद्योगियाज्ञवल्क्य)

हमारे कर्मोंका फल देनेवाले सविता है। वे ही धर्मादि-विषयक हमारी बुद्धि-वृत्तियोंके प्रेरक हैं। हम उन परमात्मा सविताकी श्रेष्ठ ज्योतिकी उपासना करते है। गायत्रीमन्त्रका इस प्रकार सूर्यमें समन्वय किया गया है। प्रातः और मध्याह्नकी वेलाओंमें उपस्थान भी

भगवान् श्रीसूर्यका ही होता है। संध्या किये बिना किसी भी मनुष्यका कोई भी वैदिक धर्म-कार्य सफल नहीं होता। इससे हम जान सकते हैं कि वैदिक विधानोंमें सूर्यकी कितनी महत्ता है। संध्या-अनुष्ठानमें सूर्य-मण्डलमें भगवान् नारायणका ध्यान करनेका विधान है—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

(—बृहत्पाराशरस्मृति)

'भगवान् नारायण तपे हुए स्वर्ण-जैसे कान्तिमान् शरीरधारण किये हुए हैं। उनके गलेमें हार एवं सिरपर किरीट विराजमान हैं। उनके कान मकर-कुण्डलसे सुशोभित हैं। वे कंगनसे अलङ्कृत अपने दोनों हाथोंमें भक्तभयनिवारणके लिये शङ्ख-चक्र धारण किये हुए हैं। वे सूर्यमण्डलमें कमलासनपर बैठे हैं।' इसी प्रकार गायत्रीका जप करते समय भी सूर्यमण्डलमें भगवान्का चिन्तन करना चाहिये।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी रावणके साथ युद्ध करते समय श्रान्त होकर चिन्तित होते हैं कि कैसे युद्धमें विजय पा सकेंगे। तब महर्षि अगस्त्य आकर रामजीको आदित्यहृदयका उपदेश देते हैं और उसका फल भी बतलाते हैं—

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन् नावसीदति राघव॥

(—वाल्मीकि० ६।१०५।२५)

'राघव! विपत्तिमें फँसा हुआ, घने जंगलोंमें भटकता हुआ और भयोंसे किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति इस आदित्य-हृदयका जप करके सारे दुःखोंसे पार पा जाता है।' वाल्मीकिरामायणकी इस कथासे भगवान् आदित्यका महत्त्व जान सकते हैं।

योगशास्त्रमें भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि **'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'**—'सूर्यमें संयमन करनेसे सारे संसारका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।' चित्तका संयम करनेसे मिलने-वाली सिद्धियोंके निरूपणके अवसरपर यह बात कही गयी है। धर्मशास्त्र कहता है कि सामान्य समयमें भी यदि कोई अशुचित्व प्राप्त हो तो सूर्यको देखो, तुम पवित्र हो जाओगे (स्मृतिरत्नाकर)। बीमारियोंसे पीड़ित हो तो सूर्यकी उपासना करो—**'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्।'**

इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंके कारण हैं। वे हमारी उपासनाके मूल बिन्दु हैं। इसी प्रकार मन्त्रशास्त्रोंमें भी उनके अनेक मन्त्र प्रतिपादित हैं, जिनके अनुष्ठानसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारकी पीड़ाओंसे मुक्ति पाकर हम सुखी और कृतार्थ बन सकते हैं।

जयति सूर्यनारायण, जय जय

(रचयिता—नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

आदिदेव, आदित्य, दिवाकर, विभु, तमिस्रहर।
तपन, भानु, भास्कर, ज्योतिर्मय, विष्णु, विभाकर॥
शंख-चक्रधर, रत्नहार-केयूर-मुकुटधर।
लोकचक्षु, लोकेश, दुःख-दारिद्र्य-कष्टहर॥
सविता देव अनादि, सृष्टि-जीवन-पालनकर।
पाप-तापहर, मङ्गलकर, मङ्गल-विग्रह-चर॥
महातेज, मार्तण्ड, मनोहर, महारोगहर।
जयति सूर्य नारायण, जय जय सर्व सुखाकर॥

(—पदरत्नाकर ८८५)

प्रत्यक्ष देव भगवान् सूर्यनारायण

(अनन्तश्रीविभूषित पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी महाराजका मङ्गलाशंसन)

भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। तत्त्वतः तो वे परब्रह्म हैं। वे स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त विश्वकी आत्मा हैं। सूर्योपनिषद् (१।४) के अनुसार सूर्यसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है एवं उन्हींमें विलय होता है। उनके उपासक साधकको स्वयं भी सूर्यमें ब्रह्मात्मभावना करनेका निर्देश दिया गया है—**'यः सूर्योऽहमेव च।'** भगवान् आद्यशंकराचार्यद्वारा प्रवर्तित पञ्चायतनोपासनामें वे अन्यतम उपास्य हैं। उनकी उपासनाका विधान वेदोंमें तो है ही उनके अतिरिक्त सूर्योपनिषद्, चाक्षुषोपनिषद्, अक्ष्युपनिषदादि उपनिषदें स्वतन्त्र रूपसे सूर्योपासनाका ही विधान करती हैं।

सूर्य समस्त नेत्र-रोगको (तथा अन्य सभी रोगोंको) दूर करनेवाले देवता हैं—**'न तस्याक्षिरोगो भवति'** (अक्ष्युपनिषद्)। **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** आदि पुराण-वचन इस विषयमें परम प्रसिद्ध हैं।

भगवान् सूर्य सबका श्रेय करें। 'कल्याण' का 'सूर्याङ्क' 'कल्याण'के पाठकों तथा विश्वका कल्याण करे'—इस आशीर्वाद एवं शुभाशंसाके साथ हम सबके प्रति अपना मङ्गलाशंसन प्रेषित करते हैं। **'शिवसंकल्पमस्तु।'**
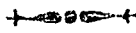
सूर्य-तत्त्व

(—अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतीय संस्कृत-वाङ्मयकी सनातन-परम्परामें भगवान् भास्करका स्थान अप्रतिम है। समस्त वेद, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थ भगवान् सूर्यकी महिमासे परिप्लुत हैं। विजय एवं स्वास्थ्यलाभार्थ और कुष्ठादि रोग-निवारणार्थ विविध अनुष्ठानों तथा स्तोत्रोंका वर्णन उक्त ग्रन्थोंमें विविध प्रकारसे प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। वास्तवमें भारतीय सनातन धर्म भगवान् सविताकी महिमा एवं प्रकाशसे अनुप्राणित तथा आलोकित है। सूर्य-महिमा अद्वितीय है।

वेद ही हमारे धर्मके मूल हैं। शास्त्रानुसार वेदाध्ययन उपनीतके लिये ही विहित है। उपनयन-संस्कारका मुख्य उद्देश्य सावित्री-उपदेश है—**'सावित्र्या ब्राह्मणमुपनयीत।'** 'तत्सवितुर्वरेण्यम्'के आधारपर गायत्रीमन्त्रमें सवितादेव ही ध्येय हैं। सवितादेवके वरेण्य तेजके ध्यानादिके कथनसे स्पष्ट है कि इस मन्त्रमें सविता देवताकी प्रार्थना है।

सविता कौन?—गायत्रीमन्त्रके सविता देवता कौन हैं? सविता शब्द सूर्यका पर्यायवाचक है। **'भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः'** (अमर० १।३।२८)—इसके आधारपर भानु, हंस, सहस्रांशु, तपन, सविता, रवि—ये सब सूर्यके अनेक नाम हैं, अतः सविता सूर्य हैं, सूर्यमण्डलान्तर्गत सूर्याभिमानी देवविशेष हैं, चेतन हैं। हम अपने शास्त्रोंका अध्ययन कर यह कह सकते हैं कि जैसे जल आदिके अधिष्ठातृ देवता चेतन होते हैं, उसी प्रकार प्रत्यक्षतः सूर्यमण्डल भले ही जड़ प्रतीत हों, परंतु उनके अभिमानी देवता चेतन हैं—**'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्'** (यजु० वा० सं० ४०।१७) यह मन्त्र भी आदित्यमण्डलस्थ पुरुषको चेतन प्रमाणित करता है।

हमारे शास्त्रोंमें अध्यात्मादि भेदसे त्रिविध अर्थकी तर्क तथा प्रमाणसम्मत व्यवस्था है, अतः अध्यात्म-सूर्य वह है, जो सब ज्योतियोंकी ज्योति और ज्योतिष्मती योग-प्रवृत्तिका कारणरूप शुद्ध प्रकाश है ।

जिस प्रकाशराशि सूर्यमण्डलका हम प्रतिदिन दर्शन करते हैं, वह अधिभूत सूर्य है । इस सूर्यमण्डलमें परिव्याप्त चेतनदेव अधिदैव शक्ति ही आधिदैविक सूर्य हैं । तात्पर्य यह है कि सूर्य या सविता चेतन हैं ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥
(—ईशोपनिषद् १५)

इस मन्त्रमे कार्य-कारणात्मक आदित्यमण्डलस्थ पुरुषकी प्रार्थना करते हुए सत्यधर्मा अधिकारी कहता है—'हे पूषन् ! आदित्यमण्डलस्थ सत्यस्वरूप ब्रह्मका मुख हिरण्मय पात्रसे ढका हुआ है । मुझ सत्यधर्माको आत्माकी उपलब्धिके लिये आप उसे हटा दीजिये ।' भगवान् शंकराचार्य लिखते हैं—

···सत्यस्यैवादित्यमण्डलस्थस्य ब्रह्मणोऽपिहितमाच्छादितं मुखं द्वारम् । तत्त्वं हे पूषन् अपावृणु—अपसारय ··(—शांकरभाष्य)॥

'हे पूषन् ! मुझ सत्योपासकको आदित्यमण्डलस्थ सत्यरूप ब्रह्मकी उपलब्धिके लिये आच्छादक तेजको हटा दें ।'

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ (—ईशोप० १६)

जगत्के पोषक, एकाकी गमनशील, सबके नियन्ता, रश्मियोंके स्रोत, रसोंके ग्रहण करनेवाले हे सूर्य ! हे प्रजापतिपुत्र ! आप अपनी किरणों-(उष्ण)-को हटाइये—दूर कीजिये और अपनी तापक ज्योतिको शान्त कीजिये । आपका जो अत्यन्त कल्याणमय रूप है, उसे (आपकी कृपासे) मैं देखता हूँ (देख सकूँ) । मैं भृत्यकी भाँति याचना नहीं करता, अपितु आदित्यमण्डलस्थ जो पुरुष है या प्राणबुद्ध्यात्मरूपसे जिसने समस्त जगत्को पूर्ण कर दिया है, किंवा जो शरीररूप पुरमें शयनके कारण पुरुष कहलाता है, वह मै ही हूँ ।

भगवान् शंकराचार्य वेदान्तसूत्रके देवताधिकरण (१ । ३ । ३३)में 'देवताओंका शरीर नहीं होता इत्यादि'—मीमांसक मतका खण्डन करते हुए लिखते हैं—

'ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवतावचनाः शब्दाः, चेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेतं तं तं देवतात्मानं समर्पयन्ति, मन्त्रार्थवादेषु तथा व्यवहारात् । अस्ति तद्धैश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम् । तथा हि श्रूयते सुब्रह्मण्यार्थवादे मेधातिथिम्''' इन्द्रो मेषो भूत्वा जहार । स्मर्यते च आदित्यः पुरुषो भूत्वा कुन्तीमुपजगाम ह 'इति''' ज्योतिरादेस्तु भूतधातोरादित्यादिष्वप्यचेतनत्वमभ्युपगम्यते, चेतनास्त्वधिष्ठातारो देवतात्मानो मन्त्रार्थवादादिषु व्यवहारादित्युक्तम् ।

तात्पर्य यह कि आदित्यमें ज्योतिर्मण्डलरूप भूतांश अचेतन है, किंतु देवतात्मा अधिष्ठाता चेतन ही है । जैसे हमलोगोंका शरीर वस्तुतः अचेतन है, परंतु प्रत्येक जीवित शरीरका एक अधिपति जीवात्मा चेतन होता है, उसी प्रकार देवशरीरोंका अधिपति स्वामी या अधिष्ठाता रहता है । जैसे जीवका शरीर उसके अधीन है, वैसे ही भगवान् सूर्यके अधीन उनका सूर्यरूपी तेजोमण्डल देह है ।

इसपर बहुत पहलेकी पढ़ी एक कहानी याद आती है, जो तथ्यपर आधारित है । मिस्टर जार्ज नामक एक अमेरिकन विज्ञानके प्रोफेसर थे । वे एक बार मध्याह्नके समयमें पाँच मिनटतक खुले शरीरसे धूपमे खड़े रहे; पश्चात् अपने कमरेमे आकर थरमामीटरसे अपना तापमान देखा तो तीन डिग्री ज्वर था । दूसरे दिन जार्ज महाशयने पुष्प और फल लेकर सूर्यको धूप दिखाकर सूर्यको प्रणाम किया ।

और वैसे ही नगे वदन मध्याह्नमे लगभग ११ मिनट धूपमें रहे; पश्चात् कमरेमे आकर थरमामीटरसे तापमान देखा तो वह नार्मल (सामान्य) था। इससे उन्होने निष्कर्ष निकाला कि वैज्ञानिकोका सूर्य केवल अग्निका गोला है, जड़ है— यह सिद्धान्त ठीक नहीं, अपितु सूर्य चेतन हैं, देव हैं। उनमे प्रसन्नता है, अप्रसन्नता है। अतः हमारे यहाँ सूर्यदेव ही सन्ध्यादिकर्मोंमे उपास्य तथा पूज्य हैं।

आदित्यहृदयस्तोत्रके द्वारा भगवान् रामने सूर्यनारायणकी स्तुति की थी। श्रीहनुमान्‌जीने भगवान् सूर्यके सांनिध्यमे अध्ययन किया था, ऐसे अनेक उपाख्यान सूर्यकी चेतनतामे ज्वलन्त उदाहरण हैं। भविष्यपुराणके आदित्यहृदयके—**'यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्।'**—इस श्लोकमे सूर्यको विष्णु-भगवान्‌का स्वरूप (आत्मा) कहा गया है। यही क्यों, वेद भी सूर्यको चराचरात्मक जगत्‌की आत्मा कहते हैं— **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**, **'विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः'** (ऋ० १।१६४।२१)। इस मन्त्रमे सूर्यको धीर अर्थात् बुद्धिप्रेरक कहा है **'धियमीरयतो धीरः'**। अतएव आस्तिक द्विज प्रतिदिन सन्ध्यामे **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** इस प्रकार बुद्धिके अच्छे कामोमे लगानेके लिये प्रार्थना करते है।

'सूर्य' शब्दकी व्युत्पत्ति

निरुक्तकार यास्कने 'सूर्य' शब्दकी निरुक्ति— **'सूर्यः सर्तेर्वा सुवतेर्वा'** (१२।२।१४) इस प्रकार की है। 'सिद्धान्तकौमुदी'के कृत्य-प्रकरणके **'राजसूयसूर्य०'** (पा० ३।१।११४) इस सूत्रसे निपातनकर सूर्य शब्दकी सिद्धि इस प्रकार है—**'सरति (गच्छति) आकाश इति सूर्यः'** (भ्वादि० प०), यद्वा षू प्रेरणे (तुदादि प०), **क्यपो रुट्**, **'सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयतीति सूर्यः'**। इस प्रकार 'सूर्य' शब्दकी व्युत्पत्तिसे यह स्पष्ट है कि सूर्य भगवान् चेतन हैं। प्रेरकता चेतनका गुण है।

हमारे धर्ममे पञ्चदेवोकी उपासनाका वर्णन मिलता है। 'कापिल-तन्त्र'मे भी आता है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥
गुरवो योगनिष्णाताः प्रकृतिं पञ्चधा गताम्।
परीक्ष्य कुर्युः शिष्याणामधिकारविनिर्णयम्॥

आकाशके अधिपति विष्णु, अग्निकी महेश्वरी, वायु-तत्त्वके अधिपति सूर्य, पृथ्वीके शिव एवं जलके अधिपति भगवान् गणेश हैं। योगपारङ्गत गुरुओको चाहिये कि वे शिष्योंकी प्रकृति एवं प्रवृत्तिकी (तत्त्वानुसार) परीक्षा कर उनके उपासनाधिकार अर्थात् इष्टदेवका निर्णय करे।

इस कथनका तात्पर्य यह है कि परमात्मा और उक्त पञ्चदेवोकी उपासनाएँ पाँच प्रकारकी है। अतः जैसे विष्णुभगवान् या शिवादिस्वरूप परमात्मा ही है, उसी प्रकार भगवान् सूर्य भी परमात्मा ही हैं। **'उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्'**—यह योगशास्त्रका वचन है। इसके आधारपर सगुण ब्रह्मकी ही पञ्चतत्त्वभेदानुसार पञ्चमूर्तियाँ हैं। हम भारतीय जबतक इन भगवान् भास्करकी गायत्री-मन्त्रके द्वारा उपासना करते रहे, तबतक भारत ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न, स्वस्थ, शान्त एवं सुखी रहा। वर्तमान दुर्दशा एवं उत्पीडनको देखते हुए भगवान् भास्करकी उपासना अत्यावश्यक है।

भारतीय पुनः भगवान् भास्करका वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर अभ्युदय एवं निःश्रेयसके पथपर चलकर भारतको 'भा'-रत (प्रभापूरित) करें—इस उद्देश्यमें 'कल्याण' का संचालकमण्डल सफल हो, यही हमारी सूर्य-भगवान्‌से प्रार्थना है

सूर्यका प्रभाव

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका आशीर्वाद)

'पूर्ण वेद—सम्पूर्ण वेदवाङ्मय धर्मका मूल (स्रोत) है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'—इस मनु-वचनके अनुसार वेदोद्वारा प्रतिपाद्य—विवेच्य विषय (अर्थ) धर्म है। अतः यज्ञ (वेद-विहित पावन कर्तव्य कर्म) धर्मका स्वरूप है जो समयके अधीन है। समयका विधायक (व्यवहार-व्यवस्था-नियामक) ज्योतिषशास्त्र है और यह ज्योतिषशास्त्र (ज्योतिषशास्त्रका विषय) आदित्य—श्रीसूर्यके अधीन है। सूर्य ही दिन-रातके कालका विभाजन करते हैं। ये ही संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहारके मूल कारण हैं—इन्हींके द्वारा संसारकी सृष्टि, स्थिति और उसका संहार होता है। (अतएव सूर्यदेव ब्रह्म-विष्णु-शिव-स्वरूप हैं—त्रिदेवमय हैं)।

सूर्यकी किरणें सभी लोकोंमे प्रसृत होती हैं। ये (सूर्य) ही ग्रहोंके राजा और प्रवर्त्तक हैं। ये रात्रिमे अपनी शक्ति अग्निमे निहित कर देते हैं। ये ही (सूर्यदेव) निखिल वेदोंके प्रतिपाद्य हैं। ये आकाश-मण्डलमे प्रतिदिन नियमसे सत्यमार्ग (क्रान्तिवृत्त ?) पर स्वयं घूमते हुए संसारका सचालन करते हैं। आकाशमे देखे जानेवाले नक्षत्र, ग्रह और राशिमण्डल इन्हींकी शक्ति (आकर्षण-शक्ति) से टिके हुए हैं—यह शास्त्रोंमे कहा गया है।

थके प्राणी रात्रिमें सुप्त होकर सूर्योदयके समय पुनः जागरूक हो जाते हैं। ऋग्वेद कहता है कि सूर्य ही अपने तेजसे सबको प्रकाशित करते हैं। यजुर्वेदमें कहा गया है कि ये ही सम्पूर्ण भुवनको उज्जीवित करते हैं। अथर्ववेदमे प्रतिपादित है कि ये सूर्य हृदयकी दुर्बलता—हृद्रोग और कासरोगको प्रशमित करते हैं। सूर्यकी किरणें पृथ्वीपरके गीले पदार्थोंको सोख लेती हैं और (खारे) समुद्र-जलको स्वय पीकर पीनेयोग्य बना देती हैं। (किरणोंके उपकार अनेक और महान् हैं।)

नैमिषारण्यमें (पौराणिक) सूतजीने यज्ञसमारम्भके अवसानमें—सत्रान्तमें शौनकादि ऋषियोंके लिये सविता-के विषयमें विस्तृत व्याख्या की। (इससे स्पष्ट है कि) सूर्योपासना भारतवर्षमे बहुत पुराने समयसे चली आती है। आद्य श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा स्थापित षड्विध (साधना) मतोंमे सौर-मत अन्यतम है। पुराणोंमें स्थल-स्थलपर सूर्यकी प्रशंसा तो है ही, उपपुराणोंमें अन्यतम सूर्यपुराणमे भी सूर्यके सम्बन्धमें विस्तारसे बहुत स्पष्टतासे वर्णन किया गया है। उसके आधारपर यहाँ कुछ लिखा जा रहा है।

महर्षि वसिष्ठजीने सूर्यवशीय बृहद्बलको अभिलक्ष्य-कर सूर्यके वैभव (महत्त्व) का वर्णन किया है। चन्द्रभागा नदीके तीरपर (बसे) साम्बपुरमें बहुत समयसे सूर्य प्रतिस्थापित है। वहाँपर की गयी उनकी पूजा अक्षय्य (अनश्वर) फल देती है। भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अभिशप्त उनके पुत्र साम्बने अपने कोढके रोगको सूर्यके अनुग्रहसे शमित कर दिया। (सूर्यकी उपासनासे कुष्ठ-जैसे भयंकर रोग छूट जाते हैं—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साम्बोपाख्यान है)।

सूर्यकी पत्नी छायादेवी तथा पुत्र काक-वाहन शनैश्चर और यम हैं। सूर्य राजरत्न माणिक्यके अधिदेवता हैं। इनका रथ सुवर्णमय है। इनके सारथि (रथ हाँकनेवाले) ऊरु-रहित (अनूरु) अरुण है।

सूर्यकी किरणोंमेसे चार सौ किरणे जल बरसाती है, तीस किरणें हिम (शीत) उत्पन्न करती हैं। इन्हीं

सूर्यसे ओषधि-शक्तियाँ बढ़ती हैं। आगमें हुत हवि (आहुति) सूर्यतक पहुँचकर अन्न उत्पन्न करती है। यज्ञसे पर्जन्य और पर्जन्यसे अन्नका होना शास्त्रसिद्ध एवं लोकप्रसिद्ध है।

सूर्य जपापुष्पके सदृश (अडहुलके फूलके समान) लाल वर्णवाले हैं। शास्त्र-वेत्ता—शास्त्रके मर्मको जाननेवाले आदित्यके भीतर 'हिरण्मयपुरुष' की उपासना करते हैं। पौराणिक जन (पुराण जाननेवाले लोग) कहते हैं कि भगवान् भानु आदिमें हजारों सिरवाले थे और उनका मण्डल नौ हजार योजनोंमें फैला हुआ था। वे पूर्वाभिमुख प्रादुर्भूत हुए थे।

ये (सूर्य) प्रतिदिन मेरुपर्वतके चारों ओर घूमते रहते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्यने सूर्यदेवकी उपासना कर 'शुक्लयजुर्वेद' को प्रकाशित किया। सूर्यके ही अनुग्रहसे देवी द्रौपदीने अक्षय्य पात्र प्राप्त किया था*। महर्षि अगस्त्यने युद्धक्षेत्रमें (श्रान्त) श्रीरामको आदित्य-हृदयस्तोत्रका उपदेश दिया था (जिसके पाठसे श्रीराम विजयी हुए)। अपनी पुत्रीके शापसे कुष्ठरोगसे अभिभूत मयूरकवि 'सूर्यशतक'† नामक स्तोत्र बनाकर सूर्यके अनुग्रहसे उससे (कोढ़से) छूटे। इन्हींके अनुग्रहसे सत्राजितने स्यमन्तकमणि‡ प्राप्त की थी।

इस (दिग्दर्शित) प्रभाववाले सूर्यकी सेवा-भक्ति किंवा आराधना करते हुए सभी आस्तिकजन ऐहिक अभ्युन्नति—'प्रेय' और पारलौकिक उत्कर्ष—'श्रेय' (कल्याण) प्राप्त करें—यह हमारी आशंसा है। 'नारायणस्मृतिः'।

नित्यप्रतिकी उपासना

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।

प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय प्रत्येक पुरुष और स्त्रीको प्रातःकाल स्नानकर और सायंकाल हाथ, मुँह, पैर धोकर सूर्यके सामने खड़े होकर सूर्यमण्डलमें विराजमान सारे जगत्के प्राणियोंके आधार परब्रह्म नारायणको '**ॐ नमो नारायणाय**'—इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर यदि जल न मिले तो मात्र हाथ जोडकर मनको पवित्र और एकाग्र कर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक १०८ बार अथवा २८ बार या कम-से-कम १० बार प्रातःकाल '**ॐ नमो नारायणाय**'—इस मन्त्रका और सायंकाल '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मन्त्रको जपना तथा जपके उपरान्त परमात्माका ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये§—

सब देवनके देव प्रभु सब जगके आधार।
दृढ़ राखौ मोहि धर्ममें विनवौं बारंबार॥
चंदा सूरज तुम रचे रचे सकल संसार।
दृढ़ राखौ मोहि सत्यमें विनवौं बारंबार॥

—महामना पूज्य श्रीमालवीयजी महाराज

* अक्षयपात्रकी कथा कथा-सन्दर्भमें पढ़ें।

† सूर्यशतककी रचना करनेवाले मयूरकवि सातवीं शतीमें हुए थे। उन्होंने जनकल्याण एवं कुष्ठरोगजनित आत्म-वेदनासे मुक्ति पानेके लिये 'सूर्यशतक' की रचना की। सूर्यशतक उत्कृष्ट कोटिका सूर्य-स्तोत्र है। प्रसिद्ध है कि मयूरके छठे श्लोकके उच्चारण करते ही भगवान् सूर्यदेव प्रकट हो गये थे। सूर्यशतकके टीकाकार अन्वयमुखने लिखा है कि 'मयूरो नाम महाकविरन्तःकरणादिसर्वावयवनिर्वृतिसिद्धये सर्वजनोपकाराय च आदित्यस्य स्तुतिं श्लोकशतकेन प्रणीतवान्।'

‡ स्यमन्तकमणिकी कथा इसी विशेषाङ्कके कथाभागमें मिलेगी।

§ 'सनातनधर्मप्रदीपक'से

सूर्य और निम्बार्क-सम्प्रदाय

(—अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी महाराज)

अंशुमाली भगवान् भुवनभास्कर श्रीसूर्यकी महिमा अनन्त एवं असीम है। वेदमाता गायत्रीमे जहाँ निखिलान्तरात्मा, सर्वद्रष्टा एवं सर्वज्ञ भगवान् श्रीसर्वेश्वरका प्रतिपादन है, वहाँ सविता नामसे महाभाग सूर्यका भी परिबोध है। श्रुति, स्मृति, पुराण और सूत्रतन्त्र आदि शास्त्रोंमे तथा साहित्य एवं काव्य आदि उच्चतम ग्रन्थोंमें सूर्य-स्वरूप, सूर्य-प्रशस्ति, सूर्य-स्तवन तथा सूर्य-वन्दन आदिका सुन्दरतम वर्णन विपुलरूपसे विद्यमान हैं। यथार्थमें समग्र सृष्टिका जीवन तथा धारण-सम्पोषण भगवान् सूर्यकी अतुलित लोकोत्तर शक्तिपर ही निर्भर है। वेदोंमें—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'दृशे विश्वाय सूर्यम्'**—अर्थात् समस्त जगत्के आत्मारूपमें सूर्य हैं तथा सारे ससारके दृष्टि-दाता सूर्य हैं—आदि विस्तारसे विवेचित हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामे भगवान् श्रीकृष्णने भी विभूतिस्वरूपके वर्णनमें—**'ज्योतिषां रविरंशुमान्'**-से स्वयको ही इङ्गित किया है। प्रश्नोपनिषद्के **'स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः'**—इस वचनसे यह प्रतिपादन किया गया है कि वे अखिलान्तरात्मा श्रीप्रभु तेजोमय सूर्यरूपमें भी प्रतिष्ठित हैं। पातञ्जलयोगसूत्र (३।२६) में वर्णित है कि **'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'** अर्थात् सूर्यके ध्यान करनेसे ही निखिलभुवनका ज्ञान प्राप्त होता है। तपःपूत पुण्यात्मा धीर पुरुष भी सूर्यमार्गसे ही श्रीभगवद्धाम एवं श्रीभगवद्भावापत्तिरूप मोक्षकी प्राप्ति करते हैं। मुण्डकोपनिषद्के निम्नाङ्कित मन्त्रसे यह भाव स्पष्ट हो जाता है—

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥
(१।२।११)

इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रके—**'रश्म्यनुसारी', 'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः'**—इन दो सूत्रोंसे उपर्युक्त निर्वचनका ही प्रतिपादन है। **'रश्म्यनुसारी'** इस सूत्रके वेदान्त पारिजात सौरभाष्यमें आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्कने स्पष्टीकरण किया है—

'विद्वान् मूर्द्धन्यया नाड्या निष्क्रम्य सूर्यरश्मीननुसारेणोर्ध्वं गच्छति, नैरेव रश्मिभिरित्यवधारणात्' अर्थात् पवित्रात्मा विद्वान् भक्त इस पाञ्चभौतिक शरीरसे निष्क्रमण कर सूर्य-रश्मियोंमें प्रवेश करता है तथा उन्हीं रश्मियोंके मार्गसे दिव्यतम ऊर्ध्व लोकमें चला जाता है। इससे भगवान् सूर्यकी अनन्त, अचिन्त्य एवं अपरिमित महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

अब यहाँ निम्बार्क-सिद्धान्तमें भी भगवान् सूर्यका जो वर्चस्व तथा उनका स्वाभाविक सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है, वह भी परम द्रष्टव्य है। सर्वप्रथम 'निम्बार्क'—इस नामसे ही सूर्यका सम्बन्ध स्पष्टतया परिलक्षित होता है, यथा—'निम्बे अर्कः निम्बार्कः।' इसमे सप्तमी-तत्पुरुष समाससे 'निम्ब वृक्षपर सूर्य'—ऐसा परिबोध होता है। 'भविष्योत्तरपुराण' एवं 'निम्बार्क-साहित्य'में निम्बार्क-सम्बन्धी एक विशिष्टतम दिव्य घटनाका उल्लेख है। एक समयकी बात है कि पितामह ब्रह्मा कृत्रिम वेष बनाकर दिवाभोजी संन्यासीके रूपमें व्रजमण्डलके बीच गिरिराज गोवर्द्धनकी उपत्यकामें सुशोभित श्रीनिम्बार्क-तप.स्थलीपर गये और वहाँ उन्होंने सुदर्शनचक्रावतार—श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यके चक्रावतार-स्वरूपका परिज्ञान प्राप्त करना चाहा। अपने आश्रममे आये हुए अतिथिका स्वागत होना चाहिये—इस विचारसे श्रीआचार्यवर्यने यतिको भोजनके लिये संकेत किया। यद्यपि सूर्य अस्त हो चुके थे, किंतु आचार्यश्रीने रात्रिमें भी सूर्यका दर्शन

कराया और यतिरूप ब्रह्माका आतिथ्य किया। फिर सूर्यके अन्तर्हित होनेपर हठात् रात्रिका समय सामने आ गया। यह देखकर ब्रह्मा विस्मित हुए तथा समाधिस्थ होकर उन्होंने श्रीनिम्बार्क भगवान्के चक्रावतार-स्वरूपका यथार्थ अनुभव किया एवं तत्काल प्रत्यक्ष ब्रह्माके रूपमे प्रकट हो श्रीआचार्यवर्यको निम्बार्क नामसे सम्बोधित किया। इस लोकमङ्गलकारी घटनासे पूर्व 'आचार्यश्रीका' नियमानन्द नाम ही प्रख्यात था। वस्तुतः श्रीमान् आद्याचार्यका यह सम्पूर्ण चरित भगवान् सूर्यसे स्वभावतः सम्बन्ध रखता है।

'निम्बार्क' नामसे यह भी एक गूढतम रहस्य सम्यक्तया स्पष्ट है कि **'सर्वरोगहरो निम्बः'**। आयुर्वेदके इस महनीय वचनसे सिद्ध है कि समस्त रोग निम्बके वृक्षसे शान्त हो जाते हैं। रोगसे ग्रसित जो मानव निम्बका समाश्रय ले तो वह निश्चय ही असाध्य भीषण रोगोसे मुक्ति सुलभतया प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रशस्त एवं प्रखर महिमाका वर्णन समग्र शास्त्रोमे विविध रूपसे उपलब्ध है। सूर्यगीतामे यह प्रसङ्ग अवलोकनीय है—

विश्वप्रकाशक श्रीमन् सर्वशक्तिनिकेतन।
जगन्नियन्तः सर्वेश विश्वप्राणाश्रय प्रभो॥

हे श्रीमन्! आप सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक, समस्त शक्तियोके अधिष्ठान, जगन्नियन्ता, सर्वेश एवं विश्वके प्राणाधार प्रभु हैं।

इस उभयविध दृष्टिसे निम्ब और अर्क (सूर्य) का वैशिष्ट्य प्रत्यक्ष ही है। वस्तुतः निम्बार्क नामसे सूर्यका यह स्वाभाविक सम्बन्ध स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त एक यह भी विलक्षणता है कि इस समय जहाँ राजस्थानमे स्थित पुष्करक्षेत्रके अन्तर्गत श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायका एकमात्र आचार्यपीठ अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ है, वह भी भगवान् सूर्यका अति प्राचीन पौराणिक पुण्यमय तीर्थ है। इस तीर्थका सुन्दरतम वर्णन पद्मपुराण (१५८। १-२४) मे 'निम्बार्कदेव-तीर्थ-माहात्म्य' नामसे मिलता है; जैसे—पिप्पलाद-तीर्थसे कुछ दूर साभ्रमती नदीके किनारे सम्पूर्ण आधि-व्याधियोको मिटानेवाला पिचुमन्दार्क (निम्बार्क-तीर्थ) है। प्राचीन समयमें एक कोलाहल नामक दैत्य था। उसके साथ देवताओंका युद्ध छिड गया। उस दैत्यके प्रहारोसे घबड़ाकर अपने प्राण बचानेके उद्देश्यसे देवता सूक्ष्म रूप धारण करके वृक्षोंपर जा चढे।

जबतक महाविष्णुने उस कोलाहल दैत्यका वध नहीं किया, तबतक शंकर बिल्ववृक्षपर, विष्णु पीपलवृक्षपर, इन्द्र शिरीष-वृक्षपर और सूर्य निम्बवृक्षपर छिपे रहे। जो-जो देवता जिन-जिन वृक्षोंपर रहे थे, वे-वे वृक्ष उन-उन देवताओंके नामसे विख्यात हुए। इसी कारणसे इन देववृक्षोको काटना निषिद्ध माना जाता है। जिस स्थानपर सूर्यने निम्बवृक्षपर निवास किया था, वह 'निम्बार्कतीर्थ' कहलाया। इस तीर्थमे स्नान करके निम्बस्थ (नीमवृक्ष-पर विराजमान) सूर्य-(निम्बार्क-) की पूजा की जाय तो पूजा करनेवाले व्यक्तिके समस्त रोग-दोषोकी निवृत्ति हो जाती है।

आदित्य, भास्कर, भानु, चित्रभानु, विश्वप्रकाशक, तीक्ष्णांशु, मार्तण्ड, सूर्य, प्रभाकर, विभावसु, सहस्रांशु और पूषन्, (पूषा) इन बारह नामोंका पवित्र होकर जप करनेसे धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिकी प्राप्ति होती है। इन बारह नामोमेसे किसी भी एक नामका जप करनेवाला ब्राह्मण सात जन्मोतक धनाढ्य एव वेदपारङ्गत होता है। क्षत्रिय राजा और वैश्य धन-सम्पन्न हो जाता है। शूद्र तीनों वर्णोंका भक्त बन जाता है। अधिक क्या कहा जाय, हे पार्वति! निम्बार्क-तीर्थसे बढकर और कोई तीर्थ नहीं है, न भविष्यमें ऐसा तीर्थ हो सकता है; क्योंकि इस तीर्थमें केवल स्नान और आचमन करनेमात्रसे ही व्यक्ति मुक्ति-(भगवत्प्राप्ति-) का पात्र बन जाता है।'

भगवान् सूर्य—हमारे प्रत्यक्ष देवता

(अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद)

सभी प्राणियोंको जन्मसे ही भगवान् सूर्यके दर्शन होते हैं। ये सर्वप्रसिद्ध देवता हैं। अन्य किसी देवताकी स्थितिमें कुछ संदेह भी हो सकता है, किंतु भगवान् सूर्यकी सत्तामें किसीको संदेहके लिये कोई अवसर ही नहीं है। सभी लोग इनका प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) प्राप्त करते हैं।

'सृ गतौ' अथवा **'षू प्रेरणे'** से क्यप् प्रत्यय होनेपर 'सूर्य' शब्द निष्पन्न होता है। **'सरति आकाशे—इति सूर्यः'**—जो आकाशमें निराधार भ्रमण करता है अथवा **'सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति'**—जो (उदयमात्रसे) अखिल विश्वको अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त कराता है, वह सूर्य है। व्याकरण-शास्त्रमें इसी अर्थमें— **'राजसूयसूर्यमृषोद्य-रुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः'** (पा० सू० ३।१।११४) इस पाणिनि-सूत्रसे निपातन होकर भी सूर्य शब्द बनता है।

अखिल विश्वमें प्रकाश देनेवाला, अनन्त तेजका भण्डार-मण्डल ही सूर्य शब्दका वाच्यार्थ है और इसका लक्ष्यार्थ है—मण्डलाभिमानी पुरुष—चेतन-आत्मा तथा उसका अन्तर्यामी। ऋग्वेदसंहिता कहती है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋ० सं० १।११५।१)

अर्थात्—'भगवान् सूर्य सभी स्थावर-जङ्गमात्मक विश्वके अन्तरात्मा हैं।'

'कालात्मा पुरुष भी सूर्य ही हैं।' ऋग्वेदसंहिताका वचन है—

'सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र-
मेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥'
(ऋ० सं० १।१६४।२)

अर्थात् इस कालात्मा पुरुषका रथ बहुत ही विलक्षण है। रंहणस्वभाव (गमनशील) होनेके कारण उसे रथ कहा जाता है। वह अनवरत (सतत) गमन किया करता है। उस रथमें संवत्सरात्मा एक ही चक्र है। अहोरात्रके निर्वाहके लिये (अहोरात्रके स्वरूप-निर्माणके लिये) उसमें सात अश्व जोड़े जाते हैं— **'रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः।'** ये सात अश्व ही सात दिन हैं। वस्तुतः अश्व एक ही है, किंतु सात नाम होनेके कारण सात अश्व कहे जाते हैं। उस एक चक्रमें ही (भूत, भविष्य और वर्तमान) ये तीन नाभियाँ हैं। वह रथ अजर-अमर (जरा-मरणसे रहित) अर्थात् अविनाशी है एवं अनर्व अर्थात् अत्यन्त दृढ़ है अर्थात् कभी शिथिल नहीं होता। इसी कालात्मा पुरुषके सहारे पिण्डज, अण्डज, स्थावर, ऊष्मज सभी प्रकारके प्राणी टिके हुए हैं। ऐसे रथपर स्थित इन भुवनभास्करको देखकर (समझकर) मनुष्य पुनर्जन्म नहीं पाता—मुक्त हो जाता है—

'रथस्थं भास्करं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'

शतपथब्राह्मणमें भगवान् सूर्यको त्रयीमय कहा गया है—**'यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकोऽथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि स यजुषां लोकः॥'** (१०।५।२।१)

इस श्रुतिमें भगवान् सूर्यके दिव्य गृहस्थानीय मण्डलकी स्तुति की गयी है। मण्डलकी स्तुतिसे मण्डलाभिमानी पुरुष और उसकी स्तुतिसे अन्तर्यामीकी स्तुति स्वभावतः सिद्ध है। यह जो सर्वप्राणिनेत्रगोचर आकाशका भूषण वर्तुलाकार मण्डल है, वह महदुक्थ (बृहती सहस्र नामसे प्रसिद्ध होत्रमें शस्त्रविशेष) है तथा वही ऋक् है।

जो इस मण्डलमें अर्चि (सर्वजगत्प्रकाशक तेज) है, वह 'महाव्रत' नामक क्रतु (यज्ञकर्म) विशेष है और बृहत् रथन्तर आदि साम भी वही है तथा जो मण्डलाभिमानी पुरुष है, वह अग्नि (अर्थात् अग्न्युपलक्षित सर्वदेव) है तथा यजुष् भी वही पुरुष है। अपने तेजसे तीनो लोकोंको पूरित करनेके कारण वह पुरुष है—**'आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्'** अथवा सभी प्राणियोंके शरीररूप पुरमें शयन करनेके कारण वह पुरुष है—**'सर्वासु पूर्षु शेते'** (श० ब्रा० १४ । २ । ५ । १८) अथवा सभी पापोंको भस्म कर देनेके कारण वह पुरुष है—**'सर्वान् पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुषः'** (श० ब्रा० १४ । १ । २ । २)। छान्दोग्य उपनिषद्में इस पुरुषका वर्णन किया गया है—

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आ प्रणखात्सर्व एव सुवर्णः। स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद (छा० उ० १ । ६ । ६-७)। श्रुति भी आदित्यरूपमे इसी अन्तर्यामी पुरुषका वर्णन कर रही है।**'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्'** (ब्र० सू० १।१।२०)- इस ब्रह्मसूत्रमे भी यह निर्णय किया गया है कि इस छान्दोग्यश्रुतिमें प्रतिपादित पुरुष अन्तर्यामी है। इस प्रकार भगवान् सूर्य सर्वदेवमय हैं—**'तस्मात्परमेश्वर एवेहोपदिश्यते इत्यादि'** (शांकरभाष्य)।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्डमे आदित्य-हृदयस्तोत्रके द्वारा इन्हीं भगवान् सूर्यकी स्तुति की गयी है। उसमे कहा गया है कि ये ही भगवान् सूर्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द और प्रजापति हैं। महेन्द्र, वरुण, काल, यम, सोम आदि भी यही हैं—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपां पतिः॥

आपत्तिके समयमें, भयङ्कर विषम परिस्थितिमे, जनशून्य अरण्यमे, अत्यन्त भयदायी घोर समयमे अथवा महासमुद्रमें इनका स्मरण, कीर्तन और स्तुति करनेसे प्राणी सभी विपत्तियोंसे छुटकारा पा जाता है—

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव॥

तीनो सध्याओंमें गायत्री-मन्त्रद्वारा इन्हींकी उपासना की जाती है। इनकी अर्चनासे सबकी मनःकामनाएँ पूर्ण होती है। भगवान् श्रीरामने युद्धक्षेत्रमें इनकी आराधना करके रावणपर विजय प्राप्त की थी। इनका स्तोत्र 'आदित्यहृदय' वरदानी है, अमोघ है। उसके द्वारा इनकी स्तुति करनेसे सभी आपदाओंसे छुटकारा पाकर प्राणी अन्तमे परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

बाह्य प्राणके उपजीव्य आदित्य

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः।
पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः॥
तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः।

(—प्रश्नोपनिषद् ३ । ८-९)

निश्चय ही आदित्य बाह्य प्राण है। यह इस चाक्षुष (नेत्रेन्द्रियस्थित) प्राणपर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है। पृथिवीमें जो देवता हैं, वे पुरुषके अपानवायुको आकर्षण किये हुए हैं। इन दोनोंके मध्यमें जो आकाश है, वह समान है और वायु ही व्यान है। लोकप्रसिद्ध [आदित्यरूप] तेज ही उदान है। अतः जिसका तेज (शारीरिक ऊष्मा) शान्त हो जाता है, वह मनमें लीन हुई इन्द्रियोंके सहित पुनर्जन्मको [अथवा पुनर्जन्मके हेतुभूत मृत्युको] प्राप्त हो जाता है।

त्रिकाल-सन्ध्यामें सूर्योपासना

(—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

समयकी गति सूर्यके द्वारा नियमित होती है। सूर्य भगवान् जब उदय होते हैं, तब दिनका प्रारम्भ तथा रात्रिका शेष होता है, इसको प्रातःकाल कहते है। जब सूर्य आकाशके शिखरपर आरूढ़ होते हैं, उस समयको दिनका मध्य अथवा मध्याह्न कहते हैं और जब वे अस्ताचलको चले जाते हैं, तब दिनका शेष एव रात्रिका प्रारम्भ होता है। इसे सायंकाल कहते है। ये तीन काल उपासनाके मुख्य काल माने गये है। यो तो जीवनका प्रत्येक क्षण उपासनामय होना चाहिये, परंतु इन तीन कालोमें तो भगवान्की उपासना नितान्त आवश्यक बतलायी गयी है। इन तीनों समयोकी उपासनाके नाम ही क्रमशः प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या और सायंसन्ध्या है। प्रत्येक वस्तुकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—उत्पत्ति, पूर्ण विकास और विनाश। ऐसे ही जीवनकी भी तीन ही दशाएँ होती हैं—जन्म, पूर्ण युवावस्था और मृत्यु। हमे इन अवस्थाओंका स्मरण दिलानेके लिये तथा इस प्रकार हमारे अंदर संसारके प्रति वैराग्यकी भावना जागृत करनेके लिये ही मानो सूर्य भगवान् प्रतिदिन उदय होने, उन्नतिके शिखरपर आरूढ़ होने और फिर अस्त होनेकी लीला करते हैं। भगवान्की इस त्रिविध लीलाके साथ ही हमारे शास्त्रोने तीन कालकी उपासना जोड़ दी है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं, इसीलिये वे सूर्यनारायण कहलाते है। यही नहीं, सर्गके आदिमे भगवान् नारायण ही सूर्यरूपमे प्रकट होते है, इसीलिये पञ्चदेवोमे सूर्यकी भी गणना है। यो भी वे भगवान्की प्रत्यक्ष विभूतियोमें सर्वश्रेष्ठ, हमारे इस ब्रह्माण्डके केन्द्र, स्थूल कालके नियामक, तेजके महान् आकर, विश्वके पोषक एवं प्राणदाता तथा समस्त चराचर प्राणियोके आधार हैं। वे प्रत्यक्ष दीखनेवाले सारे देवोमें श्रेष्ठ हैं। इसीलिये सन्ध्यामें सूर्यरूपसे ही भगवान्की उपासना की जाती है। उनकी उपासनासे हमारे तेज, बल, आयु एवं नेत्रो-की ज्योतिकी वृद्धि होती है और मरनेके समय वे हमे अपने लोकमेसे होकर भगवान्के परमधाममें ले जाते है; क्योंकि भगवान्के परमधामका रास्ता सूर्य-लोकमेसे होकर ही गया है। शास्त्रोमें लिखा है कि योगी लोग तथा कर्तव्यरूपसे युद्धमे शत्रुके सम्मुख लडते हुए प्राण देनेवाले क्षत्रिय वीर सूर्यमण्डलको भेदकर भगवान्के धाममे चले जाते हैं। हमारी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य यदि हमें भी उस लक्ष्यतक पहुँचा दे तो इसमे उनके लिये कौन बड़ी बात है। भगवान् अपने भक्तोंपर सदा ही अनुग्रह करते आये हैं। हम यदि जीवनभर नियमपूर्वक श्रद्धा एवं भक्तिके साथ निष्कामभावसे उनकी आराधना करेंगे, तो क्या वे मरते समय हमारी इतनी भी सहायता नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। भक्तोकी रक्षा करना तो भगवान्का विरद ही ठहरा। अतः जो लोग आदरपूर्वक तथा नियमसे बिना नागा (प्रतिदिन) तीनो समय अथवा कम-से-कम दो समय (प्रातःकाल एवं सायंकाल) ही भगवान् सूर्यकी आराधना करते हैं, उन्हे विश्वास करना चाहिये कि उनका कल्याण निश्चित है और वे मरते समय भगवान् सूर्यकी कृपासे अवश्य परमगतिको प्राप्त होंगे।

इस प्रकार युक्तिसे भी भगवान् सूर्यकी उपासना हमारे लिये अत्यन्त कल्याणकारक, थोडे परिश्रमके बदलेमें महान् फल देनेवाली, अतएव अवश्यकर्तव्य है। अतः द्विजातिमात्रको चाहिये कि वे लोग नियम-पूर्वक त्रिकालसन्ध्याके रूपमें भगवान् सूर्यकी उपासना-

किया करें और इस प्रकार लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रकारके लाभ उठावें ।

'उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ।'

अर्थात् 'उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी उपासना करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है ।' (तै० आ० प्र० २ अ० २)

जब कोई हमारे पूज्य महापुरुष हमारे नगरमे आते हैं और उसकी सूचना हमे पहलेसे मिली हुई रहती है तो हम उनका स्वागत करनेके लिये अर्घ्य, चन्दन, फूल, माला आदि पूजाकी सामग्री लेकर पहलेसे ही स्टेशनपर पहुँच जाते हैं, उत्सुकतापूर्वक उनकी बाट जोहते हैं और आते ही उनकी बड़ी आवभगत एव प्रेमके साथ स्वागत करते हैं । हमारे इस व्यवहारसे उन आगन्तुक महापुरुषको बड़ी प्रसन्नता होती है और यदि हम निष्कामभावसे अपना कर्तव्य समझकर उनका स्वागत करते हैं तो वे हमारे इस प्रेमके आभारी बन जाते है और चाहते हैं कि किस प्रकार बदलेमें वे भी हमारी कोई सेवा करें । हम यह भी देखते हैं कि कुछ लोग अपने पूज्य पुरुषके आगमनकी सूचना होनेपर भी उनके स्वागतके लिये समयपर स्टेशन नहीं पहुँच पाते और जब वे गाडीसे उतरकर प्लेटफार्मपर पहुँच जाते हैं, तब दौडे हुए आते हैं और देरके लिये क्षमा-याचना करते हुए उनकी पूजा करते हैं । और, कुछ इतने आलसी होते हैं कि जब हमारे पूज्य पुरुष अपने डेरेपर पहुँच जाते है और अपने कार्यमें लग जाते हैं, तब वे धीरे-धीरे फुरसतसे अपना अन्य सब काम निपटाकर आते हैं और उन आगन्तुक महानुभावकी पूजा करते है । वे महानुभाव तो तीनो ही प्रकारके स्वागत करनेवालोकी पूजासे प्रसन्न होते हैं और उनका उपकार मानते है, पूजा न करनेवालोकी अपेक्षा देर-सवेर करनेवाले भी अच्छे हैं, किंतु दर्जेका अन्तर तो रहता ही है । जो जितनी तत्परता, लगन, प्रेम एवं आदर-बुद्धिसे पूजा करते हैं, उनकी पूजा उतनी ही महत्त्वकी और मूल्यवान् होती है और पूजा ग्रहण करनेवालेको उससे उतनी ही प्रसन्नता होती है ।

सन्ध्याके सम्बन्धमें भी ऐसा ही समझना चाहिये । भगवान् सूर्यनारायण प्रतिदिन सवेरे हमारे इस भूमण्डल-पर महापुरुषकी भाँति पधारते हैं, उनसे बढकर हमारा पूज्य पात्र और कौन होगा । अत: हमें चाहिये कि हम ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर उनका स्वागत करनेके लिये उनके आगमन-से पूर्व ही तैयार हो जायँ और आते ही बडे प्रेमसे चन्दन, पुष्प आदिसे युक्त शुद्ध ताजे जलसे उन्हे अर्घ्य प्रदान करे, उनकी स्तुति करे, जप करे । भगवान् सूर्यको तीन बार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करते हुए अर्घ्य प्रदान करना, गायत्रीमन्त्रका (जिसमें उन्हींकी परमात्मभावसे स्तुति की गयी है) जप करना और खडे होकर उनका उपस्थान करना, स्तुति करना—ये ही सन्ध्योपासनके मुख्य अङ्ग हैं, शेष कर्म इन्हींके अङ्गभूत एव सहायक है । जो लोग सूर्योदय-के समय सन्ध्या करने बैठते हैं, वे एक प्रकारसे अतिथिके स्टेशनपर पहुँच जाने और गाड़ीसे उतर जानेपर उनकी पूजा करने दौड़ते हैं और जो लोग सूर्योदय हो जानेके बाद फुरसतसे अन्य आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर सन्ध्या करने बैठते है, वे मानो अतिथिके अपने डेरेपर पहुँच जानेपर धीरे-धीरे उनका स्वागत करने पहुँचते है ।

जो लोग सन्ध्योपासन करते ही नहीं, उनकी अपेक्षा तो वे भी अच्छे हैं जो देर-सवेर, कुछ भी खानेके पूर्व

सन्ध्या कर लेते हैं। उनके द्वारा कर्मका अनुष्ठान तो हो ही जाता है और इस प्रकार शास्त्रकी आज्ञाका निर्वाह हो जाता है। वे कर्मलोपके प्रायश्चित्तके भागी नहीं होते। उनकी अपेक्षा वे अच्छे हैं, जो प्रातःकालमें तारोंके लुप्त हो जानेपर सन्ध्या प्रारम्भ करते हैं। किंतु उनसे भी श्रेष्ठ वे हैं, जो उषाकालमें ही तारे रहते सन्ध्या करने बैठ जाते हैं, सूर्योदय होनेतक खड़े होकर गायत्री-मन्त्रका जप करते हैं। इस प्रकार अपने पूज्य आगन्तुक महापुरुषकी प्रतीक्षामें उन्हींके चिन्तनमें उतना समय व्यतीत करते हैं और उनका पदार्पण, उनका दर्शन होते ही जप बंद कर उनकी स्तुति, उनका उपस्थान करते हैं।* इसी बातको लक्ष्यमें रखकर सन्ध्याके उत्तम, मध्यम और अधम—तीन भेद किये गये हैं।

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥

(—देवीभागवत ११।१६।४)

प्रातःसन्ध्याके लिये जो बात कही गयी है, साय-सन्ध्याके लिये उससे विपरीत बात समझनी चाहिये। अर्थात् सायंसन्ध्या उत्तम वह कहलाती है, जो सूर्यके रहते की जाय तथा मध्यम वह है, जो सूर्यास्त होनेपर की जाय और अधम वह है, जो तारोंके दिखायी देनेपर की जाय—

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
कनिष्ठा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥

(—देवीभागवत ११।१६।५)

कारण यह है कि अपने पूज्य पुरुषके विदा होते समय पहलेहीसे सब काम छोड़कर जो उनके साथ-साथ स्टेशन पहुँचता है, उन्हें आरामसे गाड़ीपर बिठानेकी व्यवस्था कर देता है और गाड़ीके छूटनेपर हाथ जोड़े हुए प्लेटफार्मपर खड़ा-खड़ा प्रेमसे उनकी ओर ताकता रहता है एवं गाड़ीके आँखोंसे ओझल हो जानेपर ही स्टेशनसे लौटता है, वही मनुष्य उनका सबसे अधिक सम्मान करता है और प्रेमपात्र बनता है। जो मनुष्य ठीक गाड़ीके छूटनेके समय हाँफता हुआ स्टेशनपर पहुँचता है और चलते-चलते दूरसे अतिथिके दर्शन कर पाता है, वह निश्चय ही अतिथिकी दृष्टिमें उतना प्रेमी नहीं ठहरता, यद्यपि उसके प्रेमसे भी महानुभाव अतिथि प्रसन्न ही होते हैं और उसके ऊपर प्रेमभरी दृष्टि रखते हैं। उससे भी नीचे दर्जेका प्रेमी वह समझा जाता है, जो अतिथिके चले जानेपर पीछेसे स्टेशन पहुँचता है, फिर पत्रद्वारा अपने देरीसे पहुँचनेकी सूचना देता है और क्षमा-याचना करता है। महानुभाव अतिथि उसके भी आतिथ्यको मान लेते हैं और उसपर प्रसन्न ही होते हैं।

यहाँ यह नहीं मानना चाहिये कि भगवान् भी साधारण मनुष्योंकी भाँति राग-द्वेषसे युक्त हैं, वे पूजा करनेवालेपर प्रसन्न होते हैं और न करनेवालोंपर नाराज होते हैं या उनका अहित करते हैं। भगवान्‌की सामान्य कृपा सबपर समानरूपसे रहती है। सूर्यनारायण अपनी उपासना न करनेवालोंको भी उतना ही ताप एवं प्रकाश देते हैं, जितना वे उपासना करनेवालोंको देते हैं। उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती। हाँ, जो लोग उनसे विशेष लाभ उठाना चाहते हैं, जन्म-मरणके चक्रसे छूटना चाहते हैं, उनके लिये तो उनकी उपासनाकी आवश्यकता है ही और उसमें आदर एवं प्रेमकी दृष्टिसे तारतम्य भी होता ही है।

किसी कार्यमें प्रेम और आदरबुद्धि होनेसे वह अपने-आप ठीक समयपर और नियमपूर्वक होने लगता है। जो लोग इस प्रकार इन तीनों बातोंका ध्यान रखते हुए श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी जीवनभर उपासना करते हैं, उनकी मुक्ति निश्चितरूपसे होती है।†

---

* पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि। गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम्॥ (—हारीतस्मृति ४।१८)

† (तत्त्व-चिन्तामणि भाग पाँचसे)

ज्योतिर्लिङ्ग सूर्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रंगाचार्यजी महाराज)

पुराणोंमे ज्योतिर्लिङ्गका विशिष्ट लिङ्गोंमे परिगणन है। 'ज्योतिर्लिङ्ग' यह समस्त पद है। उसका विग्रह **'ज्योतिश्च तल्लिङ्गं च'**—इस प्रकार है। अर्थ है ज्योतिरूप लिङ्ग। इनमें ज्योतिका स्वरूप प्रसिद्ध है। लिङ्गका स्वरूप **'लीनम् अर्थं गमयति इति लिङ्गम्'**—इस व्युत्पत्तिसे हेतु, कार्य और गमन आदि है। दर्शनोंमे अमूर्त पदार्थका लिङ्ग मूर्त और 'कारण' को 'लिङ्ग' माना गया है। परतु **'लयं गच्छति यत्र च'**—इस व्युत्पत्तिसे विज्ञानकी भाषामें सृष्टिका उपादान कारण भी लिङ्ग शब्दसे अभिहित हुआ है। वेदमे क्षर तत्त्वसे मिश्रित अक्षर तत्त्व विश्वका उपादान कारण माना गया है। इस तत्त्वसे ही संचरकालमें सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है एव प्रतिसंचरकालमे उसीमें ही लीन हो जाता है, अतः यह **'लयं गच्छति यत्र च'** के आधारसे लिङ्ग शब्दसे अभिहित हुआ है। प्रकृति (क्षर तत्त्व) से आलिङ्गित पुरुष—(अक्षर तत्त्व-) का ही स्थूल रूप शिवलिङ्ग है।

नाना लिङ्ग—यह विश्वका उपादान क्षर मिश्रित अक्षर तत्त्व अनन्त प्रकारका है। इसलिये सृष्टि-धाराएँ भी अनन्त प्रकारकी हैं। नाना प्रकारकी सृष्टिधाराओंके प्रवर्तक नाना प्रकारके लिङ्गों (अक्षर-तत्त्वो) का प्रतिपादन करनेवाला पुराण लिङ्गपुराण है। सृष्टिके इन अनन्त लिङ्गोंमें एक ज्योतिर्लिङ्ग भी है और वह है भगवान् सूर्य। ज्योतिर्लिङ्गरूपी सूर्य भिन्न-भिन्न १२ प्रकारकी ज्योतियोंमे समाविष्ट हैं। अतः ज्योतिर्लिङ्गोंकी सख्या भी बारह ही है। यह ज्योतिर्घन सूर्यमण्डल अपने अन्तर्यामी अक्षरका अनुमापक होनेसे भी लिङ्ग है और ज्योतिरूप होनेसे 'ज्योतिर्लिङ्ग' है।

किसका लिङ्ग ?—सृष्टिके उत्पादक नाना लिङ्गोंमे सूर्यरूप एक ज्योतिर्लिङ्ग भी है। यह कहा गया है, परंतु इस सूर्यमण्डलरूप ज्योतिर्लिङ्गके विषयमे वेदवेत्ताओंके भिन्न-भिन्न मत हैं। कतिपय वेदज्ञोंका मत है कि यह सूर्यमण्डलरूप ज्योतिर्लिङ्ग रुद्रका लिङ्ग है, शिवलिङ्ग नहीं, कारण कि सौर उत्ताप रौद्र है, सौम्य नहीं। सूर्यमें रुद्र प्राणोंके परस्पर संघर्षसे उत्ताप उत्पन्न होता है; शिवता (सौम्यता) के साथ इसका विरोध है। अतः उत्तापकर्म-वाला सूर्यमण्डल रुद्रलिङ्ग है; शिवलिङ्ग नहीं है।

अन्य वेदज्ञ विद्वानोंका मत है कि यजुर्वेदमे एक ही परमात्माके दो रूप माने गये हैं—घोर और शिव; जैसा कि श्रुति कहती है—**'रुद्रो वा एष उदग्निश्च तस्यैते द्वे तन्वौ घोरान्या शिवान्या च।'** इस श्रुतिके अनुसार परमात्माके दो रूप हैं—घोर और शिव। उसका घोररूप अग्नि है और शिवरूप सोम है। उसके घोर-भावके दर्शन अग्नियोंमे और शिवभावके दर्शन सोमगे होते हैं। उष्णकालकी उष्णतम वायुमे रौद्रभाव प्रत्यक्ष है। वर्षाकालकी आर्द्रतामे शिवभाव प्रत्यक्ष है। जैसे एक ही वायुके अवस्थाभेदसे दो रूप है, वैसे एक ही परमात्माके रुद्र और शिव—ये दो रूप हैं; अतः जो रुद्रलिङ्ग है, वह शिवलिङ्ग भी है। जो शिवलिङ्ग है, वह रुद्रलिङ्ग भी है।

सूर्यमें पचपन रुद्र—वेदवेत्ताओंका मत है कि ज्योतिर्लिङ्गरूप सूर्य पचपन रुद्रप्राणोंकी समष्टि है। इसमे विश्वके सब पदार्थ प्रतिष्ठित है। इस सम्बन्धमे **'ब्रह्मसमत्वम्'**मे भी वेदज्ञ विद्वान् गुरुचरण श्रीमधुसूदन झा महोदयका आवेदन है कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि—ये तीन ज्योतियाँ उस महेश्वरके तीन नेत्र हैं। यह सूर्यभगवान्का रुद्र-अवतार है। द्यावापृथिवीमें

रुद्रप्राण व्याप्त है। वह एक ईश्वर है। उस त्रिनेत्र रुद्रदेवके यह रोदसी (द्यावा पृथ्वी) अनुमापक होनेसे लिङ्ग है। सौर उत्ताप रौद्र है। वह रुद्र प्राणोके परस्पर सघर्पसे उत्पन्न होता है। सूर्य-मण्डलके चारो तरफ रुद्रवायु रहती है। यह रुद्र पृथ्वी-अन्तरिक्ष और द्युलोकमे ग्यारह कलाओसे युक्त होकर फिरता है।

अधियज्ञमें ११ रुद्र—अधियज्ञमे रुद्रकी ११ कलाओके नाम इस प्रकार है। ये नाम तीन प्रकारके है; अर्थात् अधियज्ञमे एक-एक रुद्रकलाके तीन-तीन नाम हैं—

(१) सम्राट्, कृशानु, आहवनीय, (२) विभु, प्रवाहण, आग्नीध्रीय, (३) अवस्यु, दुवस्वान्, अच्छावाकीय, (४) अधारि, बम्भारि, नेष्ट्रीय, (५) उक्षिक्, कवि, पोत्रीय, (६) बुध, वैश्ववेदस, ब्राह्मणाच्शस्य, (७) वह्नि, हव्यवाट्, होत्रीय, (८) स्वात्र, प्रचेता, प्रशास्त्रीय, (९) शुन्ध्यु, शुन्ध्यु, मार्जालीप, (१०) अहिर्बुध्न्य, अहिर्बुध्न्य, प्रत्यगार्हपत्य, (११) अज एकपात्, अज एकपात्, नूतनगार्हपत्य—ये ग्यारह रुद्र अधियज्ञमे हैं, वे अग्नियाँ ही हैं, परतु अन्तरिक्षमें निवास करनेसे इनको रुद्र कहते हैं। इनको 'त्रिणयग्नि' भी कहते हैं। विश्वमे इनके भिन्न-भिन्न कार्य है, जिनका वर्णन वेदके ब्राह्मण ग्रन्थोमे आया है।

अधिभूतमें ग्यारह रुद्र—अधिभूतमे रुद्रकी ११ कलाएँ इस प्रकार है—१—पृथ्वी, २—जल, ३—तेज, ४—वायु, ५—आकाश, ६—सूर्य, ७—चन्द्र, ८—आत्मा, ९—पवमान, १०—पावक, ११—शुचि। इनमे पहलेके आठ शिव (शान्त) है। अन्तिमके तीन रुद्र (घोर) है।

अध्यात्ममें ११ रुद्र—जीवात्माके शरीरमें रहनेवाले रुद्र अध्यात्म रुद्र है। अध्यात्म शब्दमें विद्यमान 'आत्मा' शब्द शरीरका वाचक है। इसलिये शरीरमे रहनेवाली सब शक्तियाँ आध्यात्म शक्तियाँ कहलाती हैं। इस रुद्रके दो प्रकार हैं।

प्रथम प्रकार—२ श्रोत्र प्राण, २ चक्षु प्राण, २ नासा प्राण, १ वाक् प्राण, १ नाभिप्राण, १ उपस्थ प्राण, १ वायु प्राण, १ आत्मप्राण (मध्य प्राण) मिलाकर ये अध्यात्ममे ११ रुद्र रहते हैं।

अध्यात्मके रुद्रोंका दूसरा प्रकार ऐसा है—

(१) वाक् प्राण, (२) पाणि-प्राण, (३) पाद प्राण, (४) उपस्थ प्राण, (५) पायु प्राण, (६) श्रोत्र प्राण, (७) त्वक् प्राण, (८) चक्षुःप्राण, (९) जिह्वा प्राण, (१०) घ्राण प्राण, (११) मनःप्राण।

अधिदैवतमें ११ रुद्र—सूर्यमण्डलमें रहनेवाले भिन्न-भिन्न ग्यारह प्रकारके वायु अधिदैवतमे ११ रुद्र माने गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—विरूपाक्ष, २—भैरव, ३—नकुलीश, ४—सेनानी, ५—त्र्यम्बक, ६—सावित्र, ७—जयन्त, ८—पिनाकी, ९—अपराजित, १०—अहिर्बुध्न्य और ११—अज एकपात्। इनमे नौ रुद्रोंके नाम पुराणोमें भिन्न-भिन्न रूपसे उपलब्ध हैं। इनके नामोके अनेक भेद हैं।

आन्तरिक्ष्यके ११ रुद्र—अन्तरिक्षमे रहनेवाली ११ कलाओके नाम इस प्रकार हैं—१—भ्रजमान, २—व्यवदात, ३—वासुकि, ४—वैद्युत, ५—रजत, ६—पुरुष, ७—श्याम, ८—कपिल, ९—अतिलोहित, १०—ऊर्ध्व और ११—अवपतन।

इनके कार्य—वेदके ब्राह्मणग्रन्थो एवं पुराणोमे इन सब रुद्रोके भिन्न कार्योंका वर्णन है। जिज्ञासुओको वहाँ ही देखना चाहिये। इनमे पाँचवाँ रुद्र 'रजत' है। वेदका आवेदन है कि इसके आँसुओसे 'रजत' धातु उत्पन्न होता है। रजत नामके रुद्रके आँसुओंसे उत्पन्न होनेके कारण धातुका नाम भी 'रजत' रक्खा गया है, कारणसे कार्य सदा अभिन्न रहता है।

एकलिंग—

एते च पञ्चाशत् रुद्रा यत्र समाश्रिताः ।
तदेकं लिङ्गमाख्यातं तत्रेदं सर्वमास्थितम् ॥

'प्रतिमुख ग्यारह-ग्यारह कलाओसे युक्त इस पञ्चाशत् रुद्रकी सब कलाओका जहॉ एक स्थलमे सनिपात होता है, वह एकलिङ्ग शब्दसे व्यवहृत है और वह है भगवान् सूर्य। भगवान् सूर्यमे ५५ रुद्रसमाश्रित हैं, अतः वे 'एकलिङ्ग' हैं। इस एकलिङ्गमें विश्वके सब पदार्थ समाये हुए हैं अर्थात् इसमे आरूढ हैं ।' राजस्थानमे विराजमान एकलिङ्गजी इस एकलिङ्गजीकी ही प्रतिमा है । यह एकलिङ्ग तेजोमय है । अति उग्र है, अति भीषण (भैरव) है । यह सबको तत्क्षण भस्म कर दे, यदि इसके चारो ओर जलका परिभ्रमण न हो । चारो ओरसे जलसे अभिषिक्त होकर यह रुद्र ही साम्ब (सजल) बनकर शान्त होनेसे शिवरूपमे परिणत हो जाता है । इसके मस्तकपर प्राणरूप सत्य ब्रह्मा हैं और नीचे अनन्त-रूप विष्णु हैं । इसलिये यह एक ही मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वररूप तीन देव है । तीन देवोसे युक्त इस एक मूर्तिको एक ब्रह्माण्ड कहते हैं । यही सम्पूर्ण विश्व है ।

बारह ज्योतिर्लिङ्ग—यह सूर्यज्योति बारह प्रकार-की है । इसलिये ज्योतिर्लिङ्ग भी बारह हैं । यह सूर्यमण्डल जिस अमूर्त अक्षर (अन्तर्यामी) का लिङ्ग (गमक) है, वह अमृत अक्षर इसमे विराजमान है । उपनिषदोमें अक्षरको अन्तर्यामी भी कहा है । वह निश्चित अपने लिङ्ग सूर्यमण्डलमे प्रतिष्ठित है, इसलिये शास्त्रोमे सूर्यमण्डलमे उसकी उपासना विहित है—

'ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।'

मूर्तिमात्र लिङ्ग—लिङ्ग शब्दसे केवल शिवलिङ्ग ही अभिप्रेत है । यह एक भ्रम है । देवताओकी सब मूर्तियोको भगवान् कृष्णने लिङ्ग कहा है । महाभागवत भगवान् शंकराचार्यजीने भी विष्णु-मूर्तिके लिये **'परब्रह्म-लिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्'**—ऐसा कहा है । श्रीरामानुज-सम्प्रदायमे भगवान्‌की मूर्तिको भी एक अवतार माना है । इसका नाम अर्चावतार है । इन लिङ्गों (मूर्तियो)-के विषयमे गुरुचरण श्रीमधुसूदन झा महाभागका यह यथार्थ विज्ञान है—

यस्य लिङ्गमियं मूर्तिरालिङ्गं तदिह स्थितम् ।
तदक्षरं तदमृतं तल्लिङ्गलिङ्गितं ध्रुवम् ॥

ज्योतिर्लिङ्गोंके द्वादशतीर्थ

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् । उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममरेश्वरम् ॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् । वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने । सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् । सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥
एतेषां दर्शनादेव पातकं नैव तिष्ठति । कर्मक्षयो भवेत्तस्य यस्य तुष्टो महेश्वरः ॥

(१) सौराष्ट्र-प्रदेशमे श्रीसोमनाथ, (२) श्रीशैलपर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जयिनीमें श्रीमहाकाल, (४) (नर्मदा-तटपर) श्रीओंकारेश्वर अथवा अमरेश्वर, (५) हिमाच्छादित केदारखण्डमें श्रीकेदारनाथ, (६) डाकिनी नामक स्थानमे श्रीभीमशङ्कर, (७) काशीमे श्रीविश्वनाथ, (८) गौतमी (गोदावरी) तटपर श्रीत्र्यम्बकेश्वर, (९) चिताभूमिमें श्रीवैद्यनाथ, (१०) दारुकावनमे श्रीनागेश्वर, (११), सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वर और (१२) घुश्मेश्वर—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग है, जिनका बडा माहात्म्य है । जो कोई नित्य प्रातःकाल उठकर इन नामोंका पाठ करता है, उसके सात जन्मोतकके पाप क्षीण हो जाते है । इनके दर्शनमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है । जिसपर भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं, उसके पाप क्षय हुए बिना नही रहते । [शङ्कर और सूर्य दोनोका अभेद प्रतिपादन भी शास्त्रोमे है । परम्परामे प्राप्त ज्योतिर्लिङ्गोंके ये तीर्थ हैं । (शिवपु० ज्ञा० स० अ० ३८)]

आदित्यमण्डलके उपास्य श्रीसूर्यनारायण

(–अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु रामानुजाचार्य यतीन्द्र स्वामी श्रीरामनारायणाचार्यजी महाराज)

प्रमुख वैदिक उपासनाओंमें सूर्योपासना अन्यतम है। मानव-जीवनके नित्य-नैमित्तिक काम्य कर्मोंकी आधारशिला श्रीसूर्य ही हैं। पुराणादि ग्रन्थोंमे जो चार प्रकारके कालों (मानुषकाल, पितृकाल, देवकाल और ब्राह्मकाल) की गणना की गयी है, उसके भी आधार सूर्य ही हैं। दिन और रातका विभाग भी सूर्यपर ही आधारित है। प्राणी जितने कालतक सूर्यको देखता है, उतने कालको दिन तथा जितने कालतक वह सूर्यको नहीं देख पाता, उतने कालको रात मानता है। इसी तरह पितृदेव एवं ब्रह्मके अहोरात्रकी व्यवस्था भी सूर्यपर ही आश्रित है।

भारतीय चिन्तन-पद्धतिके अनुसार सूर्योपासना किये बिना कोई भी मानव किसी भी शुभ कर्मका अधिकारी नहीं बन सकता। सायुज्य मुक्तिके मार्गमें सूर्य-मण्डलका भेदन करनेवाला योगी ही उसका वास्तविक अधिकारी माना गया है। वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार सन्ध्योपासना तथा गायत्रीका अनुष्ठान करनेवाला उपासक तीनों कालोंमे गायत्रीके द्वारा तेजोमय सूर्यरूप परमात्मासे सन्मार्ग-दर्शन एवं सद्बुद्धिकी प्राप्तिके लिये अभ्यर्थना किया करता है।

वेदोंने सूर्यके माहात्म्यको बतलाते हुए उसे जड-जङ्गम-जगत्‌की आत्मा बतलाया है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**। भगवान् श्रीकृष्णने सूर्य और चन्द्रमाके भीतर विद्यमान तेजको अपना ही तेज बतलाया है—**'यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।'** शास्त्रोंमें सूर्य और चन्द्रमाको भगवान्‌का नेत्र भी बतलाया गया है।

विराट् परमात्माके नेत्र—सूर्यसे ही मानव-नेत्रोंको ज्योतिकी प्राप्ति होती है। उपनिषदोंमें मायाके बन्धनोंसे छुटकारा पाने तथा सर्वात्मना ब्रह्मप्राप्तिके लिये मधुविद्या, पुरुषविद्या, शाण्डिल्यविद्या, संवर्गब्रह्मविद्या, उपकोशल-विद्या, प्राणविद्या, पञ्चाग्निविद्या, षाड्विद्या, वैश्वानरविद्या आदि ३२ विद्याओं (उपासनाओं)का विस्तारके साथ उल्लेख है। उनमें उद्गीथ-विद्याके अन्तर्गत अन्तरादित्य विद्याका वर्णन किया गया है। उसके उपासक निदिध्यासनके द्वारा शुक्ल तेजको ऋग्वेद, नीलवर्ण या कान्तिको सामवेदके रूपमें देखते हैं। अन्तरादित्य-विद्याकी दृष्टिमें सूर्य-मण्डलके उपास्यरूपसे जिस पुरुषका वर्णन है, वह पुरुष श्रीसूर्यनारायण ही हैं। विचारकी दृष्टिसे सूर्यनारायण—पदमें कर्मधारय समास* समझना चाहिये। सूर्यस्वरूप भगवान्‌का अत्यन्त मनोज्ञ वर्णन इस विद्याका प्रतिपाद्य विषय है। सम्पूर्ण जगत्‌को अपने प्रकाशद्वारा स्वस्वाभिप्रेत कर्ममें प्रवर्तक होनेके कारण नारायणका एक नाम सूर्य भी है—इस बातको ईशोपनिषद्‌की—**'पूषन्नेकर्षे यम सूर्य'**—इत्यादि श्रुति बतलाती है।

आदित्यमण्डलके आराध्य देवताका वर्णन छान्दोग्योपनिषद्‌के १। ६। ६। ७ में आया है। श्रुतिके अनुसार आदित्यमण्डलमे उसका जो अन्तर्यामी मनोज्ञ प्रकाशस्वरूप पुरुष दिखायी देता है—जिसकी दाढ़ी, केश स्वर्णकी भाँति चमचमाते हैं तथा जो नखसे शिखापर्यन्त स्वर्णिम मनोज्ञ प्रकाशयुक्त है, जिसकी अर्चि कमलदलके सदृश है, उस सूर्यमण्डलान्तर्वर्ती पुरुषका नाम 'उत्' है; क्योंकि वह कर्मोंके बन्धनोंसे मुक्त है—

'अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते। हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव

* सूर्यश्चासौ नारायणः इति सूर्यनारायणः (सूर्य ही नारायण हैं)।

सुवर्णः। तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम। स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः।'

ब्रह्मसूत्रके भाष्यकारोंने 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' (१।१।२)—सूत्रका विषय-वाक्य इस श्रुतिको माना है और 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः'—(पा० सू० ४।१।८५) इस पाणिनीयानुशासनके अनुसार ण्यत्-प्रत्ययान्त आदित्य पदको आदित्यमण्डलका वाचक माना है। आदित्यमण्डलके भीतर रहनेवाले पुरुषको सम्पूर्ण जगत्के प्रेरक सूर्य-स्वरूप भगवान् नारायण ही माने गये हैं। प्रकृत श्रुति उन्हीं भगवान् नारायणके मनोहर रूपका वर्णन प्रस्तुत करती है।

आदित्य पदको आदित्यमण्डलका वाचक इसलिये भी माना गया है कि 'य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः'-इस बृहदारण्यक श्रुति तथा 'य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिषि पुरुषः'-इस तैत्तिरीय श्रुतिमें मण्डलवर्ती पुरुषका वर्णन मिलता है। उपर्युक्त आदित्यमण्डलवर्ती पुरुषके नेत्रोंके विशेषणरूपमें आया हुआ 'कप्यास' पद भाष्यकारोंकी दृष्टिमें विवादास्पद है।

श्रीभाष्यकार 'कप्यास' पदको कमलका वाचक मानते हैं। श्रुतप्रकाशिकाकारने कप्यास पदको कमलका वाचक मानते हुए उसकी दो प्रकारकी व्युत्पत्तियाँ दिखलायी हैं—

(१) 'कम् जलम् पिबतीति कपिः, तेन आस्यते क्षिप्यते विकास्यते इति कप्यासः'—इस व्युत्पत्तिका अभिप्राय यह है कि जलोंका अपनी किरणोंद्वारा शोषण करनेके कारण सूर्य कपि कहलाता है और किरणोंद्वारा विकसित किये जानेके कारण कमल कप्यास कहलाता है।

(२) अथवा जलको ही पीकर पुष्ट होनेवाला कमल-नाल कपिशब्दसे कहा जाता है और उसपर रहनेके कारण कमलपुष्प कप्यास कहलाता है—'कम् जलम् पिबतीति कपिः तत्र आसते उपविशन्ति यत् तत् कप्यासम्।' इस प्रकार आदित्यमण्डलवर्ती पुरुषके नेत्रोंकी उपमा लाल कमलसे उक्त श्रुतिमें बतलायी गयी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आदित्य-मण्डलमें रहनेवाले जिन पुरुषका उपास्यरूपसे वर्णन है, वे कौन हैं?—आदित्यशब्दसे कोई जीव कहा जाता है अथवा परमात्मा? इसके उत्तरमें ब्रह्मसूत्रकार बादरायणका कहना है कि आदित्यमण्डलमें रहनेवाले पुरुषके जो धर्म बतलाये गये हैं, वे धर्म परमात्माके ही हो सकते हैं, जीवके नहीं; क्योंकि श्रुति उसको अकर्मवश्य बतलाती है। छान्दोग्योपनिषद्के आठवें प्रपाठकमें परमात्माको ही अकर्मवश्य बतलाया गया है—'एष आत्माऽपहतपाप्मा।' साथ ही बृहदारण्य-कोपनिषद्के अन्तर्यामित्वमें आदित्य शब्दाभिधेय जीवसे भिन्न ही आदित्यान्तर्यामी पुरुषको बतलाते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो परमात्मा आदित्यके भीतर रहते हुए आदित्यकी अपेक्षा अन्तरङ्ग हैं, जिन्हें आदित्य भी नहीं जानते और आदित्य जिनके शरीर हैं, जो आदित्यके भीतर रहकर उनका नियमन किया करते हैं, वे ही अमृत परमात्मा तुम्हारे भी अन्तरात्मा हैं।

य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यम-यत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

अतएव आदित्यमण्डलके उपास्य देवता भगवान् नारायण ही हैं—जिस प्रकार देव आदि शरीरोंके वाचक शब्द देवादि शरीरवाले आत्माके भीतर रहनेवाले अन्तरात्मा परमात्माके भी वाचक होते हैं। यह अन्तरात्मा विज्ञानके पश्चात् ज्ञात होता है।

आदित्यहृदयके १२८वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सवितृ-मण्डलके भीतर रहनेवाले पद्मासनसे बैठे हुए केयूर, मकर, कुण्डल, किरीटधारी तथा हार पहने, शङ्ख-चक्रधारी स्वर्णके सदृश देदीप्यमान शरीरवाले भगवान् नारायणका सदा ध्यान करना चाहिये।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

सूर्योपनिषद्में सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिमे एकमात्र कारण सूर्यको ही बतलाया गया है और उन्हींको सम्पूर्ण जगत्की आत्मा तथा ब्रह्म बतलाया गया है— **'सूर्याद् वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते । असावादित्यो ब्रह्म ।'** सूर्योपनिषद्की श्रुतिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि तथा उसका पालन सूर्य ही करते हैं। सम्पूर्ण जगत्का लय सूर्यमे ही होता है और जो सूर्य है वही मैं हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत्की अन्तरात्मा सूर्य ही हैं ।

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु ।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च ॥

मद्रासकी लाइब्रेरीमे सुरक्षित सूर्यतापिनी-उपनिषद्के अनुसार सूर्य त्रिदेवात्मक तथा प्रत्यक्ष देवता हैं ।

वेदोंमें सूर्य

(अनन्तश्रीविभूषित वैष्णवपीठाधीश्वर गोस्वामी श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (ऋ० १ । ११५ । १, शुक्लयजु० १६)

तत्त्वतः वेदोमे एक एवं अद्वितीय ब्रह्मका ही प्रतिपादन है— **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।'** जब उसको क्रीडा करनेकी इच्छा हुई तो किसके साथ क्रीडा करे, उसके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है । **'एकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत्'**—इस श्रुतिके अनुसार अकेले ब्रह्मको दूसरेकी अभिलाषा हुई— **'स ऐच्छत एकोऽहं बहु स्याम्'; 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय'** (तै० उ० २ । ६)—उसने इच्छा की, मै अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ; उसने कामना की—मै बहुत हो जाऊँ और सृष्टि करूँ **'आत्मानं स्वयमकुरुत'** (तै० उ० २ । ७)—फिर उस ब्रह्मने अपनेको जगद्रूपसे परिणत कर लिया; **'सच्च त्यच्चाभवत्'** (तै०उ०२ । ६)—वह स्थावर-जङ्गमरूपमें परिणत हो गया। जगत् प्रपञ्चात्मक है और अहंता-ममतारूप जो संसार है, वह मिथ्या है। विशिष्टाद्वैतमतमें जगत् सत्य है । **'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः'**—इस सूत्रके श्रीभाष्यसे स्पष्ट है कि ब्रह्म सभी स्थावर-जङ्गमात्मक कार्यका कारण है, और **'कार्यकारणयोरभेदात्'**—इस सिद्धान्तसे कार्यकी कारणके साथ अभिन्नता होनेसे जगत् ब्रह्मरूप होनेसे सत्य सिद्ध होता है । **'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'**—इस श्रुतिसे भी जगत्की सत्यता सिद्ध होती है । इस जगत्मे अन्तर्यामीरूपसे वही प्रविष्ट है । **'तत् सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्'**—इस श्रुतिसे जगत्के अंदर सभी प्राणियोंके प्रेरक एवं प्रवर्तक वे ही परमात्मा हैं। वे ही स्थावर-जङ्गमके स्वरूपभूत हैं। जगत्, जीव और अन्तर्यामी—ये तीन भेद कार्यवश किये गये हैं । इनमें जगत् जड़, जीव चेतन और कूटस्थ एवं आनन्दमय है । चेतनके सम्पर्कसे जड़ भी चेतन-सा प्रतीत होता है और वह ज्योतिर्मय होनेसे त्रिलोकीको प्रकाशित करनेवाला है ।

भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनो लोक समष्टि ब्रह्माण्डस्वरूप होनेसे विराट्पदवाच्य भगवान्के स्थूल रूप हैं । अतः जगत् सत्य है । उपर्युक्त तीनों लोकोको प्रकाशित करनेके लिये अग्नि, वायु, सूर्यरूपसे वे ही क्षिति, अन्तरिक्ष और द्युलोकमे स्थित हैं । ये तीनो देवता उसी परमात्माकी विभूतियाँ हैं । उनमेसे एक ही महान् आत्मा देवता है, जो सूर्य कहलाता है । वे सभी भूतोके अन्तर्यामी हैं— **'एक एव वा महानात्मा देवता स सूर्य इत्याचक्षते । स हि सर्वभूतात्मा तदुक्तं परमर्षिणा सूर्य आत्मा**

*

जगतस्तस्थुषश्च' (सर्वानुक्रमपरिभाषा १२ । २), 'अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्' (ब्र० सू०) इस परमर्षिसूत्रसे सभी देववर्गोका अन्तर्यामी परमेश्वर सिद्ध है । इसमें निम्नलिखित श्रुतियाँ प्रमाण हैं—

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते ।
(छा० उ० १ । ६ । ६)

य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते ।
(छा० उ० ४ । ११ । २)

स यश्चायं पुरुषे यश्चायमादित्ये स एकः ।
(तै० उ० ३ । ४)

'य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरम् एष आत्मा अन्तर्याम्यमृतः ।' —इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणित करती हैं कि सभी देवोंके अन्तर्यामी भगवान् हैं । यही कारण है—स्मृतियाँ आत्माकी परिभाषा करती हुई कहती हैं—

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति कथ्यते ॥

तेजोमय ज्योतिःस्वरूप परमात्मासे तीन ज्योतियाँ निकलीं—अग्नि, वायु, सूर्य । इनमेसे सर्वाधिक प्रकाशमान सूर्य ही हैं । उस तेजसमूहरूप सूर्य-मण्डलके अन्तर्गत नारायण ही उपास्य हैं । सूर्यका शब्दार्थ है सर्वप्रेरक । **षू प्रेरणे** (तुदादि) धातुसे **'सुवति कर्मणि तत्तद्व्यापारे लोकं प्रेरयति इति सूर्यः'**—इस व्युत्पत्तिमे षू धातुसे क्यप् प्रत्यय एव रुडागम करनेपर 'सूर्य' शब्द निष्पन्न होता है । अथवा **'सरति आकाशे इति सूर्यः'** इस व्युत्पत्तिसे कर्तामे क्यप् प्रत्ययके निपातनसे उत्व करनेपर **'राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः'** इस पाणिनीय सूत्रसे 'सूर्य' शब्द सिद्ध होता है । वह सर्वप्रकाशक, सर्वप्रेरक तथा सर्वप्रवर्तक होनेसे मित्र, वरुण और अग्निका चक्षुःस्थानीय है—**'चष्टे इति चक्षुः । चक्षुषश्चक्षुः'**—इस श्रुतिसे प्रतिपाद्य है । वह सभीकी चक्षुरिन्द्रियका अधिष्ठाता देव है, उसके विना कोई भी वस्तु दृश्य नहीं होती । कहा है—

दीव्यति क्रीडति खस्मिन् द्योतते रोचते दिवि ।
यस्माद् देवस्ततः प्रोक्तः स्तूयते देवमानवैः ॥

अतः वही अपने तेजपुञ्जसे तपता हुआ उदित होता है और मृतप्राय सम्पूर्ण जगत् चेतनवत् उपलब्ध होता है, इसलिये वह सभी स्थावर-जङ्गमात्मक प्राणिजातका जीवात्मा है । **'योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति'**—इस श्रुतिसे उपर्युक्त विषयकी पुष्टि होती है ।

'य एषोऽन्तरादित्ये०'—इत्यादि श्रुतियोंसे प्रतिपादित सूर्यमण्डलाभिमानी आदित्यदेव है और सभी प्राणियोंके हृदय-आकाशमे चिद्रूपसे परमात्मा स्थित हैं तथा जो समस्त उपाधियोंसे रहित परब्रह्म हैं, वे सभी एक ही वस्तु हैं । अतः सूर्य और ब्रह्ममें अनन्यता होनेसे सर्वात्मत्व सिद्ध होता है । **'यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते, यश्चायं पुरुषे यश्चायमादित्ये स एकः'**—(तै० उ० ३ । ४)—इत्यादि श्रुतियाँ इस बातकी सम्पुष्टि करती हैं कि सूर्य-मण्डलके अन्तर्गत नारायणके तेजसे ही सभी ब्रह्माण्डगत सूर्य, चन्द्र, अग्नि और विद्युत् आदि प्रकाश्य वस्तु प्रकाशित होते हैं, क्योंकि वह स्वप्रकाशमान है । उसको अग्निस्फुलिङ्गवत् कोई प्रकाशित नहीं कर सकता है । उपनिषदे कहती हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
(मुण्डकोप० २ । २ । १०)

श्रीमद्भगवद्गीतामे योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्ने भी अर्जुनके प्रति इसकी पुष्टि की है कि ज्योतिर्मय वस्तुओ एवं सूर्यादिकोमे जो प्रकाश है, वह मेरा ही प्रकाश है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥
(१५ । १२)

हम पहले कह चुके हैं कि सभी तेजस्वियोंमें सूर्य-मण्डल अधिक तेजस्वी है, उसीके भीतर विराजमान हिरण्मय ज्योतिपुञ्ज श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् ध्येय हैं। इसी आशयसे सम्मोहन-तन्त्रोक्त गोपालकवचमें भी कहा गया है—

सूर्यमण्डलमध्यस्थः कृष्णो ध्येयो महामतिः।

भगवान् सूर्य रथमें स्थित होकर सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण करनेके लिये विश्व-भ्रमण करते हैं और अपने द्वारा स्थापित मर्यादाका निरीक्षण करते हुए उदयास्तद्वारा प्राणियोंकी जीवनभूत आयुका आदान करनेसे आदित्य कहलाते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽ-
देवो याति भुवनानि पश्यन्॥
याति देवः प्रवता यात्युद्वता
याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।
आ देवो याति सविता परावतोऽप
विश्वा दुरिता बाधमानः॥

—इन मन्त्रोंमें 'याति' पद गमनार्थक है, अतः सूर्यका भ्रमण करना सिद्ध होता है, 'अचला' पृथ्वीका भ्रमण असम्भव है। वह तो चक्षुके घुमानेसे घूमती-सी दिखलायी देती है—'**चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः**'—यह भागवतके इस वाक्यसे ज्ञात होता है। शुक्लयजुर्वेदमें भी सूर्यका असहायरूपेण विचरना लिखा है—

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।
(शु० य० २३, शत० ब्रा० १२। २। ६। १०)

सप्त अश्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
(ऋ० १। ५०। ८)

सूर्य-रथके वाहक सात अश्व हैं जो सप्त व्याहृति छन्द हैं। एक पहियेके रथको सप्त नामका घोड़ा वहन करता है, जैसा श्रुत्यन्तरमें कहा है—

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र-
मेको अश्वो वहति सप्तनामा।

उपर्युक्त श्रुतियोंसे सूर्य-रथका भ्रमण करना सिद्ध होता है। आदित्य-रथका वर्णन श्रीविष्णुपुराणमें विस्तारसे और अन्यान्य पुराणोंमें संक्षिप्त रूपमें आया है। श्रीमद्भागवतमें सूर्य-व्यूहका वर्णन बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया है तथा पञ्चम स्कन्धमें सूर्यकी गति, क्रिया और उदयास्तादिकालका विधान-बोधन भलीभाँति वर्णित है। इस प्रकार श्रुति, स्मृति, पुराण एवं उपनिषदोंमें—सूर्यका भ्रमणद्वारा उदयास्तकाल सूर्यके दर्शन-अदर्शनसे प्रतिपादित है। इसीसे अहोरात्र तथा दिशा-विदिशाओंका विभाग होता है।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ
शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट
ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः॥
(ऋ० १०। ८५। १८)

अर्थात् सूर्य पहले विचरते हैं, चन्द्रमा उनका अनुसरण करते हैं। भगवान्के नेत्रसे प्रकाश्य सूर्य हैं और सूर्यके तेजसे प्रकाश्य चन्द्रमा हैं; क्योंकि वे जलमय बिम्ब हैं। उसपर सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे उज्ज्वल शीतल चन्द्रकान्ति प्रकाशमान होकर फैलती है, जैसे गृहद्वारपर स्थित दर्पणपर सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे अन्तर्गृह प्रकाशित होता है। इस प्रकार पौर्वापर्यसे स्वप्रज्ञानसे सूर्य और चन्द्रमा द्युलोक (अन्तरिक्ष)में विचरण करते हैं, अर्थात् दो बालकोंकी तरह विहार करते हैं। उन दोनोंमें आदित्य सकल भुवनोंका अवलोकन करते हैं और चन्द्रमा वसन्त आदि ऋतुओंका विधान करते हुए मास, अर्धमास बनाते हुए बारम्बार प्रादुर्भूत होते हैं—जन्मते हैं। यद्यपि दोनोंका पुनः-पुनः प्रादुर्भाव तो नहीं होता, तथापि सूर्यको क्षय—प्रवृद्धि आदि अभीष्ट नहीं है। चन्द्रमाकी कलाओंके घटने-बढ़नेसे पुनर्जन्म होना युक्त है। अतएव तैत्तिरीयब्राह्मणमें कहा है कि '**चन्द्रमा वै जायते पुनः**' (३। ९। ५। ४) '**नवो नवो भवति जायमानः**' (ऋ० ८। ३। १९) रातमें सभी प्राणियोंका आलोक वैश्वानरके अधीन रहता है। रात्रिके बाद वे ही सूर्य बनकर उदित होते हैं।

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्नि-
स्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
(ऋ० १० । ८८ । ६)

'भातीति भानुः'—इस व्युत्पत्तिसे 'भानु' शब्द भी सूर्य-भानु वाचक है । वे भगवान्‌के तेजसे दीप्त होकर प्रकाशमान होते हैं तथा अन्तरिक्षमें भ्रमण करते हुए समस्त द्युलोक एवं भूलोकको प्रकाशित करते हैं ।

भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्
प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ।
(ऋ० ९ । ५ । १२)

सविता सकल जनोंके दुःखका निवारण करनेवाली वृष्टिको उपजानेसे सविता-पद-वाच्य वे ही सूर्यमण्डलमध्यवर्ती नारायण हैं । **'याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति'** (श्रुति) तथा **'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः'** । (स्मृति) एवं **'अष्टौ मासान्निपीतं यद् भूम्याश्चोदमयं वसु । स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते** (भा० १० । २० । ५)—प्रभृति पुराणादि वचनोंसे वे ही वर्षा करते हैं अथवा **'सूयते इति सविता'** सम्पूर्ण जगत्‌के प्रसवकर्ता उद्गमस्थानीय है । अथवा—**'सूते सकलश्रेयांसि ध्यातॄणामसौ सविता'** अर्थात् सभी ध्यातृवर्गोंके सकल श्रेयका कारण होनेसे वे ही सविता-पद-वाच्य हैं । **'उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते'**—यह श्रुति भी इसी बातको प्रमाणित करती है । अदिति देवमाताके शरीरसे उत्पन्न होनेके कारण वे ही आदित्य-पदवाच्य हैं । अध्वर्यु ब्राह्मणमें अदितिके आठ पुत्रोंकी परिगणना है—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य । इनमेंसे आदित्यको मार्तण्ड भी कहते हैं । इस आठवें पुत्रको ऊपरकी ओर उछाल दिया, पुनः प्राणियोंके जनन-मरणके लिये उसका आहरण कर लिया, इससे सिद्ध होता है कि प्राणियोंके जनन-मरण सूर्योदय-सूर्यास्तके अधीन हैं । प्राणियोंके जीवनहेतु आयुका आदान करनेसे आदित्य हैं ।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।
देवाँ उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत् पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत् पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ॥
(ऋ० १० । ७२ । ८-९)

सम्पूर्ण विश्वका प्रसव करनेवाले सर्व-प्रेरक सविता-देवता ही अपने नियमन—साधनोंसे, वृष्टि-प्रदानादि-उपायोंसे पृथ्वीको सुखसे अवस्थित रखते हैं तथा वे ही आलम्बनरहित प्रदेशमें द्युलोकको दृढ करते हैं, जिससे नीचे न गिरे । वे ही अन्तरिक्षगत होकर वायवीय पाशोंसे बँधे हुए मेघमय समुद्रको दुहते हैं—

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा-
दस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्ष-
मतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥
(ऋ० १० । १४९ । १)

वे सूर्य केवल सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक, प्रवर्तक, धारक, प्रेरकमात्र ही नहीं, अपितु आरोग्यकारक भी हैं । सूर्यकी उपासनासे दुःस्वप्नसे जनित अनिष्ट एवं नवग्रहजन्य पीडाका भी परिहार होता है एवं व्रतके विघातक राक्षसोंसे भी रक्षा करनेवाले सूर्य हैं । ऋग्वेदमें इसका ज्वलन्त प्रमाण है ।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो
जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुति-
मपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतम् ॥
(ऋ० १० । ३७ । ४-५)

इसी कारण पुराणमूर्धन्य मत्स्यमहापुराणमें कहा है कि—

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'

इस प्रकार वेदने भगवान् सूर्यको विविधरूपमें देखकर उनके स्वरूपका विशद विवेचन किया है । अस्तु ! भगवान् सूर्य हमारी बुद्धियोंको शुभ कर्मोंमें लगायें—

धियो यो नः प्रचोदयात् ।

श्रीसूर्यनारायणकी वन्दना

(पूज्यपाद योगिराज श्रीदेवरहवा बाबा)

सूर्य साक्षात् परमात्मस्वरूप हैं। शास्त्र एक कण्ठसे इनकी वन्दना, अर्चना (पूजा-पाठ) को मानवका परम कर्तव्य बतलाते हैं।

सूर्यसे ही सभी ऋतुएँ होती हैं। सूर्यको ही कालचक्रका प्रणेता और प्रणवरूप माना गया है। सूर्यसे ही सभी जीव उत्पन्न होते हैं। सभी योनियोंमें जो जीव हैं, उनका आविर्भाव, प्रेरणा-पोषण आदि सब सूर्यसे ही होते है और अन्तमें सभी जीव उन्हींमे विलीन हो जाते हैं। उनकी उपासना करनी चाहिये। उनका नित्य जपनीय गायत्री-मन्त्र यह है—

ॐ आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।

सूर्यका एक नाम आदित्य भी है। आदित्यसे अग्नि, जल, वायु, आकाश तथा भूमिकी उत्पत्ति हुई है। देवताओकी उत्पत्ति भी सूर्यसे ही मानी गयी है। इस समस्त ब्रह्माण्ड-मण्डलको अकेले सूर्य ही तपाते हैं; सूर्य आदित्य-ब्रह्म हैं। सूर्य ही हमारे शरीरमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदिके रूपमें व्याप्त हैं। हमारी पाँचो ज्ञानेन्द्रियो और पाँचों कर्मेन्द्रियोंको भी वे ही प्रभावित करनेवाले हैं। इस प्रकार सूर्यको सभी दृष्टियोसे बहुत महत्त्व प्राप्त है।

प्राणिमात्रके हेतु, सृष्टिकर्ता तथा प्रत्यक्ष देवता होनेके कारण वे सूर्य'ब्रह्म' हैं और सबके लिये उपास्य हैं। जप करनेके लिये सूर्यका एक विशेष अष्टाक्षर मन्त्र महत्त्वपूर्ण है—

ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्।

प्रतिदिन इस मन्त्रके जपसे महाव्याधिसे पीड़ित व्यक्ति मुक्त हो जाता है और वह सभी दोषोसे विरहित होकर अन्तमे भगवान्‌से जा मिलता है। अतएव ऐसे सर्वज्ञ सूर्यभगवान्‌को हम सभीका सादर नमस्कार है जो सदा कल्याण करनेवाले हैं।

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी एडवोकेट)

सवितासे अभ्यर्थना

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवता दनागसः॥

(—ऋ० वे० ४। ५४। ३, तै० स० ४। १। ११)

हे सविता! आपका जीवन दिव्य गुणोसे भरा हुआ है। हम अज्ञानवश या असावधानीके कारण आपके प्रति अपराध एवं श्रद्धा-निष्ठामें प्रमाद कर देते हैं। हमारे दुर्बल पुत्र-पौत्रादि अपराध कर देते हैं। फलतः उनके अपराधसे हम भी (विशेष) अपराधी हो जाते हैं। यही क्यों, हम अपनी चतुराई, ऐश्वर्य या पौरुषके मदसे अन्य देवो या मनुष्योके प्रति (भी) अपराध कर देते हैं। आप उन सब प्रकारके अपराधोंको क्षमा कर हमें सम्पूर्ण पापोसे मुक्त कर दीजिये। हमारी यही अभ्यर्थना है।

भगवान् विवस्वान्को उपदिष्ट कर्मयोग

(लेखक—श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

कर्मयोगमें दो शब्द हैं—कर्म और योग। कर्मका अर्थ है करना और योगका अर्थ है समता—**'समत्वं योग उच्यते'**[1] अर्थात् समतापूर्वक निष्काम भावसे शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण ही कर्मयोग कहलाता है। कर्मयोगमे निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग तथा फल और आसक्तिका त्याग करके विहित कर्मोंका आचरण करना चाहिये। भगवान्ने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
(गीता २। ४७)

'तेरा कर्म करनेमे ही अधिकार है, उसके फलोमे कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत बन तथा तेरी कर्म न करनेमे भी आसक्ति न हो।'

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर, पदार्थ, धन-सम्पति आदि जो कुछ भी हमारे पास है, वह सब-का-सब ससारसे, भगवान्से अथवा प्रकृतिसे मिला है। अतः 'अपना' और 'अपने लिये' न होकर संसारका एवं संसारके लिये ही है (अथवा भगवान्का और भगवान्के लिये अथवा प्रकृतिका एवं प्रकृतिके लिये है)—ऐसा मानते हुए निःस्वार्थभावसे दूसरोको सुख पहुँचाने (अथवा संसारकी सामग्रीको ससारकी ही सेवामे लगा देने) को ही कर्मयोग कहते हैं।

कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि (संसारकी मूलभूत) प्रकृति निरन्तर क्रियाशील है। अतः प्रकृतिके साथ सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी प्राणी क्रियारहित कैसे रह सकता है[2]। यद्यपि पशु, पक्षी तथा वृक्ष आदि योनियोंमें भी स्वाभाविक क्रियाएँ होती रहती हैं; परतु फल और आसक्तिका त्याग करके कर्तव्यबुद्धिसे कर्म करनेकी क्षमता उनमे नहीं है, केवल मनुष्ययोनिमे ही ऐसा ज्ञान सुलभ है। वस्तुतः मनुष्य-शरीरका निर्माण ही कर्मयोगके आचरणके लिये हुआ है और इसमें सम्पूर्ण सामग्री केवल कर्म करनेके लिये ही है। जैसा कि सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी प्रजाओंको उपदेश देते हुए ब्रह्माजीके शब्दोंमें श्रीभगवान् कहते हैं—

'अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्[3]।'
(गीता ३। १०)

'तुम यज्ञ (कर्तव्यकर्म)के द्वारा उन्नतिको प्राप्त करो, यह (कर्तव्यकर्म) तुम्हे कर्तव्यकर्म करनेकी सामग्री प्रदान करनेवाला हो।' मनुष्यको प्रत्येक कर्म कर्तव्यबुद्धिसे ही करना चाहिये (गीता १८। ९)। शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—केवल इस भावसे ममता, आसक्ति और कामनाका त्याग कर कर्म करनेसे वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते।

---

१. गीता २। ४८। २. वही ३। ५।

३. 'इष्टकामधुक्' का अर्थ है 'कर्तव्यकर्म करनेकी सामग्री प्रदान करनेवाला।' यहाँ यदि इष् धातुसे 'इष्ट' पदकी निष्पत्ति करेगे तो इसी श्लोकके पहिले उपक्रम (३। ९)से विरोध होगा; क्योंकि उसमे स्पष्ट कहा है कि कर्तव्यके लिये कर्म करनेके अतिरिक्त कर्म करनेसे बन्धन होगा। फिर अपनी बातको ब्रह्माजीके वचनोसे पुष्ट करने हेतु यहाँ कर्तव्यकर्म करनेसे 'इच्छित भोग-पदार्थकी प्राप्ति करानेवाला' यह अर्थ सगत प्रतीत नहीं होता एव इसी प्रसङ्गके उपसहारमे 'भुञ्जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्' (३। १३)से भी विरोध होगा। अतएव 'इष्ट' पद देवपूजा-सगतिकरणार्थक 'यज्' धातुसे निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—कर्तव्यकर्मसे भावित। यज्+क्त, 'वचिस्वपि०'—से संप्रसारण, 'व्रश्चभ्रस्ज०'—से 'ज्' को 'ष्' ततः ष्टुत्व—इस प्रकार 'इष्ट' शब्द बना है। इसी प्रकार ३। १२ मे भी इष्ट शब्द 'यज्' धातुसे ही निष्पन्न समझना चाहिये। "काम्यन्त इति कामाः"। इस व्युत्पत्तिसे काम शब्दका अर्थ पदार्थ एवं सामग्री है।

कर्मयोगका ठीक-ठीक पालन करनेसे ज्ञान और भक्तिकी प्राप्ति स्वतः हो जाती है। कर्मयोगका पालन करनेसे अपना ही नहीं, अपितु संसारका भी परम हित होता है। दूसरे लोग देखें या न देखें, समझें या न समझें, अपने कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन करनेसे दूसरे लोगोंको कर्तव्य-पालनकी प्रेरणा स्वतः मिलती है।

दूसरोंकी सेवामें प्रीतिकी मुख्यता होनेके कारण कर्मयोगमें निःसंदेह भोक्तापनका नाश हो जाता है। इसके साथ ही व्यक्ति तथा पदार्थ आदिसे अपने लिये सुखकी चाह एवं आशा न होनेके कारण एवं व्यक्ति आदिके संगठनसे होनेवाली इन क्रियाओंका भी अपने साथ कोई सम्बन्ध न होनेसे कर्तापनका भी नाश स्वतः हो जाता है। कर्मयोगी क्रिया करते समय ही अपनेको कर्ता मानता है। भोक्तापन और कर्तापन एक दूसरेपर ही अवलम्बित हैं। जब भोक्तापन मिट जायगा तो कर्तापनका अस्तित्व ही नहीं रहेगा और कर्तापन यदि नहीं है तो भोक्तापनका भी कोई आधार नहीं। इन दोनोंमे भी भोक्तापनका त्याग सुगम है।

भोगोंमे रचे-पचे होनेके कारण उनके संयोगजन्य सुखोंमें आसक्तिसे भले ही यह कठिन प्रतीत होता हो, किंतु जो परिवार तथा धन आदिके बीचमे फँसा हुआ भी अपने उद्धारकी इच्छा रखता है, उसके लिये कर्मयोगकी प्रणाली अधिक सुगम है। अतः भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें 'कर्मयोगस्तु कामिनाम्' (११। २०। ७) कहा है।

वस्तुतः मानव-शरीर कर्मयोग-पद्धतिसे मोक्षके लिये ही मिला है। चाहे किसी मार्गका साधक क्यों न हो, किंतु उसे कर्मयोगकी प्रणालीको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

यद्यपि कल्याण-प्राप्तिके लिये श्रीभगवान्ने गीतामें दो निष्ठाएँ बतायी है—(१) ज्ञानयोग एवं (२) कर्मयोग। इन दोनोंमें ज्ञानकी प्राप्तिके अनेक उपायोंमें शास्त्रीय पद्धतिसे ज्ञानार्जनकी प्रक्रिया भी गीतामें वर्णित है[1]। इस शास्त्रीय पद्धतिसे अर्जित फल-(तत्त्व) ज्ञानकी महिमा श्रीभगवान्ने कही है[2], तथापि अन्तमें यह बताया है कि वही तत्त्वज्ञान कर्मयोगकी प्रणालीसे निश्चय ही स्वयं अपने-आप प्राप्त कर लेता है—'तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति' (४।३८) अर्थात् ज्ञानयोग गुरुपरम्परा (गीता ४। ३४) एवं कर्मयोगके अधीन है और कठिन भी है[3] जब कि कर्मयोगकी प्रणालीमे गुरुकी अनिवार्यता नहीं है,[4] करनेमें सुगम है,[5] फल भी शीघ्र प्राप्त होता है[6] तथा कर्मयोगका

१–तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (गीता ४। ३४)

२–यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव। येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥ (वही ४। ३५–३७)

३–संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः। योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥ (वही ५। ६)

४–तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ (वही ४। ३८)

५–ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति। निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥ (वही ५। ३)

६–योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥ (वही ५। ६)

विवस्वान् (सूर्य) और भगवान् नारायण

कर्मयोगका प्रथम उपदेश

अनुष्ठान करनेपर वह अवश्य ही 'फलप्राप्तिवाला' हो जाता है—'कालेनात्मनि विन्दति' (४ । ३८)

श्रीभगवान्ने सर्वसाक्षी सूर्यको सृष्टिके प्रारम्भमें कर्मयोगका उपदेश इसलिये दिया था कि जैसे सूर्यके प्रकाशमें अनेक कर्म होते हैं; किंतु वे उन कर्मोंसे बँध नहीं सकते; क्योंकि सूर्यके प्रकाशमें भले ही वे कर्म हों; परंतु सूर्यका उन कर्मोंसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं, वैसे ही चेतनकी साक्षीमें सम्पूर्ण कर्म होनेसे वे (कर्म) बन्धनकारक नहीं होते; हाँ, उनसे यदि सुख-चाहका थोडा-सा भी सम्बन्ध होगा तो वह अवश्य ही बन्धनकारक हो जायगा । जैसे सूर्यमें कर्मोंका भोक्तापन नहीं है, वैसे ही कर्तापन भी नहीं है । साथ-ही-साथ नियत कर्मका किसी भी अवस्थामें त्याग न करना तथा नियत समयपर कार्यके लिये तत्पर रहना भी सूर्यकी अपनी विलक्षणता है; जैसे—

'यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।'
(गीता १३ । ३३)

कर्मयोगीको भी इसी प्रकार अपने नियत कर्मोंको नियत समयपर करनेके लिये तत्पर रहना चाहिये । इसलिये कर्मयोगका वास्तविक अधिकारी सूर्यको जानकर ही श्रीभगवान्ने उनको ही सर्वप्रथम कर्मयोगका उपदेश दिया था और उसकी परम्पराका उल्लेख करते हुए इसके विषयको उत्तम रहस्य कहा है—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥
(गीता ४ । १—३)

'मैंने इस अविनाशी योगको विवस्वान् (सूर्य) से कहा था । सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे कहा और मनुने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुसे कहा । हे परंतप अर्जुन ! इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको राजर्षियोंने जाना, किंतु उसके बाद वह योग बहुत कालसे इस पृथ्वीलोकमें लुप्तप्राय हो गया । तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझे कहा है, क्योंकि यह बडा ही उत्तम रहस्य है ।'

सृष्टिमें जो सर्वप्रथम उत्पन्न होता है, उसे ही (कर्तव्यका) उपदेश दिया जाता है । उपदेश देनेका तात्पर्य है—कर्तव्यका ज्ञान कराना । सृष्टिकालमें सर्वप्रथम सूर्यकी उत्पत्ति हुई और फिर सूर्यसे समस्त लोक उत्पन्न हुए । हमारे शास्त्रोंमें सूर्यको 'सविता' कहा गया है, जिसका अर्थ है—उत्पन्न करनेवाला ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥
(मनु० ३ । ७६)

'अग्निमें सम्यक् प्रकारसे समर्पित आहुति सूर्यतक पहुँचती है । सूर्यसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं ।' पाश्चात्त्य विज्ञान भी सूर्यको सम्पूर्ण सृष्टिका कारण मानता है । सबको उत्पन्न करनेवाले सूर्यको सर्वप्रथम कर्मयोगका उपदेश देनेका अभिप्राय उनसे उत्पन्न सम्पूर्ण सृष्टिको परम्परासे कर्मयोग सुलभ करा देना था ।

१–'कालेन' इस शब्दमें 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (पा० सू० २ । ३ । ५) से प्राप्त द्वितीया विभक्तिका प्रतिषेध कर 'अपवर्गे तृतीया' (पा० सू० २ । ३ । ६) इस सूत्रसे फल-प्राप्तिके अर्थमें तृतीया विभक्ति हुई है । यद्यपि उक्त सूत्रके द्वारा कालवाची शब्दोंमें तृतीयाका विधान है, तथापि कालातीतके व्यपदेशके लिये तो 'काल' एवं 'नचिर' आदि शब्दोंका ही प्रयोग होता है । अतः 'नचिरेण' (५ । ६) एवं 'कालेन' (४ । ३८) से यह ध्वनित होता है कि कर्मयोगसे शीघ्र तथा अवश्य फलकी प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं ।

२ विशेषेण वस्ते आच्छादयति इति विवस्वान् । विपूर्वक 'वस्' धातुसे क्विप्+मतुप् आदि प्रक्रियासे यह शब्द सिद्ध होता है ।

भगवान्के द्वारा दिये गये कर्मयोगके उपदेशका सूर्यने पालन किया। फलस्वरूप यह कर्मयोग परम्पराको प्राप्त होकर कई पीढ़ियोंतक चलता रहा। जनक आदि राजाओंने तथा अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा एवं ऋषि-महर्षियोंने इस कर्मयोगका आचरण करके परम सिद्धि प्राप्त की। बहुत काल बीतनेपर जब वह योग लुप्तप्राय हो गया, तब पुनः भगवान्ने अर्जुनको उसका उपदेश दिया।

सूर्य सम्पूर्ण जगत्के नेत्र हैं, उनसे ही सबको ज्ञान प्राप्त होता है एवं उनके उदय होनेपर समस्त प्राणी जाग्रत् हो जाते हैं और अपने-अपने कर्मोंमें लग जाते हैं। सूर्यसे ही मनुष्योंमें कर्तव्यपरायणता आती है। इसी अभिप्रायसे भगवान् सूर्यको सम्पूर्ण जगत्का आत्मा कहा गया है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**। अतएव सूर्यको जो उपदेश प्राप्त होगा, वह सम्पूर्ण प्राणियोंको भी स्वतः प्राप्त हो जायगा। इसीलिये भगवान्ने सर्वप्रथम सूर्यको ही उपदेश दिया।

सम्पूर्ण प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं और अन्नकी उत्पत्ति वर्षासे होती है। वर्षाके अधिष्ठातृदेवता सूर्य हैं। वे ही अपनी किरणोंसे जलका आकर्षण कर उसे वर्षाके रूपमें पृथ्वीपर बरसाते हैं। इसीलिये सम्पूर्ण प्राणियोंका जीवन भगवान् सूर्यपर ही आधृत है। सूर्यके आधारपर ही सम्पूर्ण सृष्टि-चक्र चल रहा है *। सूर्यको उपदेश मिलनेके पश्चात् उनकी कृपासे संसारको शिक्षा मिली है। जैसे पृथ्वीसे लिये गये जलको प्राणियोंके हितार्थ सूर्य पुनः पृथ्वीपर ही बरसा देते हैं, वैसे ही राजाओंने भी प्रजासे (कर आदिके रूपमें) लिये गये धनको प्रजाके ही हितमें लगा देनेकी उनसे शिक्षा ग्रहण की †।

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, अन्य लोग भी वैसा ही आचरण करने लगते हैं। अतएव राजा जैसा आचरण करता है, प्रजा भी वैसा ही आचरण करने लगती है—**'यथा राजा तथा प्रजा'**। राजाको भगवान्की विभूति कहा गया है—**'नराणां च नराधिपम्'**।‡ राजाओंमें सर्वप्रथम सूर्यका स्थान हुआ। सूर्य तथा भविष्यमें होनेवाले अन्य राजाओंने उस कर्मयोगका आचरण किया। वे राजा लोग राज्यके भोगोंमें आसक्त हुए बिना सुचारुरूपसे राज्यका संचालन करते थे।

---

* महाभारतमें सूर्यके प्रति कहा गया है—

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्। त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्॥
त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्। अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम्॥
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते। त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया॥

(वनपर्व ३। ३६—३८)

'सूर्यदेव! आप सम्पूर्ण जगत्के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। आप ही सब जीवोंके उत्पत्ति-स्थान और कर्मानुष्ठानमें लगे हुए पुरुषोंके सदाचार हैं।

सम्पूर्ण सांख्ययोगियोंके प्राप्तव्य स्थान आप ही हैं। आप ही सब कर्मयोगियोंके आश्रय हैं। आप ही मोक्षके उन्मुक्तद्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं।

आप ही सम्पूर्ण जगत्को धारण करते हैं। आपसे ही यह प्रकाशित होता है। आप ही इसे पवित्र करते हैं और आपके ही द्वारा निःस्वार्थभावसे उसका पालन किया जाता है।'

† महाराज दिलीपके सन्दर्भमें महाकवि कालिदासने लिखा है—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

(रघुवंश १। १८)

'जैसे सूर्य सहस्रगुना बरसानेके लिये ही पृथ्वीके जलका आकर्षण करते हैं, वैसे ही (सूर्यवंशी) राजा भी अपनी प्रजाके हितके लिये ही प्रजासे कर लिया करते थे।'

‡ गीता १०। ३७

प्रजाके हितमे उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती थी। कर्मयोगका पालन करनेके कारण राजाओंमें इतना विलक्षण ज्ञान होता था कि बड़े-बड़े ऋषि भी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उनके पास जाया करते थे। श्रीवेदव्यास-जीके पुत्र शुकदेवजी भी ज्ञानप्राप्तिके लिये राजर्षि जनकके पास गये थे। छान्दोग्योपनिषद्के पाँचवें अध्यायमें भी आता है कि ब्रह्मविद्या सीखनेके लिये कई ऋषि एक साथ महाराज अश्वपतिके पास गये थे।

शङ्का—जिसे ज्ञान नहीं होता, उसीको उपदेश दिया जाता है। सूर्य तो स्वयं ज्ञानस्वरूप भगवान् ही हैं; फिर उन्हे उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता थी ?

समाधान—जिस प्रकार अर्जुन महान् ज्ञानी नर-ऋषिके अवतार थे; परतु लोकसंग्रहके लिये उन्हे भी उपदेश देनेकी आवश्यकता हुई। ठीक उसी प्रकार भगवान्ने सूर्यको उपदेश दिया—जिसके फलस्वरूप ससारका महान् उपकार हुआ और हो रहा है।

वास्तवमें नारायणके रूपमें उपदेश देना और सूर्यके रूपमे उपदेश ग्रहण करना जगन्नाट्यसूत्रधार भगवान्की एक लीला ही समझनी चाहिये, जो कि ससारके हितके लिये बहुत आवश्यक थी।

भगवान् श्रीसूर्यको नित्यप्रति जल दिया करो

(काशीके सिद्ध संत ब्रह्मलीन पूज्य श्रीहरिहर बाबाजी महाराजके सदुपदेश)

श्रीविश्वनाथपुरी काशीमे ब्रह्मलीन प्रातःस्मरणीय सिद्धसत श्रीहरिहर बाबाजी अस्सी घाटपर पतितपावनी भगवती भागीरथीजीमे नौकापर दिगम्बररूपमे रहा करते थे। बडे-बडे राजा-महाराजा, विद्वान्, संत-महात्मा आपके दर्शनार्थ आया करते थे। पूज्य महामना मालवीयजी महाराज तो आपको साक्षात् शंकरस्वरूप ही मानकर सदा श्रद्धासे आपके श्रीचरणोमें नतमस्तक हुआ करते थे। आपने बहुत कालतक श्रीगङ्गाजीमे खडे होकर भगवान् श्रीसूर्यकी ओर मुख करके घोर अमोघ तपस्या की थी। आपके दर्शनार्थ जो भी जाता था, उसे आप (१) श्रीरामनाम जपने और (२) भगवान् श्रीसूर्यको जल देनेका उपदेश दिया करते थे। सतस्वभाववश कृपापूर्वक आपने हजारों मनुष्योको निष्ठासे सूर्याराधना एव सूर्यके रूपमें परमात्माकी भक्ति करना सिखाया था। आपका उपदेश होता था—नित्य-प्रति श्रीसूर्यको जल दिया करो। प्रश्नोत्तर-क्रममे उनके उपदेशके दो प्रसग दिये जा रहे हैं—

(१) **प्रश्न**—पूज्यपाद बाबाजी ! हमारा कल्याण कैसे होगा ?

पूज्य बाबा—तुम किस जातिके हो ?

महाराजजी—मै तो जातिका वैश्य हूँ।

पूज्य बाबा—तुम नित्यप्रति स्नान करके लोटेमें जल लेकर भगवान् श्रीसूर्यनारायणको जल दिया करो और भगवान् सूर्यको नित्यप्रति भक्तिभावसहित हाथ जोडकर प्रणाम किया करो। कम-से-कम एक माला रामनाम जपा करो, इसके साथ ही अपना जीवन धर्म-मय बनाओ। यही तुम्हारे कल्याणका मार्ग है।

(२) **एक स्त्री**—महाराजजी ! हम स्त्रियोंके कल्याणका साधन क्या है ?

पूज्य बाबा—तुम अपने पूज्य पतिकी श्रद्धासे सेवा किया करो। साथ-साथ तुम भी भगवान् सूर्यदेवको नित्यप्रति जलका अर्घ्य दिया करो। मालापर 'राम-राम' का जप, जब भी समय मिले, अवश्य कर लिया करो। ऐसा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान्की कृपा-से निश्चय ही आत्मकल्याण होगा।

प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी

ऋग्वेदीय सूर्यसूक्त

(—अनन्तश्रीस्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

'प्रकाशमान रश्मियोंका समूह अथवा राशि-राशि देवगण सूर्यमण्डलके रूपमे उदित हो रहे है । यह मित्र, वरुण, अग्नि और सम्पूर्ण विश्वके प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र हैं । इन्होंने उदित होकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्षको अपने देदीप्यमान तेजसे सर्वतः परिपूर्ण कर दिया है । इस मण्डलमें जो सूर्य हैं, वह अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रेरक परमात्मा हैं तथा जङ्गम एव स्थावर सृष्टिके आत्मा हैं ।'

व्याख्या—

चित्रम्—इस शब्दका अर्थ सायणने आश्चर्य कर दिया है । स्कन्दस्वामीने 'विचित्र-विचित्र' और पूज्य वेङ्कटनाथने चयनीय अर्थात् चयन करने योग्य कहा है । मुद्गल सायणसे सहमत है । चयनीय अर्थ वैज्ञानिक पक्षका है । किरणोके चयनसे नाना प्रकारके व्यावहारिक कार्य सिद्ध हो सकते है । ऊर्जा-चयन उसी सन्दर्भका कार्य है ।

देवानाम्—क्षीरस्वामी, माधव आदिके अनुरूपमे 'दिवु' धातु अनेक अर्थोंमे प्रसिद्ध है--क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गति; यथायोग्य सभी अर्थोंमे जोड सकते हैं ।

सूर्य आत्मा—सूर्य सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमात्मक कार्यवर्गके कारण है । कार्य कारणसे अतिरिक्त नहीं होता (ब्रह्मसूत्र २ । १ । १४) । चराचर जगत्का जीवनदाता होनेसे सूर्यको आत्मा कहा है । सूर्योदय होनेपर निश्चेष्ट जगत् चेतनयुक्त— सचेष्ट हो जाता है। सूर्य सबका प्राण अपने साथ लेकर आते हैं (तैत्तिरीय आ० १ । १४ । १ ।)।

आप्राः—यह 'प्रा पूरणे' धातुका लङ्लकारका रूप है । अर्थ है—भर देता है, तर कर देना है ।

जो सबका आत्मा है, वही सब शरीरमें फुरनेवाले 'मैं-मैं'का एक आत्मा है । अर्थात् सूर्यान्तर्यामी और अन्तःकरणान्तर्यामी चैतन्य उपाधिनिर्मुक्त दृष्टिसे एक ही हैं। सूर्य शब्दका मूल है 'सृ' धातु, जिसका अर्थ गति है अथवा 'षु' धातु जिसका अर्थ प्रेरणा है—'**धियो यो नः प्रचोदयात्**' तात्पर्य यह कि प्रेरक परमात्मा ही सूर्य है ।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥

सूर्य गुणमयी एवं प्रकाशमान उषादेवीके पीछे-पीछे चलते हैं—जैसे कोई मनुष्य सर्वाङ्ग-सुन्दरी युवतीका अनुगमन करे ! जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है, तब प्रकाशके देवता सूर्यकी आराधना करनेके लिये कर्मनिष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य-कर्मका सम्पादन करते हैं । सूर्य कल्याणरूप है और उनकी आराधनासे कर्तव्य-कर्मके पालनसे कल्याणकी प्राप्ति होती है ।

व्याख्या—

देवीम्—दानादि-गुणयुक्त ।

युगानि—'युग' शब्द कालका वाचक है । उससे तत्तत्-कालके कर्तव्य लक्षित होते हैं; जैसे—दर्शपूर्णमास, अग्निहोत्र आदि । '**युग**' शब्दका दूसरा अर्थ है—हलके या रथके अवयव (जुए) जिन्हे बैलके कन्धेपर रखते हैं । प्रातःकाल किसान लोग जुए ले-लेकर खेती करनेके लिये घरसे निकलते है । अभिप्राय यह है कि अन्तर्यामीकी प्रेरणासे सूर्यके प्रकाशमें लोग अपने-

अपने कर्तव्यका वहन करते हैं। प्रेरणा और ज्ञानके विना कर्तव्य-पालनमे प्रवृत्ति नहीं होती। किसी-किसीके मतमे युग शब्दका अर्थ युग्म—जोड़ा अर्थात् पति-पत्नी है। इस पक्षमे अर्थ होगा—दोनो मिलकर पूरी शक्तिसे कर्तव्य-कर्मका पालन करते हैं।

मर्त्य—इस शब्दका अर्थ है—मरणशील मनुष्य।

भद्रम्—'भवद् रमयति' अर्थात् जो होनेके साथ ही कल्याणकारी हो। तात्पर्य यह है कि मनुष्यको अन्तर्यामीकी प्रेरणासे कर्म करना चाहिये, अज्ञान—अन्धकारमे नहीं। अपना उद्देश्य मङ्गल हो, कर्म मङ्गलमय हो, मङ्गलमयकी पूजा हो।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः
परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥

'सूर्यका यह रश्मि-मण्डल अश्वके समान उन्हे सर्वत्र पहुँचानेवाला चित्र-विचित्र एव कल्याणरूप है। यह प्रतिदिन अपने पथपर ही चलता है और अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सबको नमता है, नमनकी प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोकके ऊपर निवास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वीका परिभ्रमण कर लेता है।'

विवेचन—

इस मन्त्रमे रश्मि-मण्डलके व्याजसे मानव-समाजके उन्नति-पथका निर्देश है। मनमे कल्याण-भावना हो। जीवन गतिशील हो। प्रकाशमयी दृष्टि हो। परिस्थितिका ध्यान हो। परम्परासे अनुभूत हो। जनताकी अनुकूलता हो, हृदयमें विनय हो। लोकदृष्टिसे प्रशस्त हो। ऐसा चरित्र उन्नतिकी ओर त्वरित गतिसे बढता है और सारे विश्वको व्याप्त कर लेता है।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था-
दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥

'सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्यका यह ईश्वरत्व और महत्त्व है कि वे प्रारम्भ किये हुए, किंतु अपरिसमाप्त कृत्यादि कर्मको ज्यो-का-त्यो छोड़कर अस्ताचल जाते समय अपनी किरणोको इस लोकसे अपने आपमे समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने रसाकर्षी किरणों और घोड़ोंको एक स्थानसे खींचकर दूसरे स्थानपर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अन्धकारके ढक्कनसे सबको ढक देती है।'

विवेचन—

सूर्यकी स्वतन्त्रता ही ईश्वरता है। वे कर्मासक्त नहीं है। स्वतन्त्रतासे कर्म पूरा होनेके पहले ही उसे छोड देते है। कर्म-पूर्तिकी अपेक्षा या प्रतीक्षा नहीं करते। ठीक इसी प्रकार मनुष्यको चाहिये कि वह फलासक्तिसे तो दूर रहे ही, कर्मासक्तिसे भी बचे। आजतक सृष्टिके कर्म किसने पूरे किये है? केवल कालका पेट भरते हुए अपने कर्तव्य करते चलना चाहिये। कर्तव्य-कर्म छोड़ना नहीं चाहिये।

सूर्यकी महिमा अथवा माहात्म्य यह है कि इन फैली हुई किरणोको समेट लेना बडे-बडे देवताओके लिये भी महान् प्रयत्न और लम्बे समयके द्वारा भी साध्य नहीं है, किंतु सूर्य उन्हें बिना परिश्रमके तत्काल उपसंहृत कर लेते है। मनुष्यको अपने कर्मोंका जाल उतना ही फैलाना चाहिये, जितना वह अनायास और तत्काल समेट सकता हो; अन्यथा वह अपने फैलाये जालमे स्वयं फॅस जायगा। सूर्यका यह स्वातन्त्र्य और सामर्थ्य ही उनका देवत्व अथवा ईश्वरत्व है।

सूर्यकी उपस्थिति ही ज्ञान-प्रकाशका विस्तार करती है; दिन होता है। लोग कर्म करते हैं। उनकी अनुपस्थिति अज्ञानान्धकार है, उसमे लोग अपने कर्तव्य-कर्म छोड देते हैं। वही रात्रि है।

व्याख्या—

कर्तुः—यह कर्मका वाचक है । **सं जभार**—इसमे 'ह' का 'भ' हो गया है । **सधस्थ**—सह स्थान अथवा रथ । **सिमः**—सर्व ।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः
कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥

'प्रेरक सूर्य प्रातःकाल मित्र, वरुण और समग्र सृष्टिको सामनेसे प्रकाशित करनेके लिये प्राचीके आकाशीय क्षितिजमें अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं । इनकी रसभोजी रश्मियाँ अथवा हरे घोडे बलशाली रात्रिकालीन अन्धकारके निवारणमे समर्थ विलक्षण तेज धारण करते है । उन्हींके अन्यत्र जानेसे रात्रिमें काले अन्धकारकी सृष्टि होती है ।'

विवेचन—

दिनका देवता मित्र है, रात्रिका वरुण । इनसे सभी जगत् उपलक्षित होता है । सूर्य दोनों देवताओ तथा जगत्के प्रकाशक एवं प्रेरक हैं । दिन और रात—दोनोका विभाग सूर्यसे ही होता है ।

पाजः—यह रक्षणार्थक 'पा' धातुसे बना रूप है । इसका अर्थ है बल । इसका कभी अन्त नहीं होता । सम्पूर्ण जगत्में व्यापक और देदीप्यमान है । यह बल ही प्रकाशका आनयन और अपनयन करता है । यहाँ यह कहा गया है कि सूर्यकी किरणोंमे ही इतना बल है कि सूर्यकी महिमाका गान कोई नहीं कर सकता ।

स्कन्द स्वामीने कहा है कि जब सूर्य मेरुसे व्यवहित होते हैं तब तमकी सृष्टि करते हैं, इसलिये देशान्तरस्थ सूर्यका ही रूप तम है ।

सूर्यका भौतिक रूप सूर्यमण्डल है । आधिदैविक रूप तदन्तर्यामी पुरुष है । आध्यात्मिक पुरुष नेत्रस्थ ज्योतिर्मय द्रष्टा है । नामरूपात्मक उपाधिके पृथक्करणसे सूर्य ब्रह्म ही है ।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः
पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः
सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥
(—ऋग्वेद सं० १ । ११५ । १–६)

'हे प्रकाशमान सूर्यरश्मियो ! आज सूर्योदयके समय इधर-उधर बिखरकर तुम लोग हमे पापोंसे निकालकर बचा लो । न केवल पापसे ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, गर्हणीय है, दुःख-दारिद्रय हैं, सबसे हमारी रक्षा करो । जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोकके अधिष्ठातृ देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करे, वे भी हमारी रक्षा करें ।'

विवेचन—

प्रातःकालीन प्रार्थनामें रात्रि-सचित समग्र शक्तियोंका सन्निवेश हो जाता है । प्रार्थनामें बल और दृढ़ता आ जाती है । वह जीवन-निर्माणके लिये एक सुनहरा अवसर है । प्रार्थनासे भावना पवित्र होती है ।

'मित्र' मृत्युसे बचानेवाला अभिमानी देवता है और वरुण अनिष्टोंका निवारक रात्रि-अभिमानी । अदिति अखण्डनीय अथवा उदीन देवमाता हैं । सिन्धु स्यन्दनशील जलका अभिमानी देवता है और पृथिवी भूलोककी अधिष्ठातृ देवता है, द्यौ द्युलोकका देवता है ।

इन सब देवताओसे प्रार्थना करनेका अर्थ है—हमारे जीवनमे पापकर्म, दुःख-दारिद्रय और गर्हणीयके लिये कोई स्थान न रह जाय और हम शुद्ध सच्चरित्र, कर्मण्य एवं अभ्युदयशील होकर ज्योतिर्मय ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके अधिकारी हो जायँ ।

श्रीसूर्यदेवका विवेचन

(श्रीपीताम्बरापीठस्थ राष्ट्रगुरु श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज, दतिया)

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
(–ऋग्वेद १ । ३५ । २)

यह वैदिक मन्त्र भगवान् सूर्यकी पूजामे विनियुक्त है । इसमें उनके धाम एवं स्थितिका वर्णन है । कृष्णवर्ण रजोगुणके द्वारा वे संसारमे अमृत और मरण दोनोके नियामक हैं । हिरण्यरूप रथके ऊपर बैठे हुए ऐसे सविता (देव) सब जगत्के प्रेक्षक एवं प्रेरक हैं । चौदह भुवनोको देखते हुए वे अपना व्यवहार-कार्य कर रहे हैं। विद्वानोकी मान्यता है कि कालका नियमन चन्द्र और सूर्य दोनोके द्वारा हो रहा है । सूर्य दिनके स्वामी तथा चन्द्रमा रात्रि–विशेषकर तिथि-नक्षत्रोके स्वामी हैं । तिथियॉं सोलह हैं, ये ही चन्द्रमाकी षोडश कलाएँ है । सूर्यकी द्वादश कलाएँ है, जिनसे सौरपथके बारह मास निर्मित होते हैं । प्रत्येक मासमे कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष आते है । स्वरोदयशास्त्रमे भी कृष्णपक्ष सूर्यका और शुक्ल-पक्ष चन्द्रमाका माना गया है । मन्त्रमे जो **'आकृष्णेन'** पद आया है, उससे यह बात स्पष्ट होती है। योगशास्त्रमें इडा-पिङ्गला जो दो नाडियाँ है, उनमें इडा चन्द्रमाकी तथा पिङ्गला सूर्यकी नाड़ी मानी गयी है । नियमानुसार इन्हीं दो नाडियोमे पॉचों तत्त्वोका प्रवाह होता है । आनन्द और क्रियाके अधिष्ठान चन्द्र हैं । ज्ञानके अधिष्ठान सूर्य है । इन्हीं सूर्यके ध्यानमे—

आदित्यं सर्वकर्त्तारं कलाद्वादशसंयुतम् ।
पद्महस्तद्वयं वन्दे सर्वलोकैकभास्करम् ॥

—इत्यादि श्लोक कहे गये है, जो मन्त्रार्थको स्पष्ट करते हैं । इसीलिये महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनके विभूति-पाद, २६में–**'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'** सूर्यमे संयम करनेसे भुवनोका ज्ञान होता है—कहा है । यह मन्त्रमे आये—**'भुवनानि पश्यन्'** पदको स्पष्ट करता है । सत्ताईस नक्षत्र, बारह राशियॉं और नवग्रह —ये सब काल-तत्त्वके सूचक हैं । इनमे सूर्य प्रधान हैं। कालतत्त्व इन्हींके द्वारा नियमन करता है । भगवान् सूर्यके दैविक पक्षका यह परिचय है ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च—सम्पूर्ण चराचर जगत्की आत्मा सूर्य है । आध्यात्मिक पक्षमें जिसे साधना-मार्गमे परालिङ्ग कहते हैं, शिवका सर्वोत्कृष्ट रूप है । इसमें शिव और विष्णुका अभेद रूप है । इसीको उपनिषदो तथा पुराणोमे विष्णुका परम पद कहा है–**'तद् विष्णोः परमं पदम् ।'**

जब वही परमतत्त्व भक्तोकी रक्षा, धर्मकी स्थापना और दुष्टोके दमनार्थ चन्द्रमण्डलसे आविर्भूत होता है, तब उसे श्रीकृष्णचन्द्र कहते है । सूर्यमण्डलसे प्रकट होनेवाला यही परम तत्त्व श्रीरामचन्द्र हैं । तन्त्रसाधनामे ऐसा माना जाता है कि चन्द्रमण्डलसे आविर्भूत होनेवाला परमतत्त्व आनन्द, भैरव है, सूर्यमण्डलसे प्रकट होनेवाले शिवके द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग है, अग्निमण्डलकी सप्त जिह्वाएँ हैं । इसका मुण्डकोपनिषद्मे इस प्रकार वर्णन है—

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
विस्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वा ॥
(२ । ४)

इनसे प्रकट होनेवाले सप्त भैरव हैं, जिनके नाम इस प्रकार है—मन्थानभैरव, फट्कारभैरव, षट्चक्र-भैरव, एकात्मभैरव, हविर्भक्ष्यभैरव, चण्डभैरव और भ्रमरभास्करभैरव ।

महात्मा तुलसीदासने रामायणमें श्रीरामजी एवं शिवजीका अभेदसम्बन्ध प्रतिपादन किया है । इसका

पुराणोंमें भी स्पष्टरूपसे वर्णन आया है। मन्त्रमें आये अमृतपदसे उक्त आध्यात्मिक स्वरूप और मर्त्यपदसे संसारका जीवन-मरण स्वभावतः स्पष्ट है। तान्त्रिक साधनामें इसी परमतत्त्वको इस प्रकार बताया गया है—

चित्रभानुशशिभानुपूर्वकाः
त्रित्रिकेण नियतेषु वस्तुषु।
तत्तदात्मकतया विमर्शनं
तत्समष्टिगुरुपादुकाजपः॥
(चिद्विलास २)

अग्नि, चन्द्र, सूर्य ये ही त्रिबिन्दु प्रत्येक तत्त्व एवं पदार्थमें विद्यमान हैं। इन तीनोंका समष्टिरूप ही परब्रह्म-स्वरूप गुरुका स्मरण है। चन्द्रबिन्दुसे श्रीकृष्ण, सूर्य-बिन्दुसे श्रीराम तथा अग्निबिन्दुसे श्रीपरशुराम-अवतार माने गये हैं। तीनोंकी एकता उस परमतत्त्वमें बतायी गयी है। इनका आराधन करनेसे जीवका सर्वप्रकारका कल्याण होता है। शब्दब्रह्मका आविर्भाव भी उक्त तीनों मण्डलोंसे हुआ है। चन्द्रमण्डलसे षोडश स्वर, सूर्यमण्डलसे चौबीस व्यञ्जन तथा अग्निमण्डलसे आठ वर्ण-तक आविर्भूत हुए हैं। म-वर्ण त्रिन्दुस्थानीय है। इसी शब्दब्रह्मसे समस्त व्यावहारिक ज्ञान होता है।

गीता (१५।१२)में भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

'जो चन्द्र, सूर्य और अग्निमें तेज है, वह मैं हूँ। वह मेरा ही स्वरूप है।' (वस्तुतः सभी तेजस्वी पदार्थ उसीके तेजसे अनुप्राणित हैं।)

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' (म० पु०) मानसिक और बाह्य दोनों रोगोंकी निवृत्ति भगवान् सूर्यकी उपासनासे हो जाती है। और भी सूर्यभगवान्‌के अनेक रहस्य हैं, जो साधना करनेवालोंको व्यक्त हो जाते हैं। अतः सूर्याराधन आवश्यक कर्त्तव्य है।

प्रभाकर नमोऽस्तु ते

[श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकम्]

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर। दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥ १॥
सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम्। श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ २॥
लोहितं रथमारूढं सर्वलोकपितामहम्। महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ३॥
त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरम्। महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ४॥
बृंहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च। प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ५॥
बन्धूकपुष्पसंकाशं हारकुण्डलभूषितम्। एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ६॥
तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजःप्रदीपनम्। महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ७॥
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञानमोक्षदम्। महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्॥ ८॥

इति श्रीशिवप्रोक्तं सूर्याष्टकं सम्पूर्णम्।

हे आदिदेव भास्कर! आपको प्रणाम है। हे दिवाकर! आपको नमस्कार है। हे प्रभाकर! आपको प्रणाम है, आप मुझपर प्रसन्न हों॥ १॥ सात घोड़ोंवाले रथपर आरूढ़, हाथमें श्वेत कमल धारण किये हुए, प्रचण्ड तेजस्वी कश्यपकुमार सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥ लोहित वर्णके रथपर आरूढ सर्वलोकपितामह महापापहारी श्रीसूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥ जो त्रिगुणमय-ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप हैं, उन महापापहारी महान् वीर श्रीसूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४॥ जो बढ़े हुए तेजके पुञ्ज और वायु तथा आकाशके स्वरूप हैं, उन समस्त लोकोंके अधिपति भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ५॥ जो बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पके समान रक्तवर्ण हैं और हार तथा कुण्डलोंसे विभूषित हैं, उन एक चक्रधारी श्रीसूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६॥ महान् तेजके प्रकाशक, जगत्‌के कर्ता, महापापहारी उन सूर्यभगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ॥ ७॥ ज्ञान-विज्ञान तथा मोक्षके प्रदाता, बड़े-से-बड़े पापोंके अपहरणकर्ता, जगत्‌के स्वामी उन भगवान् सूर्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ८॥

भगवान् सूर्यनारायण

भगवान् आदित्यका ध्यान

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जो जिस वस्तुको परम आवश्यक मानकर उसे प्राप्त करना चाहता है, उसके चित्तसे उस वस्तुका चिन्तन स्वाभाविक ही बार-बार होता है एवं उसके चित्तमे अपने ध्येय पदार्थकी धारणा दृढ़ हो जाती है और आगे चलकर वही धारणा—चित्तवृत्तियोंके सर्वथा ध्येयाकार बन जानेपर 'ध्यान'के रूपमे परिणत हो जाती है । जितने कालतक वृत्तियाँ ध्येयाकार रहती हैं, उतने कालकी स्थितिको ध्यान कहा जाता है । ध्यानकी बड़ी महिमा है । भगवान्ने श्रीमद्भागवतमे कहा है कि जो पुरुष निरन्तर विषयोका ध्यान करता है, उसका चित्त विषयोमे फँस जाता है और जो मेरा ध्यान करता है, वह मुझमे लीन हो जाता है । योग अनेक हैं, जैसे—भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, लययोग, मन्त्रयोग, हठयोग और निष्काम कर्मयोग, इनमेसे किसी-न-किसी रूपमे सभी योगोमे ध्यानकी आवश्यकता और उपयोगिता है । इस ध्यानसे ही भगवान्के स्वरूपमे समाधि और ध्यानसे ही भगवान्की प्राप्ति भी होती है ।

ध्यानके अनेक प्रकार है । साधकको अपने-अपने अधिकार, रुचि और अभ्यासकी सुगमता देखकर किसी भी एक प्रकारके ध्यानका अभ्यास करना चाहिये; परंतु साथ ही मनमे इतना निश्चय रखना चाहिये कि सत्य तत्त्व परमात्मा एक ही हैं । वे एक ही अपनेको अनेक रूपोमे धारण कर लेते है । भक्त जिस रूपमे उन्हे पकड़ना चाहे, उसके उसी रूपमे वे पकड़मे आ जाते है । निर्गुण, निराकार और सगुण, साकार सभी उन्हींके रूप है । श्रीविष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, शक्ति, श्रीराम तथा श्रीकृष्ण आदि सभी एक ही है । प्राप्य मार्गके अनुभव भिन्न-भिन्न होते हुए भी सबके अन्तमे प्राप्त होनेवाला सत्य एक ही है । इसी सत्यके कोटिशः विविध प्रकाश हैं । हम किसी भी प्रकाशका अवलम्बन करके उस मूल प्रकाशको पा सकते है; क्योंकि ये सभी प्रकाश न्यूनाधिक शक्तिवाले दीखनेपर भी वस्तुतः उस मूल सत्यसे सर्वथा अभिन्न और पूर्ण ही है । वे स्वय ही विभिन्न प्रकाशोमे अवतीर्ण होकर अपनेको अपने ही सामने प्रकाशित कर रहे हैं ।

ध्यानके समय शरीर, मस्तक और गलेको सीधा रखना चाहिये । रीढकी हड्डी सीधी रहे । कुबड़ाकर न बैठे । जबतक ध्येयके आकारकी वृत्ति सर्वथा न बने, शरीरका बोध बना रहे और सासारिक स्फुरणाएँ मनमे उठती रहे, तबतक इष्ट* मन्त्रका जप करता रहे और बार बार चित्तको ध्येयमे लगानेकी चेष्टा करता रहे । लय (नींद), विक्षेप, कषाय, रसास्वाद, आलस्य, प्रमाद एवं दम्भ आदि दोषोसे बचे रहनेके लिये भी प्रयत्नशील रहे । यह विधि नियमित ध्यानके लिये है । यो तो साधकको सभी समय, सभी क्रियाओमे अर्थात् खाते-पीते-सोते, उठते-बैठते, सुनते-बोलते तथा चलते-फिरते चित्तको संसारकी व्यर्थ स्फुरणाओसे रहित करके अपने इष्ट—सूर्यनारायणका चिन्तन और ध्यान करना चाहिये । ध्यानके समय आँखे मूँद लेनी चाहिये अथवा नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर रखनी चाहिये ।

आँखे मूँदकर अथवा अभ्यास हो जानेपर प्रत्यक्ष सूर्यमण्डलमे देखे कि 'दिव्य रथके भीतरी भागमे पद्मासनपर

* प्रत्येक देवताके मन्त्र भिन्न होते हैं, और वे अनेक भी होते है । साधारणतः इष्ट नाम-मन्त्र—'ॐ विष्णवे नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ सूर्याय नमः' प्रभृति सर्वसाधारणके ज्ञेय हैं ।

विश्वात्मा चतुर्भुज, परम सुन्दर प्रफुल्ल कमलसदृश मुखमण्डलवाले हिरण्यवर्ण पुरुष विराजित हैं। उनके केश, मूँछे और नख भी हिरण्यमय हैं। उनका दर्शन पापोंका नाश करनेवाला है। वे सभी लोगोंको अभय देनेवाले हैं। उनके ललाटकी आभा पद्मके गर्भपत्रके समान लाल है। वे समस्त जगत्के प्रकाशक और सब लोगोके अद्वितीय साक्षी हैं। मुनिजन उनका दर्शन और स्तवन कर रहे है।' ऐसे भगवान् आदित्यका दर्शन करके यह निश्चय करे कि वे आदित्य मुझसे अभिन्न हैं। फिर इस निश्चयके साथ ही अपनेको उनमें चित्त-वृत्तिके द्वारा विलीन कर दे।

ध्यानकी अमित महिमा है। महर्षि पतञ्जलिने अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच महान् क्लेश बताये है। संयमादि क्रियायोगसे ये क्षीण होते हैं—उनका दमन होता है, परंतु समूल नाश नहीं होता। बीजरूपसे ये छिपे रह जाते है और अनुकूल अवसर और सङ्ग पाकर पुनः अङ्कुरित एवं फुल्लित-फलित हो जाते हैं; परंतु ध्यानयोगी तो क्रमशः पूर्ण समाधिमें परिणत होकर उनके बीजतकको नष्ट कर देता है। ध्यानका आनन्द कोई लिखकर नहीं बता सकता। इसके महत्त्व और आनन्दका पता तो साधना करने-पर ही लगता है। (—भगवच्चर्चा भाग तीनसे)

सूर्योपासनाके नियमसे लाभ

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवान् सूर्य परमात्माके ही प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। ये आरोग्यके अधिष्ठातृ देवता हैं। मत्स्यपुराण (६७। ७१) का वचन है कि **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** अर्थात्—आरोग्यकी कामना भगवान् सूर्यसे करनी चहिये; क्योकि इनकी उपासना करनेसे मनुष्य नीरोग रहता है। वेदके कथनानुसार परमात्माकी आँखोंसे सूर्यकी उत्पत्ति मानी जाती है—**चक्षोः सूर्योऽजायत।**

श्रीमद्भगवद्गीताके कथनानुसार ये भगवान्की आँखें हैं—**शशिसूर्यनेत्रम्।** (—११।१९)

श्रीरामचरितमानसमे भी कहा है—**नयन दिवाकर कच घन माला** (—६।१५।३) आँखोंके सम्पूर्ण रोग सूर्यकीउपासनासे ठीक हो जाते हैं।

भगवान् सूर्यमें जो प्रभा है, वह परमात्माकी ही प्रभा है—वह परमात्माकी ही विभूति है—

(१) **प्रभास्मि शशिसूर्ययोः** (—गीता ७।८)

(२) **यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।**
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥
(—गीता १५।१२)

भगवान् कहते हैं—'जो सूर्यगत तेज समस्त जगत्को प्रकाशित करता है तथा चन्द्रमा एवं अग्निमें है, उस तेजको तू मेरा ही तेज जान।'

इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा और सूर्य—ये दोनों अभिन्न है। सूर्यकी उपासना करनेवाला परमात्माकी ही उपासना करता है। अतः नियमपूर्वक सूर्योपासना करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। ऐसा करनेसे जीवनमें अनेक लाभ होते हैं; आयु, विद्या, बुद्धि, बल, तेज और मुक्तितककी प्राप्ति सुलभ हो जाती है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिये।

सूर्योपासकोंको निम्न नियमोंका पालन करना परम आवश्यक है—

(१) प्रतिदिन सूर्योदयके पूर्व ही शय्या त्यागकर शौच-स्नान करना चाहिये।

(२) स्नानोपरान्त श्रीसूर्यभगवान्को अर्घ्य देकर प्रणाम करे।

(३) सन्ध्या-समय भी अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये ।

(४) प्रतिदिन सूर्यके २१ नाम, १०८ नाम या १२ नामसे युक्त स्तोत्रका पाठ करे । सूर्यसहस्रनाम-का पाठ भी महान् लाभकारक है ।

(५) आदित्य-हृदयका पाठ प्रतिदिन करे ।

(६) नेत्ररोगसे बचने एवं अंधापनसे रक्षाके लिये नेत्रोपनिषद्का पाठ प्रतिदिन करके भगवान् सूर्य-को प्रणाम करे ।

(७) रविवारको तेल, नमक और अदरखका सेवन नहीं करे और न किसीको करावे ।

(८) रविवारको एक-भुक्त करे । हविष्यान्न खाकर रहे । ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे ।

उपासक स्मरण रखें कि भगवान् श्रीरामने आदित्य-हृदयका पाठ करके ही रावणपर विजय पायी थी । धर्मराज युधिष्ठिरने सूर्यके एक सौ आठ नामोंका जप करके ही अक्षयपात्र प्राप्त किया था । समर्थ श्रीरामदासजी भगवान् सूर्यको प्रतिदिन एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे । संत श्रीतुलसीदासजीने सूर्यका स्तवन किया था । इसलिये सूर्योपासना सबके लिये लाभप्रद है ।

पुराणोंमें सूर्योपासना

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

एकमात्र है ध्येय भुवन-भास्कर भगवन्ता ।
ध्यान त्रिकाल महान करें ऋषि मुनि सब सन्ता ॥
कमलासन आसीन मकर कुंडल श्रुति वारे ।
कनक करनि केयूर मुकुट मणिमय शिर धारे ॥
वर्ण सुवर्ण समान वपु, सब कर्मनिके साक्ष्य हैं ।
सूर्यनरायण देववर, जगमें नित प्रत्यक्ष हैं ॥

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देव है । हम सब सनातन वैदिक धर्मावलम्बी सर्वदा-सदा सूर्यनारायणकी ही उपासना करते हैं; क्योंकि वे हमारे सभी शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी हैं । इसीलिये हम सब कर्मोंके अन्तमें सूर्य भगवान्को अर्घ्य देकर कहते हैं—'हे भगवान् विवस्वान् ! आप विष्णुके तेजसे युक्त हैं, परम पवित्र हैं, सम्पूर्ण जगत्के सविता है और समस्त शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी है ।* हमारा कोई कर्म सूर्य-नारायणसे छिपा नहीं है । इसीलिये प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायकाल हम त्रिपदा गायत्रीके माध्यमसे सूर्य-नारायणकी उपासना करते हैं । हम द्विजातियोंको बाल्यकालसे ही गायत्रीकी दीक्षा दी जाती है । गायत्री-मन्त्र सूर्यनारायणकी उपासना ही है । गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं । गायत्री वेदोंकी माता है । चारो वेदोंमें गायत्रीमन्त्र हैं । गायत्रीकी उपासना करनेवालोंको अन्य किसी मन्त्रकी उपासनाकी अनिवार्यता नहीं है । गायत्री सर्वदेवमय एवं सर्ववेदमय है । इसीलिये देवीभागवतमें कहा है—केवल गायत्री-उपासना ही नित्य है। इसी बातको समस्त वेदोंने कहा है । गायत्री-उपासनाके बिना ब्राह्मणका अधःपात होता है । द्विजाति केवल गायत्रीमें ही निष्णात हो तो वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है । मनुजीने स्वय कहा है—द्विज अन्य मन्त्रोंमे श्रम करे चाहे न करे, परंतु जो द्विज गायत्रीको छोडकर अन्य मन्त्रोंमें श्रम करता है वह नरकका भागी होता है । इसीलिये सत्य-युगादिमें ऋषि-मुनि तथा उत्तम द्विज गायत्रीपरायण होते थे ।†

---

*—नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे । जगत्सवित्रे शुचये नमस्ते कर्मसाक्षिणे ॥ (आदित्यहृदय)

†—गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता । यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥
तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि । गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

सूर्यनारायणमें गायत्री-मन्त्रद्वारा अपने इष्टकी उपासना कर सकते हैं।

समस्त पुराणोंमे गायत्री-महिमा तथा सूर्योपासनाको सनातन बताया गया है। उनमे सूर्योपासनापर बहुत बल दिया गया है। वाराहपुराणकी कथा है—श्रीकृष्णभगवान्‌का पुत्र साम्ब अत्यन्त ही सुन्दर था। उसके सौन्दर्यके कारण भगवान्‌की सोलह हजार एक सौ रानियोंके मनमे कुछ विकृति पैदा हो गयी। भगवान्‌ने नारदजीके द्वारा इस बातको जानकर और उसकी परीक्षा करके साम्बको कोढी होनेका शाप दे दिया। तब नारदजीने उसे सूर्योपासनाका ही उपदेश दिया *। साम्बने मथुरामें जाकर सूर्यनारायणकी उपासना की। इससे उसका कुष्ठरोग चला गया। फिर तो वह सुवर्णके समान कान्तिवाला हो गया, और मथुरामे उसने सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित की। मार्कण्डेयपुराणमे मार्तण्ड-सूर्यकी उत्पत्तिका तथा उनकी संज्ञा और छाया दोनों पत्नियोंका और छः संतानोंका विस्तारसे वर्णन आया है। अन्तमे कहा गया है कि जो सूर्यसम्बन्धी देवोंके जन्मको तथा सूर्यमाहात्म्यको सुनता है या पढ़ता है, वह आपत्तिसे छूट जाता है और महान् यश प्राप्त करता है। इसके सुननेसे दिन-रात्रिमें किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं †।

विष्णुपुराणमे प्रजापालके पूछनेपर महातपा महर्षिने बताया है कि जो सनातननारायण-ज्ञानशक्ति अर्थात् ब्रह्मने जब एकसे दो होनेकी इच्छा की, तभी वह शक्ति तेजरूपमें सूर्य बनकर जगत्‌में प्रकट हुई। वे नारायण ही तेजरूपमें सूर्य बनकर प्रकाशित हो रहे हैं। इतना बताकर फिर सूर्यके मण्डलका और उनके रथ एवं रथके परिमाण आदिका विस्तारसे वर्णन किया है। उनके रथके साथ कौन-कौनसे देवता, ऋषि, अप्सरा, गन्धर्व आदि किस-किस मासमें चलते हैं, उपासनाके लिये इसका वर्णन किया है। ऐसा ही वर्णन श्रीमद्भागवतमे भी आया है। इन द्वादशादित्योंकी पृथक्-पृथक् मासमे उपासना करनेकी पद्धति बतायी गयी है। श्रीमद्भागवतमें इस उपासनाका माहात्म्य बताते हुए कहा गया है—'ये सब सूर्यभगवान्‌की विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल स्मरण करते हैं, उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।' ‡ फिर अन्तमे सूर्यको साक्षात् नारायणका स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि 'अनादि, अनन्त, अजन्मा,

---

.... कुर्यादन्यत्र वा कुर्यात् इति प्राह मनुः स्वयम्।
तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पराः। देवीपादाम्बुजरता आसन् सर्वद्विजोत्तमाः॥ (—देवीभागवत)

* ततस्तु नारदेनैव साम्बशापविनाशकः। आदिष्टो हि महान् धर्म आदित्याराधनं प्रति॥
साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत। पूर्वाचले च पूर्वाह्णे उद्यन्तं तु विभावसुम्॥
नमस्कुरु यथान्याय वेदोपनिषदादिभिः। त्वयार्चितो रविः भूत्वा तुष्टिं यास्यति नान्यथा॥
(—वाराहपु० अ० १७७। ३२—३४)

† .... य इदं जन्म देवाना स्वैर्माहात्म्यमेव च॥
विवस्वतस्तु जातानां शृणुयाद् वा पठेत् तथा। आपद प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः॥
अहोरात्रकृतं पापमेतच्छमयति श्रुतम्। माहात्म्यमादिदेवस्य मार्त्तण्डस्य महात्मनः॥
(—मार्कण्डेयपुराण)

‡ एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः। स्मरतां सन्ध्ययोर्नृणां हरन्त्यंहो दिने दिने॥
(—श्रीमद्भा० १२। ११। ४५)

भगवान् श्रीहरि ही कल्प-कल्पमें अपने स्वरूपका विभाग करके लोकोंका पालन-पोषण करते हैं।'* कूर्मपुराणमे भगवान् सूर्यनारायणकी अमृतमयी रश्मियोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है और कौनसे ग्रह किस अमृतमयी रश्मिसे तृप्त होते हैं, इसका वर्णन करते हुए अन्तमे कहा गया है—'चन्द्रमाका कभी नाश नहीं होता। सूर्यको निमित्त बनाकर उनकी रश्मियोंके द्वारा देवतागण अमृत-पान करते हैं। उन्हींके कारण चन्द्रमामे क्षय और वृद्धि दिखायी देती है।'† इसी पुराणके १०१ अध्यायमें सूर्य-चन्द्रके परिभ्रमणकी गतियोंका वर्णन है।

निष्कर्ष यह कि—वेदों, शास्त्रों और विशेषकर पुराणोमे सूर्यकी सर्वज्ञता, सर्वाधियता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोमे वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अतः प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं।

भगवान् सूर्यकी सर्वव्यापकता

(लेखक—वीतराग स्वामी अनन्तश्री नारायणाश्रमजी महाराज)

सूर्यकी उत्पत्ति

सूर्यकी उत्पत्ति—संसारकी उत्पत्तिके पहले सर्वत्र एकमात्र अन्धकार ही भरा हुआ था—**'तमः आसीत्'**—श्रुतिके अनुसार सम्पूर्ण दिशाएँ अवर्णात्मक तमसे व्याप्त थीं। सर्वशक्तिमान् परमात्मा हिरण्यगर्भका परम उत्कर्ष तेज उस दिगन्तव्यापिनी अन्धकारमयी निशामे आत्मप्रकाशके रूपमे उदित हुआ—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**—और उस अध्यात्म-प्रकाशके आविर्भावसे सम्पूर्ण दिशाओंका अन्धकार समाप्त हो गया।

व्याकरण-शास्त्रकी दृष्टिमें सूर्य शब्द 'सृ' धातुसे बना है। इसका अर्थ है **'गतौ यस्मात् परो नास्ति'** अर्थात् जिसके प्रकाशके समान अन्यतम प्रकाश इस भूतलपर नहीं है, उसे सूर्य कहते है।

शश्वच्च जायते यस्माच्छश्वत्संतिष्ठते यतः।
तस्मात् सर्वैः स्मृतः सूर्यो निगमज्ञैर्मनीषिभिः॥
(—साम्बपु० ९। १९)

जहाँसे अचेतनात्मक नश्वर संसारको चेतनाकी उपलब्धि होती है और जिसकी संचित चेतना प्राप्त होनेपर सम्पूर्ण प्राणी जीवनधारणकी संज्ञा उपलब्ध करते हैं, उस अखण्ड मण्डलाकार घन-प्रकाशको ही विद्वान् सूर्य कहते हैं। यह तेज हजारों रश्मियोंसे संयुक्त हिरण्यगर्भके नामसे विख्यात था। कुछ युगोंके बीत जानेपर वह दिव्य तेज ब्रह्माण्डके गोलेमेसे आविर्भूत हुआ था; जैसा कि साम्बपुराणमे वर्णन मिलता है—

तत्रोत्पन्नः सहस्रांशुर्द्वादशात्मा दिवाकरः।
नवयोजनसाहस्रो विस्तारस्तस्य वै स्मृतः॥
(—साम्बपु० ७। ३४)

पुराणकी कथाके अनुसार भगवान् कश्यपका जन्म मरीचि नामके प्रजापतिसे हुआ था। भगवान् कश्यप ब्रह्माके समान ही तेजस्वी प्रजापति थे। उनकी पत्नी देवमाता अदितिके उदरसे ब्रह्माण्डका व्यापक गोला उत्पन्न हुआ। वह गोला अन्धकाररूप तमसे आच्छादित था। भगवान् हिरण्यगर्भका वह अध्यात्म तेज इसी

* एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः। कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः॥
(—श्रीमद्भा० १२। ११। ५०)

† न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते। एवं सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमाः॥
(—कूर्मपुराण अ० ४०)

ब्रह्माण्ड-गोलार्के मध्यमें आविर्भूत होकर सम्पूर्ण संसारके तम-(अन्धकार)का अन्त कर डाला—

यथा पुष्पं कदम्बस्य समन्तात् केसरैर्वृतम् ।
तथैव तेजसो गोलं समन्ताद् रश्मिभिर्वृतम् ॥
(—साम्बपु० ७ । ३५)

जिस प्रकार कदम्बका फूल अतिसुन्दर केशर-किञ्जल्कसे आवृत रहता है, उसी प्रकार भगवान् सहस्ररश्मि सूर्य भी अखण्ड मण्डलाकार तेज:पुञ्ज-रश्मिसे सभी दिशाओंमें व्याप्त हो गये हैं । उस गोल आकारमें व्याप्त तेज:पुञ्जके मध्य वेदमें वर्णित सहस्र-शीर्षा भगवान् हिरण्यगर्भ उपस्थित थे । जिस प्रकार विशाल कुम्भमें अग्नि व्याप्त होकर अग्नि-कुम्भके सदृश हो जाता है, उसी प्रकार सहस्र रश्मिवाले सूर्यका दिव्य रश्मिमण्डल अग्निकुम्भके आकारमें होकर पृथ्वी एवं आकाशमण्डलको संतप्त करने लगा ।

स एष तेजसो राशिर्दीप्तिमान् सार्वलौकिकः ।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव प्रतपत्येष सर्वतः ॥
(—साम्बपु० ७ । ५६)

परम दिव्य तेजसमूह ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चौदहों लोक दीप्तिमान हो रहे हैं । सूर्यके समग्र तेजोमण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं । उनका कार्य पाताललोकसे ब्रह्मलोक-पर्यन्तके चतुर्दश लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंके भीतर ज्ञान एवं क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करना है । सूर्य-मण्डलका पहला तेज ऊर्ध्वकी ओर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीपन करता है । उस तेजकी शक्ति 'संज्ञा' है । दूसरा तेज अधोगामी—पृथ्वीसे पाताल-पर्यन्त उद्दीपन करता है । उस तेजकी शक्तिका नाम 'छाया' है । पुराणकी कथाके अनुसार संज्ञा तथा छाया—ये दोनों सूर्यकी पत्नियाँ मानी गयी हैं ।

भगवान् सूर्यकी ये दोनों पत्नियाँ शक्तिके स्थानपर निरन्तर [illegible] मानी हैं । पुराण-कथाके अनुसार भगवान् सूर्यका तेज अग्निके समान अत्यन्त दीप्तिमान् तथा प्राणिमात्रके लिये असह्य था । युग-निर्माणके समय सम्पूर्ण मुनि एवं महर्षि भगवान् सूर्यके अप्रधर्ष्य तेजसे व्याकुल होकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे । देवताओं, मुनियों एवं महर्षियोकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने त्वष्टासे सूर्यके तेजपर नियन्त्रण करनेके लिये कहा । त्वष्टाने भ्रामी नामक यन्त्रद्वारा भगवान् सूर्यके तेजको नियन्त्रित कर व्यवहारमें उपयुक्त करने योग्य बना दिया । तत्पश्चात् संज्ञा तथा छाया नामकी वे दो पत्नियाँ सूर्यके तेजका उपभोग करने लगीं ।

सूर्यका ऊर्ध्वगामी द्यु-तेज संज्ञासे संयुक्त हो जानेपर सम्पूर्ण संसारके प्राणियोंमें ज्ञान-संवित् चेतना-रूपसे स्थित हुआ । अतः संज्ञासे सम्बद्ध होकर सब प्राणी निःश्रेयस्की ओर चलने लगे । दूसरा अधोगामी तेज छाया-शक्तिसे संयुक्त हुआ । फिर तो छायासे अनुप्राणित होकर संसारके सब प्राणी क्रिया-कर्मकी ओर प्रवृत्त होने लगे । अर्थात् संज्ञासे संवित्-चेतना—ज्ञानद्वारा श्रेय तथा छायासे कर्मपरायण क्रियादक्ष होकर प्रेयकी ओर समस्त संसारके प्राणी प्रवृत्त हुए ।

देवता, मुनि और महर्षियोंने श्रेय तथा प्रेयका मार्ग भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया था । संज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति है । वह मुनि एवं महर्षियोके हृदयमें संवित्-चेतनाका उदय कराती है । श्रेयोगामी शक्ति संज्ञाका भगवान् सूर्यके द्युलोकव्याप्त तेजसे अनन्य संयोग होनेपर विद्या नामकी शक्ति उत्पन्न हुई । यह दैवात्य शक्तिके नामसे विख्यात हुई । देवता, मुनि एवं महर्षि इसी श्रेयोगामी विद्या शक्तिकी उपासना श्रद्धा-भक्तिसे करने लगे । 'विद्ययामृतमश्नुते'—इस श्रुतिके अनुसार विद्याकी उपासनासे उन्हें अमृत-पानका अवसर मिला । प्रश्न यह होता है कि अमृत किस मार्गसे प्राप्त हुआ ?

केन मार्गेणामृतत्वमश्नुत इत्युच्यते तद्यत्तत्सत्यमसौ स आदित्यो य एव एतस्मिन्मण्डले पुरुषः (शाङ्करभाष्य)।

उत्तरमें—सत्य ही आदित्य है। उस आदित्यमें विद्यमान हिरण्मय पुरुष ही अमृत है। मुनि, महर्षि और देवताओंने उसी हिरण्मय तेजकी उपासनामयी विद्याके द्वारा अमृत-पान किया। अविद्या प्रेय-मार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है। भगवान् सूर्यका अधोव्याप्त तेज छायासे संयुक्त होनेपर यानी छाया और तेजके परस्पर मिलनसे अविद्या नामकी कन्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्याकी जननी है। अविद्यासे मनुष्योंको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी पड़ता है।

वेद-शास्त्रके जाननेवाले विद्वान् भी प्रेय—ऐहिक विषय-सुख या आमुष्मिक स्वर्गमें प्राप्त भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं। अविद्या कर्मका स्वरूप है। कामनासे युक्त होकर कर्म करनेपर अदर्शनात्मक तमोव्यापिनी बुद्धि उदित होती है। इससे मनुष्य परस्परमें न पहचानकर अभिमानके वशीभूत हुए कर्म करते है।

सूर्यरश्मि-ग्रह-मण्डल

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्ये व्यवस्थितः।
पार्श्वेनोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम्॥
तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्पतिः।
त्रीणि रश्मिशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति च॥

(—साम्बपु० ७। ५७-५८)

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण ग्रहोंके राजा हैं। जिस प्रकार घरके मध्यमें उज्ज्वल दीपक ऊपर-नीचे—सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अखिल जगत्के अधिपति सूर्य हजारों रश्मियोंसे ब्रह्माण्डके ऊपर-नीचेके भागोंको प्रकाशित करते हैं।

सूर्यका तेज अग्निकुम्भके समान आकाशके मध्य चमकता है। उस अखण्डमण्डलाकार तेजसे उत्पन्न किरणें ही रश्मि हैं। सूर्य-तेजका प्रकाश तथा अग्निका ऊष्मा परस्पर मिल जानेपर सूर्यकी रश्मि बनती है। सूर्यकी हजारों रश्मियोंमें तीन सौ रश्मियाँ पृथ्वीपर, चार सौ चान्द्रमस पितर-लोकपर तथा तीन सौ देवलोकपर प्रकाश फैलाती हैं। रश्मिके साथ सूर्य-तेजका प्रकाश तथा अग्नि-तेजका ऊष्मा—दोनोंके परस्पर मिश्रणसे ही दिन बनता है। केवल अग्निके ऊष्माके साथ सूर्यका तेज मिलनेपर रात्रि होती है। यथा—

प्रकाश्यं च तथौष्ण्यं च सूर्याग्न्योर्ये च तेजसी।
परस्परानुप्रवेशादाख्यायेते दिवानिशम्॥

(—साम्बपु० अ० ७)

सूर्य दिन-रातमें समान प्रकाश करते हैं। उनकी रश्मियाँ रात्रिमें अन्धकार तथा दिनमें प्रकाश उत्पन्न करती हैं। सूर्यका नित्य प्रकाशमान तेज दिनमें, प्रकाश उष्णमें तथा रात्रिमें केवल अग्नि उष्णमें विद्यमान रहता है। सूर्यकी रश्मियाँ व्यापक है। परस्पर मिलकर गरमी, वर्षा-सरदीका वातावरण उत्पन्न करती हैं।

नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च।
चन्द्राद्याश्च ग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः॥

(—साम्बपु० ७। ६०)

अखण्डमण्डलाकारमें व्याप्त भगवान् सूर्यका तेज एक है। जिस प्रकार उनकी रश्मियोंसे दिन-रात्रि, गरमी-वर्षा, सरदी उत्पन्न होकर नियमित व्यवहारमें प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ग्रह तथा नक्षत्र-मण्डल सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न होकर उसीमें प्रतिष्ठित—अधिष्ठित रहते हैं।

सूर्यकी हजारों रश्मियाँ हैं—जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है; उनमें सात रश्मियाँ मुख्य है। ये

सात रश्मियाँ ही ग्रह-नक्षत्र-मण्डलकी प्रतिष्ठा मानी गयी हैं। ये सात रश्मियाँ क्रमशः (१) सुषुम्णा, (२) सुरादना, (३) उदन्वसु—सयद्वसु, (४) विश्वकर्मा (५) उदावसु, ६) विश्वव्यचा, अखराट् तथा (७) हरिकेश हैं। उक्त रश्मियोंका कार्य क्रमशः इस प्रकार है—

१-सुषुम्णा—यह रश्मि कृष्णपक्षमें क्षीण चन्द्र-कलाओंपर नियन्त्रण करती है और शुक्लपक्षमें उन कलाओंका आविर्भाव करती है। चन्द्रमा सूर्यकी सुषुम्णा रश्मिसे पूर्णकला प्राप्त करके अमृतका प्रसारण करते हैं। संसारके सभी जड़-चेतन प्राणी चन्द्रमाकी पूर्णकलासे क्षारित अमृतको सूर्य-रश्मिसे उपलब्धकर जीवित रहते हैं।

२-सुरादना—चन्द्रमाकी उत्पत्ति सूर्यसे मानी गयी है। सूर्यकी रश्मिसे ही देवता अमृत-पान करते हैं। इसलिये वे चन्द्रमाके नामसे विख्यात हैं। चन्द्रमामें जो शीत किरणें हैं, वे सूर्यकी रश्मियाँ हैं। इसीसे चन्द्रमा अमृतकी रक्षा करते हैं।

३-उदन्वसु—इस सूर्य-रश्मिसे मङ्गल ग्रहका आविर्भाव हुआ है। मङ्गल प्राणिमात्रके शरीरमें रक्त संचालन करते हैं। इसी रश्मिसे प्राणिमात्रके शरीरमें रक्तका संचालन होता है। यह सूर्य-रश्मि सभी प्रकारके रक्त-दोषसे प्राणियोंको मुक्त कराकर आरोग्य, ऐश्वर्य तथा तेजका अभ्युदय कराती है।

४-विश्वकर्मा—यह रश्मि बुध नामक ग्रहका निर्माण करती है। बुध प्राणिमात्रके शुभचिन्तक ग्रह है। इस रश्मिके उपयोगसे मनुष्यकी मानसिक उद्विग्नता शान्त होती है—शान्ति मिलती है।

५-उदावसु—यह रश्मि बृहस्पति नामक ग्रहका निर्माण करती है। बृहस्पति प्राणिमात्रके अभ्युदय—निःश्रेयसप्रदायक है। गुरुके अनुकूल-प्रतिकूलमें मनुष्य-का उत्थान-पतन होता है। इस सूर्य-रश्मिके सेवनसे मनुष्यके सभी प्रतिकूल वातावरण निरस्त होते और अनुकूल वातावरण उपस्थित होते हैं।

६-विश्वव्यचा—इस सूर्य-रश्मिसे शुक्र तथा शनि नामक दो ग्रह उत्पन्न हुए हैं। शुक्र वीर्यके अधिष्ठाता हैं। मनुष्यका जीवन शुक्रसे ही निर्मित होता है। शनिदेव मृत्युके अधिष्ठान हैं। जीवन एवं मृत्यु दोनोंका नियन्त्रण उक्त सूर्यकी रश्मिसे है, जिसके कारण संसारके प्राणी जन्मके उपरान्त पूर्ण आयु व्यतीत—उपभोग करके मरते हैं।

७-हरिकेश—आकाशके सम्पूर्ण नक्षत्र इसी सूर्य-रश्मिसे उत्पन्न हुए हैं। नक्षत्र-कार्य प्राणिमात्रके तेज, बल और वीर्यका क्षरण-द्रवत्वसे रक्षण करना है। यह सूर्य रश्मि नक्षत्र, तेज, बल, वीर्यके प्रभावसे प्राणीके आचरित शुभ-अशुभ कर्मफलको मरणोपरान्त परलोकमें प्रदान करती है।

क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षास्तथैव च।
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च॥
तदादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते।
कालादृते न नियमो नाग्नेर्विहरणं क्रिया॥
(साम्बपु०, अ० ८। ७-८)

भगवान् सूर्य काल-रूपमें—अविचल प्रतिष्ठामें स्थित हैं। क्षणसे भी सूक्ष्मातीत काल हैं। वह क्षणकी अवस्थासे अतीत होनेके कारण अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप माने गये हैं। कालसे अतीत अन्यतम अवस्था नहीं होती। यद्यपि उनकी अवस्था आध्यात्मिक दृष्टिसे सूक्ष्मातीत मानी गयी है तथापि लोकव्यवहारकी दृष्टिमें क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष—ये सब कालकी अवस्था माने गये हैं। मृत्यु और अमृत—ये दोनों कालरूप सूर्यके अवयव हैं, इनके द्वारा भगवान् सूर्य कालके रूपमें क्षणसे संवत्सर-पर्यन्तकी अवस्थाका उपयोग करते हैं। जब सारा संसार प्रलयमें कालसूर्यके मुखमें कवलित होने लगता है, तब

कालरूप सूर्य मृत्युके आकारमें दिखलायी पड़ते हैं। जिस अवस्थामे काल-सूर्यके तेजसे सहारका आविर्भाव होने लगता है, उस अवस्थामें भगवान् सूर्य-काल अमृतके रूपमे साक्षात् होते हैं।

वस्तुतः—

सूर्यात् प्रसूयते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते।
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा॥
(साम्बपु० ८। ५)

प्रलय—मृत्युके समय समस्त ससारको रूपका अभाव रहता है। उत्पत्तिके समय सभी ससार अमृतसे व्याप्त भाव-स्वरूप दिखलायी पडता है। भाव तथा अभावकी अवस्था कालरूप भगवान् सूर्यसे उत्पन्न होती है। सूर्यके ऊपर गमन करनेवाली द्युलोकगामी सज्ञारश्मि अमृत है। आदित्यमण्डलमें विद्यमान अन्तर्यामी परमात्मा रश्मिमय-ज्योतिर्मय-हिरण्यपात्रसे आच्छन्न हैं।

रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः (शांकरभाष्य) सूर्यरश्मि ही सम्पूर्ण प्राणियोकी प्राण-शक्ति है। वह दिव्य अमृत-रससे प्राणियोंको जीवन प्रदान करती है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, उष्णिक्—ये सात व्याहृतियॉ सूर्यके सप्तरश्मिसे उत्पन्न हुई है। व्याहृतियॉ रश्मियोके अवयव हैं; जिनके द्वारा ज्ञान (चेतना-संवित्) संज्ञा उपलब्ध होती है। वैदिक कालके मुनि, महर्षि सूर्य-रश्मि पान करके सूर्य-रश्मिके अवयव सप्त-व्याहृति तथा सम्पूर्ण वेदका साक्षात् अनुभव करते थे यानी सूर्यरश्मिके प्रभावसे व्याहृति एवं ऋग्यजु-साम-अथर्ववेद मुनि-महर्षियोके हृदयमे आविर्भूत हो जाते थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन्ही सूर्य-रश्मियोको पीकर ही व्याहृति एवं वेदको अन्तर्मानसमे आविर्भूत किया था। (क्रमशः)

सूर्योपासनासे श्रीकृष्ण-प्राप्ति

(लेखक—पूज्य श्रीरामदासजी शास्त्री महामण्डलेश्वर)

भगवान् भुवनभास्कर मानवमात्रके उपास्यदेव हैं। विश्वके सभी धर्मो, मतो, पथो एव जाति-उपजातियोमें भगवान् श्रीआदित्यनारायणके श्रीचरणोमे श्रद्धाके फूल चढाये जाते है। भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, नित्य दर्शन देते हैं एवं नित्य पूजा ग्रहण करते है। उनके अमोघ आशीर्वादसे प्राणी अपनी ऐहलौकिक यात्राको सानन्द सम्पन्न कर लेता है।

धर्मप्राण भारतवर्पमे—विशेपतः हिंदू-जातिमे आरम्भसे ही सूर्यनारायणकी पूजा विविध पद्धतियोसे होती चली आयी है। वैदिक ग्रन्थोसे लेकर आजतक समस्त आर्यग्रन्थोमे भगवान् सूर्यदेवकी प्रचुर महिमा एवं आराधनाके प्रकारोका विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवतके अनुसार—ये सूर्यदेव समस्त लोकोके आत्मा तथा आदिकर्ता हैं। श्रीहरि ही सूर्यके रूपमें विराजमान है। समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल कारण होनेसे ऋपियोने विविध प्रकारसे उनके गुणोका गान किया है। सूर्यरूप श्रीहरिका ही माया उपाधिके कारण देश, काल, क्रिया, कर्ता, करण, कर्म, योगादि वेदमन्त्र, द्रव्य और व्रीहि आदि फलरूपमे नौ प्रकारका वर्णन किया गया है—

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्माऽऽदिकृद्धरिः।
सर्ववेदक्रियामूलमृपिभिर्बहुधोदितः॥
कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः॥
(श्रीमद्भा० १२। ११। ३०-३१)

लोकयात्रा समुचित रूपसे चले—इसलिये वर्पके बारहो महीनोमें अपने भिन्न-भिन्न गणोंके साथ ये ही भ्रमण करते है। ऋपिगण वैदिक मन्त्रोसे इनकी स्तुति करते है, गन्धर्व और अप्सराएँ आगे-आगे गायन, नृत्य करती

हैं, यक्षगण रथकी साज-सज्जा करते और नागगण बाँधे रखते हैं, राक्षस पीछेसे ढकेलते हैं तो वालखिल्य ऋषि आगे स्तुति करते चलते हैं। इस प्रकार आदि-अन्तहीन भगवान् सूर्य कल्प-कल्पमें लोकोंका पालन करते आये हैं—

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान् हरिरीश्वरः।
कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः॥
(श्रीमद्भा० १२।११।५०)

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् सूर्य उभय लोक-संरक्षक, साधकोंके मार्गदर्शक, लोकयात्राके पालक एवं जगत्‌के प्राणियोंके लिये कल्याणस्तम्भ हैं। अन्य नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी भाँति सूर्य-उपासना भी हमारे जीवनका एक अङ्ग है, **'उदिते जुहोति अनुदेतिजुहोति'** आदि वाक्योंके द्वारा साधक अपने अन्तःकरणकी मलिनताओं, वासनाओं, हृदयगत कलुषिताओंका पवित्रीकरण करता है। त्रिकाल-संध्यामें भी नारायणस्वरूप सूर्यका वरण करके अपनी बुद्धिको सत्कर्मके लिये प्रेरित किया जाता है।

तात्पर्य यह है कि जब जीव भगवान् सूर्यकी उपासनाके द्वारा मायिक जगत्‌के व्यामोहसे निकलकर ऊपर उठता है और परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णका साक्षात्कार करता है, तब वह पुण्य-पापरहित विद्वान् प्रभुकी समताको प्राप्त कर लेता है—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं महान्तम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनं परमं साम्यमुपैति॥
(—मुण्डक ३।१।३)

आदित्यो वै प्राणः

(लेखक—स्वामी श्रीओंकारानन्दजी आदिबदरी)

अपने दोनों पाँवोंको फैलाकर मृगराजने अँगड़ाई ली और भुवन-भास्करके स्वागतमें कुमकुम बिखेरती उषा देवीकी ओर ऊर्ध्व मुखकर 'आऽऽओऽऽम्' का गम्भीर नाद किया। ओंकारके उत्तरोत्तर द्रुत लयबद्ध तृतीय निनादने चञ्चल भावनाओंको भयभीत करनेकी ही भाँति मृग एवं शशकसमूहोंको प्रकम्पित कर दिया और वे झाड़ियोंकी ओटमें दुबक गये। सूर्योदय हो रहा था—**'यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति'** (छान्दोग्योपनिषद् २।९।२)।

'धेनुओंने' 'हंऽऽ वांऽऽ' की ध्वनिकर भगवान् सूर्यका स्वागत किया और बछड़े पीठपर पूँछ रखकर पयःपान-हेतु वन्धनमुक्त होनेके लिये उतावले हो उठे। ग्राम-वधूने चक्कीकी लयपर सुर मिलाते हुए अपनी प्रभातीके लोक-गीतकी अन्तिम पंक्ति समाप्त की—'उठो लालजी भोर भयो है।'

अपने गीले कौपीनको एक ओर फैलाकर ब्राह्म-मुहूर्तमें ही गङ्गा-स्नानकर लौटे वैदिक महर्षिने मन्दिरके प्राङ्गणमें लगे घण्टेका निनाद किया और उसकी वाणी फूट पड़ी—

अपसेधन् रक्षसो यातुधाना-
नस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः।
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो-
ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे॥
(—ऋ० १।३५।१०)

'हे स्वर्णाभायुत किरणोंवाले, प्राणशक्तिप्रदाता, उत्तम नेता, सुखदाता, निज शक्तिसे सम्पन्न देव! यहाँ पधारें। प्रत्येक रात्रिमें स्तुति किये जानेपर राक्षसों तथा यातना देनेवालोंको दूर करते हुए सूर्यदेव यहाँ शुभागमन करें।'

वेदमन्त्रकी इन ऋचाओंके उद्घोषके साथ ही सारथि अरुणने अपने स्वामी आदित्यके रथकी गतिको

बढा दिया। दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। इसे देख उपासकने सिर झुकाया—

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥

'विश्वके कण-कणके नियामक प्रत्यक्ष देव भगवान् दिवाकरका शुभागमन इतना आह्लादकारी है कि उसकी तुलना अवर्णनीय है। सतत गतिशील अद्भुत आभा-युक्त, हिरण्य-वल्गाओं-(किरणों-) से अलंकृत रथारूढ, चित्र-विचित्र किरणोंसे अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् आदित्य बढ रहे हैं'—

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं
हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः
कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥

(—ऋ० १। ३५। ४)

अपनी उपासनामे निरन्तर ध्यानरत सुकेशा, सत्यकाम, गार्ग्य, कौसल्य, वैदर्भी तथा कवन्धीका अनुष्ठान वर्षों चलता रहा। सभीका शोधविषय परब्रह्मका अन्वेषण था। सभीने अपने-अपने मतानुसार परब्रह्मका विवेचन किया और अन्तमे अपने विषयके समापन-प्रतिपादनहेतु वे भगवान् पिप्पलादके समीप उपस्थित हुए। सभीके हाथोमे समिधा देखकर ब्रह्मज्ञानी महर्षि समझ गये कि ये सभी विधिवत् ब्रह्मविद्या-प्राप्तिहेतु आये हैं। गुरु-शिष्यकी वैदिक परम्परानुरूप पिप्पलादने कहा—'तुम सभी तप, इन्द्रिय-संयम, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे युक्त हो, गुरु-निष्ठानुरूप एक वर्ष आश्रममे निवास करो' तत्पश्चात् मैं तुम्हारी शङ्काओंका समाधान करूँगा।'

गुरुकुलवासकी अवधिको कुशलतापूर्वक निर्वहन कर महर्षि कत्त्वके प्रपौत्र कवन्धीने मुनि पिप्पलादसे पूछा—'भगवन्! ये सम्पूर्ण प्रजाएँ किससे उत्पन्न होती है?'—

'भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति।'

तब पिप्पलादने गम्भीर गिरामें कहा—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः॥ अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते॥ यद्दक्षिणाम्…… सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजाना-मुदयत्येष सूर्यः॥

(—प्रश्नो० १। ५—८)

'निश्चय ही, आदित्य ही प्राण और चन्द्रमा ही रयि है। सभी स्थूल और सूक्ष्म मूर्त और अमूर्त रयि ही हैं, अतः मूर्ति ही रयि है। जिस समय उदय होकर सूर्य पूर्व दिशामें प्रवेश करते हैं, उससे पूर्व दिशाके प्राणो-को सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण अपनी किरणोंमें उन्हे प्रविष्ट कर लेते हैं। इसी प्रकार सभी दिशाओंको वे आत्म-भूत कर लेते है। वे भोक्ता होनेके कारण वैश्वानर, विश्वरूप प्राण और अग्निरूप हो प्रकट होते हैं। ये सर्वरूप, ज्ञानसम्पन्न, समस्त प्राणोके आश्रयदाता सूर्य ही सम्पूर्ण प्रजाके जनक है।'

महान् वैज्ञानिक लार्ड केल्विनने सूर्यकी आयु पचास करोड़ वर्ष ऑककर जो भूल की थी या हेल्म होल्ट्जके सूर्य-सम्बन्धी अन्वेषण आजके वैज्ञानिक पैट्रिक सूर आदि अमान्य घोषित कर चुके है, उन सभीको हमारी उपनिषदे चुनौती देती प्रतीत होती है। वे न तो सूर्यके विकीरणका कारण गुरुत्वाकर्षणीय आकुञ्चन मानती हैं और न सूर्यको हाइड्रोजनसे हीलियममें परिवर्तित द्रव्यकी संज्ञा देती है, वरन् अपने निश्चयका डिमडिम घोष करती हैं कि **'आदित्यो ब्रह्म'**। सूर्य-सम्बन्धी वैज्ञानिक छान्दोग्योपनिषद्के इक्कीसवे खण्डका सूक्ष्म अध्ययन करें तो उन्हे सूर्य-सम्बन्धी वैदिक मान्यताओंका ज्ञान हो जायगा। सूर्यके भाग्यके साथ जुडी पृथ्वीके रहस्य सूर्यको बिना समझे अधूरे रहेगे। अस्तु,

यज्ञानुष्ठानोंकी उपादेयता, वाञ्छित फलप्रदायक शक्ति तथा आवश्यकता वैदिककालसे वर्तमानतक स्वान्तः-सुखायके एकमात्र साधनके रूपमें निरन्तर बनी हुई है और चाहे किसी भी उपलब्धिहेतु यज्ञ-समारम्भ हो, सभीमे सूर्यका स्थान सर्वोपरि है।

अग्निहोत्री पुरुष दीप्तिमान् अग्निशिखाओंमे आहुतियोद्वारा अग्निहोत्रादि कर्मका जो आचरण करता है, उस यजमानकी आहुतियोंको देवताओंके एकमात्र स्वामी इन्द्रके पास ले जानेका गुरुतर कार्य सूर्यकिरणोद्वारा ही सम्पन्न होता है—

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
(—मुण्डक० २।६)

रंग-बिरंगे मुस्काते सुगन्धित पुष्प, सुस्वादु फलोसे लदे वृक्ष **'अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्'**का प्रतिपादन करती-लहलहाती फसले—इन सभीका आधार आदित्य ही तो हैं।

प्रभाकर उद्गीत होते हुए भी प्रजाओंके अन्न-उत्पत्तिके लिये उद्गान करते है। इतना ही नहीं, वे उदित होकर अन्धकार एवं तज्जन्य भयका भी नाश करते हैं।

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति उद्यंस्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद॥
(—छान्दो० ३।१)

विभावसुकी विभिन्न दृष्टियोसे उपासना—जैसे बृहत्सामोपासना, आध्यात्म तथा आधिदैविक उपासना, आत्मयज्ञोपासना, विराट्कोपोपासना आदिका विशद विवरण इसी उपनिषद्में विस्तारपूर्वक समझाया गया है। महर्षियोने इसी प्रकारके व्रत-ग्रहणसे आत्माको दीक्षित किया और जीवनको यज्ञ बनाकर उस सत्यको उपलब्ध किया जो ब्रह्माण्डको धारण करनेवाला मध्यबिन्दु बना।

शकलके पुत्र विदग्धकी शङ्काओंका समाधान करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्यने जिन तैंतीस देवताओंका विवरण समझाया है, वे भी सूर्यके बिना अधूरे रहते—**'त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति।'**
(—बृहदारण्यक० ३।९।२)

वे आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति हैं। अर्जुनके व्यामोहको भंग करनेका उपदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—मैं अदितिके बारह पुत्रोंमें विष्णु और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ—**'आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।'** (गीता १०।२१) यदि भगवान् रवि उदित न हों तो सभी आँखोंवाले चक्षुविहीन हो जायँ। आँख सूर्यके प्रकाशसे ही देखती है—**'प्राविशादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी'** (ऐतरेयो० १२।४) इसीलिये तो चराचर विश्व सूर्यके समक्ष नत हैं—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥
यस्योदयेनेह जगत् प्रबुध्यते
प्रवर्तते चाखिलकर्मसिद्धये।
ब्रह्मेन्द्रनारायणरुद्रवन्दितः
स नः सदा यच्छतु मङ्गलं रविः॥

मन्त्र-ब्राह्मणके उस उपदेष्टाके स्वरमें स्वर मिलाकर आइये हम सब भी उस सङ्कल्पको दोहराये।

सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥

हे व्रतपति सूर्य! आजसे मैं अनृत (असत्य) से सत्यकी ओर, अज्ञानसे प्रकाशकी ओर जानेका व्रत ले रहा हूँ। आपको उसकी सूचना दे रहा हूँ। मैं उसे निभा सकूँ। उस मार्गपर आगे बढ़ सकूँ।

परब्रह्म परमात्माके प्रतीक भगवान् सूर्य

(लेखक—स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी महाराजमियामी-फ्लोरिडा, सं० रा० अमेरिका)

अति प्राचीन कालसे आजतक किसीने मानवके मस्तिष्कको इतना आकृष्ट एव चमत्कृत नहीं किया है, जितना कि पूर्वमे उदित हो अनन्त आकाशमे विचरण करते हुए पश्चिममे अस्त होनेवाले परम तेजस्वी एवं स्तुत्य भगवान् सूर्य कर रहे है। इनकी किरणोके बिना इस पृथ्वीपर प्राणिमात्रका जीवन सम्भव नहीं है। प्रायः सभी व्यक्ति इन परम तेजस्वी भगवान् सूर्यका स्वागत एव पूजन करते है। समयकी कल्पना, दिन और रातका आवागमन, मास एवं ऋतुओका विभाजन तथा चन्द्रमाके क्षय एव वृद्धिद्वारा कृष्ण एवं शुक्ल-पक्षोका होना आदि—सभी व्यावहारिक बातें मानव-जीवनको निरन्तर प्रभावित करती हैं। इन सबके कारण भगवान् सूर्य ही हैं। अनादिकालसे ही मनुष्य-जीवनकी अनन्त प्रेरणाओ एव इच्छाओको पूर्ण करनेके भावमय मन्त्र वेदमे अभिव्यक्त हैं—

'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय।'

प्रभो! आप मुझे असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमृतत्वकी ओर ले चले। अन्धकारमय जागतिक प्रपञ्चोंसे आत्मप्रकाशकी ओर चलना ही मानव-जीवनकी उचित यात्रा है। माया, मोह या अज्ञान—ये समस्त सत्य शक्तियोके विरुद्ध एक निरन्तर सघर्ष है; जो क्रोध, घृणा, हिंसा, लोभ एव समस्त दुर्गुणोके रूपमे विद्यमान है और जिसका मूल कारण अविद्या तथा जन्म-जन्मान्तरकी वासना है, उसे अज्ञान कहते हैं। परंतु ज्ञान-स्वरूप सूर्य ऐसा प्रकाशका स्रोत है, जो अनन्तके सर्वोच्च प्रकाशके साथ प्राणीको जोड़ता है। प्रकाश परम पवित्र चेतनाका प्रतीक है। विश्वके सभी धर्मोने सामान्यरूपसे प्रकाशको ईश्वरकी उपस्थितिका प्रतीक चुना है। अतएव विश्व-भरके समस्त मन्दिरो, चर्चो एव पूजनीय स्थानोमे दीपक जलाये जाते है। गीताने भी उस अनन्तका वर्णन—**'ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते'**—अन्धकारके परे एवं प्रकाशोका भी प्रकाश आदिरूपसे किया है। निदान, परब्रह्म ज्योतियोका भी ज्योति है। जो मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है, वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेयोग्य (ज्ञेय) एव तात्त्विक ज्ञानसे प्राप्त करने योग्य हैं। पर वह तो सबके हृदयमे ही विराजमान है। उपनिषदोके द्रष्टा ऋषि कहते हैं—**'भूः, भुवः** तथा **स्वः'**—इन तीन लोकोके अधिष्ठाता उस श्रेष्ठ कल्याणकारी सूर्यदेवताके 'भर्ग'का हम ध्यान करते है, जो हमारी बुद्धिको सन्मार्गके प्रति प्रेरित करता है। सूर्योपनिषद्के अनुसार सूर्य सम्पूर्ण विश्वके आत्मा है। मृत्युसे रक्षा पानेके लिये उन्हे प्रणाम किया जाता है। सूर्योपनिषद्के अनुसार सूर्यसे ही समस्त प्राणियोकी उत्पत्ति एवं रक्षा होती है तथा सूर्यमे ही उन सबका अवसान होता है। मै वही हूँ, जो सूर्य है—

'नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि।
भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः॥
सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

(—सूर्योपनिषद् २। ४)

देवयान एवं पितृयान (धूम्रमार्ग तथा अर्चिमार्ग)—

उपनिषदोने श्रेय और प्रेयके दो मार्ग बतलाये है। पहलेको देवयान या अर्चिमार्ग तथा दूसरेको पितृयान अथवा धूम्रमार्ग कहा है। श्रेयोमार्गके पथिक अर्चिमार्गका अनुसरण करते हुए मुक्ति प्राप्त करते है। इसके विपरीत जो प्रेयमार्गका अनुसरण करते है, वे निरन्तर जन्म एवं मृत्युके चक्रमे पड़े रहते है। पहलेवाले मार्गका अनुसरण

करनेवाले शाश्वत सूर्यकी ओर जाते हैं। प्रेयोमार्गवाले इन्द्रियोके मिथ्या सुखमे मोहित हुए रहते हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरा अन्य मार्ग भी उन लोगोंके लिये है, जो पापपूर्ण कार्योंमें सदा लिप्त हैं। उनके लिये जो मार्ग है, वह अन्धकार एवं नारकीय यातनाओंसे सम्पन्न है। अज्ञानमार्गका अनुसरण करनेवाले पापी नरकको प्राप्त करते हैं। जो गुणवान् हैं, किंतु अहंभावसे पूर्ण होनेके कारण माया-मोहको दूर करनेमें असमर्थ है, वे अपने इन कर्मोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्त होते हैं। वहाँके स्वर्गीय आनन्दोंका अनुभव करके पुनः इस मृत्युलोकमे लौट आते हैं। ये दोनो दक्षिणायन या धूम्रमार्गका अनुसरण करनेवाले हैं। जो बार-बार सांसारिक जन्म-मरणकी आवृत्ति करता है, किंतु अहंभावसे उत्पन्न माया-मोहको नष्टकर जिसने परमात्मासे एकत्व स्थापित कर लिया है, वह पाप-पुण्यसे मुक्त होकर कर्म एवं उनके फलोंसे ऊपर उठकर आत्म-प्रकाशको प्राप्त कर लेता है। इन्हे ही अर्चिमार्गका अनुयायी कहा गया है। पिप्पलाद मुनि कहते हैं—

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया
विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते।
एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभय-
मेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त॥
(—प्रश्नोपनिषद् १। १०)

जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिसे विश्वासपूर्वक ब्रह्मचर्य तथा तपस्यासे अपने जीवनको सूर्यरूपी ईश्वरकी खोजमें लगा दिया है, वे उत्तरी मार्गसे जाते और सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं। ये दिव्य सूर्य प्राणोंके मूलस्रोत हैं। ये वह अमृतमय, निर्भय तथा सर्वोत्कृष्ट स्थान हैं, जहाँसे किसीको पुनरागमनरूप संसृतिचक्रमें लौटना नहीं पड़ता, अतः मानवजीवनकी चरमसिद्धिके लिये इन सूर्यदेवकी साधना प्रत्येक मनुष्यका परम कर्तव्य है।

(अनुवादक—शशिशेखर त्रिपाठी, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

वेदोंमें श्रीसूर्यदेवकी उपासना

(लेखक—श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावाचस्पति, विद्यावागीश, विद्यानिधि)

वेदोंमें श्रीसूर्यकी उपासनाकी विवृत्ति भरी हुई है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (यजु० माध्यं० ७। ४२) सूर्य चलनशील पदार्थों तथा स्थिर वस्तुओंकी आत्मा हैं। यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रयसे ही स्थित है। सूर्यके अभावमे यह जगत् नहीं रह सकता। सूर्य ऊष्माके पुञ्ज हैं। जगत्मे ऊष्मा न होनेपर जल नहीं रह सकता। केवल बर्फ ही रहेगी। सूर्यसे ही अग्नि तथा विद्युत् प्राप्त होती है। वृष्टिका जल भी सूर्यकी कृपासे ही प्राप्त होता है।

सूर्य चेतन देवता हैं; इस विषयमे यहाँतक कहा जाता है कि सभी पदार्थ चेतन हुआ करते हैं। इसी अभिप्रायसे व्याकरण महाभाष्यमें एक वार्तिक आया है—**'सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात्'** (३। १। ७)—इस वार्तिकके विवरणमे कहा गया है—**'सर्वं चेतनावत्।'** वस्तुतः सभी पदार्थ चेतनावान् हैं।

'दुष्कृताय चरकाचार्यम्'में एक आधुनिक विद्वान्ने लिखा है—वस्तुतः अभिमानी देवताकी कल्पना भी अर्वाचीन विद्वानोंद्वारा सृष्ट है। प्राचीन आचार्य **'अचेतनेषु चेतनावत्'** अर्थात्—अचेतनमें चेतनवत् व्यवहार औपचारिक (गौण) मानते थे। इसी नियमसे ही **'शृणोत ग्रावाणः'** (कृ० य० तै० सं० १। ३। १३। १) आदि वैदिक वाक्योंका सामञ्जस्य संपन्न हो जाता है। उसमे अभिमानी देवताकी कल्पनाकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। हमारे अनुसार यह कथन युक्त नहीं है। यह वचन महाभाष्यस्थ उक्त वार्तिकके आधारसे प्रवृत्त प्रतीत होता है। वस्तुतः यहाँ

'चेतनावत्' पाठ है, **'चेतनवत्'** नहीं और यहाँ **'मतुप्'** प्रत्यय है, **'वति'** नहीं । (अर्थात् सभी पदार्थ चेतनावाले है, न कि चेतनके समान ।)

उक्त वार्तिकके विवरणमे महाभाष्यमें कहा है—**'अथवा सर्वं चेतनावत् ।' एवं हि आह—'कंसकः सर्पति, शिरीषोऽयं स्वपिति, सुवर्चला आदित्यमनु पर्यैति ।' अयस्कान्तमयः संक्रामति । ऋषिश्च (वेदम्) पठति—'शृणोत ग्रावाणः'** । (कृ० य० तै० सं० १ । ३ । १३ । १)

उपर्युक्त वाक्योको देकर सिद्ध किया गया है कि सभी दीख रही जड़ वस्तुएँ वेदानुसार चेतन हैं । श्रीकैयट तथा नागेशभट्टने भी यही सिद्ध किया है । वार्तमानिक विज्ञान भी यही सिद्ध करता है । इन अपूर्व बातोंको देखकर वैज्ञानिकोकी यह धारणा हो गयी है कि समस्त चराचरमें सारभूत वस्तु कोई भी नहीं और ससारमे कोई पदार्थ भी जड़ नहीं है । इसी कारण वैज्ञानिक लोग सूर्यमे भी प्रसन्नता-अप्रसन्नताके परमाणु मानने लगे है ।

इसका विवरण इस प्रकार है—कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी—लदनमे सूर्यके विपयमे एक लेक्चर हुआ था । उस व्याख्याताने कहा—उत्तरी अमेरिकाके ग्रेनलैंड प्रदेशमे एक दफीने (माणिक्य)का खोदना शुरू हुआ था । वहाँ दफीना तो मिला नहीं, एक देवमन्दिर अवश्य मिला । उसमे सूर्यकी एक मूर्ति है, उसके सामने एक हिंदू व्यक्ति प्रणाम कर रहा है । सामने ही अग्निसे धुआँ उठ रहा है, जिससे मालूम होता है कि अग्निमे कुछ सुगन्धित द्रव्य डाला गया है । इधर-उधर फूल पड़े है । यह सब दृश्य पत्थरोसे वनाया गया है ।

इस विचित्र सूर्य-मन्दिरसे मालूम हुआ कि किसी युगमे हिंदुओका राज्य अमेरिकातक फैला था । इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि हिंदुओंका विश्वास था कि सूर्य प्रसन्न तथा अप्रसन्न भी हो सकते है । यदि ऐसा न होता, तो एक हिंदू सूर्यकी इस प्रकार नमस्कारादि पूजा क्यो करता ? इस विषयको लेकर वैज्ञानिक ससारमे क्रान्ति उत्पन्न हो गयी ।

मिस्टर जार्ज नामक किसी विज्ञानके प्रोफेसरने सूर्यके विपयमे यह परीक्षा की कि सूर्यमे कृपाशक्ति है या नहीं ? हिंदुओंकी सूर्यपूजाका पता भारतीय प्राचीन इतिहाससे पहले ही था । मिस्टर जार्जने सोचा कि हिदुओकी सूर्योपासना क्या मूर्खतापूर्ण थी या वास्तविक ? इसकी एक दिन रोचक परीक्षा हुई । मईका महीना था । पूरे दोपहरके समय केवल पजामा पहनकर मि० जार्ज नगे शरीर धूपमें ठहरे । पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरकर वे कमरेमे गये । थर्मामीटरसे उन्होने अपना तापमान देखा । तीन डिग्रीतक बुखार चढा था । दूसरे दिन उस महाशयने श्रद्धासे फूल-फलोका उपहार तैयार किया । अग्निमे धूप जलाया । अब वे पूरे दोपहरमें नंगे शरीर धूपमें गये । उन्होने सूर्यके सामने श्रद्धासे फूल-फल चढ़ाये । हाथ जोड़कर प्रणाम किया । जब वे अपने कमरेमें गये तो उन्होने देखा कि आज वे ग्यारह मिनटतक सूर्यके सामने रहे । थर्मामीटरसे मालूम हुआ कि आज उनका तापमान नार्मल (सामान्य) रहा । उसका पारा ठंडककी ओर रहा ।

इससे उन्होने यह परिणाम निकाला कि सूर्य केवल अग्निका गोला और जड़ है, वैज्ञानिकोका यह सिद्धान्त गलत है । उसमे प्रसन्नता और अप्रसन्नताका तत्त्व भी विद्यमान है । यह विवरण वरालोकपुर (इटावा)की 'अनुभूत योगमाला' पत्रिकामे छपा था । वेदमें सूर्यके लिये कहा है—**'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः'** (ऋ० १ । १६४ । २१)—इससे सूर्यको बुद्धियुक्त वताया गया है और **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** (यजु० माध्यं० ३ । ३५)—इस मन्त्रके द्वारा उसी सूर्यसे धार्मिक लोग बुद्धिकी प्रार्थना किया करते हैं ।

इसीलिये वेदमें **'उद्यते नमः', 'उदायते नमः' 'उदिताय नमः'** (अथर्व० १७ । १ । २२) **'अस्तं यते नमोऽस्त्वस्तेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः'** (२३) सूर्यकी उदय और अस्तकी तीन दशाओंको नमस्कार किया गया है। इसी मूलको लेकर—

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातः सन्ध्या त्रिधा मता॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता॥

—सन्ध्योपासनाके ये तीन भेद बताये गये हैं।

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥

(मनु० ४ । ९४)

ऋषियोंकी सन्ध्या लम्बी होनेसे उनकी आयु भी लम्बी होती थी। उनका यश तथा ब्रह्म भी तेज होता था। इसको मनुस्मृतिमें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

पूर्वां सन्ध्यां जपन् तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यग् ऋक्षविभावनात्॥

(—मनु० २ । १०१)

सावित्री-मन्त्रकी मुख्यताका कारण अदृष्टमें जो भी हो, (क्योंकि यह वेदकी सारस्वरूप है) पर दृष्टमें भी मुख्य है। इसकी मुख्यताका कारण यह है कि इस मन्त्रमें बुद्धिकी प्रार्थना है। सूर्यसे बुद्धिकी प्रार्थना इस कारण है कि वे बुद्धिके अधिष्ठाता देव हैं। इनके बुद्धिके दाता होनेसे सूर्योदयके समय चोरोंकी चौर्य-प्रवृत्ति और जारोंकी जारता-प्रवृत्ति हट जाती है।

सूर्यसे ही वैज्ञानिकोंने एक ऐसी सूई बनायी है कि जिसके इन्जेक्शनसे कुलटा स्त्रियोंमें सद्बुद्धि उदित हो जाती है और सर्वसाधारणका भय हट जाता है। बुद्धिकी प्रार्थनासे ही वृद्धा कुमारी वर तथा वृद्धान्ध ब्राह्मण वररूपसे सब कुछ माँग ले सकता है। इस कारण सावित्री-मन्त्र बुद्धिदाता होनेसे सभी कुछ देनेवाला है। अतः उसकी महत्ता स्पष्ट है। एक वृद्धा कुमारीने पति, पुत्र, धान्य, गाय, यौवन आदि चाहते हुए तपस्या की। वरदाता देवताने साक्षात् होकर उसे केवल एक वर माँगनेके लिये कहा। उसने वर माँगा—'मैं अपने पुत्रको बहुत घी-दूध मिला सोनेके पात्रोंमें धान खाता हुआ देखना चाहती हूँ।' इस प्रकार उसने अपने यौवन, पति, पुत्र, सोना, धान्य और गाय आदिको माँग लिया। इसी प्रकार एक जन्मान्ध, निर्धन, अविवाहित ब्राह्मणकी भी कथा है।

देवताके मुखसे एक वरकी प्राप्ति जानकर उसने भी देवतासे वर माँगा, 'मैं अपने पोतेको गव्यसिंहासनपर बैठा देखना चाहता हूँ।' इस प्रकार उसने एक वरसे अपनी आँखें, धन, पुत्र, यौवन, विवाह, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि संतान भी माँग ली। यही बात है—बुद्धिकी प्रार्थना-की। हमारे जो कार्य सिद्ध नहीं होते, उसका कारण है बुद्धिकी विपरीतता। इसीलिये प्रसिद्ध है—

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।'

महाभारतमें देवताओंके लिये कहा है—देवता डंडा लेकर पशुपालकी भाँति पुरुषकी रक्षा नहीं करते। जिसकी वे रक्षा करना चाहते हैं, उसे बुद्धि दे दिया करते हैं। जिसे गिराना चाहते हैं—उसकी बुद्धि छीन लिया करते हैं (महाभारत, उद्योगपर्व ३४ । ८०-८१)। इससे जब बुद्धिकी महत्ता सिद्ध हुई तब बुद्धि-प्रद सावित्री-मन्त्रकी भी महत्ता सिद्ध हो गयी।

इसलिये इस वेदमाता सावित्रीका वेदमें महान् फल कहा है। (अथर्व० १९ । ७१ । १)—**'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्'** (अथर्व० १९ । ७१ । १)।

ऐसी वेदमाताके पति सूर्यदेवका वेदमें कितना भारी फल लिखा है। **'योऽसौ आदित्ये पुरुषः सोऽसावहम्'** (यजु० माध्य० ४० । १७)। ऐसे सूर्यदेवकी सन्ध्या आदिद्वारा उपासना करना सभी द्विजोंका कर्तव्य है।

वैदिक वाङ्मयमें सूर्य और उनका महत्त्व

(लेखक—आचार्य प० श्रीविष्णुदेवजी उपाध्याय, नव्यव्याकरणाचार्य)

विश्वमें जीवन और गतिके महान् प्रेरक, हमारी इस पृथ्वीको अपने गर्भसे उत्पन्न करनेवाले और गतिमान्‌के रूपमे सम्पूर्ण संसारके सभी गतिमानोंमें प्रमुख सूर्य[1] चराचर विश्वके संचालक; घटी, पल, अहोरात्र, मास एवं ऋतु आदि समयके प्रवर्तक प्रत्यक्ष देवता हैं। उनका नाम सौर-मण्डल-वाचक शब्दके (व्युत्पत्ति-मूलक स्वारस्यके) अनुरूप है। यही कारण है कि सूर्यकी कल्पनामें सौर-शरीरका भान बराबर बना रहता है[2]।

ऋग्वेदमें सूर्यदेवको चौदह सूक्त समर्पित हैं। इन सूक्तोंमे प्रायः सूर्य शब्दसे भौतिक सौर-मण्डलका बोध होता है; यथा—ऋषि हमें बतलाते हैं कि आकाशमें सूर्यका ज्वलन्त प्रकाश मानो अमूर्त अग्निदेवका मुख है[3]। मृतककी चक्षु (आँखें) उसमें चली जाती हैं[4]। सूर्य विराट् ब्रह्मकी आँखोंसे उत्पन्न हैं। वे सूर्यदेव दूरद्रष्टा[5], सर्वद्रष्टा[6] और अशेष जगतीके सर्वेक्षक हैं[7]।

---

१. 'सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद् व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्यः। यद्वा सुष्ठु ईर्यते प्रकाशप्रवर्षणादिव्यापारेषु प्रेर्यते इति सूर्यः'।—(ऋग्वेद ९। ११४। ३ पर सायण)

और भी देखें—'सूते श्रियमिति सूर्यः' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर); 'स्वरति—आचरति कर्म स्वीर्यते अर्च्यते भक्तैरिति सूर्यः' (निघण्टु ३। १), तुलनीय—'सूर्यकी निष्पत्ति वैदिक 'स्वर' से हुई, जो ग्रीक helios से सम्बद्ध है'। (मैकडॉकल, 'वैदिक देवशास्त्र', पृष्ठ ६६) तथा—

सूर्यः सरति भूतेषु सुवीरयति तानि वा। सु ईर्यत्वाय यो ह्येषः सर्वकर्माणि सन्दधत्॥

(बृहद्देवता ७। १२८। १)

२. तुलनीय—अपामीवा बाधते वेति सूर्यम्॥ (ऋ० १। ३५। ९)

और भी देखें—उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्॥ (ऋ० १। १२४। १)

३. अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य॥ (ऋ० १०। ७। ३)

४. सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा॥ (ऋ० १०। १६। ३) और भी देखें—(१) चक्षोः सूर्यो अजायत।

(ऋ० १०। ९०। १३)

(२) चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः॥ (ऋ० १०। १५८। ३)

(३) चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः॥ (ऋ० १०। १५८। ४)

इसीलिये अथर्ववेदमें सूर्यको चक्षुओंका पति बताया गया है और उनसे अपनी रक्षाकी कामना की गयी है—

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु॥ (अथर्व० ५। २४। ९)

अथर्ववेदमे यह उल्लेख भी है कि वे प्राणियोके एक नेत्र हैं, जो आकाश, पृथिवी और जलको परोवर (अत्यन्त श्रेष्ठता—निपुणता)से देखते हैं।

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽतिपश्यति। सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरारुरोह दिवं महीम्॥

(अथर्व० १३। १। ४५)

तुलनीय—'त्वं भानो जगतश्चक्षुः'—(महाभारत ३। १६६)

५. श नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु॥ (ऋ० ७। ३५। ८)

और भी देखे—दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत॥ (ऋ० १०। ३७। १)

६. सूराय विश्वचक्षसे॥ (ऋ० १। ५०। २)

७. त सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति॥ (ऋ० ४। १३। ३)

सूर्यके द्वारा उद्बुद्ध होनेपर मनुष्य अपने लक्ष्योंकी ओर निकल पड़ते हैं और स्वकर्तव्योंको पूरा करनेमें व्यस्त हो जाते हैं[८]। सूर्य मानवजातिके लिये उद्बोधक बनकर उदित होते हैं।[९] वे चर और अचर विश्व—सभीकी आत्मा तथा उनके रक्षक हैं[१०]। उनके (दिव्य) रथ[११]-को एक ही घोड़ा (सारथि अथवा सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान दिव्यशक्ति)[१२] परिवहन करता है, जिसका नाम एतश है[१३]। उनके रथको अगणित घोडे अथवा घोड़ियाँ[१४] खींचते हैं। ये संख्यामें सात हैं[१५]। ये घोडे (अथवा घोड़ियाँ) अन्य कुछ नहीं, सूर्यकी किरणें ही हैं[१६]। ऐसा अन्यत्र भी कहा गया है। 'सूर्यकी किरणें ही उन्हें लाती हैं[१७]।' इन किरणोंका प्रादुर्भाव यतः सूर्यके रथसे होता है, अतः किरणों (घोड़ियों) को रथकी (सात) पुत्रियोंके रूपमें ग्रहण किया गया है[१८]।

एक चक्र-धारी[१९] सूर्यके पथका निर्माण वरुणने किया है[२०]। इस कार्यमें उनके सहायकोंका नाम अन्यत्र मित्र

---

८. उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ॥—(ऋ० ७।६३।१)
और भी देखें—(१) दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति ॥ (ऋ० ७।६३।४)
(२) नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ (ऋ० ७।६३।४)
९. उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ॥ (ऋ० ७।६३।२)
और भी देखें—एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥ (ऋ० ७।६३।३)
१०. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (ऋ० १।११५।१) (यजु० ७।४२)
और भी देखें—विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपाः ॥ (ऋ० ७।६०।२)
तुलनीय—त्वमात्मा सर्वदेहिनाम् ॥ (महाभारत ३।१६६)
११. महाभारत (५।१७०) में भी इनके दिव्य रथका उल्लेख मिलता है।
१२. मेरे विचारसे एकवचन 'एतश' शब्द या तो सारथिके लिये या सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान दिव्यशक्तिके लिये प्रयुक्त हुआ है। वह इसलिये कि ऋग्वेदमें अन्यत्र घोड़ियों (हरितः) तथा 'एतश'में भेदकर उसे उनके ऊपर बताया गया है। यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥ (ऋ० ५।२९।५) इस प्रकार 'एतश' सारथिके लिये सुनिश्चित होता है; जब कि एक अन्य स्थल, जहाँ सविताको एतश बताते हुए उनके द्वारा पार्थिव लोकोंको मापे जानेका उल्लेख है—यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ (ऋ० ५।८१।३)—एतशको दिव्यशक्ति घोषित करता है।
१३. समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ (ऋ० ७।६३।२) तुलनीय—अयुक्त सूर एतशं पवमानः ॥ (ऋ० ९।६३।७)
१४. भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य॥ (ऋ० १।११५।३ और भी ऋ० १०।३७।३ तथा ऋ० १०।४९।७)
१५. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ॥ (ऋ० १।५०।८, १।५०।९, और—ऋ० ७।६०।३)
१६. त सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ (ऋ० ४।१३।३; और भी देखें ४।१३।४)
१७. तत्रैव (वहीं)
१८. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ॥ (ऋ० १।५०।९)
१९. मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ॥ और (ऋ० ४।३०।४)
ऋग्वेदके दो अन्य स्थलोंपर सूर्य-चक्रका उल्लेख इन शब्दोंमें है—
(१) त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ॥ (ऋ० ४।२८।२)
(२) प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य ॥ (ऋ० ५।२९।१०)
२०—(ऋ० १।२४।८)

*

और अर्यमा लिया गया है[२१]। वरुणने ऐसा क्यों किया ! सम्भवतः इसलिये कि सूर्य मापका साधन हैं[२२] और इस फीतेसे वरुण अपना काम करते हैं[२३]। अपनी सुवर्णमय नौकाओंसहित पूषा उनका सन्देशवाहक है। पूषाकी नौकाएँ अन्तरिक्षरूपी समुद्रमें संतरण करती हैं[२४]। अग्नि और यज्ञके समान उनको प्रकट करनेवाली भी उषा है[२५]। वे उषाओंके उत्सङ्गमेंसे चमकते हैं[२६]। इसीलिये उन्हें एक स्थानपर उपमाके रूपमें उषाके द्वारा लाया गया श्वेत और चमकीला घोड़ा बताया गया है[२७]। उनके पिता (क्रीड़ाक्षेत्र) द्यौ हैं[२८]। देवताओंने[२९] उन्हें, जबकि वे समुद्रमें विलीन थे, वहाँसे उभारा[३०] और अग्निके ही एक रूपमें[३१] उन्हें द्यौमें टाँगा[३२]। उनकी उत्पत्ति विश्वपुरुषके नेत्रसे हुई है[३३]। वही विश्वपुरुषके नेत्र भी हैं[३४]। वह एक उड़नेवाले[३५] पक्षी हैं[३६], पक्षियोंमें भी बाज[३७]। वह आकाशके रत्न हैं[३८]। उनकी उपमा एक चित्र वर्णके पत्थरसे दी गयी है, जो आकाशके मध्यमे विराजमान है[३९]। उन ज्योतिष्मान् आयुधको मित्र और वरुण बादल और वर्षासे

२१. (ऋ० ७। ६०। ४ और भी देखें—७। ८७। १)

२२. (ऋ० २। १५। ३, ऋ० ३। ३८। ३)

२३. मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण॥ (ऋ० ५। ८५। ५)

२४. यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति। ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य॥ (ऋ० ६। ५८। ३)

२५. (ऋ० ७। ८०। २ और भी देखें—ऋ० ७। ७८। ३)

२६. विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः॥ (ऋ० ७। ६३। ३)

२७. (ऋ० ७। ७७। ३; तुलनीय ऋ० ७। ७६। १)

२८. दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत॥ (ऋ० १०। ३७। १) द्युलोकसे रक्षा करनेके लिये सूर्यसे की गयी प्रार्थनासे तुलनीय सूर्यो नो दिवस्पातु॥ (ऋ० १०। १५८। १) और भी देखें—सूर्यो द्युस्थानः॥ (निरुक्त ७। ५)

२९. इन देवताओंमे इन्द्र, विष्णु, सोम, वरुण, मित्र, अग्नि आदिका नाम उल्लेखनीय है।

३०. यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत। अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन॥ (ऋ० १०। ७२। ७)

३१. अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता अग्नि उसके उपासक पुरोहितोंकी दृष्टिमे द्युलोकमे सूर्यके भीतर प्रवर्तमान अग्निके रूपमे आविर्भूत हुए हैं।

३२. यदेदेनमदधुर्यज्ञियांसो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्॥ (ऋ० १०। ८८। ११)

३३. चक्षोः सूर्यो अजायत॥ (ऋ० १०। ९०। १३)

३४. मुक्तिकोपनिषद्‌के उस स्थलसे तुलनीय, जिसमें उन्हे और चन्द्रमाको एक साथ, विराट्‌रूप परमात्माका नेत्र बताया गया है। 'चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ।' और भी देखे स्मृतिवचन—चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे।

३५. उदपप्तदसौ सूर्यः॥ (ऋ० १। १९१। ९)

३६. पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया॥ (ऋ० १०। १७७। १) और भी देखें—पतङ्गो वाच मनसा बिभर्ति॥ (ऋ० १०। १७७। २।) उस मन्त्रसे तुलनीय, जिसमें उन्हें अरुणको सुपर्ण बताया गया है। उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः॥ (ऋ० ५। ४७। ३)

३७. (ऋ० ७। ६३। ५, ऋ० ५। ४५। ९)

३८. दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति॥ (ऋ० ७। ६३। ४) और भी देखें—रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत्॥ (ऋ० ६। ५१। १)

३९. मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा॥ (ऋ० ५। ४७। ३) और भी देखें—अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुर्ह वै तमश्मेत्याचक्षते॥ (शतपथब्राह्मण ६। १। २। ३)

आवृत करते हैं[४०] और जब मित्र तथा वरुण उन्हें अपने बादल और वर्षाके आवरणसे मुक्त करते हैं, तो वे मित्र और वरुणके द्वारा आकाशमें छोड़े गये ज्योतिष्मान् रथ प्रतीत होते हैं[४१]।

सूर्य अनिशित चराचर (प्रकाशके प्राणियों) के लिये चमकते हैं[४२]। उनका यह चमकना मनुष्यों और देवताओंके लिये एक समान है[४३]। अन्धकारको चर्मके समान लपेटते हुए[४४] वे उसका विध्वंस करते हैं[४५]। इस प्रकार उन्हें अन्धकारके प्राणियों और यातुधानोंको पराजित करते देर नहीं लगती[४६]। वे दिनोंको नापते[४७] और आयुके दिनोंको बढ़ाते हैं[४८]। वे बीमारी और प्रत्येक प्रकारके दुःस्वप्नका विनाश करते हैं[४९]। जीवनका अर्थ ही सूर्योदयका वर्णन करना है[५०]। सभी प्राणी उनपर अवलम्बित हैं[५१]। अपनी महत्ताके कारण वे देवोंके दिव्य पुरोहित (नायक) हैं[५२]। आकाश उन्हींके द्वारा ठहरा हुआ है[५३]। उन्हें विश्वकर्मा भी कहा गया है[५४]। सभी प्राणियोंको और उनके भले-बुरे कर्मोंको निहारनेमें समर्थ होनेके कारण[५५] वे मित्र, वरुण और अग्निकी आँख हैं;[५६] अर्थात् मित्र, वरुण और अग्नि उनसे ही सब प्राणियोंके भले-बुरे कर्मोंकी जानकारी प्राप्त करते हैं। इसीलिये ऋग्वेदमें यत्र-तत्र उनके उदयके समय उनसे प्रार्थना की गयी है कि वे मित्र, वरुण एवं अन्य देवताओंके समक्ष मनुष्यों-

४०. (ऋ० ५। ६३। ४)
४१. सूर्यमाधत्थो दिवि चित्र्यं रथम्॥ (ऋ० ५। ६३। ७)
४२. उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्॥ (ऋ० ७। ६३। १)
४३. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्॥ (ऋ० १। ५०। ५)
४४. चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि॥ (ऋ० ७। ६३। १) तुलनीय—दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः॥ (ऋ० ४। १३। ४)
४५. येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमः॥ (ऋ० १०। ३७। ४)
४६. उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥ (ऋ० १। १९१। ८) और भी देखें—(१) (ऋ० १। १९१। ९) (२) (ऋ० ७। १०४। २)
४७. (ऋ० १। ५०। ७)
४८. (ऋ० ८। ४८। ७)
४९. (ऋ० १०। ३७। ४)
५०. ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम्॥ (ऋ० ४। २५। ४) और भी देखें—पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्॥ (ऋ० ६। ५२। ५)
५१. सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥ (ऋ० १। १६४। १४)
५२. मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितः॥ (ऋ० ८। ९०। १२)
५३. सूर्येणोत्तभिता द्यौः॥ (ऋ० १०। ८५। १)
५४. येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥ (ऋ० १०। १७०। ४)
५५. पश्यञ्जन्मानि सूर्य॥ (ऋ० १। ५०। ७) और भी देखें—(१) ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्॥ (ऋ० ६। ५१। २) (२) उभे उदेति सूर्यो अभिज्मन्। विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्॥ (ऋ० ७। ६०। २)
(३) उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्। अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत॥ (ऋ० ७। ६१। १)
५६. चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः॥ (ऋ० १। ११५। १) और भी देखें—(६। ५१। १; ७। ६१। १; ७। ६३। १; १०। ३७। १) अवेस्तामें भी 'ह्वरे' अर्थात् सूर्यके शीघ्रगामी घोड़ोंको अहुरमज्दा (वरुण) का नेत्र बताया गया है।

को निष्पाप घोषित करें[५७]। एक स्थलपर घटाओंके मध्य घिर गये सूर्यके आलंकारिक वर्णनका सार है कि इन्द्रने उनका हनन किया[५८] और उनके चक्रको चुरा लिया[५९]। (इन्द्र वर्षा-बादलके देवता हैं।)

सूर्य रात्रिके समय निम्नतलसे यात्रा करते हैं[६०]। उनका रात्रिके एक ओर उदय और दूसरी ओर अस्त होता है[६१]। वे इन्द्रके अधीन हैं[६२]। अग्निमें दी हुई आहुति वे ही प्राप्त करते हैं। उससे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है[६३]। उनको कभी-कभी एक असुर (राहु) छायारूपसे ग्रस लेता है[६४]। अजस्र होनेके कारण सदा प्रकाशित उनका उच्चतम पद ही पितरोंका आवास है[६५]। अश्वोंका दान करनेवाले उनके साथ निवास करते हैं[६६]। उनका रक्षक

५७. यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् ॥ (ऋ० ७ । ६० । १) और (ऋ० ७ । ६२ । २)

५८. संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ॥ (१० । ४३ । ५)

५९. मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ॥ (ऋ० १ । १७५ । ४) और भी देखें—यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ (ऋ० ४ । ३० । ४)

६०. अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ॥ (ऋ० ६ । ९ । १) और (ऋ० ७ । ८० । १)

सूर्यके रात्रिपथके विषयमे ऐतरेयब्राह्मणका मत यह है कि रात्रिके समय सूर्यकी चमक ऊपरकी ओर होती है और फिर वह इस प्रकार गोल घूम जाता है कि दिनमें उसकी चमक नीचेकी ओर हो जाती है। 'रात्रीमेवावस्तात्कुरुतेऽहः परस्तात्' (३ । ४४ । ४) । ऋग्वेदकी एक उक्तिके अनुसार सूर्यका प्रकाश कभी 'रुशत्' अर्थात् चमकनेवाला और कभी 'कृष्ण' होता है । (ऋ० १ । ११५ । ५)

एक दूसरे मन्त्रमें वर्णित है कि पूर्वकी ओर सूर्यके साथ चलनेवाला 'रजस्' उस प्रकाशसे भिन्न है, जिसके साथ वह उदय होता है । देखें—(ऋ० १० । ३७ । ३)

६१. (ऋ० ५ । ८१ । ४)

६२. यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ॥ (ऋ० १ । १०१ । ३)

६३. अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥
(मनुस्मृति ३ । ७६)

६४. सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविध्यदासुरः ॥ ऋग्वेद, और भी देखें—राहुसे कहा गया है—

पर्वकाले तु सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौ छादयिष्यसि । भूमिच्छायागतश्चन्द्रं चन्द्रगोऽर्कं कदाचन ॥
(ब्रह्मपुराण)

'तुम पूर्णिमा आदि पर्वोंके दिनोंमें चन्द्रमा और सूर्यको आच्छादित करोगे । कभी पृथिवीकी छायारूपसे चन्द्रपर और कभी चन्द्रकी छायारूपसे सूर्यपर तुम्हारा आक्रमण होगा।'

पृथिवीकी छाया चन्द्रमापर पड़नेसे चन्द्रग्रहण और चन्द्रमाकी छाया सूर्यपर पड़नेसे सूर्यग्रहण होनेके वैज्ञानिक रहस्योद्घाटनसे तुलनीय ।

६५. यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः । लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधि ॥ (ऋ० ९ । ११३ । ९)

६६. उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण । हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्रतिरन्त आयुः ॥ (ऋ० १० । १०७ । २)

सूर्यका सांनिध्य प्राप्त करनेवाले एक ऋषिके सम्बन्धमें वर्णित है कि वे ज्ञानद्वारा स्वर्णिम हंस बनकर स्वर्गमें गये और वहाँ उन्होंने सूर्यका सांनिध्य प्राप्त किया । अहीना हाऽऽश्वथ्यः । सावित्रं विदाञ्चकार । स ह हंसो हिरण्मयो भूत्वा स्वर्गलोकमियाय । आदित्यस्य सायुज्यम् ॥ (तै० ब्रा० ३ । १० । ९ । ११) और भी देखें—किं तद् यज्ञे यजमानः कुरुते येन जीवन्तसुवर्गं लोकमेतीति जीवग्रहो वा एष यददाभ्योऽनभिषुतस्य गृह्णाति । जीवन्तमेवैनं सुवर्गं लोकं गमयति ॥
(तै० सं० ६ । ६ । ९ । २-३)

सहस्रनयन कविको बतलाया गया है[६७]। ऋग्वेदमें इनको समर्पित एक सुन्दर सूक्तका भाव है—सर्वभूतोंके ज्ञाता प्रकाशमान सूर्यकी ध्वजाएँ आकाशमें ही गमन करती हैं। सर्वदर्शी सूर्यकी रश्मियोंके प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोरोंके समान छिप जाते हैं। सूर्यकी ध्वजारूप रश्मियाँ प्रज्वलित अग्निके समान मनुष्योंकी ओर जाती हुई स्पष्ट दिखायी देती हैं। हे सूर्य! तुम वेगवान् सबके दर्शन करने योग्य हो। तुम प्रकाशवाले सबको प्रकाशित करते हो। सूर्य! तुम देवगण, मनुष्य तथा सभी प्राणियोंके निमित्त साक्षात् हुए तेजको प्रकाशित करनेके लिये आकाशमें गमन करते हो। हे पवित्रताकारक वरुण (सूर्य)! तुम जिस नेत्रसे मनुष्योंकी ओर देखते हो, हम उस नेत्रको प्रणाम करते हैं। हे सूर्य! रात्रियोंको दिनोंसे पृथक् करते हुए और जीवमात्रको देखते हुए तुम विस्तृत आकाशमें गमन करते हो। हे दूरद्रष्टा सूर्य! तेजवन्त रश्मियोंसहित रथारोही हुए तुमको सात घोड़े चलाते हैं। सूर्य रथकी पुत्रीरूप स्वयं उड़नेवाली सात अश्वियोंको रथमें जोड़कर आकाशमें गमन करते हैं; (ऐसे) अन्धकारके ऊपर विस्तृत प्रकाशको फैलाते हुए देवताओंमें श्रेष्ठ सूर्यको हम प्राप्त हों[६८] (महाभारतमें उपलब्ध एक स्तोत्रके अनुसार वे सम्पूर्ण प्राणियोंकी योनि, कृत्य करनेवालोंका आचार, सर्वसांख्योंकी गति, योगियोंके परम परायण और मुमुक्षा-काङ्क्षियोंकी गति हैं[६९]। यही नहीं, वे उस सहस्रयुगका आदि और अन्त हैं, जो ब्रह्माका दिन कहलाता है[७०]। मनु, मनुपुत्रों, मनुसे उत्पन्न सम्पूर्ण जगत् और सम्पूर्ण मन्वन्तरोंके अधिपति होनेके कारण वे प्रलयका समय उपस्थित होनेपर सब कुछ भस्म कर देनेवाले संवर्त्तक अग्निको अपने क्रोधसे उत्पन्न करते हैं[७१]।)

सूर्य अनेक हैं; वह इस प्रकार कि प्रत्येक ब्रह्माण्डकी[७२] केन्द्रशक्ति उसके अपने एक पृथक् सूर्य हैं[७३] और श्रीभगवान्‌का विराट् स्थूल देह अनन्त-

---

६७. सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्। (ऋ० १०। १५४। ५)

६८. देखिये (ऋ० वे० १। ५०। १—१०) अथर्ववेदमें उपलब्ध इनको समर्पित एक विस्तृत सूक्तका कुछ अंश इस सूक्तका ही प्रतिरूप प्रतीत होता है। देखें (१३। २)

६९. त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्। त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्।
अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षुताम्॥ (महाभारत ५। १६६)

७०. यदहो ब्रह्मणः प्रोक्तं सहस्रयुगसम्मितम्। तस्य त्वमादिरन्तश्च कालज्ञैः सम्प्रकीर्तितः॥
(महाभारत ५। १७०)

७१. (वही ५। १८५)

७२. ज्योतिष-शास्त्रके सिद्धान्तानुसार पञ्चभूतमय सूर्यप्रधान ब्रह्माण्डका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—'प्रत्येक ब्रह्माण्डकी केन्द्रशक्ति सूर्य है'। तदनुसार ये ब्रह्माण्डवर्ती सूर्य इस ब्रह्माण्डके केन्द्रस्थानीय हैं। समस्त ग्रह-उपग्रह उन्हींकी आकर्षण-विकर्षण-शक्तिके प्रभावसे उनके चारों ओर अनुक्षण प्रदक्षिणा किया करते हैं। समस्त ब्रह्माण्डमें एतदतिरिक्त ज्योतिष्मान् कोई भी वस्तु नहीं है। समस्त ज्योतिके आधाररूप सूर्यसे ही ब्रह्माण्डके अन्तर्गत समस्त ग्रह-उपग्रहमें ज्योतिका सञ्चार होता है। हमारे सूर्य-परिवारमें अद्यतक ऐसे २६८ ग्रह-उपग्रह देखे गये हैं, जो सूर्यकी ज्योतिसे ज्योतिष्मान् होकर उनके चारों ओर घूमते हैं। ग्रहगण सूर्यकी प्रदक्षिणा करते हैं और उपग्रहगण ग्रहोंकी प्रदक्षिणा करते हैं। इन सब ग्रह-उपग्रहोंको लेकर सूर्य ध्रुवके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं।

७३. प्रो० हेण्डरसन (Prop. A. Henderson) का वचन है—"it would take ray of light a billion years to go 'around' the Universe, travelling at the rate

कोटि ब्रह्माण्डोंसे सुशोभित है[७४]। प्रत्येक सूर्य सविता[७५] हैं। सविता[७६] अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप परब्रह्म परमात्मा[७७]। तात्पर्य यह है कि सूर्य भौतिक सौर-मण्डल-के स्थूल देवता हैं, जबकि सविता उनमें अन्तर्निहित दिव्यशक्तिका ध्यानावस्थित महर्षियोंके अन्तःकरणमें

---

of 186,000 miles per second. The sun is the supreme existence in the whole solar system All of the sun we are filted to receive comes to us as the sunshine, illuminating, vivifying, pleasant, bringing into existence all that is living on this plane."—ब्रह्माण्ड इतना बड़ा है कि प्रति सेकंड १८६००० मील चलनेवाली एक रश्मिको ब्रह्माण्डकी प्रदक्षिणा करनेमे करोड़ों वर्ष लग जायगा। लिटरेरी डाइजेस्टकी इस सम्मतिसे तुलनीय—

"Our own universe—we mean this limited Einsteinian universe—is a thousand million times larger than the region now telescopically accessible to us.".—दूरबीनसे जहाँतकका पता लगता है, उससे कई करोड़ मीलतक ब्रह्माण्डका विस्तार है। इस ब्रह्माण्डमे सबसे उत्तम वस्तु सूर्य हैं। उनकी किरणोंमें जो प्राणशक्ति है, उसके बलसे ही विश्वके सब जड़-चेतन पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।

७४. आइन्स्टीन (Einstein) के अनुसार ब्रह्माण्डकी सीमा तो है; किंतु इसकी सीमाका पता लगाना असम्भव है। इसके चारों ओर और भी ब्रह्माण्ड होंगे। ".. the universe is finite but unbounded; 'space being affected with a curvature which makes it return upon itself' Outside, there may be other universes—admits Einstein."

७५. यास्क 'सविता'की परिभाषा करते हुए कहते हैं—'सविता सर्वस्य प्रसविता' (निरुक्त १० । ३१)—'सविता' अर्थात् सबका प्रेरक। आचार्य शकरके अनुसार, 'सर्वस्य जगतः प्रसविता सविता' (विष्णुसहस्रनाम १०७ पर आचार्य शंकर)। विष्णुपुराणके शब्दोंमें, 'प्रजाना प्रसवनात्सवितेति निगद्यते' (१ । ३० । १५)। शतपथब्राह्मणमें कहा गया है। 'सविता देवानां प्रसविता' (सविता देवोंके भी उपजीव्य हैं) (१ । १ । २ । १७)।

उपर्युक्त परिभाषाओं तथा अन्य मिलती-जुलती अनेक परिभाषाओंके सम्बन्धमें ए० ए० मैकडॉनलके इस व्याख्यात्मक वचन-से प्रकृत विषय तुलनीय कि "सू धातुका, जिससे 'सविता' शब्द बना है, इस शब्दके साथ लगातार प्रयोग हुआ है और वह भी एक ऐसे ढगसे जो कि ऋग्वेदकी अपनी विशेषता है। उन्हीं कार्योंकी अभिव्यक्ति दूसरे किसी भी देवताके सम्बन्धमें किसी और ही धातुसे की गयी है। साथ ही 'सविता'के सम्बन्धमे न केवल सू धातुका, अपितु इससे निष्पन्न अनेक शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है, जैसे कि प्रसवितृ और प्रसव। बार-बार आनेवाले इन एक धातुज प्रयोगोंसे स्पष्ट हो जाता है कि इस धातुका अर्थ 'प्रेरित करना', 'उद्बुद्ध करना' और 'प्रचोदित करना' रहा है।"

पुष्टिके लिये इस विशिष्ट प्रयोगके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अन्तमें कहा है कि 'स्पष्ट है कि **'सू'** धातुका यह प्रयोग प्रायः सविताके लिये ही हुआ है। ('वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ ७४–५)

७६. अनेक मन्त्रोंमें सूर्य और सविता अविविक्त ढगसे एक ही देवता बनकर आते हैं। यथा—

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन्। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥

(ऋ० ४ । १४ । २)

"सविता देवने अपनी ज्योतिको ऊँचा उभारा है और इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकको प्रकाशित किया है; सूर्य प्रखरताके साथ चमकते हुए द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षको अपनी किरणोंसे आपूरित कर रहे हैं"।

एक और सूक्तके प्रथम—(ऋ० ७ । ६३ । १),

द्वितीय—(ऋ० ७ । ६३ । २)

और चतुर्थ—(ऋ० ७ । ६३ । ४)

प्रादुर्भूत आध्यात्मिक प्रेरणाके अनुसार वर्णित रूप[७८] । (क्रमशः)

—मन्त्रोंमें सूर्यका वर्णन उन्हीं पदोंके द्वारा हुआ है, जो प्रायः सविताके लिये प्रयुक्त होते हैं; और तृतीय मन्त्रमें तो सविताको स्पष्टतया सूर्यका तद्रूप कहा गया है ।

यही नहीं, अन्य अनेक सूक्तोंमें भी दोनों देवताओंको पृथक् करके देखना कठिन हो गया है । देखिये—

(१) (ऋ० १० । १५८ । १, २, ३ और ५)

(२) (ऋ० १ । ३५ । १—११) (३) (ऋ० १ । १२४ । १)

शत० ब्रा० में भी देखें—'असौ वै सविता य एष सूर्यस्तपति' ॥ (३ । २ । ३ । १८) (इसमें अभिन्नता स्पष्ट है ।)

यद्यपि निरुक्तमें भी कहा गया है—'आदित्योऽपि सवितोच्यते' ॥ (१० । ३२), तथापि उनकी दृष्टिमें सविताका काल अन्धकारकी निवृत्ति होनेके उपरान्त आता है । "सविता व्याख्यातः । तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्णरश्मिर्भवति" (नि० १२ । १२) । इसी प्रकार ऋग्वेदके मन्त्र ५ । ८१ । ४ पर सायण भी सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयसे अस्ततक सूर्य कहते हैं—'उदयात् पूर्वभावी सविता, उदयास्तमयवर्ती सूर्य इति ।' परंतु यदि ऋषियोंने सूर्यको उदयके पूर्व सविता और उदयास्ततक सूर्यके रूपमे देखा होता तो उनके द्वारा सूर्योदयके पश्चात् भी स्तोताको प्रेरित करनेके लिये सविताकी मित्र, अर्यमा और भगके साथ स्तुति न की जाती (ऋ० ७ । ६६ । ४) ।

यही नहीं, ऐसी स्थितिमें अन्यत्र (१० । १३९ । १) उन्हें 'सूर्यरश्मियोंसे सम्पन्न' विशेषणसे युक्त भी कभी न किया जाता—'सूर्यरश्मिहरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदं अयान् अजस्रम्' फिर, सविताकी स्तुति अस्तंगामी सूर्यके रूपमें भी की गयी है (आगे पढ़िये) ।

अतः सविताको संपूर्ण ब्रह्माण्डोंके सूर्योंमें एक समान विराजमान प्रेरक दिव्यशक्तिरूप परब्रह्मपरमात्मा-अर्थमें **ग्रहण** करना ही अधिक समीचीन है । आर्य ऋषियोंने इसी रूपको ग्रहण कर सवितृ-मण्डल मध्यवर्ती नारायणको ध्यातव्य **बताया है** ।

७७. हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां बाधते वेति सूर्यम् ·············· ॥

(ऋ० १ । ३५ । ९)

और भी देखें—उत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ॥ (ऋ० ५ । ८१ । ४)

तुलनीय—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने । यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(ऋ० १० । १२१ । ५-६)

७८. भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

(गीता १५ । १२)

कठोपनिषद् (२ । ३ । १५)में वर्णित है—'परमात्माकी ज्योतिसे ही सूर्य, चन्द्र आदिमें ज्योति आती है और उसीसे यह सारा संसार आलोकित है'—तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

और भी देखें—स यथा सैन्धवघनो अनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नो रसघन एवैवं वा अरे अयमात्मा अनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ।

'जिस प्रकार सैन्धवखण्ड भीतर-बाहर सर्वत्र ही लवणमय है, उसी प्रकार आत्मा भी भीतर-बाहर सर्वत्र ज्ञानमय है । उसीकी चित्सत्ताका आध्यात्मिक विलास ज्ञानरूपसे वेदके द्वारा, अधिदैव विलास शक्तिरूपसे सूर्यात्माके द्वारा और अधिभूत विलास (स्थूल) ज्योतिरूपसे सूर्यगोलक, अग्नि तथा अन्यान्य ज्योतिष्कगणके द्वारा दृश्यसंसारमे विलसित है ।'

तुलनीय—विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते ॥ (छान्दोग्योपनिषद् ३ । १९ । १—४)

श्रीसूर्य-तत्त्व-चिन्तन

(लेखक—डा० श्रीत्रिभुवनदास दामोदरदासजी सेठ)

ऋग्वेद कहता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

(१ । ११५ । १)

'सूर्य सबकी आत्मा हैं'—प्राणस्वरूप होनेसे वे सबकी आत्मा हैं। उषाके बाद ही सूर्यका उदय होता है। सूर्यके प्रत्यक्ष देव होनेसे उनकी पूजाके लिये किसी भी प्रकारकी मूर्तिकी आवश्यकता नहीं रहती।

ऋग्वेद आगे कहता है—

नः सूर्यस्य संदृशो ययोथाः (२ । ३३ । १)

हम सूर्यके प्रकाशसे कभी दूर न रहें। सूर्य स्थावर-जङ्गम सभीकी आत्मा हैं। वेदोंने सूर्यका महत्त्व प्रतिपादित किया है। यदि सूर्य न हों तो पलभरके लिये भी स्थावर-जङ्गम जगत् अपना अस्तित्व न टिका सके। सूर्य सबका प्राण है।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

(ऋ० १० । ११० । ३)

'परमेश्वरने सूर्य और चन्द्रमाको यथापूर्व—पूर्व कल्पवत्-निर्माण किया है।' यहाँ सूर्य प्राण हैं और चन्द्रमा रयि है। स्त्री शक्तिको रयि कहते हैं। प्राण स्वयंप्रकाशी है और रयि परप्रकाशी है। चन्द्रमाका प्रकाश सूर्यसे लिया हुआ प्रकाश है। ब्रह्मका प्रथम आविष्कार आदित्य या सूर्य ही है, जिससे पूरा सौर मण्डल बना है। प्रश्नोपनिषद् (१ । ५) कहता है—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः ।

'निःसंदेह सूर्य ही प्राण हैं और चन्द्रमा ही रयि है।'

'यत् सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।' (प्र० उ० १ । ६)

सूर्यकी किरणोंसे ही सम्पूर्ण जगत्में प्राणतत्त्वका संचार होता है। जहाँ प्राण पहुँचता है, वहाँ ही जीवन होता है। अतः घरोंकी रचना ऐसी बनायी जाती है कि उनमें अधिक-से-अधिक सूर्यकी रश्मियाँ आयें और घरको शुद्ध करें। रोगोत्पादक कीटाणुओंका विनाश इन्हीं सूर्य-रश्मियोंसे होता है। सूर्यका जो यह उदय होता है, वह सम्पूर्ण प्राणमय है। उदय होते ही वे अपनी प्राणपूर्ण किरणोंसे सभी दिशा-उपदिशाओंको व्याप्त कर देते हैं और सर्वत्र अपनी अद्भुत प्राणशक्तिसे सबको नवजीवन प्रदान करते हैं।

सूर्य यज्ञके उत्पन्नकर्ता एवं उसके मुख हैं। उत्तम संकल्प करनेवाले देव सूर्यको प्राप्त होते हैं। सूर्यदेवद्वारा सर्व शुभ कर्मोंके स्रोतरूप यज्ञ बना है। उस यज्ञसे जो सामर्थ्य प्राप्त होती है, वह सब मुझे प्राप्त होवे।

(अथर्व० १३ । १ । १३-१४)

ये सूर्य अहो-रात्रका निर्माण करते हैं। पृथ्वीके जिस अर्ध भूभागमें प्रत्यक्ष होते हैं, वहाँ दिन और अन्य अर्ध भूभागमें रात्रि होती है। इस अन्तरिक्षमें विराजमान तेजस्वी सूर्यकी हम स्तुति करते हैं। वे हमारे मार्ग-दर्शक बनें। (अथर्व० १३ । २ । ४३)

जिनकी प्रेरणासे वायु और जलके प्रवाह चलते हैं, जो सबका ध्वंस करते हैं, जिनसे सब जीवित रहते हैं, जो प्राणसे पृथ्वीको तृप्त और अपानसे समुद्रको परिपूर्ण करते हैं, जिनमें अग्नि आदि सर्वदेव एक पङ्क्तिमें आश्रित हैं (अथर्व० १३ । ३ । २—५), वे सूर्यदेव गायत्रीके अमृतमय केन्द्रमें स्थित हैं।

ये सूर्य वैश्वानर विश्वरूप प्राणाग्नि हैं। (प्र० उ० १ । ७) वे ही सबका चैतन्य हैं। वे ही सबकी प्रेरक शक्ति हैं। वे ही सबकी ज्योति हैं। वे प्रजाओंके प्राण सूर्य, विश्वको रूप देनेवाले, रश्मियोंवाले प्रकाशमान हैं। उनसे ही ज्ञान और धनकी उत्पत्ति हुई है। अगर

सूर्य न होते तो ज्ञान कहाँसे उत्पन्न होता और सूर्यकी अग्नि न होती तो रत्न भी न होते। अतः वे ज्ञान और धनके उत्पादक हैं।

सूर्यके कालस्वरूपका भी वर्णन किया जाता है। सूर्य आकाशमें जिस मार्गसे गमन करते हैं, उस आकाशपथको 'रविपथ' कहते हैं। उस मार्गको सत्ताईस भागोंमें विभक्त करके उनके 'नक्षत्र' नाम दिये गये हैं। इस विशाल आकाशस्थानको 'सौर-जगत्' कहते हैं। इस भ्रमणपथमें सूर्यके साथ, उनके आस-पासमें नवग्रह घूमते हैं। उनमें पृथ्वीका भी समावेश हो जाता है। इन सत्ताईस नक्षत्रोंके अधिष्ठाता देवके रूपमें एक सूर्य ही हैं; परंतु बारह महीने और बारह राशियोंकी गणना करनेसे उन सूर्यके बारह नाम हैं। वर्षमें सूर्यकी दो गतियाँ होती हैं, जिनको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं। सूर्य जब उत्तरायणमें गमन करते हैं, तब दिन दीर्घ बन जाते हैं और सूर्यके तेजमें वृद्धि होती है। दक्षिणायनमें गमन करनेपर रात्रि दीर्घ हो जाती है और तेज-बलकी कमी हो जाती है।

सत्यरूपी सूर्यके उदय होनेसे पहले 'उषा'का प्रादुर्भाव होता है। 'उषा'के प्रादुर्भावके साथ सम्पूर्ण यज्ञोंकी क्रियाएँ भी आती हैं। इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेदके छठे मण्डलमें किया गया है। सूर्यगीता कहती है—

ब्रह्माण्डानि च पिण्डानि समष्टिव्यष्टिभेदतः।
परस्परविमिश्राणि सन्त्यनन्तानि संख्यया॥
(१।२१)

ब्रह्माण्ड और पिण्ड, समष्टि और व्यष्टि-भेदसे परस्पर मिले हुए हैं और उनकी संख्या अनन्त है।

यदा कुण्डलिनी शक्तिराविर्भवति साधके।
तदा स पञ्चकोशे मत्तेजोऽनुभवति ध्रुवम्॥
(१।४८)

साधकमें जब कुण्डलिनी-शक्तिका आविर्भाव होता है, तब वह अवश्य ही पञ्चकोशोंमें मेरे (सूर्यके) तेजका अनुभव करता है।

पीठोत्पन्नकरेष्वेषु साधनेष्वष्टकेष्वपि।
योगिभिस्तु निजं देहं साधनोत्तममीरितम्॥
(१।६०)

पीठको उत्पन्न करनेवाले आठ साधनोंमें योगियोंने निज देहको ही उत्तम साधन कहा है।

यथा सर्वेषु कायेषु गवां तिष्ठति गोरसः॥
तथापि गोस्तनादेव स्रवतीति विनिश्चितम्।
तथैव मामिका शक्तिर्विद्यमानाऽपि सर्वतः॥
नित्यनैमित्तिकैः पीठैराविर्भवति भूतले।
(१।८१-८२)

जिस प्रकार गौके समस्त शरीरमें गोरस रहता है, परंतु स्तनसे ही वह निर्गत होता है, उसी प्रकार मेरी शक्ति सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी पृथ्वीपर नित्य और नैमित्तिक पीठोंद्वारा आविर्भूत होती है।

मरणे दाहहीनश्चेत्तेजस्तत्त्वं समाश्रितः।
अथवा धूम्रतत्त्वं स शुक्लं कृष्णगतिश्रितः॥
(यो० गी० ८।७६)

जिस पुरुषकी मृत्यु होनेपर भी उसका मृत शरीर दहनहीन रहे अथवा अघोर स्थलमें या अरण्यमें मरनेसे दहन-कार्यके अभावमें दहन-क्रियाका अभाव हो, तो उस तत्त्वका देवता उसे सूर्यरूप तेजतत्त्वमें ग्रहण करता है।

एकस्मिन्नयने भृशं तपति यः काले स दाहक्रमो
येनातन्यतयत्प्रकाशसमये नैषां पदं दुर्लभम्।
सा व्योमावयवस्य यन्न विदिता लोके गतिः शाश्वती
श्री सूर्यः सुरसेवितोऽपि हि महादेवः स नस्त्रायताम्॥

जिनकी देवोंने सेवा की है, ऐसे वे भगवान् सूर्य-नारायण हैं। जो एक अयन (उत्तरायण)में बहुत तपते हैं, जिन्होंने प्रतिदिन समयानुसार नियमित गति की है, जिनके प्रकाशसे कोई भी स्थान रिक्त नहीं रहता है और जिनकी अखण्ड गति इस पृथ्वीलोकमें किसीके द्वारा भी जाननेमें नहीं आती है, ऐसे आकाशमें गति करनेवाले सूर्यदेव हमारा सदा रक्षण करें।

वेदोंमें सूर्य-विज्ञान

(लेखक—स्व० म०म० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

सूर्यका विज्ञान वेद-मन्त्रोंमें बहुत आया है। वेद सूर्यको ही सब चराचर जगत्का उत्पादक कहता है—**'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः'** और इसको ही **'प्राणः प्रजानाम्'** कहा जाता है। वेदोंमें सूर्यको इन्द्र शब्दसे भी कहा गया है। उस इन्द्र नामसे ही सूर्यकी स्तुतिका ऋग्वेदीय मन्त्र यहाँ उद्धृत करते हैं—

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्।

यहाँ इन्द्र शब्द सूर्यका बोधक है। इन्द्र शब्द अन्तरिक्षके देवता विद्युत्के लिये भी प्रयुक्त है और द्युलोकके देवता सूर्यके लिये भी। इन्द्र शब्दका दोनों ही प्रकारका अर्थ सायण-भाष्यमें भी प्राप्त होता है। इन्द्र चौदह भेदोंसे श्रुतिमें वर्णित हैं। उन भेदोंका संग्रह ब्रह्मविज्ञानके इस पद्यमें किया गया है—

> **इन्द्रा हि वाक्प्राणधियो बलं गति-**
> **र्विद्युत्प्रकाशैश्वरतापराक्रमाः ।**
> **शुक्लादिवर्णा रविचन्द्रपुरूपा-**
> **वुत्साह आत्मेति मताश्चतुर्दश ॥**

ये हैं—१—वाक्, २—प्राण, ३—मन, ४—बल, ५—गति, ६—विद्युत, ७—प्रकाश, ८—ऐश्वर्य, ९—पराक्रम, १०—रूप, ११—सूर्य, १२—चन्द्रमा, १३—उत्साह और १४—आत्मा। इन्द्रका विज्ञान श्रुतिमें सबसे गम्भीर है। अस्तु! दो विशेषण इन्द्रके आते हैं—एक सहस्वान् और दूसरा मरुत्वान्। इन्द्र अन्तरिक्षस्थ वायु वा विद्युत्स्वरूप है और सहस्वान् इन्द्र सूर्यरूप है। यहाँ भी यह सूक्ष्म विभाग है कि सूर्य-मण्डलको द्युलोक कहा जाता है और उसमें प्रतिष्ठित प्राणशक्ति देवताको इन्द्र कहा जाता है। श्रुतिमें अतिस्पष्ट इसका उल्लेख है—**'यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी'**—जैसे पृथ्वीके गर्भमें अग्नि है, वैसे द्युलोक (सूर्य-मण्डल) के गर्भमें इन्द्र है। तात्पर्य यह कि पूर्वोक्त मन्त्रमें इन्द्र पदका अर्थ सूर्य है। तब मन्त्रका स्पष्टार्थ यह हुआ—'यह महान् स्तुतिरूप वाणी इन्द्रके लिये प्रयुक्त है।' इन्द्र अन्तरिक्षके मध्यसे जलको प्रेरित करता है और अपनी शक्तियोंसे पृथ्वीलोक और द्युलोक—दोनोंको रोके हुए है, जैसे कि अक्ष रथके चक्रोंको रोके रहता है। विचारिये कि इससे अधिक आकर्षणका स्पष्टीकरण क्या हो सकता है? फिर भी, यहाँ केवल इन्द्र शब्द आनेसे यदि यह संदेह रहे कि यहाँ इन्द्र सूर्यका नाम है या वायुका? तो इसी सूक्तका—इससे दो मन्त्र पूर्वका मन्त्र देखिये, जिसमें सूर्य शब्द स्पष्ट है—

> **स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।**
> **अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥**
> (ऋ० १० । ८९ । २)

यहाँ श्रीमाधवाचार्य **'वरांसि'** का अर्थ तेज बतलाते हैं। उनके मतानुसार मन्त्रका अर्थ है कि 'वह सूर्यरूप इन्द्र बहुत-से तेजोंको इस प्रकार घुमाता है, जिस प्रकार सारथि रथके चक्रोंको घुमाता है और यह अपने प्रकाशसे कृष्णवर्णके अन्धकारपर इस प्रकार आघात करता है, जैसे तेज चलनेवाले घोड़ेपर चाबुकका आघात किया जाता है।' किंतु, सत्यव्रत सामश्रमी महाशय यहाँ **'वरांसि'** का अर्थ नक्षत्र आदिका मण्डल करते हैं, जो कि यहाँ सुसंगत है और तब मन्त्रका अर्थ स्पष्ट रूपसे यह हो जाता है कि 'सूर्यरूप इन्द्र समस्त महान् मण्डलोंको रथचक्रकी भाँति घुमाता है।' इसमें आकर्षणका विज्ञान अधिक स्पष्ट हो जाता है और श्रीमाधवाचार्यके अर्थके अनुसार भी तेजोमण्डलका घुमाना और इन्द्र शब्दका अर्थ सूर्य होना अभिव्यक्त ही है। फिर भी संदेह हो तो सूर्य शब्दके मध्यमें और

सबके आकर्षक हैं, इस विज्ञानको दूसरे मन्त्रोंमें भी स्पष्ट देखिये—

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनाम् । विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य । (ऋ० १० । ५ । ३)
दिवो धर्त्ता भुवनस्य प्रजापतिः । (४ । ५३ । २)
यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः । (१ । १६४ । २)

—इत्यादि बहुत-से मन्त्रोंमें भगवान् सूर्यका नाभिस्थानपर, अर्थात् मध्यमें रहना और सब लोकोंको धारण करना स्पष्ट रूपसे कहा गया है । और भी देखिये—

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेममवग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥
(ऋ० १ । १६४ । १०)

मातृ शब्द पृथ्वी और पितृ शब्द द्युका वाचक है, जो वेदमें बहुधा प्रयुक्त होता है । इस मन्त्रका अर्थ यह है कि एक ही सूर्य तीन पृथ्वी और तीन द्युलोकोंको धारण करते हुए ऊपर स्थित हैं । इनको कोई भी ग्लानिको प्राप्त नहीं करा सकते, अर्थात् दबा नहीं सकते । उस द्युलोकके पृष्ठपर सभी देवता संसारके जानने योग्य सर्वत्र व्याप्त न होनेवाली वाक्को परस्पर बोलते हैं ।

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥
(ऋ० २ । २७ । ८)

इसका अर्थ यह है—'आदित्य तीन भूमि और तीन द्युलोकोंको धारण करते हैं । इन आदित्योंके अन्तर्ज्ञानमें वा यज्ञमें तीन प्रकारके व्रत, अर्थात् कर्म हैं । हे अर्यमा, वरुण, मित्र नामक आदित्य-देवताओ ! ऋतसे तुम्हारा सुन्दर अतिविशिष्ट महत्त्व है ।'

इस प्रकार कई एक मन्त्रोंमें तीन भूमि एवं तीन द्युलोकोंका धारण सूर्यके द्वारा बताया गया है । सत्यव्रत सामश्रमी महाशयका विचार है कि '*ये छहों ग्रह यहाँ सूर्यके आकर्षणमें स्थित बताये गये हैं । पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें रहनेवाले चन्द्रमा, बुध और शुक्र—ये तीन भूमियोंके नामसे कहे गये हैं और सूर्यसे ऊपरके मंगल, बृहस्पति और शनि—ये द्युके नामसे कहे गये हैं । यों इन सब ग्रहोंका धारणाकर्षण सूर्यके द्वारा सिद्ध हो जाता है ।*'

श्रीगुरुजी[1] तीन भूमि और तीन द्युलोककी यह व्याख्या उपयुक्त नहीं मानते; क्योंकि यों विचार करनेपर ग्रह-नक्षत्र आदि भूमि बहुत हैं । तीन-तीनका परिच्छेद ठीक नहीं बैठता । यहाँ तीन भूमि और तीन द्युलोकका अभिप्राय दूसरा है । छान्दोग्योपनिषद्में बताये हुए तेज, अप्, अन्नके त्रिवृत्करणके अनुसार प्रत्येक मण्डलमें तेज, अप्, अन्न तीनोंकी स्थिति है और प्रत्येक मण्डलमें पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य—यह त्रिलोकी नियत रहती है । इस त्रिलोकीमें भी प्रत्येकमें तेज, अप्, अन्न तीनोंका भाग है । इनमेंसे अन्नका भाग पृथ्वी, अप्का भाग अन्तरिक्ष और तेजका भाग द्यु कहलाता है । तब तीनों मण्डलोंको मिलाकर तीन भूमि और तीन द्यु हो जाते हैं । ये तीनों भूत और रवि हैं और इनका धारण करनेवाला प्राण-रूप आदित्य-देवता हैं, जो '**तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी**'में बताया गया है ।

अथवा दूसरा अभिप्राय यह है कि छान्दोग्योपनिषद्में सत्से जो तेज, अप् और अन्नकी सृष्टि

१. लेखकके आचार्य स्व० श्रीवेदमहार्णव मधुसूदनजी झा ।

बतलायी गयी है। उनमें प्रत्येक फिर तीन-तीन प्रकारका होता है। तेजके भी तीन भेद हैं— तेज, अप्, अन्न। अप्‌के भी तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न और अन्नके भी तीन भेद हैं—तेज, अप्, अन्न। इनमें प्रथम वर्गकी अन्न-अवस्था और द्वितीय वर्गकी तेज-अवस्था एकरूप होती है, अर्थात् तेज-वर्गका अन्न और अप्-वर्गका तेज एक ही है। यों ही अप्‌के वर्गका अन्न और अन्नके वर्गका तेज एक ही है। तब नौमेंसे दो घट जानेपर सात रह जाते हैं। ये ही सात व्याहृति या सात लोक प्रसिद्ध हैं—**भूः, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः, सत्यम्**। वहाँ **भूः** पृथ्वी है। **भुवः** जल है या जल-प्रधान अन्तरिक्ष है। **स्वः** तेज या **तेजः** प्रधान द्युलोक है। **महः** वायु या केवल वायु-प्रधान लोक है। **जनः** आकाश या वायुमण्डल-बहिर्भूत शुद्ध आकाशलोक है। **तपः** क्रिया या सकल क्रियाके मूल कारणभूत प्राण-प्रजापतिका लोक है। सत्यम् सत्‌की पहली व्याकृत-अवस्था मन या मनोमय परमेष्ठी-का लोक है। अब इनमें **भूः, भुवः, स्वः**—ये तीनों पृथ्वी कहलाते हैं। **स्वः, महः, जनः**—ये तीनों अन्तरिक्ष कहलाते हैं और **जनः, तपः, सत्यम्**—ये तीनों द्यु हैं, जिनका धारण पूर्वोक्त मन्त्रोंमें सूर्यद्वारा बताया गया है। अब चाहे संसारमें सैकड़ो-हजारों मण्डल या गोल बन जायँ, अनन्त पृथ्वी-गोल हों, किंतु तत्त्व-विचारसे सात व्याहृतियोंसे बाहर कोई नहीं हो सकता। अतएव यह व्यापक अर्थ है। श्रीमाधवा-चार्यने भी **'तिस्रो भूमीः'** से व्याहृतियाँ ही ली हैं। अस्तु, चाहे कोई भी अर्थ स्वीकार कीजिये; किंतु सूर्यका धारणाकर्षण-विज्ञान इन मन्त्रोंमे अवश्य ही मानना पड़ेगा। नौ भूमियों या सैकड़ों-हजारों भूमियोंका इन्द्र या सूर्यके अधिकारमें बद्ध रहना भी मन्त्रोंमें बताया गया है, और सूर्यका चक्रकी भाँति सबको घुमाना और स्वयं भी अपनी धुरीपर घूमना पूर्वोक्त मन्त्रोंमें और **'विवर्तते अहनी चक्रियैव'** इत्यादि बहुत-से मन्त्रोंमें स्फुट रूपसे कहा गया है।

भूमिके भ्रमणका भी संकेत मन्त्रोंमें कई जगह प्राप्त होता है। केवल इतना ही नहीं, भूमि अपनी धुरीपर क्यों घूमती है? इसका कारण एक मन्त्रमें विलक्षण ढंगसे प्रकट किया गया है—

> **यज्ञ इन्द्रमवर्द्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत्।**
> **चक्राण ओपशं दिवि॥**
>
> (ऋ० म० ८। १४५)

मन्त्रका सीधा अर्थ यह है कि 'यज्ञ इन्द्रको बढ़ाता है, इन्द्र द्युलोकमें *ओपश—अर्थात् शृंग* बनाता हुआ पृथ्वीको विवर्त्तित करता है अर्थात् घुमाता है।' किरण जिस समय किसी मूर्त पदार्थपर आघात करके लौटती है, तब उसका गमन-मार्ग आगमन-मार्गसे कुछ अन्तरपर होता है। उसे ही वैज्ञानिक भाषामें शृङ्ग या ओपश कहते हैं। तब किरणोंके आघातसे पृथ्वीका घूमना इस मन्त्रसे प्राप्त होता है। (अवश्य ही यह उन्मत्त-प्रलाप नहीं है, किंतु इसके स्पष्टीकरणके लिये गहरी परीक्षाकी आवश्यकता है। सम्भव है कि किसी समय परीक्षासे यह विज्ञान स्फुट हो जाय और कोई बड़ी गम्भीर बात इसमेंसे प्रकट हो पडे।)

और भी सूर्यका और सूर्यके रथ और अश्वोंका वर्णन देखिये—

> **सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र-**
> **मेको अश्वो वहति सप्तनामा।**
> **त्रिनाभि चक्रमजरमनर्व**
> **यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥**
>
> (ऋ० १। १६४। २)

'सूर्यके एक पहियेके रथमें सात घोड़े जुड़े हुए हैं। वस्तुतः (घोड़े सात नहीं) एक ही सात

नामका या सात जगह नमन करनेवाला घोड़ा इस रथको चलाता है। इस रथचक्रकी तीन नाभियाँ हैं। यह चक्र (पहिया) शिथिल नहीं, अत्यन्त दृढ है और कभी जीर्ण नहीं होता। इसीके आधारपर सारे लोक स्थिर हैं।' यह हुआ सीधा शब्दार्थ। अब इसके विज्ञानपर दृष्टि डाली जाय।

निरुक्तकार यास्क कहते हैं कि देवताओंके रथ, अश्व, आयुध आदि उन देवताओंसे अत्यन्त भिन्न नहीं होते; किंतु परम ऐश्वर्यशाली होनेके कारण उनका स्वरूप ही रथ, अश्व, आयुध आदि रूपोंसे वर्णित हुआ है अर्थात् आवश्यकता होनेपर वे अपने स्वरूपसे ही रथ, अश्व आदि प्रकट कर लेते हैं। मनुष्योंकी भाँति काष्ठ आदिके रथ आदि बनानेकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती। अतएव श्रुति रथ, अश्व, आयुध आदि रूपसे देवताओं-की ही स्तुति करती है। अस्तु, इसके अनुसार यहाँ रथ शब्दका तात्पर्य सूर्यके ही वर्णनमें है। रथ शब्दकी सिद्धि करते हुए निरुक्तकारने कहा है कि यह स्थिरका विपरीत है, अर्थात् 'स्थिर' शब्द ही वर्ण-विपर्यय होकर 'रथ' शब्दके रूपमे आ गया है। अतः सूर्यकी स्थिरताका भी प्रमाण कई विद्वान् इससे निकालते हैं।

रथ और रथीमें भेदकी ही यदि अपेक्षा हो, तो सौर-जगन्मण्डल—सूर्यकिरण-क्रान्त ब्रह्माण्ड सूर्यका रथ मानना चाहिये। पुराणमें सूर्यकी गतिके प्रदेश क्रान्तिवृत्तको सूर्यरथ बताया गया है—

साशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः।
आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्देन या गतिः॥
स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा। इत्यादि
(वि० पु० २। १०। १-२)

संवत्सर इस रथका चक्र (पहिया) माना गया है। वस्तुतः संवत्सररूप काल ही इस सब जगत्को फिरा रहा है। कालके ही कारण जगत् घूम रहा है। परिणाम होना—एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें चला जाना ही जगत्का जगत्पन है। उसका कारण काल ही है। सुतरां, सौर जगत्का पहिया संवत्सररूप काल हुआ। इस संवत्सररूप चक्रका मन्त्रके उत्तरार्धमें वर्णन हुआ है। तीन इसकी नाभियाँ हैं, एक संवत्सरमें तीन बार जगत्की स्थिति बिल्कुल पलट जाती है। वे ही तीन ऋतुएँ (शीत, उष्ण, वर्षा) यहाँ चक्रकी नाभि बतलायी गयी हैं। पाँच-छः ऋतुओंका जो विभाग है, उसके अनुसार अन्यत्र पाँच या छः अरे बताये जाते हैं—

त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्णेमिन्यक्षयात्मके।
संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥
(वि० पु० २। ८। ४)

अथवा तीन—भूत, वर्तमान, भविष्यत्-भेदसे भिन्न काल इस चक्रकी नाभियाँ हैं। जो व्याख्याता चक्र पदसे भी सौर जगत् (ब्रह्माण्ड)का ही ग्रहण करते हैं, उनके मतसे भूमि, अन्तरिक्ष और दिव-नामके तीनों लोकोंकी तीन नाभि हैं।

और इस चक्रका विशेषण दिया गया है—**'अनर्वम्।'** इसकी व्याख्या करते हुए निरुक्तकार कहते हैं कि **'अप्रत्युतमन्यस्मिन्'** अर्थात् यह सूर्य-मण्डल किसी दूसरे आधारपर नहीं है। यह 'अजर' है, अर्थात् जीर्ण नहीं होता और इसीके आधारपर सम्पूर्ण लोक स्थित हैं। इस व्याख्याके अनुसार सूर्यमण्डलके आकर्षणसे सब लोग बँधे हुए हैं एवं सूर्य अपने ही आधारपर हैं, वे किसी दूसरेके आकर्षणपर बद्ध नहीं हैं। यह आधुनिक विज्ञानसे स्फुट हो जाता है। संवत्सररूप कालको चक्र माननेके पक्षमें भी इन तीनों विशेषणोंकी संगति स्पष्ट है। कालके ही आधारपर सब हैं, काल किसीके आधारपर नहीं और काल कभी जीर्ण भी नहीं होता।

भेद माननेवाले वायुको सूर्यका अश्व कहते हैं अर्थात् वायुमण्डलके आधारसे सूर्य चारों ओर घूमते हैं। वह

वायु वस्तुतः एक है; किंतु स्थान-भेदसे उसकी आवह-प्रवह आदि सात संज्ञाएँ हो गयी हैं। अतएव कहा गया कि 'एक ही सात नामका या सात स्थानोंमें नमन करनेवाला अश्व वहन करता है।' किंतु निरुक्तकारके मतानुसार अशन, अर्थात् सब स्थानोमे व्याप्त होनेके कारण सूर्य ही अश्व है। किंतु सूर्यमण्डल हमसे बहुत दूर है। उसे हमारे समीप सूर्यकी किरणे पहुँचाती है। सूर्य अश्व है, तो किरणें वल्गा (लगाम) है। जहाँ किरणें ले जाती हैं, वहीं सूर्यको भी जाना पडता है। (लगाम या रास और किरण —दोनोका नाम संस्कृतमे 'रश्मि' है—यह भी ध्यान देनेकी बात है।) इससे सूर्यको वहन करनेवाली किरणें ही सूर्याश्व हुई। कई भावोंसे मन्त्रोंका विचार होता है—कहीं सूर्य अश्व तो रश्मि वल्गा, कहीं सूर्य अश्वारोही, तो किरण अश्व आदि। वह किरण भी वस्तुतः एक अर्थात् एक जातिकी है, किंतु किरणें सात भी कही जा सकती हैं। सात कहनेके भी अनेक कारण है। किरणोंके सात रूप होनेके कारण भी उन्हें सात कह सकते हैं। अथवा संसारमे वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर—ये छः ऋतुएँ होती है और सातवीं एक साधारण ऋतु। इन सातोका कारण सूर्यकी किरणें ही हैं। सूर्यकी किरणोंके ही तारतम्यसे सब परिवर्तन होते हैं। इसलिये सात प्रकारका परिवर्तन करानेवाली सूर्य-किरणोंकी अवस्थाएँ भी सात हुई। अथवा भूमि, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति और शनि—इन सातो ग्रहो और लोकोंमे या **भूः भुवः स्वः** आदि सातो भुवनोंमें प्रकाश पहुँचानेवाले और इन सभी लोकोसे रस आदि लेनेवाली सूर्य-किरणें ही हैं। अतः सात स्थानोंके सम्बन्धसे इन्हे सात कहा जाता है, यह बात 'सप्तनाम' पदसे और भी स्फुट होती है। सूर्यकी किरणें सात स्थानोंमें नत होती हैं। प्रकारान्तरमें यह 'सप्तनाम' पद सूर्यका विशेषण है, अर्थात् सात रश्मियाँ सूर्यसे रस प्राप्त करती रहती हैं। सातों लोकोंसे इसका आहरण सूर्य-रश्मिद्वारा होता है अथवा सातो ऋषि सूर्यकी स्तुति करते हैं। यहाँ भी ऋषिसे तारा-रूप ग्रह भी लिये जा सकते हैं और वसिष्ठ आदि ऋषि भी। इस प्रकार, मन्त्रार्थका अधिकतर विस्तार हो जाता है।

अब पाठक देखेंगे कि पुराणो और वृद्ध पुरुषोके मुखसे जिन बातोंको सुनकर आजकलके विज्ञमानी सज्जनोका हास्य नहीं रुकता, वे ही बाते साक्षात् वेदमें भी आ गयी हैं। उनका तात्पर्य भी ऐसा निकल पड़ा कि बात-की-बातमें बहुत-सी विद्याका ज्ञान हो जाय। क्या अब भी ये हँसी उड़ानेकी ही बातें हैं? क्या पुराणोमे भी इनका यही स्पष्ट अभिप्राय उद्घाटित नहीं है? खेद इसी बातका है कि हम इधर विचार नहीं करते।

अब इन तीनों देवताओका परस्पर कैसा सम्बन्ध है? इसका प्रतिपादक एक मन्त्र भी यहाँ उद्धृत किया जाता है—

अस्य वामस्य पलितस्य होतु-
स्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या-
त्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥
(ऋ० १।१६४।१)

दीर्घतपा ऋषिके द्वारा प्रकाशित इस मन्त्रका निरुक्तकारने केवल अधिदैवत (देवता-पक्षका) अर्थ किया है और भाष्यकार श्रीसायणाचार्यने अधिदैवत और अध्यात्म—दो अर्थ किये है। पहला अधिदैवत अर्थ इस प्रकार है—

(**वामस्य**) सबकी सेवा करने योग्य या सबको प्रकाश देनेवाले, (**पलितस्य**) सम्पूर्ण लोकके पालक, (**होतुः**) स्तुतिके द्वारा यज्ञादिमें आह्वान करने योग्य, (**तस्य अस्य**) सुप्रसिद्ध इन प्रत्यक्ष देव सूर्यका,

(**मध्यमः भ्राता**) बीचका भाई अन्तरिक्षस्थ वायु अथवा विद्युत्-रूप अग्नि (**अश्नः अस्ति**) सर्व-व्यापक है। (**अस्य तृतीयः भ्राता**) इन्हीं सूर्यदेवका तीसरा भाई (**घृतपृष्ठः**) घृतको अपने पृष्ठपर धारण करनेवाला—घृतसे प्रदीप्त होनेवाला अग्नि है। (**अत्र**) इन तीनोंमें (**सप्तपुत्रम्**) सर्वत्र फैलनेवाले सात किरण-रूप पुत्रोंके साथ सूर्यदेवको ही मै (**विश्पतिम्**) सबका स्वामी और सबका पालन करनेवाला (**अपश्यम्**) जानता हूँ। इस अर्थसे सिद्ध हुआ कि अग्नि, वायु और सूर्य—ये तीनों लोकोंके तीन मुख्य देवता हैं। इन तीनोमें परस्पर सम्बन्ध है और सूर्य सबमें मुख्य हैं। इस मन्त्रमें विशेषणोंके द्वारा कई एक विशेष विज्ञान प्रकट होते हैं; उन्हींका वर्णन नीचे किया जाता है।

वामस्य—निरुक्तकार **'वन्'** धातुसे इस शब्दकी सिद्धि मानते हैं। धातुका अर्थ है—संभक्ति, अर्थात् सम्यक् भाजन या संविभाग—बाँटना। इससे सिद्ध हुआ कि सूर्य सबको अपना प्रकाश और वृष्टि-जल आदि बाँटते रहते हैं। इतर सभी सूर्यके अधीन रहते हैं। यज्ञ-में भी सूर्यकी ही प्रधान स्तुति की जाती है।

पलितस्य—निरुक्तकार इसका पालक अर्थ करते हैं; अर्थात् सूर्य सबका पालन करनेवाले हैं। किंतु पलित शब्द श्वेत केशका भी वाचक है और श्वेत केशके सम्बन्धसे कई जगह वृद्धका भी वाचक हो जाता है। अतः इसका यह भी तात्पर्य है कि सूर्य सबसे वृद्ध (प्राचीन) हैं।

होतुः—यह शब्द वेदमें **'हु'** धातु और **'ह्वा'** धातु—दोनोंसे बनाया जाता है। हु धातुका अर्थ है—दान, आदान और प्रीणन। ह्वा धातुका अर्थ है—स्पर्द्धा, आह्वान और शब्द। अतः इस विशेषणके अनेक तात्पर्य हो सकते हैं—जैसा कि सूर्य इसमें वृष्टि-जलका दान करते हैं, पृथ्वीमेंसे रसका आहरण (भोजन) करते हैं और सबको प्रसन्न रखते हैं। सब ग्रह-उपग्रहोंके नाभि-रूप केन्द्र-स्थानमें स्थित रहकर मानो उनसे स्पर्द्धा कर रहे हैं। सब ग्रह-उपग्रहोंका आह्वान-रूप आकर्षण करते रहते हैं और तापके द्वारा वायुमें गति उत्पन्न कर उसके द्वारा शब्द भी कराते हैं। चतुर्थ पादमें भी सूर्यके दो विशेषण हैं।

विश्पतिम्—प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाले और उनका पालन करनेवाले। **'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः'** इत्यादि श्रुतियोंमें स्पष्ट रूपसे सूर्यको सबका उत्पादक कहा है।

सप्तपुत्रम्—यहाँ पुत्र शब्दका रश्मियोंसे ही प्रयोजन है। यह सभीका अभिमत है। अतः इसका तात्पर्य हुआ कि रश्मियाँ (सप्त) बड़े वेगसे फैलनेवाली हैं। और उनमें सात भाग हुआ करते हैं; सूर्य अदिति-के सप्तम पुत्र हैं—इस ऐतिहासिक पक्षका अर्थ भी यहाँ ध्यान देने योग्य है।

भ्राता—इसका निरुक्तकार अर्थ करते हैं कि भरण करनेयोग्य अथवा भरण करनेवाला। इससे यह तात्पर्य सिद्ध होता है कि अपनी रश्मियोंके द्वारा आकृष्ट रसको सूर्यदेव वायुमें समर्पित करते हैं, वायुको गति आदि भी अपनी किरणोंद्वारा देते हैं अथवा वायु सूर्यसे अन्तरिक्षस्थ रसको हरण कर लेता है, मानो तीनों लोकोंके स्वामी सूर्यदेव ही थे, उनसे अन्तरिक्ष स्थान वायुने छीन लिया।

मध्यमः—पदसे विद्युत्-(बिजलीकी आग) का ग्रहण करनेपर भी ये अर्थ इस प्रकार ही ज्ञातव्य हैं। उसकी उत्पत्तिमें भी निरुक्तकार सूर्यको कारण मानते हैं और वह भी मध्यम स्थानका हरण करता है।

अश्नः—इससे वायु और विद्युत्की व्यापकता सिद्ध होती है। इनके विना कोई स्थान नहीं—सर्वत्र वायु और विद्युत् अनुस्यूत रहती हैं।

भ्राता—इसका अभिप्राय भी पूर्ववत् है। सूर्य अपने प्रकाशद्वारा इसका भरण करते हैं; अर्थात् अग्निमें तेज सूर्यसे ही आया है और यह भी अपने लिये सूर्यके राज्यमेंसे पृथ्वी-रूप स्थान छीन लेता है।

घृतपृष्ठः—घृतसे अग्निकी वृद्धि होती है; अथवा घृत शब्द द्रव्यका वाचक होनेसे सोमका उपलक्षक है। अग्नि सदा सोमके पृष्ठपर आरूढ रहती है। बिना सोमके अग्नि नहीं रह सकती और बिना अग्निके सोम नहीं मिलता—**'अग्नीषोमात्मकं जगत्।'**

इस प्रकार देवताओंके विशेषणोंसे छोटे-छोटे शब्दोंमे विज्ञानकी बहुत-सी बाते प्रकट होती हैं। देवता-विज्ञान ही श्रुतिका मुख्य विज्ञान है। ऐसे मन्त्रोंके अर्थ सम्यक् समझकर आधुनिक विज्ञानसे उनकी तुलना करनेपर हमारे विज्ञानसे उक्त आधुनिक विज्ञानका जितने अंशमे भेद है, वह भी स्पष्ट हो सकता है। इस प्रकारकी चेष्टासे हम भी अपने शास्त्रोका तत्त्व समझ सकेंगे और आधुनिक विज्ञानको भी अधिक लाभ होगा; क्योंकि आधुनिक विज्ञानका अभी कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। सम्भव है, उनको भी इन प्राचीन सिद्धान्तोसे बहुत अंशोमे सहायता मिले। अस्तु, अब सक्षेपमे उक्त मन्त्रका आध्यात्मिक अर्थ भी लिखा जाता है।

(वामस्य) समस्त जगत्का उद्गिरण करनेवाला अर्थात् अपने शरीरमें स्थित जगत्को बाहर प्रकाशित करनेवाला, **(पलितस्य)** सबका पालक, अथवा सबसे प्राचीन, **(होतुः)** सबको फिर अपनेमे ले लेनेवाला अर्थात् संहार करनेवाला—सृष्टि, स्थिति, लयके कारण परमात्माका **(भ्राता)** भाग हरण करनेवाला अर्थात् अंशरूप **(अश्नः)** व्यापनशील **(मध्यमः अस्ति)** सबके मध्यमें रहनेवाला सूत्रात्मा है। और **(अस्य)** इसी परमात्माका **(तृतीयः भ्राता)** तीसरा भ्राता **(घृतपृष्ठः अस्ति)** विराट् है। घृतपृष्ठ शब्द जलका भी वाचक है और जलसे उस जलका कार्य स्थूल शरीर लक्षित होता है। उस शरीरका स्पर्श करनेवाला स्थूल शरीराभिमानी विराट् सिद्ध हुआ। **(अत्र)** इन सबमे **(विश्पतिम्)** सब प्रजाओंके स्वामी, **(सप्तपुत्रम्)** सातो लोक जिसके पुत्र है, ऐसे परमात्माको **(अपश्यम्)** जानता हूँ; अर्थात उसका जानना परम श्रेयस्कर है। इसका तात्पर्य यही है कि सम्पूर्ण जगत्का स्वाधीन कारण एक परमात्मा है और सूत्रात्मा एवं विराट्, जो सूक्ष्म दशा और स्थूल दशाके अभिमानी, वेदान्त-दर्शनमे माने गये हैं—दोनो इसी परमात्माके अंश हैं।

अब आप लोगोने विचार किया होगा कि वेदमे विज्ञान प्रकट करनेकी शैली कुछ अद्भुत है। ऊपरसे देखनेपर जो बात हमे साधारण-सी दिखायी देती है, वही विचार करनेपर बडी गहरी सिद्ध हो जाती है। इसका एक रोचक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

अश्वमेध यज्ञमे मध्यके दिन एक ब्रह्मोद्यका प्रकरण है। एक स्थानपर होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा—इन सबका परस्पर प्रश्नोत्तर होता है। इस प्रश्नोत्तरके मन्त्र ऋग्वेदसहिता और यजुर्वेदसहिता—दोनोंमे आये हैं। उनमेसे एक प्रश्नोत्तर देखिये—

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः
पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
(ऋ० १। १६४। ३४, यजु० २३। ६१)

यह यजमान और अध्वर्युका संवाद है। यजमान कहता है कि 'मै तुमसे पृथ्वीका सबसे अन्तका भाग पूछता हूँ और भुवन अर्थात उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंकी नाभि जहाँ है, वह (स्थान) पूछता हूँ।' इनमें दो प्रश्न हुए—एक यह कि पृथ्वीकी जहाँ समाप्ति होती है, वह अवधि-भाग कौन-सा है और उत्पन्न होनेवाले

सब पदार्थोंकी नाभि कहाँ है ? अब उत्तर सुनिये। अध्वर्यु कहता है—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः।
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः॥
(पूर्वसे आगेका मन्त्र)

यज्ञकी वेदीको दिखाकर अध्वर्यु कहता है कि 'यह वेदी ही पृथ्वीका सबसे अन्तिम अवधि-भाग है और यह यज्ञ सब भुवनोंकी नाभि है।' स्थूल दृष्टिसे कुछ भी समझमें नहीं आता। बात क्या हुई ? भारतवर्षके हर एक प्रान्तके प्रत्येक स्थानमे यज्ञ होते थे। सभी जगह कहा जाता हैं कि यह वेदी पृथ्वीका अन्त है। भला सब जगह पृथ्वीका अन्त किस प्रकार आ गया ?

यह तो एक विनोद-जैसी बात माऌम होती है। दो गाँववाले एक जगह खड़े थे। एक अपनी समझदारीकी बड़ी डींग मार रहा था। दूसरेने उससे पूछा—'अच्छा, तू बड़ा समझदार है, तो बता सब जमीनका बीच कहाँ है ?' पहला था बड़ा चतुर। उसने झटसे अपनी लाठी एक जगह गाड़कर कह दिया—'यही कुल जमीनका बीच है।' दूसरा पूछने लगा—'कैसे ?' तो पहलेने जवाब दिया कि 'तू जाकर नाप आ। गलत हो तो मुझसे कहना।' अब वह न नाप सकता था, न पहलेकी बात झूठी हो सकती थी। यह एक उपहासका गल्प प्रसिद्ध है। तो क्या वेद भी ऐसी ही मजाककी बातें बताता है ? नहीं, विचार करनेपर आपको प्रतीत होगा कि इन अक्षरोंमें वेद भगवान्‌ने बहुत कुछ कह दिया है। पहले एक मोटी बात लीजिये। आदि और अन्त, समतल, लम्बे तथा चौकोर प्रभृति रूप पदार्थोंके नियत होते हैं। किंतु गोल वस्तुका कोई आदि-अन्त या ओर-छोर नियत नहीं होता। जहाँसे भी प्रारम्भ मान लें, उसके समीप ही अन्त आ जायगा। भूमि गोल है, इससे इसका आदि-अन्त नियत नहीं। जहाँसे एक मनुष्य चलना आरम्भ करे, उसके समीप भागमें ही प्राप्त होकर (आकर) वह अपनी प्रदक्षिणा समाप्त करेगा। ऐसा अवसर नहीं आयगा कि जहाँ जाते-जाते वह रुक जाय और आगे भूमि न रहे। इससे अध्वर्यु यजमानको बताता है कि भाई ! भूमिका अन्त क्या पूछते हो, वह तो गोल है। हर एक जगह उसके आदि-अन्तकी कल्पना की जा सकती है। इससे तुम दूर क्यों जाते हो। समझ लो कि तुम्हारी यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है। जहा आदिकी कल्पना करोगे, वहींपर अन्त भी बन जायगा। इससे वेद भगवान्‌ने एक रोचक प्रश्नोत्तरके रूपमें पृथ्वीका गोल होना हमें बता दिया।

अब याज्ञिक प्रसङ्गमें इन मन्त्रोंका दूसरा भाव देखिये। यज्ञके कुण्डों और वेदीका सन्निवेश प्राकृत सन्निवेशके आधारपर कल्पित किया जाता है। सूर्यके सम्बन्धसे पृथ्वीपर जो प्राकृत यज्ञ हो रहा है, उसमें एक ओर सूर्यका गोला है, दूसरी ओर पृथ्वी है और मध्यमें अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्षद्वारा ही सूर्य-किरणोंसे सब पदार्थ पृथ्वीपर आते हैं। इस सन्निवेशके अनुसार यज्ञमें भी ऐसा सन्निवेश बनाया जाता है कि पूर्वमें आहवनीय कुण्ड, पश्चिममें गार्हपत्य कुण्ड और दोनोंके बीचमे वेदी। तब यहाँ आहवनीय कुण्ड सूर्यके स्थानमें है। गार्हपत्य पृथिवीके स्थानमें और वेदी अन्तरिक्षके स्थानमे है। इस विभागको दृष्टिमें रखकर जब यह कहा जाता है कि यह वेदी ही पृथ्वीका अन्त है, तो उसका यह अभिप्राय स्पष्ट समझमें आ सकता है कि पृथ्वीका अन्त वहीं है, जहाँसे अन्तरिक्षका प्रारम्भ है। वेदीरूप अन्तरिक्ष ही पृथ्वीका दूसरा अन्त है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीका और कोई अन्त नहीं हो सकता।

इन मन्त्रोंको समझानेका एक तीसरा प्रकार भी है और वह इन दोनोंसे गम्भीर है। ऋग्वेद-भाष्यमें इस

मन्त्रकी व्याख्या करते हुए श्रीमाधवाचार्यने ब्राह्मणकी यह श्रुति उद्धृत की है—

एतावती वै पृथिवी यावती वेदिरिति श्रुतेः।

अर्थात् जितनी वेदी है, उतनी ही पृथ्वी है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण पृथ्वीरूप वेदीपर सूर्य-किरणोंके सम्बन्धसे आदान-प्रदानरूप यज्ञ बराबर हो रहा है। अग्नि पृथ्वीमे सर्वत्र अभिव्याप्त है और बिना आहुतिके वह कभी ठहरती नहीं है। वह अन्नाद है। उसे प्रतिक्षण अन्नकी आवश्यकता है। इससे वह स्वयं बाहरसे अन्न लेती रहती है और सूर्य अग्नि आदिको अन्न देते रहते भी है। जहाँ यह अन्न-अन्नादभाव अथवा आदान-प्रदानकी क्रिया न हो, वहाँ पृथ्वी रह ही नहीं सकती। उससे स्पष्ट ही सिद्ध है कि जहाँतक प्राकृत यज्ञकी वेदी है, वहाँतक पृथिवी भी है। बस, इसी अभिप्रायको मन्त्रने भी स्पष्ट किया है कि वेदी ही पृथ्वीका अन्त है। अन्त पदको आदिका भी उपलक्षक समझना चाहिये। पृथ्वीका आदि-अन्त जो कुछ भी है, वह वेदीमय है। यह वेदी जहाँ नहीं, वहाँ पृथ्वी भी नहीं है।

आजकलका विज्ञान जिसको मुख्य आधार मान रहा है, उस विद्युत्का प्रसंग वेदमे किस प्रकार है? यह भी देखिये——

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे।
गर्भे सन् जायसे पुनः। (यजु० १२। ३६)

अर्थात् 'हे अग्निदेव! जलमें तुम्हारा स्थान है, तुम ओषधियोंमे भी व्याप्त रहते हो और गर्भमे रहते हुए भी फिर प्रकट होते हो।' ऐसे मन्त्रोंमें अग्नि सामान्य पद है और उससे पार्थिव अग्नि और वैद्युत अग्नि—दोनोका ग्रहण होता है। किंतु इससे भी विद्युत्का जलमें रहना स्पष्ट न माना जा सके, तो खास विद्युत्के लिये ही यह मन्त्र देखिये——

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्त-
र्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा
याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय॥
(ऋ० १०। ३०। ४)

'जो बिना ईंधनकी अग्नि जलके भीतर दीप्त हो रही है, यज्ञमे मेधावी लोग जिसकी स्तुति करते हैं, वह हमे **'अपां नपात्'** मधुयुक्त रस देवे—जिस रससे इन्द्र वृद्धिको प्राप्त होता है और बलके कार्य करता है।'

इस मन्त्रमे बिना ईंधनके जलके भीतर प्रदीप्त होनेवाली जो अग्नि बतलायी गयी है, वह विद्युत्के अतिरिक्त कौन-सी हो सकती है, यह आप ही विचार करे। फिर भी कोई सज्जन यह कहकर टालनेका यत्न करें कि जलमें बड़वानलके रहनेका पुराना खयाल है, यही यहाँ कहा गया होगा तो उन्हे देखना होगा कि इसमें उस अग्निको **'अपां नपात्'** देवता बताया गया है और **'अपां नपात्'** निघण्टुमें अन्तरिक्षके देवताओंमें ही आता है। तब 'अन्तरिक्षकी अग्नि जलके भीतर प्रज्वलित' इतना कहनेपर भी यदि विद्युत् न समझी जा सके, तो फिर समझनेका प्रकार कठिनतासे मिल सकेगा।

अभि प्रवन्त समनेव योषाः
कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त
ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः॥
(ऋ० ४। ५८। ८)

इस मन्त्रमे भी भगवान् यास्कने विद्युत्का विज्ञान और जलसे उसका उद्भव स्पष्ट ही लिखा है। विस्तारकी आवश्यकता नहीं। यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि विद्युत् और उसकी उत्पत्ति आदिका परिचय वेदमे स्पष्ट है; प्रत्युत जहाँ आजकलका विज्ञान विद्युत्पर सब कुछ अवलम्बित करता हुआ भी अभीतक यह न जान सका कि विद्युत् वस्तु क्या है? वह 'मैटर' है या नहीं? इसका विवाद अभी निर्णयपर ही नहीं पहुँचा, वहाँ

वेदने इसे 'इन्द्र देवता'का रूप मानते हुए इसका प्राणविशेष 'शक्तिविशेष' (एनर्जी) (अनमैटेरियल) होना स्पष्ट उद्घोषित कर रखा है । (देवता प्राणविशेष है, यह पूर्व कहा जा चुका है) और, इसे सूर्यका भ्राता कहते हुए सूर्यसे ही इसका उद्भव भी मान रखा है । यों जिन सिद्धान्तोंका आविष्कार वैज्ञानिकोंके लिये अभी शेष ही है, वे भी वेदमें निश्चित रूपसे उपलब्ध हो जाते हैं ।

रूपके सम्बन्धमें वर्तमान विज्ञानका मत है कि जिन वस्तुओंमें हम रूप देखते हैं, उनमें रूप नहीं; रूप सूर्यकी किरणोंमें है । वस्तुओंमें एक प्रकारकी भिन्न-भिन्न शक्ति है, जिसके कारण कोई वस्तु सूर्य-किरणके किसी रूपको उगल देती है और शेष रूपोंको खा जाती है । तात्पर्य यह कि रूपोंका आधार—रूपोंको बनानेवाली सूर्य-किरणें हैं । आप देखिये; वेद भी रूप-विज्ञानके सम्बन्धमें उपदेश करता है—

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद्
विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो
भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥
(ऋ० ६ । ५८ । १)

इस मन्त्रमें भाष्यकार श्रीमाधवाचार्यने भी शुक्ल-शुक्र-रूप और यजत-कृष्ण-रूप यही अर्थ किया है । पूषा देवताकी स्तुति है कि 'रूप तुम्हारे हैं, तुम्हीं इन दोनोंके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकारकी सब मायाओंको बनाते हो या रक्षा करते हो ।'

इससे यह भी प्रकट किया गया है कि रूप मुख्यतः दो ही हैं—शुक्ल और कृष्ण । उन्हींके संमिश्रणसे सन्निस्थान रक्त-रूप और फिर परस्पर मेलसे नाना रूप बन जाते हैं । यों यहाँ 'पूषा' देवताको रूपका कारण माना गया है और—'इन्द्रो रूपाणि कनिक्रदच्चरत् ।' से तैत्तिरीयसंहिता इत्यादिमें इन्द्रको सब रूपोंका बनानेवाला कहा गया है । तात्पर्य यह कि सूर्य-किरण-संसक्त देवता ही रूपोंके उत्पादक हैं । यह विज्ञान हमें इन मन्त्रोंमें मिल जाता है । [वैदिक सूर्य-विज्ञानको इन बातोंके परिप्रेक्ष्यमें आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंको परिशीलन करना चाहिये और उभय विज्ञानोंके समन्वयका प्रयास करना चाहिये—स०]

'उदयत्येष सूर्यः'

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

सूर्यके तत्त्वके ज्ञाताओंका कहना है कि ये किरणजालसे मण्डित एवं प्रकाशमय, तपते हुए सूर्य विश्वके समस्त रूपोंके केन्द्र हैं । सभी रूप (रंग और आकृतियाँ) सूर्यसे उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं । ये सविता ही सबके उत्पत्तिस्थान हैं और ये ही सबकी जीवन-ज्योतिके मूल-स्रोत है । ये सर्वज्ञ और सर्वाधार हैं, ये वैश्वानर (अग्नि) और प्राण-शक्तिके रूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं और सबको धारण किये हुए हैं । समस्त जगत्के प्राणरूप सूर्य अद्वितीय हैं—इनके समान विश्वमे अन्य कोई भी जीवनी शक्ति नहीं है । ये सहस्ररश्मि—सूर्य हमारे शतशः व्यवहारोंको सिद्ध करते हुए उदित होते हैं । (प्रश्नोप० १ । ८)

वैदिक सूर्यविज्ञानका रहस्य

(लेखक—स्व० म० म० आचार्य प० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०)

(क) उपक्रम

बहुत दिन पहलेकी बात है, जिस दिन महापुरुष परमहस श्रीविशुद्धानन्दजी महाराजका पता लगा था; तब उनके सम्बन्धमें बहुत-सी अलौकिक शक्तिकी बाते सुनी थीं। बातें इतनी असाधारण थीं कि उनपर सहसा कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था। यद्यपि **'अचिन्त्यमहिमानः खलु योगिनः'** (योगियोंकी महिमा अचिन्त्य होती है)—इस शास्त्र-वाक्यपर मैं विश्वास करता था और देश-विदेशके प्राचीन और नवीन युगोमें विभिन्न सम्प्रदायोके जिन विभूतिसम्पन्न योगी और सिद्ध महात्माओंकी कथाएँ ग्रन्थोंमे पढता था, उनके जीवनमें घटित अनेक अलौकिक घटनाओंपर भी मेरा विश्वास था, तथापि आज भी हमलोगोंके बीचमे ऐसे कोई योगी महात्मा विद्यमान है, यह बात प्रत्यक्ष-दर्शीके मुखसे सुनकर भी ठीक-ठीक हृदयङ्गम नहीं कर पाता था। इसलिये एक दिन संदेह-नाश तथा औत्सुक्यकी निवृत्तिके लिये महापुरुषके दर्शनार्थ मै गया।

उस समय सध्या समीपप्राय थी, सूर्यास्तमे कुछ ही काल अवशिष्ट था। मैने जाकर देखा, बहुसख्यक भक्तों और दर्शकोसे घिरे हुए पृथक् आसनपर एक सौम्यमूर्ति महापुरुष व्याघ्र-चर्मपर विराजमान हैं। उनकी सुन्दर लम्बी दाढ़ी है, चमकते हुए विशाल नेत्र हैं, पकी हुई उम्र है, गलेमे सफेद जनेऊ है, शरीरपर काषाय वस्त्र हैं और चरणोमे भक्तोके चढाये हुए पुष्प तथा पुष्पमालाओके ढेर लगे हैं। पास ही एक स्वच्छ काश्मीरी उपलसे बना हुआ गोल यन्त्रविशेष पड़ा है। महात्मा उस समय योगविद्या और प्राचीन आर्षविज्ञानके गूढतम रहस्योकी उपदेशके बहाने साधारणरूपमें व्याख्या कर रहे थे। कुछ समयतक उनका उपदेश सुननेपर जान पड़ा कि इनमें अनन्य साधारण विशेषता है; क्योकि उनकी प्रत्येक बातपर इतना जोर था, मानो वे अपनी अनुभवसिद्ध बात कह रहे हैं—केवल शास्त्रवचनोकी आवृत्तिमात्र नहीं। इतना ही नहीं, वे प्रसङ्गपर ऐसा भी कहते जाते थे कि शास्त्रकी सभी बाते सत्य हैं, आवश्यकता पडनेपर किसी भी समय योग्य अधिकारीको मै दिखला भी सकता हूँ। उस समय 'जात्यन्तरपरिणाम' का विषय चल रहा था। वे समझा रहे थे कि जगत्मे सर्वत्र ही सत्तामात्ररूपसे सूक्ष्मभावसे सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। परंतु जिसकी मात्रा अधिक प्रस्फुटित होती है, वही अभिव्यक्त और इन्द्रियगोचर होता है। जिसका ऐसा नहीं होता, वह अभिव्यक्त नहीं होता—नहीं हो सकता। अतएव इनकी व्यञ्जनाका कौशल जान लेनेपर किसी भी स्थानसे किसी भी वस्तुका आविर्भाव किया जा सकता है। अभ्यासयोग और साधनाका यही रहस्य है। हम व्यवहार-जगत्में जिस पदार्थको जिस रूपमें पहचानते हैं, वह उसकी आपेक्षिक सत्ता है, वह केवल हम जिस रूपमें पहचानते है, वही है—यह बात किसीको नहीं समझनी चाहिये। लोहेका टुकड़ा केवल लोहा ही है सो बात नहीं है, उसमे सारी प्रकृति अव्यक्त-रूपमें निहित है; परतु लौहभावकी प्रधानतासे अन्यान्य समस्त भाव उसमें विलीन होकर अदृश्य हो रहे हैं। किसी भी विलीन भावको (जैसे सोना) प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढा दी जाय तो पूर्वभाव स्वभावतः ही अव्यक्त हो जायगा और उस सुवर्णादिके प्रबुद्धभावके प्रबल हो जानेसे वह वस्तु फिर उसी नाम और रूपमें परिचित होगी। सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिये। वस्तुतः लोहा सोना नहीं हुआ, वह अव्यक्त हो गया

और सुवर्णभाव अव्यक्तताको हटाकर प्रकाशित हो गया। आपातदृष्टिसे यही समझमें आयेगा कि लोहा ही सोना हो गया है—परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है।* कहना नहीं होगा कि यही योगशास्त्रका **'जात्यन्तरपरिणाम'** है। पतञ्जलिजी कहते हैं कि प्रकृतिके आपूरणसे **'जात्यन्तरपरिणाम'** होता है—एकजातीय वस्तु अन्य-जातीय वस्तुमें परिणत होती है (**'जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्'**)। यह कैसे होता है, सो भी योग-शास्त्रमें बतलाया गया है।†

कुछ देरतक जिज्ञासुरूपसे मेरे पूछताछ करनेपर उन्होंने मुझसे कहा—'तुम्हें यह करके दिखाता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने आसनपरसे एक गुलाबका फूल हाथमें लेकर मुझसे पूछा—'बोलो, इसको किस रूपमें बदल दिया जाय?' वहाँ जवाफूल नहीं था, इसीसे मैंने उसको जवाफूल बना देनेके लिये उनसे कहा। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली और बायें हाथमें गुलाबका फूल लेकर दाहिने हाथसे उस स्फटिकयन्त्रके द्वारा उसपर विकीर्ण सूर्यरश्मिको संहत करने लगे। मैंने

* योगियोंने 'मूलपृथक्त्व' कहकर अव्यक्तभावसे बीज-निष्ठरूपमें भी पृथक्ताकी सत्ता स्वीकार की है। ऐसा न करनेसे सृष्टिवैचित्र्यका कोई मूल नहीं रह जाता। व्यासदेवने कहा है, 'जात्यनुच्छेदेन सर्वं सर्वात्मकम्।' इससे यह जाना जाता है कि जातिका उच्छेद प्रलयमें भी नहीं होता; प्रलय और अव्यक्तावस्थामें भी जातिभेद रहता है—परन्तु वह अधिष्ठानके लोपके कारण अव्यक्त रहता है। सृष्टिके साथ-ही-साथ उसकी स्फूर्ति होती है। प्रलयकी परमावस्थामें समस्त प्रकृतिपर ही आवरण पड़ जाता है, इसलिये उसमें विकारोन्मुख परिणाम नहीं रहता। साधारणतः जिसको सृष्टि कहा जाता है, वह आंशिक सृष्टि और आंशिक प्रलय होता है—आवरण जहाँ नहीं है, वहाँ निरन्तर विकार पैदा होता रहता है, जहाँ है, वहाँ कोई भी विकार नहीं होता। जहाँ कोई आवरण नहीं होता, वहाँ प्रकृति सर्वतोभावसे मुक्त होकर अखिल परिणामकी ओर उन्मुख हो जाती है। युगपत् अनन्त आकारोंका स्फुरण होता है, इसलिये किसी विशिष्ट आकारका भान नहीं होता, उसको निराकार स्फूर्ति कहते हैं, वही ब्रह्म है।

† पतञ्जलिका सिद्धान्त है—'निमित्तमप्रयोजकम्'—निमित्तकारण उपादानस्वरूपा प्रकृतिको प्रेरणा नहीं कर सकता। वह प्रकृतिनिष्ठ आवरणको दूर करता है। आवरण दूर होनेपर आच्छन्न प्रकृति उन्मुक्त होकर अपने आप ही अपने विकारोंके रूपमें परिणत होने लगती है। लोहेमें सुवर्ण-प्रकृति है, वह आवरणसे ढकी है—और लौह-प्रकृति आवरणसे मुक्त है, इसीसे लौहपरिणाम चल रहा है; किंतु यदि सुवर्ण-प्रकृतिका यह आवरण किसी उपायसे (योग या आर्षविज्ञानसे) हटा दिया जाय तो लौह-प्रकृति ढक जायगी और सुवर्ण-प्रकृति परिणामकी धारामें विकार उत्पन्न करेगी। यह स्वाभाविक है, यह कौशल ही प्रकृति विद्या है। परंतु इसके द्वारा असत्को सत् नहीं किया जा सकता। केवल अव्यक्तको व्यक्त किया जा सकता है। वस्तुतः सत्कार्यवादमें सृष्टिमात्र ही अभिव्यक्त है। जो कभी नहीं था, वह कभी होता भी नहीं; (नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः)। इसीसे ऋषि कहते हैं कि निमित्त प्रकृतिको प्रेरित नहीं कर सकता—प्रवृत्ति नहीं दे सकता। प्रकृतिमें विकारोन्मुखताकी ओर स्वाभाविक प्रेरणा विद्यमान है। प्रतिबन्धक रहनेके कारण वह कार्य कर नहीं पाती। पूर्वोक्त कौशल या निमित्त (धर्माधर्म और इसी प्रकार निमित्त) इस प्रतिबन्धकको केवल हटा भर देता है।

क्रान्तदर्शी कविने कहा है—

शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद् दहन्ति॥

इससे जाना जाता है, जो शीतल (शमप्रधान) है उसमें भी 'दाहात्मक तेज' या ताप है, परंतु वह गूढ है। अर्थात् सभी जगह सभी वस्तुएँ हैं, परंतु जो गूढ है (छिपी है) वह देखनेमें नहीं आती। उसकी क्रिया भी नहीं होती। जो व्यक्त है, उसीकी क्रिया होती है, वही दृश्य है। 'गूढ' धर्मकी क्रिया न हो सकनेका कारण 'व्यक्त' धर्मकी प्रधानता है। यदि व्यक्त धर्म बाह्य तेज (अन्य तेज)-के द्वारा अभिभूत कर दिया जाय तो विद्यमान धर्म जो अभीतक गुप्त था, वह अनभिभूत होनेके कारण प्रकट हो जाता है और क्रिया करने लगता है।

देखा, उसमें क्रमशः एक स्थूल परिवर्तन हो रहा है। पहले एक लाल आभा प्रस्फुटित हुई—धीरे-धीरे तमाम गुलाबका फूल विलीन होकर अव्यक्त हो गया और उसकी जगह एक ताजा हालका खिला हुआ झूमका जवा प्रकट हो गया। कौतूहलवश इस जपापुष्पको मैं अपने घर ले आया था।* स्वामीजीने कहा—'इसी प्रकार समस्त जगत्में प्रकृतिका खेल हो रहा है, जो इस खेलके तत्त्वको कुछ समझते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। अज्ञानी इस खेलसे मोहित होकर आत्मविस्मृत हो जाता है। योगके बिना इस ज्ञान या विज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार विज्ञानके बिना वास्तविक योगपदपर आरोहण नहीं किया जा सकता।'

मैंने पूछा—'तब तो योगीके लिये सभी कुछ सम्भव है?' उन्होंने कहा—'निश्चय ही है, जो यथार्थ योगी हैं, उनकी सामर्थ्यकी कोई इयत्ता नहीं है, क्या हो सकता है और क्या नहीं, कोई निर्दिष्ट सीमारेखा नहीं है। परमेश्वर ही तो आदर्श योगी हैं, उनके सिवा महाशक्तिका पूरा पता और किसीको प्राप्त नहीं है, न प्राप्त हो ही सकता है। जो निर्मल होकर 'परमेश्वरकी शक्तिके साथ जितना युक्त हो सकते हैं, उनमें उतनी ही ऐसी शक्तिकी स्फूर्ति होती है। यह युक्त होना एक दिनमें नहीं होता, क्रमशः होता है। इसीलिये शुद्धिके तारतम्यके अनुसार शक्तिका स्फुरण भी न्यूनाधिक होता है। शुद्धि या पवित्रता जब सम्यक्प्रकारसे सिद्ध हो जाती है, तब ईश्वर-सायुज्यकी प्राप्ति होती है। उस समय योगीकी शक्तिकी कोई सीमा नहीं रहती। उसके लिये असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अघटनघटना-पटीयसी माया उसकी इच्छाके उत्पन्न होते ही उसे पूर्ण कर दिया करती है।'

मैंने पूछा—'इस फूलका परिवर्तन आपने योगबलसे किया या और किसी उपायसे?' स्वामीजी बोले—'उपायमात्र ही तो योग है। दो वस्तुओंको एकत्र करनेको ही तो योग कहा जाता है। अवश्य ही यथार्थ योग इससे पृथक् है। अभी मैंने यह पुष्प सूर्यविज्ञानद्वारा बनाया है। योगबल या शुद्ध इच्छाशक्तिसे भी सृष्टि आदि सब कार्य हो सकते हैं, परंतु इच्छा-शक्तिका प्रयोग न करके विज्ञानकौशलसे भी सृष्ट्यादि कार्य किये जा सकते हैं।' मैंने पूछा—'सूर्यविज्ञान क्या है?' उन्होंने कहा, 'सूर्य ही जगत्का प्रसविता है। जो पुरुष सूर्यकी रश्मि अथवा वर्णमालाको भलीभाँति पहचान गया है और वर्णोंको शोधित करके परस्पर मिश्रित करना सीख गया है, वह सहज ही सभी पदार्थोंका संघटन या विघटन कर सकता है। वह

* घर लानेका कारण यह था कि आँखोंद्वारा देखनेपर भी उस समय मैं यह धारणा नहीं कर पाता था कि ऐसा क्योंकर हो सकता है। मुझे अस्पष्टरूपसे ऐसा भान होता था कि इसमें कहीं मेरा दृष्टिभ्रम तो नहीं है, मैं कहीं सम्मोहनी विद्या (मेस्मेरिज्म)के वशीभूत होकर ही जवा-फूलकी कोई सत्ता न होनेपर भी जवाफूल तो नहीं देख रहा हूँ। लोग Optical illusion, hallucination, hypnotism आदि शब्दोंके द्वारा इसी प्रकार ऐसी सृष्टिक्रियाको समझानेकी चेष्टा किया करते हैं। ये लोग अज्ञ हैं, क्योंकि सम्मोहनविद्याके प्रभावसे अथवा तज्जातीय अन्य कारणोंसे जिस सृष्टिका प्रकाश होता है, वह प्रातिभासिक होती है, स्थायी नहीं होती। वह लौकिक व्यवहारमें भी नहीं आ सकती। परंतु व्यावहारिक सृष्टि इससे अलग है। स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थामें जैसे भेद हैं, वैसे ही प्रातिभासिक और व्यावहारिक सत्तामें भी पृथक्ता है। वेदान्तियोंकी जीवसृष्टि और ईश्वरसृष्टिका भेद भी इस प्रसङ्गमें आलोचनीय है। वस्तुतः मैंने अज्ञानवश ही संदेह किया था। वह जपापुष्प जागतिक जपापुष्पोंकी तरह ही व्यावहारिक सत्तासम्पन्न पदार्थ था, द्रष्टाके दृष्टिभ्रमसे उत्पन्न आभासमात्र नहीं था। इस फूलको मैंने बहुत दिनोंतक अपने पास पेटीमें बड़े जतनसे रक्खा और लोगोंको दिखाया था, बहुत दिन बीत जानेपर वह सूख गया।

देखता है कि सभी पदार्थोंका मूल बीज इस रश्मि-तत्त्वके विभिन्न प्रकारके संयोगसे ही उत्पन्न होता है। वर्णभेदसे और विभिन्न वर्णोंके संयोगसे भेद, विभिन्न पद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही रश्मिभेद और विभिन्न रश्मियोंके मिश्रण-भेदसे जगत्के नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अवश्य ही यह स्थूल दृष्टिमें बीज-सृष्टिका एक रहस्य है। सूक्ष्म दृष्टिमें अव्यक्त गर्भमें बीज ही रहता है। बीज न होता तो इस प्रकार संस्थान-भेदजनक रश्मिविशेषके संयोग-वियोग-विशेषसे और इच्छाशक्ति या सत्यसङ्कल्पके प्रभावसे भी सृष्टि होनेकी सम्भावना नहीं रहती। इसीलिये योग और विज्ञानके एक होनेपर भी एक प्रकारसे दोनोंका किञ्चित् पृथक्‌रूपमें व्यवहार होता है। रश्मियोंको शुद्धरूपसे पहचानकर उनकी योजना करना ही सूर्यविज्ञानका प्रतिपाद्य विषय है। जो ऐसा कर सकते हैं, वे सभी स्थूल और सूक्ष्म कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, काम-क्रोध, लोभ, प्रीति, भक्ति आदि सभी चैतसिक वृत्तियाँ और संस्कार भी रश्मियोंके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल वस्तुके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। अतएव जो इस योजन और वियोजनकी प्रणालीको जानते हैं, वे सभी कुछ कर सकते हैं—निर्माण भी कर सकते हैं और संहार भी, परिवर्तनकी तो कोई बात ही नहीं। यही सूर्यविज्ञान है।'

मैंने पूछा—'आपको यह कहाँसे मिला? मैंने तो कहीं भी इस विज्ञानका नाम नहीं सुना।' उन्होंने हँसकर कहा, 'तुम लोग बच्चे हो, तुम लोगोंका ज्ञान ही कितना है? यह विज्ञान भारतकी ही वस्तु है—उच्च कोटिके ऋषिगण इसको जानते थे और उपयुक्त क्षेत्रमें इसका प्रयोग किया करते थे। अब भी इस विज्ञानके पारदर्शी आचार्य अवश्य ही वर्तमान हैं। वे हिमालय और तिब्बतमें गुप्तरूपसे रहते हैं। मैंने स्वयं तिब्बतके उपान्तभागमें ज्ञानगंज नामक बड़े भारी योगाश्रममें रहकर एक योगी और विज्ञानवित महापुरुषसे दीर्घकालतक कठोर साधना करके इस विद्याको तथा ऐसी ही और भी अनेक लुप्त विद्याओंको सीखा है। यह अत्यन्त ही जटिल और दुर्गम विषय है—इसका दायित्व भी अत्यन्त अधिक है। इसीलिये आचार्यगण सहसा किसीको यह विषय नहीं सिखाते।'

मैंने पूछा, 'क्या इस प्रकारकी और भी विद्याएँ हैं?' उन्होंने कहा, 'हैं नहीं तो क्या? चन्द्रविज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान, शब्दविज्ञान और मनोविज्ञान इत्यादि बहुत विद्याएँ हैं। केवल नाम सुनकर ही तुम क्या समझोगे? तुमलोगोंने शास्त्रोंमें जिन विद्याओंके नाममात्र सुने हैं, वे तथा उनके अतिरिक्त और भी न मालूम कितनी और हैं?'

इस प्रकार बातें होते-होते संध्या हो चली। पास ही घड़ी रक्खी थी। महापुरुषने देखा, अब समय नहीं है, वे तुरंत नित्यक्रियाके लिये उठ खड़े हुए और क्रियागृहमें प्रविष्ट हो गये। हम सब लोग अपने-अपने स्थानोंको लौट आये।

इसके बाद मैं प्रायः प्रतिदिन ही उनके पास जाता और उनका सङ्ग करता। इस प्रकार क्रमशः अन्तरङ्गता बढ़ गयी। क्रमशः नाना प्रकारकी अलौकिक बातें मैं प्रत्यक्ष देखने लगा। कितनी देखी, उनकी संख्या बतलाना कठिन है। दूरसे, नजदीकसे, स्थूलरूपसे, सूक्ष्मरूपसे, भौतिक जगतमें, दिव्य जगत्‌में—यहाँतक कि आत्मिक जगतमें भी—मैं उनकी असंख्य प्रकारकी लोकोत्तर शक्तिके खेलको देख-देखकर स्तम्भित होने लगा। केवल मैंने निजमें स्वयं जो कुछ देखा और अनुभव किया है, उसीको लिखा जाय तो एक महाभारत बन सकता है। परंतु यहाँ उन सब बातोंको लिखनेकी आवश्यकता नहीं है और सारी बातें बिना विचार सर्वत्र प्रकट करने योग्य भी नहीं हैं। मैं यहाँ यथासम्भव निरपेक्ष-

रूपसे स्वामीजी महोदयके उपदिष्ट और प्रदर्शित (सूर्य-) विज्ञानके सम्बन्धमें दो-चार बातें लिखूँगा।

(ख) सूर्यविज्ञानका रहस्य

यद्यपि कालधर्मके कारण हम सौरविज्ञान या सावित्री-विद्याको भूल गये हैं, तथापि यह सत्य है कि प्राचीन कालमें यही विद्या ब्राह्मण-धर्मकी और वैदिक साधना-की भित्तिस्वरूप थी। सूर्यमण्डलतक ही संसार है, सूर्यमण्डलका भेद करनेपर ही मुक्ति मिल सकती है—यह बात ऋषिगण जानते थे। वस्तुतः सूर्यमण्डलतक ही वेद या शब्दब्रह्म है—उसके बाद सत्य या परब्रह्म है। शब्दब्रह्ममें निष्णात ही परब्रह्मको पा सकता है—

शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

—यह बात जो लोग कहा करते, वे जानते थे कि शब्दब्रह्मका अतिक्रमण किये बिना या सूर्यमण्डलको लाँघे बिना सत्यमें नहीं पहुँचा जाता। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

य एष संसारतरुः पुराणः
कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते॥
द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः
पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः।
दशैकशाखो द्विसुपर्णनीड-
स्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कंप्रविष्टः॥

(११। १२। २१-२२)

'यह कर्मात्मक संसारवृक्ष है—जिसके दो बीज, सौ मूल, तीन नाल, पाँच स्कन्ध, पाँच रस, ग्यारह शाखाएँ हैं; जिनमें दो पक्षियोंका निवासस्थान है, जिसके तीन वल्कल और दो फल हैं।* यह संसार-वृक्ष सूर्यमण्डलपर्यन्त व्याप्त है। श्रीधरस्वामी और विश्वनाथ दोनोंने कहा है—**अर्कंप्रविष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तं व्याप्तः। तन्निर्भिद्य गतस्य संसाराभावात्।**

प्रकृतिका रहस्य जाननेके लिये यह सूर्य ही साधन है। श्रुतिमें आया है कि सूर्यमें रहनेवाला पुरुष मैं हूँ—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽहम्॥

(मैत्री-उपनिषद् ६। ३५)

सूर्यसे ही चराचर जगत् उत्पन्न होता है, यह श्रुतिने स्पष्टरूपमें निर्देश किया है। इसी मैत्री-उपनिषद्में लिखा है कि प्रसवधर्मके कारण ही सूर्यका 'सविता' नाम सार्थक हुआ है (सवनात् सविता)।† बृहद्योगियाज्ञवल्क्यमें स्पष्ट तौरपर लिखा है—

सविता सर्वभावानां सर्वभावांश्च सूयते॥
सवनात् प्रेरणाच्चैव सविता तेन चोच्यते।

(९। ५५-५६)

सूर्योपनिषद्में सूर्यके जगत्की उत्पत्ति उसके पालन और नाशका हेतु होनेका वर्णन आया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

आचार्य शौनकने बृहद्देवतामे उच्चस्वरसे कहा है कि एकमात्र सूर्यसे ही भूत, भविष्य और वर्तमानके समस्त स्थावर और जङ्गम पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं।

यही प्रजापति तथा सत् और असत्के योनिस्वरूप हैं—यह अक्षर, अव्यय, शाश्वत ब्रह्म हैं। ये तीन

---

* बीज=पुण्य-पाप। मूल=वासना (शत=असंख्य)। नाल=गुण। स्कन्ध=भूत। रस=शब्दादि विषय। शाखा=इन्द्रिय। फल=सुख-दुःख। सुपर्ण या पक्षी=जीवात्मा और परमात्मा। नीड=वासस्थान। वल्कल-धातु अर्थात् वात, पित्त और श्लेष्मा।

† षूङ् प्राणिप्रसवे इत्यस्य धातोरेतद्रूपम्। सुनोति सूयते वा उत्पादयति चराचर जगत् स सविता।

षू प्रसवैश्वर्ययोः—सर्ववस्तूनां प्रसवः उत्पत्तिस्थानं सर्वैश्वर्यस्य च।

भागोंमें विभक्त होकर तीन लोकोंमें वर्तमान हैं—समस्त देवता इनकी रश्मिमे निविष्ट हैं—

भवद् भूतं भविष्यच्च जङ्गमं स्थावरं च यत्।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेषा प्रजापतिः।
तदक्षरं चाव्ययं च यच्चैतद् ब्रह्म शाश्वतम्॥
कृत्वैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति।
देवान् यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु॥

सूर्यसिद्धान्तनामक ज्योतिष-ग्रन्थमें लिखा है कि ये सब जगत्के आदि हैं, इस कारण ये आदित्य हैं। जगत्को प्रसव करते हैं, इस कारण सूर्य और सविता हैं—ये तमोमण्डलके उस पार परम ज्योतिःस्वरूप हैं—

आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते।
परं ज्योतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च॥

यह जो परम ज्योतिकी बात कही गयी, वह शब्द-ब्रह्ममय मन्त्रज्योति है—यही अखण्ड अविभक्त प्रणवात्मक वेदस्वरूप है—इसीसे विभक्त होकर ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयका आविर्भाव होता है। सूर्यपुराणमें इसीलिये स्पष्ट कहा गया है कि—

नत्वा सूर्यं परं धाम ऋग्यजुःसामरूपिणम्।

अर्थात् परंधाम सूर्य ऋक्-यजु-साम रूप हैं; उन्हें नमस्कार है।

विद्यामाधवकारने भी इसीलिये सूर्यको 'त्रयीमय' और 'अमेयांशुनिधि'के नामसे निर्देश किया है और कहा है कि ये तीनो जगत्के 'प्रबोधहेतु' हैं। उन्होने कहा है कि सूर्यके बिना 'सर्वदर्शित्व' सम्भव नहीं; इसीसे मानो शंकरने उन्हें नेत्ररूपसे धारण किया है। सूर्यसे ही सब भूतोंके चैतन्यका उन्मेष और निमेष होता है, यह श्रुतिमें भी लिखा है—

योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादयोदेति। असौ योऽस्तमेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायास्तमेति॥

विष्णुपुराणके याज्ञवल्क्यकृत सूर्यस्तोत्र (अंश ३, अध्याय ५)में सूर्यको 'विमुक्तिका द्वार', 'ऋग्यजुः-सामभूत', 'त्रयीधामवान्', 'अग्नीषोमभूत', 'जगत्के कारणात्मा' और 'परम सौषुम्नतेजोधारणकारी' कहकर क्यों वर्णन किया गया है, यह बात अब समझमें आवेगी। अग्नि और सोम मूलतः सूर्यसे अभिन्न हैं, यह श्रुतिसे भी माळूम होता है।

उद्यन्तं वादित्यमग्निरनुसमारोहति सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः।

श्रुतिमें आया है कि सूर्य पूर्वाह्णमें ऋग्द्वारा, मध्याह्नमें यजुःद्वारा और अस्तकालमें सामद्वारा युक्त होते हैं—

ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते
यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अह्नः।
सामवेदेनास्तमये महीयते
वेदैरसून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः॥

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि ऋक् ही सूर्यका मण्डल और यजुः तथा साम उनकी मूर्ति हैं—यह कालात्मक, कालकृत, त्रयीमय भगवान् हैं।

ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्यस्य मूर्तिर्यजूंषि च।
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद् विभुः॥

वस्तुतः प्रणव या ॐकार या उद्गीथ ही सूर्य हैं—ये नादब्रह्म हैं, ये निरन्तर रव करते हैं, इस कारण 'रवि' नामसे विख्यात हैं। छान्दोग्य-उपनिषद् (१। ४। १–५) में है कि त्रयीविद्या या छन्दोरूप तीन वेदोंने इस उद्गीथको आवृत कर रक्खा है। इसके बाहर मृत्युराज्य है। देवताओंने मृत्यु-भयसे डरकर सबसे पहले वेदकी शरण ग्रहण की और छन्दोंद्वारा अपनेको आच्छादित किया—अपना गोपन या रक्षा (गुप्=रक्षा) की; तथापि मृत्युने उन लोगोंको देख लिया था—जिस तरह जलके अंदर मछली दिखायी पड़ती है, उसी तरह। जलके दृष्टान्तसे माळूम होता है कि वेदत्रय जलवत् स्वच्छ आवरण है। मधुविद्यामे भी वेदको **'आपः'** या जल कहा गया है। एक हिसाबसे

यही पुराणवर्णित कारणवारि है *। देवताओंने उस समय वेदसे निकलकर नादका आश्रय ग्रहण किया। इसीसे वेद-अन्तमें नादका आश्रय लिया जाता है। यही अमर अभय पद है। उसके बाद (छा० १।५।१—५ में ही) स्पष्ट कहा गया है कि उद्गीथ या प्रणव ही सूर्य हैं—ये सर्वदा नाद करते हैं। इस प्रणव-सूर्यकी दो अवस्थाएँ हैं। एक अवस्थामें इनकी रश्मिमाला चारों ओर विकीर्ण हुई है†। दूसरी अवस्थामें समस्त रश्मियाँ संहृत होकर मध्यबिन्दुमें विलीन हुई हैं। यह द्वितीय अवस्था ही प्रणवकी कैवल्य या शुद्धावस्था है। ऋषि कौषीतक प्राचीन कालमे इसके उपासक थे। प्रथम अवस्था प्रणव-सूर्यकी सृष्टयुन्मुख अवस्था है। उन्होने अपने पुत्रसे प्रथम उपासनाकी बात कही। उद्गीथ वा प्रणव ही अधिदेवरूपमें सूर्य हैं, यह कहकर अध्यात्मदृष्टिसे यही प्राण है, यह समझाया गया है।

प्रश्नोपनिषद् (५। १—७) में लिखा है कि ॐकारका अभिध्यान प्रयाणकालतक करनेसे अभिध्यानके भेदके कारण भिन्न-भिन्न लोक अधिकृत (लोकजय) होते हैं। यह ॐकार ही 'पर' और 'अपर' ब्रह्म है। एक मात्राके अभिध्यानके फलस्वरूप जीव उसके द्वारा संवेदित होकर शीघ्र ही जगतीको यानी पृथिवीको प्राप्त होता है। उस समय ऋक् उसको मनुष्यलोकमें पहुँचा देते हैं। वहाँ वह तपस्या, ब्रह्मचर्य और श्रद्धाद्वारा सम्पन्न होकर महिमाका अनुभव करता है। द्विमात्राके अभिध्यानके फलसे मनःसम्पत्ति उत्पन्न होती है—उस समय यजुः उसको अन्तरिक्षमें ले जाते हैं। वह सोमलोकमें जाता है और विभूति-का अनुभव कर पुनरावर्तन करता है। त्रिमात्राके—अर्थात् ॐअक्षरके—द्वारा परम पुरुषके अभिध्यानके प्रभावसे तेजः या सूर्यमें सम्पत्ति उत्पन्न होती है—उस समय साधक सूर्यके साथ तादात्म्य प्राप्त करता है। जिस तरह साँपकी बाह्य त्वचा या केंचुल खिसक पड़ती है—सूर्यमण्डलस्थ आत्मा भी उसी तरह समस्त पापों या मलसे विमुक्त हो जाता है।‡ वहाँसे साम उसे ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। साधक सूर्यसे—'जीवघन'से

* वेदसे ही सृष्टि होती है, यह इस प्रसङ्गमे स्मरण रखना चाहिये। वेद ही शब्द-ब्रह्म हैं।

† ये रश्मियाँ ठीक रास्तोंके समान हैं। जिस तरह रास्ता एक गाँवसे दूसरे गाँवतक फैला रहता है, उसी तरह सब राशियाँ भी इह लोकसे परलोक पर्यन्त फैली हुई हैं। इनकी एक सीमापर सूर्यमण्डल है और दूसरी सीमापर नाड़ीचक्र। सुषुप्तिकालमें जीव इस नाड़ीके भीतर प्रवेश करता है—उस समय स्वप्न नहीं रहता, शान्ति उत्पन्न होती है। यह तेजःस्थान है। देहत्यागके बाद जीव इन सब रश्मियोका अवलम्बन लेकर, ॐकारभावनाकी सहायतासे ऊपर उठता है। सङ्कल्पमात्रसे ही मनमें वेग होता है और उसी वेगसे सूर्यपर्यन्त उत्थान होता है। सूर्य ब्रह्माण्डके द्वारस्वरूप हैं—ज्ञानी इस द्वारको भेदकर सत्यमे और अमर धाममे पहुँच सकते हैं, अज्ञानी नहीं पहुँच सकते। हृदयसे चारो ओर असंख्य नाड़ियाँ या पथ फैले हुए हैं—केवल एक सूक्ष्म पथ ऊपर मूर्द्धाकी ओर गया हुआ है। इसी सूक्ष्म पथसे चल सकनेपर सूर्यद्वार अतिक्रम किया जाता है। अन्यान्य पथोसे चलनेपर भुवनकोशमें ही आवद्ध रहना पड़ता है। यद्यपि भुवनकोशका केन्द्र सूर्य होनेके कारण समस्त भुवन एक प्रकारसे सौरलोकके ही अन्तर्गत हैं, तथापि केन्द्रमे प्रविष्ट न हो सकनेके कारण सौरमण्डलके बाहर जाना असम्भव हो जाता है।

‡ श्रीवैष्णव भी इसे स्वीकार करते हैं। सूर्यमण्डलमें प्रवेश किये विना जीवका लिङ्ग-शरीर नहीं नष्ट होता। लिङ्ग-शरीरके मुक्त हुए विना जीवकी मुक्ति कहाँ? जीव रविमण्डलमे आनेपर ही पवित्र होता है और उसके सब क्लेश दग्ध हो जाते हैं। ऐसा महाभारतमे भी कहा है। पिथागोरसके मतसे भी शुद्धिमण्डल सूर्यमें स्थित है—सूर्य जगत्के मध्यमे अवस्थित है। जीवमात्र ही यहाँ आनेपर अपने आत्मभावको प्राप्त करते और पवित्र होते हैं। अरस्तुका भी कहना है कि पिथागोरसके मतसे शुद्धिमण्डल या Sphere of fire सूर्यस्थ है।

—परात्पर पुरमें सोये हुए पुरुषका दर्शन करता है। तीनो मात्राएँ पृथक्-पृथक् विनश्वर और मृत्युमती हैं; परंतु एकीभूत होनेपर ये ही अजर और अमर भावको प्राप्त करानेवाली हैं।

इससे माळूम होता है कि वेदत्रय पृथक् रूपमें लोकत्रयको प्राप्त करानेवाले हैं—ऋक् भूलोकको, यजुः अन्तरिक्षलोकको और साम स्वर्गलोकको प्राप्त करानेवाला है। ये तीनों लोक पुनरावर्तनशील हैं। ये ही प्रणवकी तीन मात्राएँ हैं। वेदत्रयको घनीभूत करनेपर ही ॐकाररूप ऐक्यका स्फुरण होता है। उसके द्वारा पुरुषोत्तमका अभिध्यान होता है। वेदत्रय जब सूर्य हैं एवं प्रणव जब वेदका ही घनीभूत प्रकाश है, तब सूर्य प्रणवका ही बाह्य विकास है, इसमें कोई संदेह नहीं।

हमारे ऋषियोंका कहना है कि शुद्ध आत्मतेज अंशतः सूर्यमण्डल भेदकर जगत्में उतर आता है। शुद्ध भूमिसे जगत्में अवतीर्ण होनेके लिये और जगत्से शुद्ध धाममें जानेके लिये सूर्य ही द्वारस्वरूप हैं। पिथागोरसने कहा है कि सूर्य एक तेजोधारकमात्र है—इसीमेंसे होकर आत्मज्योतिः जगत्में उतरती है। प्लेटोका कहना है कि ज्योतिः Kabalis और अन्यान्य तत्त्वदर्शियोंके मतसे परम पदार्थका प्रथम विकास है।* अपनी रश्मिसे ईश्वरने जो तेज प्रज्वलित किया है, वही सूर्य है। सूर्य प्रकाश या तापकी प्रभा नहीं है, बल्कि Focus है, यह एक Lens मात्र है, जिसके प्रभावसे आदिम ज्योतिका रश्मिसमूह स्थूल Material बन जाता है, हमारे सौरजगत्में एकत्र होता है और नाना प्रकारकी शक्ति उत्पन्न करता है।

सूर्यरश्मियाँ अनन्त हैं—जातिमें और संख्यामें अनन्त हैं। परंतु मूल प्रभा एक ही है—यह शुक्लवर्ण है। यही मूल शुक्लवर्ण लाल, नील इत्यादिके परस्पर मिलनेके कारण और भी विभिन्न उपवर्णोंके रूपमें प्रकाशित होता है। शुक्लसे सर्वप्रथम लाल, नील प्रभृति प्रथम स्तरका आविर्भाव होता है। शुक्लसे अतीत जो वर्णातीत तत्त्व है, उसके साथ शुक्लका संघर्ष होनेसे इस प्रथम भूमिका विकास होता है। यह अन्तःसंघर्षका फल है। यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्रूपा शक्ति है। इस प्रथम स्तरसे परस्पर संयोग या बहिःसंसर्ग होनेके कारण द्वितीय स्तरका आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टिसे पहली शुद्ध सृष्टि है और दूसरी मलिन सृष्टि है।

दूसरे प्रकारसे भी यही बात माळूम होती है। ब्रह्म एक और अखण्ड है। यह अविभक्त रहता हुआ भी पुरुष और प्रकृतिरूपमें द्विधा विभक्त होता है—यही आत्मविभाग या अन्तःसंघर्षसे उत्पन्न स्वाभाविक सृष्टि है। निम्नवर्ती सृष्टि पुरुष और प्रकृतिके परस्पर सम्बन्ध या बहिःसंघर्षसे आविर्भूत हुई है—यही मलिन मैथुनी सृष्टि है।

सूर्यविज्ञानका मूल सिद्धान्त समझनेके लिये इस अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्ण—सबको समझना आवश्यक है—विशेषतः अन्तके तीनोंको।

ऊपर जो शुक्लवर्णकी बात कही गयी है, यही विशुद्ध सत्त्व है—इस सादे प्रकाशके ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय रंगका खेल निरन्तर हो रहा है, वही विश्वलीला है, वही संसार है। जैसा बाहर है वैसा ही भीतर भी एक ही व्यापार है। पहले गुरूपदिष्ट क्रमसे इस सादे प्रकाशके स्फुरणको प्राप्त करके, उसके ऊपर यौगिक विचित्र उपवर्णके विश्लेषणसे प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णोंको एक-एक करके अलग-अलग पहचानना होता है।

* इसका नाम Sephiro या Divine Intelli-gence है।

है। मूल वर्णको जाननेके लिये सादेकी सहायता अत्यावश्यक है, क्योंकि जिस प्रकाशमें रंग पहचानना है, वह प्रकाश यदि स्वयं रंगीन हो तो उसके द्वारा ठीक-ठीक वर्णका परिचय पाना सम्भव नहीं।

रंगीन चश्मेके द्वारा जो कुछ दिखायी देता है, वह दृश्यका रूप नहीं होता, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। योगशास्त्रमें जिस तरह चित्तशुद्धि हुए बिना तत्त्वदर्शन नहीं होता, उसी तरह सूर्यविज्ञानमें भी वर्णशुद्धि हुए बिना वर्णभेदका तत्त्व हृदयङ्गम नहीं हो सकता। हम जगत्में जो कुछ देखते हैं, सब मिश्रण है—उसका विश्लेषण करनेपर सघटक शुद्ध वर्णका साक्षात्कार होता है। उन सब वर्णोंको अलग-अलग सादे वर्णके ऊपर डालकर पहचानना होता है। सृष्टिके अंदर शुक्लवर्ण कहीं भी नहीं है। जो है वह आपेक्षिक है। पहले विशुद्ध शुक्लवर्णको कौशलसे प्रस्फुटित कर लेना होगा। यह प्रस्फुटित करना और कुछ नहीं है, पहले ही कहा है कि समस्त जगत् सादेके ऊपर खेल रहा है; रंगोके इस खेलको स्थानविशेषमे अवरुद्ध कर देनेसे ही वहाँपर तुरत शुक्ल तेजका विकास हो जाता है। इस शुक्लको कुछ कालतक स्तम्भित करके उससे पूर्वोक्त विचित्र वर्णोंका स्वरूप पहचान लेना होता है। इस प्रकार वर्णपरिचय हो जानेपर सब वर्णोंके संयोजन और वियोजनको अपने अधीन करना होता है। कुछ वर्णोंके निर्दिष्ट क्रमसे मिलनेपर निर्दिष्ट वस्तुकी सृष्टि होती है, क्रमभङ्ग करनेसे नहीं होती। किस वस्तुमें कौन-कौन वर्ण किस क्रमसे रहते हैं, यह सीखना होता है। उन सब वर्णोंको ठीक उसी क्रमसे सजानेपर ठीक उस वस्तुकी उत्पत्ति होगी—अन्यथा नहीं। जगत्के यावत् पदार्थ ही जब मूलतः वर्णसङ्घर्षजन्य हैं, तब जो पुरुष वर्णपरिचय तथा वर्णसंयोजन और वियोजनकी प्रणाली जानते हैं, उनके लिये उन पदार्थोंकी सृष्टि और संहार करना सम्भव न होनेका कोई कारण नहीं।

साधारणतः लोग जिसे वर्ण कहते है, वह सूर्य-विज्ञानविद्की दृष्टिमे ठीक वर्ण नहीं—वर्णकी छटामात्र है। शुद्ध तत्त्वका आश्रय लिये बिना वास्तविक वर्णका पता पानेका कोई उपाय नहीं। काकतालीय न्यायसे भी पाना कठिन है—क्योंकि एक ही वर्णसे सृष्टि नहीं होती, एकाधिक वर्णके सयोगसे होती है। इसीसे एकाधिक शुद्ध वर्णोंके सयोगकी आशा काकतालीय न्यायसे भी नहीं की जा सकती। भारतवर्षमे प्राचीन कालमें वैदिक लोगोकी तरह तान्त्रिक लोग भी इस विज्ञानका तत्त्व अच्छी तरह जानते थे। इसे जानकर ही तो वे 'मन्त्रज्ञ', 'मन्त्रेश्वर' और 'मन्त्रमहेश्वर'के पदपर आरोहण करनेमे समर्थ होते थे। क्योंकि षडध्वशुद्धिका रहस्य जो जानते हैं, वे समझ सकते है कि वर्ण और कला नित्यसंयुक्त हैं। वर्णसे मन्त्र एव मन्त्रसे पदका विकास जिस तरह वाचक भूमिपर होता है, उसी तरह वाच्य भूमिपर कलासे तत्त्व और तत्त्वसे भुवन तथा कार्यपदार्थकी उत्पत्ति होती है। वाक् और अर्थके नित्यसंयुक्त होनेके कारण जिन्होंने वर्णको अधिकृत किया है, उन्होंने कलाको भी अधिकृत कर लिया है। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत्में उनकी गति अबाधित होती है।*

---

* दैवाधीनं जगत् सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवता ॥

समस्त जगत् देवताओंद्वारा संचालित है। जो कुछ जहाँ होता है, उसके मूलमे देवशक्ति है। देवता मन्त्रका ही अभिव्यक्त रूप है। वाचक मन्त्र ही साधकके प्रयत्नविशेषसे अभिव्यक्त होकर देवतारूपमें आविर्भूत होता है। जिस तरह बिना बीजके वृक्ष नहीं, उसी तरह मन्त्रके बिना देवता नहीं। जो वर्णतत्त्ववित् पुरुष वर्णसंयोजनके द्वारा मन्त्रका गठन कर सकते हैं, सुतरा जो मन्त्रेश्वर हैं, वे देवताके भी नियामक हैं, इसमे कोई सदेह नहीं। समग्र जगत् इस प्रकार मन्त्रज्ञ, मन्त्रेश्वर ब्राह्मणके अधीन हो जायगा, इसमे संशय करनेका कोई कारण नहीं।

ऊपर शुक्ल वर्ण या शुद्ध सत्त्वकी जो बात कही गयी है, वही आगमशास्त्रका बिन्दु-तत्त्व है। यह चन्द्रबिन्दु है। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश हैं—यही शब्दमातृका है। इसके विक्षोभसे ही नाद और वर्ण उत्पन्न होते हैं। अकारादि वर्णमाला इस शुद्ध सत्त्वरूप चन्द्रबिन्दुसे ही शुक्ल वर्णसे क्षरित होती है।* जो इन सब वर्णोंके उद्भव और विस्तार-क्रम नहीं जानते, जो सब वर्णोंके अन्योन्य सम्बन्धको नहीं समझते, जो सम्बन्ध स्थापित करने और तोड़नेमें समर्थ नहीं हैं, वे किस प्रकारसे मन्त्रोद्धार कर सकते हैं?

सूर्य-विज्ञानके मतसे, सृष्टिका आरम्भ किस प्रकार होता है, यह हमने बतला दिया। वैज्ञानिक सृष्टि मूल सृष्टि नहीं है, यह स्मरण रखना चाहिये। इसके बाद सृष्टिका विस्तार किस प्रकार होता है, यह बतलाना है।

परंतु विषयको और भी स्पष्टरूपमें समझनेकी चेष्टा करें। दृष्टान्तरूपसे ले लें कि हमे कर्पूरकी सृष्टि करनी है। मान लीजिये कि सौरविद्याके अनुसार क, म, त, र—इन चार रश्मियोका इस प्रकार क्रमबद्ध संयोग होनेसे कपूर उत्पन्न होता है। अब उद्बुद्ध श्वेत वर्णके ऊपर क्रमशः क, म, त और र—इन चार रश्मियोको डालनेसे कपूरकी गन्ध मिलेगी। परंतु एक ही साथ चारो रश्मियाँ नहीं डाली जा सकतीं—डालनेसे भी कोई लाभ नहीं। सृष्टि कालमे ही सम्पन्न होती है। क्रम कालका धर्म है। सुतरां क्रमलङ्घन असम्भव है। इसलिये सत्त्वशोधन करके उसके ऊपर पहले 'क' वर्ण डालनेसे ही स्वच्छ सत्त्व 'क'के आकारमे आकारित और वर्णमें रञ्जित हो जायगा। शुद्ध सत्त्व ही वास्तविक आकर्षण-शक्तिका मूल है। इसीसे वह 'क' को आकर्षित करके रखता है और स्वयं भी उसी भावमे भावित हो जाता है। इसके बाद 'म' डालनेपर वह भी उसमें मिलकर उसके अन्तर्गत आ जायगा। इसी प्रकार 'त' और 'र'के विषयमें भी समझना चाहिये। 'र' अन्तिम वर्ण है—इसीसे इसके डालते ही कर्पूर अभिव्यक्त हो जाता है। अव्यक्त कर्पूर-सत्ताकी अभिव्यक्तिका यही आदि क्षण है। यदि क, म, त और र—इन रश्मियोंके उस संघातको अक्षुण्ण रक्खा जाय तो वह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी, अव्यक्त अवस्था नहीं आवेगी। परंतु दीर्घ कालतक उसे रखना कठिन है। इसके लिये विशिष्ट चेष्टा चाहिये; क्योंकि जगत् गमनशील है। यहाँपर एक गम्भीर रहस्यमय बात है। अव्यक्त कर्पूर ज्यो ही व्यक्त हुआ त्यों ही उसको पुष्ट करनेके लिये—धारण करनेके लिये यन्त्र चाहिये। इसीका दूसरा नाम योनि है। वह व्यक्त सत्ता लिङ्गमात्र है। योनिरूपा शक्ति प्रकृतिकी अन्तर्निहित लालिमा है। उसका आविर्भाव भी शिक्षा-सापेक्ष है। यद्यपि सारे वर्णोंकी तरह यह लालिमा भी विश्वव्यापी है तथापि इसकी भी अभिव्यक्ति है। अन्तिम वर्णके संघर्षसे जिस समय कर्पूर सत्ता केवल लिङ्गरूपमें अलिङ्ग अव्यक्त सत्तासे आविर्भूत होती है, उस समय यह लालिमा ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती है और उसको स्थूल कर्पूररूपमे प्रसव करती है। विश्वसृष्टिमें यवनिकाकी आड़में यह गर्भाधान और प्रसव-क्रिया निरन्तर चल रही है। सूर्यविज्ञानवेत्ता प्रकृतिके

* अ, आ प्रभृति वास्तवमे अक्षर नहीं—क्योंकि ये सब वर्ण या रश्मियाँ सहस्रारस्थ सादे चन्द्रबिम्बके पिघलनेसे क्षरित होती हैं। मूलाधारकी प्रसुप्त अग्नि क्रिया-कौशलसे उद्बुद्ध होकर ऊपरकी ओर प्रवाहित होती है और अन्तमे चन्द्रबिन्दुको स्पर्शकर गला देती है। इसीसे रश्मियाँ विकीर्ण होती हैं। परंतु मूलके साथ योगसूत्र अक्षुण्ण रहता है, इसीसे उनको अक्षर कहते हैं। सब वर्णोंके मूलमे जो 'अ'कार रहता है, वही उस मूल वर्णका प्रतीक है।

'अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।'

इस कार्यको देखकर उसपर अधिकार करनेकी चेष्टा करता है। संयोगकी तीव्रताके अनुसार सृष्टिविस्तारका तारतम्य होता है। कर्पूरका सत्तारूपसे आविर्भाव (विलक्षण, अभिनव) सृष्टि है, उसका परिमाण या मात्राकी वृद्धि (पूर्वसृष्ट पदार्थकी मात्राविषयक) सृष्टि है। मात्रावृद्धि अपेक्षाकृत सहज कार्य है। जो एक बूँद कर्पूर निर्माण कर सकते हैं, वे सहज ही उसे क्षणभरमे लाख मनमें परिणत कर सकते हैं; क्योंकि प्रकृतिका भाण्डार अनन्त और अपार है—उसके साथ संयोजन करके दोहन कर सकनेपर चाहे जिस वस्तुको चाहे जिस परिमाणमें आकर्षित किया जा सकता है*। परंतु वस्तुकी विशिष्ट सत्ताका आविर्भाव कठिन कार्य है। वही स्थूल जगत्की बीज-सृष्टि है।

परंतु यह बीजसृष्टि भी प्रकृत बीजकी सृष्टि नहीं है, मूल बीजकी सृष्टि नहीं है। ऊपर जो अव्यक्त कर्पूर-सत्ताकी बात कही गयी है, वही मूल बीज है। और जो लिङ्गरूपसे बीजकी बात कही गयी, वही गौण या स्थूल बीज है। स्थूल बीज विभिन्न रश्मियोंके क्रमानुकूल संयोगविशेषसे अभिव्यक्त होता है। परंतु मूल बीज अलिङ्ग अव्यक्त, प्रकृतिका आत्मभूत और नित्य है। इस प्रकारके अनन्त बीज हैं। प्रत्येक बीजमें एक आवरण है—उससे वह विकारोन्मुख नहीं हो सकता, मूल बीज स्थूल बीजके रूपमे परिणत नहीं हो सकता। सूर्यविज्ञान रश्मिविन्यासके द्वारा उस मूल बीजको व्यक्त करके सृष्टिका आरम्भ दिखा देता है।

परंतु उस बीजको व्यक्त करनेके और भी कौशल हैं। वायुविज्ञान, शब्दविज्ञान इत्यादि विज्ञान-बलसे चेष्टापूर्वक रश्मिविन्यास किये बिना भी अन्य उपायोंसे वह अभिव्यक्तिका कार्य संघटित किया जाता है। पूज्यपाद परमहंसदेवने, उन सब विज्ञानोंके द्वारा भी सृष्टि-प्रभृति प्रक्रिया किस प्रकार साधित हो सकती है, यह योग्य अधिकारियोंको प्रत्यक्ष दिखा दिया है। इन पंक्तियोंके लेखकने भी सौभाग्यवश उसे कई बार देखा है; परंतु उन सब गुह्य विषयोंकी अधिक आलोचना करना अनुचित समझकर यहींपर हम छोड़ रहे हैं। जो ऋषि-मुनियोंके हृदयकी वस्तु है, उसे सर्वसाधारणके सामने रखना अच्छा नहीं। (संकेत मात्र पर्याप्त है।)

सृष्टिकी आलोचना करते हुए साधारणतः तीन प्रकारकी सृष्टिकी बात कही जाती है। उनमें पहली परा सृष्टि, दूसरी ऐश्वरिक सृष्टि और तीसरी ब्राह्मी सृष्टि या वैज्ञानिक सृष्टि है। सूर्यविज्ञानके बलसे जिस सृष्टि-की बात कही गयी है, उसे तीसरे प्रकारकी सृष्टि समझनी चाहिये।

---

* शून्यको किसी भी बड़ी-से-बड़ी सख्याके द्वारा गुणा करनेपर भी एक बिन्दुमात्र सत्ताका उद्भव नहीं होता। परंतु अति क्षुद्र सत्ताको भी संख्याद्वारा गुणा करनेपर मात्रा-वृद्धि होती है। किसीके भी हृदयमे सरसो बराबर भी पवित्रता होनेपर कृपाबलसे महापुरुषगण उसका उद्धार कर सकते हैं; क्योंकि कुछ रहनेपर उसे बढ़ाया जा सकता है। परंतु जहाँपर कुछ नहीं है—अर्थात् अभिव्यक्तरूपमे नहीं है—वहाँ बाहरकी सहायता बेकार है। उस समय साधकको अपनी चेष्टा-के द्वारा उसे भीतरसे जाग्रत् करना पड़ता है। यही पौरुषका क्षेत्र है। फिर बिन्दुमात्र भी उद्बुद्ध होते ही बाह्य शक्ति कृपारूपसे उसको बढ़ा देती है। इस पौरुषके बिना केवल कृपाद्वारा कोई फल नहीं होता। श्रीकृष्णने द्रौपदीके पात्रसे बिन्दुबराबर अन्न लेकर उसके द्वारा हजारों ऋषियोको तृप्त कर दिया था। देश और विदेशमे महापुरुषोंके चरित्रोंसे ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल जायँगे।

वेदोंमें भगवान् सूर्य

(लेखक—श्रीमनोहर वि० अ०)

सूर्यको भगवान् कहते हैं । वास्तवमे ही वे इस सौरमण्डलमें भगवत्स्वरूप हैं । सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें जो कार्य भगवान् करते हैं, इस सौरमण्डलमें सूर्यकी भी वही स्थिति है और तत्सम कृति है । इसलिये वेदने स्वयं भगवान्की सूर्यसे उपमा दी है—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः । (यजु० २३ । ४८)
भवानो अर्वाङ्स्वर्ण ज्योतिः । (ऋक्० ४ । १० । ३)

वेदमें आये हुए सारे देववाची नाम अन्तमें परमेश्वरकी स्तुति करते हैं; क्योंकि प्रत्येक देवके गुणकी अन्तिम पराकाष्ठा उसीमे सार्थक होती है । इसलिये किसी भी नामसे स्तुति की जाय, वास्तवमें वह परमेश्वरकी ही स्तुति होती है—

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥
(ऋक्० ९ । ९९ । ४)

इसी प्रकार भगवान्के बाद सबसे अधिक नाम सूर्यके हैं । विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, धाता, विधाता, सविता, मित्र, वरुण, आदित्य, शक्र, उरुक्रम, विष्णु, भग इत्यादि नाम अलग-अलग देवोंके होते हुए सूर्यके वाचक भी है । इसलिये इन नामोंसे इन देवताओंके वर्णनके साथ सूर्यकी स्तुति भी होती है । जब भग या सविताको भगका प्रसविता कहते हैं, तो उसका अर्थ यही है कि सूर्य ही स्वयं भगवान् हैं—

भग एव भगवाँ अस्तु देवः
सनो भग पुर एताभमेव ।
(अथर्व० ३ । १६ । ५)

सुवाति सविता भगः । (ऋक्० ७ । ६६ । ४)

क्योंकि जबतक अपने पास कोई वस्तु न हो, वह दूसरेको कैसे दी जा सकती है ।

सूर्यके उदयके साथ ही जगत्के कार्य प्रारम्भ होते हैं । सूर्य ही दिन-रात और ऋतु-चक्रके नियामक हैं । सूर्यकी उष्माके बिना वनस्पतियाँ पक नहीं सकतीं, अन्न उत्पन्न नहीं हो सकता और परिणामतः प्राणधारी प्राणको धारण नहीं कर सकते ।

सूर्यकी किरणोंमें मनुष्यके लिये उपयोगी सब तत्त्व विद्यमान है । सब रोगों और दुरितोंको दूर करनेकी शक्ति है । तभी तो **'विश्वानि देवसवितर्दुरितानि परासुव'** कहा जाता है । सूर्यका सुचारुरूपसे सेवन करनेवालेको किसी विटामिनके खानेकी आवश्यकता नहीं रहती । सूर्यका सही प्रयोग सब वरणीय तत्त्व प्रदान करता है—

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥
(ऋक्० ५ । ८२ । १)

देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ।
(ऋक्० ५ । ८२ । ६)

स देवान् विश्वान् बिभर्ति ।
(ऋक्० ३ । ५९ । ८)

—रोगों, रोगकृमियोंको नष्ट करता है । उदित होते हुए सूर्यका नियमित सेवन तो हृदय और मस्तिष्कके सब विकारोंको भी नष्ट करनेकी सामर्थ्य रखता है—

आ देवो याति सविता परावतो
ऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ।
(ऋक्० १ । ३५ । ३)

अपसेधन् रक्षसो यातुधानान-
स्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ।
(ऋक्० १ । ३५ । १०)

संते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ॥
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो
रोगमनीनशांग भेदमशीशमः ।
(अथर्व० ९ । ८ । २२)

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।
(ऋक्० १।५०।११)

सूर्यः कृणोतु भेषजम्। (अथर्व० ६।८३।१)
अजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम्।
(ऋक्० ४।५३।२)

इस प्रकार मानसिक शान्ति प्रदान करके वे सब प्रकारके सुख प्राप्त कराते हैं और व्रतोंको पूर्ण करनेकी सामर्थ्य देते हैं—

व्रतानि देवः सविताभिरक्षते।
(ऋक्० ४।५३।४)

सबकी आत्मा सूर्य

सूर्यमें उत्पादन और प्रेरणा-शक्तिका उत्स है। सूर्योदय होते ही प्राणियोंको अपने दैनिक कार्योंमें प्रवृत्त होनेकी स्वतः प्रेरणा होती है। इसलिये सूर्यको चल और अचल अथवा चेतन और जड़—दोनो प्रकारकी सृष्टिकी आत्मा कहा गया है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः॥
(ऋक्० १।११५।१)

दोनोंमें इसीके द्वारा रोचना दिखायी देती है। दिनमें द्युलोकको ये ही प्रकाशित करते हैं—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
व्यख्यन्महिषो दिवम्। (ऋक्० १०।१८९।२)

वे ही सबके सामने मार्गदर्शक बनकर खड़े हुए हैं और उनके अच्छे-बुरे कर्मों तथा पुण्य-पापको देखते हुए—

नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे।
विश्वं शृणोति पश्यति। (ऋक्० ८।७८।५)

—मित्रवत् पुण्यकर्मका फल देते हैं। वरुण पुलिस-विभागकी तरह उन प्राणियोंके दुष्ट कर्मोंका लेखा-जोखा रखकर, न्यायकारी (अर्यमा) भगवान्‌के सामने उपस्थित करते हैं। अतः जो सबके वशी तथा नियन्त्रणकर्ता हैं, वे अपने सेवककी अंहसा (पापसे) रक्षा करते हैं।

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः। तमर्यमाभिरक्षति ऋजूयन्तमनुव्रतम्। उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम्॥ (ऋक्० १।१३६।५)

सूर्य स्वयम्भू हैं, इस सौर जगत्‌में श्रेष्ठ हैं, सारे जगत्‌को प्रकाशित कर रहे हैं। सबको वर्चस् और ज्योति देते हैं। जो भी सूर्यके नियमोंका अनुसरण करेगा, वह उनके समान वर्चस्वी बनेगा। यहाँ सूर्य और भगवान्‌में तादात्म्य दर्शाया है।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते। (यजु० २।२६)

विश्वमाभासि रोचनम्। (ऋक्० १।५०।४)

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं
विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु
पप्रथे सह ओजो अच्युतम्॥
(ऋक्० १०।१७०।३)

परमात्मा ही हमें जाने या अनजाने किये हुए पापोंसे मुक्त करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। उनकी कृपा होनेपर ही पुरुष देवयानके पथपर चलता हुआ कल्याण प्राप्त करता है—

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मातस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः॥
(यजु० २०।१६)

अध्वनामध्वपते प्रमातिर स्वस्ति
मेऽस्मिन्पथिदेवयाने भूयात्॥
(यजु० २।३३)

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम्।
आरे'''अस्मद्धातन।' (ऋक्० ८।४७।१३)

यहाँ परमात्माको सर्वोत्पादक तथा सर्वप्रेरक होनेसे सूर्य-नामसे सम्बोधित किया गया है। सौर जगत्‌में सूर्यकी भी यही स्थिति है।

सूर्य-(भगवद्-) दर्शन

सर्वव्यापक विष्णु (सूर्य भगवान्) का परम पद द्युलोकमें सूर्यसदृश विस्तृत है। सूरिलोग सूर्यके समान ही उन्हें सदा देखते हैं—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्। (ऋक्० १।२२।२०)

यहाँ भी सर्वव्यापक ब्रह्म तथा सूर्यमें समानता दर्शायी गयी है।

सूर्य जड़, चेतन, विद्वान्, मूर्ख तथा पुण्यात्मा और पापी—सबको समानरूपसे प्रकाश एवं प्रेरणा देते हैं—

साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्। (ऋक्० ७।६३।१)
प्रत्यङ्देवानां विशः प्रत्यङ् उदेषि मानुषान्।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे। (ऋक्० १।५०।५)

वे सब प्रकारके अन्न तथा वनस्पतिको पकाते हैं—

स ओषधीः पचति विश्वरूपाः।
(ऋक्० १०।८८।१०)

जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं—

अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः।
(ऋक्० ८।४७।४)
आ दाशुषे सुवति भूरि वामम्। (ऋक्० ६।७१।४)

फिर भी संसारका प्रत्येक प्राणी और पदार्थ अपनी सामर्थ्यके अनुसार ही शक्ति ग्रहण करता है। सूर्यकी प्रेरणामें मनुष्य जिस मात्रामें कर्म करते हैं, उसी मात्रामें पदार्थ अथवा अर्थ-लाभ करते हैं।—

नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।
(ऋक्० ७।६३।४)

सूर्यद्वारा भगवत्प्राप्ति

सविताके रूपमें सूर्य नाना सुखके वर्षक हैं, जड़-जंगम दोनोंके नियन्त्रक हैं। इसलिये हमें भी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक रोग, दोष तथा पापके नाशके लिये तीनों प्रकारकी रक्षा करनेयोग्यके सुख एवं शान्ति प्रदान करें—

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः
स्थातुरुभयस्य यो वशी।
स नो देवः सविता शर्म
यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः॥
(ऋक्० ४।५३।६)

वे सविता देव नाना प्रकारके अमृत-तत्त्व प्रदान करते हैं—

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि।
(अथर्व० ६।१।३)

हम उन सविता देवके पापों और दुःखोंको भस्म करनेवाले वरणीय तेजका ध्यान करते हैं और फिर उसे धारण करनेका प्रयत्न करते हैं। वह सर्वप्रेरक हमारे संकल्प, बुद्धि और कर्मोंको सन्मार्गपर प्रेरित करे—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। (ऋक्० ३।६२।१०)

जिससे हम उन देवोंके देव, परमज्योतिर्मयको प्राप्त कर सकें—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
(यजु० २०।२१)

यहाँ सूर्य और भगवान्में भेद ही नहीं दीखता। भगवद्दर्शन या प्राप्ति सूर्यद्वारा ही सम्भव मानी गयी है।

आदित्यवर्ण पुरुष

ब्रह्मके बिना ब्रह्माण्डकी कल्पना (सृष्टि) सम्भव नहीं। इसी प्रकार सूर्यके बिना इस सौर जगत्की कल्पना (सृष्टि) सम्भव नहीं है। यद्यपि सूर्यकी सृष्टि भगवान्‌द्वारा हुई है, फिर भी उन सूर्यमें उन भगवान्‌की शक्ति कार्य कर रही है। शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद मानकर स्वयं वेदने आदित्यस्थित पुरुष और ब्रह्माण्डस्थित पुरुषसे अभेद दर्शाया है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहम्, ओम् खं ब्रह्म ॥
(यजु० ४० । १७)

भगवान्‌के बाद सौर-जगत्‌के सृष्ट पदार्थोंमें सूर्य ही सबसे महिमामय तत्त्व हैं । इसलिये भगवान्‌की झलक दिखानेके लिये वेदमें भगवान्‌को आदित्यवर्ण कहा है । जैसे सूर्य सर्वरोगमोचक हैं, वैसे ही भगवान् मृत्युसे मोक्ता हैं—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसःपरस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
(यजु० ३१ । १९)

जैसे सूर्य जगत्‌के अन्धकारके आवरणको झटककर हटा देते हैं, वैसे ही भगवान् भक्तके अज्ञानावरणको झटक देते हैं—

आदीं केचित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत । वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥
(ऋक्० ९ । ११० । ६)

इस प्रकार वेदोंमें आदित्यपुरुष और ब्रह्मपुरुषमें या भगवान् और सूर्यमें गुणों और कार्योंकी इतनी समानता दर्शायी है कि उनमें कभी-कभी अभेद प्रतीत होता है । हमारी सृष्टिमें सबसे महिमामय तत्त्व सूर्य ही हैं और इसलिये भगवान्‌को यदि किसी स्थूल दृश्यमान तत्त्वसे समझना हो तो केवल सूर्यद्वारा ही समझा जा सकता है । इसीलिये आदित्य-हृदयमें कहा गया है कि सूर्यमण्डलमें कमलासनपर आसीन 'नारायण'का सदा ध्यान करना चाहिये—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।

प्रेरणा, दीप्ति और हितकारिताकी दृष्टिसे मनुष्यका आदर्श पुरुष या लक्ष्य सूर्य हैं । वह सूर्य-सदृश बनकर ही भगवान् परमेश्वर या ब्रह्मका दर्शन कर सकता है और उन्हें प्राप्त कर सकता है ।

वेदोंमें भगवान् सूर्यकी महत्ता और स्तुतियाँ

(लेखक—श्रीरामस्वरूपजी शास्त्री 'रसिकेश')

पृथ्वीसे भी अत्यधिक उपकारक भगवान् सूर्य हैं । अतः हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने श्रद्धा-विभोर होकर सूर्यदेवकी स्तुति-प्रार्थना और उपासनाके सैकड़ो सुन्दर मन्त्रोंकी उद्भावना की है । उनके प्रशंसनीय प्रयासका दिग्दर्शन कराया जा रहा है ।

१—सूर्य-स्तुति—

वैदिक ऋषियोंका ध्यान भगवान् सूर्यके निम्नलिखित गुणोंकी ओर विशेषरूपसे गया है—(क) अन्धकारका नाश, (ख) राक्षसोंका नाश, (ग) दुःखों और रोगोंका नाश ,(घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि, (ङ) चराचरकी आत्मा, (च) आयुकी वृद्धि और (छ) लोकोंका धारण ।

नीचे भुवन-भास्करके इन्हीं गुणोंके सम्बन्धमें वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रकाश डाला जाता है ।

(क) अन्धकारका नाश—

अभितपा सौर्य ऋषिकी प्रार्थना है—

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना । तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव ॥
(ऋग्वेद १० । ३७ । ४)

हे सूर्य ! आप जिस ज्योतिसे अन्धकारका नाश करते हैं तथा प्रकाशसे समस्त संसारमें स्फूर्ति उत्पन्न कर देते है, उसीसे हमारा समग्र अन्नोंका अभाव, यज्ञका अभाव, रोग तथा कुस्वप्नोंके कुप्रभाव दूर कीजिये ।

(ख) राक्षसोंका नाश—

महर्षि अगस्त्य ऐसे ही विचारोंको निम्नाङ्कित मन्त्रमें व्यक्त करते हैं—

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥
(ऋग्वेद १ । १९१ । ८)

'सबको दीखनेवाले, न दीखनेवाले (राक्षसों) को नष्ट करनेवाले, सब रजनीचरों तथा राक्षसियोंको मारते हुए वे सूर्यदेव सामने उदित हो रहे हैं।'

(ग) रोगोंका नाश—

प्रस्तुत मन्त्रसे विदित होता है कि सूर्यका प्रकाश पीलिया रोग तथा हृदयके रोगोमे विशेष लाभप्रद माना जाता था। प्रस्कण्व ऋषिकी सूर्य देवतासे प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥
(ऋग्वेद १ । ५० । ११)

'हे हितकारी तेजवाले सूर्य! आप आज उदित होते तथा ऊँचे आकाशमे जाते समय मेरे हृदयके रोग तथा पाण्डुरोग (पीलिया) को नष्ट कीजिये।' इस मन्त्रके **'उद्यन्'** तथा **'आरोहन्'** शब्दोसे सूचित होता है कि दोपहरसे पूर्वके सूर्यका प्रकाश उक्त रोगोका विशेषतः नाश करता है।

(घ) नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि—

वेदोमें विभिन्न देवताओको पृथक्-पृथक् पदार्थोंका अधिपति एवं अधिष्ठाता कहा गया है। उदाहरणार्थ, अथर्ववेद (५ । २४) मे अथर्वा ऋषि हमे बताते है कि जैसे अग्नि वनस्पतियोंके, सोम लताओंके, वायु अन्तरिक्षके तथा वरुण जलोंके अधिपति है, वैसे ही सूर्यदेवता नेत्रोंके अधिपति हैं। वे मेरी रक्षा करें।

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु॥
(अथर्व० ५ । २४ । ९)

यहाँ नेत्र प्राणियोंके नेत्रोंतक ही सीमित नहीं है; क्योंकि वेद तो भगवान् सूर्यको मित्र, वरुण तथा अग्निदेवके भी नेत्र बताते हैं—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
(ऋ० १ । ११५ । १)

ये सूर्य देवताओंके अद्भुत मुखमण्डल ही हैं, जो कि उदित हुए है। ये मित्र, वरुण और अग्निदेवोंके चक्षु हैं। सूर्य तथा नेत्रोंके घनिष्ठ सम्बन्धको ब्रह्मा ऋषिने इन अमर शब्दोमें व्यक्त किया है—

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्त-
रिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
(अथर्व० ५ । ९ । ७)

'सूर्य ही मेरे नेत्र हैं, वायु ही प्राण हैं, अन्तरिक्ष ही आत्मा है तथा पृथिवी ही शरीर है।'

इसी प्रकार दिवंगत व्यक्तिके चक्षुके सूर्यमे लीन होनेकी कामना की गयी है। (ऋ० १० । १६ । ३) सूर्यदेवता दूसरोको ही दृष्टि-दान नहीं करते, स्वयं दूर रहते हुए भी प्रत्येक पदार्थपर पूरी दृष्टि डालते हैं। ऋजिश्वा ऋषिके विचार इस विषयमें इस प्रकार है—

वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः। ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्॥ (ऋ० ६ । ५१ । २)

जो विद्वान् सूर्यदेवता तथा इन अन्य देवताओंके स्थानो (पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्यौ) और इनकी संतानोके ज्ञाता हैं, वे मनुष्योके सरल और कुटिल कर्मोंको सम्यक् देखते रहते हैं।

(ङ) चराचरकी आत्मा—

वैदिक ऋषियोकी प्रगाढ़ अनुभूति थी कि सूर्यका इस विशाल विश्वमें वही स्थान है, जो शरीरमें आत्माका। इसी कारणसे वेदोमे ऐसे अनेक मन्त्र सहज सुलभ हैं, जिनमे सूर्यको सभी जड़-चेतन पदार्थोंकी आत्मा कहा गया है। यथा—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (ऋ० १ । ११५ । १)

ये सूर्यदेवता जंगम तथा स्थावर सभी पदार्थोंकी आत्मा हैं।

(च) आयु-वर्धक—

यो तो रोगोसे बचाव तथा उनके उपचारसे भी आयु-वृद्धि होती है, फिर भी वेदोमे ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं, जिनमें सूर्य एव दीर्घायुका प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाया गया है। यथा—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् । (यजु० ३६।२४)

देवताओंद्वारा स्थापित वे तेजस्वी सूर्य पूर्वदिशामें उदित हो रहे हैं। उनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षोतक (तथा उससे भी अधिक) देखे और जीवित रहे।

(छ) लोक-धारण—

वैदिक ऋषि इस बातको सम्यक् अनुभव करते थे कि लोक-लोकान्तर भी सूर्य-देवताद्वारा धारण किये जाते हैं। निदर्शनके लिये एक ही मन्त्र पर्याप्त होगा—

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः। येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥ (ऋ० १०।१७०।४)

'हे सूर्य ! आप ज्योतिसे चमकते हुए द्यौ लोकके सुन्दर सुखप्रद स्थानपर जा पहुँचे हैं। आप सर्वकर्म-साधक तथा सब देवताओके हितकारी है। आपने ही सब लोक-लोकान्तरोको धारण किया है।'

२-सूर्य-देवसे प्रार्थनाएँ—

उपर्युक्त अनेक मन्त्रोमे सूर्यदेवताका गुण-गान ही नहीं है, प्रसंगवश प्रार्थनाएँ भी आ गयी हैं। दो-एक अभ्यर्थनापूर्ण मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः
पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः।
स नः सूर्य प्रतिर दीर्घमायु-
र्मारिषाम सुमतौ ते स्याम ॥
(अथर्व० १३।२।३७)

'मै द्यौकी पीठपर उड़ते हुए अदितिके पुत्र, सुन्दर पक्षी (सूर्य) के पास कुछ माँगनेके लिये डरता हुआ जाता हूँ। हे सूर्यदेव ! आप हमारी आयु खूब लंबी करें। हम कोई कष्ट न पावें। हमपर आपकी कृपा बनी रहे।'

अपने उपास्य प्रसन्न हो जायँ तो उनसे अन्य कार्य भी करा लिये जाते हैं। निम्नलिखित मन्त्रमे महर्षि वसिष्ठ भगवान् सूर्यसे कुछ इसी प्रकारका कार्य करानेकी भावना व्यक्त करते हैं—

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः। प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च॥
(ऋ० ७।६२।२)

'हे सूर्य ! आप इन स्तोत्रोके द्वारा तीव्रगामी घोडोके साथ हमारे सामने उदित हो गये हैं। आप हमारी निष्पापताकी बात मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्नि-देवसे भी कह दीजिये।'

उपासना—

स्तुति, प्रार्थनाके पश्चात् उपासककी एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वह अपने आपको उपास्यके पास ही नहीं, बल्कि, अपनेको उपास्यसे अभिन्न अनुभव करने लगता है। ऐसी ही दशाकी अभिव्यक्ति निम्न-लिखित वेद-मन्त्रमें की गयी है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥
(यजु० ४०।१७)

'उस अविनाशी आदित्यदेवताका शरीर सुनहले ज्योतिपिण्डसे आच्छादित है। उस आदित्यपिण्डके भीतर जो चेतन पुरुष विद्यमान है, वह मै ही हूँ।' उपर्युक्त विवरणसे सिद्ध है कि जहाँ हमारे वैदिक पूर्वज भौतिक सूर्य-पिण्डसे विविध लाभ उठाते थे, वहाँ उसमे विद्यमान चेतन सूर्य-देवतासे स्व-कामना-पूर्तिके लिये प्रार्थनाएँ भी करते थे। तत्पश्चात् उनसे एकरूपताका अनुभव करते हुए असीम आत्मिक आनन्दके भागी बन जाते थे। सचमुच महाभाग सूर्य महान् देवता हैं।

ऋग्वेदमें सूर्य-सन्दर्भ

ऋग्वेदमें सूर्यसे सन्दर्भित कुल चौदह सूक्त हैं, जिनमेंसे ग्यारह पूर्णतः सूर्यकी उपवर्णना, स्तुति या महत्त्व-प्रतिपादक हैं। संक्षेपमें उदाहरण देखें—सूर्य 'आदित्य' हैं; क्योंकि वे अदितिके पुत्र बतलाये गये हैं। अदितिदेवीके पुत्र आदित्य (सूर्य) माने गये हैं। आदित्य छः हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश (म० २, सूक्त २७, मं० १)। पृ०९। ११४। में सात तरहके सूर्य बताये गये हैं। १०। ७२। ८ में कहा गया है कि अदितिके आठ पुत्र थे—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदितिदेवी चली गयीं और आठवें सूर्यको उन्होंने आकाशमें छोड़ दिया। [तैत्तिरीय ब्राह्मणमें आदित्यके स्थानपर इन्द्रका नाम है। शतपथ-ब्राह्मणमें १२ आदित्योंका उल्लेख है। महाभारत (आदिपर्व, १२१ अध्याय)में इन १२ आदित्योंके नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता और विष्णु। अदितिका यौगिक अर्थ अखण्ड है। यास्कने अदितिको देवमाता माना है।]

कहा जाता है कि वस्तुतः सूर्य एक ही हैं। कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार उनके विविध नाम रखे गये हैं।

मण्डल १, सूक्त ३५ में ११ मन्त्र हैं और सब-के-सब सूर्यवर्णनसे पूर्ण हैं। एक ही सूक्तमे सूर्यका अन्तरिक्षमें भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति, किरणोंसे रोगादिकी निवृत्ति, सूर्यके द्वारा भूलोक और द्युलोकका प्रकाशन आदि बातें भी विदित होती हैं। आठवें मन्त्रमें कहा गया है—'सूर्य आठों दिशाओं—(चार दिशाओं और चार उनके कोनों) को प्रकाशित किये हुए हैं। उन्होंने प्राणियोंके तीन संसार और सात सिन्धु भी प्रकाशित किये हैं। सोनेकी आँखोंवाले सविता यजमानको द्रव्य देकर यहाँ आवें।'

मं० १, सू० ५०, म० ८ में लिखा है—सूर्य! तुम्हें हरित नामके सात घोड़े (किरणें) रथसे ले जाते हैं। किरणें या ज्योति ही तुम्हारे केश हैं। मं० २, सू० ३६-२ में कहा गया है—सूर्यके एक-चक्रवाले रथमें सात घोड़े जोते गये हैं। एक ही अश्व (किरण) सात नामोंसे रथ ढोता है। इससे विदित होता है कि ऋषिको सूर्य-रश्मिके सात भेदों और उनके एकत्वका भी ज्ञान था।

मं० १, सू० १२३, मं० ८ में कहा गया है—'उषा सूर्यसे ३० योजन आगे रहती है।' इसपर आचार्य सायणने लिखा है—'सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य प्रत्येक दण्डमें ७९ योजन घूमते हैं। उषा सूर्यसे ३० योजन पूर्वगामिनी है, इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा घंटा पहले उषाका उदय मानना चाहिये।' पाश्चात्योंके मतसे सूर्य बीस हजार मील प्रतिदिन चलते हैं; परंतु सूर्यकी गति अपने कक्षमे ही होती है।*

इन दो मन्त्रोंमें सूर्य-सम्बन्धी अनेक विषय ज्ञातव्य हैं—'सत्यात्मक सूर्यका बारह अरों, खूँटों वा राशियोंसे युक्त चक्र स्वर्गके चारों ओर बार-बार भ्रमण करता है और कभी पुराना नहीं होता। अग्नि इस चक्रमें पुत्र-स्वरूप होकर सात सौ बीस दिन (अर्थात् ३६० दिन और

* कृ० यजु० वे० तै० ब्रा०के दिवोक्रम मन्त्रके भाष्यमे आचार्य सायणने सूर्यको नमस्कार करते हुए उनकी गतिका भी उल्लेख किया है—

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने। एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते॥

[वैज्ञानिक सूर्यकी गति एक सेकण्डमें १२ मील बतलाते हैं।]

३६० रात्रियाँ) निवास करते हैं। अगले मन्त्रमें दक्षिणायन (पूर्वार्द्ध) और उत्तरायण (अन्यार्ध)का भी कथन है (मं० १, सू० १६४,मं० ११-१२)। मं० १, सू० ११७, मं० ४-५ मे भी दक्षिणायनका विषय है। मं० १, सू० १६, मं० ४८ मे भी ३६० दिनोंकी वात है।

मं० १, सू० १५५, मं० ६ में कालके ये ९४ अंश वताये गये हैं—संवत्सर, दो अयन, पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिरको एक माननेपर), बारह मास, चौबीस पक्ष, तीस अहोरात्र, आठ पहर और बारह राशियाँ।

म० ५, सू० ४०, मं० ५–९ मे सूर्य-ग्रहणका पूर्ण विवरण है।

मं० ७, सू० ६६, मं० ११में सूर्य (मित्र वरुण और अर्यमा) के द्वारा वर्ष, मास, दिन और रात्रिका बनाया जाना लिखा है। पृ०१२८-८मे १२ मासोकी बात तो है ही, तेरहवे महीनेका भी उल्लेख है। यह तेरहवॉ महीना मलमास अथवा मलिम्लुच है। पृ०१३५०–३मे भी मलमासका उल्लेख है।

पृथिवीके चारो ओर सूर्यकी गतिसे जो वर्ष-गणना की जाती है, उसमें बारह 'अमावास्याओं'की गणना करनेसे कई दिन कम हो जाते हैं। अतः सौर और चान्द्र वर्षोंमें सामञ्जस्य करनेके लिये चान्द्र वर्षके प्रति तीसरे वर्षमें एक अधिक मास, मलमास अथवा मलिम्लुच रखा जाता है। इस मन्त्रसे ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्यमे दोनों (सौर और चान्द्र) वर्ष माने गये हैं और दोनोंका समन्वय भी किया गया है।

मं० १०, सू० १५६, मं० ४ मे कहा गया है, कि 'अक्षर और ज्योतिर्दाता सूर्य सदा चलते रहते हैं।'

मं० १०, सू० १८९,के १–३ मन्त्रोंमें सूर्यकी गतिशीलता और तीस मुहूर्तोंका उल्लेख है।पृ०१९२६-३०में इन्द्रद्वारा सूर्यके आकाशमें स्थापनके साथ ही सारे संसारके नियमनकी बात लिखी है।

मं० १०, सू० १४९, मं० १ में कहा गया है कि 'सूर्यने अपने यन्त्रोंसे पृथिवीको सुस्थिर रखा है। उन्होंने बिना अवलम्बनके द्युलोकको दृढ़ रूपसे बॉध रखा है।

इन उद्धरणोंसे विदित होता है कि भ्रमणशील सूर्यने अपनी आकर्षणशक्तिसे पृथ्वीप्रभृति ग्रहोपग्रहोके साथ आकाश एवं स्वर्ग (द्यौ) और सारे सौर-मण्डलको बाँधकर नियमित कर रखा है। इससे स्पष्ट ही विदित होता है कि आर्योंको सूर्यकी आकर्षण-शक्ति और खगोलका निपुण ज्ञान था। अगले मन्त्रसे भी इस मतका समर्थन होता है। इस गतिशील चन्द्रमण्डलमें जो अन्तर्हित तेज है, वह आदित्य-किरण ही है।

मं० १, सू० ८४के १५ वें मन्त्रपर सायणने निरुक्तांश (२-६) उद्धृत किया है—**'अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।'** अर्थात् 'सूर्यकी एक किरण चन्द्रमण्डलको प्रदीप्त करती है। सूर्यसे ही उसमें प्रकाश आता है।'

वैज्ञानिकोंके मतसे सूर्यकी किरणे अनेक रोगोंको विनष्ट करती हैं। ऋग्वेदके तीन मन्त्रो (मं० १ सू० ५०, मं० ८, ११, १३) से वैज्ञानिकोंके इस मतका समर्थन मिलता है—'सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर हमारा मानस (हृदयस्थ) रोग और पीतवर्णरोग एवं शरीररोग विनष्ट कर देते हैं। रोगसे मुक्त होनेकी इच्छावाले सूर्योपासकोंके लिये ये तीन मन्त्र मुख्य हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधि-व्याधिकी शान्तिके लिये इन मन्त्रोंको जपता है। सूर्य-नमस्कारके साथ भी इन मन्त्रोंका जप किया जाता है। सायणके मतसे इन्हीं मन्त्रोंका जप करनेसे प्रस्कण्व ऋषिका चर्म-रोग विनष्ट हुआ था।

ऋग्वेदमें खगोलवर्त्ती सप्तर्षि, ग्रह, तारा तथा उल्का आदिका भी उल्लेख है। कहा गया है कि जो सप्तर्षि नक्षत्र हैं, आकाशमे संस्थापित हैं और रात होनेपर दिखायी देते हैं, वे दिनमें कहाँ चले जाते हैं! १।२४।१० मन्त्रके मूलमें 'ऋचा' शब्द है, जिसका अर्थ सायणने 'सप्त तारा' किया है। ऋचु धातुसे ऋक्ष शब्द बना है, जिसका अर्थ उज्ज्वल है। इसीलिये नक्षत्रोंका नाम उज्ज्वल पड़ा और सप्तर्षियोंका नाम उज्ज्वल मालूम हुआ। पाश्चात्य भी इन्हे (ऐसा ही) कहते हैं। अन्यान्य मन्त्रोंमे भी सप्तर्षियोका उल्लेख है। मं० १, सू० ५५, मं० ६ में इन्द्रके द्वारा ताराओंका निरावरण करना लिखा है। मं० १०, सू० ६५, मं० ४ में ग्रहो, नक्षत्रों और पृथिवीको देवोंके द्वारा यथास्थान नियमित करनेकी बात है। १०।६८। ४में कहा गया है कि मानो आकाशसे सूर्य उल्काको फेंक रहे हैं। १४ भुवनोका उल्लेख है। इस प्रकार इन मन्त्रोंसे सौर-परिवारका ज्ञान होता है। आर्य खगोल-विद्याके ज्ञाता थे। वैदिक साहित्यके अन्यान्य ग्रन्थोंमें इसका विस्तार है। ऋग्वेदमे प्रत्येक विषय सूक्ष्मतम सूत्रमे वर्णित हैं। अतः बड़ी सावधानीसे प्रत्येक विषयका अध्ययन और अन्वेषण करना चाहिये।*

औपनिषद श्रुतियोंमें सूर्य

(लेखक—डॉ० श्रीसियारामजी सक्सेना 'प्रवर', एम्० ए०, (द्वय), पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न, आयुर्वेदरत्न)

येन त्रितो अर्णवान्निर्बभूव
येन सूर्यं तमसो निर्मुमोच।
येनेन्द्रो विश्वा अजहादराती-
स्तेनाहं ज्योतिषा ज्योतिरानशान आक्षि॥
(तैत्तिरीय आरण्यक २।३।७)

आदित्य ब्रह्म—सूर्यदेव समस्त जगत्मे प्राणोंका संचार करते हैं। सूर्योदय होते ही अन्धकारकी जड़ता दूर हो जाती है, प्रकाशकी उत्साहमयी कार्य-तत्परता सब ओर दृष्टिगोचर होने लगती है तथा रोगी भी अपनेको नीरोग-जैसे अनुभव करते हैं। इन सबके हेतु सूर्य भला क्यों न अभिनन्द्य होंगे? प्रत्येक हिंदू अपने दैनन्दिन जीवनका आरम्भ रवि-वन्दनसे करता है। वैदिकों तथा आगमिकोंकी गायत्री उपासना और योगियोके त्राटक सूर्योपासनाके ही अङ्ग हैं।

सूर्योपनिषद्में सूर्यब्रह्मकी उपासनाका निर्देश है। उसमें ऋषि-कथन है—'नारायणाकार सूर्य एवं चिन्मूर्ति-वैभवको नमस्कार करता हूँ। सूर्य चराचरकी आत्मा तथा आगमिकोकी गायत्री-उपासना और योगियोके त्राटक सूर्योपासनाके अन्तर्गत उपास्य-रूप हैं।'[1]

'हे सूर्य! तुम प्रत्यक्ष कर्म-कर्त्ता हो तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश हो। आदित्यसे देव और वेद उत्पन्न होते हैं। आदित्यमण्डल तप रहा है। यह प्रत्यक्ष चिन्मूर्ति ब्रह्मका वैभव है।'[2] श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी आदित्य, अग्नि और सोमको ब्रह्म कहा है।

*—श्रीरामगोविन्द त्रिवेदीके ऋग्वेद हिन्दी अनुवादके भूमिका-भागसे साभार।

१. सूर्यनारायणाकार नौमि चिन्मूर्तिवैभवम्। ... ...
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। त्वमेव प्रत्यक्ष कर्मकर्तासि त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि।
२. त्वमेव प्रत्यक्ष विष्णुरसि त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि। आदित्याद् देवा जायन्ते आदित्याद् वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डल तपति असावादित्यो ब्रह्म॥ (—सूर्योपनिषद्)

'आदित्य ब्रह्म हैं'—इसकी व्याख्या छान्दोग्य-उपनिषद्में हुई है। पहले असत् ही था। वह सत्—'कार्याभिमुख' हुआ। अङ्कुरित होकर वह एक अण्डमे परिणत हो गया। उस अण्डके दो खण्ड हुए। रजत-खण्ड पृथ्वी है और स्वर्ण-खण्ड द्युलोक है। फिर इससे जो उत्पन्न हुए, वे आदित्य हैं। इनके उदय होते समय घोष उत्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण प्राणी और भोग भी इन्हींसे उत्पन्न होते हैं। इन आदित्य ब्रह्मके उपासकको ये घोष सुन्दर सुख देते हैं।[3] अन्यत्र श्रुति कहती है कि जो उद्गीथ (गाने योग्य) है, वह प्रणव है और जो प्रणव है, वह उद्गीथ है। ये आकाशमें विचरनेवाले सूर्य ही उद्गीथ हैं और ये ही प्रणव भी हैं। आशय यह है कि सूर्यमे ही परमात्मा और उनके वाचक ॐकी भावना करनी चाहिये; क्योंकि ये ॐका उच्चारण करते हुए ही गमन करते हैं।[4]

ब्रह्माण्डके दो मूल भाग हैं—द्यौ और पृथिवी; जिनमे समस्त प्राण, देव, लोक और भूत हैं। ये दो मूल भाग ब्रह्मके दो रूप हैं; जिन्हे मूर्त्त-अमूर्त्त, मर्त्य-अमृत, स्थित-यत्, सत्-त्यत् और पुरुष-प्रकृति भी कहा जाता है।[5] अमूर्त्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षका ज्योतिर्मय 'रस' आता है, जिसका प्रतीक आदित्यमण्डलका 'पुरुष' है। मूर्त्तके अन्तर्गत वायु तथा अन्तरिक्षके अतिरिक्त और जो कुछ है, उसका रस आता है, जिसका प्रतीक स्वयं तपनेवाला आदित्य-मण्डल है।[6]

मूर्त्त-अमूर्त्त, वाक्–ब्रह्म अथवा माया और पुरुष—ब्रह्मके दो-दो रूप विश्वके दो मूल तत्त्व हैं। द्यावा-पृथिवी मूर्त्त रूपका संयुक्त नाम है। इन स्थूल रूपोंमें इनके अमूर्त्त (सूक्ष्म) रूप व्याप्त रहते हैं। इसका एक मूर्त्त (स्थूल) रूप सूर्यमण्डल है, जिसमें अमूर्त्तरूप 'ज्योतिर्मय' पुरुष रहता है। इन दोनोंकी संयुक्त संज्ञा मित्रावरुण है। आगेकी विचारणामें मित्र और वरुण—ये दोनो आदित्यके पर्याय हैं और इनके कुछ पृथक्-पृथक् कार्य भी बताये गये हैं। बारह आदित्योंकी विचारणा भी कदाचित् इसीसे क्रमशः बढी है।

आदित्यमें ब्रह्म—बृहदारण्यक उपनिषद्में कहा है कि यह व्यक्त जगत् पहले आप् (जल) ही था। उस आप्ने सत्यकी रचना की। अतः सत्य ब्रह्म है और यह जो सत्य है, वही आदित्य है[7]। इस सूर्य-मण्डलमें जो यह पुरुष है, उसका सिर 'भूः' है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। दक्षिण नेत्रमें जो यह पुरुष है, उसका 'भूः' सिर है। सिर एक है और यह अक्षर भी एक है। 'भुवः' यह भुजा है। भुजाएँ दो हैं और ये अक्षर भी दो है। 'स्वः' यह प्रतिष्ठा (चरण) है। प्रतिष्ठा दो हैं और ये अक्षर भी दो हैं। 'अहम्' यह उसका उपनिषद् (गूढ़नाम) है।[8]

३. आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम्। असदेवेदमग्र आसीत्। तत् सदासीत्। तत् समभवत्। तदाण्डं निरवर्तत। सत् संवत्सरस्य मात्रामशयत। तन्निरभिद्यत। ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम्। तद् यत् रजतꣳ सेयं पृथिवी। यत् सुवर्णꣳ सा द्यौः······। अथ यत् तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः······। स य एतमेवं विद्वानादित्य ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन्॥ (–छा० उ० ३। १९। १–४)

४. अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति॥ (–छा० उ० १। ५। १)

५. बृ० उ० २। ३। १–५ ६. डॉ० फतहसिंह 'वैदिक दर्शन' पृष्ठ ७९

७. बृ० उ० ५। ५। १-२ ८. बृ० उ० ५। ५। ३-४

इसी उपनिषद्में याज्ञवल्क्य राजा जनकसे कहते हैं कि यह पुरुष 'आदित्य-ज्योति' है। आदित्यके अस्त होनेपर चन्द्र; आदित्य और चन्द्र—इन दोनोंके अस्त होनेपर अग्नि; अग्निके भी अस्त होनेपर वाक्, और वाक्के शान्त होनेपर आत्मा ही ज्योति है।[९] आशय यह है कि आदित्यादिक सभीका प्रकाशक परमात्मा हैं। उन्हींकी ज्योतिसे समस्त ज्योतिष्पिण्ड पुष्ट होते और कर्म करते हैं। ब्रह्माण्डमें ब्रह्मकी यह ज्योति आदित्यमण्डलके हिरण्मय पुरुषके रूपमें अवस्थित है और वह विभिन्न रूपोंमें राजती है अर्थात् नाना नाम-रूपात्मक जगत्के रूपमें अभिव्यक्त होती है।[१०]

गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् कहता है कि आदित्योंमें जो ज्योति है, वह गोपालकी शक्ति ही है[११]। नारायणोपनिषद् भी आदित्यमें परमेष्ठी ब्रह्मात्माका निवास बताता है।[१२] कौषीतकि-ब्राह्मणके अनुसार भी आदित्यका प्रकाश ब्रह्मकी ही दीप्ति है।[१३] श्रुतियों और गीतामें ब्रह्मको ही ज्योतिका मूल स्रोत और प्रकाशकोंको भी प्रकाश देनेवाला कहा गया है।[१४]

बृहदारण्यक श्रुतिका कथन है कि इस आदित्यमें यह जो तेजःस्वरूप अमृतमय पुरुष है, यह जो अध्यात्म-चाक्षुष-तेज अमृतमय पुरुष है, वही यह आत्मा है, अमृत है एवं ब्रह्म है[१५]। पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता होनेसे यह भी सिद्ध है कि दोनोंके पुरोंमें रहनेवाले पुरुषोंमें भी एकता है—मानव-पुरुषका प्राण-पुरुष वही है, जो आदित्यमण्डलरूप पुरमें रहनेवाला पुरुष है।[१६] जो अन्तर्यामी हमारे शरीरमें है, वही देव 'सहस्रशीर्षा' 'सहस्राक्ष' और 'सहस्रपाद' होकर समस्त विश्वके भीतर और बाहर है।[१७] वही अमृतका स्वामी चराचरका वशी है; वही ब्रह्म भूत और भव्य सब कुछ है; वही हमारी देहकी नवद्वार-पुरीमें निवास करनेवाला देही है।[१८]

सूर्यदेव—सूर्यका तपना और प्रकाशित होना सर्वव्यापी परमात्माकी अन्तर्निहित शक्तिके कारण हैं। इसे इस प्रकार भी कहा गया है कि सूर्य आदि सभी परमात्माके भयसे या उनकी इच्छा अथवा प्रेरणासे और उनके संकेतपर अपने-अपने कार्यमें लगे हुए हैं।[१९]

---

९. बृ० उ० ४। ३। १—६। १०. बृ० उ० ४। ३। ३२। ११. स होवाच तं हि वै नारायणो देव आद्या व्यक्ता द्वादश मूर्तयः सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठन्तीति।''' आदित्येषु ज्योतिः (—गो० उ० ता० उ० २। १)

१२. य एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा॥ (—नारा० उप०)

१३. एतद् वै ब्रह्म दीप्यते यथादित्यो दृश्यते॥ (—कौ० ब्रा० १२)

१४. येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ (मु० उ० २। २। १०; श्वे० उ० ६। १५; क० उ० २। १५); तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः॥ (—मु० उ० २। २। ९); ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः॥ (—गीता १३। १७)

तथा—यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(—गीता १५। १२)

१५. यश्चायमस्मिन्नादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदऽ सर्वम्॥ (—बृ० उ० २। ५। ५)

१६. (क) यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एववित्॥ (—तै० उ० २। ८। ५)

(ख)—ऐ० उ० ३। ११ १७. —ऐ० उ० ३। १२—४१

१८. नवद्वारे पुरे देही हऽसो लेलायते बहिः। वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥

(—श्वे०उ० ३। १८)

१९. (क) भीषोदेति सूर्यः॥ (—तै० उ० २। ८। १)

गायत्री मन्त्रमें सविताको देव कहा है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्यमण्डल उनका तेज है—**'देवस्य भर्गः'**। आदित्यके सविता आदिक बारह स्वरूप हैं। श्रुति कहती है कि आदित्य, रुद्र और वसु आदि तैंतीसों देवता नारायणसे उत्पन्न होते हैं, नारायणके द्वारा ही अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और अन्तमे नारायणमे ही लीन हो जाते हैं।[20] परमात्माके तीन पद तीन गुहाओंमें निहित हैं। वे ही सबके बन्धु, जनक और सविता तथा सबके रचयिता हैं।[21] (सविताके रथ और घोड़ोंका वर्णन वेद और पुराणोंमे विस्तारसे आया है।[22])

नेत्रगत सूर्य—सूर्य भगवान्‌के नेत्र हैं[23]। जब विराट् पुरुष प्रकट हुआ तो उसके नेत्रमें सूर्यने प्रवेश किया।[24] इसी प्रकार समस्त प्राणियोंके नेत्रोमे मूलशक्ति सूर्यकी ही है[25]। हिरण्यगर्भरूप पुरुषके नेत्रोंसे आदित्य प्रकट हुए हैं[26]। बृहदारण्यकमें इसे इस प्रकार कहा है कि इस आदित्य-मण्डलमे जो पुरुष है और दक्षिण नेत्रमें जो पुरुष है—वे ये दोनों पुरुष एक-दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं। आदित्य रश्मियोंके द्वारा चाक्षुष पुरुषमें प्रतिष्ठित है और चाक्षुष पुरुष प्राणोंके द्वारा उसमे प्रतिष्ठित है।[27]

इस विषयका पूर्ण स्पष्टीकरण कृष्णयजुर्वेदीय 'चाक्षुष उपनिषद्'मे हुआ है। उसमे बताया है कि चाक्षुष्मती विद्यासे अक्षि-रोगोका निवारण होता है और हम अन्धतासे बचते हैं। इसी सन्दर्भमे सूर्यके स्वरूप और शक्तिका निर्वचन हुआ है। सूर्य नेत्रके तेज हैं और उसको ज्योति देते हैं। वे महान् हैं, अमृत हैं एवं कल्याणकारी हैं। शुचि और अप्रतिमरूप है। वे रजोगुण (क्रियाशक्ति) और तमोगुण (अन्धकारको अपनेमें

(ख) भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ (—कठ० २।३।३)

२०. (क) द्वादशादित्या रुद्रवसवः सर्वाणिच्छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते नारायणात् प्रवर्तन्ते नारायणे प्रलीयन्ते च। एतद् ऋग्वेदशिरोऽधीते॥ (—नारायणाथर्वशिर उप० १)

(ख) यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति। तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन॥ एतद्वै तत्॥ (—कठ० २।१।९)

२१. त्रीणि पदा निहिता गुहासु यस्तद्वेद स पितुः पितासत्।
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा॥ (—नारायण उप० १।४)

२२. ऋक्० १।८।२, वि० पु० २।१०।

२३. (क) अथ चक्षुरत्यवहत् तद् यदा मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत् सोऽसावादित्यः परेण मृत्युमतिक्रान्तस्तपति॥ (—बृ० उ० १।३।१४)

(ख) अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ···॥ (—मुण्डक० २।१।४)

२४. आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्॥ (—ऐ० उ० १।२।४)

२५. सूर्यश्चक्षुः॥ (—बृ० उ० १।१।१) तद् यद् इदं चक्षुः सोऽसावादित्यः। (—बृ० उ० ३।१।४)
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः॥ (—सूर्य उ०)

पर्वके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण सूर्यको 'पर्वत' कहा है। सबको धारण करनेवाला होनेसे सूर्यको 'धाता' कहा जाता है।

२६. ···चक्षुष आदित्यः···॥ (—ऐ० उ० १।१।४)

२७. तद् यत् तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन्। स यदोत्क्रमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति॥ (—बृ० उ० ५।५।२)

लीन करनेकी शक्ति) के आश्रयभूत हैं। अतः उनसे असत्से सत्, अन्धकारसे प्रकाश और मृत्युसे अमृतकी ओर ले जानेकी प्रार्थना है[२८]।

बृहदारण्यकमे विश्व-व्यापी ब्रह्मके दो रूप बताये गये हैं; वे हैं मूर्त्त और अमूर्त्त। ब्रह्मका एक मूर्त्त रूप ब्रह्माण्डमे आदित्यमण्डल है और पिण्डमें चक्षु है। अमूर्त्त रूप वह ज्योतिर्मय रस है, जो ब्रह्माण्डमें आदित्य-मण्डलस्थ 'पुरुष'के रूपमे और पिण्डके अन्तर्गत चक्षुमे विराजमान है। इस प्रकार आदित्य और चक्षुका एकीकरण है, तादात्म्य है[२९]।

ब्रह्माण्ड और पिण्डकी एकता है। अतः अन्न, आप् और तेजके जिस त्रिवृत्से ब्रह्माण्डमें अग्नि, सोम और सूर्यका उद्भव हुआ है, उसीसे पिण्डमें मन, वाक् और प्राणका निर्माण हुआ है[३०]। तात्पर्य यह कि (वाक्, मन, प्राण और चक्षु आदि) पिण्डकी शक्तियाँ ब्रह्माण्डकी शक्तियोका ही रूपान्तर हैं। ऐतरेय उपनिषद्मे[३१] इसे एक रूपकके द्वारा स्पष्ट किया गया है। उसमे एक अन्यापदेशात्मक कथा है कि देवताओंने अपने लिये आयतन माँगा, तब परमेश्वरने मनुष्यको उनका आयतन बनाया। देवता उसके अङ्गोमे प्रवेश करके विभिन्न इन्द्रिय-शक्तियोंके रूपमें रहने लगे। आदित्य-देवताने अक्षि-अङ्गमें प्रवेश किया और वे चक्षु-शक्ति बनकर रहने लगे[३२]। इस प्रकार सूर्य सब लोकोंके चक्षु हैं[३३]—**'सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः।'**

रूप-विधायक सूर्य—रूप मुख्यतः दो हैं—शुक्ल और कृष्ण। आदित्यका वर्ण कृष्ण है और उनकी ज्योति हिरण्मयी है जो शुक्लकी समवर्त्तिनी है। इस प्रकार सूर्य सब रूपोंके निर्माणमें सक्षम हैं[३४]। आदित्यमण्डलस्थ इन्द्र-प्राण समस्त प्राणोंका निर्माण करता हुआ विचरण करता है[३५]। इसीलिये श्रुति कहती है कि आदित्य चक्षुमें प्रतिष्ठित हैं और चक्षु-रूपमे प्रतिष्ठित है। आँखसे ही रूपोको देखता है तो रूप किसमें प्रतिष्ठित है? रूप हृदयमे प्रतिष्ठित है। हृदयसे ही रूपको जानता है। अतः हृदयमें ही रूप प्रतिष्ठित है। आशय यह है कि दृश्यमान रूपोंको सूर्य बनाते हैं किंतु इन रूपोंका अनुभवकर्ता हृदय है[३६]। हृदय भगवान्का निवास है। उसी शक्तिसे रूपका बोध होता है। तात्पर्य यह भी है कि आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म अनुभूतिका विषय है।

सृष्टि-कर्ता सूर्य—वेदो और उनके शीर्ष उपनिषदोंका कथन है कि सूर्यदेव चराचरके आत्मा हैं—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'** ये सूर्य जो उदित होते हैं, प्रजाओंके प्राण हैं।[३७] प्रश्नोपनिषद्के प्रथम प्रश्नके उत्तरमे सूर्यकी प्राणरूपता स्पष्ट की गयी है। प्राण और प्रकाशपति सूर्यमे तादात्म्य है।[३८]

२८–चाक्षुष उप० २९–बृ० उ० २। ३। १–५ ३०–छां० उ० अध्याय ६, खण्ड २ से ६

३१–ऐ० उ० १। १ ३२–ऐ० उ० १। २ ३३–क० उ० २। ११

३४–रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥ क० उ० २।२।९

रूपं रूपं मघवा बोभवीति ॥ इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।

३५–इन्द्रो रूपाणि कनिक्रदच्चरत् ॥ तै० सं०

३६–'''स आदित्यः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति कस्मिन्नु चक्षुः' प्रतिष्ठितमिति रूपेष्विति चक्षुषा हि रूपाणि पश्यति कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानीति हृदय इति होवाच हृदयेन हि रूपाणि जानाति हृदये ह्येव रूपाणि प्रतिष्ठितानि भवन्तीत्येवमेवैतद् याज्ञवल्क्य ॥ (–बृ० उ० ३। ९। २०)

३७–प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ (–प्रश्न० उ० १। ८)

३८–इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता। त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥

(–प्रश्न० उ० २। ९)

सूर्य अग्निमय हैं और जगत् अग्नि तथा सोम-तत्त्वके योगसे बना है—**'अग्नीषोमात्मकं जगत्'**। आशय यह कि सृष्टि व्यष्टि या मिथुन-प्रक्रियासे होती है। इसे स्पष्ट करते हुए श्रुति कहती है कि तेजोवृत्ति द्विविध है—सूर्यात्मक और अनलात्मक। इसी प्रकार रस-शक्ति भी द्विविध है—सोमात्मक और अनलात्मक। तेज विद्युदादिमय है और रस मधुरादिमय। तेज और रसके विभेदोंसे ही चराचरका प्रवर्तन हुआ है[३९]। अग्नि ऊर्ध्वग है और सोम निम्नग। ये क्रमशः शिव और शक्तिके रूप हैं। इन दोनोंसे सब व्याप्त है। तैत्तिरीयोपनिषद्‌की शीक्षावल्लीके तृतीय अनुवाकमे कहा है—'अग्नि पूर्वरूप है और आदित्य उत्तररूप।' हाँ, तो इनके द्वारा होनेवाला सृष्टि-विस्तार आगे बताया गया है। सप्तम अनुवाकमे आधि-भौतिक और आध्यात्मिक पदार्थोंकी रचना स्पष्ट की गयी है। मुण्डक-उपनिषद्‌मे सृष्टिक्रम इस प्रकार बताया है—परमेश्वरसे अग्निका उद्भव हुआ, अग्निकी समिधा आदित्य हैं। इनसे सोम हुआ। सोमसे पर्जन्य, पर्जन्यसे नाना प्रकारकी ओषधियाँ और ओषधियोंसे शक्ति पाकर जीव—संतानें हुईं (–मु० उ० २।१।५) तथा नारायण-उपनिषद् (३।७९) आदि अन्य श्रुतियोंमे भी सूर्यतापसे पर्जन्य और उससे आगेकी उद्भूतियाँ बतायी गयी हैं।

प्रश्नोपनिषद्‌में आदित्य (अग्नि) की 'प्राण' और सोमकी 'रयि' संज्ञाएँ बतायी गयी है। प्रजापतिने इन दोनोको उत्पन्न करके इनसे सृष्टिका विस्तार किया। मूर्त्त (पृथिवी, जल और तेज) तथा अमूर्त्त (वायु एवं आकाश) ये सब रयि हैं (–प्र० उ० १।४) अतः मूर्त्तमात्र अर्थात् देखने और जाननेमे आनेवाली सभी वस्तुएँ रयि हैं। सूर्य जीवनी-शक्ति और चेतना-शक्तिके घनीभूत रूप हैं। चन्द्रमामें स्थूल तत्त्वों (मांस, मेद और अस्थि आदि) को पुष्ट करनेवाली भूत-तन्मात्राओंकी अधिकता है। समस्त प्राणियोंके शरीरमें रवि एवं शशीकी ये शक्तियाँ विद्यमान है।

सावित्री-उपनिषद्‌में प्रथम प्रश्न है—'सविता क्या है? और सावित्री क्या है?' इसके उत्तरमे कहा है—'अग्नि और पृथ्वी, वरुण और जल, वायु और आकाश, यज्ञ और छन्द, मेघ एवं विद्युत्, चन्द्र तथा नक्षत्र, मन एवं वाणी तथा पुरुष और स्त्री—ये सविता और सावित्रीके विविध जोडे है। इन जोड़ोंसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है।' इसीके क्रममे (सा० उ० १।९ मे) यह भी कहा गया है कि आदित्य सविता है और द्युलोक सावित्री है। जहाँ आदित्य हैं, वहाँ द्युलोक है; जहाँ द्युलोक है, वहाँ आदित्य है। ये दोनो योनि (विश्वके उत्पादक) हैं। ये दोनों एक जोड़ा है।

बृहदारण्यक-उपनिषद् (१।२।१–३) में शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकारकी सृष्टियोंका वर्णन है। इनमे अर्क-सृष्टि शुद्ध है। अर्कका तेज वायु और प्राण-तत्त्वोंमें विभक्त हुआ है। यह शाश्वत सृष्टि है। आदित्यसे संवत्सर हुआ। संवत्सर और वाक्‌से व्युष्टि या मिथुन-प्रक्रियाद्वारा जो सृष्टि हुई वह नश्वर है, अतः अशुद्ध है।

वेदोंका सृष्टि-विज्ञान उपनिषदोंमे स्पष्ट किया गया है। उसका विवेचन करनेसे इस लेखका विस्तार हो जायगा, जो यहाँ अभी अभीष्ट नहीं है।

सूर्य-नक्षत्र—सावित्र्युपनिषद्‌मे गायत्रीमन्त्रके **'भर्गः'** शब्दकी व्याख्यामे कहा गया है कि सावित्रीका दूसरा पाद है—**'भुवः। भर्गो देवस्य धीमहि।'** अन्तरिक्षलोकमे सविता

३९–द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका। तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका॥
वैद्युदादिमय तेजो मधुरादिमयो रसः। तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्॥
(–बृहज्जाबालोपनिषद् २।२-३)

देवताके तेजका हम ध्यान करते हैं। अग्नि भर्ग है, चन्द्रमा भर्ग है। सूर्योपनिषद्में भगवान् सूर्यनारायणके तेजकी वन्दना है। सूर्य-गायत्री यों है—'**आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।**' यहाँ 'सहस्रकिरण' शब्द सूर्यकी परम तेजस्विताका बोधक है। फिर स्पष्ट कहा है कि सूर्यसे ज्योति उत्पन्न होती है—'आदित्याज्ज्योतिर्जायते।' बृहदारण्यकमें भी है कि आदित्य-ज्योति ही यह पुरुष है और आदित्य ही सबको ज्योति देते तथा कर्ममें प्रवृत्त करते हैं[40]। मुण्डकोपनिषद् (२।१।४-१०) के अनुसार भी ये सूर्य ही ज्योतिके मूल और निधान हैं।

इस ज्योतिःपिण्डसूर्यको प्रकाशित करनेवाले परमात्मा हैं। सूर्य उन्हें प्रकाशित नहीं करते; यहाँतक कि परमात्माके लोकतक सूर्य और उनके प्रकाशकी गति ही नहीं है। उन परमेश्वरके प्रकाशसे ही सब प्रकाशित हैं।[41] ब्रह्म ज्योतियोंकी भी ज्योति है,[42] जो सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-रहित लोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं।[43]

सूर्यका नाम हिरण्यगर्भ है। सूर्यके चारों ओर परिविस्तृत प्रकाश-पुञ्ज हिरण्यमय होनेसे 'हिरण्य' कहलाता है। उस हिरण्यके गर्भमें अर्थात् मध्यमें सूर्य स्थित हैं। अतः सूर्य हिरण्यगर्भ हैं। हिरण्यगर्भको सूर्य-प्राण, इन्द्र और विष्णु भी कहते हैं। ईश्वरके हृदयमें ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र—ये तीन अक्षर-तत्त्व नित्य विद्यमान रहते हैं। तीनों अक्षरोंमें अविनाभाव-सम्बन्ध* है अर्थात् एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता। अतः तीनों एक ही हैं और इन तीनोंसे प्रत्येकका और तीनोंके समष्टि-रूप ईश्वरका बोध हो जाता है।

ये सूर्य कल्प, युग, संवत्सर, मास, पक्ष, दिवस, रात्रि, घटी, पल और क्षण—सबके निर्माता हैं।[44] दो पक्षोंके तीस दिन-रात्रि सूर्यके तीस अङ्ग या धाम[45] कहलाते हैं। संवत्सरके बारह मासोंके बारह आदित्य-देवता हैं, जो सब कुछ ग्रहण करते-कराते चलते हैं। अतः वे आदित्य कहलाते हैं।[46] तेरहवें अधिमासको भी सूर्य ही बनाते हैं।[47] प्रतिवर्ष पृथ्वी जो सूर्यकी परिक्रमा करती है, उस अवधिको द्वादश मासोंमें विभाजित करनेपर भी कुछ दिन और घंटे बच रहते हैं। तीन वर्षोंके बाद वह एक पृथक् मास बन जाता है। उसे अधिमास कहते हैं।

---

४०. याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरयं पुरुष इति। आदित्यज्योतिः सम्राडिति होवाचादित्येनैवायं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीत्येवमेवैतद् याज्ञवल्क्य ॥ (बृ० उ० ४।३।२)

४१. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
(कठ० २।२।१५; मुण्डक० २।२।१०; श्वेता० ६।१४)

यत्र न सूर्यस्तपति यत्र न वायुर्वाति यत्र न चन्द्रमा भाति··· तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥
(बृहज्जाबाल उ० ८।६)

४२. हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥
[*—व्याप्यनिष्ठ-व्यापकनिरूपितधर्मरूपसम्बन्धः।] (मुण्डक उ० २।२।९)

सर्वव्यापि निरालम्बो ह्यग्राह्योऽथ जयो ध्रुवः। एष ब्रह्ममयो ज्योतिर्ब्रह्मशब्देन शब्दितः ॥
(हरिवंशपुराण ३।१६।१४)

४३. श्वे० उ० ६।१४ ४४. कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणम् ॥ (सू० उ०) ४५. ऋग्वेद १०।१८९।३

४६. कतम आदित्या इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदᳪसर्वमाददाना यन्ति ते यदिदᳪ सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥ (बृ० उ० ३।९।५) संवत्सरोऽसावादित्यः ॥ (नारायण उ० ३।७९)

४७. अहोरात्रैर्निमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ॥ (अथर्व० १३।३।८)

सूर्योपासना—सूर्य स्वर्गद्वार और मुक्ति-पथ हैं[४८]। तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा है कि 'स्वः' व्याहृतिकी प्रतिष्ठा आदित्यमें है और 'महः' की ब्रह्ममें है। इनके द्वारा स्वाराज्यकी प्राप्ति होती है[४९]। सूर्यको 'गुरु' भी कहा गया है। सूर्यदेवसे श्रीमारुतिने शिक्षा ग्रहण की थी। आगम-ग्रन्थोमे भी सूर्यका गुरुरूप प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य अध्यात्मविद्याओंके प्रदाता और प्रचारक हैं। गायत्री मन्त्रमें सूर्यदेवसे बुद्धि माँगी गयी है[५०]। सूर्यके 'पूषा' रूपसे भक्तगण अपने कल्याणकी प्रार्थना करते हैं[५१]। श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी सविताको बुद्धिकी योजना करनेवाला कहा गया है[५२]।

उपनिषदोमे सूर्यकी उपासना विविध रूपोंमे बतायी गयी है। सूर्योपासना-विषयक कुछ विद्याओका भी निरूपण उपनिषदोमे हुआ है। ये विद्याएँ हैं—ब्रह्म-विज्ञान[५३] दहर विद्या,[५४] मधु विद्या,[५५] उपकोसल विद्या[५६], मन्थ-विद्याएँ[५७] और पञ्चाग्निविद्या[५८]। सूर्यरूप ओंकारकी उपासना[५९], आदित्य-दृष्टिसे मासोपासना[६०], त्रिकाल-सन्ध्योपासना[६१], सूर्योपस्थान[६२] और महावाक्य-विधिसे सूर्य अद्वैत ब्रह्मकी भावना और उपासना[६३]—इन उपासनाओंसे समस्त इष्ट-प्राप्ति होती है और अन्तमें मुक्ति मिल जाती है।

सात्त्विक विद्याओमें प्रवेशके लिये बुद्धिको विकसित करना और स्मरणशक्तिको बढ़ाना आवश्यक है। बुद्धि सूर्यका ही एक अंश है। अतः उसका विकास सूर्यके उपस्थान (आराधन) से ही हो सकता है। पलाशके वृक्षमें स्मरण-शक्तिवर्धनका गुण है; क्योंकि वह ब्रह्म-स्वरूप[६४] है। अतः ब्रह्मचारीके लिये पलाशका दण्ड-धारण करने और पलाशकी समिधाओसे यज्ञ करनेका विधान किया गया है।

सूर्य सत्य-रूप है। आदित्यमण्डलस्थ पुरुष और दक्षिणेक्षन् पुरुष परस्पर रश्मियों और प्राणोसे प्रतिष्ठित हैं—यह कहा जा चुका है। जब वह उत्क्रमणकी इच्छा करता है, तो उसमे ये रश्मियाँ प्रत्यागमन नहीं

---

४८. भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ ॥ १ ॥ सुवरित्यादित्ये ॥ २ ॥ (तै० उ० १ । ६ । १-२)
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥ (मुण्डक उ० १ । २ । ११)

४९. मह इति ब्रह्मणि। आप्नोति स्वाराज्यम् ॥ (तै० उ० १ । ६ । २) ५०. धियो यो नः प्रचोदयात् ।

५१. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ (श्रुतियोका शान्ति-पाठ) ५२. श्वे० उ० २ । १–४ ।

५३. छा० उ०, प्रपाठक ३, खण्ड ११ से २१, विशेषतः २१ बृ० उ० अध्याय ५, ब्राह्मण ४–५ ।

५४. छा० उ०, प्र० ८ खं० १ । ५५. छा० उ०, प्र० ३, खं० १+१२; बृ० उ० अध्याय २, ब्राह्मण ५ ।

५६. बृ० उ०, अ० ६, ब्रा० ३ । ५७. छा० उ०, प्र० ४, खं० १० । १५ । ५८. बृ० उ०, अ० ६, ब्रा० २ ।

५९. छा० उ०, प्र० १, खं० ५ । ६०. छा० उ०, प्र० २, ख० ९ । ६१. कौषीतकि ब्राह्मण उप० २ । ५; बृ० उ०, अ० ५, ब्रा० १४ । ६२. छा० उ० ३, ख० ८ ।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमान वहन्ति । प्रिया वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥
(मुण्डक उ० १ । २ । ६)

६३. सोऽहमर्कः परं ज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः ॥ (महावाक्य उ०)
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ (ईशावास्य० १६)
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ (मुण्डक उ० २ । २ । ९)

६४. ब्रह्म वै पलाशः ॥ (श० ब्रा० ५ । ३ । ५ । १५)

करतीं। आशय यह कि सूर्य-पथसे उत्क्रमण करनेवाले व्यक्तिका संसारमें पुनरागमन नहीं होता।[६५] पूषा (सूर्य) ही जगत्में सत्यपर पड़े आवरणको हटाकर सत्य-धर्मकी दृष्टि प्रदान करते हैं। सूर्यका यह तेज कल्याणतम है।[६६] यह ब्रह्म है, आत्मा है, आदित्य है। अन्य देवता इसके अङ्ग हैं। आदित्यसे सारे लोक महिमान्वित हैं, ब्रह्मसे सारे वेद।[६७]

नारायण श्रुतिका वचन है कि आदित्यमण्डलका जो ताप है, वह ऋचाओंका है। अतः वह ऋचाओंका लोक है। आदित्यमण्डलकी अर्चि सामोंकी है, अतः वह सामोंका लोक है, इन अर्चियोंमे जो पुरुष है, वह यजुष् है और वह यजुर्गणका लोक है। इस प्रकार आदित्य-मण्डलमें जो हिरण्मय पुरुष है, वह यह त्रयी विद्या ही तप रही है। आदित्य ही तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा, मन, मन्यु, मनु, मृत्यु, सत्य, मित्र, वायु, आकाश, प्राण और लोकपाल आदि हैं। आदित्यके अन्तर्गत भूताधिपति स्वयंभू ब्रह्मकी उपासनासे सायुज्य और सार्ष्टि मुक्ति मिलती है।[६८]

उपर्युक्त विद्याओं और उपासनाओंका वर्णन पृथक् लेखकी अपेक्षा रखता है। अतः अब हम यहीं लेखनीको विश्राम देते हैं। उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित हमारे सूर्यदेव विश्वका मङ्गल करें।

सूर्यमण्डलसे ऊपर जानेवाले

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥

'हे पुरुषव्यात्र! सूर्यमण्डलको पारकर ब्रह्मलोकको जानेवाले केवल दो ही पुरुष हैं—एक तो योगयुक्त संन्यासी और दूसरा युद्धमें लड़कर सम्मुख मर जानेवाला वीर।' (—उद्योग० ३२। ६५)

६५—यद्यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ रश्मिभिरेषोऽस्मिन् प्रतिष्ठितः प्राणैरयममुष्मिन्। स यदोत्क्रमिष्यन् भवति शुद्धमेवैतन्मण्डलं पश्यति नैनमेते रश्मयः प्रत्यायन्ति॥ (—बृ० उ० ५।५।२)

६६—हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये। पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि॥(—ईशावास्य० १५–१६)

६७—मह इति। तद् ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः॥…॥ १॥ मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते…॥ २॥ मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते॥ (—तै० उ० १।५।१–३)

६८—आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तदृचां मण्डलं स ऋचां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिर्दीप्यते तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूंषि स यजुषां मण्डलं स यजुषां लोकः। सैषा त्रय्येव विद्या तपति य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः॥

आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रं आत्मा मनो मन्युर्मनुर्मृत्युः सत्यो मित्रो वायुराकाशः प्राणो लोकपालः कः किं कं तत्सत्यमन्नममृतो जीवो विश्वः कतमः स्वयंभु ब्रह्मैतद मृत एष पुरुष एष भूतानामधिपतिर्ब्रह्मणः सायुज्यऽसलोकतामाप्नोत्येतासामेव देवतानां सायुज्यऽसार्ष्टिताऽसमानलोकतामाप्नोति य एवं वेदेत्युपनिषत्॥

(—नारायण-उप० ३। १४-१५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें असंख्य सूर्योंके अस्तित्वका वर्णन

(लेखक—श्रीसुब्रायगणेशजी भट्ट)

आकाशमें हमें एक ही सूर्य दीख पड़ते हैं; किंतु वास्तवमे सूर्य असंख्य—अनन्त हैं। वे एक-दूसरेके समीप नहीं हैं। दूर—बहुत दूर है। इस कारण हम केवल आँखोसे उनको देख नहीं पाते। अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक लोगोने दूरदर्शक यन्त्रोकी सहायतासे उन असंख्य सूर्योको देख लिया है और अब भी देख रहे है। परंतु हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोने वेददर्शन-कालमे दूरदर्शक यन्त्रोके बिना केवल अपने तपः-तेजके प्रभावसे अनेकानेक असंख्य सूर्योके दर्शन प्राप्त कर लिये थे। इसका विवरण कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक-(१। २। ७) मे विस्तृतरूपसे विद्यमान है—

अपश्यमहमेतान् सप्तसूर्यानिति । पञ्चकर्णो वात्सायनः। सप्तकर्णश्च प्लाक्षिः। आनुश्राविकरावनौ कश्यप इति। उभौ वेदयिते। नहि शेकुमिव महामेरुं गन्तुम् ॥

वत्स ऋषिका पुत्र पञ्चकर्ण और प्लक्ष ऋषिका पुत्र सप्तकर्ण—उन दोनों ऋषियोकी उक्ति है कि हमने सात सूर्योको प्रत्यक्ष देख लिया है; किंतु आठवॉ जो कश्यप नामक सूर्य है, उन्हे हम देख नहीं सके हैं। इससे जान पडता है कि कश्यप सूर्य मेरुमण्डलमे ही परिभ्रमण करते रहते है। हम वहॉतक जा न सके।

अपश्यमहमेतन्त्सूर्यमण्डलं परिवर्तमानम् । गार्ग्यः प्राणत्रातः। गच्छन्तमहामेरुम्। एवं चाजहतम्।

गर्गके पुत्र प्राणत्रात नामक महर्षिका कथन है—'हे पञ्चकर्ण और सप्तकर्ण! कश्यप नामक अष्टम सूर्यको मैने प्रत्यक्ष देख लिया है। ये सूर्य मेरुमण्डलमे ही भ्रमण करते हैं। वहॉ जाकर उन्हे कोई भी देख सकता है। तुम वहॉ योग-मार्गसे जाकर देख लो।'

ये आठवे सूर्य कश्यप भूत, भविष्य और वर्तमान घटनाओको अतिसूक्ष्मरूपसे जानते है। यह इनका वैशिष्ट्य है। इसलिये कश्यप सूर्यको 'पश्यक' नामसे भी पुकारते हैं। '**कश्यपः पश्यको भवति । तत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्।**' यह श्रुति ही इसका प्रमाण है।

पञ्चकर्णादि ऋषियोसे देखे हुए सूर्याङ्क नामक आरण्यकमे इस प्रकार वर्णित हैं—

आरोगो भाजः पटरः पतङ्गः। स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः। ते अस्मै सर्वे दिवमापतन्ति। ऊर्जं दुहाना अनपस्फुरन्त इति। कश्यपोऽष्टमः ॥

आरोग, भाज, पटर, पतङ्ग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान्, विभास और कश्यप—ये आठ सूर्योके नाम हैं। हम नित्यप्रति आँखोसे जिन सूर्यको देखते हैं, उनका नाम 'आरोग' है और शेष सभी सूर्य अतिशय दूर हैं। अथवा आड़मे हैं, अतएव हम इन आँखोसे उन्हे नहीं देख सकते।

इस सूर्याष्टकमें कश्यप प्रधान है। आरोगप्रभृति अन्य सूर्य कश्यपसे अपनी प्रकाशक-शक्ति भी प्राप्त करते है। आरोग सूर्यके परिभ्रमणको हम जानते है। अन्य भाज, पटर और पतङ्ग—ये तीन सूर्य अधोमुख होकर मेरुमार्गके नीचे परिभ्रमण करते है और वहॉके प्राणि-समूहोको प्रकाश वितरण करते है। स्वर्णर, ज्योतिषीमान् और विभास—ये तीन सूर्य ऊर्ध्वमुखी होकर मेरुमार्गके ऊपर परिभ्रमण करते और वहॉके चराचर वस्तुओको प्रकाश देते हैं।

आठ दिशाओमे, हमारी दृष्टिसे पूर्व दिक् सूर्य हैं। इसी प्रकार आग्नेय आदि दिशाएँ भी एक-एक सूर्यसे युक्त है। सूर्यसे ही वसन्त आदि ऋतुओका निर्माण होता है। बिना सूर्यके ऋतुओका निर्माण और परिवर्तन असम्भव है। आग्नेय आदि सभी दिशाओमे वसन्त आदि समस्त

ऋतुओंका क्रमशः आविर्भाव और परिवर्तन होता रहता है। अतएव सभी दिशाओंमे भिन्न-भिन्न सूर्यका अस्तित्व निश्चित है।

'एतयैवाऽऽवृताऽऽसहस्रसूर्यताया इति वैशम्पायनः।'

वैशम्पायनाचार्यजी कहते है कि 'जहाँ-जहाँ वसन्तादि ऋतुओंका और तत्तद्धर्मोका आविर्भाव है, वहाँ-वहाँ तत्सम्पादक सूर्यका अस्तित्व रहता ही है। इस न्यायके अनुसार सहस्र—असंख्य अनन्त सूर्योका अस्तित्व आवश्यक है। पञ्चकर्ण, सप्तकर्ण और प्राणत्रात ऋषियोको सात एवं आठ सूर्योको देखकर तद्विषयक ज्ञान प्राप्त हो गया—इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।'

'नानालिङ्गत्वादृतूनां नानासूर्यत्वम्।'

यदि एक ही सूर्य रहते तो वसन्तादि ऋतुओंसे होनेवाले औष्ण्य, शैत्य एव साम्यादि विभिन्न सह्य, असह्य सुख-दुःखोका अनुभव न होता। तब पूरे वर्षभर एक ही ऋतु और उसके प्रभावका अनुभव प्राप्त होता रहता। कारण-भेदके विना कार्य-भेदका अनुभव सम्भव नहीं है। ऋतु-धर्म-वैलक्षण्यसे ही उसके कारणरूप असंख्य सूर्योका अस्तित्व सिद्ध होता है। यह हमारा ही अभिमत नहीं, अपितु भगवती श्रुतिका भी मत है—

यद्द्याव इन्द्र ते शतꣳशतं भूमीः। उत स्युः।
न त्वा वज्रिन्सहस्रꣳसूर्याः। अनु न जातमष्ट
रोदसी-इति। (१।७।६)

'हे इन्द्र! यद्यपि तुमसे शत-शत स्वर्गलोकोका निर्माण सम्भव है, और सैकड़ों भूलोकोका सृजन सम्भव है, तथापि आकाशमे स्थित सहस्रों सूर्योके प्रकाशको पूर्णतया तुम और तुमसे निर्मित स्वर्गादि लोक सब मिलकर भी नहीं ले सकते।' इस मन्त्रमें सहस्र सूर्योका स्पष्ट उल्लेख है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥
(यजु० वे० ७।४२)

भगवान् सूर्य अत्यन्त दयामय हैं। निःस्वार्थ बुद्धिसे प्रजारक्षण करना ही उनका ध्येय है। रश्मि ही उनकी सेना है, जो सर्वदा अन्धकाररूप वृत्रासुरका नाश करती रहती है। सूर्य केवल हमारे ही नहीं, प्राणि-मात्रके—यहाँतक कि वृक्ष, लता, गुल्म और वनस्पति आदिके भी मित्र हैं। सूर्य जब उदय होते है, तब चराचर प्राणियोका मन प्रफुल्लित हो उठता है। उनके प्रकाशसे आरोग्यकी वृद्धि होती है। समुदित सूर्य अपनी रश्मिरूपी सेनाको विभक्त करके त्रैलोक्यमे प्रत्येक स्थानपर भेजते हैं। इस रश्मि-सेनाके सचरणमात्रसे चराचर समस्त प्राणियोका संरक्षण होता है। इन रश्मियोके सान्निध्यसे सत्यप्रियता, निर्भयता, नीरोगता, आरोग्य, उत्साह, क्षीरादिकी वृद्धि और धन-धान्यकी समृद्धि प्राप्त होती है। भगवान् सूर्य स्थावर और जङ्गम जगत्के आत्मा है। समस्त मानवकोटिके प्राणधारियोके प्रेरक और कल्याणके प्रदाता हैं। हमे उन महान् ज्योतिःस्वरूप भगवान् सूर्यनारायणका सदा ध्यान करना चाहिये।

स जयति

स जयत्युदयेनैषां चतसृष्वपि दिक्षु निवसतां नृणाम्।
मेरोः प्रतिदिन मन्यामाशां विदधाति यः प्राचीम्॥
(— कात्या० सुल्व सू० भा० मङ्गला० मे वृ० कर्काचार्य)

जो मेरु पर्वतके चारो दिशाओमे रहनेवाले मनुष्योके लिये अन्यान्य दिशाओमे प्राची (पूर्व) दिशा निर्देशन करते है, वे सूर्यदेव विजय प्राप्त करें—सर्वोत्कृष्ट रूपमे रहे।

तैत्तिरीय आरण्यकके अनुसार आदित्यका जन्म

(लेखक—श्रीसुब्रह्मण्यजी शर्मा, गोकर्ण)

सृष्टिके पहले सर्वत्र जल-ही-जल भरा था। देव-मानव, पशु-पक्षी तथा तरु-लता कहीं कुछ भी न था। इस पानीके साम्राज्यमें सर्वप्रथम केवल जगदीश्वर, प्रजापति ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। तभी उन्हें एक कमलपत्र दिखलायी पड़ा। तब वे उस कमलपत्रपर जा बैठे। कुछ काल व्यतीत होनेके बाद उनके मनमें जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। अतः सृष्टि करनेके लिये प्रजापति तपस्या करने लगे। तपस्याके पश्चात् अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे किस प्रकार 'प्रजा'का सृजन करें? प्रश्न उठते ही तुरंत प्रजापतिका शरीर काँपने लगा। उसके कम्पनसे अरुण, केतु एवं वातरशन—इन तीन प्रकारके ऋषियोंका आविर्भाव हुआ। नखके कम्पनसे वैखानस ऋषियोंका जन्म हुआ। केशके कम्पनसे वालखिल्योंका निर्माण हुआ। उसी समय प्रजापतिके शरीरके सार-सर्वस्वसे एक कूर्मका आकार स्वयं बन गया। वह कूर्म पानीमें संचरण करने लगा। आगे-पीछे संचरण करनेवाले उस कूर्मको देखकर प्रजापति ब्रह्मदेवको आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि यह कहाँसे आया? उन्होंने उस कूर्मसे पूछा—'तुम मेरे त्वक् (त्वचा) और मांससे पैदा हुए हो?' तब कूर्मने उत्तर दिया—'तुम्हारे मांस आदिसे मेरा जन्म नहीं हुआ है। मेरा जन्म तो तुमसे भी पहलेका है। मैं तो सर्वगत, नित्य चैतन्य, सनातन—शाश्वतस्वरूप हूँ और पहलेसे ही मैं यहाँ सर्वत्र और तुम्हारे हृदयमें भी विद्यमान हूँ। कुछ विचारकर देखो।' इस प्रकार कहकर कूर्मशरीरधारी नित्य चेतनस्वरूप परमात्माने सहस्रशीर्ष, सहस्रबाहु और सहस्रों पादोंसे युक्त अपने विश्वरूपको प्रकट करके प्रजापतिको दर्शन दिया। तब प्रजापतिने साष्टाङ्ग प्रणाम करके प्रार्थना की—'हे भगवन्! आप मुझसे पहले ही विद्यमान हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे पुराणपुरुष! आप ही इस जगत्का सृजन कीजिये। यह कार्य मुझसे पूर्ण न हो सकेगा।' तब, 'तथास्तु' कहकर कूर्मरूपी भगवान्ने अपनी अञ्जलिमें जल लेकर और **'ओवाहयेव'** इस मन्त्रसे पूर्वदिशामें जलका उपधान किया। उसी उपधान-क्रमसे—भगवान् 'आदित्य'का जन्म हुआ। (तै० आ० १।२३।२-५)। उसी समय विश्व प्रकाशमय हो गया। हे प्रकाशपूर्ण आदित्य! हमारे अन्धकारपूर्ण हृदयोंमें भी पूर्ण प्रकाशके उदय होनेका अनुग्रह प्रदान करें।

प्रकाशमान् सूर्यको नमस्कार

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥

(यजु० ३१।२०)

जो सूर्य पृथिव्यादि लोकोंके लिये तपते हैं, जो सब देवोंमें पुरोहित हैं—उनके प्रवर्तकके समान प्रकाशक हैं, जो उन सभी देवोंसे पहले उत्पन्न हुए, ब्रह्मस्वरूप परमेश्वरके समान प्रकाशमान् उन सूर्यनारायणको नमस्कार है।

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्य-तत्त्व

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीधराचार्यजी महाराज)

अथर्ववेदके कौशिक गृह्यसूत्रके **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद-नामधेयम्'** सूत्रके आधारसे वेद मन्त्र और ब्राह्मण-भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमे मन्त्र मूलवेद है और ब्राह्मण तूलवेद। ब्राह्मण-भागके विधि, आरण्यक और उपनिषद्-भेदसे तीन पर्व हैं और एक पर्व मन्त्र-भाग है। कुल मिलकर वेदके मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्—ये चार पर्व हो जाते हैं। वेदके इन चारो पर्वोंमे सूर्य-तत्त्वका विश्लेषण किया गया है; परंतु ब्राह्मण-ग्रन्थोमे उसका विश्लेषण विशेषरूपसे हुआ है। मन्त्रभागमें बीजरूपसे जिस तत्त्वका उल्लेख है, उसका ही तूलरूपसे ब्राह्मण-ग्रन्थोमें विश्लेषण हुआ है। यह मन्त्र-ब्राह्मण वेदवाङ्मय पुरातन-कालमे विस्तृत था; किंतु आज वह अत्यल्प संख्यामें ही उपलब्ध होता है।

विश्वका मूल—ब्राह्मण-ग्रन्थोंके आधारपर विश्वके मूलमे सम्मिलित दो तत्त्व है—अग्नि और सोम। इनसे उत्पन्न विश्वके पदार्थ भी दो रूपोमे उपलब्ध होते हैं—शुष्क और आर्द्र। जो शुष्क है, वह आग्नेय और जो आर्द्र है वह सौम्य। सूर्य शुष्क हैं तो चन्द्रमा सौम्य हैं। जैमिनीय ब्राह्मणके अनुसार अग्नि सोमके सम्पर्कसे अर्वो-खर्वो प्रकारोमे परिणत हो जाती है। इसी प्रकार सोम भी अग्निके सम्पर्कसे अर्वो-खर्वो प्रकारोमे परिणत हो जाता है। अग्नि और सोमके अनन्तानन्त प्रकारोमेसे क्रमशः ये तीन प्रकार मुख्य हैं—पार्थिव-अग्नि, अन्तरिक्ष-अग्नि और दिव्याग्नि। सोमके भी तीन प्रकार मुख्य है—आप, वायु और सोम। ब्राह्मण-ग्रन्थोमे तीन अग्नियोके ये विशेष नाम है—पावक, पवमान और शुचि।

प्राचीन कवियोने इन तीन अग्नियोके तीन विशेष धर्म माने हैं—ताप, ज्वाला और प्रकाश। इनमें ताप पार्थिव-अग्निका, ज्वाला आन्तरिक्ष्य अग्निका तथा प्रकाश दिव्याग्निका विशेष धर्म है। मूलरूपमे ये तीनो अग्नियाँ अव्यक्त है, अर्थात् स्व-स्व-रूपसे उपलब्ध नहीं होतीं। इनका जो रूप हमे उपलब्ध होता है, वह इन तीन अग्नियोंकी समष्टि है। जिसको वैश्वानर कहते है, वह तापधर्मा है। ताप पार्थिव-अग्निका धर्म है। उसमे उपलब्ध ज्वाला और प्रकाश क्रमशः आन्तरिक्ष्य और सूर्य-अग्निका गुण है। ज्वाला आन्तरिक्ष्य अग्निका असाधारण धर्म है। ताप और प्रकाश आगन्तुक धर्म हैं, जो पार्थिव-अग्नि और दिव्याग्निसे आते हैं। प्रकाश दिव्याग्निका असाधारण धर्म है। ताप और ज्वाला—ये दोनो पार्थिव और आन्तरिक्ष्य अग्निके धर्म है।

सोमके भी अनन्तानन्त रूपोमेंसे आप, वायु और सोम—ये तीन रूप मुख्य हैं। इनमेंसे आप (जल) सोमका घनरूप है। वायु तरलरूप है। सोम विरलरूप है। वेदोमे अग्नि और सोमके सत्य तथा ऋत—दो-दो रूप माने गये हैं। सहृदयरूप सत्य और हृदय-हीनरूप 'ऋत' माना गया है। अग्निका सत्य-रूप सूर्यमण्डल और ऋत-रूप दिक्-अग्नि है, जो सर्वत्र व्याप्त है। सोमका सत्य-रूप चन्द्रमण्डल और ऋत-रूप दिक् सोम है, जो सर्वत्र व्याप्त है। ऋत-अग्नि और ऋत-सोम—ये दोनों रूप ऋतुओके प्रवर्तक है।

सूर्यका विश्लेषण—ब्राह्मण-ग्रन्थोने सूर्यतत्त्वका विश्लेषण श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान—इन चार प्रमाणोंके आधारसे किया है—**'एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते।'** इन प्रमाणोके आधारसे उन्होंने (ब्राह्मणग्रन्थोंने) सूर्यकी उत्पत्ति, उनका *ताप-प्रकाश*,

उसकी सात प्रकारकी सात किरणें, भूमण्डलपर उनका प्रभाव तथा व्यापक प्रभा (प्रकाश) आदि अनेक विधियोंका विश्लेषण किया है।

सूर्यकी उत्पत्ति—सूर्य एक अग्निपिण्ड है अर्थात् पार्थिव, आन्तरिक्ष्य एवं दिव्य (सूर्य)—इन तीनों अग्नियोंका समष्टि रूप पिण्ड है। पिण्डकी उत्पत्ति और स्थिति—ये दोनों ही बिना सोमके नहीं हो सकतीं। अग्नि स्वभावसे ही विशकलनधर्मा है। वह सोमसे सम्बन्धित हुए बिना पकड़में नहीं आती। संसारके पदार्थोंमें घनता उत्पन्न करना सोमका काम है। अतः सूर्यपिण्डकी उत्पत्ति भी इसी सोमहुतिसे होती है और हुई है। ध्रुव, धर्म, धरुण एवं धर्म-भेदसे सोम चार प्रकारके है। इस सोममात्राकी न्यूनता अथवा आधिक्यके कारण अग्नि भी ध्रुव, धर्म, धरुण एवं धर्मरूपोंमें परिणत हो जाती है। ये ही अवस्थाएँ निबिड, तरल, विरल एवं गुण कहलाती है। सूर्य पिण्ड है। पिण्डका निर्माण सोमके बिना नहीं हो सकता। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विज्ञानके आधारसे सोमकी आहुतिसे ही सूर्यका उदय हुआ है, जैसा कि शतपथश्रुतिका विज्ञान है—**'आहुतेः (सोमाहुतेः) उदैत् (सूर्यः)'** अर्थात् सूर्यपिण्ड अग्नि और सोम—दोनोंकी समष्टि है।

सूर्यकी स्थिति—सूर्य एक पिण्ड है, जो सदा प्रज्वलित रहता है। अग्निमें जबतक सोमाहुति होती है, तभीतक वह प्रज्वलित रहती है। आहुतिके बंद होते ही अग्नि उच्छिन्न हो जाती है अर्थात् बुझ जाती है। अतः सदा प्रज्वलित दिखायी पड़नेवाले सूर्य-पिण्डमें भी अवश्य किसीकी आहुति माननी पड़ेगी, अन्यथा किसी भी स्थितिमें पिण्ड स्थिर एवं प्रज्वलित नहीं रह सकता। इस प्रकार ब्राह्मणोक्त विज्ञानके आधारसे सूर्यमें निरन्तर ब्रह्मणस्पति सोमकी आहुति होती रहती है, जिससे सूर्यका स्वरूप बना हुआ है। इस आहुतिके प्रभावसे ही वह अरबों वर्षोंसे एक-सा स्थिर बना हुआ है और आगे भी एक-सा स्थिर बना रहेगा।

सूर्यका प्रकाश—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यप्रकाशके विषयमें गहन चर्चा है। उनका कहना है कि सूर्य एक अग्नि-पिण्ड हैं। अग्निका स्वरूप काला है। वेद स्वयं सूर्यपिण्डके लिये **'आकृष्णेन रजसा वर्तमानः'** (यजु०) कह रहा है। उस काले पिण्डसे जो ऋक्, यजुः सोमात्मक प्राण निकलते हैं, वे सर्वथा रूप-रस आदिसे रहित हैं। पृथ्वीके ४८ कोसके ऊपरतक एक भूवायुका स्तर है, जो वेदोंमें **'एमूषवराह'** नामसे प्रसिद्ध है। वह वायुस्तर सोमात्मक है। यह सोम बाह्य पदार्थ है। जब धाता (सूर्य) सौर-प्राण इस सोममें मिलता है, उस समय प्राणसंयोगसे वह सोम जलने लगता है। उसके जलते ही पृथ्वी-मण्डलमें प्रकाश (प्रभा) हो जाता है, जो हमको दिखायी पडता है। ४८ कोसके ऊपर ऐसा भास्वर प्रकाश नहीं है—यह सिद्धान्त समझना चाहिये। उस प्रकाशके पर्देमें ही हम उस काले पिण्डको सफेद देखने लगते हैं।

विज्ञानान्तर—सूर्य एक अग्निपिण्ड है। अग्निपिण्ड काला होता है—यह भी निश्चित है। इस कृष्ण अग्निमय सूर्य-पिण्डमें ज्योति-प्रकाश सोमकी आहुतिसे उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रकाश अग्नि और सोम—इन दोनोंके परस्पर सम्मिश्रणका फल है। इससे सिद्ध होता है कि केवल अग्निमें भी प्रकाश नहीं है और न केवल सोममें ही प्रकाश है। प्रकाश दोनोंके यज्ञात्मक सम्मिश्रणमें है। सूर्य-किरणोंमें उपलब्ध ताप भी पार्थिव अग्निके सम्मिश्रणका ही फल है। भगवान् सूर्यकी अनन्त रश्मियोंमें सात रश्मियाँ मुख्य हैं। सात रस, सात रूप, सात धातु आदि सभी सात रश्मियोंके आधारपर ही प्रतिष्ठित हैं।

त्रयीमय सूर्य—ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें सूर्यमण्डलको त्रयीमय (वेदत्रयीमय) माना गया है, अर्थात्—ऋक्, यजु एवं साममय माना है। इसका निरूपण शतपथ-श्रुति इस प्रकार कर रही है—**'यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थम्। ता**

ऋचः स ऋचां लोकः । अथ यदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम् । तानि सामानि स साम्नां लोकः । अथ य एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निः । तानि यजूंषि, स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति—

अर्थात् सूर्यमण्डल त्रयीविद्यामय है; अर्थात् सूर्यमण्डलमें तीन पर्व हैं—भूतपर्व, प्रकाशपर्व और प्राणपर्व । इनमेंसे भूतभाग ऋग्वेद है, प्रकाशभाग सामवेद है एवं प्राणभाग यजुर्वेद है । इस प्रकार त्रयी-विद्या ही सूर्यरूपसे तप रही है । ब्राह्मण-ग्रन्थोंके मतमें न केवल सूर्य ही, अपितु पदार्थमात्र त्रयीमय—वेदमय है । पदार्थमें उपलब्ध नियमन-भाग ऋग्वेद है, प्रकाश-भाग सामवेद है और पुरुषभाग यजुर्वेद है; किं बहुना, ऋक्, यजुः, साम—इन तीनोंकी समष्टि ही पदार्थ है ।

विश्वका जीवन सूर्य—विश्वका जीवन सूर्य है । प्राणन, अपानन-क्रिया (श्वास-प्रश्वास) जीवन है । इसका मूल सूर्य हैं; जैसा कि श्रुतिका उद्बोधन है—

'अयं गौः पृश्निरक्रमीत्, असदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः । ......व्यख्यन्महिषो दिवम्'

'प्रातःकाल माता (पृथिवी) की ओर खड़े हुए तथा पिता (द्युलोक) की ओर जाते हुए नाना रूपवाले इन सूर्यने सारे विश्वपर आक्रमण किया है ।'

सूर्यकी किरणें समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें प्राणन, अपानन-क्रियाएँ करती रहती हैं । ऐसे ये सूर्य उदित होते ही सारे भूमण्डलमें व्याप्त हो जाते हैं । प्राणन-अपाननकी क्रिया ही जीवन है ।

निद्रा और उद्बोध—रात्रिमें प्राणिगण निद्रासे अभिभूत हो जाते और प्रातःकाल उद्बुद्ध हो जाते हैं, यह प्रत्यक्ष है । इन दोनोंके कारण भगवान् सूर्य ही हैं । इसका कारण शतपथ-ब्राह्मण इस प्रकार बतलाता है—**'अथ यद् अस्तमेति, तदग्नावेव योनौ गर्भो भूत्वा प्रविशति, तं गर्भं भवन्तमिमाः सर्वाः प्रजा अनुगर्भा भवन्ति ।'** अर्थात् रात्रिके समय सूर्य पार्थिव अग्निमें गर्भस्वरूपसे प्रविष्ट हो जाता है । इसमें प्रबल प्रमाण यही है कि रात्रि होते ही पार्थिव प्राणरूपी पुरीतत् नाडीमें हमारा आत्मा गर्भरत रूपमें परिणत हो जाता है । रात्रिके समय पार्थिव अग्निकी योनिमें प्रविष्ट होते हुए सूर्यके साथ ही उनकी रश्मियोंसे बद्ध हमारी आत्मा इनका धक्का खाकर स्वयं भी पृथ्वीकी ओर गर्भित हो जाती है । ब्राह्मण-विज्ञानके अनुसार रात्रिमें भी सूर्यका अभाव नहीं होता । केवल प्रकाशके प्रवर्तक विवस्वान् सूर्यका ही अभाव रहता है । दूसरे ग्यारह सूर्य रहते हैं । दिनभर सूर्य प्राणोंका हरण किया करते हैं एवं सायंकाल होते ही सारे प्राणोंको उन पदार्थोंमें छोड़ जाते हैं । जबतक हमारे प्रातिस्विक (निजी) आत्मीय प्राणोंपर किसी अन्य बलिष्ठ प्राणका आक्रमण नहीं होता, तबतक हम आनन्दसे विचरण करते रहते हैं । परंतु जहाँ किसी बलिष्ठ प्राणने हमपर आक्रमण किया कि हम अचेत हो जाते हैं । सायंकाल होते ही विश्वदेव हमपर आक्रमण करते हैं, अतः हमारी आत्मा अभिभूत हो जाती है और हम अचेत होकर सो जाते हैं; फिर प्रातःकाल होते ही सूर्य अपने प्राणोंको, जो रात्रिमें आये थे, खींचने लगते हैं । अतः हमारा आत्मीय प्राण उद्बुद्ध हो जाता है ।

एका मूर्तिस्त्रयो देवाः—ब्राह्मणोंके आधारसे वह सूर्यमण्डल ब्रह्मा, विष्णु और महेश है । उत्पादक होनेसे वह ब्रह्मा, सबका आश्रय (अधिष्ठाता) होनेसे इन्द्र और यज्ञमय होनेसे विष्णु कहलाता है । इसलिये **'एका मूर्तिस्त्रयो देवाः—ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः'** कहा जाता है । आज-कल जो महेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं, वेदभाषामें वे इन्द्र हैं, अर्थात् इन्द्रका पर्याय महेश्वर है । एक ही सूर्यनारायण गुण-भेदसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं । अतः एकका उपासक तीनोंका उपासक है । इस रहस्यसे आजकलके वैष्णव और शैव दोनों विद्वान् अपरिचित हैं । इसका पुनर्मूल्याङ्कन किया जाय, यह अनुरोध है । **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।'** —सूर्यदेव सचराचर जगत्के आत्मरूप हैं ।

वैष्णवागममें सूर्य

(लेखक—डॉ० श्रीसियारामजी सक्सेना 'प्रवर')

(१)

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

(तन्त्रसार)

निरुक्तमे आदित्यका एक नाम 'भरत' है । अतः भारतका अर्थ हुआ—आदित्यकी ज्योति, इस ज्योतिकी उपासना करनेवाला । देशके सम्बन्धमे अर्थ यह हुआ कि सूर्यकी उपासना करनेवाला देश अर्थात्—भारत । भारतीयोमे गायत्रीकी उपासना आरम्भसे ही प्रचलित है । गायत्री वेद-माता है । फलितार्थ यह हुआ कि सूर्योपासना प्रमुख वैदिक-विधि है और अन्य देवोंकी उपासनासे पूर्ववर्त्ती तथा उनकी आधारभूता है । 'तन्त्रसार'में विष्णु, नारायण, नरसिंह, हयग्रीव, गोपाल, श्रीराम, शिव, गणेश, दक्षिणामूर्ति, सूर्य, काम, शक्ति, त्वरिता, बाला, छिन्नमस्ता, कालिका, तारा और गरुड़की गायत्रियॉ दी हुई है ।[2] 'बृहद्ब्रह्म-संहिता' आदि अन्य तन्त्रो, उपनिषदो तथा पुराणोमे गणेश आदि अन्यान्य अनेक देवताओकी गायत्रियॉ मिलती हैं । इससे स्पष्ट है कि भारतमे प्रचलित सभी मत सूर्यको सर्वदेवाधार मानते है । 'तन्त्रसार' का निर्देश है कि 'अपने इष्टदेवताको सूर्यमण्डलमे स्थित समझकर सूर्यको अर्घ्य दे और फिर उस देवताकी गायत्री जपे' ।[3] 'नन्दिकेश्वरसंहिता'मे तो यहॉतक कह दिया है कि सूर्यको अर्घ्य दिये बिना विष्णु, शङ्कर या देवीकी पूजा करनी ही नहीं चाहिये[4] । आशय यह है कि देवताओकी शक्तियोका अवस्थान सूर्यमण्डलमे है ।

सब देवोंके परमदेव नारायण है । नारायणमे सब देवता है और नारायण सूर्यमण्डलके अधिवासी है । 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'मे अनेक बार यह बात कही गयी है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थं श्रीमन्नारायणं हरिम् ।
अर्घ्यं दत्त्वा तु गायत्र्या .... ॥[5]
संध्यां कृत्वा हरिं ध्यात्वा सूर्यमण्डलमध्यगम् ॥[6]
सूर्यमण्डलमध्यस्थं ...... अच्युतम् ॥[7]
आदित्ये पुरुषो योऽसौ .... ॥[8]
संध्यां कृत्वा विधानेन मुनयो विष्णुदेवताम् ।
सूर्यमण्डलमध्यस्थामर्घ्यं दद्यात् समाहितः ॥[9]

'तन्त्रसार'मे भी यही बात कही गयी है । सूर्यका ध्यान भी सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणका ही ध्यान है । वैष्णव-तन्त्रोकी इस विचारणाके आधार उपनिषदोंमे हैं[10] । श्रुति-वचन है कि आदित्यकी **'शुक्लाभाः'** को ही **'नीलं परं कृष्णम्'** जानना चाहिये ।

सूर्यमण्डलवर्ती देवके त्रयीरूपकी व्याख्या 'लक्ष्मीतन्त्र'के उन्तीसवे अध्यायमे हुई है । व्यापक परब्रह्मकी नारायणी शक्ति परिणामद्वारा प्रणवाकृति हो जाती है । प्रणवके अग्नि और सोम अथवा क्रिया और भूति— ये दो विभाग हैं । विष्णुका षाड्गुण्य-चिन्मय-आद्य-परम उन्मेष ही शक्ति है, जो जगत्की रक्षाके लिये दो प्रकारसे प्रवर्तित होती हैं—

१. निरुक्त २ । २ । ८ । २. तन्त्रसार, पृष्ठ ६८से ७० । ३. (क) ततः ॐ सूर्यमण्डलस्थायै अमुकदेवतायै नमः इत्यनेन तत्तद्गायत्र्या त्रिवार जल निक्षिप्य तत्तद्गायत्रीं जपेत् । पृ० ६५ ।

(ख) सूर्यमण्डलवासिन्यै देवतायै ततः परम् । अर्घ्यमञ्जलिमादाय गायत्र्या वा त्रिरुत्क्षिपेत् ॥ पृ०६८

४. नं० स०, तन्त्रसार पृ० ६६मे उद्धृत । ५. बृ० ब्र० स० १ । १२ । ५४ । ६. बृ० ब्र० सं० ३ । ७ । १८२; ७. बृ० ब्र० स० ३ । ७ । १८३ । ८. बृ० ब्र० स०–३ । ७ । १९१ । ९. बृ० ब्र० सं० ३ । १० । १ । १०. यथा–'य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते' बृ० उप० ४ । ११ । १

ऐश्वर्य-सम्मुख होकर और तेजोमुख होकर । ऐश्वर्य-सम्मुखरूप षाड्गुण्य है । इसे 'भूति-लक्ष्मी' भी कहा जाता है । ऐश्वर्य-भूयिष्ठ इस भूत-शक्तिका तनु सोममय है । 'भूति' जगत्का आप्यायन करती है, इससे उसे 'सोम' कहा जाता है ।

षाड्गुण्य-विग्रहा परमेश्वरी व्यूहिनी हैं । उनके तीन व्यूह हैं—इच्छामय, ज्ञानमय और क्रियामय । इनमें क्रियामय व्यूह ही शक्तिका तेजोमय रूप है । यह उज्ज्वल तेज और षाड्गुण्यमयी है । इसके भी तीन व्यूह हैं -- सूर्यशक्ति, सोमशक्ति और अग्निशक्ति । इनमें सूर्यशक्ति उज्ज्वल, परा और दिव्या है, जो निरन्तर जगत्का निर्वहण कर रही है । इसके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—तीन रूप हैं । अध्यात्मस्था सूर्यशक्ति पिङ्गला नाड़ीके मार्ग-पर चलती है[1] । अधिभूतस्था सूर्यशक्ति विश्वमें आलोक-का प्रवर्तन करती है । आधिदैविकी सूर्यशक्ति सूर्यमण्डलमें सस्थित है । सूर्यमण्डलमें जो तपनात्मिका तप्त अर्चियाँ हैं, वे ऋचाएँ हैं[2] । जो उसकी अन्तःस्थ दीप्तियाँ हैं, वे साम हैं और जो पराशक्ति पुरुषरूपमें सूर्यमण्डलके अन्तःस्थ है, वह रमणीय दिव्य पुरुष यजुर्मय है । 'क्रिया-व्यूह'की सोममयी और अग्निमयी शक्तियोंका वर्णन इस लेखकी सीमासे बाहरका विषय है । अतः हम केवल सूर्यशक्तिका वर्णन कर रहे हैं ।

सूर्यमण्डलका अन्तर्वर्ती यह पुरुष शङ्खचक्रधारी, श्रीश, पीनोदर, चतुर्भुज, प्रसन्नवदन, कमलासन और कमलनेत्र है । इस अन्तःस्थ पुरुषका मूर्धा 'दशहोता' है, स्तनादिक 'षड्होता' हैं, शीर्षण्य सप्तप्राण 'सप्त-होता' हैं, शोभा 'दक्षिणा' है, सन्धियाँ 'संभार' हैं, नाड़ियाँ देवपत्नियाँ हैं, मन होताओंका हृदय है, चेतन 'पुरुषसूक्त' है, शक्ति 'श्रीसूक्त' है, गुह्यनाम 'ॐकार-प्रणव-तार' है और स्थूल नाम 'रुद्रिय' तथा 'शुक्रिय' है[3] । इस दिव्य यजुर्मय तनुका अभ्यास करनेसे मनुष्य अभिचार और पापोंसे मुक्त हो जाता है । यह लक्ष्मीतन्त्रका निर्देश है ।

वैदिक विचारणामें प्रत्येक देवताका परम रूप 'ब्रह्म' ही है । वेद सूर्यको जगत्का कारण, चराचरकी आत्मा और ब्रह्म बताते हैं[4] । उपनिषदोंमें भी यही कहा गया है ।[5] वैष्णवागमों और तन्त्रोंमें सूर्यमण्डलमध्यस्थ नारायणकी मान्यता वेदोंकी इसी प्रतिपत्तिके अनुसार है । 'विष्णुसहस्रनाम'में सूर्य और उसके पर्यायोंको विष्णुके नामोंमें गिनाया गया है ।[6] 'नारदपञ्चरात्र'में भी विष्णु-नामोंमें सूर्यके नामोंकी गणना करायी गयी है ।[7] आदित्य बारह हैं और विष्णु भी द्वादश रूपभृत् हैं ।[8] ज्योतिर्मयतामें भी सूर्य और विष्णुका अभेद है—सूर्य तेजोमय हैं,[9] विष्णु भी ज्योतिःस्वरूप हैं ।[10] 'भगवती

१. इसीलिये पिंगला नाड़ीको सूर्यनाड़ी कहा जाता है । यह पुरुषा है । २. मिलाइये—(क) आदित्यो वा एष एतन्मण्डल तपति । तत्र ता ऋचस्तदृचां मण्डलम् ॥ (—नारायणोपनिषद् ३ । १४) (ख) विष्णुपुराण । ३. होताओंकी विस्तृत जानकारीके लिये द्रष्टव्य है—तैत्तिरीय आरण्यकका तृतीय प्रपाठक । रुद्रिय, शुक्रिय नामोंके लिये द्रष्टव्य है—अहिर्बुध्न्य-संहिता, अ०—५८ और ५९ । ४. यथा—ऋ० १ । ११५ । १ । ५. यथा—(१) आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योप-व्याख्यानम् । बृ० उ० ३ । ९ । १ (२) तैत्ति० उ० ३ । १ । १ । ६. वि० स० ना० । ना० पं० रा० श्लोक १ । १ । ७० । ७. ना० पं० रा० ४ । ८ । ४८ । ८. वही ४ । ८ । ४८ । ९. यथा—तेजस्विनां सूर्यः । ना० पं० रा० १ । १ । ७० । रवेर्ज्योतिः स्वरूपस्य (पुराणसंहिता ८ । २९) तपत्यर्कः पु० स० १५ । ३२ । १०. ब्रह्मज्योतिः ना० पां० रा० १ । १ । ६२; १ । ६ । १०; १ । ७ । ८४ । परंज्योतिः ना० प० रा० ४ । ३ । १० । ज्योतिरूपम् ना० पं० रा० १ । १२ । २७ । ब्रह्म तेजोमयं ब्रह्म० ना० पं० रा० ४ । ३ । ७८ । एकं ज्योतिः स्वरूपं च सच्चिदानन्दसंज्ञकम्—सनत्कुमारसंहिता ३४ । २ । १ ।

विष्णुमाया सनातनी[1]' ही भास्करमे प्रभारूपा परिलक्षित होती हैं।[2]

किंतु वास्तवमें सूर्यकी आधिभौतिकी प्रभा ही 'ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म' नहीं है। ब्रह्मज्योति तो निर्गुण, निर्लिप्त, परम शुद्ध, प्रकृतिसे परे, कृष्ण-रूप, सनातन और परम हैं[3]। वह नित्य और सत्य है तथा भक्तानुग्रह-कातर हैं[4]। वह आदित्यकी ज्योतिके भी भीतर रहनेवाली आधारभूता परमा, शाश्वती 'ज्योति' है। इसीसे उसे ब्रह्मज्योति कहा गया है। यह ब्रह्मज्योति ही वैष्णवोंके अतुल रूपधारी 'श्यामसुन्दर' हैं।[5]

यतः ब्रह्मज्योति सूर्य-ज्योतिका आधार है और हेतु है। अतः ब्रह्मज्योति अधिभूत सूर्यकी ज्योतिसे करोड़ो गुनी अधिक है।[6]

'नरसिंह' रूपकी व्याख्यामें आगमका कथन है कि जो हंसरूप जनार्दन आकाशमे सूर्यके साथ जाते हैं, उन विहगम भगवान्का वर्णन सूर्यके वर्णसे किया जाता है।[7] तात्पर्य यह कि अनन्त आकाश-व्यापी विष्णुकी आभाके एक रूप सूर्य है। नृसिंहमन्त्रके 'भद्र' पदकी व्याख्यामे कहा गया है कि सूर्यमे प्रकाश भरने, सज्जनोमे भद्रभाव जागरित करने और घोर ससार-ताप-रूप भवको भगा देनेके कारण नृसिंह 'भद्र' कहे गये हैं।[8] परमात्मा परात्पर श्रीकृष्णकी सतत उपासना सूर्यादिक सभी देव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य, इन्द्र, रुद्र आदि सभीके द्वारा वन्दित हैं[9]। सूर्य उन्हींके प्रसादसे तपते हैं।[10]

१.—ना० प० रा० २। ६। १८　२. प्रभारूपे भास्करे सा (—ना० पं० रा० २। ६। २४)

३. जपन्त परम शुद्ध ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्त निर्गुण कृष्णं परम प्रकृतेः परम्॥
(—ना० प० रा० १। १२। ४८)

४. नित्यं सत्य निर्गुण च ज्योतिरूप सनातनम्। प्रकृतेः परमीशान भक्तानुग्रहकातरम्॥
(—ना० प० रा० १। १२। २७)

५. ध्यायन्ते सतत सन्तो योगिनो वैष्णवाः सदा। ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुल श्यामसुन्दरम्॥
(—ना० प० रा० १। १। ३)

६. गोपगोपीश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः। (—ना० प० रा० ४। १। २४) सूर्यकोटिप्रतीकाशः॥
(—ना० प० रा० ४। ३। ३०)

सूर्यकोटिप्रतीकाशः पूर्णेन्दुयुतसनिभः। यस्मिन् परे विराजन्ते मुक्ताः ससारबन्धनैः॥
(—लक्ष्मीतन्त्र १७। १५)

तत्रेश्वर कोटिदिवाकरद्युतिम्॥ (—पुराणसहिता ११। २३। ११)

७. सूर्येण यः सहायाति हसरूपी जनार्दनः। विहगमः स देवेशः सूर्यवर्णेन वर्ण्यते॥
(—अहिर्बुध्न्यसहिता ५६। २६)

८. भा ददाति रवौ भद्रा भाव द्रावयते सताम्। भव द्रावयते घोर ससारतापसततम्॥
(—अहि० सं० ५४। ३३-३४)

९. गणेशशेषब्रह्मेशदिनेशप्रमुखाः सुराः। कुमाराद्याश्च मुनयः सिद्धाश्च कपिलादयः॥
लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकापराः। भक्त्या नमन्ति य शश्वत् त नमामि परात्परम्॥
(—ना० पं० रा०, प्रा० वन्दना)

····स्तुवन्ति वेदाः सावित्री वेदमातृकाः॥ (—ना० प० रा० १। ३। ४१)

ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवन्द्यः॥ (—ना० प० रा० ४। ३। १११)

१०. यत्प्रसादेन ··········तपत्यर्कः। (—पुराणसंहिता १५। ३२)

वैष्णवागमोंका लक्ष्य भगवान् विष्णुकी परब्रह्मता दिखाना है। अतः वे सूर्यको एक देवताके रूपमें ही प्रदर्शित करते हैं। फिर भी सूर्यको विष्णुसे सर्वथा पृथक् नहीं दिखाया गया है। उनके स्वरूपको समझनेके लिये सूर्य-सारूप्यका संकेत हुआ है।

सूर्य विष्णुके निवास है, यह हम देख चुके हैं। इसीको यों भी कहा गया है कि सूर्यमण्डल क्षेत्र है और विष्णु क्षेत्रज्ञ हैं[1]। क्षेत्रका अर्थ 'पीठ या भद्रपीठ' भी है।[2] 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'का कथन है कि श्रुतिने सूर्यमें जिस पुरुषका रहना कहा है, आदित्य उसका शरीर है। तात्पर्य यह कि सविता नामके विष्णुकी सवितामें स्थित होनेकी धारणा करे।[3] अतः बुधजनोंने सविताको गायत्रीका देवता कहा है। सविता देवता गायत्रीसे स्वतन्त्र या पृथक् नहीं है; क्योंकि जैसा कि श्रुतिने कहा है—सब कुछ नारायणसे ही उत्पन्न हुआ है। इसलिये जो कुछ दृश्यमान जगत् है, उसके स्वामी नारायण हैं और ज्ञान-कर्म-तप-श्रुति सब नारायण-परायण है—

> आदित्ये पुरुषो योऽसावहमेवेति निश्चितम्।
> आदित्यस्य शरीरत्वादमदं श्रुतिरुज्जगौ॥
> सवितृनामको विष्णुः सवितृस्थो विचार्यताम्।
> सविता देवता तेन गायत्र्याः ख्यायते बुधैः॥
> न स्वतन्त्रतया देवो गायत्र्याः सविता मतः।
> नारायणादेव सर्वमुत्पन्नं श्रुतिरुज्जगौ॥[4]

इस प्रकार विचारणाके प्रस्ताररूपमें कहा जाता है कि सूर्य वासुदेवकी अष्ट विभूतियोंमेंसे एक हैं, जो आठों हरिकी भद्रपीठरूपमें स्थित हैं। अतः मुमुक्षुओंको इनकी अभेदरूपमें उपासना करनी चाहिये—

> सूर्येन्द्राग्नीन् विधिं सोमं रुद्रं वायुं क्षितिं जलम्।
> वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च॥
> विभूतयो हरेश्चैता भद्रपीठतया स्थिताः।
> तदभेदतयोपास्या मुमुक्षुभिरहर्निशम्॥[5]

किंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भगवान् वासुदेव ही सर्वत्र व्याप्त हैं और उनसे व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, गणेश और सूर्य—ये सभी वासुदेवकी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी तनुभूत विभूतियाँ हैं। अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले हरिके भक्त किसी भी देवताकी उपासना उसे विष्णुका 'शरीर', 'पीठ', 'दास' या 'शेष' (अंश) माननेके अतिरिक्त अन्य किसी भावसे कैसे कर सकते हैं?

> व्यापको भगवानेष व्याप्यं सर्वं चराचरम्॥
> न तदस्ति विना यत् स्याद् वासुदेवेन किंचन।
> ब्रह्मा शक्रश्च रुद्रश्च गणेशो भास्करस्तथा॥
> विचिन्त्या वासुदेवस्य तनुभूता विभूतयः।
> चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाजलजधारिणः॥
> नान्यं देवं नमस्कुर्यात् तच्छरीरतया विना।
> पृथक्त्वेनार्चयन्तो वा मामकास्ते प्रकीर्तिताः॥
> हरेः पीठा हरेर्दासा हरिशेषा द्विजातयः।
> पृथग्भूताः कथंभूता उपास्या मुक्तिमिच्छता॥[6]

सूर्य और चन्द्रमा विराट् पुरुषके नेत्र हैं। नारद-पञ्चरात्रान्तर्गत विष्णुसहस्रनाममें विष्णुका नाम 'सूर्य-सोमेक्षण'[7] है और अन्यत्र इन्हें 'रविलोचन'[8] कहा गया है। 'माहेश्वर-तन्त्र'का कथन है कि सूर्य भगवान्के नेत्रगत हैं।[9]

वैष्णवागममें सूर्यकी उपासना देवरूपमें ही प्रशस्त है। नवग्रह-पूजा, सूर्यार्घ्य, सूर्यपूजा, पञ्चदेवोपासना और पञ्चायतन-पूजामें सूर्यकी धारणा एक देव-विशेषकी

१. बृ० ब्र० स० ३।७।१९१। २. (क) बृ० ब्र० स० ३।७।१९६। (ख) इति पीठतया विष्णोरादित्यः प्रतिपद्यते॥ (—बृ० ब्र० स० ३।७।१९९)। ३. मिलाइये—तैत्ति० उ० ३।१।१। ४. बृ० ब्र० सं० ३।७।१९१–१९३। ५. बृ० ब्र० स० ३।७।१९५–१९६। ६. बृ० ब्र० स० ३।७।२०६–२१०। ७. ना० पं० रा० ४।३।३९। ८. ना. पं० रा० ४।८।४८। बृ० ब्र० सं० ३।१०।१०७। ९. सूर्योऽस्य चक्षुषि गतः (—माहे० तं० १।५२)।

है। भगवान् विष्णु इनके अन्तवर्ती परम प्रभु है, परात्पर है। वे रवि हैं, रवितनु हैं, रविरूप हैं और रविके अंश हैं[1]। नारायणगायत्रीके अनुसार वे हंस ही नहीं—महाहंस हैं[2]। 'नारदपञ्चरात्र'में परमात्मा श्रीकृष्णके एक सौ आठ नामोमे एक नाम 'सर्वग्रहरूपी'[3] भी है। सर्वग्रहरूप होना प्रत्येक ग्रहसे परम–श्रेष्ठ होना है। अतः आगमका वचन है कि एक श्रीकृष्णमन्त्रके जपसे सभी ग्रहोका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है[4]।

सूर्यदेव हेमवर्णके हैं[5]। भगवान् सूर्य अपने एक चक्र (सवत्सर) वाले बहुयोजन-विस्तृत रथमें आसीन होकर अपने तिग्म अंशुओसे जगत्को प्रकाशित करते हैं। उस महान् रथके वाहक सात अश्व है, जिनका परिचालक सारथि अरुण स्वयं है—

रथमास्थाय भगवान् बहुयोजनविस्तृतम्।
वामपार्श्वे स्थितं त्वेकचक्रं दिव्यं प्रतिष्ठितम्॥
वहन्ति सप्तयः सप्तच्छदांसि स्यन्दनं महत्।
सारथिश्चारुणः सर्वानश्वान् वाहयति स्वयम्॥[6]

सूर्यके बारह रूप है। ये बारह आदित्य बारह महीनोसे सम्बद्ध हैं। इनके नाम है—इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान्, त्वष्टा, सविता और विष्णु[7]। वैष्णवागमके अनुसार समस्त विश्व चतुर्व्यूहात्मक है। अष्ट वसु वासुदेवकी, एकादश रुद्र सकर्पणकी, द्वादश आदित्य अनिरुद्धकी और दिव्य पितर प्रद्युम्न (विष्णु)की विभूतियाँ हैं[8]। सभी प्राणियोमे विष्णुका अन्तर्यामित्व है[9]।

सूर्यकी द्वादश कलाएँ है। इनके नाम है—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा[10]। (कहीं-कहीं[11] सुधूम्राके स्थानपर सुषुम्णा नाम मिलता है।)

(२)

सूर्योपासनाके प्रमुख रूप है—गायत्री-उपासना, संध्या, सूर्यमन्त्र, जप, सूर्यपूजा और पञ्चदेव-पूजा। किसी भी प्रकारकी पूजासे पूर्व इष्टदेवका आवाहन किया जाता है और अर्घ्य दिया जाता है। षोडशोपचार हो तो उत्तम है। जपसे पूर्व मालाका संस्कार किया जाता है। अब इनपर सक्षेपमे विचार किया जायगा।

पूजासे पहले देवताका आवाहन किया जाना है। सूर्यका आवाहन इनके ध्यानके साथ किया जाना है; क्योंकि वे आकाशके मणि, ग्रहोंके स्वामी,[12] सप्ताश्व, द्विभुज, दिनेश और सिन्दूरवर्णी है तथा उनके भजनसे कुलकी

१. रवेरंशभागी (—ना० पं० रा० ४। ८। ४८)
२. (क) हंसो हंसी हंसवपुर्हंसरूपी कृपामयः। (—ना० पं० रा० ४। ८। ८८)
(ख) नारायणाय पुरुषोत्तमाय च महात्मने। विशुद्धसत्त्वाधिष्ठाय महाहंसाय धीमहि॥ (ना० पं० रा० ४। ३। ७)
३. सर्वग्रहरूपी परात्परः (ना० पं० रा० ४। १। ३६)
४. इमं मन्त्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम्। सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत्॥ (ना० पं० रा० ४। १। ४४)
५. (तन्त्रसार, पृ० स० ६२)। ६. (बृ० ब्र० स० २। ७। ९३-९४)
७. इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा। अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च॥ (बृ० ब्र० स० ३। १०। २२)
८. बृ० ब्र० स० ३। १०। २३। ९. बृ० ब्र० सं० ३। १०। ४८। १०. महानिर्वाणतन्त्र—६। २९
११. देखिये, पुराणसंहिता १०। ६० की पादटिप्पणी। १२. आवाहयेत् तं द्युमणिं महेशं सप्ताश्ववाहं द्विभुजं दिनेशम्।

वैष्णवागमोंका लक्ष्य भगवान् विष्णुकी परब्रह्मता दिखाना है। अतः वे सूर्यको एक देवताके रूपमें ही प्रदर्शित करते हैं। फिर भी सूर्यको विष्णुसे सर्वथा पृथक् नहीं दिखाया गया है। उनके स्वरूपको समझनेके लिये सूर्य-सारूप्यका संकेत हुआ है।

सूर्य विष्णुके निवास हैं, यह हम देख चुके हैं। इसीको यों भी कहा गया है कि सूर्यमण्डल क्षेत्र है और विष्णु क्षेत्रज्ञ हैं[1]। क्षेत्रका अर्थ 'पीठ या भद्रपीठ' भी है।[2] 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'का कथन है कि श्रुतिने सूर्यमें जिस पुरुषका रहना कहा है, आदित्य उसका शरीर है। तात्पर्य यह कि सविता नामके विष्णुकी सवितामें स्थित होनेकी धारणा करे।[3] अतः बुधजनोंने सविताको गायत्रीका देवता कहा है। सविता देवता गायत्रीसे स्वतन्त्र या पृथक् नहीं है; क्योंकि जैसा कि श्रुतिने कहा है—सब कुछ नारायणसे ही उत्पन्न हुआ है। इसलिये जो कुछ दृश्यमान जगत् है, उसके स्वामी नारायण हैं और ज्ञान-कर्म-तप-श्रुति सब नारायण-परायण हैं—

आदित्ये पुरुषो योऽसावहमेवेति निश्चितम्।
आदित्यस्य शरीरत्वादमदं श्रुतिरुज्जगौ॥
सवितृनामको विष्णुः सवितृस्थो विचार्यताम्।
सविता देवता तेन गायत्र्याः ख्यायते बुधैः॥
न स्वतन्त्रतया देवो गायत्र्याः सविता मतः।
नारायणादेव सर्वमुत्पन्नं श्रुतिरुज्जगौ॥[4]

इस प्रकार विचारणाके प्रस्ताररूपमें कहा जाता है कि सूर्य वासुदेवकी अष्ट विभूतियोंमेंसे एक हैं, जो आठों हरिकी भद्रपीठरूपमें स्थित हैं। अतः मुमुक्षुओंको इनकी अभेदरूपमें उपासना करनी चाहिये—

सूर्येन्द्राग्नीन् विधिं सोमं रुद्रं वायुं क्षितिं जलम्।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च॥
विभूतयो हरेरष्टैता भद्रपीठतया स्थिताः।
तदभेदतयोपास्या मुमुक्षुभिरहर्निशम्॥[5]

किंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भगवान् वासुदेव ही सर्वत्र व्याप्त हैं और उनसे व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, गणेश और सूर्य—ये सभी वासुदेवकी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी तनुभूत विभूतियाँ हैं। अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले हरिके भक्त किसी भी देवताकी उपासना उसे विष्णुका 'शरीर', 'पीठ', 'दास' या 'शेष' (अंश) माननेके अतिरिक्त अन्य किसी भावसे कैसे कर सकते हैं?

व्यापको भगवानेष व्याप्यं सर्वं चराचरम्॥
न तदस्ति विना यत् स्याद् वासुदेवेन किंचन।
ब्रह्मा शक्रश्च रुद्रश्च गणेशो भास्करस्तथा॥
विचिन्त्या वासुदेवस्य तनुभूता विभूतयः।
चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाजलजधारिणः॥
नान्यं देवं नमस्कुर्यात् तच्छरीरतया विना।
पृथक्त्वेनार्चयन्तो वा मामकास्ते प्रकीर्तिताः॥
हरेः पीठा हरेर्दासा हरिशेषा द्विजातयः।
पृथग्भूताः कथंभूता उपास्या मुक्तिमिच्छता॥[6]

सूर्य और चन्द्रमा विराट् पुरुषके नेत्र हैं। नारद-पञ्चरात्रान्तर्गत विष्णुसहस्रनाममें विष्णुका नाम 'सूर्य-सोमेक्षण'[7] है और अन्यत्र इन्हें 'रविलोचन'[8] कहा गया है। 'माहेश्वर-तन्त्र'का कथन है कि सूर्य भगवान्‌के नेत्रगत हैं।[9]

वैष्णवागममें सूर्यकी उपासना देवरूपमें ही प्रशस्त है। नवग्रह-पूजा, सूर्यार्घ्य, सूर्यपूजा, पञ्चदेवोपासना और पञ्चायतन-पूजामें सूर्यकी धारणा एक देव-विशेषकी

१. बृ० ब्र० सं० ३। ७। १९१। २. (क) बृ० ब्र० सं० ३। ७। १९६। (ख) इति पीठतया विष्णोरादित्यः प्रतिपद्यते॥ (—बृ० ब्र० सं० ३। ७। १९९)। ३. मिलाइये—तैत्ति० उ० ३। १। १। ४. बृ० ब्र० सं० ३। ७। १९१—१९३। ५. बृ० ब्र० सं० ३। ७। १९५—१९६। ६. बृ० ब्र० सं० ३। ७। २०६—२१०। ७. ना० पं० रा० ४। ३। ३९। ८. ना० पं० रा० ४। ८। ४८। बृ० ब्र० सं० ३। १०। १०७। ९. सूर्योऽस्य चक्षुषि गतः (—माहे० तं० १। ५२)।

है। भगवान् विष्णु इनके अन्तर्वर्ती परम प्रभु हैं, परात्पर हैं। वे रवि हैं, रवितनु हैं, रविरूप हैं और रविके अंश हैं[1]। नारायणगायत्रीके अनुसार वे हंस ही नहीं—महाहंस हैं[2]। 'नारदपञ्चरात्र'में परमात्मा श्रीकृष्णके एक सौ आठ नामोंमें एक नाम 'सर्वग्रहरूपी'[3] भी है। सर्वग्रहरूप होना प्रत्येक ग्रहसे परम-श्रेष्ठ होना है। अतः आगमका वचन है कि एक श्रीकृष्णमन्त्रके जपसे सभी ग्रहोंका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है[4]।

सूर्यदेव हेमवर्णके हैं[5]। भगवान् सूर्य अपने एक चक्र (संवत्सर) वाले बहुयोजन-विस्तृत रथमें आसीन होकर अपने तिग्म अंशुओंसे जगत्को प्रकाशित करते हैं। उस महान् रथके वाहक सात अश्व हैं, जिनका परिचालक सारथि अरुण स्वयं है—

रथमास्थाय भगवान् बहुयोजनविस्तृतम्।
वामपार्श्वे स्थितं त्वेकचक्रं दिव्यं प्रतिष्ठितम्॥
वहन्ति सप्तयः सप्तच्छंदांसि स्यन्दनं महत्।
सारथिश्चारुणः सर्वानश्वान् वाहयति स्वयम्॥[6]

सूर्यके बारह रूप हैं। ये बारह आदित्य बारह महीनोंसे सम्बद्ध हैं। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान्, त्वष्टा, सविता और विष्णु[7]। वैष्णवागमके अनुसार समस्त विश्व चतुर्व्यूहात्मक है। अष्ट वसु वासुदेवकी, एकादश रुद्र संकर्षणकी, द्वादश आदित्य अनिरुद्धकी और दिव्य पितर प्रद्युम्न (विष्णु)की विभूतियाँ हैं[8]। सभी प्राणियोंमें विष्णुका अन्तर्यामित्व है[9]।

सूर्यकी द्वादश कलाएँ हैं। इनके नाम हैं—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा[10]। (कहीं-कहीं[11] सुधूम्राके स्थानपर सुषुम्णा नाम मिलता है।)

(२)

सूर्योपासनाके प्रमुख रूप हैं—गायत्री-उपासना, संध्या, सूर्यमन्त्र, जप, सूर्यपूजा और पञ्चदेव-पूजा। किसी भी प्रकारकी पूजासे पूर्व इष्टदेवका आवाहन किया जाता है और अर्घ्य दिया जाता है। षोडशोपचार हो तो उत्तम है। जपसे पूर्व मालाका संस्कार किया जाता है। अब इनपर संक्षेपमें विचार किया जायगा।

पूजासे पहले देवताका आवाहन किया जाता है। सूर्यका आवाहन इनके ध्यानके साथ किया जाता है; क्योंकि वे आकाशके मणि, ग्रहोंके स्वामी,[12] सप्ताश्व, द्विभुज, दिनेश और सिन्दूरवर्णी हैं तथा उनके भजनसे कुलकी

---

१. रवेरंशभागी (—ना० पं० रा० ४ । ८ । ४८)

२. (क) हंसो हंसी हंसवपुर्हंसरूपी कृपामयः। (—ना० पं० रा० ४ । ८ । ८८)
(ख) नारायणाय पुरुषोत्तमाय च महात्मने। विशुद्धसद्माधिष्ठाय महाहंसाय धीमहि॥
(ना० पं० रा० ४ । ३ । ७)

३. सर्वग्रहरूपी परात्परः (ना० पं० रा० ४ । १ । ३६)

४. इमं मन्त्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम्। सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत्॥
(ना० पं० रा० ४ । १ । ४४)

५. (तन्त्रसार, पृ० सं० ६२)। ६. (बृ० ब्र० सं० २ । ७ । ९३-९४)

७. इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा। अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च॥
(बृ० ब्र० सं० ३ । १० । २२)

८. बृ० ब्र० सं० ३ । १० । २३। ९. बृ० ब्र० सं० ३ । १० । ४८ । १०. महानिर्वाणतन्त्र—६ । २९

११. देखिये, पुराणसंहिता १० । ६० की पादटिप्पणी। १२. आवाहयेत् तं द्युमणिं ग्रहेशं सप्ताश्ववाहं द्विभुजं दिनेशम्।

वृद्धि होती है। 'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्' इस मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दिया जाता है[1]। 'सम्मोहन-तन्त्र'मे 'ह्रीं हंसः' मन्त्रसे अर्घ्य देनेका निर्देश है[2]। इस प्रकार तन्त्रोमे सूर्यका आवाहन-मन्त्र यह हो जाता है— 'ह्रीं हंस ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः'। इसके पश्चात् इष्ट देवताकी समयानुसार गायत्रीसे अथवा **'ॐ सूर्यमण्डलस्थायै नित्यचैतन्योदितायै अमुकदेवतायै नमः'** इस मन्त्रसे तीन वार जलाञ्जलि दी जाती है। 'अमुक'के स्थानपर अपने इष्टदेवताका नाम जोड़ा जाता है। अर्घ्य देनेके अनन्तर गायत्रीका जप करना चाहिये[3]। सूर्यको अर्घ्य देनेके पश्चात् ही हर, हरि या देवीकी पूजा की जाती है[4]।

किसी भी जपसे पहले मालाका संस्कार किया जाता है। 'आगमकल्पद्रुम'के अनुसार माला-संस्कार-विधि यह है कि आसन-शुद्धि और भूत-शुद्धिके पश्चात् पञ्चदेवोका आवाहन किया जाय। पञ्चदेवोमे सूर्यदेव भी हैं। साधक मालाको थोड़ी देर पञ्चगव्यमे रखकर फिर स्वर्णपात्रमे रखे हुए पञ्चामृतमे स्थापित करे। फिर शीतल जलसे धोकर धूप दे और चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम आदिका लेप करे। फिर १०८ वार ॐका जप करे और नवग्रह, दिक्पाल तथा गुरुकी पूजा करे। तत्पश्चात् मालाको ग्रहण करे[5]।

सूर्यके द्वादशनाम, अष्टोत्तरशतनाम, सहस्रनाम तथा मन्त्रोंका जप होता है। इनके बहुत अच्छे फल शास्त्रोंमें बताये गये हैं। मयूर कविकृत सूर्यशतक तथा अन्य अनेक स्तोत्र हैं, जिनका भक्तगण बड़ी श्रद्धासे गान करते हैं।

मन्त्र सोम, सूर्य और अग्निरूप होते हैं[6]। मन्त्र-जिज्ञासु इनका ज्ञान 'तन्त्रसार' आदि ग्रन्थोंसे प्राप्त कर सकते हैं। मन्त्रका फल प्राप्त करनेके लिये पहले मन्त्रको सिद्ध करना पड़ता है। सभी प्रकारके तन्त्रोमे इसकी विधियाँ बतायी गयी हैं। मन्त्र-सिद्ध करनेके लिये मन्त्रको चैतन्य किया जाता है। इसकी एक विधि सूर्यमण्डलके माध्यमसे बतायी गयी है। बहिःस्थित अथवा अन्तःस्थित द्वादश कलात्मक सूर्यमे साधक अपने सनातन गुरु शिवका और ब्रह्मरूपा उनकी शक्ति तथा अपने मन्त्रका ध्यान करके उस मन्त्रका १०८ वार जप करे। इससे उसका मन्त्र चैतन्य हो जाता है। गायत्री-मन्त्र सूर्य-सम्बद्ध है। **'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्'** यह सूर्यका अष्टाक्षर मन्त्र है।

परमेश्वर-संहिताके अनुसार 'सूर्य' भगवान्‌के विमानके बाह्यावरण भूतलके देवताओंमेसे एक हैं[7]। सूर्य और चन्द्र सौदर्शन महामन्त्रके दाहिने और बायें गवाक्षमें पूज्य हैं[8]।

गायत्री वेद-माता है और इसका जप करना प्रत्येक द्विजका अनिवार्य कर्तव्य है। जो यह त्रयी पराशक्ति

सिन्दूरवर्णं प्रतिमावभासं भजामि सूर्यं कुलवृद्धिहेतोः ॥ (कल्याण साधनाङ्क पृष्ठ ४५८मे उद्धृत)

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

(यजुर्वेद २३ । ४३)

१. तन्त्रसार, पृ०—६५ । २. वही । ३. ज्ञानार्णवतन्त्र

४. यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय महात्मने। तावन्न पूजयेद् विष्णुं शङ्करं वा महेश्वरीम् ॥

(नन्दिकेश्वरसंहिता)

५. आ० क० तन्त्रसार पृ० २५ पर उद्धृत। ६. तन्त्रसार पृ० ६२। ७. पार० सं० ११। २०६। ८. पार० सं० २५। २७,

आकाशमे सूर्यनामसे तप रही है, वह (ऋक्-यजुः-साममयी) तीन प्रकारकी है । वह वेद-जननी सावित्री है । त्रिवर्ण प्रणव उसका आधार है । वह प्रकाशानन्द-विग्रहा है, वर्णोकी परामाता है और ब्रह्मसे उदित होकर उसीमे प्रतिष्ठित होती है । वह दिव्य सूर्य-वपु सावित्री अनुलोम-विलोमसे सौम्य और आग्नेयीं है । गानेवालेका त्राण करती है, अतः वह गायत्री है । अपनी किरणोके द्वारा पृथ्वी एव सरिताओ आदिसे जीवन (जल) लेकर वह पुनः पौधोमे छोड़ देती है । उसे सूर्यमयी शक्ति कहते हैं[1] ।

परदेवता महादेवी गायत्री गुणभेदसे त्रिरूपा है । वह प्रातःकालमे ब्रह्मशक्ति, मध्याह्नमे वैष्णवी शक्ति और सायकालमे वरदा शैवी शक्ति है । **'आद्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि, तन्नः काली प्रचोदयात्'**—यह तान्त्रिक गायत्री-मन्त्र है[2] । ब्रह्मके उपासकोको गायत्री-जप करते समय ब्रह्मको गायत्रीका प्रतिपाद्य समझना चाहिये । किंतु अन्य सब आराधक वैदिकी संध्या करते समय सूर्योपस्थान-पूर्वक सूर्यको अर्घ्य दे ।[3] ब्रह्म-सावित्री (गायत्री) वैदिक भी है और तान्त्रिक भी । दोनो प्रकारसे यह प्रशस्त है । प्रबल कलिकालमे गायत्रीमे द्विजोका ही अधिकार है, अन्य मन्त्रोमे नहीं । गायत्रीके आरम्भमे ब्राह्मणोको 'ॐ', क्षत्रियोको 'श्री' और वैश्योको 'ऐं' मिलाना चाहिये ।[4]

सध्यामे मुख्यतः दस क्रियाएँ होती हैं—आसन-शुद्धि, मार्जन, आचमन, प्राणायाम, अघमर्षण (भूतशुद्धि), अर्घ्यदान, सूर्योपस्थान, न्यास, ध्यान और जप । अर्घ्यदान और सूर्योपस्थान दोनो सूर्यदेवकी उपासना हैं । गायत्रीका जप करते समय सूर्यमण्डलमे अपने इष्टदेवका ध्यान करना चाहिये । स्नान-विधिमे कथित नियमसे तर्पण भी करना आवश्यक है । योगियोके लिये संध्या, तर्पण और ध्यान आभ्यन्तर भी होते हैं । कुण्डलिनी शक्तिको जागरित करके उसे षट्चक्र क्रमसे सहस्रारमे ले जाकर परमशिव (परात्पर श्रीकृष्ण)के साथ एक कर देना आभ्यन्तर संध्या है । चन्द्र-सूर्याग्निस्वरूपिणी कुण्डलिनीको परम बिन्दुमे सन्निविष्ट करके आज्ञाचक्रमें निहित चन्द्र-मण्डलमय पात्रको अमृतसारसे परिपूर्ण कर उससे इष्टदेवता-का तर्पण करना आभ्यन्तर तर्पण है । रवि-शशि-वह्निकी ज्योतिको एकत्र केन्द्रित कर महाशून्यमे विलीन करके निरालम्ब पूर्णतामे स्थित हो जाना ही योगियोका ध्यान है । वैष्णवागममे भी ऐसा ध्यान प्रशस्त है ।[5]

भगवान् सूर्यकी पृथक्-पृथक् षोडशोपचार-विधिसे पूजा करनेके भी विधान हैं । 'महानिर्वाण-तन्त्र'मे यह विधान है कि 'क भ' आदि 'ठ ड' 'वर्ण-बीज'द्वारा सूर्यकी द्वादश कलाओको पूजकर[6] फिर मन्त्रशोधित अर्घ्य-पात्रमें **'ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः'** मन्त्रसे सूर्यकी पूजा करनी चाहिये ।[7] रामाराधक वैष्णवोमें सूर्यका महत्त्व इसलिये भी है कि भगवान् रामने सूर्यवंशमे अवतार लिया था ।[8] सूर्य-पूजा वश-वृद्धिके लिये है । सूर्यशक्ति गायत्रीकी उपासना बुद्धि-वर्धन और सुमति-प्राप्तिके लिये है । सूर्य तेजोदेव हैं और उपासकोको तेजस्वी बनाते हैं । श्रीमद्भागवतकी मान्यता है कि अदितिपुत्रो अर्थात् आदित्यो या देवोकी उपासनाका फल स्वर्ग-प्राप्ति है ।[9]

---

१. लक्ष्मीतन्त्र २९ । २६—३२ । २. महानिर्वाणतन्त्र ५ । ५५—६५ । ३. म० नि० त० ८ । ७७-७८ । ४. म० नि० तं० ८ । ८५-८६ । ५. हृत्पद्मे पद्मनाभं च परमात्मानमीश्वरम् । प्रदीपकलिकाकार ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ (—ना० पं० रा० १ । ६ । १०) ६. सूर्यकलाओकी पूजाके मन्त्र ये हैं—कं भं तपिन्यै नमः । खं बं तापिन्यै नमः । गं फं धूम्रायै नमः । घं पं मरीच्यै नमः । ङं नं ज्वालिन्यै नमः । चं धं रुच्यै नमः । छं दं सुधूम्रायै नमः । जं थं भोगदायै नमः । झं तं विश्वायै नमः । ञं णं बोधिन्यै नमः । टं ढं धारिण्यै नमः । ठं डं क्षमायै नमः । ७. म० नि० तं० ६ । २७-३० । ८. सूर्यवंशध्वजो रामः ॥ (—ना० पं० रा० ४ । ३ । ७) ९. (क)—स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ (—भाग० २ । ३ । ४)

पञ्चदेवोपासनामें भी सूर्य-पूजा होती है । सूर्य, गणेश, देवी, रुद्र और विष्णु—ये पाँच देव हैं, जिनकी पूजा वैष्णवजन सब कार्योंके आरम्भमें करते हैं । इनकी पूजा करनेवाले कभी भी संकट या कष्टोंमें नहीं पड़ते।[1] इन पञ्चदेवोंकी उपासनाके लिये शैव, गाणपत्य, शाक्त, सौर और वैष्णव-सम्प्रदाय पृथक्-पृथक् भी हैं[2]; किंतु सामान्य वैष्णव-पूजामें पञ्चदेवोपासनाको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है 'कपिलतन्त्र'के अनुसार। कारण यह है कि पञ्चदेव पञ्चभूतके अधिष्ठाता हैं । आकाशके विष्णु, वायुके सूर्य, अग्निकी शक्ति, जलके गणेश और पृथ्वीके शिव अधिपति हैं[3] । पञ्चभूत ब्रह्मके स्वरूप हैं । अतः पञ्चदेवोपासना ब्रह्मकी ही उपासना है । पञ्चदेवोंके व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी उनकी ब्रह्मरूपता प्रदर्शित करते हैं । जैसे विष्णुका 'सर्वव्याप्त,' सूर्यका 'सर्वगत', शक्तिका 'सामर्थ्य, गणेशका 'विश्वके सब गणोंका स्वामी' और शिवका अर्थ 'कल्याणकारी' है । ब्रह्म तो चिन्मय, अप्रमेय, निष्कल और अशरीरी है । उसकी कोई भी रूप-कल्पना केवल साधकोंके हितके हेतु है[5] । (पञ्चदेवोपासना-विधि कल्याणके साधनाङ्कसे जानी जा सकती है[6] ।)

पञ्चदेवोपासनामें पाँच देव पूज्य हैं । अपने इष्टदेवको मध्यमें स्थापित करके साधक इनकी पूजा करते हैं । अन्य चार देव चार दिशाओंमें स्थापित किये जाते हैं । इसे पञ्चायतनविधि कहते हैं । तन्त्रसारमें 'यामलतन्त्र'का उद्धरण देकर इसको स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यदि देवोंको अपने स्थानपर न रखकर अन्यत्र स्थापित कर दिया जाता है, तो वह साधकके दुःख, शोक और भयका कारण बन जाता है[7] । गणेशविमर्शिनी, रामार्चन-चन्द्रिका, गौतमीयतन्त्र आदिमें भी पञ्चायतन-विधि निर्दिष्ट की गयी है । यदि सूर्यको इष्टदेवके रूपमें मध्यमें स्थापित किया जाय, तो ईशान दिशामें शङ्कर, अग्नि कोणमें गणेश, नैर्ऋत्यमें केशव और वायव्य दिशामें अम्बिकाकी स्थापना होनी चाहिये[8] । अन्य इष्टदेवोंको मध्यमें स्थापित करनेपर सूर्य आदि देवोंकी स्थिति इस प्रकार रहेगी । जब भवानी मध्यमें हों तो ईशानमें अच्युत, आग्नेयमें शिव, नैर्ऋत्यमें गणेश और वायव्यमें सूर्य रहेंगे। जब मध्यमें विष्णु हों तो ईशानमें शिव, आग्नेयमें गणेश, नैर्ऋत्यमें सूर्य और वायव्यमें शक्तिकी स्थापना होगी । जब मध्यमें शङ्कर हों तो ईशानमें अच्युत, आग्नेयमें सूर्य, नैर्ऋत्यमें गणेश और वायव्यमें पार्वतीका स्थान होगा । जब मध्यमें गणेशकी स्थापना होगी तो ईशानमें केशव, आग्नेयमें शिव, नैर्ऋत्यमें सूर्य तथा वायव्यमें पार्वतीकी पूजा होगी[9] ।

(ख) महाभारतमें भी सूर्यको संतानदाता तथा स्वर्गद्वार और स्वर्गरूप कहा गया है । (—३ । ३ । २६)

१. आदित्यं च गणेशं च देवीं रुद्रं च केशवम् । पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥
एवं यो भजते विष्णुं रुद्रं दुर्गां गणाधिपम् । भास्करं च धिया नित्यं स कदाचिन्न सीदति ॥
(—उपा० तत्त्व० परिच्छेद ३)

२. शैवानि गाणपत्यानि शाक्तानि वैष्णवानि च । साधनानि च सौराणि चान्यानि यानि कानि च ॥ (—तन्त्रसार)

३. आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी । वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥ (—कपिलतन्त्र)

४. द्रष्टव्य—साधनाङ्क पृ० ४५४में 'पञ्चदेवोपासना' लेख ।

५. चिन्मयस्याप्रमेयस्य निष्कलस्याशरीरिणः । साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥ (—तन्त्रसार)

६. साधनाङ्क पृ० ४५४-४६२; ७. स्वस्थानवर्जिता देवा दुःखशोकभयप्रदाः ॥ (—तन्त्रसार पृ० ५८)

८. आदित्यं च यदा मध्ये ऐशान्यां शङ्करं यजेत् ॥
आग्नेय्यां गणनाथं च नैर्ऋत्यां केशवं यजेत् । वायव्यामम्बिकां देवीं स्वर्गसाधनभूमिकाम् ॥ (—तन्त्रसार पृ० ५७)

९. तन्त्रसार पृ० ५७-५८ ।

नवग्रह-पूजनमे सूर्य-पूजा भी सम्मिलित है। सूर्य नवग्रहके अधिपति हैं। नवग्रहोमे शनि सूर्यके पुत्र हैं[1]। 'बृहद्ब्रह्मसंहिता'मे नवग्रहकी स्थितिका विस्तृत वर्णन है[2]। 'पारमेश्वरसंहिता'मे नवग्रह भगवान्के मन्दिरके विमान-देवताओमे है। सर्वग्रह पीड़ा-शान्तिके लिये नवग्रह-पूजन किया जाता है। हिंदुओमे प्रायः सभी कार्योमे और यागादिकके आरम्भमें नवग्रहपूजन भी होता है। इनके अपने-अपने मन्त्र और दान हैं। ग्रहपीड़ा-निवारणके लिये रत्न-धारण करनेका विधान है।

श्रुति, गीता, इतिहास, पुराण और आगममे सूर्य और चन्द्रको स्वर्ग-पथ कहा गया है। 'बृहद्ब्रह्मसहितामे कहा है कि सूर्य-पथ योगियोका परम पथ है, जो पञ्चक्लेशोका शमन करता है, और मोक्ष चाहनेवाले उस पथपर चलकर विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं[3]। 'सनत्कुमारसहिता' कहती है कि जीव रुद्र, सूर्य, अग्नि आदिमे भ्रमण करते है। तात्पर्य यह कि कर्म-रत जीव, जो रुद्रादिक देव-भावनामे ही सीमित रह जाते है, वे बारम्बार जन्म-मरणके चक्रमें पडते हैं[4]। मुक्त होनेके लिये तो ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णकी ही शरण लेनी चाहिये। उसके लिये सूर्य एक मार्ग हैं। 'तत्त्वत्रय'मे कहा है कि सूर्यमेसे होकर जानेवाले जीव अपने सूक्ष्मशरीरसे मुक्त हो जाते है। ऐसे मुक्त जीव चिन्मय और अणुमात्र हो जाते हैं[6]। अणुमात्र होनेका अर्थ है—कार्मज शरीरसे मुक्ति। 'नारदपञ्चरात्र'मे जीवका सूर्यमे लीन होना बताया गया है[7]। 'लक्ष्मीतन्त्र' का कथन है कि 'श्री' श्रीहरिकी प्रकाशानन्दरूपा पूर्णाहन्ता है। वह मन्त्रमाता है। सारे मन्त्र उसीसे उदित होते है और उसीमे अस्त होते है। सूर्य इस मन्त्रमय मार्गका जाग्रत् पद है, अग्नि स्वप्नपद है और उसीमे अस्त होते हैं। सोम सुषुप्ति पद है[8]। श्रीसूक्तमे 'सूर्यसोमाग्निखण्डोत्थनादवत्'—मन्त्र-बीज है। उनमे जो लक्ष्मीनारायण-सम्बन्धी परमबीज है, वह सर्वकामफलप्रद है। वह पुत्रद, राज्यद, भूमिद और मोक्षद है। वह शत्रु-विध्वसक है और वाञ्छित-की आकर्षक 'चिन्तामणि' है। बीजोसे जो मन्त्र बनते है, वे सब श्रीकी शक्तिसे अधिष्ठित होते हैं और वे श्रीत्वको प्राप्त होकर शीघ्र फलदायी होते हैं[9]। यही मन्त्र-मार्ग है। इसका जाग्रत् पद सूर्य है—इसका आशय यह है कि सूर्य मन्त्रोकी फलवत्ताके प्रमुख आधार है और मन्त्रका चरम फल है—श्री (शक्ति) की और इस प्रकार नारायण-(शक्तिमान्-) की प्राप्ति। इस दृष्टिसे भी सूर्य स्वर्गद्वार है।

आगम-प्राधान्यवाले सम्प्रदायोमे सौर-सम्प्रदाय भी है[10]। आनन्दगिरिने 'शङ्करविजय' नामक काव्यके तेरहवे

---

१. बृ० ब्र० सं० २। ७। १०६। २. बृ० ब्र० सं० २। ७। १०२ से ११५।

३. योगिना परमः पन्थाः स्मृतः क्लेशपरिक्षये। मोक्ष्यमाणाः पथा येन यान्ति विष्णोः परं पदम्॥ (—बृ० ब्र० स० २। ७। ९६)

मिलाइये—'स्वर्गद्वारं प्रजाद्वार मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्' (— महाभारत ३। ३। २६ सूर्यके नामोसे।)

४. केचिद् रुद्रे रवौ वह्नौ रौद्रे शक्तौ तथापरे। अन्ये कर्मरता जीवा भ्रमन्ति च मुहुर्मुहुः॥ (—स० सं० ३१। ७८)

५. तत्त्वत्रय, पृष्ठ १२। ६. स्वरूपगुणमात्रं स्याज्ज्ञानानन्दैकलक्षणम्॥ (—विष्वक्सेनसहिता)

त्रसरेणुप्रमाणास्ते रश्मि कोटिविभूषिताः॥ (—अहि० स० ६। २७)

७. पुनः प्रलीयते सूर्ये गतेषु च घटेषु च॥ (—ना० प० रा० २। १। ३३)। ८. ल० तं०। ५२। १२

९. लक्ष्मीतन्त्र ५२। २०—२३

१०. ब्राह्म शैव वैष्णव च सौरं शाक्त तथार्हतम्॥ (—पुराणसंहिता १। १६)

प्रकरणमें बताया है कि सूर्योपासनाके उस समय छः सम्प्रदाय प्रचलित थे। 'पुराणसंहिता'में बताया गया है कि सौरदर्शन चौबीस तत्त्वोंको मान्यता देता है। ये चौबीस तत्त्व हैं—पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, ज्ञान और प्रकृति[1]। सौर-सम्प्रदायका वर्णन इस लेखसे बाह्य विषय है। यहाँ हम इतना ही कहेंगे कि सौर-मत एक वैदिक उद्भव है। भारतसे इसका प्रसार ईरान आदि विदेशोंमें हुआ और कालान्तरमें वहाँ विकसित हुई पूजा-विधियों और मूर्तिनिर्मितियोंका प्रभाव कुछ समयके लिये भारतस्थ सौरमतपर भी पड़ा। अद्यतन सौरमत पूर्णतया भारतीय है। उसमें विदेशी तत्त्व तनिक भी नहीं है। हमारी इस विचारणाकी पुष्टि श्रीरामकृष्ण-गोपाल भण्डारकरके कथनसे भी होती है, जिन्होंने कहा है कि 'मन्दिरोंमें प्राप्त अभिलेखोंमें जिस ढंगसे सूर्यके प्रति भक्ति प्रदर्शित की गयी है, उसमें लेशमात्र भी विदेशीपन नहीं है[2]।

उच्छीर्षक-दर्शनोंमें सूर्य

[तात्त्विक चर्चा]

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीकण्ठजी शर्मा, चक्रपाणि, शास्त्री)

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (—यजु० ७। ४२; ऋ० १। ८। ७। १)

जिस साधनसे कुछ भी देखा जा सके, वह दर्शन है। विधि या निषेधके रूपमें शासन अथवा वस्तु-तत्त्वको बोधन करनेकी शक्तिवाला साधन दर्शनशास्त्र कहलाता है एवं जिसके द्वारा इस दृश्य जगत्‌का सत्यस्वरूप तथा जीवनकी सत्यसुखमयता विधि-निषेध बोधक-रूपसे अवगत हो, वह दर्शनशास्त्र है। उक्त सभी प्रमेय ज्ञेय किसी देश और कालके अन्तर्गत ही ज्ञान-विषयीभूत हो सकते हैं। देश और कालकी व्यवस्था एकमात्र भगवान् भास्कर सूर्यदेवके ही अधीन है। वेद कहता है—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'। वे दृश्यमान स्थान जङ्गममात्रमें अपनी सहस्र रश्मियोंद्वारा परिपाकरूपमें अमृत भर देते हैं। इसी परतत्त्वको वैदिककोष आदि-कारण ईश्वरके अनेक रूपोंमें परिगणित करता है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋ० १। १६४। ४६) वैदिक रहस्योंका स्पष्टीकरण उपनिषद्-भाग करता है तथा उनके तत्त्व-विवेचनकी कला दर्शन-शास्त्रमें झलकती है। छहों दर्शन एक ही उस परमानन्द तत्त्वके विवेचनके लिये विश्लेषणात्मक मार्ग अपनाते हैं। एक ही तत्त्वको लक्ष्य रखनेसे उनका संश्लेषणात्मक स्वरूप है। षड्दर्शनोंमें पूर्वोत्तर दृष्टिद्वारा सांख्ययोगदर्शनमें न्याय-वैशेषिकके विवेचनात्मक सिद्धान्तोंका सङ्केत मिलनेके आधारपर न्यायवैशेषिक, सांख्ययोग, पूर्वमीमांसा, उत्तर-मीमांसाकी व्यवस्थाका क्रम आता है। तदनुसार प्रस्तुत लेखमें सूर्यका जीवनतत्त्वसे ऐहिक एवम् आमुष्मिक सम्बन्ध है—इसके निर्देशका प्रयत्न किया जाता है।

पारमार्थिक सत्ताकी सत्य सत्ताके समान ही व्यवहार-दशामें व्यावहारिक सत्ताको मिथ्या होते हुए भी सत्य मानना ही पड़ता है। ज्ञानेन्द्रियनिधान देहमें आकर देहीको किसी भी भौतिक प्रत्यक्षके लिये इन्द्रिय और विषयका सन्निकर्ष सापेक्ष है। अन्धकारमें निर्दोषचक्षु भी भौतिक पदार्थको तबतक प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, जबतक बाह्य प्रकाश सहायक न हो, (न्या० द० सू० ३। १। ४१) "**बाह्यप्रकाशानुग्रहाद् विषयोपलब्धे-**

१. पुराणसंहिता १०। ६०, पाद-टिप्पणी भी। २. 'वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मतपर' पृष्ठ १७८।

रनभिव्यक्तितोऽनुपलब्धिः" उक्त सूत्रमे बाह्य प्रकाशकी व्याख्या आदित्य-नामसे की गयी है तथा मूलसूत्रमें तो और भी स्पष्ट है कि "आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरितेऽपि दाह्येऽविघातात्" (न्या० सू० ३ । १ । ४७)। वही प्रधान तत्त्व अध्यात्म है, चक्षुः आदि करणाभिमानी जीवरूपसे अधिदैव भी है तथा रश्मिके आश्रय नेत्रगोलकरूपेण एवं बाह्य प्रकाश सहयोगमे रश्मिसंयोगानुगृहीत विषयके रूपमें अधिभूत भी वही है—

योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः॥
(श्रीमद्भा० २ । १० । ८)

इसी प्रकार—

"**हृग्रपमार्कवं पुरञ्च रन्ध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे**" कहा है—

इसी आदित्य-तत्त्वका पुरुष नामसे ब्राह्मणभाग स्तवन करता है—

"**यदेतन्मण्डलं तपति'''एष एतस्मिन्मण्डले पुरुष'''यदेतदर्चिर्दीप्यते''',''''''''पुरुषो'''यश्चैष हिरण्मयः'''**' उक्त ब्राह्मण-भागमें स्पष्टतया अध्यात्म, अधिदैव एव अधिभूत (अधियज्ञ) स्वरूपसे भगवान् सूर्यका निर्देश प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर वैशेषिकदर्शनका स्थान है। इसमे उक्त सूर्य-विभूतिका महत्त्व '**तेजोरूपस्पर्शवत्**' (वै० द० २ । १ । ३)से जीवात्माकी स्थितिको तेजके चतुर्विध रूपका विभाग दिखाकर समानधर्मितया प्रस्तुत किया गया हे। रूप और स्पर्शमें उद्भूत और अनुद्भूतकी विशिष्टतासे जीवात्माका देखा जाना और न देखा जा सकना झलका दिया है। शाङ्कर उपस्कारमे इन शब्दोको सरल किया है—'**उद्भूतरूपस्पर्शो यथा सौरादि**' (२ । १ । ३)। गीतामें स्पष्ट कहा है—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥
(१५ । १०)

जिस प्रकार जीवात्मा नहीं दीखता, परंतु देहके जड होनेसे किसी भी क्रियाकी सम्भवता चैतन्यके सम्पर्क बिना समाधेय नहीं है तो '**हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**' (गीता १८ । ६१)के अनुसार हृदय-दहरमें स्थित उस चैतन्यकी शक्ति ही जड देहको क्रियाश्रय बनाकर उसकी सत्ताको सिद्ध कर देती है, उसी प्रकार सूर्यका तेज कहीं रूपके द्वारा और कहीं स्पर्शद्वारा उद्भूत (प्रत्यक्ष) एवं अनुद्भूत (अप्रत्यक्ष) रूपमें जीवात्मवादका चित्रपट प्रस्तुत करता है।

इससे आगे चलकर दर्शनने जीवकी आयुके अधिक एवं न्यूनके लिये सूर्यके द्वारा बननेवाले वर्ष, मास, दिन होरात्मक, कालके आश्रयसे तथा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व आदि अनेक प्रकारके व्यवहारकी सिद्धि-हेतु सूर्यके द्वारा अनुप्राणित दिशारूपी द्रव्यके व्याजसे दिखाकर इस जगत्की वस्तुस्थितिको सुन्दररूपमें चित्रित किया है।

'**इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम्**' (वै० सू० २ । २ । १०) '**उपस्कारकालात् संयोगापनायिका दिक् सन्निधानन्तु सूर्यसंयुक्ते संयोगाल्पीयस्त्वं ते च सूर्यसंयोगा अल्पीयांसो भूयांसो वा।**'

वैशेषिक सिद्धान्तवादी प्रशस्तपाद उक्त जगद्व्यवहारकी साधनामे सूर्यको ही भगवान्के रूपमे आधार मानते हैं। दिक्प्रकरणमे—"**लोकसंव्यवहारार्थं मेरुं प्रदक्षिणमावर्तमानस्य भगवतः सवितुर्ये संयोगविशेषाः लोकपालपरिगृहीतदिक्प्रदेशानामन्वर्थाः प्राच्यादिभेदेन दशविधाः संज्ञाः कृताः।**"

इसके अनन्तर सांख्ययोगकी कोटि है। महर्षि कपिलने अपने सिद्धान्त सांख्यदर्शनमे बडे ही रहस्यमय रूपसे दृष्ट एव श्रुत जगत्में सूर्यकी अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूतरूपताका एकांश उद्धरण किया है, "**नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा**" (५ । १०४)। विज्ञानभिक्षुने विवरण करते हुए सूर्यसत्ताको स्पष्ट स्वीकार किया है—"**अतो दूरस्थसूर्यादिसम्बन्धार्थः**"।

(सूत्र १०५)न तेजोऽपसर्पणात्तैजसं चक्षुर्वृत्तित-स्तत्सिद्धेः" (वि० भि० भा०) **झटित्येव दूरस्थं सूर्यादिकं प्रत्यपसरेदिति ।**

तदनन्तर उक्त दर्शनद्वयीका परिपूरक योगदर्शन तो सूर्यकी सत्ताको पिण्ड और ब्रह्माण्डमे व्यापक विभूतिके रूपमे प्रस्तुत करता है——

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' (यो० ३ । २६)

भूः भुवः स्वः आदि सात लोक ऊपरके तथा अतल, वितल एवं सुतल आदि सात नीचेके सभी चौदह भुवनवर्ती पदार्थोंका ज्ञान भगवान् सूर्यदेवमे मनोवृत्तिके संयमसे सुखसाध्य है । इसके लिये कहीं भी जानेकी आवश्यकता नहीं होती । श्रीमद्भागवतकी परमसंहितामें भगवान् श्रीकृष्णने चौरासी लाख योनियोंमें पुरुषशरीरको अपना तनु बताया है । यही उदाहरण उक्त सत्यमें पर्याप्त है । हम जीव साधारण पुरुष-नामसे प्रस्तुत किये गये और हमारे जगन्नियन्ता महापुरुष नामसे पुकारे गये । श्रीमद्भा० ७ । ८ । ५२) मेंकहा है——**'वयं किम्पुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः'** । इसी तथ्यको महर्षि पतञ्जलि योग-दर्शनमें विश्लेषण करते हुए कहते हैं——**'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'**। आदि महापुरुषके शरीरमें अङ्गविभागके आधारपर **'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः'**(यजुर्वेद ३१ । १३)को कृष्णद्वैपायन व्यासजी श्रीमद्भा० २ । ५ । ३६ से ४२तकमें विशदतासे और भी सरल कर देते हैं——**'कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः'**—इसी सामान्यतासे अखिल ब्रह्माण्डकी स्थिति व्यक्तिरूपसे हमारे शरीरमें भी वैसे ही कल्पित है । अतः **'यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'** यह जनोक्ति है ।

साधना-मार्गमें मूलाधारसे कुण्डलिनीका उत्थान साधित कर इडा, पिङ्गला एवं सुषुम्णा–(गंगा, यमुना, सरस्वती-) द्वारा प्राणायामके सहयोगसे षट्चक्रभेदन करके सहस्रारमें इष्टवन्दना या परानन्दा आदि उत्कृष्ट सम्पत्ति दर्शनीय है । हृदयान्तवर्ती-अष्टदल कमलसे होकर आती हुई सुषुम्णा ही अनिर्वचनीय शोकादिरहित प्रकाशकी भूमि है । प्रकाश या सत्त्व प्रसादभूमि है । अन्धकार या तम शोकस्थान हैं । सुषुम्णाको ज्योतिष्मान् सूर्यका स्थान कहा है । अतः इसकी साधना सूर्यकी उपासना है । यह योगीकी अन्तःकरणस्थितिको निस्तरङ्ग महोदधिके समान स्थिति-निबन्धन बना देती है । (यो० द० १ । ३६)। 'विशोका वा ज्योतिष्मती' ही ज्योतिष्मान् सूर्य-स्थिति है । अतः हृत्पुण्डरीकमें भी विशोका और ज्योतिष्मतीकी स्थिति स्वाभाविक है । यजु० ३३ । ३६ मंत्रसूक्तके——**'तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ।'** आदि-को योगदर्शनप्रदीपिकाकी टिप्पणीमें और भी स्पष्ट किया गया है—**'तया खलु बाह्यान्यपि सूर्यादीनि मण्डलानि प्रोतानि सा हि चित्तस्थानम्'** । ब्रह्माण्ड और पिण्ड——ये दोनों समान जातिके हैं । जो ब्रह्माण्डमें देखा जाता, वह सभी पिण्डमें भी पाया जाता है । इसकी भावाभिव्यक्ति इस श्लोकसे परिपुष्ट है——

एवं हृदयपद्मं तल्लम्बते हृदयस्थके ।
सोमाग्निरिव नक्षत्रं विद्युत्तेजसो युतम् ॥

सरस्वतीस्वरूप सुषुम्णा नाडी हृदयपुण्डरीकसे होकर जाती है । उसमें उक्त श्लोक-निर्दिष्ट सभी सूर्यादिज्योति परिविद्ध हैं । जहाँ बाह्य मण्डलमें सूर्य-आभा है, वहाँ भीतर भी सूर्यमण्डलका अस्तित्व है । इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिमें सूर्य व्यापक सत्ताका साक्षी है——(पूर्व कथित है——) **'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'** ।

इसके अनन्तर पू० मी० (कर्मकाण्ड), उ० मी० (ज्ञानकाण्ड) दर्शनद्वयी चरम विश्रामभूमि हैं । उत्तर-मीमांसा ब्रह्मसूत्र नामसे सर्वविदित है । ब्रह्मशब्द षडङ्ग वेदका वाचक है । वेद ईश्वरज्ञान है । पूर्वभाग कर्मकाण्डके द्वारा ईश्वर-अर्चना कहता है; किंतु कामनाओंपर आधारित होनेसे शाश्वत सुखरूप नहीं है । किंतु उत्तर मीमांसा (ज्ञानकाण्ड) कर्मफलकी अनिच्छापूर्वक परमतत्त्वमें समर्पण कर सभी उत्तरदायित्वो (जिम्मेदारियों) से मुक्त होनेके कारण शाश्वत सुखस्थान है——

*

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥
(गीता ३ । ३०)

इस सिद्धान्तका निष्कर्ष है—**'सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते'** (गी० ४ । ३३)।

इसी कारण ब्रह्मसूत्र उत्तर मीमांसा नामसे कहा गया है। इसमें कर्म या कर्मफलका समर्पण परमब्रह्ममें सिद्धान्ततया कहा गया है। पहले पूर्वमीमांसामें दर्शनका क्षेत्र देखें—जहाँ वेद-मन्त्रोंद्वारा सूर्यका वैभव अध्यात्म-अधिदेव-अधिभूत (द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोक) रूपसे अपरिच्छिन्न सत्तामें स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं, बल्कि साक्षात् विष्णुरूपसे सूर्यकी विभूति गायी गई है। निरुक्त दैवतकाण्डमें विष्णुपदकी अन्वर्थता स्थावर-जङ्गममें सूर्यरश्मि-जालकी व्यापकताके आधारपर है; क्योंकि सूर्य ही रश्मियोंद्वारा सर्वत्र व्याप्त है। इसलिये यही विष्णु है—**'यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति'** तथा **'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा'** (ऋ० वे० १।२।७।२) गीतामें इसी तथ्यको और भी स्पष्ट कर दिया है—**'आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्'** (१० । २१)। मीमांसाका पूर्व भाग यज्ञकल्प है। इसमें सूर्य (आदित्य) से **'इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि'** (यजु० ३४ । ५४)—इस मन्त्रमें चिरजीवनकी कामनाएँ आभिकाङ्क्षित हैं। इसी प्रकार कर्म-प्रधान शास्त्र (पू० मी०) मे सूर्यकी रश्मियोंद्वारा भौतिक वस्तुओंकी प्राप्तिका स्रोत दिखाते हुए पाण्डुरोग (पीलिया) की पूर्ण चिकित्साव्यवस्था पूर्वमीमांसादर्शनकी अपनायी सरणीमें वेद-मन्त्रोंसे ही करता है—**'शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि'** (ऋ० १ । ५० । १२)। इस प्रकार यह पञ्चम कोटिका पूर्वमीमांसा-दर्शन भी ब्रह्माण्डपिण्डमें सूर्यके तात्त्विक स्वरूपको दर्शनसिद्धान्तकी दृष्टिसे व्यवस्थापित करता है।

परिशेषमें स्थान आता है 'ब्रह्मसूत्रका (उ०मी०द०का)। इसमें **'ज्योतिश्चरणाभिधानात्'** (अ० १, पा० १, सू० २४) एवं **'ज्योतिर्दर्शनात्'** (१ । ३ । ४०) इन दोनों सूत्रोंके द्वारा सूर्यकी ज्योतिस्वरूपा सत्ताको स्पष्टतासे निर्देशित किया है। ४०वें सू०के भाष्यमें भगवान् शंकर लिखते हैं—**'अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते'**। छा० उ०के अनुसार यही एकमात्र सूर्यतेज जो भौतिक-दैविक विधिसे नेत्रगोलक एवं तेजोवृत्तिरूपसे पिण्डमें विद्यमान है, द्युलोकमें प्रकाशमान ब्रह्माण्डव्यापी भास्वरतेज ब्रह्मरूपसे उपासित मुक्तिका आश्रय है। भाष्यकार और भी स्पष्ट कर देते हैं—**'एवं प्राप्ते ब्रूमः परमेव ब्रह्मज्योतिः शब्दम्'** **'ब्रह्मज्ञानाद्धि अमृतत्त्वप्राप्तिः'**, (—यजु० नारायणसूक्त)। इस तथ्यको स्पष्ट करता है—**'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'** योगदर्शनने इसीके बलपर कहा है—**'विशोका वा ज्योतिष्मती'** (सू० १ । ३६) उपनिषद्भाग इस दार्शनिक दृष्टिको प्रकाश देता है—**'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'** (ई० उ० ७)।

ब्रह्मसूत्र (१ । ३ । ३१)में **'मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः'** पर भाष्यकार छां० उ० का उद्धरण देकर सूर्यको मधु (अमृत) रूप स्वीकार करते हैं—**'असौ वा आदित्यो मधुः'**। वेदा० द० १ । २ । २६ सूत्रके भाष्यमें ऋग्वेदका उद्धरण भाष्यकारने यह दिया है—**'यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम्'**—जो एक परमतत्त्व सूर्यकी ब्रह्माण्ड-पिण्ड मध्यवर्ती सत्ताका विशुद्ध उदाहरण है।

इस प्रकार उक्त विचार परम्परासे भगवान् सूर्यका दार्शनिक अस्तित्व या सूर्यतत्त्वकी विवेचनात्मक-सत्यता निश्चित रूपसे स्पष्ट हो जाती है कि यही विशुद्धतत्त्व छहों दर्शनोंद्वारा विभिन्न विचारधाराओंमें प्रतिपादित स्थावर-जङ्गमात्मक दृष्ट-श्रुत विश्वमें अनुस्यूत विभूति है।

श्रीवैखानस भगवच्छास्त्र तथा आदित्य (सूर्य)

(लेखक—चल्लपल्लि भास्कर श्रीरामकृष्णमाचार्युलुजी एम्० ए०, बी० एड्०)

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म निखिलं येन सूत्रितम्।
तस्मै समस्तवेदार्थविदे विखनसे नमः॥
येन वेदार्थविज्ञेन लोकानुग्रहकाम्यया।
प्रणीतं सूत्रमौखेयं तस्मै विखनसे नमः॥

'श्रौत तथा स्मार्तरूप समस्त क्रिया-कलाप जिनके द्वारा सूत्रित है, उन समस्त वेदार्थोंके ज्ञाता विखानसजी-को नमस्कार है। वेदार्थके ज्ञाता जिन विखना मुनिने लोकानुग्रहकी इच्छासे औखेय नामक कल्पसूत्रकी रचना की, उन्हे नमस्कार है।'

वैखानस सम्प्रदाय विष्ण्वाराधक-सम्प्रदायोंमें अत्यन्त प्राचीन तथा वैदिक कहलाता है। वैष्णवार्चन सम्प्रदायमें वैखानस, सात्वत और पाञ्चरात्र नामसे प्रसिद्ध तीन विभाग हैं। पक्षान्तरमें पहले और दूसरे सम्प्रदायोंको एक ही विभागके अन्तर्गत माना जाय तो दो विभाग सिद्ध होते हैं। इनमें पहला वैखानस-सम्प्रदाय श्रीविष्णुके अवतारस्वरूप भगवान् विखनामुनिके द्वारा प्रवर्तित है तथा दूसरा उनके अनेक शिष्योंमे भृगु, अत्रि, कश्यप एव मरीचि नामक ऋषिचतुष्टयद्वारा अनुवर्तित है। ये विखना मुनिवर अष्टादश कल्पसूत्र-कर्ताओंमें एक हैं। इनकी विशेषता तो यह है कि इन्होंने श्रौत-स्मार्त-धर्मसूत्रयुक्त बत्तीस प्रश्नात्मक परिपूर्ण कल्प-सूत्रोंकी रचना की है और इनके अतिरिक्त सूत्रोंमें मानव-कल्याण-प्राप्तिके लिये भगवदाराधना करनेके सम्पूर्ण विधि-विधानोका निर्देश करते हुए भगवदाराधना केवल स्वार्थके लिये ही नहीं, परार्थके लिये भी करनेका विधान निरूपित किया है—

गृहे देवायतने वा भक्त्या भगवन्तं नारायणमर्चयेत्।
(—वैखानस-स्मार्तसूत्र प्र० ४ । १२ । १०)

इस सूत्रमें संक्षेपसे उक्त 'देवायतने वा' वाक्यका तथा उन (विखनसजी)के द्वारा उपदिष्ट सार्धकोटि-प्रमाण दैविक (कर्षणा या भू-संस्कारसे लेकर आलय-निर्माणके उपरान्त बेर-प्रतिष्ठापर्यन्त) शास्त्रको उपर्युक्त भृगु आदि शिष्योंने संक्षिप्त करके चातुर्लक्ष-प्रमाण शास्त्रका निर्माण किया है। उक्त भगवान् विखनसजी तथा शिष्योंद्वारा उनके ग्रन्थोंमें भगवान् आदित्य (सूर्य)के सम्बन्धमें पाये जानेवाले कुछ विशेष अंश यहाँ संक्षेपमें दिये जाते हैं।

१—स्मार्त-सूत्र (विखनस-रचित)—

इसमें भगवान् सूर्यका 'आदित्य' शब्दसे ही उल्लेख प्रधानतया पा सकते हैं। वेदस्वरूप श्रीमद्रामायणके अन्तर्गत 'आदित्यहृदयस्तोत्र'में भी इनको **'आदित्य, सविता, सूर्य, भग, पूषा और गभस्तिमान्' पुकारनेके** संदर्भमें आदित्य शब्द प्रधानतया योजित है। इसमें (कल्पसूत्रमें) आदित्यकी आराधना 'ग्रहमख' अथवा ग्रह-यज्ञ-निरूपणके समय कही गयी है। ग्रह-मख करनेकी आवश्यकताका निरूपण करते हुए कहा है कि—

ग्रहायत्ता लोकयात्रा॥
(प्र० स्म० वा० ४ । १३ । २)

तस्मादात्मविरुद्धे प्राप्ते ग्रहान् सम्यक् पूजयति।
(४ । १३ । ३)

लौकिक जीवन ग्रहोंके अधीन होता है। इसलिये उनके विरुद्ध होनेपर ग्रहोंका सम्यक्रूपसे पूजन करनेका विधान है। आदित्यके चतुरस्र-मण्डल-रूप-पीठका निर्माण करके वहाँ रक्तवर्ण तथा अग्नि अधिदेवताको रखकर मध्य स्थानमें उनकी आराधना करनी चाहिये। इनके प्रत्यधिदेवता ईश्वरका निरूपण व्याख्याओंमें श्रेष्ठ श्रीनिवासदीक्षितकृत तात्पर्य-चिन्तामणि नामक व्याख्यामें पाया जाता है। इनकी करवीर

आदि रक्तवर्णवाले पुष्पोसे अर्चना करके[1] शुद्धौदन निवेदन किया जाता है। ४ । १४ । ८-९ वाले मन्त्र-वाक्योसे इनको त्रिमधुयुक्त अर्ककी समिधाओंसे **'आसत्येन'** मन्त्र पढकर १०८ आहुति या २७ आहुति दी जाती है। इनका हवन वैदिकरीतिसे अग्नि-प्रतिष्ठापन करके 'सभ्य'[2] नामक अग्नि-कुण्डमें किया जाता है। इनके अधिदेवताके लिये **'अग्निदूतम्'** मन्त्रसे आहुति दी जाती है। आहुति भी ग्रह-देवताओंके उक्त संख्याके अनुसार १०८ या २७ दे। सामर्थ्य न हो तो एक ही बार करे; यथा—**गृह्य**—

ग्रहदेवाधिदेवानां होमं पूर्वोक्तसंख्यया ॥
अशक्तमेकवारं वा होतव्यं ग्रहदैवकम् ।
(श्रीनिवास दीक्षितीय पृ० ६६६)

आदित्यके लिये **'रक्तधेनुमादित्याय'**[3] के अनुसार लाल रंगवाली गायका दान दिया जाता है। इस प्रकार नवग्रह-पूजा करनेसे ग्रहदोषसे उत्पन्न सभी दुःख तथा व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं—

'एतेन नवग्रहजा दुःखव्याधयः शान्ति यान्ति ।'
(४ । १४ । ७)

इसमे ध्यान देनेकी बात यह है कि अन्य सभी सूत्रकार सूर्यका वृत्ताकार मण्डल सिद्ध करते हैं, पर केवल विखनसजीने ही सूर्यका चतुरस्र मण्डल कहा है। इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय—विखना मुनिका समय स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सूर्यका चतुरस्र मण्डल स्वरूप हो। बादमें सावर्णिके मन्वन्तरके कालसे लेकर सूर्यका मण्डल वृत्ताकार हुआ हो।

अब उनके शिष्य भृगु आदि मुनियोद्वारा निर्मित 'भगवदाराधना-शास्त्र'में विष्णवाराधनाके अङ्गरूप आराध्य श्रीआदित्य (सूर्य) के सम्बन्धमें उक्त कुछ विशेष अंश यहाँ द्रष्टव्य हैं। ये अंश अधिकतया उपलब्ध पुराण-इतिहासप्रसिद्ध अशोसे मेल नहीं खाते। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध भगवदवतारोके सम्बन्धमें उक्त अंश भी नहीं मेल खाते। इसका कारण मन्वन्तर-भेद ही हो सकता है। अस्तु,

१—विमानार्चनकल्प (मरीचिकृत)में है—**द्वितीयावरणे प्राग्द्वारादुत्तरे पश्चिमाभिमुखो (कृष्णश्वेताभो) रक्तवर्णः शुक्लाम्बरधरो द्विभुजः पद्महस्तः सप्ताश्ववाहनो हयध्वजो रेणुकासुवर्चलापतिः 'ख' कारबीजोऽब्धिकोषरवः सहस्रकिरणो मण्डलावृतमौलि श्रावणे मासि हस्तज आदित्य 'आदित्यं भास्करं मार्तण्डं विवस्वन्तमिति ।'** (पृ० १०२, **विंशः पटले**)

---

१. तण्डुलैः केवलैः पक्वं शुद्धान्नम्'' यह विमानार्चन-कल्पमरीचि-कृत त्रिचत्वारिंशत् पटलमें है, वाचस्पत्यमे तो 'गुडौदन रवेर्दद्यात्' कहा गया है।

२. सभ्य नामक अग्निकुण्डका स्वरूप चतुरस्र कहा गया है। यथा—ब्रह्माग्नि पञ्चधा सृष्ट्वा पञ्चलोकेष्वकल्पयत् ।

चतुरस्रो जनोलोकः कुण्डः सभ्यस्य तादृशः । (—श्रीनिवासदीक्षित सकलित—भृगु-वचन)
ब्रह्माजीने अग्निका पाँच प्रकारसे सृजन करके पाँच लोकोमे स्थापना की है। जनोलोकके आकारके समान 'सभ्य' कुण्ड चतुरस्र होता है। यही अंश अन्य भगवच्छास्त्रसंहिताओमे भी कहा गया है।

३. दानके बारेमें वाचस्पत्यमे 'सूर्याय कपिला धेनुम्' कहा गया है।

४. सूर्यपुराण, विष्णुपुराण आदि पुराणोमे भी पहले सूर्यका चतुरस्र स्वरूप कहा गया है। बादमे वृत्त बताया गया है। (यह कथन उक्त श्रीनिवासदीक्षितरचित सूत्र-व्याख्याके उपोद्घात याग 'दशविधहेतुनिरूपण' के 'सर्वेषां सूत्राणामादिमत्वात्' हेतु निरूपणके अवसरमे है।)

(आलयके) द्वितीयावरणमें प्राग्द्वार (पूरब दिशाके द्वार) के उत्तर भागमें पश्चिमाभिमुख हुए, रक्त (लाल) वर्णमाला, शुक्ल (श्वेत) वस्त्र धारण किये, दो भुजावाले, पद्मसंहित हस्तवाले सप्ताश्ववाहन तथा हय (अश्व) ध्वजवाले रेणुका तथा सुवर्चला देवियोंके पति 'ख'कार बीज तथा अब्धिघोष-तुल्य रववाले, सहस्र किरणोंवाले, जिनके सिरके स्थानमें मण्डल (वृत्ताकार) होता है, तथा श्रावण मासमें हस्त नक्षत्रमें जन्म लिये हुए 'आदित्य'का आवाहन 'आदित्य, भास्कर, सूर्य, मार्तण्ड, विवस्वन्त' नामोसे करना चाहिये ।

२–क्रियाधिकार (भृगुप्रोक्त)—

मार्तण्डः पद्महस्तश्च पृष्ठे मण्डलसंयुतः ।
चतुष्पादौ द्विपादौ वा पलाशः कुसुमप्रभः ।
श्रावणे हस्तजो देव्यो रेणुका च सुवर्चला ॥
सप्तसप्तिसमायुक्तो रथो वाहनमुच्यते ।
अनूरुसारथिःसर्पो ध्वजस्तुरग एव वा ॥

(पृष्ठ ४९)

इनमें उक्त अंश अधिकतया उपर्युक्त विमानार्चन कल्पोक्त लक्षणसे ही मेल खाते हैं । अधिकांश तो ये हैं कि द्विपाद या चतुष्पाद होनेका तथा सारथि, अनूरु और ध्वजको सर्प या तुरग कहा गया है ।

३–खिलाधिकार (भृगुप्रोक्त अध्याय १७।३९–४४) के अनुसार लक्षण देखें—'त्रिणेत्र मुकुटी तथा ।'

विम्बं मार्तण्डस्य कुर्यात्पृष्ठे मण्डलसंयुतम् ॥
चतुष्पादं कारयेच्च द्विपादमथवा रविम् ।
दोर्भिर्द्वादशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्माम्बरं तथा ॥
शुक्लाम्बरधरं चापि देवेशं रुक्मलोचनम् ॥
पत्नी सुवर्चला नाम रेणुकेति च यां विदुः ।
मुनिः कनकमाली स्याद्वलिजिते च विचक्षणः ।
वैखानसो मुनिर्धीमान् स्वर्णमाली प्रकीर्तितः ॥
वलिजित् वालखिल्यश्च तावुभौ च सितासितौ ।
अरुणं वाहनस्थाने कपिलं रुक्मकेशकम् ॥

उपर्युक्त क्रियाधिकार-ग्रन्थोक्त लक्षणोके अतिरिक्त उक्त अधिक लक्षणोंका संग्रह इस प्रकार लिख सकते हैं—आदित्यकी बाहु-संख्या द्वादश हैं । व्याघ्रचर्माम्बर धारणके अतिरिक्त इनके समीपमे दो मुनियोंकी उपस्थिति कही गयी हे । वे हैं स्वर्णमाली तथा वलिजित् । इनमें स्वर्णमाली वैखानस मुनि तथा बलिजित् वालखिल्य कहलाते हैं । उनका शरीर क्रमशः सित (सफेद) और असित (काले) वर्णसे युक्त होता है । ग्रहण सौलभ्यके लिये उपर्युक्त लक्षणोंको अग्रेलिखित कोष्ठकमें अङ्कित करके दिखलाते हैं ।

---

१. रेणुका तथा सुवर्चलाके नामोका उल्लेख 'क्रियाधिकार' में —
सुवर्चलामुषा चातिश्यामलां सुप्रियामिति । अर्चयेद्दक्षिणे देवीं रेणुकां रक्तवर्णिनीम् ॥
प्रत्यूषां श्वेतवस्त्रां तामिति वामे समर्चयेत् । × × ×
सुवर्चला, उषा, अतिश्यामला, सुप्रभा और रेणुका रक्तवर्णिनी, प्रत्यूषा, श्वेतवस्त्रा नामोसे अर्चना करें ।

२. वैखानस—अर्थात् विखनस् मुनिके सूत्रानुयायी अथवा वानप्रस्थाश्रमी । ३. वालखिल्य—सपत्नीक वानप्रस्थका एक भेद है । वालखिल्यका निरूपण इस प्रकार पाया जाता है—वानप्रस्था सपत्नीका अपत्नीकाश्चेति ॥ १ ॥

सपत्नीकाश्चतुर्विधाः औदुम्बरो वैरिञ्चो वालखिल्यो फेनपश्चेति ॥ २ ॥

वालखिल्यो जटाधरः चीरवल्कलवसनः अर्काग्निः कार्तिक्या पौर्णमास्यां पुष्कलं भक्तमुत्सृज्य अन्यथाशेषान् मासानुपजीव्य तपः कुर्यात् ॥ ६ ॥ (वैखानस-स्मार्त-सूत्र, प्रश्न २—७)

वालखिल्य जटाधारण करके चीर तथा वल्कलको वस्त्ररूपमे धारण करते हुए सूर्यको ही अग्निके रूपमे धारण करके, कार्तिक-पूर्णिमाके दिन अर्जित समस्तको भक्तोंको दान देकर बाकी महीनोंको किसी तरह (उञ्छवृत्ति आदि) से जीवन चलाते हुए तपस्या करे ।

मरीचि-प्रोक्त विमानार्चन-कल्पके अनुसार	वर्ण	वस्त्र	भुज	हस्त	सिर	जन्म-काल	नक्षत्र	बीज	स्वर	पाद-संख्या	पत्नी	वाहन	ध्वज	सारथि	मुनि
	रक्त (लाल)	शुक्ल (श्वेत)	दो	पद्म-हस्त	मण्डलावृत्त मौलि	श्रावण मास	हस्त	'ख'-कार	अश्वि-घोषस्वर	......	रेणुका तथा सुवर्चला	सप्ताश्व वाहन	हय (घोड़ा)	......	......
क्रियाधिकारके अनुसार	पलाश-कुसुम-का (लाल)	......	......	पद्म-हस्त	पृष्ठ-भागमें मण्डल	श्रावण मास	हस्त	......	......	दो या चार	रेणुका तथा सुवर्चला	सप्तसप्ति युक्तरथ	तुरग (घोड़ा)	अनूरु कनक-माली वलि-जित्	......
भृगु-प्रोक्त खिलाकारके अनुसार		शुक्लाम्बर तथा व्याघ्राम्बर	बारह	......	पृष्ठ-भागमें मण्डल	......	......	......	......	दो या चार	रेणुका तथा सुवर्चला	......	......	अरुण	कनक-माली वलि-जित्

अबतक वैखानस-शास्त्रमें आदित्यके स्वरूपका निरूपण किया गया है। आदित्यके प्रतिष्ठा-विधान तथा आराधना-विधानका सविवरण वर्णन भृगुप्रोक्त 'क्रियाधिकार' तथा 'खिलाधिकार' आदि ग्रन्थोंमें दिया गया है। उनका परिचय स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जाता है। जिज्ञासु पाठक उक्त ग्रन्थोंमें उनका अनुशीलन करनेके लिये प्रार्थित हैं।

इस लेखका उद्देश्य केवल यही है कि वैखानस-सम्प्रदायमें उक्त आदित्यसम्बन्धी विशेषांशोका परिचय दे दिया जाय। ये विशेषांश अन्य किसी शास्त्र तथा पुराणोंमें भी पाये जाते हैं कि नहीं, हम निर्धारण नहीं कर सकते। कोई भी अध्ययनशील जिज्ञासु पाठक इन विशेषताओं (अर्थात् पत्नी, हस्त-संख्या, वस्त्र, मुनि, जन्म-काल आदि) को किसी अन्य ग्रन्थोंमें भी पाये हों तो कृपया इस रचयिताको सूचना दें।

सूर्यकी उदीच्य प्रतिमा

रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम्। सप्ताश्वं चैकचक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेत्॥
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम्। नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्॥
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा।
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्। वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसा वृतौ॥

उन सूर्यदेवको सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित, हाथमें कमल धारण किये हुए, रथपर विराजमान बनाना चाहिये। उस रथमें सात अश्व हों, एक चक्का हो। सूर्यदेव विचित्र मुकुट धारण किये हों, उनकी कान्ति कमलके मध्यवर्ती भागके समान हो, विविध प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित दोनों भुजाओंमें वे कमल धारण किये हुए हों, वे कमल उनके स्कन्ध देशपर लीलापूर्वक सदैव धारण किये गये बनाने चाहिये। उनका शरीर पैरतक फैले हुए वस्त्रमें छिपा हुआ हो। कहींपर चित्रोंमें भी उनकी प्रतिमा प्रदर्शित की जानी चाहिये। उस समय उनकी मूर्ति दो वस्त्रोंमें ढँकी हुई हो। दोनों चरण तेजोमय हों। (प्रायः ऐसा ही वर्णन बृ० स० ५७। ४६–४८ में है।)

(—मत्स्य० २६१। १–४)

वेदाङ्ग—शिक्षा-ग्रन्थोंमें सूर्य देवता

(लेखक—प्रो० पं० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र)

वेदके छः अङ्गोंमें शिक्षा-नामक प्रथम अङ्ग है। इसके साहित्यमें सूर्यनारायणकी जो चर्चा आयी है, उसको यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

१—वेदके तीन प्रमुख पाठ—हैं संहितापाठ, पदपाठ और क्रमपाठ। संहितापाठ ही अपौरुषेय एवं ऋषियोंद्वारा निर्दिष्ट है। इस पाठका अभ्यास रखने और करनेवाला व्यक्ति 'सूर्यलोक'की प्राप्ति करता है।

'संहिता नयते सूर्यम्'

(याज्ञवल्क्य-शिक्षा, पृ० १, श्लोक २५)

२—सर्वत्र वाणीका वैभव स्वरात्मक तथा व्यञ्जनात्मक वर्णोंपर आधारित है। संस्कृत वाङ्मयमें व्यवहृत समस्त वर्ण किसी देवतासे अधिष्ठित हैं। संस्कृतका प्रत्येक वर्ण देवाधिष्ठित है। इसलिये भी संस्कृत देवभाषा कहलाती है। वर्णसमुदायमें सूर्य देवतासे अधिष्ठित अरुणवर्ण निम्नलिखित हैं—

(क) चार ऊष्मा (श, ष, स, ह)—

'चत्वार ऊष्माणः' (श ष स ह) अरुणवर्णा आदित्यदैवत्याः। (पृ० २१, श्लोक ७९)

(ख) यद्यपि विभिन्न वर्ण हैं और उनके देवता भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी भगवान् सूर्य समष्टि रूपसे समस्त वर्णोंके देवता हैं—

आदित्यो मुनिभिः प्रोक्तः सर्वाक्षरगणस्य च।

(या० शि०, पृ० १५, श्लोक ९१)

इस शिक्षाकी उक्तिका वैज्ञानिक अध्ययन यह है कि विश्वके समस्त प्राणियोंमें वर्णोंका उच्चारण सूर्य-नारायणके तापमान और शीतमानके प्रभावसे होता है। आज विश्वके विभिन्न देशोंकी उच्चारणशैलीमें जो विचित्रता एवं स्पष्टता है तथा कई देशोंमें उनकी भाषामें अनेक वर्णोंका घटाव-बढ़ाव और रूपान्तर है, वह सूर्यके तेजकी न्यून अथवा अधिक उपलब्धिसे सम्बद्ध है। हमारा यह भारतवर्ष अनेक राज्योंमें विभक्त एक बड़ा देश है। प्रत्येक राज्यमें तापमान और शीतमान एक रूपमें नहीं है। इस शीत-तापकी विषमताके कारण प्रत्येक राज्य एवं उसके खण्डोंमें बसनेवाले व्यक्तियोंकी वर्णोच्चारणशैली तथा स्वरमें अन्तर पाया जाता है; किंतु वेदाध्ययनके विषयमें गुरुमुखसे सुने हुए शब्दोंके अनुकूल उच्चारणके अभ्यासकी परम्परा सार्वदेशिक रूपसे एक हो जाती है। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि आजकल वेदके अध्येता रटने और रटानेकी प्रक्रियासे भागते हैं और अपनेको समझदार कहनेवाले सभ्य भारतीय भी रटने-रटानेकी प्रक्रियाको अनुपयोगी समझते हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वेदमन्त्रोंके उच्चारणमें एकरूपता कुछ गिने हुए विद्वानोंको छोड़कर अन्योंमें नष्टप्राय हो रही है। यह भारतकी शिक्षा-मर्यादा एवं गौरवपर कुठाराघात है। वेदोच्चारणकी प्रक्रिया एकरूप है; फिर भी विभिन्न स्थानोंमें शीत-तापसे प्रभावित स्वक्षेत्रीय भाषासे ऊपर उठकर राष्ट्रिय एक भाषा एवं उच्चारणकी अन्तर्जागर्ति की जा सकती है। भारतमें भाषा-विवाद पुरातन इतिहासमें लेशमात्र भी नहीं मिलता है। आज भी यह भाषा-विवाद वेद एवं संस्कृत-शिक्षाके माध्यमसे दूर किया जा सकता है।

३—पाराशरी-शिक्षामें भगवान् सूर्यको देवताओंमें विश्वात्मा बताया है—

'यथा देवेषु विश्वात्मा' (पृ० ५२, श्लोक १)

दैनन्दिन सूर्योपस्थानके मन्त्रमें भी **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** कहकर हम सूर्यको समस्त जगत्की आत्मा मानते हैं। अतः भगवान् सूर्य विश्वात्मा हैं।

४—नारदीय शिक्षामें सामवेद तथा लौकिक संगीतके निषाद स्वरके देवता सूर्य बताये गये हैं।

समस्त स्वरोंकी अन्तिमता निषाद स्वरमें होती है; क्योंकि समस्त जगत्का अन्तिम और व्यापी तत्त्व सूर्य इस स्वरके देवता हैं—

निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना।
सर्वांश्चाभिभवत्येष यदादित्योऽस्य दैवतम्॥
(पृ० ४१३, श्लोक १९)

५—सूर्यकी किरणोंमें अगल-बगल धूपमें आड़ लगाकर बीचके रखे गये छिद्रसे जो 'धूलिकण' दिखायी पड़ते हैं, उनकी चञ्चल गतिसे 'अणुमात्रा'का समय एवं उनके गुरुत्वसे 'त्रसरेणु'का तौल बताया गया है। चार अणुमात्रा कालका सामान्य एकमात्रा काल होता है। एक मात्रिक वर्णको ह्रस्व कहते हैं। मनमें यदि त्वरित गतिसे शब्दोच्चारणकी भावना रहती है तो उस उच्चारणका प्रत्येक स्वर-वर्ण एक अणुमात्रा कालका माना जाता है—

सूर्यरश्मिप्रतीकाशात् कणिका यत्र दृश्यते।
अणुत्वस्य तु सा मात्रा मात्रा च चतुराणवा॥
(या० शि० ११)

मानसे चाणवं विद्यात्। (या० शि० १२)
जालान्तर्गते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
त्रसरेणुः सविज्ञेयः।

६—सूर्यकी गतिसे प्राप्त शरद् ऋतुका विषुवान् मध्यदिन जब बीत जाय, तब उषःकालमें उठकर वेदाध्ययन करना चाहिये। इस उषःकालका वेदाध्ययन वसन्त ऋतुकी रात्रि मध्यमानकी हो तबतक चालू रखना चाहिये—

शरद्विषुवतोऽतीतादुपस्युत्थानमिष्यते।
यावद्वासन्तिकी रात्रिर्मध्यमा पर्युपस्थिता॥
(नारदीय-शि०, पृ० ४४२, श्लोक २)

७—वेदका स्वाध्याय आरम्भ करते समय पाँच देवताओंका नमस्कार विहित है। उनमें भगवान् सूर्यका नमस्कार समस्त वेदोंके स्वाध्यायारम्भमें आवश्यक है—

गणनाथसरस्वतीरविशुक्रबृहस्पतीन्।
पञ्चैतान् संस्मरन्नित्यं वेदवाणीं प्रवर्तयेत्॥
(सम्प्रदाय-प्रबोधिनी-शिक्षा, श्लोक २३)

अतएव वेदाध्यायी एवं वेदप्रेमी तथा उच्चारणकी स्पष्टता चाहनेवालोंको भगवान् श्रीसूर्यनारायणकी आराधना अवश्य करनी चाहिये। सूर्याराधनासे मति निर्मल होती है और वेदोंके स्वाध्यायमें प्रगति होती है। वेदाङ्गोंमें सूर्यकी महिमा इसी ओर इङ्गित करती है।

वेदाध्ययनमें सूर्य-सावित्री

प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम्। सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान् समारभेत्॥

याज्ञवल्क्य-शिक्षा (२।२२) के अनुसार वेद-पाठके प्रारम्भमें 'हरिः ॐ' उच्चारणके अनन्तर तीन व्याहृतियों[1]—**भूः, भुवः, स्वः**—के सहित सावित्री अर्थात् सविता देवतावाली गायत्री—**'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्'**—का उच्चारण कर लेना चाहिये। ॐकारका उच्चारण मनु० २। ७४ में प्रतिपादित है; यतः वेदाध्ययनके आदि और अन्तमें उच्चारण न करनेसे वह व्यर्थ हो जाता है—

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति॥

'वेद, रामायण, पुराण और महाभारतके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र 'हरिः'का उच्चारण किया जाता है—

वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते। आदिमध्यावसानेषु हरिः सर्वत्र गीयते॥[2]

---

१. वाजसनेयी-संहिताके ३३ वे अध्यायकी तृतीय कण्डिकामें तीन ही व्याहृतियोंका व्यवहार है। पाँच या सात व्याहृतियोंका गो० स्मृ० १ का विधान भी शाखान्तरीय मान्य विधि है। २. म० भा० स्वर्गा० ६। ९३

योगशास्त्रीय सूर्यसंयमनके मूल सूत्रकी व्याख्या

'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'　　　(वि० पाद २६)

शब्दार्थ—भुवन-ज्ञानम्=भुवनका ज्ञान; सूर्ये-संयमात्=सूर्यमें संयम करनेसे होता है।

अन्वयार्थ—सूर्यमें संयम करनेसे भुवनका ज्ञान होता है।

व्याख्या—प्रकाशमय सूर्यमें साक्षात्-पर्यन्त संयम करनेसे भूः, भुवः, स्वः आदि सातों लोकोंमें जो भुवन हैं अर्थात् जो विशेष हदवाले स्थान हैं, उन सबका यथावत् ज्ञान होता है। पिछले पचीसवें सूत्रमें सात्त्विक प्रकाशके आलम्बनसे संयम कहा गया है। इस सूत्रमें भौतिक सूर्यके प्रकाशद्वारा संयम बताया गया है, किंतु सूर्यका अर्थ सूर्यद्वारसे लेना चाहिये और यहाँ सूर्यद्वारसे अभिप्राय सुषुम्णा है। उसीमें संयम करनेसे उपर्युक्त फल प्राप्त हो सकता है। श्रीव्यासजीने भी सूर्यके अर्थ सूर्यद्वारसे किये हैं तथा मुण्डकमें भी सूर्यद्वारका वर्णन है। **'सूर्यद्वारेण ते विरजा।'**

[*टिप्पणी*—कई टीकाकारोंने सूर्यका अर्थ पिंगला नाड़ीसे लगाया है, पर यह अर्थ न भाष्यकारको अभिमत है, न वृत्तिकारको और न इसका प्रसङ्गसे कोई सम्बन्ध है।]

भाष्यकारने इस सूत्रकी व्याख्यामें अनेक लोकोंका बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया है, उसको इस विषयके लिये उपयोगी न समझकर हमने व्याख्यामें छोड़ दिया है और सूत्रका अर्थ भोजवृत्तिके अनुसार किया है।

इस भाष्यके सम्बन्धमें बहुतोंका मत है कि यह व्यासकृत नहीं है, इसीलिये भोजवृत्तिमें इसका कोई अंश भी नहीं मिलता।

इसमें अलंकाररूपसे वर्णन की हुई तथा संदेहजनक बहुत-सी बातें स्पष्टीकरणीय भी हैं। इन सब बातोंके स्पष्टीकरणके साथ व्यासभाष्यका भावार्थ पाठकोंकी जानकारीके लिये कर देना उचित समझते हैं—

व्यासभाष्यका भाषानुवाद सूत्र २६

भूमि आदि सात लोक, अवीचि आदि सात महानरक, (सात अधोलोक जो स्थूलभूतोंकी स्थूलता और तमस्के तारतम्यसे क्रमानुसार पृथ्वीकी तलीमें माने गये हैं) तथा महातल आदि सात पाताल (सात जलके बड़े भाग, जो पृथ्वीकी तलीमें सात महानरकसंज्ञक प्रत्येक स्थूल भागके साथ माने गये हैं); यह भुवन पदका अर्थ है। इनका विन्यास (ऊर्ध्व-अधोरूपसे फैलाव) इस प्रकार है कि अवीचि (पृथ्वीसे नीचे सबसे पहला नरक अर्थात् तामसी स्थूल भाग। अवीचिके पश्चात् क्रमानुसार स्थूलता और तामस आवरणकी न्यूनताको लेते हुए छः और स्थूल भाग हैं उन) से सुमेरु (हिमालय पर्वत) की पृष्ठपर्यन्त जो लोक है वह भूलोक है और सुमेरु पृष्ठसे ध्रुव-तारे (पोलस्टार Polestar) पर्यन्त जो ग्रह, नक्षत्र, तारोंसे चित्रित लोक है, वह अन्तरिक्ष-लोक है—(यह अन्तरिक्ष-लोक ही भुवः-लोक कहलाता है)। इससे परे पाँच प्रकारके स्वर्गलोक हैं। उनमें भूलोक और अन्तरिक्ष-लोकसे परे जो तीसरा स्वर्गलोक है, वह महेन्द्रलोक (स्वःलोक) कहलाता है। चौथा जो महःलोक है, वह प्राजापत्य-स्वर्ग कहलाता है। इससे आगे जो जनःलोक, तपःलोक और सत्यलोक नामके तीन स्वर्ग हैं, वे तीनों ब्रह्मलोक कहे जाते हैं। (इन पाँचों—स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोकको ही द्यौः-लोक कहते हैं।) इन सब लोकोंका संग्रह निम्न श्लोकमें है—

ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान्।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजा॥

(जनः, तपः, सत्यम्) तीन ब्राह्मलोक हैं। उनसे नीचे महः नामका प्राजापत्य लोक है। उनसे नीचे स्वः

नामका महेन्द्रलोक है। उनसे नीचे अन्तरिक्षमे भुवः नामक तारालोक है और उनसे नीचे प्रजा—मनुष्योका लोक—भूलोक है।

जिस प्रकार पृथ्वीके ऊपर छः और लोक हैं, उसी प्रकार पृथ्वीसे नीचे चौदह और लोक हैं। उनमे सबसे नीचा अवीचिनरक है। उसके ऊपर महाकालनरक है जो मिट्टी, ककड, पाषाणादिसे युक्त है। उसके ऊपर अम्बरीषनरक है, जो जलपूरित है। उसके ऊपर रौरवनरक है, जो अग्निसे भरा हुआ है। उसके ऊपर महारौरवनरक है, जो वायुसे भरा हुआ है। उसके ऊपर महासूत्रनरक है, जो अंदरसे खाली है। उसके ऊपर अन्धतामिस्रनरक है, जो अन्धकारसे व्याप्त है। इन नरकोमे वे ही पुरुष दुःख देनेवाली दीर्घ आयुको प्राप्त होते हैं, जिनको अपने किये हुए पाप-कर्मोंका दुःख भोगना होता है। इन नरकोके साथ महातल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल, पाताल—ये सात पाताल हैं। आठवीं इनके ऊपर वह भूमि है, जिसको वसुमती कहते हैं, जो सात द्वीपोंसे युक्त है, जिसके मध्य भागमें सुवर्णमय पर्वतराज सुमेरु विराजमान है। उस सुमेरु पर्वतराजके चारो दिशाओंमे चार शृङ्ग (पहाड़की चोटियॉ) हैं। उनमें जो पूर्व दिशामे शृङ्ग है, वह रजतमय है (सम्भवतः यह शान स्टेटका पर्वतशृङ्ग हो, वर्माकी शान स्टेटके नमूर पर्वतमे आजकल रजत निकलती भी है); दक्षिण दिशामें जो शृङ्ग है, वह वैदूर्य्य-मणिमय (नीलमणिके सदृश) है। जो पश्चिम दिशामे शृङ्ग है, वह स्फटिक-मणिमय है (जो कि प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकती है) और जो उत्तर दिशामें शृङ्ग है, वह सुवर्णमय (या सुवर्णके रंगवाले पुष्पविशेषके वर्णवाला) है। वहॉ वैदूर्य-मणिकी प्रभाके सम्बन्धसे सुमेरुके दक्षिण भागमे स्थित आकाशका वर्ण नीलकमलके पत्रके सदृश श्याम (दिखलायी देता) है। पूर्व भागमें स्थित आकाश श्वेतवर्ण (दिखलायी देता) है। पश्चिम भागमें स्थित आकाश स्वच्छ वर्ण (दिखलायी देता) है और उत्तर भागमे स्थित आकाश पीतवर्ण (दिखलायी देता) है; अर्थात् जैसे वर्णवाला जिस दिशाका शृङ्ग है, वैसे ही वर्णवाला उस दिशामें स्थित आकाशका भाग (दिखलायी देता) है। इस सुमेरु पर्वतके ऊपर उसके दक्षिण भागमे जम्बू-वृक्ष है, जिसके नामसे इस द्वीपका नाम जम्बू-द्वीप पड़ा है। (प्रायः विशेष देशोमे विशेष वृक्ष हुआ करते हैं। सम्भव है यह प्रदेश किसी कालमे जम्बू-वृक्ष-प्रधान देश रहा हो। वर्तमान समयमें जम्मू रियासत सम्भवतः जम्बू-द्वीपका अवशेष है)।

इस सुमेरुके चारों ओर सूर्य भ्रमण करते हैं, जिससे यह सर्वदा दिन और रातसे संयुक्त रहता है। (जब कोई बडे मोटे बेलनके साथ पतला छोटा बेलन घूमता है, तब वह भी अपना पूरा चक्र करता है। इस दृष्टिसे उस पतले बेलनके चारों ओर बडे बेलनका चक्र हो जाता है। इसी प्रकार जब पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है तो चौबीस घंटेमें सूर्यका भी पृथ्वीके चारो ओर घूमना हो जाता है। इस भॉति सुमेरु पर्वतके एक ओर उजाला और एक ओर ॲधेरा है। उजाला दिन है और ॲधेरा रात्रि है। इसी प्रकार दिन और रात सुमेरु पर्वतसे मिले-जैसे मालूम होते हैं)। सुमेरुकी उत्तर दिशामें नील, श्वेत और शृङ्गवान् नामवाले तीन पर्वत विद्यमान हैं, जिनका विस्तार दो-दो हजार वर्ग-योजन है। इन पर्वतोंके बीचमें जो अवकाश (बीचके भाग घाटी Valley) है, उसमे रमणक, हिरण्मय तथा (शृङ्गवान्के उत्तरमे समुद्रपर्यन्त उत्तरकुरु है। [टालेमीने लिखा है कि चीनके एक प्रदेशका नाम 'उत्तरकोर्ह' Ottarakorrha है, जो कि उत्तरकुरु शब्दका अपभ्रंश प्रतीत होता है। इससे आस-पासका समुद्रपर्यन्त प्रदेश उत्तरकुरु प्रतीत होता है।] वर्णित ये तीन वर्ष

(खण्ड) हैं, जो नौ-नौ हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं (नीलगिरि) मेरुके साथ लगा है । नीलगिरिके उत्तरमे रमणक है। पद्मपुराणमें इसे रम्यक कहा गया है । श्वेतगिरिके उत्तरमें हिरण्मय है ।) और दक्षिण भागमें तीन पर्वत—निषध, हेमकूट, हिमशैल हैं । ये दो-दो हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं । (लंकाके उत्तरमें पूर्वसागरतक विस्तृत हिमगिरि है । हिमगिरिके उत्तरमें हेमकूट है । यह भी समुद्रतक फैला हुआ है । हेमकूटके उत्तरमे निषध पर्वत है। यह जनपद सम्भवतः विन्ध्याचल-पर अवस्थित था । दमयन्ती-पति नल निषधके राजा थे) । इनके बीचके अवकाशमे नौ-नौ हजार वर्ग-योजन विस्तारवाले तीन वर्ष—(खण्ड) हरिवर्ष, किंपुरुष और भारत विद्यमान हैं । [सम्भवतः हिमालयके इलावृत प्रदेश और निषध पर्वतके बीचके प्रदेशको 'भारत' कहा गया हो । हरिवर्ष सम्भवतः वह प्रदेश हो जो कि हरि अर्थात् वानर-जातिके राजा सुग्रीवद्वारा कभी शासित होता था ।] सुमेरुकी पूर्वदिशामें सुमेरुसे संयुक्त माल्यवान् पर्वत है । [माल्यवान् पर्वतसे समुद्रपर्यन्त प्रदेश भद्राश्व नामक है । आजकल बर्माके नीचे एक मलय-प्रदेश है । सम्भवतः यह प्रदेश और इसके ऊपरका बर्मा प्रदेश माल्यवान् हो ।] माल्यवान्‌से लेकर पूर्वकी ओर समुद्रपर्यन्त भद्राश्व नामक प्रदेश है । [बर्मा और मलयसे पूर्वकी ओर श्याम और अनाम (इण्डो चाइनाके प्रदेश सम्भवतः) भद्राश्व नामक हैं ।] सुमेरुके पश्चिम केतुमाल और गन्धमादन देश हैं । केतुमाल तथा भद्राश्वके बीचके वर्षका नाम इलावृत है । [सुमेरुके दक्षिणमे जो उपत्यका (पर्वतपादकी ऊँची भूमि) है, उसे यहाँ इलावृत कहा गया है ।]

पचास हजार वर्गयोजन विस्तारवाले देशमें सुमेरु विराजमान है और सुमेरुके चारों ओर पचास हजार वर्गयोजन विस्तारवाला देश है । इस प्रकार सम्पूर्ण जम्बूद्वीपका परिमाण सौ हजार वर्गयोजन है । इस परिमाणवाला जम्बूद्वीप अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार (कङ्कणके सदृश गोल आकारवाले) क्षार-समुद्रसे वेष्टित (घिरा हुआ) है । जम्बू-द्वीपसे आगे दुगुने परिमाणवाला शाक-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार इक्षुरस (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । [भारतमें शक-जातिने आक्रमण किया था । कास्पीयन सागरके पूर्वकी ओर शाकी नामकी एक जातिका निवास है । यूरोपीय पुराविदोंने स्थिर किया है कि वर्तमान तातार, एशियाटिक रूस, साईबेरिया, क्रिमिया, पोलैंड, हङ्गरीका कुछ भाग, लिथुयनिया, जर्मनीका उत्तरांश, स्वीडन, नारवे आदिको शाकद्वीप कहा गया है ।] इससे आगे इससे दुगुने परिमाणवाला कुशद्वीप है जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार मदिरा (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने विस्तारवाला क्रौञ्च-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार घृत (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । फिर आगे इससे दुगुने परिमाणवाला शाल्मलि-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार दधि (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने परिमाणवाला मगध-द्वीप है, जो अपनेसे दुगुने परिमाणवाले वलयाकार क्षीर (एक प्रकारके जल) के समुद्रसे वेष्टित है । इससे आगे दुगुने विस्तारवाला पुष्करद्वीप है, जो अपनेसे दुगुने विस्तारवाले वलयाकार मिष्ट जलके समुद्रसे वेष्टित है । इन सातों द्वीपोंसे आगे लोकालोक पर्वत है । इस लोकालोक पर्वतसे परिवृत जो सात समुद्रसहित सात द्वीप हैं, वे सब मिलकर पचास कोटि वर्ग-योजन विस्तारवाले हैं (वर्तमान समयमे पृथिवीका क्षेत्रफल १९,६५,००,००० वर्ग मील तथा घनफल २,५९,८८,००,००,००० घनमील माना जाता है । साथ ही वर्तमान समयमें योजन चार कोसोंका तथा कोस दो मीलके लगभग माना जाता है) । यह

जो लोकालोक पर्वतसे परिवृत विश्वम्भरा (पृथिवी)-मण्डल है, वह सब ब्रह्माण्डके अन्तर्गत सङ्क्षिप्तरूपसे वर्तमान है और यह ब्रह्माण्डप्रधानका एक सूक्ष्म अवयव है; क्योंकि जैसे आकाशके एक अति अल्प देशमें खद्योत विराजमान होता है, वैसे ही प्रधानके अति अल्प देशमें यह सारा ब्रह्माण्ड विराजमान है ।

इन सब पाताल, समुद्र और पर्वतोंमें असुर, गन्धर्व, किंनर, किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सराएँ, ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड, विनायक नामवाले देवयोनि-विशेष (मनुष्योंकी अपेक्षा निकृष्ट अर्थात् राजसी-तामसी प्रकृतिवाले प्राणधारी) निवास करते हैं । और सब द्वीपोंमें पुण्यात्मा देव-मनुष्य निवास करते हैं । सुमेरु पर्वत देवताओंकी उद्यान-भूमि है । वहाँपर मिश्र-वन, नन्दन-वन, चैत्ररथ-वन, सुमानस-वन—ये चार वन हैं । सुमेरुके ऊपर सुधर्मा नामक देव-सभा है । सुदर्शन नामक पुर है और वैजयन्त नामक प्रासाद (देवमहल) है । यह सब पूर्वोक्त भूलोक कहा जाता है । इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है, जिसमें ग्रह (बुध, शुक्र आदि जो कि सूर्यके चारों ओर घूमते हैं), नक्षत्र (अश्विनी आदि जिसमे कि चन्द्रमा गति करते हैं), तारक (ग्रहो और नक्षत्रोंसे भिन्न अन्य तारे तथा तारा-मण्डल) भ्रमण करते हैं ।

यह सब ग्रह, नक्षत्र आदि, ध्रुव नामक ज्योति (Pole Star पोल स्टार) के साथ, वायुरूप रज्जुसे बँधे हुए (वायु-मण्डलमे स्थित) वायुके नियत संचारसे लब्ध संचारवाले होकर, ध्रुवके चारों ओर भ्रमण करते हैं।

ध्रुवसंज्ञक-ज्योति-मेढिकाष्ठ (एक काठका स्तम्भ जो कि खलिहानके मध्यमें खड़ा होता है, जिसके चारो ओर बैल घूमते हैं) के सदृश निश्चल है । इसके ऊपर स्वर्गलोक है, जिसको माहेन्द्रलोक कहते हैं । माहेन्द्र-लोकमें त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित-वशवर्ती, परिनिर्मित-वशवर्ती—ये छः देवयोनि-विशेष निवास करते हैं । ये सब देवता संकल्पसिद्ध, अणिमादि ऐश्वर्य-सम्पन्न और कल्पायुषवाले तथा वृन्दारक (पूजनेयोग्य), कामभोगी और औपपादिक देहवाले (बिना माता-पिताके दिव्य शरीरवाले) हैं और उत्तम अनुकूल अप्सराएँ इनकी स्त्रियाँ हैं ।

इस स्वर्गलोकसे आगे महान् नामक स्वर्ग-विशेष है, जिसको महालोक तथा प्राजापत्यलोक कहते हैं । इसमें कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अञ्जनाभ, प्रचिताभ—ये पाँच प्रकारके देवयोनि-विशेष काम करते हैं । ये सब देवविशेष महाभूतवशी (जिनकी इच्छामात्रसे महाभूत कार्यरूपमें परिणत होते हैं) और ध्यानाहार (बिना अन्नादिके सेवन किये ध्यानमात्रसे तृप्त और पुष्ट होनेवाले) तथा सहस्र कल्प आयुवाले हैं । महर्लोकसे आगे जनःलोक है, जिसको प्रथम ब्रह्मलोक कहते हैं । जनःलोकमें ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर—ये चार प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते हैं । ये भूत तथा इन्द्रियोंको स्वाधीनकरणशील हैं । जनःलोकसे आगे तपोलोक है, जिसको द्वितीय ब्रह्मलोक कहते है । तपोलोकमे अभास्वर, महाभास्वर, सत्यमहाभास्वर—ये तीन प्रकारके देवयोनि-विशेष निवास करते है, जो भूत, इन्द्रिय, प्रकृति (अन्तःकरण)—इन तीनोको स्वाधीनकरणशील हैं और पूर्वसे उत्तर-उत्तर दुगुनी-दुगुनी आयुवाले हैं । ये सभी ध्यानाहार ऊर्ध्वरेतस् (जिनका वीर्यपात कभी नहीं होता) हैं । ये ऊर्ध्व—सत्यादि लोकमे अप्रतिहत ज्ञानवाले और अधर, अवीचि आदि लोकमें अनावृत ज्ञान-वाले अर्थात् सब लोकोको यथार्थरूपसे जाननेवाले हैं । तपोलोकसे आगे सत्यलोक है, जिसको तृतीय ब्रह्मलोक कहते हैं । इस मुख्य ब्रह्मलोकमें अच्युत, शुद्ध निवास, सत्याभ, संज्ञासंज्ञी—ये चार प्रकारके देवता-विशेष निवास

करते हैं। ये अकृत-भवनन्यास (किसी एक नियत ग्रहके अभाव होनेसे अपने शरीररूप ग्रहमें ही स्थित) होनेसे स्वप्रतिष्ठित हैं और यथाक्रमसे ऊँची-ऊँची स्थितिवाले हैं। ये प्रधान (अन्तःकरण) को स्वाधीन करणशील और पूरी सर्ग आयुवाले हैं। अच्युत नामक देव-विशेष सवितर्क-ध्यानजन्य सुख भोगनेवाले हैं, शुद्ध निवास सविचार ध्यानसे तृप्त हैं । इस प्रकार ये सभी सम्प्रज्ञात निष्ठ हैं। (समाधिपाद सूत्र १७) ये सब मुक्त नहीं हैं, किंतु त्रिलोकीके मध्यमे ही प्रतिष्ठित हैं। इन पूर्वोक्त सातो लोकोको ही परमार्थसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये । (क्योंकि हिरण्यगर्भके लिङ्गदेहसे ये सब लोक व्याप्त हैं ।)

विदेह और प्रकृतिलय नामक योगी (समाधिपाद सूत्र १९) मोक्षपद (कैवल्यपद) के तुल्य स्थितिमें हैं, इसलिये वे किसी लोकमें निवास करनेवालोंके साथ नहीं उपन्यस्त किये गये।

सूर्यद्वार (सुषुम्णा नाड़ी) में संयम करके योगी इस भुवन-विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करे। किंतु यह नियम नहीं है कि सूर्यद्वारमें संयम करनेसे ही भुवन-ज्ञान होता हो, अन्य स्थानमें संयम करनेसे भी भुवन-ज्ञान हो सकता है; परंतु जबतक भुवनका साक्षात्कार न हो जाय, तबतक दृढचित्तसे संयमका अभ्यास करता रहे और बीच-बीचमें उद्वेगसे उपराम न हो जाय।

[उपर्युक्त व्यासभाष्यमें बहुत-सी बातोंका हमने स्पष्टीकरण कर दिया है। कुछ एक बाते जो पौराणिक विचारोंसे सम्बन्ध रखती हैं, उनको हमने वैसा ही छोड़ दिया है।]

भूलोक अर्थात् पृथिवीलोकका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। उसके ऊपरी भागको जो सात द्वीपों और सात महासागरोमें विभक्त किया गया है, उनका इस समय ठीक-ठीक पता चलना कठिन है; क्योंकि उस प्राचीन समयसे अबतक भूलोकसम्बन्धी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया होगा। योजन चार कोसको कहते हैं। यहाँ कोसका क्या पैमाना है? यह भाष्यकारने नहीं बतलाया है। यह वही हो सकता है जिसके अनुसार भाष्यकारका परिमाण पूरा हो सके। वर्तमान समयके अनुसार सात द्वीप और सात सागर निम्न प्रकार हो सकते हैं। सात द्वीप—१—एशियाका दक्षिण भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके दक्षिणमें जो अफगानिस्तान, भारतवर्ष, बर्मा और स्याम आदि देश हैं। २—एशियाका उत्तरी भाग अर्थात् हिमालय-पर्वतके उत्तरमें तिब्बत, चीन तथा तुर्किस्तान इत्यादि। ३—यूरोप, ४—अफ्रीका, ५—उत्तरी अमेरिका, ६—दक्षिणी अमेरिका, ७—भारतवर्षके दक्षिण-पूर्वमें जो जावा, सुमात्रा और आस्ट्रेलिया आदिका द्वीपसमूह है।

सात महासागर

१—हिंद महासागर, २—प्रशान्त महासागर, ३—अन्ध महासागर, ४—उत्तर हिममहासागर, ५—दक्षिण हिममहासागर, ६—अरबसागर और ७—भूमध्यसागर।

सुमेरु अर्थात् हिमालय-पर्वत उस समय भी ऊँची कोटिके योगियोके तपका स्थान था। स्थूल भूतोंकी स्थूलता और तमस्के तारतम्यके क्रमानुसार पृथिवीके नीचेके भागको सात अधोलोकोंमें नरक-लोकोंके नामसे विभक्त किया गया है। इनके साथ जो जलके भाग हैं, उनको सात पातालोंके नामसे दर्शाया गया है तथा इन तामसी स्थानोमें रहनेवाले मनुष्यसे नीची राजसी और तामसी योनियोंका असुर-राक्षस आदि नामोंसे वर्णन किया गया है।

भुवःलोक अन्तरिक्ष-लोक है, जिसके अन्तर्गत पृथिवीके अतिरिक्त इस सूर्य-मण्डलके ध्रुवपर्यन्त सारे ग्रह, नक्षत्र और तारका आदि तारागण हैं। यह सब भूलोक अर्थात् हमारी पृथिवीके सदृश स्थूल भूतोंवाले हैं। इनमें किसीमें पृथिवी, किसीमें जल, किसीमें अग्नि और किसीमें वायु-तत्त्वकी प्रधानता है।

अन्य पाँच सूक्ष्म और दिव्य लोक हैं, जिनकी सम्मिलित संज्ञा द्यौलोक है। यह सारे भूः-भुवः अर्थात् पृथिवी और अन्तरिक्षलोकके अंदर हैं। इनकी सूक्ष्मता और सात्त्विकताका क्रमानुसार तारतम्य चला गया है अर्थात् भूः और भुवःके अंदर स्वः, स्वःके अंदर महः, महःके अंदर जनः, जनःके अंदर तपः और तपःके अंदर सत्यलोक है।

इनके सूक्ष्मता और सात्त्विकताके तारतम्यसे और बहुत-से अवान्तर भेद भी हो सकते हैं। इनमेंसे स्वः, महः स्वर्गलोक और जनः, तपः और सत्यलोक ब्रह्मलोक कहलाते हैं। इनमे वे योगी स्थूल शरीरको छोड़नेके पश्चात् निवास करते हैं, जो वितर्कानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्था, विचारानुगत भूमि तथा आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी आरम्भिक अवस्थामें संतुष्ट हो गये हैं और जिन्होने विवेक-ख्यातिद्वारा सारे क्लेशोंको दग्धबीज करके असम्प्रज्ञातसमाधिद्वारा स्वरूपावस्थितिके लिये यत्न नहीं किया है। आनन्दानुगत और अस्मितानुगत भूमिकी परिपक्व अवस्थावाले उच्चतर और उच्चतम कोटिके विदेह और प्रकृतिलय योगी सूक्ष्म शरीरो, सूक्ष्म इन्द्रियो और सूक्ष्म विषयोंको अतिक्रमण कर गये हैं। इसलिये वे इन सब सूक्ष्म लोकोंसे परे कैवल्यपद-जैसी स्थितिको प्राप्त किये हुए हैं।

सूर्यके भौतिक स्वरूपमें संयमद्वारा योगीको भूलोक अर्थात् पृथिवी-लोक और भुवःलोक अर्थात् अन्तरिक्षलोकके अन्तर्गत सारे स्थूल लोकोंका सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है और इसी संयममें पृथिवीका आलम्बन करके अथवा केवल पृथिवीके आलम्बनसहित संयमद्वारा पृथिवीके ऊपरके द्वीपों, सागरो, पर्वतों आदि तथा उसके अधोलोकोंका विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

ध्यानकी अधिक सूक्ष्म अवस्थामें इसी उपर्युक्त संयमके सूक्ष्म हो जानेपर अथवा सूर्यके अध्यात्म सूक्ष्म स्वरूपमें संयमद्वारा सूक्ष्म लोकों अर्थात् स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोकका ज्ञान प्राप्त होता है।

वाचस्पति मिश्रने सूर्यद्वारको सुषुम्णा नाड़ी मानकर सुषुम्णा नाड़ीमें संयम करके भुवन-विन्यासके ज्ञानको सम्पादन करना बतलाया है। वास्तवमें कुण्डलिनी जाग्रत् होनेपर सुषुम्णा नाड़ीमें जब सारे स्थूल प्राणादि प्रवेश कर जाते हैं, तभी इस प्रकारके अनुभव होते हैं।

उस समय संयमकी भी आवश्यकता नहीं रहती, किंतु जिधर वृत्ति जाती है अथवा जिसका पहलेसे ही संकल्प कर लिया है, उसीका साक्षात्कार होने लगता है।

सूर्य संयमन यौगिक सिद्धि है, अतः इसकी प्रक्रिया योगि-सद्गुरुसे ही समझनी चाहिये।

'दिशि दिशतु शिवम्'

अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वरः कर्तुमीशो
विश्वं वेश्मेव दीपः प्रतिहततिमिरं यः प्रदेशस्थितोऽपि ॥
दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां
यातः शातक्रतव्यां दिशि दिशतु शिवं सोऽर्चिषामुद्गमो नः ॥

(सूर्यशतकम् १८)

जिस प्रकार एकदेशमें स्थित दीपक गृहको अन्धकार-शून्य करता हुआ उसे प्रकाशमय कर देता है, उसी प्रकार एकदेशमे स्थित होते हुए भी विश्वको अन्धकाररहित एवं आलोकमय करनेमें समर्थ विनाश-व्यसनरहित तथा अपने तेजसे निशाको नष्ट करनेवाली और दिक् तथा कालकी व्यवस्था करनेकी अपेक्षासे इन्द्र-दिशा (पूर्व) मे (प्रतिदिन) उदित होनेके कारण नवीन कही जानेवाली, तीन लोकोंमें पर्यटन करनेवाले सूर्यकी किरणें हम सब लोगोका कल्याण करें। [सूर्यमें संयम करनेवाले योगियोंको भुवनोका ज्ञान इन्हीं कल्याणकारिणी किरणोंके माध्यमसे होता है।]

नाडीचक्र और सूर्य

(लेखक—श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी)

'नाडीचक्र और सूर्य' इस निबन्धमें सर्वप्रथम नाडीचक्र और सूर्यका परिचय देना अत्यन्त अपेक्षित है। तदनन्तर इनके पारस्परिक सम्बन्ध, प्रभाव तथा फल विचारणीय हैं।

मानव-शरीरमें पत्तोंकी अति सूक्ष्म शिराओंकी भाँति नाड़ियोंकी संख्या बहत्तर हजार बतायी गयी है।[1] ये नाडियाँ लिङ्गके ऊपर और नाभिके नीचे स्थित कन्दसे—जिसे मूलाधार कहते हैं—निकलकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं। इनमें बहत्तर नाडियाँ मुख्य हैं।[2] मूलाधारमें स्थित कुण्डलिनीचक्रके ऊपर तथा नीचे दस-दस नाडियाँ और तिरछी दो-दो नाडियाँ हैं। ये सभी नाडियाँ चक्रके समान शरीरमें स्थित होकर शरीर तथा वायुके आधार हैं। इनमें दस नाडियाँ प्रधान हैं तथा अन्य दस नाडियाँ वायु-वहन करनेवाली हैं।[3] प्रधान दस नाडियोंके नाम—इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शङ्खिनी हैं। इनमें प्रथम तीन—इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा सर्वोत्तम नाडियाँ हैं जो प्राणमार्गमें स्थित हैं। मेरुदण्ड या शरीरके वाम भागमें अथवा वाम नासारन्ध्रमें इडा और दाहिनी ओर पिङ्गला और बीचमें सुषुम्णा रहती है। इसके अतिरिक्त बायीं आँखमें गान्धारी, दाहिनीमें हस्तिजिह्वा, दक्षिण कानमें पूषा, बायें कानमें यशस्विनी, मुखमें अलम्बुषा, लिङ्गमें कुहू, गुदामें शङ्खिनी स्थित है। शरीरके दस द्वारोंपर ये दस नाडियाँ हैं।[4]

इन नाडियोंमें इडा नाडीमें चन्द्र, पिङ्गलामें सूर्य और सुषुम्णामें शम्भु या अग्नि स्थित हैं[5] अथवा क्रमसे इन तीनों नाडियोंके चन्द्र, सूर्य और अग्नि या शम्भु देवता हैं।[6] बायीं (इडा) नाडीका परिचायक चन्द्र शक्तिरूपसे तथा दाहिनी पिङ्गला नाडीका प्रवाहक सूर्य शङ्कररूपसे रहते हैं। जो लोग चन्द्र-सूर्य नाडीका सर्वदा अभ्यास करते हैं, उन्हें त्रैकालिक ज्ञान स्वाभाविक होता है। इन नाडियोंके स्वरसे शुभाशुभ, सिद्धि-असिद्धिका ज्ञान किया जाता है। जैसे यात्रामें इडा तथा प्रवेशमें पिङ्गला शुभ है। चन्द्रनाडी श्वेत, सम, शीत, स्त्री तथा सूर्यनाडी असित, विषम, उष्ण पुरुष है। शुभ कर्ममें चन्द्रनाडी तथा रौद्रकर्ममें सूर्यनाडी प्रशस्त है। इनका गति-क्रम यों है—

---

१. द्वासप्ततिसहस्राणि नाडीद्वाराणि पञ्जरे। (छा० ५। १८)

२. ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दोऽस्ति खगाण्डवत्। तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणि द्विसप्ततिः॥
तेषु नाडीसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृता। (यो० चू० उ० १४-१५)
नाभिस्थानगतकन्दोर्ध्वमङ्कुरादिव निर्गताः। द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिताः॥ (शि० स्व० ३२)

३. प्रधाना दशनाड्यस्तु दश वायुप्रवाहकाः। (शि० स्व० ३८)

४. द्रष्टव्य—यो० चू० उ० १६-२१ श्लोक।

५. इडायां स्थितश्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्करः। सुषुम्णा शम्भुरूपेण शम्भुर्हंसः स्वरूपतः॥ (शि० स्व० ५०)

६. इडापिङ्गलासौषुम्णाः प्राणमार्गे च संस्थिताः। सततं प्राणवाहिन्यः सोमसूर्याग्निदेवताः॥
(यो० चू० उ० २१)

प्राणेना दक्षिणा नाडी पिङ्गला नाम सूर्यदैवत्या पितृयोनिः। वामा इडाख्या चन्द्रदैवत्या देवयोनिः। तयोर्मध्ये सुषुम्णा ब्रह्मदैवत्या। (यो० सू० सा० पा० ४९-५० नागेशवृत्तिः)

शुक्लपक्षमें प्रथम तीन दिनतक चन्द्र नाडी चलती है, इसके अनन्तर तीन दिन सूर्य नाडी चलती है। इस क्रमसे शुक्लपक्षमें नाडी-संचालन होता है और कृष्ण-पक्षमें पहले तीन दिन सूर्य-स्वर अर्थात् दाहिनी नाडीका उदय होता है, अनन्तर चन्द्र नाडीका। इस प्रकार प्रत्येक दिनमें भी इन दोनों नाडियोंका प्रवाह होता रहता है।

वास्तवमें नाडी-चक्र तबतक नहीं समझा जा सकता है, जबतक उसको संचालित करनेवाली चित्-शक्तिका स्वरूप न समझ लिया जाय। वह चित्-शक्ति कुण्डलिनी है, जिसे आधारशक्ति कहते हैं। उसके बोधके बिना योगके सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। कहा गया है कि सोयी हुई कुण्डलिनी जब गुरु-कृपासे जग जाती है, तब सारे चक्र खिल जाते हैं और ब्रह्म-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि तथा रुद्र-ग्रन्थि—ये तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं—

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥
(ह० यो० प्र० ३। २)

जब गुरु-कृपासे जागृत कुण्डलिनी ऊपरको और उठती है तो वह शून्य पदवी अर्थात् सुषुम्ना नाडी प्राण-वायुके लिये राजपथ बन जाती है। जैसे राजा राजमार्गसे सुखपूर्वक निकलता है, वैसे प्राण-वायु सुषुम्ना नाडीमें सुखसे चली जाती है। उस समय चित्त निरालम्ब हो जाता है और योगीको मृत्युभय नहीं होता है। सुषुम्ना नाडीकी तन्त्रशास्त्रमें बहुत ही महिमा गायी गयी है। शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमार्ग—ये सब सुषुम्नाके पर्याय-वाची शब्द हैं।

हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि दण्डसे ताडन करनेपर जैसे सर्प अपनी कुटिलता छोड़ देता है, वैसे 'जालन्धर-बन्ध' लगाकर वायुको सुषुम्ना नाडीमें धारण करनेपर कुण्डलिनी भी सीधी हो जाती है। उसी समय इडा और पिङ्गलाका आश्रय करनेवाली मरण-अवस्था प्राप्त हो जाती है अर्थात् कुण्डलिनीके बोध हो जानेपर सुषुम्ना नाडीमें प्राणोंका प्रवेश हो जाता है और इडा एवं पिङ्गला नाडीसे प्राणोंका वियोग हो जाता है। इसीको योगी लोग मरण-अवस्था कहते हैं। कुण्डलिनीके सम्पीडनके लिये महामुद्राका विधान[1] है। इस महामुद्राको आदिनाथ आदि महासिद्धोंने प्रकट किया है। इससे पाँच महाक्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि शोक-मोह नष्ट हो जाते हैं।

इस महामुद्रामें इडा और पिङ्गला अर्थात् सूर्य और चन्द्र नाडीकी प्रमुख भूमिका होती है। शरीरके दक्षिण भागमें पिङ्गला और वामभागमें इडा रहती है। पिङ्गला दाहिनी फेरेसे और इडा बायें फेरेसे रहती है।

इडा वामे च विज्ञेया पिङ्गला दक्षिणे स्मृता।
(शि० स्व० ४९)

शरीरमें बायीं ओर रहनेवाली इडा नाडी अमृतस्वरूप होनेके कारण संसारको पुष्ट करनेवाली होती है और पिङ्गला अर्थात् सूर्य नाडी जो दक्षिण भागमें रहती है, सदा संसारको उत्पन्न करती है—विशेषरूपसे उत्पत्तिका कार्य सूर्य नाडीका है।

हठयोग-प्रदीपिकामें सुषुम्ना नाडीकी तुलना मेरुसे की गयी है। उसमें सोमकलारस प्रवाहित होता है। मेरुके तुल्य सुषुम्ना नाडीके मध्यमें स्थित सोमकलाके रसको तालु-विवरमें रखकर रजोगुण, तमोगुणसे अनभिभूत सत्त्वगुणमें बुद्धिको रखनेवाला जो विद्वान् पुरुष आत्मतत्त्वको कहता है, वह नदियोंका अर्थात् इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना तीनों नाडीस्वरूप गङ्गा, यमुना, सरस्वतीका मुख है। उसमें चन्द्रसे शरीरका सार झड़ता है। गोरक्षनाथजीने कहा है कि 'नाभिदेशमें अग्निरूप सूर्य स्थित है और तालुके मूलमें अमृतरूप चन्द्रमा

१. महामुद्राका विधान हठयोग-प्रदीपिकाके तीसरे उपदेशके १०–१३ श्लोकतक है।

स्थित है। जब चन्द्रमा नीचेकी ओर मुख करके अमृत बरसाता है, तब सूर्य उसको ग्रस लेता है।' इसलिये हठयोग-प्रदीपिकामें कहा गया है कि योगीको ऐसी मुद्रा करनी चाहिये, जिससे अमृत व्यर्थ न जाय। विपरीत-करणी[1] मुद्रामें ऊपर नाभिवाले तथा नीचे तालुवाले योगीके ऊपर सूर्य और नीचे चन्द्रमा रहते हैं—

ऊर्ध्वनाभेरधस्तालोरूर्ध्वं भानुरधः शशी।'
(ह० यो० ३। ७९)

लिङ्ग-शरीरस्थ मेरुदण्डके भीतर ब्रह्मनाडीमें अनेक चक्रोंकी कल्पना की जाती है। कोई ३२ चक्रोंको तथा दूसरे ९ चक्रों 'नवचक्रमयो देहः' (भा० उ०) को अन्य छः चक्रोंको मानते हैं। इन छः चक्रोंका नाम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा है तथा स्थान योनि, लिङ्ग, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य है। इन्हें षट्कमल भी कहते हैं, जिनमें क्रमशः ४, ६, १०, १२, १६ और २ दल होते हैं। ये दल विविध वर्णोंके होते हैं तथा प्रत्येक दलपर मातृकाके एक-एक वर्ण विद्यमान हैं। प्रत्येक चक्रपर चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, पूर्णचन्द्राकार, लिङ्गाकार यन्त्र है, जो पाँच महातत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और महत्तत्त्वके द्योतक हैं। इन चक्रोंके विविध ग्रन्थोंके आधारसे भिन्न-भिन्न कई अधिष्ठान और देवाधिपति हैं। ये चक्र नाडी-पुञ्ज ही हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं है—ऐसा विद्वानोंका मत है। इस दृष्टिसे वायुतत्त्वाधिपति होनेके कारण तथा नाडी-पुञ्जके कारण इन चक्रोंसे भी सूर्यका आन्तरिक और बाह्य सम्बन्ध सुनिश्चित है। ऐसी शास्त्रीय उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं—

पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्॥

याज्ञवल्क्य-संहितामें सूर्य-ज्योतिको ही जीव तथा हृदयाकाशका प्रकाशक माना गया है।[2] सूर्य-ज्योति ही बाह्याभ्यन्तरकी प्रकाशयित्री है।

इसके अतिरिक्त आठ प्रकारके कुम्भक प्राणायामोंमें सर्वप्रथम सूर्यभेदन प्राणायाम है। सूर्यभेदन प्राणायाममें सूर्यनाडीसे अर्थात् पिङ्गलासे बाहर वायुको खींचनेका विधान है। इस प्रकारसे प्रतिदिन पाँच-पाँच संख्यासे प्राणायामोंको बढ़ाते हुए अस्सी दिनतक करनेके बाद अन्य कुम्भकोंका अधिकारी होना है।

प्राणतोषिणीतन्त्र और योगशिखोपनिषद्के अनुसार हठयोगको सूर्य और चन्द्रका अर्थात् प्राण और अपानका ऐक्य कहा गया है। सूर्यनाड़ी प्राण तथा चन्द्रनाड़ी अपान बताया गया है। प्राण-अपानकी एकता—प्राणायाम ही हठयोग है—

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणेन्दुरुच्यते।
सूर्यचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते॥

कुण्डलिनी जब उद्‌बुद्ध होती है तो क्रमसे नाद और प्रकाश होता है। प्रकाशका ही व्यक्त रूप बिन्दु है। नादसे जायमान बिन्दु तीन प्रकारका है—इच्छा, ज्ञान और क्रिया—जिसको योगी लोग पारिभाषिक रूपमें सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते हैं तथा कभी-कभी ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। कुछ लोग शरीरके आधे भागको सूर्य और आधे भागको चन्द्र भी कहते हैं। इन दोनोंको मिलाकर सुषुम्नामें केन्द्रित करना योगीका लक्ष्य मानते हैं।

उपर्युक्त बातोंसे सूर्य और नाड़ीचक्रका सम्बन्ध निश्चित हो गया। अब यह विचारणीय है कि शरीरस्थ नाड़ीचक्रसे आभ्यन्तर सोम-सूर्यका सम्बन्ध है या बाह्य

१. विपरीतकरणीमुद्राका विधान हठयोग-प्रदीपिकाके ३। ७९–८३ श्लोकोंमें वर्णित है।

२. आदित्यान्तर्गतं यच्च ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्। हृदये सर्वभूतानां जीवभूतं स तिष्ठति॥

सोम-सूर्यका। यह विचार इसलिये उपस्थित है कि योगशास्त्रोंमें कहा गया है—'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'—जो पिण्ड (शरीर) में है, वही ब्रह्माण्डमें है। यथार्थतः यह शरीर ही ब्रह्माण्ड है। दूसरे शब्दोंमें शरीरको ब्रह्माण्डकी प्रतिमूर्ति कह सकते हैं। ईश्वरने विश्वकी रचना करके मनुष्य-शरीरको ब्रह्माण्डकी प्रतिमूर्ति बनाकर उसमें अपने ज्ञानका समावेश किया, ताकि मनुष्य अपनेमें ही विश्वस्थित पदार्थके ज्ञानको सहजमे जान सके और भोग सके—उसको एतदर्थ अन्यत्र जाना न पड़े।

इस शरीरमें चतुर्दश भुवन, सप्तद्वीप, सप्तसागर, अष्ट-पर्वत, सर्वतीर्थ, सब देवता, सूर्यादि ग्रह और सब नदियाँ आदि पदार्थ भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विद्यमान हैं। इसका विस्तृत विवरण शिवसंहिता द्वितीय पटल, शाक्तानन्द-तरङ्गिणी, निर्वाणतन्त्र, तत्त्वसार, प्राणतोषिणीतन्त्र आदि ग्रन्थोंमें दिया गया है। उद्धरणके रूपमें कुछ वाक्य नीचे लिखे जा रहे हैं—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः॥
सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथिवी तथैव च॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
(शि० सं० २। १-४)

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं शृण्विदानीं प्रयत्नतः।
पातालभूधरा लोकास्तथान्ये द्वीपसागराः॥
आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः।
पिण्डमध्ये तु तान् ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥
(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

इसके अतिरिक्त शरीरान्तर्गत सुषुम्ना विवरस्थ पञ्च-व्योमोंमें पाँचवाँ सूर्यव्योम भी है, जिसकी चर्चा मण्डलब्राह्मणोपनिषद् आदि ग्रन्थोंमें सफल और सविधि की गयी है। अतः यह सिद्ध है कि शरीरस्थ सूर्य है और उसका नाडी-चक्रोंसे निश्चित सम्बन्ध है।

बाह्य सूर्य प्रत्यक्ष एव विदित हैं, उनका परिचय देना अनावश्यक है। वे अपने रश्मिरूपी करोंसे पूरे ब्रह्माण्डसे सम्बन्धित हैं। उनसे असम्बद्ध चराचर जगत्का कोई भी पदार्थ नहीं है। शरीर और शरीरस्थ नाडियोंसे उनका आधिदैविक सम्बन्ध है। जिस प्रकार सांसारिक सम्पूर्ण पदार्थोंके अधिष्ठान-देव भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीरावयवों तथा शारीरिक सकल पदार्थोंके भी भिन्न-भिन्न अधिष्ठान-देव हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर बाह्य सूर्यसे भी शरीरका सम्बन्ध निश्चित है तथा उसके अनुसार उपास्य-उपासक-भाव भी सिद्ध है। पार्थिव वनस्पतियों, औषधों, अन्नों और जीवोंके जीवनसे सूर्य और चन्द्रका विशेष सम्बन्ध है। इन्हींके द्वारा उनकी प्राणन, विकसन, वर्धन और विपरिणमन आदि क्रियाएँ होती हैं। वास्तवमें सूर्य स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं।

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (ऋ० १। ११५। १)

सूर्यतापिनी-उपनिषद्में सूर्यको सर्वदेवमय कहा गया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥
(१। ६)

अधिष्ठान-सम्बन्ध तथा उपास्य-उपासक-भावके द्वारा शरीरका सूर्यके साथ सर्वात्मना सम्बन्ध होनेपर भी नाडीचक्रसे उनका क्या सम्बन्ध है—इस परिप्रेक्ष्यमें विचारणीय यह है कि वैदिककालसे चली आ रही उपासना-पद्धतिमें विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश—इन पञ्चदेवोंकी उपासना प्रधान है; क्योंकि ये पञ्च-देव पञ्चतत्त्वोंके अधिपति हैं। आकाशके विष्णु, तेजकी शक्ति, वायुके सूर्य, पृथ्वीके शम्भु और जलके गणेश अधिपति हैं।

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी ।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥

वायु-तत्त्वके अधिपति सूर्य बाह्य वायु तथा शरीरान्तर-सञ्चारी प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि वायुओंके अधिपति हैं। इन प्राण आदि वायुओंका संचरण तथा बाह्य वायुका ग्रहण एवं दूषित वायुका त्याग शरीरमें नाडियोंके द्वारा ही होता है। अतः नाडियोंसे सूर्यका सम्बन्ध निर्विवाद सिद्ध है। सूर्य वायुद्वारा सबका प्राणन करते हैं। अतः वे जगत्के आत्मा माने गये हैं और पञ्चदेवोंमें एक विशिष्ट देव भी कहे गये हैं। पूर्वोक्त विचारोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि नाडीचक्रसे सूर्यका आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीनों प्रकारका सम्बन्ध है, इसलिये सूर्यकी उपासना आवश्यक है। विशेषतः नेत्ररोगी, चर्मरोगी, वातरोगी तथा शत्रुपीडितके लिये परम लाभकारी है।

यौगिक क्रियाओंके लिये तो सूर्य-सम्बन्ध-ज्ञान अत्यन्त अपेक्षित है; क्योंकि जबतक चन्द्र-सूर्य और शम्भु-नाडियोंकी गति-शक्तिका नियमन नहीं होगा, तबतक मुक्तिरूपा कुण्डलिनीका प्रबोधन करना असम्भव है। उक्त तीनों नाडियों तथा कुण्डलिनीका वेत्ता ही योगवित् एवं योगशास्त्रवित् है। योगशास्त्रियोंकी दृष्टिमें इस कुण्डलिनीके प्रबोधके पूर्व मानव एवं पशुमें कोई तात्त्विक भेद नहीं रहता।

'यावत् सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा।'
(घेरण्डसंहिता ३। ५०)

नाडीचक्रसे सूर्यका सम्बन्ध होनेके कारण बाह्योपासनाकी भाँति आन्तरोपासना परमावश्यक है।

योगमें शरीरस्थ शक्ति-केन्द्र सूर्यचक्रका महत्त्व

(लेखक—पं० श्रीभृगुनन्दनजी मिश्र)

इस विश्व-ब्रह्माण्डमें व्यापक अनन्त शक्तिका स्रोत कहाँ है? यजुर्वेदके एक मन्त्र **'आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** तथा छान्दोग्य उपनिषद्के मन्त्र ३। १९। ३ **'आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानम् सदेवेदमग्र आसीत्'** के अनुसार भूलोकसे द्युलोकतक तीनों लोकोंको अपनी प्रकाश-पुञ्ज-किरणोंद्वारा जीवन देनेवाले सूर्य ही सबके जीवनदाता आत्मा हैं। समस्त जीवधारियों, वृक्षों एवं वनस्पतियोंके जीवन-विकासके लिये सूर्यकी महत्ता सर्वविदित है। सूर्य केवल प्रकाश-पुञ्ज ही न होकर विश्वमें ऊर्जा तथा शक्तिके भी स्रोत हैं। सूर्य समष्टि जगत्के प्राण सिद्ध होकर समस्त जीवधारियोंके भीतर जीवनको धारण एवं संचालन करनेवाले मुख्य तत्त्व 'प्राण' के रूपमें सदैव कर्मशील बने रहते हैं। योगमें हमारा नाभिकेन्द्र, मणिपूरकचक्र अथवा सूर्यचक्र ही इस प्राण-तत्त्वके उद्गमका केन्द्र माना गया है।

मानव-शरीरमें आध्यात्मिक शक्तिके जागरण एवं संचालनके आठ केन्द्र हैं, जिन्हें योगभाषामें 'चक्र' नामसे सम्बोधित किया गया है। योग-साधनामें आठों चक्रोंके ध्यान तथा जागरणका अलग-अलग महत्त्व वर्णित है—१—मूलाधार, २—स्वाधिष्ठान; ३—मणिपूरक (सूर्यचक्र), ४—अनाहत-चक्र, ५—विशुद्धिचक्र, ६—आज्ञाचक्र, ७—बिन्दुचक्र एवं ८—सहस्रार। इनमेंसे मणिपूरक (सूर्यचक्र), अनाहत-चक्र, आज्ञाचक्र तथा सहस्रार—इन चार चक्रोंका ध्यान साधकमें आध्यात्मिक शक्तिके जागरणके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रस्तुत लेखमें केवल मणिपूरक अथवा सूर्यचक्र, जो हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तिके जागरणका प्रमुख केन्द्र है, उसकी साधनापर ही विचार किया जायगा।

मानवीय शरीर-रचनामें श्वसन-क्रियाकी प्रणाली अत्यन्त वैज्ञानिक ढंगसे प्रकृतिद्वारा संचालित होती है, जिसपर केवल योग-साधना करनेवाले मनीषियोंने ही ध्यान दिया है और उसका उन्होंने गहरा अध्ययन भी किया है। सर्व-

प्रथम मानवीय प्राण नाभि-केन्द्र (सूर्य-चक्र) से स्पन्दित हो हृदेशमें जाकर टकराता है। हृदय तथा फेफड़ोंका रक्त-शोधन एवं सारे शरीरमे सचार करनेमें सहायता करता है। यह तो प्राणकी सामान्य स्वाभाविक क्रियामात्र है; किंतु जब उसके साथ मानसिक संकल्प एवं अन्तश्चेतनाको संयुक्त कर दिया जाता है, तो वह चैतन्य एवं अधिक सक्षम होकर विशेष शक्तिसंपन्न हो जाता है। नित्यप्रति शनैः-शनैः अभ्यास-पूर्वक प्राण एवं मनको अधिक शक्तिशाली बनाया जाता है। इन्द्रियोंके स्वभावो (विषयों) का अनुगामी मन तो बहिर्मुखी होकर प्राणशक्तिका ह्रास ही करता है और समस्त शारीरिक एवं बौद्धिक दुर्बलताएँ उत्पन्न करता है। साथ ही दुर्लभ मानव-जीवनको पतनके गर्तमें डाल देता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक साधना-द्वारा जब मनका सम्बन्ध शब्द-स्पर्शादि विषयोसे मोड़कर उसको अन्तर्मुखी कर दिया जाता है, तब वही मन प्राण-शक्ति-सम्पन्न बनकर बड़े-बड़े अलौकिक कार्य करनेमें समर्थ हो जाता है। जिस प्रकार सामान्यरूपसे प्रवहमान वायुमें अधिक शक्ति नहीं होती है; किंतु जब उसको किसी गुब्बारेमें बन्द करके छोड़ दिया जाता है, तो वह ऊर्ध्वगामी होकर अधिक शक्तिसम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार मनको शुभ संकल्पयुक्त चेतनासे भरकर जब प्राणके साथ संयुक्त कर दिया जाता है, तब उसका स्वरूप आध्यात्मिक शक्तिमें परिवर्तित हो जाता है। इसका प्रभाव साधकके आन्तरिक तथा व्यावहारिक जीवनमें स्पष्ट देखनेमें आता है।

हमारा नाभिकेन्द्र (सूर्यचक्र) प्राणका उद्गम-स्थान ही नहीं, अपितु अचेतन मनके संस्कारों तथा चेतनाका संप्रेषण केन्द्र भी है; किंतु साधारण मनुष्योंका यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र प्रायः सुषुप्तावस्थामें पड़ा रहता है। अतः इसकी शक्तिका न तो उन्हें कुछ भान ही होता है और न वे इससे कुछ लाभ ही उठा पाते हैं। प्रत्येक चक्र किसी तत्त्वविशेषसे सम्बन्धित एवं प्रभावित रहता है और उसको सक्रिय करनेके लिये किसी विशेष रंगका ध्यान करना होता है; जैसे मणिपूरक (सूर्य-चक्र) अग्नि-तत्त्व-प्रधान है और उसको जाग्रत् करनेके लिये चमकीले पीतवर्ण कमलका ध्यान किया जाता है। वास्तवमें लाल, पीले, नीले, हरे, बैंगनी एवं श्वेतादि रंगोका सूर्यज्योतिकी सप्त किरणोंसे सम्बन्ध है और चक्रोंमें उनके मानसिक ध्यानमात्रसे सम्बन्धित तत्त्वमे विशेष आन्दोलन होकर हमारे ज्ञान-तन्तुओं एवं मस्तिष्कको प्रभावित करता हुआ शरीरस्थ व्यष्टि-प्राण एवं चेतनाको समष्टि-प्राण तथा चेतनासे जोड़ देता है। जिस प्रकार किसी विद्युत्-बैट्रीकी शक्ति-(पावर-)के समाप्त हो जानेपर उसको जनरेटरसे चार्ज कर शक्तिसम्पन्न कर लिया जाता है; अथवा किसी छोटे स्टोरमे संगृहीत भंडार व्यय (खर्च) हो जानेपर, समीपस्थ किसी बड़े स्टोरसे उसकी पूर्ति कर ली जाती है, उसी प्रकार विश्वमें अनन्त शक्तियोंके भंडार, समष्टि प्राणसे व्यष्टि प्राणके केन्द्र मणिपूरक (सूर्य-चक्र) में वाञ्छित शक्तिको आकर्षित करके संचित किया जाना तथा आवश्यकतानुसार उसका उपयोग भी होना संभव है।

भारतीय योग-साधनामें कुछ विशेष ध्वनियुक्त मन्त्रोंके एकाग्रतापूर्वक उच्चारण या जप करनेसे भी चक्रोंमें शक्तिको जागृत करनेका बहुत प्राचीन विधान है। किंतु आधुनिक युगके साधकोंका मन्त्रोंके उच्चारण एवं उनके अर्थकी ओर ध्यान न रहनेसे प्रायः उन्हें बहुत कम सफलता प्राप्त हो पाती है। योग-साधनामें सफलताके लिये विधिपूर्वक श्रद्धा एवं विश्वासके साथ नित्य-निरन्तर अभ्यास करना आवश्यक माना गया है। ऊपरकी पंक्तियोंमें चक्रोंमें शक्ति जागृत करनेके सामान्य नियमोंका वर्णन किया गया है। प्रस्तुत लेखमें केवल मणिपूरक (सूर्यचक्र)को जागृत करनेके सम्बन्धमें प्रकाश डाला जा रहा है। सुयोग्य साधकवृन्द इसको ध्यान-पूर्वक दो-चार बार पढ़कर इसके आशयको समझनेका प्रयास करनेका कष्ट करेंगे।

प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व एवं सायंकाल सूर्यास्तसे पूर्व सूर्यचक्रको जागृत करनेकी साधना करनेका विधान

है। अस्तु, किसी पवित्र एवं एकान्त स्थानमें अथवा अपने दैनिक साधना-कक्षमें पद्मासन या सिद्धासनसे बिल्कुल सीधे बैठकर १०-२० बार दीर्घ श्वासोच्छ्वास करें या नाड़ी-शोधन-प्राणायाम तीन मिनटतक करे, जिससे प्राणका सुषुम्णा नाड़ीमें संचार होने लगे। तत्पश्चात् मेरुदण्ड (रीढ़की हड्डी) को बिल्कुल सीधा रखते हुए प्रणव (ॐकार) अथवा 'सोऽहम्' मन्त्रका श्वासके साथ पाँच मिनटतक मौन जप करे। तत्पश्चात् अपने नाभि-केन्द्रके पृष्ठभागमें मेरुदण्डस्थित सूर्यचक्रमें पीले चमकीले रंगवाले कमलका मानसिक ध्यान करें। इसके साथ 'जागृत रहो, जागृत रहो, सदैव जागृत रहो' शब्दोंद्वारा अपने सूर्यचक्रको आटोसजेशन देते हुए अपनी चेतनाको सूर्यचक्रमें केन्द्रित करे। तत्पश्चात् निम्नलिखित भावनाको मनमें दुहराते हुए अपने श्वासको बहुत धीरे-धीरे हृदयमें तथा फेफड़ोंमें ले जाते हुए पेटमें भर दें—

'ॐ मैं आरोग्यता, सुख, शान्ति, प्राणशक्ति, स्फूर्ति, सफलता एवं सिद्धिके परमाणुओंको समष्टि प्रकृतिके भण्डारसे अपने भीतर आकर्षित कर रहा हूँ तथा सूर्यचक्रमें उनका संचय एवं संग्रह हो रहा है।' दस-पाँच सेकंडके लिये श्वासको सूर्यचक्रमें ही ठहरा दे। तत्पश्चात् 'मेरा प्राण ऊर्ध्वगामी होकर शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें (व्याप्त हो गया है और उसका) प्रकाश पहुँच रहा है।' इस ऑटोसजेशन (भावना) के साथ श्वासको बिल्कुल धीरे-धीरे बाहर छोड़ दे और सूर्यचक्रसे प्राणका स्पन्दन मेरुदण्डमें ऊपरकी ओर गति करता हुआ अनुभव करें। एक-दो मिनटके विश्रामके पश्चात् इसी प्रकारकी क्रिया पुनः करें। इस क्रियाको पाँच बारसे दस बारतक करे। श्वास अन्दर भरने तथा छोड़नेका क्रम इतने धीरे-धीरे हो कि उसकी ध्वनि न हो। सुखपूर्वक विश्रान्तिके साथ उपर्युक्त क्रियाको बार-बार दुहरावें। साथ ही आत्मनिर्देश (आटो सजेशन) पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वासके साथ दुहराना आवश्यक है। एक मासतक नियमित साधना करनेके पश्चात् आपके शरीर, मन एव मस्तिष्कमें अद्भुत परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होगा। आप अनुभव करेंगे कि आपकी भावनाओंके अनुसार आपके मन एवं बुद्धिका विकास हो रहा है। उपर्युक्त साधना ध्यानयोगके द्वारकी प्रथम सीढ़ी है। इस साधनाद्वारा सूर्यचक्रके जागरणके साथ-साथ आपकी कुण्डलिनी शक्ति भी शनैः-शनैः जागृत होने लगेगी।

किसी भी साधनमें मनकी एकाग्रता, सफलताके लिये आवश्यक है। साधनाके लिये निर्धारित समयतक मनमें अन्य कोई विचार नहीं आना चाहिये। योग-साधनाके जिज्ञासुओंके लिये, ध्यान-योगके अभ्यासियोंके लिये सूर्य-चक्र जागरणके प्रथम सोपानपर पैर धरनेके पश्चात् प्रभु-कृपा एवं सद्गुरुके मार्ग-दर्शनसे आगेका मार्ग सुलभ हो जाता है। इसकी दीर्घकालीन साधनाके द्वारा आप अपने भीतर वाञ्छित गुणों एवं शक्तियोंका विकास सहजमें ही कर सकेंगे। दृढ संकल्पपूर्वक चेतनाका प्राणके साथ संयोग हो जानेपर साधकके मन एवं मस्तिष्कमें चुम्बकीय विद्युत्-तरंगोंका निर्बाध प्रवाह जारी हो जाता है, जो साधकके आस-पास एवं उससे सम्बन्धित समाजमें उच्चतम आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है। इस प्रकारके आकर्षक वातावरणका प्रभाव एवं उसकी अनुभूति हम उच्चकोटिके साधक, सन्त, महात्माओंके सान्निध्यमें सहजमें ही कर सकते हैं। उपर्युक्त साधनासे सूर्यचक्र (मणिपूरक) एवं अनाहत-चक्रमें एक सुनियोजित सीधा सम्बन्ध स्थापित होकर साधककी सर्वतोमुखी उन्नतिमें जो स्वैच्छिक सहयोग मिलता है, वह शीघ्र ही अपने लक्ष्यतक पहुँचानेका मार्ग प्रशस्त कर देता है। अन्तमें हम कठोपनिषद्के उस मन्त्रका स्मरण करते हुए लेखका समापन करते हैं, जिसमें हमें जाग्रत् होकर उत्तमना महापुरुषोंसे प्रेरणा प्राप्त करनेका निर्देश दिया गया है—

उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निबोधत !!! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!!!

मार्कण्डेयपुराणका सूर्य-संदर्भ

[मार्कण्डेयपुराणके इस संदर्भमें सूर्यतत्त्वका विवेचन एवं वेदोंका प्रादुर्भाव और ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति तथा सृष्टि-रचना-क्रमका वर्णन तो है ही, साथ ही अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यदेवके अवतार धारण करनेका वर्णन तथा सूर्य-महिमाके प्रसंगमें राज्यवर्द्धनकी कथा भी पौराणिक रोचकताके साथ उपनिबद्ध है।]

सूर्यका तत्त्व, वेदोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सृष्टि-रचनाका आरम्भ

क्रौष्टुकि बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया और मैंने क्रमशः उसे भलीभाँति सुना। अब राजाओंका सम्पूर्ण वंश, जिसके आदि ब्रह्माजी हैं, मै सुनना चाहता हूँ, आप उसका यथावत् वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स! प्रजापति ब्रह्माजीको आदि बनाकर जिसकी प्रवृत्ति हुई है तथा जो सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण है, उस राजवंशका तथा उसमें प्रकट हुए राजाओंके चरित्रोंका वर्णन सुनो—जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ तथा अन्य सैकड़ों राजा, जिन्होंने पृथ्वीका पालन किया था, उत्पन्न हुए थे; वे सभी धर्मज्ञ, यज्ञकर्ता, शूरवीर तथा परम तत्त्वके ज्ञाता थे। ऐसे वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है। पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माने नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा लेकर दाहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न किया और बायें अँगूठेसे उनकी पत्नीको प्रकट किया। दक्षके अदिति नामकी एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जिसके गर्भसे कश्यपने भगवान् सूर्यको जन्म दिया।

क्रौष्टुकिने पूछा—भगवन्! मैं भगवान् सूर्यके यथार्थ स्वरूपका वर्णन सुनना चाहता हूँ। वे किस प्रकार कश्यपजीके पुत्र हुए? कश्यप और अदितिने कैसे उनकी आराधना की? उनके यहाँ अवतीर्ण हुए भगवान् सूर्यका कैसा प्रभाव है? ये सब बातें यथार्थरूपसे बताइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! पहले यह सम्पूर्ण लोक प्रभा और प्रकाशसे रहित था। चारों ओर घोर अन्धकार घेरा डाले हुए था। उस समय परम कारण-स्वरूप एक अविनाशी एवं बृहत् अण्ड प्रकट हुआ। उसके भीतर सबके प्रपितामह, जगत्के स्वामी, लोक-स्रष्टा कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे। उन्होंने उस अण्डका भेदन किया। महामुने! उन ब्रह्माजीके मुखसे 'ॐ' यह महान् शब्द प्रकट हुआ। उससे पहले भूः, फिर भुवः, तदनन्तर स्वः—ये तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यका स्वरूप हैं। 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्म रूप प्रकट हुआ। उससे 'महः' यह स्थूल रूप हुआ। फिर उससे 'जनः' यह स्थूलतर रूप उत्पन्न हुआ। उससे 'तपः' और तपसे 'सत्यम्' प्रकट हुआ। इस प्रकार ये सूर्यके सात स्वरूप स्थित हैं, जो कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित रहते हैं। ब्रह्मन्! मैंने 'ॐ' यह रूप बताया है, वह सृष्टिका आदि-अन्त, अत्यन्त सूक्ष्म एवं निराकार है। वही परब्रह्म है तथा वही ब्रह्मका स्वरूप है।

उक्त अण्डका भेदन होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रथम मुखसे ऋचाएँ प्रकट हुईं। उनका वर्ण जपा-कुसुमके समान था। वे सब तेजोमयी, एक दूसरीसे पृथक् तथा रजोमय रूप धारण करनेवाली थीं। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके दक्षिण मुखसे यजुर्वेदके मन्त्र अबाधरूपसे प्रकट हुए। जैसा सुवर्णका रंग होता है, वैसा ही उनका भी था। वे भी एक दूसरेसे पृथक्-पृथक् थे। फिर पारमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे सामवेदके

छन्द प्रकट हुए। सम्पूर्ण अथर्ववेद, जिसका रंग भ्रमर और कज्जलराशिके समान काला है तथा जिसमें अभिचार एवं शान्तिकर्मके प्रयोग हैं, ब्रह्माजीके उत्तरमुखसे प्रकट हुआ। उसमें सुखमय सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी प्रधानता है। वह घोर और सौम्यरूप है। ऋग्वेदमें रजोगुणकी, यजुर्वेदमें सत्त्वगुणकी, सामवेदमें तमोगुणकी तथा अथर्ववेदमें तमोगुण एवं सत्त्वगुणकी प्रधानता है। ये चारों वेद अनुपम तेजसे देदीप्यमान होकर पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्थित हुए। तत्पश्चात् वह प्रथम तेज, जो 'ॐ'के नामसे पुकारा जाता है, अपने स्वभावसे प्रकट हुए ऋग्वेदमय तेजको व्याप्त करके स्थित हुआ। महामुने! इसी प्रकार उस प्रणवरूप तेजने यजुर्वेद एवं सामवेदमय तेजको भी आवृत किया। इस प्रकार उस अधिष्ठान-स्वरूप परम तेज ॐकारमें चारों वेदमय तेज एकत्वको प्राप्त हुए। ब्रह्मन्! तदनन्तर वह पुञ्जीभूत उत्तम वैदिक तेज परम तेज प्रणवके साथ मिलकर जब एकत्वको प्राप्त होता है तब सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण उसका नाम आदित्य होता है। महाभाग! वह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्णकालमें आदित्यकी अङ्गभूत वेदत्रयी ही, जिसे क्रमशः ऋक्, यजु और साम कहते हैं, तपती है। पूर्वाह्णमें ऋग्वेद, मध्याह्नमें यजुर्वेद तथा अपराह्णमें सामवेद तपता है। इसलिये ऋग्वेदोक्त शान्तिकर्म पूर्वाह्णमें, यजुर्वेदोक्त पौष्टिककर्म मध्याह्नमें तथा सामवेदोक्त आभिचारिक कर्म अपराह्ण-कालमें निश्चित किये गये हैं। आभिचारिक कर्म मध्याह्न और अपराह्ण—दोनों कालोंमें किये जा सकते हैं; किंतु पितरोंके श्राद्ध आदि कार्य अपराह्णकालमें ही सामवेदके मन्त्रोंसे करने चाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋग्वेदमय, पालनकालमें विष्णु यजुर्वेदमय तथा संहार-कालमें रुद्र सामवेदमय कहे गये हैं। अतएव सामवेदकी ध्वनि अपवित्र मानी गयी है। इस प्रकार भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेदविद्यास्वरूप तथा परम पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही रजोगुण और सत्त्वगुण आदिका आश्रय लेकर क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारके हेतु बनते हैं और इन कर्मोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम धारण करते हैं। वे देवताओंद्वारा सदा स्तवन करने योग्य एवं वेदस्वरूप-हैं। उनका कोई पृथक् रूप नहीं है। वे सबके आदि हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उन्हींके स्वरूप हैं। विश्वकी आधारभूता ज्योति वे ही हैं। उनके धर्म अथवा तत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे वेदान्तगम्य ब्रह्म एवं परसे भी पर (परमात्मा) हैं।

तदनन्तर आदित्यका आविर्भाव हो जानेपर आदित्यरूप भगवान् सूर्यके तेजसे नीचे तथा ऊपरके सभी लोक संतप्त होने लगे। यह देख सृष्टिकी इच्छा करनेवाले कमलयोनि ब्रह्माजीने सोचा—सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत भगवान् सूर्यके सब ओर फैले हुए तेजसे मेरी रची हुई सृष्टि भी नाशको प्राप्त हो जायगी। जल ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, वह जल सूर्यके तेजसे सूखा जा रहा है। जलके बिना इस विश्वकी सृष्टि हो ही नहीं सकती—ऐसा विचारकर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर भगवान् सूर्यकी स्तुति आरम्भ की।

ब्रह्माजी बोले—यह सब कुछ जिनका स्वरूप है, जो सर्वमय हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका शरीर है, जो परम ज्योतिःस्वरूप हैं तथा योगीजन जिनका ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ऋग्वेदमय हैं, यजुर्वेदका अधिष्ठान हैं, सामवेदकी योनि हैं, जिनकी शक्तिका चिन्तन नहीं हो सकता, जो स्थूलरूपमें तीन वेदमय हैं और सूक्ष्मरूपमें प्रणवकी अर्धमात्रा हैं तथा जो गुणोंसे परे एवं परब्रह्म स्वरूप हैं, उन भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप

सबके कारण, परमज्ञेय, आदिपुरुष, परमज्योति, ज्ञानातीतस्वरूप, देवतारूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। सबके आदि एवं प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी प्रेरणासे मै पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा प्रणव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। इसी प्रकार पालन और सहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी प्रेरणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्! आप ही अग्निस्वरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मै पृथ्वी तथा जगत्की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एवं आकाशस्वरूप हैं तथा आप ही इस पाञ्चभौतिक जगत्का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव! परमात्म-तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णुस्वरूप आपका ही यज्ञोद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवस्वरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मै सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ और आपका यह तेजःपुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है। अतः आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर स्वल्प तेजको ही धारण किया। तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्पान्तरोंके अनुसार जगत्की सृष्टि आरम्भ की। महामुने! ब्रह्माजीने पहलेकी ही भांति देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-लताओं तथा नरक आदि-की भी सृष्टि की।

अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यका अवतार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस जगत्की सृष्टि करके ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाँति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विख्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह पत्नियाँ हुईं। वे सब-की-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एवं भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण*—ये दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्रूने नागोंको और मुनिने गन्धर्वोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तथा अरिष्टासे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने ऐरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे श्येना आदि कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उन्हींके पुत्र श्येनवाज, भास और शुक आदि पक्षी हुए। कश्यप मुनिकी अदितिके गर्भसे जो संतानें हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा संसार व्याप्त है। कश्यपके पुत्रोमे देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमे श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया, परंतु उनके सौतेले भाई दैत्यो, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हे कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता पराजित हुए और बलवान् दैत्यों तथा दानवोंको विजय प्राप्त हुई। अपने पुत्रोंको दैत्यों और दानवोंके द्वारा पराजित एवं त्रिभुवनके राज्याधिकारसे वञ्चित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया देख माता अदिति शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गयीं। उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् यत्न आरम्भ किया। वे नियमित आहार करती हुई कठोर नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्यका स्तवन करने लगीं।

* ये ही अरुण भगवान् श्रीसूर्यके रथके सारथि हैं जो ऊरु-विहीन हैं।

अदिति बोलीं—भगवन् ! आप अत्यन्त सूक्ष्म सुनहरी आभासे युक्त दिव्य शरीर धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप तेजःस्वरूप, तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार एवं सनातन पुरुष हैं, आपको प्रणाम है। गोपते ! आप जगत्का उपकार करनेके लिये जिस समय अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल ग्रहण करते हैं, उस समय आपका जो तीव्र रूप प्रकट होता है, उसे मैं नमस्कार करती हूँ। आठ महीनोंतक सोममय रसको ग्रहण करनेके लिये आप जो अत्यन्त तीव्ररूप धारण करते हैं, उसे मै प्रणाम करती हूँ। भास्कर ! उसी सम्पूर्ण रसको बरसानेके लिये जब आप उसे छोड़नेको उद्यत होते हैं, तब आपका जो तृप्तिकारक मेघरूप प्रकट होता है, उसको मेरा नमस्कार है। इस प्रकार जलकी वर्षासे उत्पन्न हुए सब प्रकारके अन्नोंको पकानेके लिये आप जो भास्कररूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। तरणे ! जड़हन धानकी वृद्धिके लिये जो आप ठण्ढ गिराने आदिके लिये अत्यन्त शीतल रूप धारण करते हैं, उसको मेरा नमस्कार है। सूर्यदेव ! वसन्त ऋतुमें आपका जो सौम्य रूप प्रकट होता है, जो सम-शीतोष्ण होता है, जिसमें न अधिक गर्मी होती है न अधिक सर्दी, उसे मेरा बारम्बार नमस्कार है। जो सम्पूर्ण देवताओं तथा पितरोंको तृप्त करनेवाला और अनाजको पकानेवाला है, आपके उस रूपको नमस्कार है। जो रूप लताओं और वृक्षोंका एकमात्र जीवनदाता तथा अमृतमय है, जिसे देवता और पितर पान करते हैं, आपके उस सोम रूपको नमस्कार है। आपका यह विश्वमय स्वरूप ताप एवं तृप्ति प्रदान करनेवाले अग्नि और सोमके द्वारा व्याप्त है, उसको नमस्कार है। विभावसो ! आपका जो रूप ऋक्, यजु और साममय तेजोंकी एकतासे इस विश्वको तपाता है तथा जो वेदत्रयी स्वरूप है, उसको मेरा नमस्कार है; और, जो उससे भी उत्कृष्ट रूप है, जिसे 'ॐ' कहकर पुकारा जाता है, जो अस्थूल, अनन्त और निर्मल है, उस सदात्माको नमस्कार है।

इस प्रकार देवी अदिति नियमपूर्वक रहकर दिन-रात सूर्यदेवकी स्तुति करने लगीं। उनकी आराधनाकी इच्छासे वे प्रतिदिन निराहार ही रहती थीं। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको आकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अदितिने देखा, आकाशसे पृथ्वीतक तेजका एक महान् पुञ्ज स्थित है। उद्दीप्त ज्वालाओंके कारण उसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। उन्हें देखकर देवी अदितिको बड़ा भय हुआ। वे बोलीं—गोपते ! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं पहले आकाशमें आपको जिस प्रकार देखती थी, वैसे आज नहीं देख पाती हूँ। इस समय यहाँ भूतलपर मुझे केवल तेजका समुदाय ही दिखायी दे रहा है। दिवाकर ! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे आपके रूपका दर्शन कर सकूँ। भक्तवत्सल प्रभो ! मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आप ही ब्रह्मा होकर इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, आप ही पालन करनेके लिये उद्यत होकर इसकी रक्षा करते हैं तथा अन्तमें यह सब कुछ आपमें ही लीन होता है। सम्पूर्ण लोकोंमें आपके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, पर्वत और समुद्र हैं। आपका तेज सबकी आत्मा है। आपकी क्या स्तुति की जाय। यज्ञेश्वर ! प्रतिदिन अपने कर्ममें लगे हुए ब्राह्मण भाँति-भाँतिके पदोंसे आपकी स्तुति करते हुए यजन करते हैं। जिन्होंने अपने चित्तको वशमें कर लिया है, वे योगनिष्ठ पुरुष योगमार्गसे आपका ही ध्यान करते हुए परमपदको प्राप्त होते हैं। आप विश्वको ताप देते, उसे पकाते, उसकी रक्षा करते और उसे भस्म कर डालते हैं; फिर आप ही जलगर्भित शीतल किरणोंद्वारा इस विश्वको प्रकट करते और आनन्द देते हैं। कमलयोनि ब्रह्माके

रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं। अच्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्ररूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करते हैं।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए, जिससे वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे। देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ीं। तब भगवान् सूर्यने कहा—'देवि! तुम्हारी जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे मुझसे माँग लो।' तब देवी अदिति घुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयीं और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोलीं—'देव! आप प्रसन्न होइये। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं। गोपते! उन्हें प्राप्त करानेके लिये आप मुझपर कृपा करें। आप अपने अंशसे देवताओंके बन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें। प्रभो! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुनः यज्ञभागके भोक्ता तथा त्रिभुवनके स्वामी हो जायँ।'

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—'देवि! मैं अपने सहस्र अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।' इतना कहकर भगवान् सूर्य तिरोहित हो गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्ना नामवाली किरण, जो सहस्र किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई। देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं। यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—'तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो?' यह सुनकर उन्होंने कहा—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा, मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्वयं ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा।'

यह कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की। उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये। उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी। वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—'मुने! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है? उस समय तुमने **'मारितं-अण्डम्'** का उच्चारण किया था इसलिये तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड'के नामसे विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा, इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका अपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये। तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे। फिर तो असुरोंके साथ देवताओंका घोर संग्राम हुआ। उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चमकसे तीनों लोकोंमें प्रकाश छा गया। उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी उग्र दृष्टि पड़ने तथा उनके तेजसे दग्ध होनेके कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये। अब तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्तवन किया। उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग प्राप्त हो गये। भगवान् सूर्य भी अपने निजी अधिकारका पालन करने लगे। वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे। उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान था।

तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति

विश्वकर्माने विनयपूर्वक अपनी संज्ञा नामकी कन्या उनको व्याह दी। विवस्वान्से संज्ञाके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ।

सूर्यकी महिमाके प्रसङ्गमें राजा राज्यवर्धनकी कथा

क्रौष्टुकि बोले—भगवन्! आपने आदिदेव भगवान् सूर्यके माहात्म्य और स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब मैं उनकी महिमाका वर्णन सुनना चाहता हूँ। आप प्रसन्न होकर बतानेकी कृपा करें।'

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम्हें आदिदेव सूर्यकी महिमा बताता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें दमके पुत्र राज्यवर्धन बड़े विख्यात राजा हो गये हैं। वे अपने राज्यका धर्मपूर्वक पालन करते थे, इसलिये वहाँके धन-जनकी दिनोदिन वृद्धि होने लगी। उस राजाके शासन-कालमें समस्त राष्ट्र तथा नगरों और गाँवोंके लोग अत्यन्त स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते थे। वहाँ कभी कोई उत्पात नहीं होता था तथा रोग भी नहीं सताता था। साँपोंके काटनेका तथा अनावृष्टिका भय भी नहीं था। राजाने बड़े-बड़े यज्ञ किये। याचकोंको दान दिये और धर्मके अनुकूल रहकर विषयोंका उपभोग किया। इस प्रकार राज्य करते तथा प्रजाका भलीभाँति पालन करते हुए उस राजाके सात हजार वर्ष ऐसे बीत गये, मानो एक ही दिन व्यतीत हुआ हो। दक्षिण देशके राजा विदूरथकी पुत्री मानिनी राज्यवर्धनकी पत्नी थी। एक दिन वह सुन्दरी राजाके मस्तकमें तेल लगा रही थी। उस समय वह राजपरिवारके देखते-देखते आँसू बहाने लगी। रानीके आँसुओंकी बूँदें जब राजाके शरीरपर पड़ीं तो उसे मुखपर आँसू बहाती देख उन्होंने मानिनीसे पूछा—'देवि! यह क्या?' स्वामीके इस प्रकार पूछनेपर उस मनस्विनीने कहा—'कुछ नहीं।' जब राजाने बार-बार पूछा, तब उस सुन्दरीने राजाकी केशराशिमेंसे एक पका बाल दिखाया और कहा—'राजन्! यह देखिये, क्या यह मुझ अभागिनीके लिये खेदका विषय नहीं है?' यह सुनकर राजा हँसने लगे। उन्होंने वहाँ एकत्र हुए समस्त राजाओंके सामने अपनी पत्नीसे हँसकर कहा—'शुभे! शोककी क्या बात है? तुम्हें रोना नहीं चाहिये। जन्म, वृद्धि और परिणाम आदि विकार सभी जीवधारियोंके होते हैं। मैंने तो समस्त वेदोंका अध्ययन किया, हजारों यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दान दिया और मेरे कई पुत्र भी हुए। अन्य मनुष्योंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ हैं, ऐसे उत्तम भोग भी मैंने तुम्हारे साथ भोग लिये। पृथ्वीका भलीभाँति पालन किया और युद्धमें सम्यक् प्रकारसे अपने धर्मको निभाया। भद्रे! और कौन-सा ऐसा शुभ कर्म है, जिसे मैंने नहीं किया। फिर इन पके बालोंसे तुम क्यों डरती हो? शुभे! मेरे बाल पक जायँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जायँ तथा यह देह भी शिथिल हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं है। मैं अपने कर्तव्यका पालन कर चुका हूँ। कल्याणि! तुमने मेरे मस्तकपर जो पका बाल दिखाया है, अब वनवास लेकर उसकी भी दवा करता हूँ। पहले बाल्यावस्था और कुमारावस्थामें तत्कालोचित कार्य किया जाता है, फिर युवावस्थामें यौवनोचित कार्य होते हैं तथा बुढ़ापेमें वनका आश्रय लेना उचित है। मेरे पूर्वजों तथा उनके भी पूर्वजोंने ऐसा ही किया है। अतः मैं तुम्हारे आँसू बहानेका कोई कारण नहीं देखता। पके बालका दिखायी देना तो मेरे लिये महान् अभ्युदयका कारण है।'

महाराजकी यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित हुए अन्य राजा, पुरवासी तथा राष्ट्रवासी मनुष्य उनसे शान्तिपूर्वक बोले—'राजन्! आपको इन महारानीको रोनेकी आवश्यकता नहीं है। रोना तो हमलोगोंको अथवा समस्त प्राणियोंको चाहिये; क्योंकि आप हमें छोड़कर वनवास लेनेकी बात मुँहसे निकाल रहे हैं। महाराज! आपने हमारा लालन-पालन किया है। आपके चले

जानेकी बात सुनकर हमारे प्राण निकले जाते हैं। आपने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया है। अब आप वनमें रहकर जो तपस्या करेंगे, वह इस पृथ्वी-पालनजनित पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती।'

राजाने कहा—'मैंने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया, अब मेरे लिये यह वनवासका समय आ गया। मेरे कई पुत्र हो गये। मेरी संतानोंको देखकर थोड़े ही दिनोंमें यमराज मेरा यहाँ रहना नहीं सह सकेंगे। नागरिको! मेरे मस्तकपर जो यह सफेद बाल दिखायी देता है, इसे अत्यन्त भयानक कर्म करनेवाली मृत्युका दूत समझो, अतः मैं राज्यपर अपने पुत्रका अभिषेक करके सब भोगोंको त्याग दूँगा और वनमें रहकर तपस्या करूँगा। जबतक यमराजके सैनिक नहीं आते, तभीतक यह सब कुछ मुझे कर लेना है।'

तदनन्तर वनमें जानेकी इच्छासे महाराजने ज्योतिषियोंको बुलाया और पुत्रके राज्याभिषेकके लिये शुभ दिन एवं लग्न पूछे। राजाकी बात सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी व्याकुल हो गये। उन्हें दिन, लग्न और होरा आदिका ठीक ज्ञान न हो सका। फिर तो अन्य नगरों, अधीनस्थ राज्यों तथा उस नगरसे भी बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण आये और वनमें जानेके लिये उत्सुक राजा राज्यवर्धनसे मिले। उस समय उनका माथा काँप उठा। वे बोले—'राजन्! हमपर प्रसन्न होइये और पहलेकी भाँति अब भी हमारा पालन कीजिये। आपके वन चले जानेपर समस्त जगत् संकटमें पड़ जायगा, अतः आप ऐसा यत्न करें, जिससे जगत्को कष्ट न हो।'

इसके बाद मन्त्रियों, सेवकों, वृद्ध नागरिकों और ब्राह्मणोंने मिलकर सलाह की—'अब यहाँ क्या करना चाहिये?' राजा राज्यवर्धन अत्यन्त धार्मिक थे। उनके प्रति सब लोगोंका अनुराग था, इसलिये सलाह करने-वाले लोगोंमें यह निश्चय हुआ कि हम सब लोग एकाग्रचित्त एवं भलीभाँति ध्यानपरायण होकर तपस्याद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करके इन महाराजकी आयुके लिये प्रार्थना करें। इस प्रकार एक निश्चय करके कुछ लोग अपने घरोंपर विधिपूर्वक अर्घ्य, उपचार आदि उपहारोंसे भगवान् भास्करकी पूजा करने लगे। दूसरे लोग मौन रहकर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जपसे सूर्यदेवको संतुष्ट करने लगे। अन्य लोग निराहार रहकर नदीके तटपर निवास करते हुए तपस्याके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गये। कुछ लोग अग्निहोत्र करते, कुछ दिन-रात सूर्यसूक्तका पाठ करते और कुछ लोग सूर्यकी ओर दृष्टि लगाकर खड़े रहते थे।

सूर्यकी आराधनाके लिये इस प्रकार यत्न करनेवाले उन लोगोंके समीप आकर सुदामा नामक गन्धर्वने कहा—'द्विजवरो! यदि आपलोगोंको सूर्यदेवकी आराधना अभीष्ट है तो ऐसा कीजिये, जिससे भगवान् भास्कर प्रसन्न हो सकें। आपलोग यहाँसे शीघ्र ही कामरूप पर्वतपर जाइये। वहाँ गुरुविशाल नामक वन है, जिसमें सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँपर एकाग्रचित्त होकर आपलोग सूर्यकी आराधना करें। वह परम हितकारी सिद्ध क्षेत्र है। वहाँ आपलोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

सुदामाकी यह बात सुनकर वे समस्त द्विजगुरु विशाल वनमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका पवित्र एवं सुन्दर मन्दिर देखा। उस स्थानपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लोग मिताहारी एवं एकाग्रचित्त हो पुष्प, चन्दन, धूप, गन्ध, जप, होम, अन्न और दीप आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा एवं स्तुति करने लगे।

ब्राह्मण बोले—देवता, दानव, यक्ष, ग्रह और नक्षत्रोंमें भी जो सबसे अधिक तेजस्वी हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। जो देवेश्वर भगवान् सूर्य

आकाशमें स्थित होकर चारों ओर प्रकाश फैलाते तथा अपनी किरणोंसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त किये रहते हैं, उनकी हम शरण लेते हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु तथा दीप्त-दीधिति—ये जिनके नाम हैं, जो चारों युगोंका अन्त करनेवाले कालाग्नि हैं, जिनकी ओर देखना कठिन है, जिनकी प्रलयके अन्तमें भी गति है, जो योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सित और असित हैं, ऋषियोंके अग्निहोत्रों तथा यज्ञके देवताओंमें जिनकी स्थिति है, जो अक्षर, परम गुह्य तथा मोक्षके उत्तम द्वार हैं, जिनके उदयास्तमनरूप रथमें छन्दोमय अश्व जुते हुए हैं तथा जो उस रथपर बैठकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हुए आकाशमें विचरण करते हैं, अनृत और ऋत दोनों ही जिनके स्वरूप हैं, जो भिन्न-भिन्न पुण्यतीर्थोंके रूपमें विराजमान हैं, एकमात्र जिनपर इस विश्वकी रक्षा निर्भर है, जो कभी चिन्तनमें नहीं आ सकते, उन भगवान् भास्करकी हम शरण लेते हैं। जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं, वनस्पति, वृक्ष और ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, जो व्यक्त और अव्यक्त प्राणियोंमें स्थित हैं उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुके जो रूप हैं, वे आपके ही हैं। जिनके तीन स्वरूप हैं, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों। जिन अजन्मा जगदीश्वरके अङ्कमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथा जो जगत्के जीवन हैं, वे भगवान् सूर्य हमपर प्रसन्न हों। जिनका एक परम प्रकाशमान रूप ऐसा है, जिसकी ओर प्रभापुञ्जकी अधिकताके कारण देखना कठिन हो जाता है तथा जिनका दूसरा रूप चन्द्रमा है, जो अत्यन्त सौम्य है, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तवन और पूजन करनेवाले उन द्विजोंपर तीन महीनोंमें भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए और अपने मण्डलसे निकलकर उसीके समान कान्ति धारण किये वे नीचे उतरे और दुर्दर्श होते हुए भी उन सबके समक्ष प्रकट हो गये। तब उन लोगोंने अजन्मा सूर्यदेवके स्पष्ट रूपका दर्शन करके उन्हें भक्तिसे विनीत होकर प्रणाम किया। उस समय उनके शरीरमें रोमाञ्च और कम्प हो रहा था। वे बोले—'सहस्र किरणोंवाले सूर्यदेव! आपको बारंबार नमस्कार है। आप सबके हेतु तथा सम्पूर्ण जगत्के विजयकेतु हैं, आप ही सबके रक्षक, सबके पूज्य, सम्पूर्ण यज्ञोंके आधार तथा योग-वेत्ताओंके ध्येय हैं, आप हमपर प्रसन्न हों।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर सब लोगोंसे कहा—'द्विजगण! आपको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह मुझसे माँगें।' यह सुनकर ब्राह्मण आदि वर्णोंके लोगोंने उन्हें प्रणाम करके कहा—'अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यदेव! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो हमारे राजा राज्यवर्धन नीरोग, शत्रुविजयी, सुन्दर केशोंसे युक्त तथा स्थिर यौवनवाले होकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहें।'

'तथास्तु' कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये। वे सब लोग भी मनोवाञ्छित वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक महाराजके पास लौट आये। वहाँ उन्होंने सूर्यसे वर पाने आदिकी सब बातें यथावत् कह सुनायीं। यह सुनकर रानी मानिनीको बड़ा हर्ष हुआ, परंतु राजा बहुत देरतक चिन्तामें पड़े रहे। वे उन लोगोंसे कुछ न बोले। मानिनीका हृदय हर्षसे भरा हुआ था। वह बोली—'महाराज! बड़े भाग्यसे आयुकी वृद्धि हुई है। आपका अभ्युदय हो। राजन्! इतने बड़े अभ्युदयके समय आपको प्रसन्नता क्यों नहीं होती? दस हजार वर्षोंतक आप नीरोग रहेंगे, आपकी जवानी स्थिर रहेगी, फिर भी आपको खुशी क्यों नहीं होती?'

राजा बोले—कल्याणि! मेरा अभ्युदय कैसे हुआ? तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो? जब हजार-हजार

दुःख प्राप्त हो रहे हैं, उस समय किसीको बधाई देना क्या उचित माना जाता है ? मैं अकेला ही तो दस हजार वर्षोंतक जीवित रहूँगा। मेरे साथ तुम तो नहीं रहोगी। क्या तुम्हारे मरनेपर मुझे दुःख नहीं होगा ? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्ट, बन्धु-बान्धव, भक्त, सेवक तथा मित्रवर्ग—ये सब मेरी आँखोंके सामने मरेंगे। उस समय मुझे अपार दुःखका सामना करना पड़ेगा। जिन लोगोंने अत्यन्त दुर्बल होकर शरीरकी नाडियाँ सुखा-सुखाकर मेरे लिये तपस्या की, वे सब तो मरेंगे और मैं भोग भोगते हुए जीवित रहूँगा। ऐसी दशामें क्या मै धिक्कार देनेयोग्य नहीं हूँ ? सुन्दरि ! इस प्रकार मुझपर यह आपत्ति आ गयी। मेरा अभ्युदय नहीं हुआ है। क्या तुम इस बातको नहीं समझती ? फिर क्यों मेरा अभिनन्दन कर रही हो ?

मानिनी बोली—महाराज ! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। मैंने तथा पुरवासियोंने आपके प्रेमवश इस दोषकी ओर नहीं देखा है। नरनाथ ! ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये, यह आप ही सोचें; क्योंकि भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर जो कुछ कहा है, वह अन्यथा नहीं हो सकता।

राजाने कहा—देवि ! पुरवासियों और सेवकोंने प्रेमवश मेरे ऊपर जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाये बिना मै किस प्रकार भोग भोगूँगा। यदि भगवान् सूर्यकी ऐसी कृपा हो कि समस्त प्रजा, भृत्यवर्ग, तुम, अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और मित्र भी जीवित रह सकें तो मैं राज्यसिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक भोगोंका उपभोग कर सकूँगा। यदि वे ऐसी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उसी कामरूप पर्वतपर निराहार रहकर तबतक तपस्या करूँगा, जबतक कि इस जीवनका अन्त न हो जाय।

राजाके यों कहनेपर रानी मानिनीने कहा—ऐसा ही हो। फिर तो वे भी महाराजके साथ कामरूप पर्वतपर चली गयीं। वहाँ पहुँचकर राजाने पत्नीके साथ सूर्यमन्दिरमें जाकर सेवापरायण हो भगवान् भानुकी आराधना आरम्भ की। दोनों दम्पति उपवास करते-करते दुर्बल हो गये। सर्दी, गर्मी और वायुका कष्ट सहन करते हुए दोनोंने घोर तपस्या की। सूर्यकी पूजा और भारी तपस्या करते-करते जब एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया, तब भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाको समस्त सेवकों, पुरवासियों और पुत्रों आदिके लिये इच्छानुसार वरदान दिया। वर पाकर राजा अपने नगरको लौट आये और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ राज्य करने लगे। धर्मज्ञ राजाने बहुत-से यज्ञ किये और उन्होंने दिन-रात खुले हाथ दान किया। वे यौवनको स्थिर रखते हुए अपने पुत्र, पौत्र और भृत्य आदिके साथ दस हजार वर्षोंतक जीवित रहे। उनका यह चरित्र देखकर भृगुवंशी प्रमतिने विस्मित होकर यह गाथा गायी—'अहो ! भगवान् सूर्यकी भक्तिकी कैसी शक्ति है, जिससे राजा राज्यवर्धन अपने तथा स्वजनोंके लिये आयुर्वर्धन बन गये।'

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मुखसे भगवान् सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यका श्रवण तथा पाठ करता है, वह सात रातके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रसङ्गमें सूर्यदेवके जो मन्त्र आये हैं, उनमेंसे एक-एकका भी यदि तीनों संध्याओंके समय जप किया जाय तो वह समस्त पातकोंका नाश करनेवाला होता है। सूर्यके जिस मन्दिरमे इस समूचे माहात्म्यका पाठ किया जाता है, वहाँ भगवान् सूर्य विराजमान रहते हैं। अतः ब्रह्मन् ! यदि तुम्हे महान् पुण्यकी प्राप्ति अभीष्ट हो तो सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यको मन-ही-मन धारण एवं जप करते रहो। द्विजश्रेष्ठ ! जो सोनेके सींगसे युक्त सुन्दर काली दुधारू गाय दान करता है तथा जो अपने मनको संयममे रखकर तीन दिनोंतक इस माहात्म्यका श्रवण करता है, उन दोनोंको पुण्यफलकी प्राप्ति समान ही होती है।

ब्रह्मपुराणमें सूर्य-प्रसङ्ग

[ब्रह्मपुराणके प्रस्तुत संदर्भमें कोणादित्य एवं भगवान् सूर्यकी महिमा, सूर्य-महत्त्वके साथ अदितिके गर्भसे उनके सम्भवका वर्णन और श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तर शतनामोंके वर्णनवाले वस्तु-विषय संकलित हैं ।]

कोणादित्यकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके किनारे ओण्ड्रदेशके नामसे विख्यात एक प्रदेश है, जो स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज-मण्डलतकका प्रदेश पुण्यात्माओंके सम्पूर्ण गुणोंद्वारा सुशोभित है। उस देशमें उत्पन्न जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण तपस्या एवं स्वाध्यायमें संलग्न रहते हैं, वे सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय हैं। उस देशके ब्राह्मण श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ अथवा आचार्यकर्म—सभी कार्योंके लिये उत्तम हैं। वे षट्कर्मपरायण, वेदोंके पारङ्गत विद्वान्, इतिहासवेत्ता, पुराणार्थविशारद, सर्वशास्त्रार्थकुशल, यज्ञशील और राग-द्वेषरहित होते हैं। कोई वैदिक अग्निहोत्रमें लगे रहते और कोई स्मार्त-अग्निकी उपासना करते हैं। वे स्त्री, पुत्र और धनसे सम्पन्न, दानी और सत्यवादी होते हैं तथा यज्ञोत्सवसे विभूषित पवित्र उत्कलदेशमें निवास करते हैं। वहाँ क्षत्रिय आदि अन्य तीन वर्णोंके लोग भी परम संयमी, स्वकर्मपरायण, शान्त और धार्मिक होते हैं। उक्त प्रदेशमें भगवान् सूर्य कोणादित्यके नामसे विख्यात होकर रहते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ! पूर्वोक्त ओण्ड्रदेशमें जो सूर्यका क्षेत्र है तथा जहाँ भगवान् भास्कर निवास करते हैं, उसका वर्णन कीजिये। अब हम उसे ही सुनना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! लवणसमुद्रका उत्तरी तट अत्यन्त मनोहर और पवित्र है। वह सब ओर वालुका-राशिसे आच्छादित है। उस सर्वगुणसम्पन्न प्रदेशमें चम्पा, अशोक, मौलसिरी, करवीर (कनेर), गुलाब, नागकेसर, ताड़, सुपारी, नारियल, कैथ और अन्य नाना प्रकारके वृक्ष चारों ओर शोभा पाते हैं। वहाँ भगवान् सूर्यका पुण्यक्षेत्र है, जो सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है। उसका विस्तार सब ओरसे एक योजनसे अधिक है। वहाँ सहस्र किरणोंसे सुशोभित साक्षात् भगवान् सूर्यका निवास है। वे 'कोणादित्य'*के नामसे विख्यात एवं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। वहाँ माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास करना चाहिये। फिर प्रातः शौच आदिसे निवृत्त एवं विशुद्धचित्त हो सूर्यदेवका स्मरण करते हुए विधि-पूर्वक समुद्रमें स्नान करे। स्नानोपरान्त देवता, ऋषि और मनुष्योंका तर्पण करनेकी विधि है। तत्पश्चात् जलसे बाहर आकर दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके पवित्रतापूर्वक सूर्योदयके समय समुद्रके तटपर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाय। लाल चन्दन और जलसे ताँबेके पात्रमें एक अष्टदल कमलकी ऐसी आकृति बनाये जो केसरयुक्त और गोलाकार हो। उसकी कर्णिका ऊपरकी ओर उठी हो। फिर तिल, चावल, जल, लाल चन्दन, लाल फूल और कुशा उस पात्रमें रख दे। ताँबेका बर्तन न मिले तो मदारके पत्तेका दोना बनाकर उसीमें तिल आदि रक्खे। उस पात्रको एक दूसरे पात्रसे ढक देना चाहिये। इसके बाद हृदय आदि अङ्गोंके क्रमसे अङ्गन्यास और करन्यास करके पूर्ण श्रद्धाके साथ अपने आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यका ध्यान करे।

इसके बाद पूर्वोक्त अष्टदल कमलके मध्यभागमें तथा अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोणोंके दलोंमें

* कोणादित्यकी समसामयिक स्थितिके सम्बन्धमें आगे निबन्ध दिये गये हैं।

एवं पुनः मध्यभागमे क्रमशः प्रभूत, विमल, सार, आराध्य, परम और सुखरूप सूर्यदेवका पूजन करे। तदनन्तर वहाँ आकाशसे सूर्यदेवका आवाहन करके कर्णिकाके ऊपर उनकी स्थापना करे। तत्पश्चात् हाथोसे सुमुख और सम्पुट आदि मुद्राएँ दिखाये। फिर देवताको स्नान आदि कराकर एकाग्रचित्त हो इस प्रकार ध्यान करे—'भगवान् सूर्य श्वेत कमलके आसनपर तेजोमण्डलमे विराजमान हैं। उनकी आँखे पीली और शरीरका रंग लाल है। उनके दो भुजाएँ है। उनका वस्त्र रक्त कमलके समान लाल है। वे सब प्रकारके शुभ लक्षणोसे युक्त और सभी तरहके आभूषणोसे विभूषित हैं। उनका रूप सुन्दर है। वे वर देनेवाले तथा शान्त एवं प्रभापुञ्जसे देदीप्यमान हैं।' तदनन्तर उदयकालमें स्निग्ध सिन्दूरके समान अरुण वर्णवाले भगवान् सूर्यका दर्शन करके अर्घ्यपात्र ले। उसे सिरके पास लगावे और पृथ्वीपर घुटने टेककर मौन हो एकाग्रचित्तसे त्र्यक्षर मन्त्रका उच्चारण करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे। जिस पुरुषको दीक्षा नहीं दी गयी है, वह भावयुक्त श्रद्धाके साथ सूर्यका नाम लेकर ही अर्घ्य दे; क्योंकि भगवान् सूर्य भक्तिके द्वारा ही वशमे होते हैं।

अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशानकोण, मध्यभाग तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्रकी पूजा करे।* फिर अर्घ्य देना चाहिये। गन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य निवेदनकर जप, स्तुति, नमस्कार तथा मुद्रा करके देवताका विसर्जन करे। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्र अपनी इन्द्रियोको वशमे रखते हुए सदा संयमपूर्वक भक्तिभाव और विशुद्ध चित्तसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।† जो मनुष्य तीनो लोकोको प्रकाशित करनेवाले आकाश-विहारी भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं, वे सुखके भागी होते है। जबतक भगवान् सूर्यको विधिपूर्वक अर्घ्य न दे दिया जाय, तबतक श्रीविष्णु, शंकर अथवा इन्द्रका पूजन नहीं करना चाहिये। अतः प्रतिदिन पवित्र हो प्रयत्न करके मनोहर फूलो और चन्दन आदिके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य देना आवश्यक है। इस प्रकार जो सप्तमी तिथिको स्नान करके शुद्ध एवं एकाग्रचित्त हो सूर्यको अर्घ्य देता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। रोगी पुरुष रोगसे मुक्त हो जाता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन मिलता है, विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है और पुत्रकी कामना रखनेवाला मनुष्य पुत्रवान् होता है।

इस प्रकार समुद्रमे स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दे, उन्हे प्रणाम करे, फिर हाथमें फूल लेकर मौन हो सूर्यके मन्दिरमे जाय। मन्दिरके भीतर प्रवेश करके भगवान् कोणादित्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करे और अत्यन्त भक्तिके साथ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, जय-जयकार तथा स्तोत्रोंद्वारा उनकी पूजा करे। इस प्रकार सहस्र किरणोंद्वारा मण्डित जगदीश्वर सूर्यदेवका पूजन करके मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। इतना ही नहीं, वह सब पापोसे मुक्त हो दिव्य शरीर धारण करता है और अपने आगे-पीछेकी सात-सात पीढ़ियोका उद्धार करके सूर्यके समान तेजस्वी एव इच्छानुसार गमन करनेवाले विमानपर

* पूजनके वाक्य इस प्रकार हैं—ह्रा हृदयाय नमः, अग्निकोणे। ह्रू शिरसे नमः, नैर्ऋत्ये। ह्रं शिखायै नमः, वायव्ये। ह्रैं कवचाय नमः, ऐशाने। ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः, मध्यभागे। ह्रः अस्त्राय नमः, चतुर्दिक्षु इति।

† ये वाऽर्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्याय नियतेन्द्रियाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च सयताः॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना। ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥
(—२८। ३७-३८)

बैठकर सूर्यके लोकमे जाता है। उस समय गन्धर्वगण उसका यशोगान करते हैं। वहाँ एक कल्पतक श्रेष्ठ भोगोका उपभोग करके पुण्य क्षीण होनेपर वह पुनः इस ससारमें आता और योगियोके उत्तम कुलमें जन्म ले चारों वेदोंका विद्वान्, स्वधर्मपरायण तथा पवित्र ब्राह्मण होता है। तदनन्तर भगवान् सूर्यसे ही योगकी शिक्षा प्राप्त करके मोक्ष पा लेता है। चैत्र मासके शुक्लपक्षमे भगवान् कोणादित्यकी यात्रा होती है। यह यात्रा दमनभंजिकाके नामसे विख्यात है। जो मनुष्य यह यात्रा करता है, उसे भी पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्यके शयन और जागरणके समय, संक्रान्तिके दिन, विषुवयोगमे उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेपर, रविवारको सप्तमी तिथिको अथवा पर्वके समय जो जितेन्द्रिय पुरुष वहाँकी श्रद्धापूर्वक यात्रा करते हैं, वे सूर्यकी भाँति तेजस्वी विमानके द्वारा उनके लोकमे जाते हैं। वहाँ (पूर्वोक्त क्षेत्रमे) समुद्रके तटपर रामेश्वर नामसे विख्यात भगवान् महादेवजी विराजमान हैं, जो समस्त अभिलषित फलोंके देनेवाले हैं। जो समुद्रमे स्नान करके वहाँ श्रीरामेश्वरका दर्शन करते और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तोत्र, गीत और मनोहर वाद्योद्वारा उनकी पूजा करते हैं, वे महात्मा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोका फल पाते और परम सिद्धिको प्राप्त होते है।

भगवान् सूर्यकी महिमा

मुनियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ ! आपने भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् भास्करके उत्तम क्षेत्रका जो वर्णन किया है, वह सब हमलोगोने सुना। अब यह बताइये कि उनकी भक्ति कैसे की जाती है और वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं ? इस समय यही सब सुननेकी हमारी इच्छा है।

ब्रह्माजी बोले—मनके द्वारा इष्टदेवके प्रति जो भावना होती है, उसे ही भक्ति और श्रद्धा कहते हैं। जो इष्टदेवकी कथा सुनता, उनके भक्तोंकी पूजा करता तथा अग्निकी उपासनामें संलग्न रहता है, वह सनातन भक्त है। जो इष्टदेवका चिन्तन करता, उन्हींमें मन लगाता, उन्हींकी पूजामें रत रहता तथा उन्हींके लिये काम करता है, वह निश्चय ही सनातन भक्त है। जो इष्टदेवके लिये किये जानेवाले कर्मोका अनुमोदन करता, उनके भक्तोंमें दोष नहीं देखता, अन्य देवताकी निन्दा नहीं करता, सूर्यके व्रत रखता तथा चलते, फिरते, ठहरते, सोते, सूँघते और आँख खोलते-मीचते समय भगवान् भास्करका स्मरण करता है, वह मनुष्य परम भक्त माना गया है। विज्ञ पुरुषको सदा ऐसी ही भक्ति करनी चाहिये। भक्ति, समाधि, स्तुति और मनसे जो नियम किया जाता है और ब्राह्मणको दान दिया जाता है, उसे देवता, मनुष्य और पितर—सभी ग्रहण करते हैं। पत्र, पुष्प, फल और जल—जो कुछ भी भक्ति-पूर्वक अर्पण किया जाता है, उसे देवता ग्रहण करते हैं; परंतु वे नास्तिकोंकी दी हुई वस्तु नहीं स्वीकार करते। नियम और आचारके साथ भावशुद्धिका भी उपयोग करना चाहिये। हृदयके भावको शुद्ध रखते हुए जो कुछ किया जाता है, वह सब सफल होता है। भगवान् सूर्यके स्तवन, जप, उपहार-समर्पण, पूजन, उपवास (व्रत) और भजनसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो पृथ्वीपर मस्तक रखकर भगवान् सूर्यको नमस्कार करता है, वह तत्काल सब पापोंसे छूट जाता है, इसमे तनिक भी सदेह नहीं है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो सूर्यदेवको अपने हृदयमे धारण करके केवल आकाशकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण

देवताओंकी परिक्रमा हो जाती है।* जो षष्ठी या सप्तमीको एक समय भोजन करके नियम और व्रतका पालन करते हुए सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो षष्ठी अथवा सप्तमीको दिन-रात उपवास करके भगवान् भास्करका पूजन करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।

जब शुक्लपक्षकी सप्तमीको रविवार हो, उस दिन विजयासप्तमी होती है। उसमें दिया हुआ दान महान् फल देनेवाला है। विजयासप्तमीको किया हुआ स्नान, दान, तप, होम और उपवास—सब कुछ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य रविवारके दिन श्राद्ध करते और महातेजस्वी सूर्यका यजन करते हैं, उन्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जिनके समस्त धार्मिक कार्य सदा भगवान् सूर्यके उद्देश्यसे होते हैं, उनके कुलमें कोई दरिद्र अथवा रोगी नहीं होता। जो सफेद, लाल अथवा पीली मिट्टीसे भगवान् सूर्यके मन्दिरको लीपता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। जो निराहार रहकर भाँति-भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंद्वारा सूर्यदेवका पूजन करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जो तिलके तेलसे दीपक जलाकर भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी अन्धा नहीं होता। दीप-दान करनेवाला मनुष्य सदा ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है। जो सदा देव-मन्दिरों, चौराहों और सड़कोंपर दीप-दान करता है, वह रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है। दीपकी शिखा सदा ऊपरकी ही ओर उठती है, उसकी गति कभी नीचेकी ओर नहीं होती। इसी प्रकार दीप-दान करनेवाला पुरुष भी दिव्य तेजसे प्रकाशित होता है। वह कभी तिर्यग्योनिमें नहीं पड़ता। जलते हुए दीपकको न कभी चुराये, न नष्ट करे। दीपहर्ता मनुष्य बन्धन, नाश, क्रोध एवं तमोमय नरकको प्राप्त होता है। उदयकालमें प्रतिदिन सूर्यको अर्घ्य देनेसे एक ही वर्षमें सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उनकी ओर मुँह करके खड़ा हो किसी मन्त्र अथवा स्तोत्रका जप करना आदित्यव्रत कहलाता है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। सूर्योदयके समय श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर सब कुछ साङ्गोपाङ्ग दान करे। इससे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है†। अग्नि, जल, आकाश, पवित्र भूमि, प्रतिमा तथा पिण्डी (प्रतिमाकी वेदी) में यत्नपूर्वक सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये।‡ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनमें सूर्यदेवका विशेषरूपसे पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो मानव प्रत्येक वेलामें अथवा कुवेलामें भी भक्तिपूर्वक श्रीसूर्यदेवका पूजन करता है, वह उन्हींके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो तीर्थोंमें पवित्र हो भगवान् सूर्यको स्नान करानेके लिये एकाग्रतापूर्वक जल भरकर लाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

---

* भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता। भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत्सर्वं सफलं भवेत्॥
स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः। उपवासेन भक्त्या वै सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
प्रणिधाय शिरो भूम्या नमस्कारं करोति यः। तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥
भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
सूर्यं मनसि यः कृत्वा कुर्याद् व्योमप्रदक्षिणाम्। प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि॥
(२९। १७—२१)

† अर्घ्येण सहितं चैव सर्वं साङ्गं प्रदापयेत्। उदये श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(२९। ४६)

‡ अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च। प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः॥
(२९। ४८)

छत्र, ध्वजा, चँदोवा, पताका और चँवर आदि वस्तुएँ सूर्यदेवको श्रद्धापूर्वक समर्पित करके मनुष्य अभीष्ट गतिको प्राप्त होता है। मनुष्य जो-जो पदार्थ भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, उसे वे लाखगुना करके उस पुरुषको देते हैं। भगवान् सूर्यकी कृपासे मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यदेवके एक दिनके पूजनसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह शास्त्रोक्त दक्षिणासे युक्त सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिलता।

मुनियोंने कहा—जगत्पते! भगवान् सूर्यका यह अद्भुत माहात्म्य हमने सुन लिया। अब पुनः हम जो कुछ पूछते हैं, उसे बताइये। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी—जो भी मोक्ष प्राप्त करना चाहे, उसे किस देवताका पूजन करना चाहिये? कैसे उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी? किस उपायसे वह उत्तम मोक्षका भागी होगा? तथा वह किस साधनका अनुष्ठान करे, जिससे स्वर्गमे जानेपर उसे पुनः नीचे न गिरना पडे?

ब्रह्माजी बोले—द्विजवरो! भगवान् सूर्य उदित होते ही अपनी किरणोसे संसारका अन्धकार दूर कर देते हैं। अतः उनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। वे आदि-अन्तसे रहित, सनातन पुरुष एवं अविनाशी हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रचण्ड रूप धारणकर तीनों लोकोको ताप देते है। सम्पूर्ण देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये तपनेवालेमे श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, साक्षी तथा पालक हैं। ये ही वारंवार जीवोकी सृष्टि और सहार करते हैं तथा अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते, तपते और वर्षा करते हैं। ये धाता, विधाता, सम्पूर्ण भूतोके आदिकारण और सब जीवोको उत्पन्न करनेवाले हैं। ये कभी क्षीण नहीं होते। इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरोके भी पिता और देवताओके भी देवता हैं। इनका स्थान ध्रुव माना गया है, जहाँसे फिर नीचे नहीं गिरना पड़ता। सृष्टिके समय सम्पूर्ण जगत् सूर्यसे ही उत्पन्न होता है और प्रलयके समय अत्यन्त तेजस्वी भगवान् भास्करमें ही उसका लय होता है। असंख्य योगिजन अपने कलेवरका परित्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्यमे ही प्रवेश करते हैं। राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, वालखिल्य आदि ब्रह्मवादी महर्षि, व्यास आदि वानप्रस्थ ऋषि तथा कितने ही संन्यासी योगका आश्रय ले सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर चुके हैं। व्यासपुत्र श्रीमान् शुकदेवजी भी योगधर्म प्राप्त करनेके अनन्तर सूर्यकी किरणोंमें पहुँचकर ही मोक्षपदमें स्थित हुए। इसलिये आप सब लोग सदा भगवान् सूर्यकी आराधना करें; क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्के माता-पिता और गुरु हैं।

अव्यक्त परमात्मा समस्त प्रजापतियो और नाना प्रकारकी प्रजाओकी सृष्टि करके स्वयं बारह रूपोंमें विभक्त हो आदित्यरूपसे प्रकट होते हैं। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु, अंशुमान्, वरुण और मित्र—इन बारह मूर्तियोंद्वारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। भगवान् आदित्यकी जो प्रथम मूर्ति है, उसका नाम इन्द्र है। वह देवराजके पदपर प्रतिष्ठित है। वह देवशत्रुओंका नाश करनेवाली मूर्ति है। भगवान्के दूसरे विग्रहका नाम धाता है, जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं। सूर्यदेवकी तीसरी मूर्ति पर्जन्यके नामसे विख्यात है, जो बादलोमे स्थित हो अपनी किरणोंद्वारा वर्षा करती है। उनके चतुर्थ विग्रहको त्वष्टा कहते हैं। त्वष्टा सम्पूर्ण वनस्पतियो और ओषधियोंमें स्थित रहते हैं। उनकी पाँचवीं मूर्ति पूषाके नामसे प्रसिद्ध है, जो अन्नमे स्थित हो सर्वदा प्रजाजनोंकी पुष्टि करती है।

सूर्यकी जो छठी मूर्ति है, उसका नाम अर्यमा बताया गया है। वह वायुके सहारे सम्पूर्ण देवताओमे स्थित रहती है। भानुका सातवाँ विग्रह भगके नामसे विख्यात है। वह ऐश्वर्य तथा देहधारियोंके शरीरोमे स्थित होता है। सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति विवस्वान् कहलाती है, वह अग्निमे स्थित हो जीवोके खाये हुए अन्नको पचाती है। उनकी नवीं मूर्ति विष्णुके नामसे विख्यात है, जो सदा देवशत्रुओंका नाश करनेके लिये अवतार लेती है। सूर्यकी दसवीं मूर्तिका नाम अंशुमान् है, जो वायुमे प्रतिष्ठित होकर समस्त प्रजाको आनन्द प्रदान करती है। सूर्यका ग्यारहवाँ स्वरूप वरुणके नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा जलमें स्थित होकर प्रजाका पोषण करता है। भानुके बारहवें विग्रहका नाम मित्र है, जिसने सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये चन्द्र नदीके तटपर स्थित होकर तपस्या की। परमात्मा सूर्यदेवने इन बारह मूर्तियोंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। इसलिये भक्त पुरुषोको उचित है कि वे भगवान् सूर्यमे मन लगाकर पूर्वोक्त बारह मूर्तियोंमे उनका ध्यान और नमस्कार करें। इस प्रकार मनुष्य बारह आदित्योंको नमस्कार करके उनके नामोंका प्रतिदिन पाठ और श्रवण करनेसे सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

मुनियोंने पूछा—यदि ये सूर्य सनातन आदिदेव हैं, तो इन्होने वर पानेकी इच्छासे प्राकृत मनुष्योकी भाँति तपस्या क्यो की ?

ब्रह्माजी बोले—यह सूर्यका परम गोपनीय रहस्य है। पूर्वकालमें मित्र देवताने महात्मा नारदको जो बात बतलायी थी, वही मै तुम लोगोसे कहता हूँ। एक समयकी बात है, अपनी इन्द्रियोको वशमें रखनेवाले महायोगी नारदजी मेरुगिरिके शिखरसे गन्धमादन नामक पर्वतपर उतरे और सम्पूर्ण लोकोमे विचरते हुए उस स्थानपर आये, जहाँ मित्र देवता तपस्या करते थे। उन्हें तपस्यामें संलग्न देखकर नारदजीके मनमें कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे, 'जो अक्षय, अविकारी, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप और सनातन पुरुष हैं, जिन महात्माने तीनों लोकोको धारण कर रक्खा है, जो सब देवताओके पिता एव परसे भी परे हैं, वे किन देवताओ अथवा पितरोका यजन करते हैं और करेंगे ?' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके नारदजी मित्र देवतासे बोले—'भगवन् ! अङ्गोपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोमे आपकी महिमाका गान किया जाता है। आप अजन्मा, सनातन, धाता तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब कुछ आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थ आदि चारों आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं। फिर आप किस देवता अथवा पितरकी आराधना करते हैं, यह हमारी समझमें नहीं आता।'

मित्रने कहा—ब्रह्मन् ! यह परम गोपनीय सनातन रहस्य कहने योग्य तो नहीं है; परंतु आप भक्त हैं, इसलिये आपके सामने मै उसका यथावत् वर्णन करता हूँ। वह जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियरहित, इन्द्रियोके विषयोसे परे तथा सम्पूर्ण भूतोसे पृथक् है, वही समस्त जीवोंकी अन्तरात्मा है, उसीको क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। वह तीनो गुणोसे भिन्न पुरुष कहा गया है। उसीका नाम भगवान् हिरण्यगर्भ है। वह सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, शर्व (संहारकारी) और अक्षर (अविनाशी) माना गया है। उसने इस एकात्मक त्रिलोकीको अपने आत्माके द्वारा धारण कर रक्खा है। वह स्वय शरीरसे रहित है, किंतु समस्त शरीरोंमें निवास करता है। शरीरमे रहते हुए भी वह उसके कर्मोंसे लिप्त नहीं होता है। वह मेरा, तुम्हारा तथा अन्य जितने भी देहधारी हैं, उनकी भी आत्मा है। सबका साक्षी है, कोई भी उसका ग्रहण नहीं कर सकता। वह सगुण, निर्गुण, विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य

माना गया है। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं तथा सब ओर कान हैं। वह संसारमे सबको व्याप्त करके स्थित हैं।* सम्पूर्ण मस्तक उसके मस्तक, सम्पूर्ण भुजाएँ उसकी भुजा, सम्पूर्ण पैर उसके पैर, सम्पूर्ण नेत्र उसके नेत्र एवं सम्पूर्ण नासिकाएँ उसकी नासिका हैं। वह स्वेच्छाचारी है और अकेला ही सम्पूर्ण क्षेत्रमे सुखपूर्वक विचरता है। यहाँ जितने शरीर हैं, वे सभी क्षेत्र कहलाते हैं। उन सबको वह योगात्मा जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है। अव्यक्त पुरमे शयन करता है, अतः उसे पुरुष कहते हैं। विश्वका अर्थ है बहुविध, वह परमात्मा सर्वत्र बतलाया जाता है, इसीलिये बहुविधरूप होनेके कारण वह विश्वरूप माना गया है। एकमात्र वही महान् है और एकमात्र वही पुरुष कहलाता है। अतः वह एकमात्र सनातन परमात्मा ही महापुरुष नाम धारण करता है। वह परमात्मा स्वयं ही अपने आपको सौ, हजार, लाख और करोडो रूपोमे प्रकट कर लेता है। जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल भूमिके रसविशेषसे दूसरे स्वादका हो जाता है, उसी प्रकार गुणमय रसके सम्पर्कसे वह परात्मा अनेकरूप प्रतीत होने लगता है। जैसे एक ही वायु समस्त शरीरमे पॉच रूपोमे स्थित है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता और अनेकता मानी गयी है। जैसे अग्नि दूसरे स्थानकी विशेषतासे अन्य नाम धारण करती है, उसी प्रकार वह परमात्मा ब्रह्मा आदिके रूपोमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करता है। जैसे एक दीप हजारों दीपोको प्रकट करता है, वैसे ही वह एक ही परमात्मा हजारो रूपोको उत्पन्न करता है। ससारमे जो चराचर भूत हैं, वे नित्य नहीं हैं; परतु वह परमात्मा अक्षय, अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। वह ब्रह्म सदसत्स्वरूप है। लोकमें देवकार्य तथा पितृकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। उससे बढकर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। उसका ज्ञान अपने आत्माके द्वारा होता है। अतः मैं उसी सर्वात्माका पूजन करता हूँ। देवर्षे! स्वर्गमे भी जो जीव उस परमेश्वरको नमस्कार करते हैं, वे उसीके द्वारा दी हुई अभीष्ट गतिको प्राप्त होते हैं। देवता और अपने-अपने आश्रमोमें स्थित मनुष्य भक्तिपूर्वक सबके आदिभूत उस परमात्माका पूजन करते हैं और वे उन्हें सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वात्मा, सर्वगत और निर्गुण कहलाते हैं। मैं भगवान् सूर्यको ऐसा मानकर अपने ज्ञानके अनुसार उनका पूजन करता हूँ। नारदजी! यह गोपनीय उपदेश मैंने अपनी भक्तिके कारण आपको बतलाया है। आपने भी इस उत्तम रहस्यको भलीभाँति समझ लिया। देवता, मुनि और पुराण—सभी उस परमात्माको वरदायक मानते हैं और इसी भावसे सब लोग भगवान् दिवाकरका पूजन करते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार मित्रदेवताने पूर्वकालमे नारदजीको यह उपदेश दिया था। भानुके उपदेशको मैने भी आपलोगोंसे कह सुनाया। जो सूर्यका भक्त न हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनाता और सुनता है, वह निःसंदेह भगवान् सूर्यमे प्रवेश करता है। आरम्भसे ही इस कथाको सुनकर रोगी मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है और जिज्ञासुको उत्तम ज्ञान एवं अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। मुनियो!

---

* वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्मभिः। ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ॥
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्। सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः ॥
सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः। सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
(३०। ६३–६५)

जो इसका पाठ करता है, वह जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है।

सूर्यकी महिमा तथा अदितिके गर्भसे उनके अवतारका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवान् सूर्य सबके आत्मा, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर, देवताओंके भी देवता और प्रजापति हैं। वे ही तीनों लोकोंकी जड़ हैं, परम देवता हैं। अग्निमें विधिपूर्वक डाली हुई आहुति सूर्यके पास ही पहुँचती है। सूर्यसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न पैदा होता है और अन्नसे प्रजा जीवन-निर्वाह करती है। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु और युग—इनकी काल-संख्या सूर्यके बिना नहीं हो सकती। कालका ज्ञान हुए बिना न कोई नियम चल सकता है और न अग्निहोत्र आदि ही हो सकते हैं। सूर्यके बिना ऋतुओंका विभाग भी नहीं होगा और उसके बिना वृक्षोंमें फल और फूल कैसे लग सकते हैं, खेती कैसे पक सकती है और नाना प्रकारके अन्न कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। उस दशामें स्वर्गलोक तथा भूलोकमें जीवोंके व्यवहारका भी लोप हो जायगा। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—इन बारह सामान्य नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यका ही बोध होता है। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये बारह सूर्य पृथक्-पृथक् माने गये हैं। चैत्र मासमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भादोंमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, अगहनमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामक सूर्य तपते हैं। इस प्रकार यहाँ एक ही सूर्यके चौबीस नाम बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी हजारों नाम विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।

मुनियोंने पूछा—प्रजापते! जो एक हजार नामोंके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करते हैं, उन्हें क्या पुण्य होता है तथा उनकी कैसी गति होती है?

ब्रह्माजी बोले—मुनिवरो! मैं भगवान् सूर्यका कल्याणमय सनातन स्तोत्र कहता हूँ, जो सब स्तुतियोंका सारभूत है। इसका पाठ करनेवालेको सहस्र नामोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भगवान् भास्करके जो पवित्र, शुभ एवं गोपनीय नाम हैं, उन्हींका वर्णन करता हूँ, सुनो। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा और सर्वदेवनमस्कृत—इस प्रकार इक्कीस नामोंका यह स्तोत्र भगवान् सूर्यको सदा प्रिय है।* यह शरीरको नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और यश फैलानेवाला स्तोत्रराज है। इसकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। द्विजवरो! जो सूर्यके उदय और अस्तकालमें दोनों संध्याओंके समय इस स्तोत्र-के द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करता है, वह सब पापों-से मुक्त हो जाता है। भगवान् सूर्यके समीप एक बार भी इसका जप करनेसे मानसिक, वाचिक, शारीरिक तथा कर्मजनित सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः ब्राह्मणो! आपलोग यत्नपूर्वक सम्पूर्ण अभिलषित फलोंके देनेवाले भगवान् सूर्यका इस स्तोत्रके द्वारा स्तवन करें।

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने भगवान् सूर्यको निर्गुण एवं सनातन देवता बतलाया है, फिर आपके ही

* विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः। एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः॥
(३१। ३१—३३)

मुँहसे हमने यह भी सुना है कि वे बारह स्वरूपोंमें प्रकट हुए । वे तेजकी राशि और महान् तेजस्वी होकर किसी स्त्रीके गर्भसे कैसे प्रकट हुए, इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है ।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्षके साठ कन्याएँ हुईं, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं । उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे । उनमेसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था । अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया । दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी भयङ्कर दानव उत्पन्न हुए । विनता आदि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया । इन दक्ष-सुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया । कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं । वे सात्त्विक हैं । इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं । देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया है । परंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे । अतः वे मिलकर उन्हे कष्ट पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंको अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टप्राय कर दी । तब उन्होने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया । वे नियमित आहार करके कठोर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं ।

अदिति बोलीं—भगवन् ! आप अत्यन्त सूक्ष्म, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं । तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता हैं । आपको नमस्कार है । गोपते ! जगत्का उपकार करनेके लिये मैं आपकी स्तुति—आपसे प्रार्थना करती हूँ । प्रचण्ड रूप धारण करते समय आपकी जैसी आकृति होती है, उसको मैं प्रणाम करती हूँ । क्रमशः आठ मासतक पृथ्वीके जलरूप रसको ग्रहण करनेके लिये आप जिस अत्यन्त तीव्र रूपको धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ । आपका वह स्वरूप अग्नि और सोमसे संयुक्त होता है । आप गुणात्माको नमस्कार है । विभावसो ! आपका जो रूप ऋक्, यजुः और सामकी एकतासे त्रयीसंज्ञक इस विश्वके रूपमें तपता है, उसको नमस्कार है । सनातन ! उससे भी परे जो ॐ नामसे प्रतिपादित स्थूल एवं सूक्ष्मरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणाम है ।*

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दिनोंतक आराधना करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया ।

अदिति बोलीं—जगत्के आदिकारण भगवान् सूर्य ! आप मुझपर प्रसन्न हों । गोपते ! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती । दिवाकर ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीभाँति दर्शन हो सके । भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो ! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं । आप उनपर कृपा करें ।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई देवीको स्पष्ट दर्शन देकर कहा—'देवि ! आपकी जो इच्छा हो उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लो ।'

---

* नमस्तुभ्य परं सूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम् । धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम् ॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते । आददानस्य सद्रूप तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम् । बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतोऽस्मि तम् ॥
समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने । यद्रूपमृग्यजुः साम्नामैक्येन तपते तव ॥
विश्वमेतत् त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो । ... ...
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम् । अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन ॥
(३२ । १२—१६)

अदिति बोलीं—देव ! आप प्रसन्न हों। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकी-का राज्य और यज्ञभाग छीन लिया है। गोपते ! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें। अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि ! मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया। उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मैं पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं। उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—'तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती है ?' तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा। मैंने इसे मारा नहीं है, यह अपने शत्रुओंका मारनेवाला होगा।' यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया। वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा। उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया। स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया। उसके श्रीअङ्गोंकी आभा पद्मपत्रके समान श्याम थी। उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया। इसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप मुनिको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था—**'त्वया मारितमण्डम्'** (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र मार्तण्डके नामसे विख्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले, अपने शत्रुभूत असुरोंका संहार करेगा।' यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये। तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानवोंने भी आकर उनका सामना किया। उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये। फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। उन्होंने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया। तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये। भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारका पालन करने लगे। ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भाँति शोभा पाते थे। वे आगमें तपाये हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे। उनका विग्रह अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था।

श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप पुनः हमें सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये।

ब्रह्माजी बोले—स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके नष्ट हो जानेपर जिस समय सम्पूर्ण लोक अन्धकारमें विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व)का आविर्भाव हुआ। उस बुद्धिसे पञ्चमहाभूतोंका प्रवर्तक अहंकार प्रकट हुआ। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँच महाभूत हुए। तदनन्तर एक अण्ड उत्पन्न हुआ। उसमें ये सातों लोक प्रतिष्ठित थे। सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी थी। उसीमें मैं, विष्णु और महादेवजी भी थे। वहाँ सब लोग तमोगुणसे अभिभूत एवं विमूढ थे और परमेश्वरका ध्यान करते थे। तदनन्तर अन्धकारको

मुँहसे हमने यह भी सुना है कि वे बारह स्वरूपोंमें प्रकट हुए। वे तेजकी राशि और महान् तेजस्वी होकर किसी स्त्रीके गर्भसे कैसे प्रकट हुए, इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है।

ब्रह्माजी बोले—प्रजापति दक्षके साठ कन्याएँ हुईं, जो श्रेष्ठ और सुन्दरी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीसे किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी भयङ्कर दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। इन दक्ष-सुताओंके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। वे सात्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया है। परंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। अतः वे मिलकर उन्हे कष्ट पहुँचाने लगे। माता अदितिने देखा, दैत्यो और दानवोने मेरे पुत्रोंको अपने स्थानसे हटा दिया और सारी त्रिलोकी नष्टप्राय कर दी। तब उन्होने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् प्रयत्न किया। वे नियमित आहार करके कठोर नियमका पालन करती हुई एकाग्रचित्त हो आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् भास्करका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन्! आप अत्यन्त सूक्ष्म, परम पवित्र और अनुपम तेज धारण करते हैं। तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार तथा सनातन देवता हैं। आपको नमस्कार है। गोपते! जगतका उपकार करनेके लिये मैं आपकी स्तुति—आपसे प्रार्थना करती हूँ। प्रचण्ड रूप धारण करते समय आपकी जैसी आकृति होती है, उसको मैं प्रणाम करती हूँ। क्रमशः आठ मासतक पृथ्वीके जलरूप रसको ग्रहण करनेके लिये आप जिस अत्यन्त तीव्र रूपको धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। आपका वह स्वरूप अग्नि और सोमसे संयुक्त होता है। आप गुणात्माको नमस्कार है। विभावसो! आपका जो रूप ऋक्, यजुः और सामकी एकतासे त्रयीसंज्ञक इस विश्वके रूपमें तपता है, उसको नमस्कार है। सनातन! उससे भी परे जो ॐ नामसे प्रतिपादित स्थूल एवं सूक्ष्मरूप निर्मल स्वरूप है, उसको मेरा प्रणाम है।*

ब्रह्माजी कहते हैं—इस प्रकार बहुत दिनोंतक आराधना करनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको अपने तेजोमय स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया।

अदिति बोलीं—जगत्के आदिकारण भगवान् सूर्य! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोपते! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके रूपका भलीभाँति दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें।

तब भगवान् भास्करने अपने सामने पड़ी हुई देवीको स्पष्ट दर्शन देकर कहा—'देवि! आपकी जो इच्छा हो उसके अनुसार मुझसे कोई एक वर माँग लो।'

---

* नमस्तुभ्य पर सूक्ष्म सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम्। धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम्॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते। आददानस्य सद्रूप तीव्रं तस्मै नमाम्यहम्॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम्। बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतोऽस्मि तम्॥
समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुः साम्नामैक्येन तपते तव॥
विश्वमेतत् त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो। ... ...
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम्। अस्थूलं स्थूलममल नमस्तस्मै सनातन॥
(३२। १२—१६)

अदिति बोलीं—देव ! आप प्रसन्न हों । अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकी-का राज्य और यज्ञभाग छीन लिया है । गोपते ! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें । अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें ।

भगवान् सूर्यने कहा—देवि ! मै अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा ।

यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं । तत्पश्चात् वर्षके अन्तमें देवमाता अदितिकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् सविताने उनके गर्भमें निवास किया । उस समय देवी अदिति यह सोचकर कि मै पवित्रतापूर्वक ही इस दिव्य गर्भको धारण करूँगी, एकाग्रचित्त होकर कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं । उनका यह कठोर नियम देखकर कश्यपजीने कुछ कुपित होकर कहा—'तू नित्य उपवास करके गर्भके बच्चेको क्यो मारे डालती है ?' तब वे भी रुष्ट होकर बोलीं—'देखिये, यह रहा गर्भका बच्चा । मैने इसे मारा नहीं है, यह अपने शत्रुओका मारनेवाला होगा ।' यों कहकर देवमाताने उसी समय उस गर्भका प्रसव किया । वह उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी अण्डाकार गर्भ सहसा प्रकाशित हो उठा । उसे देखकर कश्यपजीने वैदिक वाणीके द्वारा आदरपूर्वक उसका स्तवन किया । स्तुति करनेपर उस गर्भसे बालक प्रकट हो गया । उसके श्रीअङ्गोकी आभा पद्मपत्रके समान श्याम थी । उसका तेज सम्पूर्ण दिशाओमे व्याप्त हो गया । इसी समय अन्तरिक्षसे कश्यप मुनिको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'मुने ! तुमने अदितिसे कहा था—**'त्वया मारितमण्डम्'** (तूने गर्भके बच्चेको मार डाला), इसलिये तुम्हारा यह पुत्र मार्तण्डके नामसे विख्यात होगा और यज्ञभागका अपहरण करनेवाले, अपने शत्रुभूत असुरोका संहार करेगा ।' यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव हतोत्साह हो गये । तत्पश्चात् देवताओंसहित इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा । दानवोंने भी आकर उनका सामना किया । उस समय देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ । उस युद्धमे भगवान् मार्तण्डने दैत्योंकी ओर देखा, अतः वे सभी महान् असुर उनके तेजसे जलकर भस्म हो गये । फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही । उन्होने अदिति और मार्तण्डका स्तवन किया । तदनन्तर देवताओंको पूर्ववत् अपने-अपने अधिकार और यज्ञभाग प्राप्त हो गये । भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारका पालन करने लगे । ऊपर और नीचे सब ओर किरणें फैली होनेसे भगवान् सूर्य कदम्बपुष्पकी भाँति शोभा पाते थे । वे आगमे तपाये हुए गोलेके सदृश दिखायी देते थे । उनका विग्रह अधिक स्पष्ट नहीं जान पड़ता था ।

श्रीसूर्यदेवकी स्तुति तथा उनके अष्टोत्तरशत नामोंका वर्णन

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आप पुनः हमे सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनाइये ।

ब्रह्माजी बोले—स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंके नष्ट हो जानेपर जिस समय सम्पूर्ण लोक अन्धकारमे विलीन हो गये थे, उस समय सबसे पहले प्रकृतिसे गुणोंकी हेतुभूत समष्टि बुद्धि (महत्तत्त्व)का आविर्भाव हुआ । उस बुद्धिसे पञ्चमहाभूतोंका प्रवर्तक अहंकार प्रकट हुआ । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पॉच महाभूत हुए । तदनन्तर एक अण्ड उत्पन्न हुआ । उसमे ये सातो लोक प्रतिष्ठित थे । सातो द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वी भी थी । उसीमे मै, विष्णु और महादेवजी भी थे । वहॉ सब लोग तमोगुणसे अभिभूत एवं विमूढ थे और परमेश्वरका ध्यान करते थे । तदनन्तर अन्धकारको

दूर करनेवाले एक महातेजस्वी देवता प्रकट हुए। उस समय हमलोगोंने ध्यानके द्वारा जाना कि ये भगवान् सूर्य हैं। उन परमात्माको जानकर हमने दिव्य स्तुतियोंके द्वारा उनका स्तवन आरम्भ किया—'भगवन्! तुम आदिदेव हो। ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो। सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्ता भी तुम्हीं हो। तुम्हीं देवाधिदेव दिवाकर हो। सम्पूर्ण भूतों, देवताओं, गन्धर्वों, राक्षसों, मुनियों, किन्नरों, सिद्धों, नागों तथा पक्षियोंका जीवन तुमसे ही है। तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं महादेव, तुम्हीं विष्णु, तुम्हीं प्रजापति तथा तुम्हीं वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान् एवं वरुण हो। तुम्हीं काल हो, सृष्टिके कर्ता, धर्ता, संहर्ता और प्रभु भी तुम्हीं हो। नदी, समुद्र, पर्वत, बिजली, इन्द्रधनुष, प्रलय, सृष्टि, व्यक्त, अव्यक्त एवं सनातन पुरुष तुम्हीं हो। साक्षात् परमेश्वर तुम्हीं हो। तुम्हारे हाथ और पैर सब ओर हैं। नेत्र, मस्तक और मुख भी सब ओर हैं। तुम्हारे सहस्रों किरणें, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं। तुम सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हो। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हारा जो स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश बिखेरनेवाला और देवेश्वरोंके द्वारा भी कठिनतासे देखे जाने योग्य है, उसको हमारा नमस्कार है। देवता और सिद्ध जिसका सेवन करते हैं, भृगु, अत्रि और पुलह आदि महर्षि जिसकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं तथा जो अत्यन्त अव्यक्त है, उस तुम्हारे स्वरूपको हमारा प्रणाम है। सम्पूर्ण देवताओंमें उत्कृष्ट तुम्हारा जो रूप वेदवेत्ता पुरुषोंके द्वारा जानने योग्य, नित्य और सर्वज्ञानसम्पन्न है, उसको हमारा नमस्कार है। तुम्हारा जो स्वरूप इस विश्वकी सृष्टि करनेवाला, विश्वमय, अग्नि एवं देवताओंद्वारा पूजित, सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक और अचिन्त्य है, उसे हमारा प्रणाम है। तुम्हारा जो रूप यज्ञ, वेद, लोक तथा द्युलोकसे भी परे परमात्मा नामसे विख्यात है, उसको हमारा नमस्कार है। जो अविज्ञेय, अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यय, अनादि और अनन्त है, आपके उस स्वरूपको हमारा प्रणाम है। प्रभो! तुम कारणके भी कारण हो, तुमको बारंबार नमस्कार है। पापोंसे मुक्त करनेवाले तुम्हें प्रणाम है, प्रणाम है। तुम दैत्योंको पीड़ा देनेवाले और रोगोंसे छुटकारा दिलानेवाले हो। तुम्हें अनेकानेक नमस्कार है। तुम सबको वर, सुख, धन और उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाले हो। तुम्हें बारंबार नमस्कार है*।

* आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः। आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः॥
जीवनः सर्वभूतानां देवगन्धर्वरक्षसाम्। मुनिकिंनरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम्॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः। वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान् वरुणस्तथा॥
त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता भर्ता तथा प्रभुः। सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च॥
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः। ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः। सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः॥
सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः। भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जनः॥
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम्। दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः। स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः॥
वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम्। सर्वदेवादिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च वैश्वानरसुरार्चितम्। विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः॥
परं यज्ञात्परं वेदात्परं लोकात्परं दिवः। परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः॥
अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम्। अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः॥
नमो नमः कारणकारणाय नमो नमः पापविमोचनाय। नमो नमस्ते दितिजार्दनाय नमो नमो रोगविमोचनाय॥
नमो नमः सर्ववरप्रदाय नमो नमः सर्वसुखप्रदाय। नमो नमः सर्वधनप्रदाय नमो नमः सर्वमतिप्रदाय॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोमय रूप धारण करनेवाले भगवान् भास्करने कल्याणमयी वाणीमे कहा—'आपलोगोंको कौन-सा वर प्रदान किया जाय ?'

देवताओंने कहा—प्रभो ! आपका रूप अत्यन्त तेजोमय है, इसके तापको कोई सह नहीं सकता। अतः जगत्के हितके लिये यह सबके सहने योग्य हो जाय।

तब 'एवमस्तु' कहकर आदिकर्ता भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके कार्य सिद्ध करनेके लिये समय-समयपर गर्मी, सर्दी और वर्षा करने लगे। तदनन्तर ज्ञानी, योगी, ध्यानी तथा अन्यान्य मोक्षाभिलाषी पुरुष अपने हृदय-मन्दिरमे स्थित भगवान् सूर्यका ध्यान करने लगे। समस्त शुभ लक्षणोसे हीन अथवा सम्पूर्ण पातकोसे युक्त ही क्यो न हो, भगवान् सूर्यकी शरण लेनेसे मनुष्य सब पापोसे तर जाता है। अग्निहोत्र, वेद तथा अधिक दक्षिणावाले यज्ञ, भगवान् सूर्यकी भक्ति एव नमस्कारकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। भगवान् सूर्य तीर्थोमे सर्वोत्तम तीर्थ, मङ्गलोमे परम मङ्गलमय और पवित्रोमे परम पवित्र है। अतः विद्वान् पुरुष उनकी शरण लेते है। जो इन्द्र आदिके द्वारा प्रशसित सूर्यदेवको नमस्कार करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो अन्तमे सूर्यलोकमे चले जाते हैं।

मुनियोंने कहा—ब्रह्मन् ! हमारे मनमे चिरकालसे यह इच्छा हो रही है कि भगवान् सूर्यके एक सौ आठ नामोका वर्णन सुने। आप उन्हे बतानेकी कृपा करे।

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो ! भगवान् भास्करके परम गोपनीय एक सौ आठ नाम, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले हैं, बतलाता हूँ, सुनो। ॐ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा (पोषक), अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान् (किरणोवाले), अज (अजन्मा), काल, मृत्यु, धाता (धारण करनेवाले), प्रभाकर (प्रकाशका खजाना), पृथ्वी, आप् (जल), तेज, ख (आकाश), वायु, परायण (शरण देनेवाले), सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक (मगल), इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु (प्रज्वलित किरणोवाले), शुचि (पवित्र), सौरि (सूर्यपुत्र मनु), शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द (कार्तिकेय), वैश्रवण (कुबेर), यम, वैद्युत (बिजलीमे रहनेवाले), अग्नि, जाठराग्नि, ऐन्धन (ईन्धनमे रहनेवाले), अग्नि, तेजःपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, कृत (सत्ययुग), त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वामराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा (रात्रि), याम (प्रहर), क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु (अग्नि), पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद (अन्धकारको भगानेवाले), वरुण, सागर, अंश, जीमूत (मेघ), जीवन, अरिहा (शत्रुओंका नाश करनेवाले), भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक (प्रलयकालीन), अग्नि, सर्वादि, अलोलुप (निर्लोभ), अनन्त, कपिल, भानु, कामद (कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सर्वतोमुख (सब ओर मुखवाले), जय, विशाल, वरद, सर्वभूतनिषेवित, मन, सुपर्ण (गरुड), भूतादि, शीघ्रग (शीघ्र चलनेवाले), प्राणधारण, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिपुत्र, द्वादशात्मा (बारह स्वरूपोवाले), रवि, दक्ष, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप (स्वर्ग), देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रेय तथा करुणान्वित (दयालु)*—ये

* ॐ सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च॥
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः सौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः॥

अमित तेजस्वी एवं कीर्तन करने योग्य भगवान् सूर्यके एक सौ आठ सुन्दर नाम मैंने बताये हैं। जो मनुष्य देवश्रेष्ठ भगवान् सूर्यके इस स्तोत्रका शुद्ध एवं एकाग्र चित्तसे कीर्तन करता है, वह शोकरूपी दावानल-समुद्रसे मुक्त हो जाता और मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

भागवतीय सौर-सन्दर्भ

[इस भागवतीय सन्दर्भमें सूर्यके रथ और उसकी गति, भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गतियाँ, शिशुमारचक्र तथा राहु आदिकी स्थिति एवं नीचेके लोकोंका पौराणिक पद्धतिसे रोचक और कौतूहलपूर्ण वर्णन है।]

सूर्यके रथ और उसकी गति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! परिमाण और लक्षणोंके सहित इस भूमण्डलका कुल इतना ही विस्तार है, जो हमने तुम्हें सुना दिया। इसीके अनुसार विद्वान्लोग द्युलोकका भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना, मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेसे दूसरेका भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भूलोकके परिमाणसे ही द्युलोकका भी परिमाण जान लेना चाहिये। इन दोनोंके बीचमें अन्तरिक्षलोक है। यह इन दोनोंका संधिस्थान है। इसके मध्यभागमें स्थित ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको तपाते और प्रकाशित करते रहते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् (समान) नामोंसे क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियोंसे चलते हुए, समयानुसार मकरादि राशियोंमें ऊँचे-नीचे और समान स्थानोंमें जाकर दिन-रातको बड़ा-छोटा या समान करते हैं। जब भगवान् सूर्य मेष या तुला राशिपर आते हैं, तो दिन-रात समान हो जाते हैं; जब वृष आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं तो प्रतिमास रात्रियोंमें एक-एक घड़ी कम होती जाती है और उसी हिसाबसे दिन बढ़ते जाते हैं। जब वृश्चिक आदि पाँच राशियोंमें चलते हैं, तब दिन और रात्रियोंमें इसके विपरीत परिवर्तन होता है अर्थात् दिन प्रतिमास एक-एक घड़ी घटते जाते हैं और रात्रियाँ बढ़ती जाती हैं। इस प्रकार दक्षिणायन आरम्भ होनेतक दिन बढ़ते जाते हैं और उत्तरायण लगनेतक रात्रियाँ। (उत्तरायणमें दिन बड़ा, रात छोटी होती है।)

इस प्रकार पण्डितजन मानसोत्तर पर्वतपर सूर्यकी परिक्रमाका मार्ग नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन बताते हैं। उस पर्वतपर मेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवधानी नामकी पुरी है, दक्षिणकी ओर यमराजकी संयमनी पुरी

वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कला काष्ठा मुहूर्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोंऽशुश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिषेवितः॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः॥

(—३३ । २८–४१)

तथा पश्चिममे वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी और उत्तरमे चन्द्रमाकी विभावरीपुरी है । इन पुरियोमे मेरुके चारो ओर समय-समयपर सूर्योदय, मध्याह्न, सायंकाल और अर्धरात्रि होते रहते हैं । इन्हींके कारण सम्पूर्ण जीवोंकी प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है । राजन् ! जो लोग सुमेरुपर रहते हैं, उन्हे तो सूर्यदेव सदा मध्याह्न-कालीन रहकर ही तपाते रहते हैं । वे अपनी गतिके अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोंकी ओर जाते हुए यद्यपि मेरुको बायीं ओर रखकर चलते हैं तथापि सारे ज्योतिर्मण्डलको घुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवह वायुद्वारा घुमा दिये जानेसे वे उसे दायीं ओर रखकर चलते जान पड़ते हैं । जिस पुरीमें भगवान् सूर्यका उदय होता है, उसके ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें वे अस्त मालूम होते होंगे और वे जहाँ लोगोंको पसीने-पसीने करके तपा रहे होंगे; उसके ठीक सामनेकी ओर आधीरात होनेके कारण वे उन्हे निद्रावश किये होंगे । जिन लोगोंको मध्याह्नके समय वे स्पष्ट दीख रहे होंगे, वे ही यदि किसी प्रकार पृथ्वीके दूसरी ओर पहुँच जायँ तो उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे ।

सूर्यदेव जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते हैं, तो पंद्रह घडीमे वे सवा दो करोड़ और साढे बारह लाख योजनसे कुछ—प्रायः पचीस हजार वर्ष—अधिक चलते है । फिर इसी क्रमसे वे वरुण और चन्द्रमाकी पुरियोको पार करके पुनः इन्द्रकी पुरीमे पहुँचते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी ज्योतिश्चक्रमे अन्य नक्षत्रोंके साथ-साथ उदित और अस्त होते रहते हैं । इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्त्तमे चौतीस लाख आठ सौ योजनके हिसाबसे चलता हुआ इन चारो पुरियोमे घूमता रहता है । इसका संवत्सर नामका एकचक्र (रथ) बतलाया जाता है । उसमें मासरूप बारह अरे हैं, ऋतुरूप छः नेमियाँ (हाल) हैं, चौमासेरूप तीन नाभियाँ (आँवन) हैं । इस रथकी धुरीका एक सिरा मेरु पर्वतकी चोटीपर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर । इसमे लगा हुआ यह पहिया कोल्हूके पहियेके समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वतके ऊपर चक्कर लगाता है । इस धुरीमे—जिसका मूल भाग जुड़ा हुआ है, ऐसी एक धुरी और है, वह लंबाईमे इससे चौथाई है । उसका ऊपरी भाग तैलयन्त्रके धुरेके समान ध्रुवलोकसे लगा हुआ है ।

इस रथमे बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा और नौ लाख योजन चौडा है । इसका जूआ भी छत्तीस लाख योजन ही लम्बा है । उसमें अरुण नामक सारथिने गायत्री आदि छन्दोंके-से नामवाले सात घोड़े जोत रक्खे हैं । वे ही इस रथपर बैठे हुए भगवान् सूर्यको ले चलते हैं । सूर्यदेवके आगे उन्हींकी ओर मुँह करके बैठे हुए अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं । उस रथके आगे अँगूठेके पोरुएके बराबर आकारवाले बालखिल्यादि साठ हजार ऋषि स्वस्तिवाचनके लिये नियुक्त हैं । वे उनकी स्तुति करते रहते हैं । इनके सिवा ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता भी—जो कुल मिलाकर चौदह हैं, किंतु जोड़ेसे रहनेके कारण सात गण कहे जाते हैं—प्रत्येक मासमे भिन्न-भिन्न नामोवाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मोसे प्रत्येक मासमे भिन्न-भिन्न नाम धारण करनेवाले आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी दो-दो मिलकर उपासना करते हैं । इस प्रकार भगवान् सूर्य भूमण्डलके नौ करोड इक्यावन लाख योजन लंबे घेरेमेसे प्रत्येक क्षणमें दो हजार दो योजनकी दूरी पार कर लेते है ।

भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गति

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! आपने जो कहा कि यद्यपि 'भगवान् सूर्य राशियोकी ओर जाते समय मेरु और ध्रुवको दायीं ओर रखकर चलते मालूम होते हैं; किंतु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं होती'—इस विषयको हम किस प्रकार समझें ?

श्रीशुकदेवजी कहते हैं— राजन् ! जैसे कुम्हारके घूमते हुए चाकपर दूसरी ओर चलनेवाली चींटीकी गति भी चाककी गतिके अनुसार विपरीत दिशामे जान पड़ती है; क्योकि वह भिन्न-भिन्न समयमें उस चक्रके भिन्न-भिन्न स्थानोमे देखी जाती है—उसी प्रकार नक्षत्र और राशियोसे उपलक्षित कालचक्रमें पड़कर ध्रुव और मेरुको दाये रखकर घूमनेवाले सूर्य आदि ग्रहोकी गति वास्तवमे उससे विपरीत ही है; क्योकि वे कालभेदसे भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रोंमें देख पड़ते हैं। वेद और विद्वान् लोग भी जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोके कल्याण और कर्मोकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह-कालको बारह मासोमे विभक्तकर वसन्त आदि छः ऋतुओंमे उनके यथायोग्य गुणोका विधान करते हैं। इस लोकमे वर्णाश्रमधर्मका अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित छोटे-बडे कर्मोसे इन्द्रादि देवताओके रूपमे और योगके साधनोंसे अन्तर्यामिरूपमे उनकी श्रद्धापूर्वक आराधना करके सुगमतासे ही परमपद प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोकी आत्मा हैं। वे पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमे स्थित आकाशमण्डलके भीतर कालचक्रमे स्थित होकर बारह मासोको भोगते हैं, जो संवत्सरके अवयव हैं और मेष आदि राशियोके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेसे प्रत्येक मास चन्द्रमानसे शुक्ल और कृष्ण—दो पक्षका, पितृमानसे एक रात और एक दिनका तथा सौरमानसे सवा दो नक्षत्रका बताया जाता है। जितने कालमे सूर्यदेव इस संवत्सरका छठा भाग भोगते हैं, उसका वह अवयव 'ऋतु' कहा जाता है। आकाशमे भगवान् सूर्यका जितना मार्ग है, उसका आधा वे जितने समयमें पार कर लेते हैं, उसे एक 'अयन' कहते हैं तथा जितने समयमें वे अपनी मन्द, तीव्र और समान गतिसे स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके सहित पूरे आकाशका चक्कर लगा जाते हैं, उसे अवान्तर-भेदसे संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर कहते हैं।

इसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। उनकी चाल बहुत तेज है, इसलिये ये सब नक्षत्रोंसे आगे रहते हैं। ये सूर्यके एक वर्षके मार्गको एक मासमें, एक मासके मार्गको सवा दो दिनोमें और एक पक्षके मार्गको एक ही दिनमें तै कर लेते हैं। ये कृष्णपक्षमें क्षीण होती हुई कलाओंसे पितृगणके और शुक्लपक्षमें बढती हुई कलाओंसे देवताओंके दिन-रातका विभाग करते हैं तथा तीस-तीस मुहूर्त्तोंमे एक-एक नक्षत्रको पार करते हैं। अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण ये ही समस्त जीवोंके प्राण और जीवन हैं। ये जो सोलह कलाओंसे युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्वरूप भगवान् चन्द्रमा हैं—ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करते हैं, इसलिये इन्हें 'सर्वमय' कहते हैं।

चन्द्रमासे तीन लाख योजन ऊपर अभिजित्के सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं। भगवान्ने इन्हे कालचक्रमें नियुक्त कर रक्खा है। अतः ये मेरुको दायीं ओर रखकर घूमते रहते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखायी देते हैं। ये सूर्यकी शीघ्र, मन्द और समान गतियोके अनुसार उन्हींके समान कभी आगे, कभी पीछे और कभी साथ-साथ रहकर चलते हैं। ये वर्षा करनेवाले ग्रह हैं। इसलिये लोकोंके प्रायः सर्वदा ही अनुकूल रहते हैं। इनकी गतिसे ऐसा अनुमान होता है कि ये वर्षा रोकनेवाले ग्रहोंको शान्त कर देते हैं।

शुक्रकी व्याख्याके अनुसार ही बुधकी गति भी समझ लेनी चाहिये। ये चन्द्रमाके पुत्र शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर हैं। ये प्रायः मङ्गलकारी ही हैं;

किंतु जब सूर्यकी गतिका उल्लङ्घन करके चलते हैं तब बहुत अधिक आँधी, बादल और सूखाके भयकी सूचना देते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल हैं। वे यदि वक्रगतिसे न चले तो, एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षमे भोगते हुए बारहो राशियोको पार करते हैं। ये अशुभ ग्रह है और प्रायः अमङ्गलके सूचक हैं। इनके ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर भगवान् बृहस्पति है। ये यदि वक्रगतिसे न चले, तो एक-एक राशिको एक-एक वर्पमे भोगते है। ये प्रायः ब्राह्मणकुलके लिये अनुकूल रहते है।

बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर दिखायी देते हैं। ये तीस-तीस महीनेतक एक-एक राशिमे रहते हैं। अतः इन्हे सब राशियोंको पार करनेमे तीस वर्ष लग जाते है। ये प्रायः सभीके लिये अशान्तिकारक हैं। इनके ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर कश्यप आदि सप्तर्षि दिखायी देते है। ये सब लोकोंकी मङ्गल-कामना करते हुए ध्रुव-लोककी—जो भगवान् विष्णुका परमपद है—प्रदक्षिणा किया करते हैं।

शिशुमारचक्रका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सप्तर्षियोंसे तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान् विष्णुका परमपद कहते हैं। यहाँ उत्तानपादके पुत्र परम भगवद्भक्त ध्रुवजी विराजमान है। इनके साथ ही अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्मको भी नक्षत्ररूपसे नियुक्त किया गया था। ये सब एक साथ अत्यन्त आदरपूर्वक ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते रहते है। अब भी कल्पान्तपर्यन्त रहनेवाले लोक इन्हींके आधारपर स्थित हैं। इनके इस लोकका पराक्रम हम पहले (चौथे स्कन्धमे) वर्णन कर चुके है। सदा जागते रहनेवाले अव्यक्तगति भगवान् कालकी प्रेरणासे जो ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्गण निरन्तर घूमते रहते है, भगवान्‌ने उन सबके आधारस्तम्भरूपसे ध्रुवलोकको ही नियुक्त किया है। अतः यह एक ही स्थानमे रहकर सदा प्रकाशित होता है। जिस प्रकार दायँ चलानेके समय अनाजको खूँदनेवाले पशु छोटी, बड़ी और मध्यम रस्सीमे बँधकर क्रमशः निकट, दूर और मध्यमे रहते हुए खंभेके चारो ओर मण्डल बाँधकर घूमते रहते है, उसी प्रकार सारे नक्षत्र और ग्रहगण बाहर-भीतरके क्रमसे इस कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवलोकका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पके अन्ततक घूमते रहते है। जिस प्रकार मेघ और बाज आदि पक्षी अपने कर्मोकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमे उड़ते रहते है, उसी प्रकार ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुपके संयोगवश अपने-अपने कर्मोके अनुसार चक्कर काट रहे हैं, पृथ्वीपर नहीं गिरते।

कोई-कोई पुरुप भगवान्‌की योगमायाके आधार-स्थित इस ज्योतिश्चक्रका शिशुमार (जलजन्तु विशेप) के रूपमे वर्णन करते है। यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचेकी ओर है। इसकी पूँछके सिरेपर ध्रुव स्थित है। पूँछके मध्यभागमे प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म है। पूँछकी जड़में धाता और विधाता है। इसके कटिप्रदेशमे सप्तर्षि है। यह शिशुमार दाहिनी ओर सिकुडकर कुण्डली मारे हुए है। ऐसी स्थितिमे अभिजित्‌से लेकर पुनर्वसुपर्यन्त जो उत्तरायणके चौदह नक्षत्र है, वे इसके दाहिने भागमे हैं और पुष्यसे लेकर उत्तराषाढपर्यन्त जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र है, वे बाये भागमे है। लोकमे भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तो उसकी दोनो ओरके अङ्गोकी संख्या समान रहती है, उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामे भी समानता है। इसकी पीठमे अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ़ नामके तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमे आकाशगङ्गा है। राजन्! इसके दाहिने और बाये कटितटोमे पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र

हैं, पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं तथा दाहिने और बायें नथुनोंमें क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढ हैं। इसी प्रकार दाहिने और बायें नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वाषाढ एवं दाहिने और बायें कानोंमें धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायनके आठ नक्षत्र बायीं पसलियोंमें और विपरीत-क्रमसे मृगशिरा आदि उत्तरायणके आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियोंमें हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा—ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बायें कंधोंकी जगह हैं। इसकी ऊपरकी थूथनीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोड़ीमें नक्षत्ररूप यम, मुखोंमें मङ्गल, लिङ्गप्रदेशमें शनि, कुम्भमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं।

राजन्! यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय स्वरूप है। इसका नित्यप्रति सायंकालके समय पवित्र और मौन होकर चिन्तन करना चाहिये तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—**'ॐ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि।'** (सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्रस्वरूप, सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका नमस्कारपूर्वक हम ध्यान करते हैं।) तीनों काल इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषके पापोंको भगवान् नष्ट कर देते हैं। ग्रह, नक्षत्र और तारोंके रूपमें भी वे ही प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसा समझकर जो पुरुष प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों समय उनके आधिदैविक स्वरूपका नित्यप्रति चिन्तन और वन्दन करता है, उसके उस समय किये हुए पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

राहु आदिकी स्थिति और नीचेके अतल आदि लोकोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुछ लोगोंका कथन है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रोंके समान घूमता है। इसने भगवान्‌की कृपासे ही देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है, स्वयं यह सिंहिका-पुत्र असुराधम होनेके कारण किसी प्रकार इस पदके योग्य नहीं है। इसके जन्म और कर्मोंका हम आगे वर्णन करेंगे। सूर्यका जो यह अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है और राहुका तेरह हजार योजन। अमृत-पानके समय राहु देवताके वेषमें सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें आकर बैठ गया था। उस समय सूर्य और चन्द्रमाने इसका भेद खोल दिया था। उस वैरको याद करके यह अमावस्या और पूर्णिमाके दिन उनपर आक्रमण करता है। यह देखकर भगवान्‌ने सूर्य और चन्द्रमाकी रक्षाके लिये उन दोनोंके पास अपने उस प्रिय आयुध सुदर्शनचक्रको नियुक्त कर दिया जो निरन्तर साथ घूमता रहता है, इसलिये राहु उसके असह्य तेजसे उद्विग्न और चकितचित्त होकर मुहूर्तमात्र उनके सामने टिककर फिर सहसा लौट आता है। उसके उतनी देर उनके सामने ठहरनेको ही लोग 'ग्रहण' कहते हैं।

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदिके स्थान हैं। उनके नीचे जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिखायी देते हैं, वहाँतक अन्तरिक्षलोक है। यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंका विहारस्थल है। उससे नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। जहाँतक हंस, गीध, बाज और गरुड़ आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहींतक इसकी सीमा है। पृथ्वीके विस्तार और स्थिति आदिका वर्णन तो हो ही चुका है। इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवर (भूगर्भस्थित बिल या लोक) हैं। ये एकके नीचे एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई-

चौड़ाई भी दस-दस हजार योजन ही है। ये भूमिबिल भी एक प्रकारके स्वर्ग ही है। इनमें स्वर्गसे भी अधिक विषय-भोग, ऐश्वर्य, आनन्द, संतान-सुख और धन-सम्पत्ति है। यहाँके वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडास्थलोंसे दैत्य, दानव और नाग तरह-तरहकी माया-मयी क्रीडाएँ करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करनेवाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवकलोग उनसे बड़ा प्रेम रखते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगोंमें बाधा डालनेकी इन्द्र आदिमे भी सामर्थ्य नहीं है।

श्रीमद्भागवतके हिरण्यमय पुरुष

(लेखक—श्रीरतनलालजी गुप्त)

शुक्लयजुर्वेदके विभ्राटसूक्तके ऋषि भगवान् आदित्यको **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** के रूपमे स्तवन करते हुए भाव-विभोर हो उठते है। उनकी ऋषि-चेतनामे ये देवताओंके महान् अधिदेवता द्यौ, पृथ्वी एवं अन्तरिक्षको अपने विविध विचित्र वर्णोके रश्मि-जालसे आहत करके स्थावर-जङ्गम समस्त देव एवं जीव-जगत्का पालन-पोषण करते हुए उनमे जीवनका आधान करते हैं। भगवान् विष्णुकी इस लोक-पालनी शक्तिका लोक-लोचनके समक्ष प्रतिनिधित्व करनेके कारण ही वेदोंमें यत्र-तत्र सर्वत्र सूर्यदेवको 'विष्णु' के नामसे अभिहित किया गया है। श्रीमद्भागवतमें महर्षि कृष्णद्वैपायनने भगवान् आदित्यको इसी रूपमें प्रस्तुत किया है—

'स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिष्वृतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥

(५ । २२ । ३)

वेद और क्रान्तदर्शी ऋषिजन जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण एवं कर्मोकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह-कालको बारह मासोंमें विभक्तकर वसन्त आदि छः ऋतुओंमें उनके अनुरूप गुणोंका विधान करते हैं।

अतएव जीव-जगत्के अन्तर्यामी नारायणरूपसे भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक उपासना अनायास ही परम पदकी प्राप्ति करानेवाली है। इसके प्रमाणरूपमे प्रस्तुत किया गया है—राजर्षि भरतको, जो भगवान् नारायणकी उपासनाका व्रत लेकर उड्डीयमान सूर्यमण्डलमे सूर्य-सम्बन्धिनी ऋचाओंके द्वारा हिरण्यमय पुरुष भगवान् नारायणकी आराधना करते हुए कहते हैं—भगवान् सूर्यनारायणका कर्मफलदायक तेज प्रकृतिसे परे है। उसीने स्वसङ्कल्पद्वारा इस जगत्की उत्पत्ति की है। फिर वही अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित्-शक्तिके द्वारा विषयलोलुप जीवोंकी रक्षा करता है, हम उसी बुद्धि-प्रवर्तक तेजकी शरण लेते है—

परोरजः सवितुर्जातवेदो
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे
हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥

(५ । ७ । १४)

इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदिकी सामर्थ्योंसे युक्त ये आदित्यदेव भगवान् नारायणके समान वेदमय भी हैं। जिस प्रकार सृष्टिके आदिकालमें श्रीभगवान् लोकपिता-मह ब्रह्माके हृदयमें वेदज्ञानको उदित करते हैं, ठीक उसी प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्यकी आराधनासे संतुष्ट होकर आदित्यदेवने उनको यजुर्वेदका वह मन्त्र प्रदान किया, जो अबतक किसी और ऋषिकी चेतनामें उद्भूत नहीं

हुआ था। इस प्रसङ्गमें महर्षि याज्ञवल्क्यने भगवान् आदित्यका जो उपस्थान किया है, उसमें वैदिक वाङ्मय एवं श्रीमद्भागवतपुराणकी सूर्य-सम्बन्धिनी मान्यताका समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—'मैं ॐकारस्वरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ। भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्के आत्मा और कालस्वरूप हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—चार प्रकारके प्राणी हैं, उन सबके हृदय-देशमें और बाहर आकाशके समान व्याप्त रहकर भी आप उपाधिके धर्मोंसे असङ्ग रहनेवाले अद्वितीय भगवान् ही हैं। आप ही क्षण, लव, निमेष आदि अवयवोंसे संघटित संवत्सरोंके द्वारा जलके आकर्षण-विकर्षणके (आदान-प्रदानके) द्वारा समस्त लोकोंकी जीवनयात्रा चलाते हैं। प्रभो! आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हैं। जो लोग तीनों समय वेदविधिसे आपकी उपासना करते हैं, उनके सारे पाप और दुःखोंके बीजको आप भस्म कर देते हैं। सूर्यदेव! आप सारी सृष्टिके मूल कारण एवं समस्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं। इसलिये हम आपके इस तेजोमय मण्डलका पूरी एकाग्रताके साथ ध्यान करते हैं। आप सबके आत्मा और अन्तर्यामी हैं। जगत्में जितने चराचर प्राणी हैं, सब आपके ही आश्रित हैं। आप ही उनके अचेतन मन, इन्द्रिय और प्राणोंके प्रेरक हैं।' (श्रीमद्भा० १२।६।६७—६९)

इसके अतिरिक्त भगवान् नारायणकी सूर्यदेवके रूपमें अभिव्यक्तिको प्रतिपादित करनेवाले अन्य साक्ष्य भी श्रीमद्भागवतमें वर्णित हुए हैं। गजेन्द्रमोक्षके समय भगवान् श्रीहरि **'छन्दोमयेन गरुडेन'** अर्थात् वेदमय वाहनसे जैसे वहाँ पहुँचते हैं, उसी प्रकार भगवान् सूर्यके रथका भी वहन गायत्री आदि नामवाले वेदमय अश्व करते हैं—

यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्य ।

(श्रीमद्भा० ५।२१।१५)

सत्राजित्के द्वारा भगवान् सूर्यकी उपासना करनेके फलस्वरूप उसकी पुत्री सत्यभामाको अपनी राजमहिषीके रूपमें अङ्गीकृत करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आदित्य-देवसे अपना अभेद प्रदर्शित किया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें भगवान् नारायणसे आदित्यदेवका अद्वैत सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार महर्षि वेदव्यासने **'योऽसावादित्ये पुरुषः'** तथा **'यमेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः, प्रजापतिस्तद्ब्रह्म'** इत्यादि श्रुति-वाक्योंकी परम्पराको अपनी विशिष्ट शैलीमें प्रस्तुत करके श्रीमद्भागवतकी वेदात्मकताको अक्षुण्ण रखा है।

भागवतकारने भगवान् आदित्यको निर्गुण-निराकार परब्रह्म परमात्माकी सगुण-साकार-अभिव्यक्ति बतलाया है। इनके दृश्यमान प्राकृत सौरमण्डलको भगवान् विष्णु-की अनादि अविद्यासे निर्मित बतलाया है। यही समस्त लोक-लोकान्तरोंमें भ्रमण करता है। वास्तवमें तो समस्त लोकोंके आत्मा भगवान् श्रीहरि ही अन्तर्यामीरूपसे सूर्य बने हुए हैं। वे ही समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल हैं। वे यद्यपि एक ही हैं तथापि ऋषियोंने उनका अनेक रूपोंमें वर्णन किया है।

भगवान् सूर्यकी द्वादश मासकी विभूतियोंके वर्णनके प्रसङ्गमें व्यासदेव इस बातका हमें पुनः स्मरण करा देते हैं कि ये आदित्यरूप भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रातःकाल और सायंकाल स्मरण करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं—

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः।
स्मरतां संध्ययोर्नृणां हरन्त्यंहो दिने दिने॥

(श्रीमद्भा० १२।११।४५)

श्रीविष्णुपुराणमें सूर्य-संदर्भ

(द्वितीय अंश, आठवें अध्यायसे बारहवें अध्यायतक)

[श्रीविष्णुपुराणके मूलवक्ता मुनिसत्तम श्रीपराशरजी हैं। इसमें सूर्य-सम्बन्धी खगोलीय विवरण विशेष द्रष्टव्य हैं। श्रीपराशरजीके ब्रह्माण्डकी स्थितिका वर्णन कर चुकनेपर श्रीसूतजीने सूर्यादिके संस्थान और प्रमाण—*'सूर्यादीनां च संस्थानं प्रमाणं मुनिसत्तम'*—के सम्बन्धमें प्रश्न किया है। उस प्रश्नके उत्तरमें प्रकृत-पुराणमें सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था, कालचक्र, लोकपाल, ज्योतिश्चक्र, शिशुमार-चक्र, द्वादश सूर्यों एवं अधिकारियोंके नाम, सूर्यशक्ति, वैष्णवी-शक्ति तथा नवग्रहोंका वर्णन और लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्यानका उपसंहार किया गया है। यह वर्णन रोचक एवं वैज्ञानिक जिज्ञासाका शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत करता है।]

आठवाँ अध्याय

सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था तथा कालचक्र और लोकपाल आदिका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे सुव्रत ! मैंने तुमसे यह ब्रह्माण्डकी स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति और उनके परिमाण सुनो। 'मुनिश्रेष्ठ ! सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है तथा इससे दूना उसका ईषा-दण्ड (जूआ और रथके बीचका भाग) है। उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लंबा है, जिसमे उसका पहिया लगा हुआ है। (पूर्वाह्ण, मध्याह्न और पराह्णरूप) तीन नाभि, (परिवत्सरादि) पाँच अरे और (षड्ऋतुरूप) छः नेमिवाले उस अक्षयस्वरूप संवत्सरात्मक चक्रमे सम्पूर्ण कालचक्र स्थित है। सात छन्द ही उसके घोड़े हैं। उनके नाम सुनो; गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति—ये छन्द ही सूर्यके सात घोड़े कहे गये हैं। महामते ! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस हजार योजन लंबा है। दोनो धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युगार्द्धों (जूओं) का परिमाण है। इनमेसे छोटा धुरा उस रथके एक युगार्द्ध (जूए) के सहित ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे धुरेका चक्र मानसोत्तरपर्वतपर स्थित है।

इस मानसोत्तर पर्वतके पूर्वमे इन्द्रकी, दक्षिणमें यमकी, पश्चिममे वरुणकी और उत्तरमे चन्द्रमाकी पुरी है। उन पुरियोके नाम सुनो। इन्द्रकी पुरी वस्वौकसारा है, यमकी संयमनी है, वरुणकी सुखा है तथा चन्द्रमाकी विभावरी है। मैत्रेय ! ज्योतिश्चक्रके सहित भगवान् भानु दक्षिणदिशामें प्रवेशकर छोड़े हुए बाणके समान तीव्र वेगसे चलते हैं।

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं और रागादि क्लेशोके क्षीण हो जानेपर वे ही क्रममुक्तिभागी योगीजनोंके देवयान नामक श्रेष्ठ मार्ग हैं। मैत्रेय ! सभी द्वीपोमें सर्वदा मध्याह्न तथा मध्यरात्रिके समय सूर्यदेव मध्य-आकाशमे सामनेकी ओर रहते हैं*। इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। ब्रह्मन् ! समस्त दिशा और विदिशाओमें जहाँके लोग (रात्रिका अन्त होनेपर) सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं, उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमे सूर्यका तिरोभाव होता है, वहीं

* अर्थात् जिस द्वीप या खण्डमे सूर्यदेव मध्याह्नके समय सम्मुख पड़ते हैं, उसकी समान रेखापर दूसरी ओर स्थित द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

उसका अस्त कहा जाता है । सर्वदा एक रूपसे स्थित सूर्यदेवका वास्तवमें न उदय होता है और न अस्त । केवल उनका दीखना और न दीखना ही उनके उदय और अस्त हैं । मध्याह्नकालमें इन्द्रादिमेंसे किसीकी (पुरियोंके सहित) तीन पुरियों और दो कोणों (विदिशाओं) को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि कोणोंमेंसे किसी एक कोणमें प्रकाशित होते हुए वे (पार्श्ववर्ती दो कोणोंके सहित) तीन कोण और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं । सूर्यदेव उदय होनेके अनन्तर मध्याह्नपर्यन्त अपनी बढ़ती हुई किरणोंसे तपते हैं । फिर क्षीण होती हुई किरणोंसे अस्त हो जाते हैं* ।

सूर्यके उदय और अस्तसे ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओंकी व्यवस्था हुई है । वास्तवमें तो वे जिस प्रकार पूर्वसे प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार पश्चिम तथा पार्श्ववर्तिनी (उत्तर और दक्षिण) दिशाओंमें भी करते हैं । सूर्यदेव देवपर्वत सुमेरुके ऊपर स्थित ब्रह्माजीकी सभासे अतिरिक्त और सभी स्थानोंको प्रकाशित करते हैं । उनकी जो किरणें ब्रह्माजीकी सभामें जाती हैं, वे उसके तेजसे निरस्त होकर उल्टी लौट आती हैं । सुमेरु पर्वत समस्त द्वीप और वर्षोंके उत्तरमें है, इसलिये उत्तर दिशामें (मेरुपर्वतपर) सदा (एक ओर) दिन और दूसरी ओर रात रहती है । रात्रिके समय सूर्यके अस्त हो जानेपर उनका तेज अग्निमें प्रविष्ट हो जाता है । इसलिये उस समय अग्नि दूरसे ही प्रकाशित होने लगती है । इसी प्रकार हे द्विज ! दिनके समय अग्निका तेज सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है, अतः अग्निके संयोगसे ही सूर्य अत्यन्त प्रखरतासे प्रकाशित होते हैं । इस प्रकार सूर्य और अग्निके प्रकाश तथा उष्णतामय तेज परस्पर मिलकर दिन-रातमें वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं ।

मेरुके दक्षिणी और उत्तरी भूम्यर्द्धमें सूर्यके प्रकाशित होते समय अन्धकारमयी रात्रि और प्रकाशमय दिन क्रमशः जलमें प्रवेश कर जाते हैं । दिनके समय रात्रिके प्रवेश करनेसे ही जल कुछ ताम्रवर्ण दिखायी देता है; किंतु सूर्यके अस्त हो जानेपर उसमें दिनका प्रवेश हो जाता है । इसलिये दिनके प्रवेशके कारण ही रात्रिके समय वह शुक्लवर्ण हो जाता है ।

इस प्रकार जब सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें पहुँचकर पृथ्वीका तीसवाँ भाग पार कर लेते हैं तो उनकी वह गति एक मुहूर्त्तकी होती है । (अर्थात् उतने भागके अतिक्रमण करनेमें उन्हें जितना समय लगता है, वही मुहूर्त्त कहलाता है ।) द्विजवर ! कुलाल-चक्र (कुम्हारके चाक) के सिरेपर घूमते हुए जीवके समान भ्रमण करते हुए ये सूर्य पृथ्वीके तीसों भागोंका अतिक्रमण करनेपर एक दिन-रात्रि करते हैं । द्विज ! उत्तरायणके आरम्भमें सूर्य सबसे पहले मकर-राशिमें जाते हैं । उसके पश्चात् वे कुम्भ और मीनराशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिमें जाते हैं । इन तीनों राशियोंको भोग चुकनेपर सूर्य रात्रि और दिनको समान करते हुए वैषुवती गतिका अवलम्बन करते हैं । (अर्थात् वे भूमध्य-रेखाके बीचमें ही चलते हैं ।) उसके अनन्तर नित्यप्रति रात्रि क्षीण होने लगती है और दिन बढ़ने लगता है । फिर (मेष तथा वृषराशिका अतिक्रमण कर) मिथुनराशिसे निकलकर उत्तरायणकी अन्तिम सीमापर उपस्थित हो वह कर्क-राशिमें पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करते हैं । जिस प्रकार कुलालचक्रके सिरेपर स्थित जीव अति शीघ्रतासे घूमता है, उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें अतिशीघ्रतासे चलते हैं । अतः वह अतिशीघ्रतापूर्वक वायुवेगसे चलते

* किरणोंकी वृद्धि, ह्रास एवं तीव्रता, मन्दता आदि सूर्यके समीप और दूर होनेसे मनुष्यके अनुभवके अनुसार कही गयी हैं । (वस्तुतः वे स्वरूपतः सदा समान हैं ।)

हुए अपने उत्कृष्ट मार्गको थोड़े समयमें ही पार कर लेते हैं। हे द्विज! दक्षिणायनमें दिनके समय शीघ्रता-पूर्वक चलनेसे उस समयके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको सूर्य बारह मुहूर्त्तोंमें पार कर लेते हैं। किंतु रात्रिके समय (मन्दगामी होनेसे) उतने ही नक्षत्रोंको अठारह मुहूर्त्तोंमें पार करते हैं। कुलाल-चक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार धीरे-धीरे चलता है, उसी प्रकार उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलते हैं, इसलिये उस समय वह थोड़ी-सी भूमि भी अतिदीर्घकालमें पार करते हैं। अतः उत्तरायणका अन्तिम दिन अठारह मुहूर्त्तका होता है, उस दिन भी सूर्य अति मन्द गतिसे चलते हैं। और ज्योतिश्चक्रार्धके साढ़े तेरह नक्षत्रोको एक दिनमें पार करते हैं, किंतु रात्रिके समय वह उतने ही (साढ़े तेरह) नक्षत्रोंको बारह मुहूर्त्तोंमें ही पार कर लेते हैं। अतः जिस प्रकार नाभिदेशमें चक्रके मन्द-मन्द घूमनेसे वहाँका मृतपिण्ड भी मन्दगतिसे घूमता है, उसी प्रकार ज्योतिश्चक्रके मध्यमें स्थित ध्रुव अति मन्द गतिसे घूमता है। मैत्रेय! जिस प्रकार कुलाल-चक्रकी नाभि अपने स्थानपर ही घूमती रहती है, उसी प्रकार ध्रुव भी अपने स्थानपर ही घूमता रहता है।

इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिण सीमाओंके मध्यमें मण्डलाकार घूमते रहनेसे सूर्यकी गति दिन अथवा रात्रिके समय मन्द अथवा शीघ्र हो जाती है। जिस अयनमे सूर्यकी गति दिनके समय मन्द होती है, उसमें रात्रिके समय शीघ्र होती है तथा जिस समय रात्रि-कालमे शीघ्र होती है, उस समय दिनमें मन्द हो जाती है। हे द्विज! सूर्यको सदा एक बराबर मार्ग ही पार करना पडता है। एक दिन-रात्रिमें ये समस्त राशियोंका भोग कर लेते हैं। सूर्य छः राशियोको रात्रिके समय भोगते हैं और छःको दिनके समय। दिनका बढना-घटना राशियोंके परिमाणानुसार ही होता है तथा रात्रिकी लघुता-दीर्घता भी राशियोंके परिमाणसे ही होती है। राशियोंके भोगानुसार ही दिन अथवा रात्रिकी लघुता एवं दीर्घता होती है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति रात्रिकालमें शीघ्र होती है तथा दिनमें मन्द। दक्षिणायनमे उनकी गति इसके विपरीत होती है।

रात्रि उषा कहलाती है तथा दिन व्युष्टि (प्रभात) कहा जाता है। इन उषा तथा व्युष्टिके बीचके समयको संध्या कहते हैं। इस अति दारुण और भयानक संध्याकालके उपस्थित होनेपर मंदेह नामक भयंकर राक्षसगण सूर्यको खाना चाहते हैं। मैत्रेय! उन राक्षसोको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय रहकर भी मरण नित्यप्रति हो। अतः सध्या-कालमें उनका सूर्यसे अति भीषण युद्ध होता है। महामुने! उस समय द्विजोत्तमगण जो ब्रह्मस्वरूप ॐकार तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल छोड़ते हैं, उन वज्रस्वरूप जलसे वे दुष्ट राक्षस दग्ध हो जाते हैं। अग्निहोत्रमें जो 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्रसे प्रथम आहुति दी जाती है, उससे सहस्रांशु दिननाथ देदीप्यमान हो जाते हैं। ॐकार जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन धामोसे युक्त भगवान् विष्णु हैं तथा सम्पूर्ण वाणियों (वेदों)के अधिपति हैं। उसके उच्चारणमात्रसे ही वे राक्षसगण नष्ट हो जाते हैं। सूर्य भगवान् विष्णुका अतिश्रेष्ठ अश एवं विकाररहित अन्तर्ज्योतिःस्वरूप हैं। ॐकार उनका वाचक है और वे उसे उन राक्षसोंके वधमें अत्यन्त प्रेरित करनेवाले हैं। उस ॐकारकी प्रेरणासे अतिप्रदीप्त होकर वह ज्योति मंदेह नामक सम्पूर्ण पापी राक्षसोको दग्ध कर देती है। इसलिये संध्योपासनकर्मका उल्लङ्घन कभी नहीं करना चाहिये। जो पुरुष संध्योपासन नहीं करता, वह भगवान् सूर्यका घात करता है। तदनन्तर (उन राक्षसोंका वध करनेके पश्चात्) भगवान् सूर्य संसारके पालनमें प्रवृत्त हो वालखिल्यादि ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होकर गमन करते हैं।

पंद्रह निमेष मिलकर एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त्त होता है और तीस मुहूर्त्तोंके सम्पूर्ण रात्रि-दिन होते हैं। दिनोंका ह्रास अथवा वृद्धि क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि दिवसांशोंके ह्रास-वृद्धिके कारण होते हैं; किंतु दिनोंके घटते-बढ़ते रहनेपर भी संध्या सर्वदा समान भावसे एक मुहूर्त्तकी ही होती है। उदयसे लेकर सूर्यकी तीन मुहूर्त्तकी गतिके कालको 'प्रातःकाल' कहते हैं। यह सम्पूर्ण दिनका पाँचवाँ भाग होता है। इस प्रातःकालके अनन्तर तीन मुहूर्त्तका समय 'सङ्गव' कहलाता है तथा सङ्गवकालके पश्चात् तीन मुहूर्त्तका 'मध्याह्न' होता है। मध्याह्नकालसे पीछेका समय 'अपराह्न' कहलाता है। इस काल भागको भी बुधजन तीन मुहूर्त्तका ही बताते हैं। अपराह्नके बीतनेपर 'सायाह्न' आता है। इस प्रकार (सम्पूर्ण दिनमें) पंद्रह मुहूर्त्त और (प्रत्येक दिवसांशमें) तीन मुहूर्त्त होते हैं।

वैषुवत् दिवस पंद्रह मुहूर्त्तका होता है; किंतु उत्तरायण और दक्षिणायनमें क्रमशः उसके वृद्धि और ह्रास होने लगते हैं। इस प्रकार उत्तरायणमें दिन रात्रिका ग्रास करने लगता है और दक्षिणायनमें रात्रि दिनका ग्रास करती रहती है। शरद् और वसन्त-ऋतुके मध्यमें सूर्यके तुला अथवा मेष राशिमें जानेपर 'विषुव' होता है। उस समय दिन और रात्रि समान होते हैं। सूर्यके कर्कराशिमे उपस्थित होनेपर दक्षिणायन कहा जाता है और उसके मकरराशिपर आनेसे उत्तरायण कहलाता है।

ब्रह्मन्! मैंने जो तीस मुहूर्त्तके एक रात्रि-दिन कहे हैं, ऐसे पंद्रह रात्रि-दिवसका एक पक्ष कहा जाता है। दो पक्षका एक मास होता है, दो सौर मासकी एक ऋतु और तीन ऋतुका एक अयन होता है तथा दो अयन ही (मिलकर) एक वर्ष कहे जाते हैं। सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र—इन चार प्रकारके मासोंके अनुसार विविध रूपसे संवत्सरादि पाँच प्रकारके वर्ष कल्पित किये गये हैं। यह युग ही (मलमासादि) सब प्रकारके कालनिर्णयका कारण कहा जाता है। उनमें पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ वत्सर है। यह काल 'युग' नामसे विख्यात है।

श्वेतवर्षके उत्तरमें जो शृङ्गवान् नामसे विख्यात पर्वत है, उसके तीन शृङ्ग हैं, जिनके कारण यह शृङ्गवान् कहा जाता है। उनमेंसे एक शृङ्ग उत्तरमें, एक दक्षिणमें तथा एक मध्यमें है। मध्यशृङ्ग ही वैषुवत् है। शरद्-वसन्त ऋतुके मध्यमें सूर्य इस वैषुवत् शृङ्गपर आते हैं। अतः मैत्रेय! मेष अथवा तुलाराशिके आरम्भमें तिमिरापहारी सूर्यदेव विषुवत्-पर स्थित होकर दिन और रात्रिको समान-परिमाण कर देते हैं। उस समय ये दोनों पंद्रह-पंद्रह मुहूर्त्तके होते हैं। मुने! जिस समय सूर्य कृत्तिका नक्षत्रके प्रथम भाग अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखाके चतुर्थांश (अर्थात् वृश्चिकके आरम्भ) में हों अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांशका भोग करते हों और चन्द्रमा कृत्तिकाके प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह विषुव नामक अति पवित्र काल कहा जाता है। इस समय देवता, ब्राह्मण और पितृगणके उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दान-ग्रहणके लिये मानो देवताओंके खुले हुए मुखके समान है। अतः 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भलीभाँति जानना चाहिये।

राका और अनुमति—दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा सिनीवाली और कुहू—ये दो प्रकारकी अमावास्या† होती हैं। माघ-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ़—ये छः मास उत्तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्रपद, आश्विन-कार्तिक तथा अगहन-पौष—ये छः मास दक्षिणायन कहलाते हैं।

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं। द्विजवर ! सुधामा, कर्दमके पुत्र शङ्खपाद, हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतके चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

जो अगस्त्यके उत्तर तथा अवीथिके दक्षिणमें वैश्वानरमार्गसे भिन्न (मृगवीथि नामक) मार्ग है, वही पितृयानपथ है। उस पितृयानमार्गमें महात्मा मुनिजन रहते हैं। जो लोग अग्निहोत्री होकर प्राणियोंकी उत्पत्तिके आरम्भक ब्रह्म (वेद)की स्तुति करते हुए यज्ञानुष्ठानके लिये उद्यत हो कर्मका आरम्भ करते हैं, उनका वह (पितृयान) दक्षिणमार्ग है। वे युग-युगान्तरमें विच्छिन्न हुए वैदिक धर्मकी संतान, तपस्या, वर्णाश्रमकी मर्यादा और विविध शास्त्रोंके द्वारा पुनः स्थापना करते हैं। पूर्वतन धर्मप्रवर्तक ही अपनी उत्तरकालीन संतानके यहाँ उत्पन्न होते हैं और फिर उत्तरकालीन धर्मप्रचारकगण अपने यहाँ संतानरूपसे उत्पन्न हुए पितृगणके कुलोंमें जन्म लेते हैं। इस प्रकार वे व्रतशील महर्षिगण चन्द्रमा और तारागणकी स्थितिपर्यन्त सूर्यके दक्षिणमार्गमें बार-बार आते-जाते रहते हैं।

नागवीथिके उत्तर और सप्तर्षियोंके दक्षिणमें जो सूर्यका उत्तरीय मार्ग है, उसे देवयानमार्ग कहते हैं। उसमे जो प्रसिद्ध निर्मलस्वभाव और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारिगण निवास करते हैं, वे संतानकी इच्छा नहीं करते। अतः उन्होंने मृत्युको जीत लिया है। सूर्यके उत्तर-मार्गमें अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनिगण प्रलयकालपर्यन्त निवास करते हैं। उन्होंने लोभके असंयोग, मैथुनके त्याग, इच्छा-द्वेषकी अप्रवृत्ति, कर्मानुष्ठानके त्याग, कामवासनाके असंयोग और शब्दादि विषयोंके दोषदर्शन इत्यादि कारणोंसे शुद्धचित्त होकर अमरता प्राप्त कर ली है। भूतोंके प्रलयपर्यन्त स्थिर रहनेको ही अमरता कहते हैं। त्रिलोकीकी स्थितितकके इस कालको वे अपुनर्मार (पुनर्मृत्युरहित) कहा जाता है। द्विज ! ब्रह्महत्या और अश्वमेध-यज्ञसे जो पाप और पुण्य होते हैं, उनका फल प्रलयपर्यन्त कहा गया है।

मैत्रेय ! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथ्वीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर-दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित हैं, वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें भगवान् विष्णुका तीसरा दिव्य धाम है। विप्रवर ! पुण्य-पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पङ्कशून्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही परम स्थान है। पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जहाँ भगवान्‌के समान ऐश्वर्यसे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षिगण निवास करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। मैत्रेय ! जिसमें यह भूत,

* जिस पूर्णिमामे पूर्णचन्द्र विराजमान होते हैं, वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमे एक कला हीन होती है, वह 'अनुमति' कही जाती है।

† दृष्टचन्द्रा अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और नष्टचन्द्राका नाम 'कुहू' है।

भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। जो तल्लीन योगिजनोंको आकाशमण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान सबके प्रकाशक रूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है, वही भगवान् विष्णुका परमपद है। द्विजवर! उस विष्णुपदमें ही सबके आधारभूत परम तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र, नक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। महामुने! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोषण और सम्पूर्ण देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है। तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे उत्पन्न दुग्ध और घृत आदिकी आहुतियोंसे परिपुष्ट अग्निदेव ही प्राणियोंकी स्थितिके लिये पुनः वृष्टिके कारण होते हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णुका यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारभूत और वृष्टिका आदि कारण है।

नवाँ अध्याय

ज्योतिश्चक्र और शिशुमारचक्र

श्रीपराशरजी बोले—आकाशमें भगवान् विष्णुका जो शिशुमार (गिरगिट अथवा गोधा)के समान आकारवाला तारामय स्वरूप देखा जाता है, उसके पुच्छभागमें ध्रुव अवस्थित है। यह ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको घुमाता है। उस भ्रमणशील ध्रुवके साथ नक्षत्रगण भी चक्रके समान घूमते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और अन्यान्य समस्त ग्रहगण वायुमण्डलमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं।

मैंने तुमसे आकाशमें ग्रहगणके जिस शिशुमार-स्वरूपका वर्णन किया है, अनन्त तेजके आश्रय स्वयं भगवान् नारायण ही उसके हृदयस्थित आधार हैं। उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने उन जगत्पतिकी आराधना करके तारामय शिशुमारके पुच्छस्थानमें स्थिति प्राप्त की है। शिशुमारके आधार सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं, शिशुमार ध्रुवका आश्रय है और ध्रुवमें सूर्यदेव स्थित हैं तथा हे विप्र! जिस प्रकार देव, असुर और मनुष्यादिके सहित यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रित हैं, वह तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

सूर्य आठ मासतक अपनी किरणोंसे रसस्वरूप जलको ग्रहण करके उसे चार महीनोंमें बरसा देता है। उससे अन्नकी उत्पत्ति होती है और अन्नहीसे सम्पूर्ण जगत् पोषित होता है। सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मियोंसे संसारका जल खींचकर उससे चन्द्रमाका पोषण करते हैं और चन्द्रमा आकाशमें वायुमयी नाड़ियोंके मार्गसे उसे धूम, अग्नि और वायुमय मेघोंमें पहुँचा देते हैं। यह चन्द्रमाद्वारा प्राप्त जल मेघोंसे तुरंत ही भ्रष्ट नहीं होता, इसलिये वे 'अभ्र' कहलाते हैं। हे मैत्रेय! कालजनित संस्कारके प्राप्त होनेपर यह अभ्रस्थ जल निर्मल होकर वायुकी प्रेरणासे पृथ्वीपर बरसने लगता है।

हे मुने! भगवान् सूर्यदेव नदी, समुद्र, पृथ्वी तथा प्राणियोंसे उत्पन्न—इन चार प्रकारके जलोंका आकर्षण करते हैं। वे अंशुमाली आकाशगङ्गाके जलको ग्रहण करके उसे बिना मेघादिके अपनी किरणोंसे ही तुरंत पृथ्वीपर बरसा देते हैं। हे द्विजोत्तम! उसके स्पर्शमात्रसे पापपङ्कके धुल जानेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। अतः वह दिव्य स्नान कहलाता है। सूर्यके दिखलायी देते हुए बिना मेघोंके ही जो जल बरसता है, वह सूर्यकी किरणोंद्वारा बरसाया हुआ आकाशगङ्गाका ही जल होता है। कृत्तिका आदि विषम (अयुग्म) नक्षत्रोंमें जो जल सूर्यके प्रकाशित होते हुए बरसता है, उसे दिग्गजोंद्वारा बरसाया हुआ आकाशगङ्गाका जल समझना चाहिये। (रोहिणी और आर्द्रा आदि) सम संख्यावाले नक्षत्रोंमें जिस जलको सूर्य बरसाते हैं, वह सूर्यरश्मियोंद्वारा (आकाशगङ्गा) से ग्रहण करके ही बरसाया जाता है। हे महामुने! आकाशगङ्गाके ये (सम

तथा विषम नक्षत्रोंमें बरसनेवाले) दोनों प्रकारके जलमय दिव्य स्नान अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंके पापभयको दूर करनेवाले हैं।

हे द्विज ! जो जल मेघोंद्वारा बरसाया जाता है, वह प्राणियोंके जीवनके लिये अमृतरूप होता है और ओषधियोंका पोषण करता है। हे विप्र ! उस वृष्टिके जलसे परम वृद्धिको प्राप्त होकर समस्त ओषधियाँ और फल पकनेपर सूख जानेवाले (गोधूम एवं यव आदि अन्न) प्रजावर्गके (शरीरकी उत्पत्ति एवं पोषण आदिके) साधक होते हैं। उनके द्वारा शास्त्रविद् मनीषिगण नित्यप्रति यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके देवताओंको सतुष्ट करते है। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मण आदि वर्ण, समस्त देवसमूह और प्राणिगण वृष्टिके ही आश्रित हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्नको उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही इन सबको धारण करती है तथा उस वृष्टिकी उत्पत्ति सूर्यसे होती है।

हे मुनिवरोत्तम ! सूर्यका आधार ध्रुव है, ध्रुवका शिशुमार है तथा शिशुमारके आश्रय भगवान् श्रीनारायण हैं। उस शिशुमारके हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं, जिन्हे समस्त प्राणियोके पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष कहा जाता है।

दसवाँ अध्याय

द्वादश सूर्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—आरोह और अवरोहके द्वारा सूर्यकी एक वर्षमे जितनी गति है, उस सम्पूर्ण मार्गकी दोनों काष्ठाओंका अन्तर एक सौ अस्सी मण्डल है। सूर्यका रथ (प्रतिमास) भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षससंज्ञक गणोसे अधिष्ठित होता है। हे मैत्रेय ! मधुमास अर्थात् चैत्रमे सूर्यके रथमें सर्वदा धाता नामक आदित्य, क्रतुस्थला अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि सर्प, रथभृत यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बुरु गन्धर्व—ये सात मासाधिकारी रहते हैं। ऐसे ही अर्यमा नामक आदित्य, पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छवीर सर्प और नारद नामक गन्धर्व—ये वैशाख मासमें सूर्यके रथपर निवास करते हैं। हे मैत्रेय ! अब ज्येष्ठ मासमें निवास करनेवालोंके नाम सुनो। उस समय मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन नामक यक्ष—ये उस रथमें वास करते हैं। आषाढ़ मासमें वरुण नामक आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, नाग सर्प, सहजन्या अप्सरा, हूहू गन्धर्व, रथ राक्षस और रथचित्र नामक यक्ष उसमें रहते हैं। श्रावण मासमें इन्द्र नामक आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्पि नामक राक्षस सूर्यके रथमें बसते हैं। भाद्रपदमें विवस्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याघ्र नामक राक्षसका उसमें निवास होता है। आश्विन मासमें पूषा नामक आदित्य, वसुरुचि गन्धर्व, वात राक्षस, गौतम ऋषि, धनञ्जय सर्प, सुषेण गन्धर्व और घृताची नामक अप्सराका उसमे वास होता है। कार्तिक मासमें पर्जन्य आदित्य, विश्वावसु नामक गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष तथा आप नामक राक्षस रहते हैं

मार्गशीर्षमासके अधिकारी अंश नामक आदित्य, काश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, महापद्म सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस हैं। हे विप्रवर ! क्रतु ऋषि, भग आदित्य, ऊर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति अप्सरा—ये अधिकारिगण पौषमासमे जगत्को प्रकाशित करनेके लिये सूर्यमण्डलमें रहते हैं।

हे मैत्रेय! त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्व—ये सात माघ मासमें भास्करमण्डलमें रहते हैं। अब जो फाल्गुन मासमें सूर्यके रथमें रहते हैं उनके नाम सुनो। हे महामुने! वे विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञोपेत नामक राक्षस हैं।

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तेजोमय हुए ये सात-सात गण एक-एक मासतक सूर्यमण्डलमें रहते हैं। मुनि लोग सूर्यकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व सम्मुख रहकर उनका यशोगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं, राक्षस रथके पीछे चलते हैं, सर्प वहन करनेके अनुकूल रथको सुसज्जित करते हैं, यक्षगण रथकी बागडोर सँभालते हैं तथा (नित्यसेवक) वालखिल्यादि इसे सब ओरसे घेरे रहते हैं। हे मुनिसत्तम! सूर्यमण्डलके ये सात-सात गण ही अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदिके कारण होते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

सूर्यशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपने जो कहा कि सूर्यमण्डलमें स्थित सातों गण शीत-ग्रीष्म आदिके कारण होते हैं, यह मै सुन चुका। हे गुरो! आपने सूर्यके रथमें स्थित और विष्णु-शक्तिसे प्रभावित गन्धर्व, सर्प, राक्षस, ऋषि, वालखिल्यादि, अप्सरा तथा यक्षोंके तो पृथक्-पृथक् व्यापार बतलाये; किंतु यह नहीं बतलाया कि सूर्यका कार्य क्या है? । यदि सातों गण ही शीत, ग्रीष्म और वर्षाके करनेवाले हैं तो फिर सूर्यका क्या प्रयोजन है? और यह कैसे कहा जाता है कि वृष्टि सूर्यसे होती है? यदि सातों गणोंका यह वृष्टि आदि कार्य समान ही है तो 'सूर्य उदय हुआ, अब मध्यमें है, अब अस्त होता है।' ऐसा लोग क्यों कहते हैं?

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! तुमने जो कुछ पूछा है, उसका उत्तर सुनो। सूर्य सात गणोंमेंसे ही एक हैं तथापि उनमें प्रधान होनेसे उनकी विशेषता है। भगवान् विष्णुकी सर्वशक्तिमयी ऋक्, यजुः और साम नामकी पराशक्ति है। वह वेदत्रयी ही सूर्यको ताप प्रदान करती है और (उपासना किये जानेपर) संसारके समस्त पापोंको नष्ट कर देती है। हे द्विज! जगत्‌की स्थिति और पालनके लिये वे ऋक्, यजुः और सामरूप विष्णु सूर्यके भीतर निवास करते हैं। प्रत्येक मासमें जो सूर्य होते हैं, उन्हींमें वह वेदत्रयीरूपिणी विष्णुकी पराशक्ति निवास करती है। पूर्वाह्णमें ऋक, मध्याह्नमें यजुः तथा सायंकालमें बृहद्रथन्तरादि सामश्रुतियाँ सूर्यकी स्तुति करती हैं*। यह ऋक्-यजुः-सामस्वरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णुका ही अङ्ग है। यह विष्णु-शक्ति सर्वदा आदित्यमें रहती है।

यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्यकी ही अधिष्ठात्री हो, यही नहीं, बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी त्रयीमय ही हैं। सर्गके आदिमें ब्रह्मा ऋङ्मय हैं, उसकी स्थितिके समय विष्णु यजुर्मय हैं तथा अन्तकालमें रुद्र साममय हैं।

---

* इस विषयमें यह श्रुति भी है—

ऋचः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते, यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः सामवेदेनास्तमये महीयते।

इसी भावका प्रकृत श्लोक भी द्रष्टव्य है—

ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षये रविम्॥ (वि० पु० २। ११। १०)

इस प्रकार वह त्रयीमयी सात्त्विकी वैष्णवी शक्ति अपने सप्तगणोंमें स्थित आदित्यमें ही (अतिशयरूपसे) अवस्थित होती है। उससे अधिष्ठित सूर्यदेव भी अपनी प्रखर रश्मियोंसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर संसारके सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर देते हैं।

उन सूर्यदेवकी मुनिगण स्तुति करते हैं और गन्धर्वगण उनके सम्मुख यशोगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हुई चलती हैं, राक्षस रथके पीछे रहते हैं, सर्पगण रथका साज सजाते हैं, यक्ष घोड़ोंकी बागडोर सँभालते हैं तथा बालखिल्यादि रथको सब ओरसे घेरे रहते हैं। त्रयीशक्तिरूप भगवान् (सूर्यस्वरूप) विष्णुका न कभी उदय होता है और न अस्त (अर्थात् वे स्थायीरूपसे सदा विद्यमान रहते हैं।) ये सात प्रकारके गण तो उनसे पृथक् हैं। स्तम्भमें लगे हुए दर्पणके समान जो कोई उनके निकट जाता है, उसीको अपनी छाया दिखायी देने लगती है। हे द्विज! इसी प्रकार वह वैष्णवीशक्ति सूर्यके रथसे कभी चलायमान नहीं होती और प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् सूर्यके (परिवर्तित होकर) उसमें स्थित होनेपर वह उसकी अधिष्ठात्री होती है।

हे द्विज! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते हुए घूमते रहते हैं। सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, उससे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं। हे द्विज! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर (चतुर्दशीके अनन्तर) दो कला-युक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं। इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है।

सूर्य अपनी किरणोसे पृथिवीसे जितना जल खींचते हैं, उतनेको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। हे मैत्रेय! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं।

बारहवाँ अध्याय

नवग्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्या

पराशरजी बोले—चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है। उसके वाम तथा दक्षिण ओर कुन्द-कुसुमके समान श्वेतवर्ण दस घोड़े जुते हुए हैं। ध्रुवके आधारपर स्थित उस वेगशाली रथसे चन्द्रदेव भ्रमण करते हैं और नागवीथिपर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रोंका भोग करते हैं। सूर्यके समान इनकी किरणोंके भी घटने-बढ़नेका निश्चित क्रम है। हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यके समान समुद्रगर्भसे उत्पन्न हुए उनके घोड़े भी एक बार जोत दिये जानेपर एक कल्पपर्यन्त रथ खींचते रहते हैं। हे मैत्रेय! सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी एक किरणसे पुनः पोषण करते हैं। जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं, उसी क्रमसे जलापहारी सूर्यदेव उन्हे शुक्ल प्रतिपत्से प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। हे मैत्रेय! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्र हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं; क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत है। तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस (३३३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं। जिस समय दो कलामात्रसे अवस्थित चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करके उसकी 'अमा' नामक किरणमें रहते हैं, वह तिथि 'अमावस्या' कहलाती है। उस दिन रात्रिमें वे पहले तो जलमें प्रवेश करते हैं, फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करते हैं और तदनन्तर क्रमसे सूर्यमे चले जाते हैं। वृक्ष और लता आदिमें

चन्द्रमाकी स्थितिके समय (अमावस्याको) जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। केवल पंद्रहवीं कलारूप यत्किंचित् भागके शेष रहनेपर उस क्षीण चन्द्रमाको पितृगण मध्याह्नोत्तर कालमें चारों ओरसे घेर लेते हैं। हे मुने! उस समय उस द्विकलाधर चन्द्रमाकी बची हुई अमृतमयी एक कलाका वे पितृगण पान करते हैं। अमावस्याके दिन चन्द्ररश्मिसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त—तीन प्रकारके पितृगण एक मासपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्लपक्षमें देवताओंकी और कृष्णपक्षमें पितृगणकी पुष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे लता-वृक्ष, ओषधि आदिको उत्पन्न कर अपनी चन्द्रिकाद्वारा आह्लादित करके वे मनुष्य, पशु एवं कीट-पतंगादि सभी प्राणियोंका पोषण करते हैं।

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ वायु और अग्निमय द्रव्यका बना हुआ है और उसमें वायुके समान वेगशाली आठ पिशंग वर्णवाले घोड़े जुते हैं। वरूथ[1], अनुकर्ष[2], उपासंग[3] और पताका तथा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घोड़ोंके सहित शुक्रका रथ भी अति महान् है। मंगलका अति शोभायमान सुवर्णनिर्मित महान् रथ भी अग्निसे उत्पन्न हुए, पद्मरागमणिके समान, अरुणवर्ण आठ घोड़ोसे युक्त है। जो आठ पाण्डुरवर्णवाले घोड़ोसे युक्त स्वर्णका रथ है, उसमें वर्षके अन्तमें प्रत्येक राशिमें बृहस्पतिजी विराजमान होते हैं। आकाशसे उत्पन्न हुए विचित्रवर्णके घोड़ोंसे युक्त रथमें आरूढ़ होकर मन्दभागी शनैश्चर धीरे-धीरे चलते हैं।

राहुका रथ धूसर (मटियाले) वर्णका है। उसमें भ्रमरके समान कृष्णवर्णके आठ घोड़े जुते हुए हैं। हे मैत्रेय! एक बार जोत दिये जानेपर वे घोड़े निरन्तर चलते रहते हैं। चन्द्रपर्वों (पूर्णिमा) पर यह राहु सूर्यसे निकलकर चन्द्रमाके पास जाता है तथा सौरपर्वोमें (अमावस्या)पर यह चन्द्रमासे निकलकर सूर्यके निकट जाता है। इसी प्रकार केतुके रथके वायुवेगशाली आठ घोड़े भी पुआलके धुएँकी-सी आभावाले तथा लाखके समान लाल रंगके हैं।

हे महाभाग! मैंने तुमसे नवग्रहोंके रथोंका यह वर्णन किया। ये सभी वायुमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं। हे मैत्रेय! समस्त ग्रह, नक्षत्र और तारामण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ बँधे हुए यथोचित प्रकारसे घूमते रहते हैं। जितने तारागण हैं, उतनी वायुमयी डोरियाँ हैं। उनसे बँधकर वे स्वयं घूमते तथा ध्रुवको घुमाते रहते हैं। जिस प्रकार तेली लोग स्वयं घूमते हुए कोल्हूको भी घुमाते रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रहगण वायुसे बँधकर घूमते रहते हैं। क्योंकि इस वायु-चक्रसे प्रेरित होकर समस्त ग्रहगण अलातचक्र (बनैती)के समान घूमा करते हैं, इसलिये यह 'प्रवह' कहलाता है।

हे मुनिश्रेष्ठ! जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुका हूँ, तथा जहाँ ध्रुव स्थित है, अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन सुनो। रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमे जो कुछ पापकर्म करता है, उससे मुक्त हो जाता है तथा आकाशमण्डलमें जितने तारे इसके आश्रित हैं, उतने ही अधिक वर्ष वह जीवित रहता है। उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हनु (ठोड़ी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर

१. रथकी रक्षाके लिये बना हुआ लोहेका आवरण। २. रथके नीचेका भाग।
३. शस्त्र रखनेका स्थान।

अधिकार कर रक्खा है, उसके हृदय-देशमे नारायण हैं, पूर्वके दोनों चरणोमे अश्विनीकुमार हैं तथा जंघाओमे वरुण और अर्यमा हैं। संवत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रक्खा है, अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमे स्थित हैं। शिशुमारके पुच्छभागमे स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त नहीं होते। इस प्रकार मैने तुमसे पृथ्वी, ग्रहगण, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोका तथा जो-जो उनमे बसते हैं, उन सभीके स्वरूपका वर्णन कर दिया।

अग्निपुराणमें सूर्य-प्रकरण

[अग्निपुराणसे संकलित इस परिच्छेदमें १९वें, ५१वें, ७३वें, ९९वें और १४८वें अध्यायोंसे सूर्यसम्बन्धी सामग्रियोंका यथावत् संचयन-संकलन किया गया है; जिसमें ये विषय हैं— कश्यप आदिके वंश, सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण, सूर्यदेवकी पूजा-स्थापनाकी विधियाँ, संग्राम-विजय-दायक सूर्यपूजा-विधान।]

उन्नीसवाँ अध्याय

कश्यप आदिके वंशका वर्णन

अग्निदेव बोले—हे मुने! अब मै अदिति आदि दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न हुई कश्यपजीकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ—चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामक बारह देवता थे, वे ही पुनः इस वैवस्वत मन्वन्तरमे कश्यपके अंशसे अदितिके गर्भसे आये थे। वे विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्टा, धाता, अर्यमा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, भग और अंशुनामक बारह आदित्य* हुए। अरिष्टनेमिकी चार पत्नियोसे सोलह संताने उत्पन्न हुईं। विद्वान् बहुपुत्रके (उनकी दो पत्नियोसे कपिला, लोहिता आदिके भेदसे) चार प्रकारकी विद्युत्स्वरूपा कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अङ्गिरामुनिसे (उनकी दो पत्नियोद्वारा) श्रेष्ठ ऋचाएँ हुईं तथा कृशाश्वके भी (उनकी दो पत्नियोसे) देवताओंके दिव्य आयुध† उत्पन्न हुए।

जैसे आकाशमें सूर्यके उदय और अस्तभाव बारंबार होते रहते हैं, उसी प्रकार देवतालोग युग-युगमें (कल्प-कल्पमे) उत्पन्न (एवं विनष्ट) होते रहते हैं‡।

---

* यहाँ दी हुई आदित्योकी नामावली हरिवंशके हरिवंशपर्वगत तीसरे अध्यायमे श्लोक-सं० ६०-६१मे कथित नामावलीसे ठीक-ठीक मिलती है।

† प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य सुरायुधाः।

इस वाक्यमे पूरे एक श्लोकका भाव संनिविष्ट है। अतः उस सम्पूर्ण श्लोकपर दृष्टि न रक्खी जाय तो अर्थको समझनेमे भ्रम होता है। हरिवंशके निम्नाङ्कित (हरि० ३। ६५) श्लोकसे उपर्युक्त पङ्क्तियोका भाव पूर्णतः स्पष्ट होता है—

प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः। कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च॥

सम्पूर्ण दिव्यास्त्र कृशाश्वके पुत्र हैं, इस विषयमें वा० रामायण बाल० सर्ग २१के श्लोक १३-१४ तथा मत्स्यपुराण ६। ६ द्रष्टव्य हैं।

‡ इसको समझनेके लिये भी हरिवंशके निम्नाङ्कित श्लोकपर दृष्टिपात करना आवश्यक है—

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः॥

(३। ६६)

—यही भाव मत्स्यपुराण ६। ७ मे भी आया है।

कश्यपजीसे उनकी पत्नी दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षनामक पुत्र उत्पन्न हुए। फिर सिंहिका नामवाली एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्तिनामक दानवकी पत्नी हुई। उसके गर्भसे राहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो 'सैंहिकेय'नामसे विख्यात हुए। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे। इनमें पहला ह्राद, दूसरा अनुह्राद और तीसरे प्रह्लाद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और चौथा संह्राद था। ह्रादका पुत्र ह्रद हुआ। संह्रादके पुत्र आयुष्मान्, शिबि और बाष्कल थे। प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। हे महामुने! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाणासुर ज्येष्ठ था। पूर्वकल्पमें इस बाणासुरने भगवान् उमापतिको (भक्ति-भावसे) प्रसन्न कर उन परमेश्वरसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मै आपके पास ही विचरता रहूँगा।' हिरण्याक्षके पाँच पुत्र थे—शम्बर, शकुनि, द्विमूर्धा, शङ्कु और आर्य। कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दनुके गर्भसे सौ दानव पुत्र उत्पन्न हुए।

इनमें स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी शची। उपदानवकी कन्या हयशिरा थी और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा। पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कन्याएँ थीं। ये दोनों कश्यपजीकी पत्नी हुईं। इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे। प्रह्लादके वंशमें चार करोड़ 'निवातकवच'नामक दैत्य हुए। कश्यपजीकी ताम्रा नामवाली पत्नीसे छः पुत्र हुए। इनके अतिरिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृध्रिका और शुचिग्रीवा आदि भी कश्यपजीकी भार्याएँ थीं। उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए। ताम्राके पुत्र घोड़े और ऊँट थे। विनताके अरुण और गरुड़नामक दो पुत्र हुए। सुरसासे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्रूके गर्भसे भी शेष, वासुकि और तक्षक आदि सहस्रों नाग हुए। क्रोधवशाके गर्भसे दशनशील दाँतवाले सर्प उत्पन्न हुए। धरासे जल-पक्षी उत्पन्न हुए। सुरभिसे गाय-भैंस आदि पशुओंकी उत्पत्ति हुई। इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए। खसासे यक्ष-राक्षस और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसी प्रकार अरिष्टाके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए। इस तरह कश्यपजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्की उत्पत्ति हुई।

इन सबके असंख्य पुत्र हुए। देवताओंने दैत्योंको युद्धमें जीत लिया। अपने पुत्रोंके मारे जानेपर दितिने कश्यपजीको सेवासे संतुष्ट किया। वह इन्द्रका संहार करनेवाले पुत्रको पाना चाहती थी। उसने कश्यपजीसे अपना यह अभिमत वर प्राप्त कर लिया। जब वह गर्भवती और व्रतपालनमें तत्पर थी, उस समय एक दिन भोजनके बाद बिना पैर धोये ही सो गयी। तब इन्द्रने यह छिद्र (त्रुटि या दोष) ढूँढ़कर उसके गर्भमें प्रविष्ट हो उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, (किंतु व्रतके प्रभावसे उनकी मृत्यु नहीं हुई।) वे सभी अत्यन्त तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास मरुत्-नामक देवता हुए। मुने! यह सारा वृत्तान्त मैंने सुना दिया। श्रीहरिस्वरूप ब्रह्माजीने पृथुको नरलोकके राजपदपर अभिषिक्त करके क्रमशः दूसरोंको भी राज्य दिये—उन्हें विभिन्न समूहोंका राजा बनाया। अन्य सबके अधिपति (तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति) साक्षात् श्रीहरि ही हैं।

ब्राह्मणों और ओषधियोंके राजा चन्द्रमा हुए। जलके स्वामी वरुण हुए। राजाओंके राजा कुबेर हुए। द्वादश सूर्यों (आदित्यों) के अधीश्वर भगवान् विष्णु थे। वसुओंके राजा पावक और मरुद्गणोंके स्वामी इन्द्र हुए। प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रह्लाद हुए। पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वसमर्थ भगवान् शिव हुए तथा शैलों (पर्वतों) के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ। गन्धर्वोंके चित्ररथ, नागोंके वासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गरुड़ राजा हुए। श्रेष्ठ हाथियोंका स्वामी

ऐरावत हुआ और गौओंका अधिपति साँड । वनचर जीवोंका स्वामी शेर हुआ और वनस्पतियोंका प्लक्ष (पकड़ी) । घोड़ोंका स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ । सुधन्वा पूर्व दिशाका रक्षक हुआ । दक्षिण दिशामें शङ्खपद और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए । इसी प्रकार उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक नामका राजा हुआ ।

इक्यावनवाँ अध्याय

सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

भगवान् श्रीहयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! सात अश्वोंसे जुते हुए एक पहियेवाले रथपर विराजमान सूर्यदेवकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये । भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण किये हुए हों । उनके दाहिने भागमें दावात और कलम लिये दण्डी खड़े हों और वामभागमें पिङ्गल हाथमें दण्ड लिये द्वार-पर विद्यमान हों । ये दोनों सूर्यदेवके पार्षद हैं । भगवान् सूर्यदेवके उभय पार्श्वमें बाल-व्यजन (चँवर) लिये 'राज्ञी' तथा 'निष्प्रभा'* खड़ी हों अथवा घोड़ेपर चढ़े हुए एकमात्र सूर्यकी ही प्रतिमा बनानी चाहिये । समस्त दिक्पाल हाथोंमें वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शस्त्र लिये क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें स्थित दिखाये जाने चाहिये ।

बारह दलोंका एक कमल-चक्र बनावे । उसमें सूर्य, अर्यमा † आदि नामवाले बारह आदित्योंका क्रमशः बारह दलोंमें स्थापन करे । यह स्थापना वरुण-दिशा एवं वायव्य-कोणसे आरम्भ करके नैर्ऋत्यकोणके अन्ततकके दलोंमें होनी चाहिये । उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथोंमें मुद्गर, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों । अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋत्यतक, नैर्ऋत्यसे वायव्य-तक, वायव्यसे ईशानतक और वहाँसे अग्निकोणतकके दलोंमें उक्त आदित्योंकी स्थिति जाननी चाहिये ।

बारह आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—वरुण, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गभस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वष्टा, मित्र और विष्णु । ये मेष आदि बारह राशियोंमें स्थित होकर जगत्को ताप एवं प्रकाश देते हैं । ये वरुण आदि आदित्य क्रमशः मार्गशीर्ष मास (या वृश्चिकराशि) से लेकर कार्तिक मास (या तुलाराशि) तकके मासों (एवं राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं । इनकी अङ्गकान्ति क्रमशः काली, लाल, कुछ-कुछ लाल, पीली, पाण्डुवर्ण, श्वेत, कपिलवर्ण, पीतवर्ण, तोतेके समान हरी, धवलवर्ण, धूम्रवर्ण और नीली है । इनकी शक्तियाँ द्वादशदल कमलके केसरोंके अग्रभागमें स्थित होती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—इडा, सुषुम्ना, विश्वार्चि, इन्दु, प्रमर्दिनी (प्रवर्द्धिनी), प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, वनान्तस्था (घनान्तस्था) और अमृताख्या । वरुण आदिकी जो अङ्गकान्ति है, वही इन शक्तियोंकी भी है । केसरोंके अग्रभागोंमें इनकी स्थापना करे । सूर्यदेवका तेज प्रचण्ड और मुख विशाल है । उनके दो भुजाएँ हैं । वे अपने हाथोंमें कमल और खड्ग धारण करते हैं ।

---

* 'राज्ञी' और 'निष्प्रभा'—ये चँवर डुलानेवाली स्त्रियोंके नाम हैं, अथवा इन नामोंद्वारा सूर्यदेवकी दोनों पत्नियोंकी ओर संकेत किया गया है । 'राज्ञी' शब्दसे उनकी रानी 'संज्ञा' गृहीत होती हैं और 'निष्प्रभा' शब्दसे 'छाया'—ये दोनों देवियाँ चँवर डुलाकर पतिकी सेवा करती रहती हैं ।

† सूर्य आदि द्वादश आदित्योंके नाम अन्यत्र गिनाये गये हैं और अर्यमा आदि द्वादश आदित्योंके नाम १९वें अध्यायमें देखने चाहिये । ये नाम वैवस्वत मन्वन्तरके आदित्योंके हैं । चाक्षुष मन्वन्तरमें वे ही 'तुषित' नामसे विख्यात थे । अन्य पुराणोंमें भी आदित्योंकी नामावली तथा उसके मासक्रममें यहाँकी अपेक्षा कुछ अन्तर मिलता है । इसकी संगति कल्पभेदके अनुसार माननी चाहिये ।

चन्द्रमा कुण्डिका तथा जपमाला धारण करते हैं। मङ्गलके हाथोंमें शक्ति और अक्षमाला शोभित होती हैं। बुधके हाथोंमें धनुष और अक्षमाला शोभा पाती हैं। बृहस्पति कुण्डिका और अक्षमालाधारी हैं। शुक्रका भी ऐसा ही स्वरूप है अर्थात् उनके हाथोंमें भी कुण्डिका और अक्षमाला शोभित होती हैं। शनि किङ्किणी-सूत्र धारण करते हैं। राहु अर्द्धचन्द्रधारी हैं तथा केतुके हाथोंमे खड्ग और दीपक शोभा पाते हैं।

समस्त लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। हनुमान्‌जीके हाथमें वज्र है। उन्होंने अपने दोनों पैरोंसे एक असुरको दबा रक्खा है। किंनर-मूर्तियाँ हाथमें वीणा लिये हों और विद्याधर माला धारण किये आकाशमें स्थित दिखाये जायँ। पिशाचोंके शरीर दुर्बल कङ्कालमात्र हों। वेतालोंके मुख विकराल हों। क्षेत्रपाल शूलधारी बनाये जायँ। प्रेतोंके पेट लंबे और शरीर कृश हों।

तिहत्तरवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यदेवताके पूजनकी विधि बताऊँगा। 'मैं तेजोमय सूर्य हूँ'—ऐसा चिन्तन करके अर्घ्य-पूजन करे। लाल रंगके चन्दन या रोलीसे मिश्रित जलको ललाटके निकटतक ले जाकर उसके द्वारा अर्घ्यपात्रको पूर्ण करे। उसका गन्धादिसे पूजन करके सूर्यके अङ्गोंद्वारा रक्षावगुण्ठन करे। तत्पश्चात् जलसे पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण करके पूर्वाभिमुख हो सूर्यदेवकी पूजा करे। **'ॐ आं हृदयाय नमः'** इस प्रकार आदिमें स्वर-बीज लगाकर सिर आदि अन्य सब अङ्गोंमें भी न्यास करे। पूजा-गृहके द्वारदेशमें दक्षिणकी ओर 'दण्डी'का और वामभागमें 'पिङ्गल'का पूजन करे। ईशानकोणमें **ॐ 'गं गणपतये नमः'**—इस मन्त्रसे गणेशकी और अग्निकोणमें गुरुकी पूजा करे। पीठके मध्यभागमें कमलाकार आसनका चिन्तन एवं पूजन करे। पीठके अग्नि आदि चारों कोणोंमें क्रमशः विमल, सार, आराध्य तथा परम सुखकी और मध्यभागमें प्रभूतासनकी पूजा करे। उपर्युक्त प्रभूत आदि चारोंके वर्ण क्रमशः श्वेत, लाल, पीले और नीले हैं तथा उनकी आकृति सिंहके समान है। इन सबकी पूजा करनी चाहिये।

पीठस्थ कमलके भीतर **'रां दीप्तायै नमः'**—इस मन्त्रद्वारा दीप्ताकी, **'रीं सूक्ष्मायै नमः'**—इस मन्त्रसे सूक्ष्माकी, **'रूं जयायै नमः'**—इससे जयाकी, **'रें भद्रायै नमः'**—इससे भद्राकी, **'रैं विभूतये नमः'** इससे विभूतिकी, **'रों विमलायै नमः'**—इससे विमलाकी, **'रौं अमोघायै नमः'**—इससे अमोघाकी तथा **'रं विद्युतायै नमः'**—इससे विद्युताकी पूर्व आदि आठों दिशाओंमें पूजा करे और मध्यभागमें **'रः सर्वतोमुख्यै नमः'**—इस मन्त्रसे नवीं पीठशक्ति सर्वतोमुखीकी आराधना करे। तत्पश्चात् **'ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः'**—इस मन्त्रके द्वारा सूर्यदेवके आसन (पीठ) का पूजन करे। तदनन्तर **'खखोल्काय नमः'** इस षडक्षर मन्त्रके आरम्भमें **'ॐ हं खं'** जोड़कर नौ अक्षरोंसे युक्त **'ॐ हं खं खखोल्काय नमः'**—इस मन्त्रद्वारा सूर्यदेवके विग्रहका आवाहन करे। इस प्रकार आवाहन करके भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये।

अञ्जलिमें लिये हुए जलको ललाटके निकटतक ले जाकर रक्त वर्णवाले सूर्यदेवका ध्यान करके उन्हे भावनाद्वारा अपने सामने स्थापित करे। फिर **'ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः'**—ऐसा कहकर उक्त जलसे सूर्यदेवको अर्घ्य दे। इसके बाद 'बिम्बमुद्रा'[1] दिखाते हुए आवाहन आदि उपचार अर्पित करे। तदनन्तर

१. पद्माकारौ करौ कृत्वा प्रतिश्लिष्टे तु मध्यमे। अङ्गुल्यौ धारयेत्तस्मिन् बिम्बमुद्रेति सोच्यते॥

सूर्यदेवकी प्रीतिके लिये गन्ध (चन्दन-रोली) आदि समर्पित करे। तत्पश्चात् 'पद्‌मुद्रा' और 'विम्बमुद्रा' दिखाकर अग्नि आदि कोणोमे हृदय आदि अङ्गोकी पूजा करे। अग्निकोणमें **'ॐ आं हृदयाय नमः'**—इस मन्त्रसे हृदयकी, नैर्ऋत्यकोणमे **'ॐ भूः अर्काय शिरसे स्वाहा'**—इससे सिरकी, वायव्यकोणमे **'ॐ भुवः सुरेशाय शिखायै वषट्'**—इससे शिखाकी, ईशानकोणमें **'ॐ स्वः कवचाय हुम्'**—इससे कवचकी, इष्टदेव और उपासकके बीचमे **'ॐ हां नेत्रत्रयाय वौषट्'**—से नेत्रकी तथा देवताके पश्चिमभागमे **'वः अस्त्राय फट्'**—इस मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे[2]। इसके बाद पूर्वादि दिशाओमे मुद्राओका प्रदर्शन करे।

हृदय, सिर, शिखा और कवच—इनके लिये पूर्वादि दिशाओमे धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे। नेत्रोके लिये गोशृङ्गकी मुद्रा दिखाये। अस्त्रके लिये त्रासनी-मुद्राकी योजना करे। तत्पश्चात् ग्रहोको नमस्कार और उनका पूजन करे। **'ॐ सों सोमाय नमः'**—इस मन्त्रसे पूर्वमें चन्द्रमाकी, **'ॐ बुं बुधाय नमः'**—इस मन्त्रसे दक्षिणमें बुधकी, **'ॐ बृं बृहस्पतये नमः'**—इस मन्त्रसे पश्चिममे बृहस्पतिकी और **'ॐ भं भार्गवाय नमः'**—इस मन्त्रसे उत्तरमे शुक्रकी पूजा करे। इस तरह पूर्वादि दिशाओमे चन्द्रमा आदि ग्रहोकी पूजा करके, अग्नि आदि कोणोमें शेष ग्रहोंका पूजन करे। यथा—**'ॐ भौं भौमाय नमः'**—इस मन्त्रसे अग्निकोणमें मङ्गलकी, **'ॐ शं शनैश्चराय नमः'**—इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणमे शनैश्चरकी, **'ॐ रां राहवे नमः'**—इस मन्त्रसे वायव्यकोणमे राहुकी तथा **'ॐ कें केतवे नमः'**—इस मन्त्रसे ईशानकोणमे केतुकी गन्ध आदि उपचारोसे पूजा करे। खखोल्की (भगवान् सूर्य)के साथ इन सब ग्रहोका पूजन करना चाहिये।

मूलमन्त्रका[3] जप करके अर्घ्यपात्रमें जल लेकर सूर्यको समर्पित करनेके पश्चात् उनकी स्तुति करे। इस तरह स्तुतिके पश्चात् सामने मुँह किये खडे होकर सूर्यदेवको नमस्कार करके कहे—'प्रभो! आप मेरे अपराधों और त्रुटियोको क्षमा करे।' इसके बाद **'अस्त्राय फट्'**—इस मन्त्रसे अणुसंहारका समाहरण करके 'शिव! सूर्य! (कल्याणमय सूर्यदेव!)'—ऐसा कहते हुए संहारिणी-शक्ति या मुद्राके द्वारा सूर्यदेवके उपसंहृत तेजको अपने हृदय-कमलमे स्थापित कर दे तथा सूर्यदेवका निर्माल्य उनके पार्षद चण्डको अर्पित करे। इस प्रकार जगदीश्वर सूर्यका पूजन करके उनके ध्यान, जप और होम करनेसे साधकका सारा मनोरथ सिद्ध होता है।

---

१. हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संनतप्रोन्नताङ्गुली। तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषापद्मसंज्ञिता॥

२. मन्त्रमहार्णवमे हृदयादि अङ्गोके पूजनका क्रम इस प्रकार दिया गया है—

अग्निकोणे—ॐ सत्यतेजोज्ज्वालामणे हु फट् स्वाहा हृदयाय नमः, हृदयश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः। निर्ऋतिकोणे—ॐ ब्रह्मतेजोज्ज्वालामणे हु फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरः श्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः। वायव्ये—ॐ विष्णुतेजोज्ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऐशान्ये—ॐ रुद्रतेजोज्ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हु कवचश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः। पूज्यपूजकयोर्मध्ये—ॐ अग्नितेजोज्ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। देवतापश्चिमे—ॐ सर्वतेजोज्ज्वालामणे हु फट् स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः।

३. 'शारदातिलक'के अनुसार सूर्यका दशाक्षर मूल मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य्य आदित्य श्रीं।' किंतु यहाँ 'ॐ ह ख' इन बीजोंके साथ 'खखोल्काय नमः।' इस षडक्षर मन्त्रका उल्लेख है। अतः इसीको यहाँ मूल मन्त्र समझना चाहिये।

निन्यानबेवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि

भगवान् शिव बोले—स्कन्द ! अब मैं सूर्यदेवकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। पूर्ववत् मण्डप-निर्माण और स्नान आदि कार्यका सम्पादन करके, पूर्वोक्तविधिसे विद्या तथा साङ्ग सूर्यदेवका आसन-शय्यामे न्यास करके त्रितत्त्वका, ईश्वरका तथा आकाशादि पाँच भूतोंका न्यास करे।

पूर्ववत् शुद्धि आदि करके पिण्डीका शोधन करे। फिर 'सदेशपद'-पर्यन्त तत्त्वपञ्चकका न्यास करे। तदनन्तर सर्वतोमुखी शक्तिके साथ विधिवत् स्थापना करके, गुरु एवं सूर्य-सम्बन्धी मन्त्र बोलते हुए शक्त्यन्त सूर्यका विधिवत् स्थापन करे।

श्रीसूर्यदेवका स्वाम्यन्त अथवा पादान्त नाम रक्खे। (यथा विक्रमादित्य-स्वामी अथवा रामादित्यपाद इत्यादि) सूर्यके मन्त्र पहले बताये गये हैं, उन्हींका स्थापन-कालमे भी साक्षात्कार (प्रयोग) करना चाहिये।

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजाका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मै संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके पूजनकी विधि बताता हूँ। **ॐ डे ख ख्यां सूर्याय संग्रामविजयाय नमः—ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः** यह मन्त्र है। ये संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके छः अङ्ग हैं—ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः अर्थात् इनके द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिये। यथा—**'ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रैं कवचाय हुम्। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्।**

'ॐ हं खं खखोल्काय स्वाहा'—यह पूजाके लिये मन्त्र है। **'स्फूं हूं हुं क्रूं ॐ ह्रौं क्रेम्'**—ये छः अङ्ग-न्यासके बीज-मन्त्र हैं। पीठस्थानमें प्रभूत, विमल, सार, आराध्य एवं परम सुखका पूजन करे। पीठके पायों तथा बीचकी चार दिशाओंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—इन आठोंकी पूजा करे।

तदनन्तर अनन्तासन, सिंहासन एवं पद्मासनकी पूजा करे। इसके बाद कमलकी कर्णिका एवं केसरोंकी, वहीं सूर्यमण्डल, सोममण्डल तथा अग्निमण्डलकी पूजा करे। फिर दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे।

तत्पश्चात् सत्त्व, रज और तमका, प्रकृति और पुरुषका, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका पूजन करे। ये सभी अनुस्वारयुक्त आदि अक्षरसे युक्त होकर अन्तमे 'नमः'के साथ चतुर्थ्यन्त होनेपर पूजाके मन्त्र हो जाते हैं; यथा—**'सं सत्त्वाय नमः', 'अं अन्तरात्मने नमः'** इत्यादि। इसी तरह उषा, प्रभा, संध्या, साया, माया, बला, बिन्दु, विष्णु तथा आठ द्वारपालोंकी पूजा करे। इसके बाद गन्ध आदिसे सूर्य, चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे। इस प्रकार पूजा तथा जप, होम आदि करनेसे युद्ध आदिमे विजय प्राप्त होती है।*

---

* संग्राममे विजय देनेवाले अनेकशः बहुतोंद्वारा अनुभूत 'आदित्यहृदय' नामक (आगे प्रकाश्य) दो स्तोत्र भी उपलब्ध हैं—(१) वाल्मीकीय रामायणमे श्रीरामको श्रीअगस्त्यजी द्वारा उपदिष्ट और भविष्य किंवा भविष्योत्तरमे शतानीकके प्रश्नोत्तरमे सुमन्त ऋषिद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रश्नोत्तरके हवालेसे कथित। पहलेकी सफलता प्रत्यान्ताक्रमणमे दृष्ट है और दूसरेके सम्बन्धमे यह माहात्म्य (भी) द्रष्टव्य है—

अमित्रदहनं पार्थ सग्रामे जयवर्द्धनम्। वर्द्धनं धनपुत्राणामादित्यहृदय शृणु ॥

(भगवान् कहते हैं—) 'पार्थ ! शत्रुओंको समाप्त करनेवाला, समरमे जयप्रद एवं धन और पुत्र देनेवाला 'आदित्यहृदय' (कहता हूँ,) सुनो।'

लिङ्गपुराणमें सूर्योपासनाकी विधि

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

लिङ्गपुराणके उत्तरभागके २२वें अध्यायमें सूर्योपासनाका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। इसलिये हम उस अध्यायको अर्थके सहित ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर रहे हैं। सूर्यमें और ब्रह्म परमात्मामें कोई भेद नहीं है। ब्रह्मके भर्ग—तेजका रूप ही सूर्यनारायण हैं। जो तीनों काल भगवती गायत्रीका जप करते हैं, वे सूर्यनारायणकी ही उपासना करते हैं। लिङ्गपुराणद्वारा बतायी विधिसे जो सूर्योपासना करेंगे, उनकी मनःकामना तत्काल पूर्ण होगी—ऐसा पुराणका मत है।

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च।
शिवस्नानं ततः कुर्याद् भस्मस्नानं शिवार्चनम्॥

'भगवान् सूर्यका स्नान-पूजन आदि कर्म करके शिवस्नान, भस्मस्नान तथा शिवार्चन करे।'

षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम्।
द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत्॥

'छठे महाव्याहृति अर्थात् **ॐ तपः** इस मन्त्रसे मिट्टी लेकर भक्तिपूर्वक उसे पृथ्वीपर स्थापित करे। दूसरे (**ॐ भुवः**) से सींचकर, तीसरे (**ॐ स्वः**) से अभिमन्त्रित करे।'

चतुर्थेनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत्।
स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषां मृदं हस्तगतां पुनः॥

'चतुर्थ (**ॐ महः**) से मिट्टीका विभाग करे। प्रथम (**ॐ भूः**) से मलको शुद्ध करे अर्थात् स्नान करे। फिर छठे (**ॐ तपः**) से शेष मिट्टीको सात बार अभिमन्त्रित करे।'

त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिर्मध्यमं पुनः।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत्॥
दशवारं च षष्ठेन दिशोबन्धः प्रकीर्तितः॥

'मिट्टीका तीन विभाग करके '**ॐ महः**' से अभिमन्त्रित करे। फिर छठे (**ॐ तपः**) से बायें हाथको मूल मन्त्रसे स्पर्श करे। सात बार अभिमन्त्रित करके फिर इसी मन्त्रसे दस बार दिग्बन्धन करे।'

वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च।
स्नात्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत्॥

'बायें हाथपर तीर्थकी (पवित्र) मिट्टी रखकर दायें हाथसे शरीरमें लेप करे। फिर सम्पूर्ण मन्त्रोंसे सूर्यका स्मरण करता हुआ तीर्थ-जलसे अभिषेक करे।'

शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा।
सौरै रेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः॥

'शृङ्गसे, पत्तेके दोनेसे अथवा पलाशपत्रसे सर्वसिद्धिकारी सूर्यमन्त्रोंको पढ़े।'

सौराणि च प्रवक्ष्यामि वाष्कलाद्यानि सुव्रत।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः॥

'अब सूर्यके वाष्कल आदि मन्त्रोंको, जो सब देवोंमें सारभूत हैं, कहता हूँ'—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म।

नवाक्षरमयं मन्त्रं वाष्कलं परिकीर्तितम्॥
न क्षरतीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम्॥

''**ॐ भूः**' आदि नवाक्षर वाष्कल-मन्त्र कहे जाते हैं। '**ॐ भूः**' आदि सात लोक नष्ट नही होते है। ऋतको अक्षर कहते हैं। प्रणव (ॐ) आदिमें और 'नमः' अन्तमें हो ऐसे ॐ नमः को सत्याक्षर कहा गया है।'

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः॥

यह भगवान् सूर्यका मूलमन्त्र है।

मूलं मन्त्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः।
नवाक्षरेण दीप्ताद्य मूलमन्त्रेण भास्करम्॥

पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि यथाक्रमम्।
वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन च मध्यमम्॥

'नवाक्षरसे प्रकाशित सूर्य भगवान्‌की मूल मन्त्रसे पूजा करे। प्रत्येक अङ्गोंके पूजनके मन्त्र क्रमसे कहता हूँ, जो वेदोंसे उत्पन्न हैं'—

'ॐ भूः ब्रह्महृदयाय नमः।' 'ॐ भुवः ब्रह्मशिरसे।' 'ॐ स्वः रुद्र शिखायै।' 'ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनी शिखायै॥' 'ॐ महः महेश्वराय कवचाय।' 'ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः।' 'ॐ तपः तारकाय अस्त्राय फट्।'

मन्त्राणि कथितान्येवं सौराणि विविधानि च।
एतैः शृङ्गादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभिषेचयेत्॥
ताम्रकुम्भेन वा विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च।
सकुशेन सपुष्पेण मन्त्रैः सर्वैः समाहितः॥

'इस प्रकार सूर्यके विविध मन्त्र कहे गये हैं। इन मन्त्रोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शृङ्गादि पात्रोंके द्वारा अथवा ताम्रकुम्भके जलसे कुशासे अपने ऊपर सींचे'—

रक्तवस्त्रपरीधानः स्वाचमेद् विधिपूर्वकम्।
सूर्यश्चेति दिवा रात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तमः॥
आपः पुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनमुच्यते।
षष्ठेन शुद्धिं कृत्वैव जपेदाद्यमनुत्तमम्॥
वौषडन्तं तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम्।

'लाल वस्त्र पहनकर विधिवत् आचमन करे। (प्रातः-काल) 'सूर्यश्च' आदि मन्त्रसे, मध्याह्नमें 'आपः पुनन्तु' आदिसे तथा सायंकालमें 'अग्निश्च' आदि मन्त्रसे आचमन करे। 'ॐ तपः' से इस प्रकार शुद्धि करके 'वौषट्‌पर्यन्त' मूल मन्त्र तथा सर्वश्रेष्ठ नवाक्षर मन्त्र जपे।'

करशाखां तथाङ्गुष्ठमध्यमानामिकां न्यसेत्॥
तले च तर्जन्यङ्गुष्ठं मुष्टिभागानि विन्यसेत्।
नवाक्षरमयं देहं कृत्वाङ्गैरपि पावितम्॥

'तत्पश्चात् अङ्गुलियों—अङ्गुष्ठादिका न्यास करे। फिर देहको नवाक्षरमय बनाकर पवित्र करे।'

सूर्योऽहमिति संचिन्त्य मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्।
वामहस्तगतैरद्भिः गन्धसिद्धार्थकान्वितैः॥
कुशपुञ्जेन चाभ्युक्ष्य मूलाग्रैरष्टधास्थितैः।
आपोहिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्राय वै जलम्॥
वामनासापुटेनैव देहे सम्भावयेत् शिवम्।

'मैं सूर्य हूँ' ऐसा विचार करके इन मन्त्रोंसे क्रम-से बायें हाथमें जल, चन्दन, सरसों रखकर कुशसमूह-से अपने देहका प्रोक्षण करे। शेष जलको बायीं नासिकासे सूँघकर अपने देहमें भगवान् शंकरका चिन्तन करे।

अर्घ्यमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च॥
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम्।
तर्पयेत् सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः॥

अर्घ्य अर्थात् नासिकामें लगाये हुए जलको लेकर अपने देहमें स्थित अज्ञानको पापपुरुषके साथ दाहिने नासिकासे निकालकर शिलापर रखनेकी भावना करे। पश्चात् सब देवताओं—विशेषतः ऋषियोंका तर्पण करे।

भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यं च दापयेत्।
व्यापिनीञ्च परां ज्योत्स्नां सन्ध्यां सम्यगुपासयेत्॥
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यं चैव निवेदयेत्।
रक्तचन्दनतोयेन हस्तमात्रेण मण्डलम्॥

'फिर प्राणियों एवं पितरोंको अर्घ्य दे। प्रातः, मध्याह्न एवं सायंव्यापिनी अत्यन्त प्रकाशित सन्ध्याकी अच्छी तरह उपासना करे। तब एक हाथका मण्डल बनाकर उसे रक्त चन्दनयुक्त करे। फिर रक्त चन्दनयुक्त जलसे मण्डल बनाये।'

सुवृत्तं कल्पयेद् भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमः।
प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रञ्च सगन्धं प्रस्थपूरितम्॥
पूरयेद् गन्धतोयेन रक्तचन्दनकेन च।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः॥
दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन घृतेन च।
आपूर्य मूलमन्त्रेण नवाक्षरमयेन च॥
जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत्।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्तितम्॥
तत्फलं लभते दत्त्वा सौरार्घ्यं सर्वसम्मतम्।

'सुन्दर ताम्रपात्रको गन्ध, जल, लाल चन्दन, रक्त पुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पञ्चगव्य अथवा गोघृतसे पूर्ण करके मूलमन्त्र (नवाक्षर मन्त्र) से दोनो जानुके वल पूर्वमुख बैठकर देवदेव भगवान् सूर्यको नमस्कारपूर्वक अर्घ्य दे। इससे दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका सर्वसम्मत फल उसे प्राप्त होता है।'

दत्त्वैवार्घ्यं यजेद् भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम् ॥
अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद् वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण भेदितम् ॥

'इस प्रकार सूर्यको अर्घ्य देकर भगवान् शंकरका पूजन करे। अथवा सूर्यका पूजन करके शिवके लिये भस्मस्नान करे। तत्पश्चात् 'सद्योजात' आदि मन्त्रोसे भगवान् शंकरको स्नान कराये।'

दन्तधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शाङ्करम्।
विघ्नेशं वरुणञ्चैव गुरुं तीर्थं समर्चयेत् ॥

दन्तधावन करके सौर-स्नान, शांकर-स्नान करनेके पश्चात् गणेश, वरुण तथा गुरुतीर्थका पूजन करे।

बद्ध्वा पद्मासनं तीर्थं तथा तीर्थं सपर्चयेत्।
तीर्थं संगृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च ॥
मार्गेणार्घ्यपवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम्।
पूर्ववत् करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत् ॥

'पद्मासन बाँधकर तीर्थका पूजन करे। विधिवत् पूजन करके पूजास्थानमें जाय और पादुका उतार करके पूर्ववत् करविन्यास और देहन्यास करे।'

अर्घ्यस्य सादनञ्चैव समासात् परिकीर्तितम्।
बद्ध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥
रक्तपुष्पाणि संगृह्य कमलाद्यानि भावयेत्।
आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभाण्डं च वामतः ॥
ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये।
अर्घ्यपात्रं समादाय प्रक्षाल्य च यथाविधि ॥
पूर्वोक्तेनाम्बुना सार्धं जलभाण्डे तथैव च।
अर्घ्योदकेन चैवार्घ्यसर्घ्यंद्रव्यसमन्वितम् ॥
संहितामन्त्रितं कृत्वा सम्पूज्य प्रथमेन च।
तुरीयेणावगुण्ठ्यैव स्थापयेदात्मनोपरि ॥
पाद्यमाचमनीयञ्च गन्धपुष्पसमन्वितम्।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत् पूर्ववत् पृथक् ॥
संहिताञ्चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च ॥
अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः।
आदित्यञ्च जपेद् देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥

'ताम्रपात्र सूर्य-पूजामें सब कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले होते हैं। अर्घ्यपात्र लेकर उसे यथाविधि शुद्ध करके पूर्वोक्त जल जलपात्रमे रखकर अर्घ्यद्रव्यसे युक्त करे। तदनन्तर संहितामन्त्रोंको पढ़कर प्रथमसे पूजन करके, चतुर्थसे मिलाकर अपने पास रखे। पाद्य, आचमनीय, गन्ध-पुष्पसे युक्त करके जलसे शुद्ध किये पात्रमें पहलेकी तरह रखे। मन्त्रोंसे तथा कवचसे अभिमन्त्रित करे। अर्घ्यके जलसे द्रव्योंका प्रोक्षण कर फिर सर्व-देवोंसे नमस्कृत भगवान् सूर्यकी उपासना करे।'

आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः ॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमान्तं हृदा न्यसेत् ॥

'आदित्यो वै तेजः' आदि यजुर्वेदकी श्रुतियोंद्वारा सूर्य भगवान्को नमस्कार करके सूर्यके आसनकी कल्पना करे। परमैश्वर्ययुक्त, परमसुख भगवान् सूर्यकी आराधना करे। अग्निकोण आदि उपदिशाओंमे ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः आदि मध्यम व्याहृतियोंका न्यास करे।'

अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव बीजमङ्कुरमेव च।
नालं सुषिरसंयुक्तं सूत्रकंटकसंयुतम् ॥
दलं दलाग्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम् ॥
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमलाक्रमात्।
अघोरा विकृता चैव दीप्ताद्याश्चाष्ट शक्तयः ॥
भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृताञ्जलिपुटाः शुभाः।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः ॥
मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत् सर्वतोमुखीम्।
आवाहयेद् ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम् ॥

'इस प्रकार अङ्गन्यास करके धर्मस्वरूप छिद्रयुक्त नालसे युक्त सुन्दर सफेद, सुवर्णके समान और लाल

दीप्त आदि शक्तियोंसे युक्त, कर्णिकाके केसरसे पूर्ण कमलकी भावना करे। और दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला आदि अष्टशक्तियोंको सूर्यके सामने हाथ जोडे हुए अथवा हाथमें कमल लिये हुए, सब आभरणोंसे विभूषित करके मध्यमें वरदा देवीकी स्थापना करे। उसके बाद वरदा देवी तथा भगवान् सूर्यका आवाहन करे।'

नवाक्षरेण मन्त्रेण वाष्कलोक्तेन भास्करम्।
आवाहने च सान्निध्यमनेनैव विधीयते॥
मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मनः।
मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात् पाद्यमाचमनं पृथक्॥
पुनरर्घ्यप्रदानेन वाष्कलेन यथाविधि।
रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च॥
दीपधूपादिनैवेद्यं मुखवासादिरेव च।
ताम्बूलवर्तिदीपाद्यं वाष्कलेन विधीयते॥
आग्नेय्यां च तथैशान्यां नैर्ऋत्यां वायुगोचरे।
पूर्वस्यां पश्चिमे चैव षट्प्रकारं विधीयते॥

'नवाक्षर वाष्कलोक्त मन्त्रसे भगवान् सूर्यका आवाहन करे। पद्ममुद्रासे मूलमन्त्रद्वारा अर्घ्य देकर आचमन करे। पुनः वाष्कल-मन्त्रसे यथाविधि अर्घ्य देकर लाल कमल, लाल चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल आदि भी वाष्कल-मन्त्रसे अर्पित करे। अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, पूर्व और पश्चिम आदिमें छः प्रकार करे।'

नेत्रान्तं विधिनाभ्यर्च्य प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
कर्णिकायां प्रविन्यस्य रूपकध्यानमाचरेत्॥

'प्रणवसे लेकर नमःतक कहकर यथाविधि उन-उन अवयवोंसे नेत्रतक पूजन करके अपने हृदय-कमलमें प्रतिबिम्बका ध्यान करे।'

सर्वे विद्युत्प्रभाः शान्ता रौद्रमस्त्रं प्रकीर्तितम्।
दंष्ट्राकरालवदनं ह्यष्टमूर्ति भयङ्करम्॥
वरदं दक्षिणं हस्तं वामं पद्मविभूषितम्।
सर्वाभरणसम्पन्ना रक्तस्रगनुलेपनाः॥
रक्ताम्बरधराः सर्वा मूर्तयस्तस्य संस्थिताः।
समण्डलो महादेवः सिन्दूरारुणविग्रहः॥
पद्महस्तोऽमृतास्यश्च द्विहस्तनयनः प्रभुः।
रक्ताभरणसंयुक्तो रक्तस्रगनुलेपनः॥
इत्थं रूपधरं ध्यायेद् भास्करं भुवनेश्वरम्।
पद्मवाह्ये शुभं चात्र मण्डलेषु समन्ततः॥

'सभीकी आभा विद्युत्कान्तिके समान एवं हृदय आदि शान्त हैं। अस्त्र रौद्र कहा गया है। भयावह दाँतोंसे अष्टमूर्ति भयकर है। दाहिना हाथ वरदाता और बायाँ हाथ कमलयुक्त है। सब आभरणोंसे सुशोभित, लाल माला एवं लाल चन्दनसे चर्चित, लाल वस्त्रको धारण किये हुए, भगवान् सूर्यकी सब मूर्तियोंको स्थित करे। मण्डलके सहित लाल रूप (विग्रह) वाले भगवान् सूर्य, हाथमें कमल लिये हुए, अमृतमय मुख-वाले, दोनों हाथों तथा नेत्रोंवाले, लाल आभरण, लाल माला, लाल चन्दनसे युक्त हैं ऐसे रूपवाले भुवनेश्वर भगवान् भास्करका ध्यान करे।'

सोममङ्गारकञ्चैव बुधं बुद्धिमतां वरम्।
बृहस्पतिं महाबुद्धिं रुद्रपुत्रञ्च भार्गवम्॥
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम्।
सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुश्चोर्ध्वशरीरधृक्॥
विवृत्तास्याञ्जलिं कृत्वा भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः।
शनैश्चरश्च दंष्ट्रास्यो वरदाभयहस्तधृक्॥
स्वैः स्वैः भावैः स्वनाम्ना प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
पूजनीया प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये॥
सप्त सप्त गणांश्चैव बहिर्देवस्य पूजयेत्।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः॥
ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यतः।
सप्ताश्वान् पूजयेदग्रे सप्तच्छन्दोमयान् विभोः॥

'धर्म, अर्थ और काम आदिकी सिद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक दो नेत्र तथा दो भुजावाले—उन चन्द्रमा, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु, धूम्र, ऊर्ध्वशरीरी एवं अधोमुखी राहुकी और अञ्जलि बाँधे वक्रदृष्टि, वरद हस्त धारण करनेवाले शनैश्चरकी पूजा करे तथा बाह्य सात गणों—ऋषियों, देवों, गन्धर्वों, पन्नगों, अप्सराओं, ग्रामदेवियों, मुख्यरूपसे यातुधानोंकी अर्चना कर सात छन्दरूपमें सूर्यके सात अश्वोंका भी पूजन करे।'

वालखिल्यं गणञ्चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः।
पूजयेदासनं मूर्तेर्देवतामपि पूजयेत्॥
अर्घ्यञ्च दापयेत् तेषां पृथगेव विधानतः।
आवाहने च पूजान्ते तेषामुद्वासने तथा॥
सहस्रं वा तदर्द्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
वाष्कलञ्च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत्॥

'वालखिल्य आदि ऋषियोका पूजन करे। निर्माल्य ग्रहण करे। पृथक्-पृथक् विधानसे अर्घ्य दे। आवाहन आदि पूजाके अन्तमें उनके उद्वासनमे एक हजार अथवा पाँच सौ या एक सौ आठ वाष्कल मन्त्र जपे। फिर दशांश हवन आदिकी विधि करे।'

कुण्डं च पश्चिमे कुर्याद् वर्तुलञ्चैव मेखलम्।
चतुरङ्गुलमानेन चोत्सेधाद् विस्तरादपि॥

'मण्डलके पश्चिम भागमे मेखलासहित गोला कुण्ड बनाये।'

एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा।
कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुण्डे दशाङ्गुलम्॥

'नित्य-नैमित्तिक कार्यमे एक हाथका कुण्ड बनावे। पीपलके पत्तेके समान बनाकर कुण्डमें दस अङ्गुलकी नाभि बनाये।'

तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम्।
गलमेकाङ्गुलञ्चैव शेषं द्विगुणविस्तरम्॥
तत्प्रमाणेन कुण्डस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम्।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमञ्च कारयेत्॥

'उसी प्रमाणसे मेखला बनाकर यत्नपूर्वक सिद्ध करके हवन करे।'

षष्ठेनोल्लेखनं कुयात् प्रोक्षयेद् वारिणा पुनः।
आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः॥
प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्येनैव तु विन्यसेत्।
वाष्कलेनैव सम्पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥
वाष्कलेनैव मन्त्रेण क्रियां प्रतियजेत् पृथक्।
मूलमन्त्रेण विधिना पश्चात् पूर्णाहुतिर्भवेत्॥
क्रमादेवं विधानेन सूर्याग्निर्जनितो भवेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमलं न्यसेत्॥

'षष्ठ अर्थात् 'ओं तपः' से उल्लेखन करके जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर आसन रखे। इसके बाद 'ॐ भूः' से समाहित हो प्रभावती आदि शक्तिका न्यास करे। तदनन्तर वाष्कल-मन्त्रसे गन्ध-पुष्पादिके द्वारा पूजन करे। फिर वाष्कल-मन्त्रसे हवन करके मूलमन्त्रसे पूर्णाहुति करे। क्रमशः इस विधानसे सूर्याग्नि प्रकट करे। पूर्वोक्त विधिसे कथित कमलको स्थापित करे।'

मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद् भास्करं प्रभुम्।
दशैवाहुतयो देया वाष्कलेन महामुने॥

'कमलके मुखके ऊपर पूजन करके पूर्वकी भाँति भगवान् सूर्यको वाष्कल-मन्त्रसे दस आहुति दे।'

अङ्गानाञ्च तथैकैकं संहिताभिः पृथक् पुनः।
जयादिस्विष्टपर्यन्तमिध्मप्रक्षेपमेव च॥
सामान्यं सर्वमार्गेषु पारम्पर्यक्रमेण च।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने॥
पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वार्घ्यञ्च प्रदक्षिणम्।
अङ्गैः सम्पूज्य संक्षिप्य ह्युद्वास्य नमस्य च॥

'तथा संहितामन्त्रोसे एक-एक अङ्गकी पूजा करके क्रमसे अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यको सब कुछ निवेदित करे। पूजा-हवन आदि देकर प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे।'

शिवपूजां ततः कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये।
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च॥

'उसके बाद भगवान् शिवका पूजन करे। इस प्रकार सक्षेपमे भगवान् सूर्यकी पूजाका विधान कहा गया है।'

यः सकृद् वा यजेद् देवं देवदेवं जगद्गुरुम्।
भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापविवर्जितः।
सर्वैश्वर्यसमोपेतः तेजसा प्रतिमश्च सः॥
पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बान्धवैश्च समन्ततः।
भुक्त्वैव सकलान् भोगान् इहैव धनधान्यवान्॥
यानवाहनसम्पन्नो भूषणैर्विविधैरपि।
कालं गतोऽपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम्॥

पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः।
वेदवेदाङ्गसम्पन्नो ब्राह्मणो वात्र जायते॥
पुनः प्राग्वासनायोगाद् धार्मिको वेदपारगः।
सूर्यमेव समभ्यर्च्य सूर्यसायुज्यमाप्नुयात्॥

जो एक बार भी देवदेव भगवान् सूर्यका पूजन कर लेता है, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है। सब पापोंसे छूट जाता है। समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त हो जाता है। तेजमें अप्रतिम हो जाता है। पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता है। यहींपर सब प्रकारके धन-धान्य प्राप्त कर लेता है। वाहन आदिसे युक्त हो जाता है। फिर देह त्यागनेके बाद सूर्यके साथ अक्षयकालतक आनन्द प्राप्त करता है। और फिर इस लोकमें आकर धार्मिक राजा अथवा वेदवेदाङ्ग-सम्पन्न ब्राह्मण होता है और पहली वासनाओंके योगसे धार्मिक वेदपारगामी होकर सूर्यका ही पूजन करके सूर्यके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है।

मत्स्यपुराणमें सूर्य-संदर्भ

[इस संदर्भमें सूर्यकी गति, अवस्थिति और ज्योतिष्पुञ्जोंके साथ सम्बन्धादिके सारांशका वर्णन है—]

सूतने कहा—ऋषिवृन्द ! अब इसके बाद मैं चन्द्रमा और सूर्यकी गतियाँ बतला रहा हूँ। ये चन्द्रमा तथा सूर्य सातों समुद्रों तथा सातों द्वीपोंसमेत समग्र पृथ्वीतलके अर्धभाग तथा पृथ्वीके बहिर्भूत अन्य अनेक लोकोंको प्रकाशित करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा विश्वकी अन्तिम सीमातक प्रकाश करते हैं; पण्डितलोग इस अन्तिमतक ही आकाशलोककी तुल्यता स्मरण करते हैं। सूर्य अपनी अविलम्बित गतिद्वारा साधारणतया तीनों लोकोंमें पहुँचते हैं। अतिशीघ्र प्रकाशदानद्वारा सभी लोकोंकी रक्षा करनेके कारण उनका 'रवि' नामसे स्मरण किया जाता है। इस भारतवर्षके विष्कम्भ (विस्तार)के समान ही परिमाणमें सूर्यका मण्डल माना गया है। वह विष्कम्भ कितने योजनोंमें है, इसे बता रहा हूँ, सुनिये। सूर्यके बिम्बका व्यास नौ सहस्र योजन है। इस विष्कम्भ-परिधिका विस्तार इसकी अपेक्षा तिगुना है। इस विष्कम्भ एवं मण्डलसे चन्द्रमा सूर्यसे द्विगुणित बड़ा[2] है।

आकाशमें तारागणोंकी अवस्थिति जितने मण्डलमें है, उतना ही सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका विस्तार माना गया है। फलस्वरूप भूमिके समान ही स्वर्गका मण्डल माना गया है। मेरुपर्वतकी पूर्व दिशामें मानसोत्तर पर्वतकी चोटीपर महेन्द्रकी वस्वेकसारा नामक सुवर्णसे सजायी गयी एक पुण्य नगरी है और उसी मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशाकी ओर मानसकी पीठपर अवस्थित संयमनीपुरीमें सूर्यका पुत्र यम निवास करता है। मेरुपर्वतकी पश्चिम दिशाकी ओर मानस नामक पर्वतकी चोटीपर अवस्थित बुद्धिमान् वरुणकी सुषा नामक परम रमणीय नगरी है। मेरुकी उत्तर दिशामें मानसगिरिकी चोटीपर महेन्द्रकी (वस्वेकसारा) नगरीके समान परम रमणीय चन्द्रमाकी विभावरी नामक नगरी है। उसी मानसोत्तरके शिखरपर चारों दिशाओंमें लोकपालगण धर्मकी व्यवस्था एवं लोकके संरक्षणके लिये अवस्थित हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य उक्त लोकपालोंके ऊपर भ्रमण करते हैं। उनकी गति सुनिये। दक्षिणायनके सूर्य धनुषसे छूटे हुए बाणकी तरह शीघ्रगतिसे चलते हैं और अपने ज्योतिःचक्रोंको साथ लेकर सर्वदा गतिशील रहते हैं। जिस समय

१. सूर्यसिद्धान्तका भूगोलाध्याय, ब्रह्माण्ड-सम्पुट-- परिभ्रमण—'समन्तादस्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः।'

२. किंतु ज्योतिषमें चन्द्रमाका विस्तार सूर्यसे बहुत कम माना गया है। देखिये—सूर्यसिद्धान्तका प्रथम भाग चन्द्रग्रहणाधिकारका प्रथम श्लोक। (उपर्युक्त उल्लेखका तात्पर्य अन्वेष्य है।)

अमरावती (वस्वेकसारा)पुरीमे सूर्य मध्यमे आते हैं। उस समय वैवस्वतके संयमनीपुरीमें वे उदित होते हुए दिखायी पड़ते हैं; सुषा नामक नगरीमे उस समय आधी रात होती है और विभावरीनगरीमें सायंकाल होता है। इसी प्रकार जिस समय वैवस्वत (यमराज) की संयमनी-पुरीमे सूर्य मध्याह्नके होते हैं, उस समय वरुणकी सुषा नगरीमे वे उदित होते दिखायी पडते हैं। विभावरीपुरीमें आधी रात रहती है और महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें सायंकाल होता है। जिस समय वरुणकी सुषानगरीमें सूर्य मध्याह्नके होते है, उस समय चन्द्रमाकी विभावरी-नगरीमे **वे** ऊँचाईपर प्रस्थान करते हैं अर्थात् उदित होते हैं। इसी प्रकार महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमे जब भानु उदित होते है, तब संयमनीपुरीमे आधी रात रहती है और वरुणकी सुषानगरीमे वे अस्ताचलको चले जाते हैं। इस प्रकार सूर्य अलातचक्र (जलते हुए लुकको घुमानेसे बननेवाला मण्डल-) की भॉनि शीघ्र गतिसे चलते हैं और स्वयं भ्रमण करते हुए नक्षत्रोको भ्रमण कराते हैं। इस प्रकार चारो पार्श्वोंमे सूर्य प्रदक्षिणा करते हुए गमन करते हैं तथा अपने उदय एव अस्तकालके स्थानोपर वारवार उदित और अस्त होते रहते हैं। दिनके पहले तथा पिछले भागोंमे दो-दो देवताओंके निवास-स्थानोपर वे पहुँचते है। इस प्रकार वे एक पुरीमे प्रातःकाल उदित हो बढनेवाली किरणो और कान्तियोंसे युक्त होकर मध्याह्नकालमें तपते हैं और मध्याह्नके अनन्तर तेजोविहीन होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त होते हैं। सूर्यके इस प्रकारके उदय और अस्तसे पूर्व तथा पश्चिमकी दिशाओकी सृष्टि स्मरण की जाती है। वे सूर्य जिस प्रकार पूर्वभागमें तपते हैं, उसी प्रकार दोनों पार्श्वों तथा पृष्ठ (पश्चिम)-भागमे भी तपते है। जिस स्थानपर उनका प्रथम उदय दिखायी पडता है, उसे उनका उदय-स्थान और जिस स्थानपर लय होता है उसे इनका अस्तस्थान कहते हैं।

सुमेरुपर्वत सभी पर्वतोंके उत्तरमे और लोकालोक पर्वतके दक्षिण ओर अवस्थित हैं। सूर्यके दूर हो जानेके कारण भूमिपर आती हुई उनकी किरणे अन्य पदार्थोंपर पड़ जाती है, अतः यहाँ आनेसे वे रुक जाती हैं। इसी कारण रातमे वे नहीं दिखलायी पड़ते। इस प्रकार जिस समय पुष्करके मध्यभागमे सूर्य होते हैं, उस समय ऊपर स्थित दिखलायी पड़ते हैं। एक मुहूर्त्त-(दो घड़ी-) मे सूर्य इस पृथ्वीके तीसवें भागतक जाते हैं। इस गतिकी सख्या योजनोमे सुनिये। वह पूर्ण संख्या इकतीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक स्मरण की जाती है। सूर्यकी इतनी गति एक मुहूर्त्तकी है। इस क्रमसे वे जब दक्षिण दिशामें भ्रमण करते हैं तो एक मासमें उत्तर दिशामे चले जाते है। दक्षिणायनमे सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यभागमें होकर भ्रमण करते हैं। मानसोत्तर और मेरुके मध्यमें इनका तीन गुना अन्तर है—ऐसा सुना जाता है। सूर्यकी विशेष गति दक्षिण दिशामे जानिये। नौ करोड पैंतालीस लाख योजनका यह मण्डल कहा गया है और सूर्यकी यह गति एक दिन तथा एक रात-की है। जब दक्षिणायनसे निवृत्त होकर सूर्य विषुर्व-स्थलपर हो जाते हैं, उस समय क्षीरसागरकी उत्तर दिशाकी ओर भ्रमण करने लगते हैं। उस विषुव-मण्डलको भी योजनोमे सुनिये।

सम्पूर्ण विषुवमण्डल तीन करोड़ एक लाख इक्कीस योजनोंमे विस्तृत है। जब श्रावण मासमे चित्रभानु उत्तर दिशामें सूर्य हो जाते है, तब गोमेद द्वीपके अनन्तरवाले प्रदेशमे उत्तर दिशामे वे विचरण करते हैं। उत्तर दिशाके प्रमाण, दक्षिण दिशाके प्रमाण तथा

१. वह स्थान या रेखा जिसपर सूर्यके पहुँचनेके समय दिन और रात बराबर होते हैं, विषुवस्थल कहा जाता है।

दोनों मध्यमण्डलके प्रमाणको क्रमपूर्वक एक समान जानना चाहिये। इसके मध्यमे जरद्रव, उत्तरमें ऐरावत तथा दक्षिणमें वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततया निर्दिष्ट किये गये हैं। उत्तरावीथी नागवीथी और दक्षिणावीथी अजवीथी मानी गयी है। दोनों आषाढ़ (पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ़) तथा मूल—ये तीन-तीन नक्षत्र अजावीथी—आदि तीन वीथियोंके कहे जाते हैं; अर्थात् मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ़, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती और उत्तराभाद्रपद—ये नागवीथी कहे जाते हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीन नक्षत्र नागवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा—ये भी नागवीथीके ही नामसे स्मरण किये जाते हैं। पुष्य, आश्लेषा और पुनर्वसु—इन तीनोंकी ऐरावती नामक वीथी स्मरण की जाती है। ये तीन वीथियाँ हैं। इनका मार्ग उत्तर कहा जाता है। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा—इनकी संज्ञा आर्षभीवीथी है। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये गोवीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये जरद्रव नामक वीथीमे हैं। इन तीन वीथियोंका मार्ग मध्यम कहा जाता है। हस्त, चित्रा तथा स्वाती—ये अजावीथीके नामसे स्मरण किये जाते हैं। ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधा—ये मृगवीथी कहे जाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ और उत्तराषाढ—ये वैश्वानरीवीथीके नामसे विख्यात हैं। इन तीन वीथियोंका मार्ग दक्षिण दिशामे है। अब इनमेसे दोका अन्तर योजनोद्वारा बता रहा हूँ। यह अन्तर इकतीस लाख तैंतीस सौ योजनोंका है। यहाँ इतना अन्तर बतलाया गया है। अब विषुव-स्थलसे दक्षिणायन और उत्तरायण-पर्योका परिमाण योजनोमे बतला रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। मध्यभागमे स्थित एक रेखा दूसरीसे पचीस हजार अधिक योजन अन्तरपर है। बाहर और भीतरकी इन दिशाओं और रेखाओंके मध्यमें चलते हुए सूर्य सर्वदा उत्तरायणमे भीतरसे मण्डलोंको पार करते हैं और दक्षिणायनमें सूर्यमण्डल बाहर रह जाता है। इस प्रकार बहिर्भागसे विचरण करते हुए सूर्य उत्तरायणमें एक सौ अस्सी योजन भीतर प्रवेश करते हैं। अब मण्डलका परिमाण सुनिये। वह मण्डल अठारह हजार अट्ठावन योजनका सुना जाता है। उस मण्डलका यह परिमाण तिरछा जानना चाहिये। इस प्रकार एक दिन-रातमें सूर्य मेरुके मण्डलको इस प्रकार प्राप्त होते हैं, जैसे कुम्हारकी चाक नाभिके क्रमपर चलती है। सूर्यकी भाँति चन्द्रमा भी नाभिके क्रमसे मण्डलको प्राप्त होते हैं। दक्षिणायनमें सूर्य चक्रके समान शीघ्रतासे अपनी गति समाप्तकर निवृत्त हो जाते हैं। इसी कारण प्रमाणमें अधिक भूमिको वह थोड़े ही समयमें चलकर समाप्त कर देते हैं। दक्षिणायनके सूर्य केवल बारह मुहूर्त्तमें कुल नक्षत्रोंकी कुल संख्याके आधे अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलमे भ्रमण करते हैं और रातके शेष अठारह मुहूर्त्तमें उतने ही अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलमें भ्रमण करते हैं। कुम्हारकी चाकके मध्यभागमें स्थित वस्तु जिस प्रकार मन्द गतिसे भ्रमण करती है, उसी प्रकार उत्तरायणके मन्द पराक्रम-शील सूर्य मन्दगतिसे भ्रमण करते हैं। यही कारण है कि वे बहुत अधिक कालमें भी अपेक्षाकृत थोड़े मण्डलका भ्रमण कर पाते हैं। उत्तरायणके सूर्य अठारह मुहूर्त्तमें केवल तेरह नक्षत्रोंके मध्यमे विचरण करते हैं और उतने ही नक्षत्रोंके मण्डलोंमें रातके बारह मुहूर्त्तमें भ्रमण करते हैं। सूर्य और चन्द्रमाकी गतिसे मन्द गतिमें चाकपर रखे हुए मिट्टीके पिंडकी भाँति चक्राकार घूमता हुआ ध्रुव भी नक्षत्र-मण्डलोंमें निरन्तर भ्रमण करता रहता है। ध्रुव तीस मुहूर्त्तमें अर्थात् पूरे दिन-रातभरमे भ्रमण करता हुआ दोनों सीमाओंके मध्यमें स्थित उन मण्डलोंकी परिक्रमा करता है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति दिनमे मन्द कही गयी है और रातको तीक्ष्ण

सुनी जाती है। इसी प्रकार दक्षिणायनमे सूर्य दिनमे शीघ्र गतिसे चलते हैं और रातमे उनकी मन्द गति हो जाती है। इस प्रकार अपने गमनके तारतम्यसे दिन और रातका विभाग करते हुए वे दक्षिणकी अजावीथी एवं लोकालोककी उत्तर दिशाकी ओर प्रवृत्त होते हैं। लोकसतान पर्वत और वैश्वानरके मार्गसे बाहरकी ओर वे जब आते हैं, तब पुष्कर नामक द्वीपसे उनकी कान्ति अधिक प्रखर हो जाती है। पथकी पार्श्वभूमियोसे बाहरकी ओर वहाँ लोकालोक नामक पर्वत है, जिसकी ऊँचाई दस हजार योजन है और अवस्थिति मण्डलाकार है। उक्त पर्वतका मण्डल प्रकाश एव अन्धकार दोनोसे युक्त रहता है। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह एवं तारागण सभी ज्योतिष्पुञ्ज इस लोकालोकके भीतरी भागमे प्रकाशित होते हैं। जितने स्थानपर प्रकाश होता है, उतना ही लोक माना गया है। उसके बादकी संज्ञा निरालोक (अन्धकारमय) मानी गयी है। **'लोक'** धातु आलोकन अर्थात् दिखायी देनेके अर्थमे प्रयुक्त होता है और न दिखायी पडनेका नाम अलोक है। भ्रमण करते हुए सूर्य जब लोक (प्रकाश) और अलोक (प्रकाशरहित)-की सधिपर पहुँचते हैं अर्थात् दोनोका संयोग कराते हैं तो उस समयको लोग संध्याके नामसे पुकारते हैं।

उषा और व्युष्टिमे परस्पर अन्तर माना गया है; अर्थात् प्रातःकी उषा एव संध्याका निशामुख दोनो संधिकालोमें कुछ अन्तर है। ऋषिगण उषाको रात्रिमे और व्युष्टिको दिनके भीतर स्मरण करते है। एक मुहूर्त्त तीस कलाका और एक दिन पद्रह मुहूर्त्तका होता है। दिनके प्रमाणमे ह्रास और वृद्धि होती है। उसका कारण संध्या-कालमे एक मुहूर्त्तकी ह्रास-वृद्धि है, जो सदा बढ़ा-घटा करती है। सूर्य विषुव-प्रभृति विभिन्न पथोसे गमन करते हुए तीन मुहूर्त्तोका व्यतिक्रम करते है। सम्पूर्ण दिनके पाँच भाग कहे गये हैं। दिनके प्रथम तीन मुहूर्त्तोको प्रातःकाल कहते हैं। उस प्रातःकालके व्यतीत हो जानेपर तीन मुहूर्त्ततक सगवनामक काल रहता है। उसके अनन्तर तीन मुहूर्त्ततक मध्याह्नकाल रहता है। उस मध्याह्न कालके बाद अपराह्न-कालका स्मरण किया जाता है। पण्डितोने इसको भी तीन ही मुहूर्त्तोका बतलाया है। अपराह्णके बीत जानेपर जो काल प्रारम्भ होता है, उसे सायकाल कहते हैं। इस प्रकार पंद्रह मुहूर्त्तोवाले एक दिनमें ये तीन-तीन मुहूर्त्तोके पाँच काल होते हैं। विषुव-स्थानमे सूर्यके जानेपर दिनका प्रमाण पंद्रह मुहूर्त्तोका स्मरण किया जाता है। दक्षिणायनमें दिनका प्रमाण घट जाता है और इसके बाद उत्तरायणमें आनेपर बढ जाता है। इस प्रकार दिन बढ़कर रातको घटाता है और रात बढ़कर दिनको कम करती है। विषुव शरद् और वसन्त ऋतुको माना गया है। जहाँतक सूर्यके आलोकका अन्त होता है, वहाँतककी संज्ञा लोक है और उस लोकके पश्चात् अलोककी स्थिति कही जाती है।

× × ×

ऋषिगण! इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहगणोके भ्रमणकी दिव्य कथाको सुनकर ऋषियोने लोमहर्षणके पुत्र सूतजीसे पुनः पूछा।

ऋषियोंने कहा—सौम्य! ये ज्योतिर्गण ग्रह, नक्षत्र आदि किस प्रकार सूर्यके मण्डलमें भ्रमण करते हैं? सभी एक समूहमे मिलकर या अलग-अलग? कोई इन्हे भ्रमण कराता है अथवा ये स्वयमेव भ्रमण करते हैं? इस रहस्यको जाननेकी हमे बडी इच्छा है, कृपया कहिये।

सूतजी बोले—ऋषिगण! यह विषय प्राणियोको मोहमें डालनेवाला है। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखायी देता हुआ भी यह व्यापार लोगोको आश्चर्य एव अज्ञानमें डाल देता है। मैं कह रहा हूँ, सुनिये। जहाँपर चौदह नक्षत्रोमें शिशुमार नामक एक ज्योतिश्चक्र व्यवस्थित है, वहाँ

आकाशमे उत्तानपादका पुत्र ध्रुव मेढ़् (लिङ्ग) के समान एक स्थानमें अवस्थित है। यह ध्रुव भ्रमण करता हुआ नक्षत्रगणोंको सूर्य और चन्द्रमाके साथ भ्रमाता है और स्वयं भ्रमण करता है। चक्रके समान भ्रमण करते हुए इसीके पीछे-पीछे सब नक्षत्रगण भ्रमण करते हैं। वायुमय बन्धनोंसे ध्रुवमे बँधे हुए वे ज्योतिर्गण ध्रुवके मनसे ही भ्रमण करते हैं। उन ज्योतिश्चक्रोंके भेद, योग, कालके निर्णय, अस्त, उदय, उत्पात, दक्षिणायन एव उत्तरायणमे स्थित, विषुव-रेखापर गमन आदि कार्य सभी ध्रुवकी प्रेरणापर ही निर्भर करते हैं। इस लोकके जीवोंकी जिनसे उत्पत्ति होती है, वे जीमूत नामक मेघ कहे जाते हैं। उन्हींकी वृष्टिसे सृष्टि होती है।

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टिके कर्ता कहे जाते हैं। इस लोकमे होनेवाली वृष्टि, धूप, तुपार, रात-दिन, दोनों संध्याएँ, शुभ एवं अशुभ फल—सभी ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवमे स्थित जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। सभी प्रकारके जीवोंके शरीरमे जल परमाणुरूपमे आश्रित रहता है। स्थावर-जङ्गम जीवोंके भस्म होते समय वह धुएँके रूपमे परिणत होकर सभी ओरसे निकलता है। उसी धूमसे मेघगण उत्पन्न होते हैं। आकाशमण्डल अभ्रमय स्थान कहा जाता है।

अपनी तेजोमयी किरणोंसे सूर्य सभी लोकोंसे जलको ग्रहण करते हैं। वे ही किरणें वायुके सयोगद्वारा समुद्रसे भी जलको खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ग्रीष्म आदि ऋतुके प्रभावसे समय-समयपर परिवर्तनकर जलको अपनी श्वेत किरणोद्वारा उन मेघोंको जल देते हैं। वायुद्वारा प्रचलित होनेपर उन्हीं मेघोंकी जलराशि बादमें पृथ्वीतलपर गिरती है और तदनन्तर छः महीनोतक सभी प्रकारके जीवोंकी सतुष्टि एवं अभिवृद्धिके लिये सूर्य पृथ्वीतलपर वृष्टि करते हैं। वायुके वेगसे उन मेघोंमें शब्द होते हैं। बिजलियाँ अग्निसे उत्पन्न बतलायी जाती हैं। 'मिह सेचने' धातुसे मेघ शब्द जल छोड़ने अथवा सिंचन करनेके अर्थमें निष्पन्न होता है। जिससे जल न गिरे, उसे अभ्र कहते हैं—(न भ्रश्यते आपो यस्मादसावभ्रः)। इस प्रकार वृष्टिकी उत्पत्ति करनेवाले सूर्य ध्रुवके संरक्षणमें रहते हैं। उसी ध्रुवके संरक्षणमें अवस्थित वायु उस वृष्टिका उपसंहार करती है। नक्षत्रोंका मण्डल सूर्यमण्डलसे बहिर्गत होकर विचरण करता है। जब संचार समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा अधिष्ठित सूर्यमण्डलमे वे सभी प्रवेश करते हैं। अब इसके बाद मैं सूर्यके रथका प्रमाण बतला रहा हूँ।

एक चक्र, पाँच अरे, तीन नाभि तथा सुवर्णकी छोटी आठ पुट्ठियोंद्वारा बनी हुई नेमि-(जिसपर हाल चढ़ाई जाती है)-से बने हुए तेजोमय शीघ्रगामी रथ-द्वारा सूर्य गमन करते हैं। उनके रथकी लंबाई एक लाख योजन कही जाती है। जुआ-दण्ड उससे दूना कहा गया है। वह सुन्दर रथ ब्रह्माने मुख्य प्रयोजनके लिये बनाया है। संसारभरमें वह रथ अनुपम सुन्दर है। सुवर्णद्वारा उसकी रचना हुई है। वह सचमुच परम तेजोमय है। पवनके समान वेगशील चक्रोंकी स्थितिके अनुकूल चलनेवाले अश्वरूपधारी छन्दोंसे वह संयुक्त है। वरुणके रथके चिह्नोंसे वह मिलता-जुलता है। उसी अनुपम रथपर चढ़कर भगवान् भास्कर प्रतिदिन आकाशमार्गमे विचरण करते हैं।

सूर्यके अङ्ग तथा उनके रथके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग वर्षके अवयवोंके रूपमें कल्पित किये गये हैं। दिन उस एकचक्र सूर्यरथकी नाभि है और अरे उनके सवत्सर हैं, छहों ऋतुएँ नेमि कही जाती हैं। रात्रि उनके रथका वरूथ[1] तथा वर्म[2] (घाम) ऊर्ध्वध्वजाके रूपमे कल्पित है।

१. लोहेकी चद्दर वा सीकड़ोंका बना हुआ आवरण वा झूल, जो शत्रुपक्षके आघातसे रथको सुरक्षित रखनेके लिये उसके ऊपर डाला जाता है, 'वरूथ' कहा जाता है।

२. कई पुस्तकोंमें 'धर्म' पाठ पाया जाता है। परंतु 'घर्म' पाठ अधिक समीचीन है।

चारों युग उस रथके पहियेकी छोर तथा कलाएँ जुएके अग्रभाग हैं। दसों दिशाएँ अश्वोंकी नासिका तथा क्षण उनके दाँतोंकी पंक्तियाँ हैं। निमेष रथका अनुकर्ष* तथा कला जुएका दण्ड है। अर्थ तथा काम—इस (रथ) के जुएके अक्षके अवयव हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती—ये सात छन्द अश्वरूप धारणकर वायुवेगसे उस रथको वहन करते हैं। इस रथका चक्र अक्षमे बँधा हुआ है। अक्ष ध्रुवसे संलग्न चक्रके समेत भ्रमण करता है। इस प्रकार किसी विशेष प्रयोजनके वश होकर उस रथका निर्माण ब्रह्माने किया है। उक्त साधनोंसे संयुक्त भगवान् सूर्यका वह रथ आकाशमण्डलमे भ्रमण करता है। इसके दक्षिण भागकी ओर जुआ और अक्षका शिरोभाग है। चक्का और जुएमे रश्मिका संयोग है। चक्के और जुएके भ्रमण करते समय दोनो रश्मियाँ भी मण्डलाकार भ्रमण करती हैं। वह जुआ और अक्षका शिरोभाग कुम्हारके चक्केकी भाँति ध्रुवके चारो ओर परिभ्रमण करता है। उत्तरायणमे इसका भ्रमण-मण्डल ध्रुव-मण्डलमे प्रविष्ट हो जाता है और दक्षिणायनमे ध्रुव-मण्डलसे बाहर निकल आता है। इसका कारण यह है कि उत्तरायणमे ध्रुवके आकर्षणसे दोनो रश्मियाँ संक्षिप्त हो जाती हैं और दक्षिणायनमे ध्रुवके रश्मियोके परित्याग कर देनेसे बढ जाती हैं। ध्रुव जिस समय रश्मियोको आकृष्ट कर लेता है, उस समय सूर्य दोनो दिशाओकी ओर अस्सी सौ मण्डलोके व्यवधानपर विचरण करते हैं और जिस समय ध्रुव दोनो रश्मियोको त्याग देता है, उस समय भी उतने ही परिमाणमे वेग-पूर्वक बाहरी ओरसे मण्डलोको वेष्टित करते हुए भ्रमण करते हैं।

सूतजी बोले—ऋषिवृन्द! भगवान् भास्करका वह रथ महीने-महीनेके क्रमानुसार देवताओद्वारा अधिरोहित होता है अर्थात् प्रत्येक महीनेमे देवादिगण इसपर आरूढ होते हैं। इस प्रकार बहुतसे ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सारथि तथा राक्षसके समूहोके समेत वह सूर्यका वहन करता है।

ये देवादिके समूह क्रमसे सूर्यमण्डलमें दो-दो मासतक निवास करते हैं। धाता, अर्यमा—दो देव; पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि-प्रजापति; वासुकि तथा संकीर्ण नामक दो सर्प; गानविद्यामे विशारद तुम्बुरु तथा नारद नामक दो गन्धर्व; कृतस्थला तथा पुञ्जिकस्थली नामक दो अप्सराएँ; रथकृत तथा रथौजा नामक दो सारथि; हेति तथा प्रहेति नामक दो राक्षस—ये सब सम्मिलितरूपसे चैत्र तथा वैशाखके महीनोमे सूर्य-मण्डलमें निवास करते है। ग्रीष्म ऋतुके ज्येष्ठ तथा आषाढ—दो महीनोमें मित्र तथा वरुण नामक दो देव; अत्रि तथा वसिष्ठ नामक दो ऋषि; तक्षक तथा रम्भक नामक दो सर्पराज; मेनका तथा धन्या नामक दो अप्सराएँ; हाहा तथा हूहू नामक दो गन्धर्व; रथन्तर तथा रथकृत नामक दो सारथि; पुरुषाद और वध नामक दो राक्षस सूर्य-मण्डलमे निवास करते हैं। तदुपरान्त सूर्यमण्डलमें अन्य देवादिगण निवास करते हैं। उनमे इन्द्र तथा विवस्वान्—ये दो देव; अंगिरा तथा भृगु—ये दो ऋषि, एलापत्र तथा शखपाल नामक दो नागराज; विश्वावसु तथा सुषेण नामक दो गन्धर्व; प्रात और रवि नामक दो सारथि; प्रम्लोचा तथा निम्लोचन्ती नामकी दो अप्सराएँ; हेति तथा व्याघ्र नामक दो राक्षस रहते हैं। ये सब श्रावण तथा भाद्रपदके महीनोमे सूर्य-मण्डलमे निवास करते हैं। इसी प्रकार शरद् ऋतुके दो महीनोंमे अन्य देवगण निवास करते हैं। पर्जन्य और पूषा नामक दो देव; भरद्वाज और गौतम नामक दो महर्षि; चित्रसेन और सुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा घृताची नामक दो शुभ लक्षणसम्पन्न अप्सराएँ; सुप्रसिद्ध ऐरावत तथा धनञ्जय नामक दो नागराज, सेनजित् तथा सुषेण नामक दो सारथि तथा नायक चार और वात

* रथके नीचे रहनेवाली पहियेके ऊपर बँधी हुई लकड़ी।

नामक दो राक्षस—ये सब आश्विन तथा कार्तिक मासमे सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। हेमन्त ऋतुके दो महीनोमें जो देवादिगण सूर्यमें निवास करते हैं, वे ये हैं—अंश और भाग—ये दो देव; कश्यप और क्रतु—ये दो ऋषि; महापद्म तथा कर्कोटक नामक दो सर्पराज; चित्रसेन और पूर्णायु नामक गायक दो गन्धर्व; पूर्वचित्ति तथा उर्वशी—ये दो अप्सराएँ; तक्षा तथा अरिष्टनेमि नामक दो सारथि एवं नायक विद्युत् तथा सूर्य नामक दो उग्र राक्षस—ये सब मार्गशीर्ष और पौषके महीनोमें सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। तदनन्तर शिशिर ऋतुके दो महीनोमे त्वष्टा तथा विष्णु—ये दो देव; जमदग्नि तथा विश्वामित्र—ये दो ऋषि; काद्रवेय तथा कम्बलाश्वतर—ये दो नागराज; सूर्यवर्चा तथा धृतराष्ट्र—ये दो गन्धर्व; सुन्दरतासे मनको हर लेनेवाली तिलोत्तमा तथा रम्भा नामक दो अप्सराएँ; ऋतजित् तथा सत्यजित् नामक दो महाबलवान् सारथि; ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस निवास करते हैं।

ये उपर्युक्त देव आदि गण क्रमसे दो-दो महीनेतक सूर्यमण्डलमे निवास करते है। ये बारह सप्तकों (देव, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, सारथि, नाग और अप्सरा)के जोडे इन स्थानोके अभिमानी कहे जाते है और ये सब बारह सप्तक देवादिगण भी अपने अतिशय तेजसे सूर्यको उत्तम तेजोवाला बनाते है। ऋषिगण अपने बनाये हुए गेय वाक्योसे सूर्यकी स्तुति करते है। गन्धर्व एवं अप्सराएँ अपने-अपने नृत्यो तथा गीतोसे सूर्यकी उपासना करती है। विद्यामे परम प्रवीण सारथि यक्षगण सूर्यके अश्वोकी डोरियाँ पकडते हैं। सर्पगण सूर्यमण्डलमे द्रुतगतिसे इधर-इधर दौडते तथा राक्षसगण पीछे-पीछे चलते है। इनके अतिरिक्त वालखिल्य ऋषि उदयकालसे सूर्यके समीप अवस्थित रह कर उन्हे अस्ताचलको प्राप्त कराते हैं। इन उपर्युक्त देवताओमे जिस प्रकारका पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व तथा शारीरिक बल रहता है, उसी प्रकार उनके तेजरूप ईंधनसे समृद्ध होकर सूर्य अतिशयित तेजस्वी रूपमें तपते हैं। ये सूर्य अपने तेजोबलसे समस्त जीवोंके अकल्याणका प्रशमन करते हैं, मनुष्योंकी आपदाको इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंसे दूर करते हैं और कहीं-कहींपर शुभाचरण करनेवालोंके अकल्याणको हरते है। ये उपर्युक्त सप्तक सूर्यके साथ ही अपने अनुचरों-समेत आकाशमण्डलमें भ्रमण करते हैं। ये देवगण दयावश प्रजावर्गसे तपस्या तथा जप कराते हुए उनकी रक्षा करते हैं तथा उनके हृदयको प्रसन्नतासे पूर्ण कर देते हैं। अतीतकाल, भविष्यत्काल तथा वर्तमान-कालके स्थानाभिमानियोंके ये स्थान विभिन्न मन्वन्तरोंमें भी वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार नियमपूर्वक चौदहकी संख्यामें जोड़े रूपमें वे सप्तक देवादिगण सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं और चौदह मन्वन्तरोंतक क्रमपूर्वक विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, शिशिर तथा वर्षा ऋतुमें अपनी किरणोंका क्रमशः परिवर्तन कर घाम, हिम तथा वृष्टि करते हुए प्रतिदिन देवता, पितर तथा मनुष्योंको तृप्त करते हैं और प्रतिक्षण भ्रमण करते हैं। देवगण दिन-दिनके क्रमसे शुक्ल एवं कृष्णपक्षमें महीने-भर कालक्षयके अनुसार उस मीठे अमृतका पान करते है, जो सुवृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोंद्वारा रक्षित रहता है। सभी देवता, सौम्य तथा बर्ल्यादि पितरगण सूर्यके उस अमृत-रसका पान करते है और कालान्तरमे सुवृष्टि करते हुए संसारको तृप्त करते है। मानवगण सूर्यकी किरणोद्वारा बढायी गयी तथा जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा प्रवर्धित ओषधियोसे एवं अन्नसे क्षुधाको अपने वशमे करते हैं। सूर्यकी उस सचित अमृतराशिसे देवताओंकी तृप्ति पद्रह दिनोतक तथा स्वधामय पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है। वृष्टिजनित अन्नराशिसे

मनुष्यगगण सर्वदा अपना जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार सूर्य अपनी किरणोद्वारा सबका पालन करते हैं।

सूर्य अपने उस एकचक्र रथद्वारा शीघ्र गमन करते हैं और दिनके व्यतीत हो जानेपर उन्हीं विषमसंख्यक (सात) अश्वोंद्वारा अपने स्थानको पुनः प्राप्त करते हैं। हरे रंगवाले अपने अश्वोसे वे वहन किये जाते है और अपनी सहस्र किरणोसे जलका हरण करते हैं एवं तृप्त होनेपर हरित वर्णवाले अपने अश्वोसे संयुक्त रथपर चढकर उसी जलको पुनः छोड़ते है। इस प्रकार अपने एक चक्रवाले रथद्वारा दिन-रात चलते हुए सूर्य सातो द्वीपो तथा सातो समुद्रोसमेत निखिल पृथ्वीमण्डलका भ्रमण करते है। उनका वह अनुपम रथ अश्वरूपधारी छन्दोसे युक्त हैं, उसीपर वे समासीन होते हैं। वे अश्व इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले, एक बार जोते गये, इच्छानुकूल चलनेवाले तथा मनके वेगके समान शीघ्रगामी हैं। उनके रंग हरे है, उन्हे थकावट नहीं लगती। वे दिव्य तेजोमय शक्तिशाली तथा ब्रह्मवेत्ता हैं। ये प्रतिदिन अपने निर्धारित परिधि-मण्डलकी परिक्रमा बाहर तथा भीतरसे करते है। युगके आदिकालमें जोते गये वे अश्व महाप्रलयतक सूर्यका भार वहन करते है। वालखिल्य आदि ऋषिगण चारो ओरसे परिभ्रमणके समय सूर्यको रात-दिन घेरे रहते है। महर्षिगण स्वरचित स्तोत्रोद्वारा उनकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व तथा अप्सराओके समूह सगीत तथा नृत्योसे उनका सत्कार करते है। इस प्रकार वे दिनमणि भास्कर पक्षियोके समान वेगशाली अश्वोद्वारा भ्रमण कराये जाते हुए नक्षत्रोकी वीथियोमे विचरण करते है। उन्हींकी भाँति चन्द्रमा भी भ्रमण करते है।

ऋषियोंके ज्योतिष्पुञ्जके सम्बन्धके प्रश्नमे सूतजीने कहा—आदिम कालमे यह समस्त जगत् रात्रिकालमे अन्धकारसे आच्छन्न एवं आलोकहीन था। अव्यक्तयोनि ब्रह्माजीने जगत्की किसी भी वस्तुमे प्रकाश नहीं किया था। इस प्रकार (युगादिमे) चार पदार्थोंके शेष रह जानेपर यह जगत् ब्रह्मद्वारा अधिष्ठित हुआ। पश्चात् स्वयं उत्पन्न होनेवाले लोकके परमार्थसाधक भगवान्ने खद्योतरूप धारणकर इस जगत्को व्यक्तरूपमे प्रकट करनेकी चिन्ता की और कल्पके आदिमे अग्निको जल और पृथ्वीमे मिली हुई जानकर प्रकाश करनेके लिये तीनोको एकत्र किया। इस प्रकार तीन प्रकारसे अग्नि उत्पन्न हुई।

इस लोकमे जो अग्नि भोजन आदि सामग्रियोको पकानेवाली है, वह पार्थिव (पृथ्वीके अंशसे उत्पन्न) अग्नि है। जो यह सूर्यमे अधिष्ठित होकर तपती है, वह 'शुचि' नामक अग्नि है। उदरस्थ पदार्थोंको पकानेवाली अग्नि 'विद्युत्'की अग्नि कही जाती है। उसे 'सौम्य' नामसे भी जानते हैं। इस विद्युत् अग्निका उपकारक ईंधन जल है। कोई अग्नि अपने तेजोसे बढती है और कोई बिना किसी ईंधनके ही बढती है। काष्ठके ईंधनसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निका निर्मथ्य नाम है। यह अग्नि जलसे शान्त हो जाती है। भोजनादिको पकानेवाली जठराग्नि ज्वालाओसे युक्त, देखनेमे सौम्य एवं कान्तिविहीन है। यह अग्नि श्वेत मण्डलमे ज्वालारहित एव प्रकाश-विहीन है। सूर्यकी प्रभा सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिकालमे अपने चतुर्थ अंशसे अग्निमे प्रवेश करती है। इसी कारण रात्रिमे अग्नि प्रकाशयुक्त हो जाती है। प्रातःकाल सूर्यके उदित होनेपर अग्निकी उष्णता अपने तेजके चतुर्थ अशसे सूर्यमे प्रवेश कर लेती है, इसी कारण दिनमे सूर्य तपता है। सूर्य और अग्निके प्रकाश, उष्णता और तेज—इन सभीके परस्पर प्रविष्ट होनेके कारण दिन और रात्रिकी शोभा-वृद्धि होती है।

पृथ्वीके उत्तरवर्ती अर्धभाग तथा दक्षिणभागमे सूर्यके उदित होनेपर रात्रि जलमें प्रवेश करती है, इसीलिये दिन और रात—दोनोके प्रवेश करनेके कारण जल दिनमे लाल वर्णका दिखायी देता है। पुनः सूर्यके अस्त

हो जानेपर दिन जलमे प्रवेश करता है, इसीलिये रातके समय जल चमकविशिष्ट तथा श्वेत रंगका दिखायी पड़ता है। इस क्रमसे पृथ्वीके अर्ध दक्षिणी तथा उत्तरी भागमे सूर्यके उदय तथा अस्तके अवसरोपर दिन-रात्रि जलमे प्रवेश करती हैं।

यह सूर्य, जो तप रहा है, अपनी किरणोंसे जलका पान करता है। इस सूर्यमे निवास करनेवाली अग्नि सहस्र किरणोवाली तथा रक्त कुम्भके समान लाल वर्णकी है। यह चारो ओरसे अपनी सहस्र नाड़ियोसे नदी, समुद्र, तालाब, कुँआ आदिके जलोको ग्रहण करती है। उस सूर्यकी सहस्र किरणोसे शीत, वर्षा एवं उष्णताका निःस्रवण होता है। उसकी एक सहस्र किरणोमें चार सौ नाड़ियाँ विचित्र आकृतिवाली तथा वृष्टि करनेवाली स्थित हैं। चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता तथा जीवना—सूर्यकी ये किरणें वृष्टि करनेवाली हैं। हिमसे उत्पन्न होनेवाली सूर्यकी तीन सौ किरणे कही जाती हैं, जो चन्द्रमा, ताराओ एवं ग्रहोद्वारा पी जायी जाती हैं। ये मध्यकी नाड़ियाँ हैं। अन्य ह्लादिनी नामक किरणे हैं, जो नामसे शुक्ला कही जाती हैं। उनकी संख्या भी तीन सौ हैं। वे सभी घामकी सृष्टि करनेवाली हैं। वे शुक्ला नामक किरणें मनुष्य, देवता एवं पितरोका पालन करती हैं। ये किरणें मनुष्योको ओषधियोद्वारा, पितरोको स्वधाद्वारा एवं समस्त देवताओंको अमृतद्वारा संतुष्ट करती है।

सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओमे तीन सौ किरणोद्वारा शनैः-शनैः तपते हैं। इसी प्रकार वर्षा और शरद् ऋतुओमें चार सौ किरणोसे वृष्टि करते हैं तथा हेमन्त और शिशिर ऋतुओमे तीन सौ किरणोंसे बर्फ गिराते हैं। ये ही सूर्य ओषधियोंमे तेज धारण कराते हैं, स्वधामे सुधाको धारण कराते हैं एवं अमृतमे अमरत्वकी वृद्धि करते हैं। इस प्रकार सूर्यकी वे सहस्र किरणें तीनो लोकोके तीन मुख्य प्रयोजनोकी साधिका होती हैं।

ऋतुको प्राप्त होकर सूर्यका मण्डल सहस्रों भागोंमें पुनः प्रसृत हो जाता है। इस प्रकार वह मण्डल शुक्ल-तेजोमय एवं लोकसंज्ञक कहा जाता है।

नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रमा आदिकी प्रतिष्ठा एवं उत्पत्ति-स्थान सभी सूर्य हैं। चन्द्रमा, तारागण एवं ग्रहगणोंको सूर्यसे ही उत्पन्न जानना चाहिये। सूर्यकी सुषुम्ना नामक जो रश्मि है, वही क्षीण चन्द्रमाको बढ़ाती है। पूर्व दिशामें हरिकेश नामक जो रश्मि है, वह नक्षत्रोंको उत्पन्न करनेवाली है। दक्षिण दिशामें विश्वकर्मा नामक जो किरण है, वह बुधको संतुष्ट करती है। पश्चिम दिशामें जो विश्वावसु नामक किरण है, वह शुक्रकी उत्पत्तिस्थली कही गयी है। संवर्धन नामक जो रश्मि है, वह मंगलकी उत्पत्ति-स्थली है। छठी अश्वभू नामक जो रश्मि है, वह बृहस्पतिकी उत्पत्तिस्थली है। सुराट् नामक सूर्यकी रश्मि शनैश्चरकी वृद्धि करती है। अतः ये ग्रहगण कभी नष्ट नहीं होते और नक्षत्र नामसे स्मरण किये जाते हैं। इन उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र अपनी किरणो-द्वारा सूर्यपर आकर गिरते हैं और सूर्य उनका क्षेत्र ग्रहण करता है, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है। इस मर्त्यलोकसे उस लोकको पार करनेवाले (जानेवाले) सत्कर्मपरायण पुरुषोके तारण करनेसे इनका नाम तारका पड़ा और श्वेत वर्णके होनेके कारण ही इनका शुक्रिका नाम है। दिव्य तथा पार्थिव सभी प्रकारके वंशोके ताप एवं तेजके योगसे 'आदित्य' यह नाम कहा जाता है। **'स्रवति'** धातु स्रव क्षरण (झरने) अर्थमे प्रयुक्त कहा गया है, तेजके झरनेसे ही यह सविताके नामसे स्मरण किया जाता है। ये विवस्वान् नामक सूर्यदेव अदितिके आठवें पुत्र कहे गये हैं।

सहस्र किरणोवाले भास्करका स्थान शुक्ल वर्ण एवं अग्निके समान तेजस्वी तथा दिव्य तेजोमय है। सूर्यका विष्कम्भ-मण्डल नव सहस्र योजनोमे विस्तृत कहा है और इस प्रकार भास्करका पूर्ण मण्डल विष्कम्भ-मण्डलसे तिगुना कहा जाता है।

पद्मपुराणीय सूर्य-संदर्भ

['पद्मपुराण'के इस छोटे-से संकलित परिच्छेदमें भगवान् सूर्यकी महिमा एवं उनकी संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य, उपासना और उसके फल-वर्णनके साथ ही भद्रेश्वरकथा भी दी जा रही है।]

भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य

वैशम्पायनजीने पूछा—विप्रवर ! आकाशमें प्रतिदिन जिसका उदय होता है, यह कौन है ? इसका क्या प्रभाव है ? तथा किरणोंके इन स्वामीका प्रादुर्भाव कहाँसे हुआ है ? मैं देखता हूँ—देवता, बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इनकी ही सदा आराधना किया करते हैं।

व्यासजी बोले—वैशम्पायन ! यह ब्रह्मके स्वरूपसे प्रकट हुआ ब्रह्मका ही उत्कृष्ट तेज है। इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। निर्मल किरणोंसे सुशोभित यह तेजका पुञ्ज पहले अत्यन्त प्रचण्ड और दुःसह था। इसे देखकर इसकी प्रखर रश्मियोंसे पीड़ित हो सब लोग इधर-उधर भागकर छिपने लगे। चारों ओरके समुद्र, समस्त बड़ी-बड़ी नदियाँ और नद आदि सूखने लगे। उनमें रहनेवाले प्राणी मृत्युके ग्रास बनने लगे। मानव-समुदाय भी शोकसे आतुर हो उठा। यह देख इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे यह सारा हाल कह सुनाया। तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण ! यह तेज आदिब्रह्मके स्वरूपसे जलमें प्रकट हुआ है। यह तेजोमय पुरुष उस ब्रह्मके ही समान है। इसमें और आदिब्रह्ममें तुम अन्तर न समझना। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंसहित समूची त्रिलोकीमें इसीकी सत्ता है। ये सूर्यदेव सत्त्वमय हैं। इनके द्वारा चराचर जगत्का पालन होता है। देवता, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि जितने भी प्राणी हैं—सबकी रक्षा सूर्यसे ही होती है। इन सूर्यदेवताके प्रभावका हम पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते। इन्होंने ही लोकोंका उत्पादन और पालन किया है। सबके रक्षक होनेके कारण इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशि-राशि पाप विलीन हो जाते हैं। द्विज आदि सभी मनुष्य इन सूर्यदेवकी आराधना करके मोक्ष पा लेते हैं। सन्ध्योपासनके समय ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये इन्हीं सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं और उसके फलस्वरूप समस्त देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। सूर्यदेवके ही मण्डलमें रहनेवाली सन्ध्यारूपिणी देवीकी उपासना करके सम्पूर्ण द्विज स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस भूतलपर जो पतित और जूठन खानेवाले मनुष्य हैं, वे भी भगवान् सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं। सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध हो जाते हैं।* जो मनुष्य चाण्डाल, गोघाती (कसाई), पतित, कोढ़ी, महापातकी और उपपातकीके दीख जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शन करते हैं, वे भारी-से-भारी पापसे भी मुक्त हो पवित्र हो जाते हैं। सूर्यकी उपासना करनेमात्रसे मनुष्यको सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी उपासना करते हैं, वे इहलोक और परलोकमें भी अन्धे, दरिद्र, दुखी और शोकग्रस्त नहीं होते। श्रीविष्णु और शिव आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते, ध्यानमें ही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है, किंतु भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं।

* सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मषात् पूतता व्रजेत्। (७५। १६)

देवता बोले—ब्रह्मन् ! सूर्यदेवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना करनेकी बात तो दूर है, इनका दर्शन ही प्रलयकालकी आगके समान प्रतीत होता है जिससे कभी भूतलके सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये। समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये। हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता; फिर दूसरे लोग कैसे सह सकते हैं। इसलिये आप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें। सब मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देव ! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्रस्वरूप और निरामय हो। तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो। तुम्हारी ओर देखना कठिन है। तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो। सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे श्रीविग्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुम्हींसे अन्न आदिका पाचन तथा जीवनकी रक्षा होती है। देव ! तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो। तुम्हारे बिना समस्त संसारका जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता। तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक, पिता और माता हो। तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है। भगवन् ! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है। शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है। तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है। तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है वह तुम्हींसे आया है। इस प्रकार तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो। प्रभो ! तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण तुम्हीं हो। तुम परम पवित्र, सबके साक्षी और गुणोंके धाम हो। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रक्षक, अन्धकार, कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्रताके दुःखोंका निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो। इस लोक तथा परलोकमें सबके श्रेष्ठ बन्धु एवं सब कुछ जानने और देखनेवाले तुम्हीं हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो।

आदित्यने कहा—महाप्राज्ञ पितामह ! आप विश्वके स्वामी तथा स्रष्टा हैं, शीघ्र अपना मनोरथ बताइये। मैं उसे पूर्ण करूँगा।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर ! तुम्हारी किरणें अत्यन्त प्रखर हैं। लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो गयी हैं; अतः जिस प्रकार उनमें कुछ मृदुता आ सके, वही उपाय करो।

आदित्यने कहा—प्रभो ! वास्तवमें मेरी कोटि-कोटि किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं, अतः आप किसी युक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बुलाया और वज्रकी सान बनवाकर उसीके ऊपर प्रलयकालके समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छाँट दिया। उस छँटे हुए तेजसे ही भगवान् श्रीविष्णुका सुदर्शनचक्र बन गया। अमोघ यमदण्ड, शंकरजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्तिकेयको आनन्द प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचित्र शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको फुर्तीसे तैयार किया था। सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गयीं, बाकी सब छाँट दी गयीं। ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया।

कश्यपमुनिके अंश और अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

भगवान् सूर्य विश्वकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरुगिरिके शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं । ये दिन-रात इस पृथ्वीसे लाख योजन ऊपर रहते हैं । विधाताकी प्रेरणासे चन्द्रमा आदि ग्रह भी वहीं विचरण करते हैं । सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह महीनोंमें बारह राशियोमें संक्रमण करते रहते हैं । उनके संक्रमणसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्रायः सभी लोग जानते हैं ।

मुने ! संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो फल मिलता है, वह सब हम बतलाते हैं । धन, मिथुन, मीन और कन्या राशिकी संक्रान्तिको षडशीति कहते हैं तथा वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है । षडशीति नामकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी हजारगुना, विष्णुपदीमे लाखगुना और उत्तरायण या दक्षिणायल आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक होता है । दोनों अयनोके दिन जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है । मकरसंक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले स्नान करना चाहिये । इससे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है । उस समय किया हुआ तर्पण, दान और देवपूजन अक्षय होता है । विष्णुपदीनामक संक्रान्तिमें किये हुए दानको भी अक्षय बताया गया है । दाताको प्रत्येक जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है । शीतकालमें रूईदार वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दुःख नहीं होता । तुला-दान और शय्या-दान दोनोंका ही फल अक्षय होता है । माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको सूर्योदयके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है । जो अमावास्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मढ़ाकर काँसेके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है । जो उक्त तिथियोको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियोंसहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है । ब्राह्मणको भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र, घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती । माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर-तिथि कहते हैं । उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है । अतः दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकोमें अनन्त फल देनेवाले हैं ।

भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल तथा भद्रेश्वरकी कथा

व्यासजी कहते हैं—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे । इसी समय स्कन्दने उनके पास जाकर पृथ्वीपर मस्तक टेक उन्हे प्रणाम किया और कहा—'नाथ ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ ।'

महादेवजीने कहा—बेटा ! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल फूलोंसे अर्घ्य दे और रातको हविष्यान्न भोजन करे । ऐसा करनेसे वह कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता । रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है । वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है । यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिनका किया हुआ व्रत, पूजन और जप—ये सभी अक्षय होते हैं । शुक्लपक्षके रविवारको ग्रहपति सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । हाथमें फूल लेकर लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और

फूलोंको सूँघकर ईशान कोणकी ओर फेंक दे। इसके बाद 'आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्'—इस सूर्य-गायत्रीका जप करे। तदनन्तर गुरुके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक सूर्यकी पूजा करे। भक्तिके साथ पुष्प और केले आदिके सुन्दर फल अर्पण करके जल चढ़ाना चाहिये। जलके बाद चन्दन, चन्दनके बाद धूप, धूपके बाद दीप, दीपके पश्चात् नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् जप, स्तुति, मुद्रा और नमस्कार करना उचित है। पहली मुद्राका नाम 'अञ्जलि' और दूसरीका नाम 'धेनु' है। इस प्रकार जो सूर्यका पूजन करता है, वह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् सूर्य एक होते हुए भी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें गभस्ति, भाद्रपदमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। इस प्रकार बारह महीनोंमें भगवान् सूर्य बारह नामोंसे पुकारे जाते हैं। इनका रूप अत्यन्त विशाल, महान् तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान देदीप्यमान है। जो इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, उसके शरीरमें पाप नहीं रहता। उसे रोग, दरिद्रता और अपमानका कष्ट भी कभी नहीं उठाना पड़ता। वह क्रमशः यश, राज्य, सुख तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

अब मैं सबको प्रसन्नता प्रदान करानेवाले सूर्यके उत्तम महामन्त्रका वर्णन करूँगा। उसका भाव इस प्रकार है—'सहस्र भुजाओं (किरणों) से सुशोभित भगवान् आदित्यको नमस्कार है। अन्धकारका विनाश करनेवाले श्रीसूर्यदेवको अनेक बार नमस्कार है। रश्मिमयी सहस्रों जिह्वाएँ धारण करनेवाले भानुको नमस्कार है। भगवन्! तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु और तुम्हीं रुद्र हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर अग्नि और वायुरूपसे विराजमान हो, तुम्हें बारंबार प्रणाम है।

तुम्हारी सर्वत्र गति और सब भूतोंमें स्थिति है, तुम्हारे बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। तुम इस चराचर जगत्में समस्त देहधारियोंके भीतर स्थित हो।* इस मन्त्रका जप करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों तथा स्वर्ग आदिके भोगको प्राप्त करता है। आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, भानु, दिवाकर, सुवर्णरेता, मित्र, पूषा, त्वष्टा, स्वयम्भू और तिमिरारि—ये सूर्यके बारह नाम बताये गये हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर सूर्यके इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापों और रोगोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है।

षडानन! अब मैं महात्मा भास्करके जो दूसरे-दूसरे प्रधान नाम हैं, उनका वर्णन करूँगा। उनके नाम हैं—तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, सप्ताश्ववाहन, पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजु, सामग,

---

* ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमो नमः। नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमो नमः। नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमो नमः। त्वमग्निस्सर्वभूतेषु वायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किंचित्त्वया विना। चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥
(—७६। ३१-३४)

कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन नामोका सदा स्मरण करता है, उसे रोगका भय कैसे हो सकता है। कार्तिकेय! तुम यत्नपूर्वक सुनो। सूर्यका नामस्मरण सब पापोको हरनेवाला और शुभद है। महामते! आदित्यकी महिमाके विषयमें तनिक भी सदेह नहीं करना चाहिये। **'ॐ इन्द्राय नमः स्वाहा', 'ॐ विष्णवे नमः'**—इन मन्त्रोका जप, होम और सन्ध्योपासन करना चाहिये। ये मन्त्र सब प्रकारसे शान्ति देनेवाले और सम्पूर्ण विघ्नोके विनाशक है। ये सब रोगोका नाश कर डालते हैं।

अब भगवान् भास्करके मूलमन्त्रका वर्णन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओ एवं प्रयोजनोको सिद्ध करनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वह मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।'** इस मन्त्रसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है, यह निश्चित बात है। इसके जपसे रोग नहीं सताते तथा किसी प्रकारके अनिष्टका भय नहीं होता। यह मन्त्र न किसीको देना चाहिये और न किसीसे इसकी चर्चा करनी चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक इसका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। जो लोग अभक्त, संतानहीन, पाखंडी और लौकिक व्यवहारोंमें आसक्त हों, उनसे तो इस मन्त्रकी कदापि चर्चा नहीं करनी चाहिये। संध्या और होमकर्ममें मूलमन्त्रका जप करना चाहिये। उसके जपसे रोग और क्रूर ग्रहोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। वत्स! दूसरे-दूसरे अनेक शास्त्रों और बहुतेरे विस्तृत मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है, इस मूलमन्त्रका जप ही सब प्रकारकी शान्ति तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है।

देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रतिदिन एक, दो या तीन समय भगवान् सूर्यके समीप इसका पाठ करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रकी कामनावालेको पुत्र, कन्या चाहनेवालेको कन्या, विद्याकी अभिलाषा रखनेवालेको विद्या और धनार्थीको धन मिलता है। जो शुद्ध आचार-विचारसे युक्त होकर संयम तथा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्य देवताके व्रतके दिन तथा अन्यान्य व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, पुण्यस्थान और तीर्थोंमे जो इसका पाठ करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं—मध्यदेशमे भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा थे। वे बहुत-सी तपस्याओं तथा नाना प्रकारके व्रतोसे पवित्र हो गये थे। प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि और गुरुजनोका पूजन करते थे। उनका वर्ताव न्यायके अनुकूल होता था। वे स्वभावके सुशील और शास्त्रोके तात्पर्य तथा विधानके पारगामी विद्वान् थे। सदा सद्भावपूर्वक प्रजाजनोंका पालन करते थे। एक समयकी बात है, उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया; किंतु उससे कोढ़का चिह्न और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। तब राजाने प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों और मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'विप्रगण! मेरे हाथमें एक ऐसा पापका चिह्न प्रकट हो गया है, जो लोकमें निन्दित होनेके कारण मेरे लिये दुःसह हो रहा है। अतः मैं किसी महान् पुण्यक्षेत्रमें जाकर अपने शरीरका परित्याग करना चाहता हूँ।'

ब्राह्मण बोले—महाराज! आप धर्मशील और बुद्धिमान् हैं। यदि आप अपने राज्यका परित्याग कर देंगे तो यह सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसलिये आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभो! हमलोग इस रोगको दबानेका उपाय जानते हैं, वह यह है कि आप यत्नपूर्वक महान् देवता भगवान् सूर्यकी आराधना कीजिये।

राजाने पूछा—विप्रवरो ! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको संतुष्ट कर सकूँगा ?

ब्राह्मण बोले—राजन् ! आप अपने राज्यमें ही रहकर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये। ऐसा करनेसे आप भयङ्कर पापसे मुक्त होकर स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे।

यह सुनकर सम्राट्ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की। वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुङ्कुम, सिन्दूर, कदलीपत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे। राजा गूलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर सदा सूर्य देवताको निवेदन किया करते थे। अर्घ्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खडे रहते थे। उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग एवं अन्य लोग भी रहा करते थे। वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्घ्य देते थे।

सूर्यदेवताके अङ्गभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्रचित्त होकर अनुष्ठान किया। क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया। इस प्रकार उस भयङ्कर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया। सब लोग कभी हविष्यान्न खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंके द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य बहुत संतुष्ट हुए और कृपापूर्वक राजाके पास आकर बोले—'राजन् ! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके रूपमें माँग लो। सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम सब लोगोंका हित करनेके लिये मै उपस्थित हूँ।'

राजाने कहा—सबको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवन् ! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान देना चाहते हैं, तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब लोग आपके पास रहकर ही सुखी हों।

सूर्य बोले—राजन् ! तुम्हारे मन्त्री, पुरोहित, ब्राह्मण, स्त्रियाँ तथा अन्य परिवारके लोग—सभी शुद्ध होकर कल्पपर्यन्त मेरे दिव्य धाममें निवास करें।

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर संसारको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित दिव्यलोकमें आनन्दका अनुभव करने लगे। वहाँ जो कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको सिधारे। इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण सूर्यदेवताके धाममें चले गये। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह रुद्रकी भाँति इस पृथ्वीपर पूजित होता है। जो मानव संयमपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यमराजको उपदेश दिया था। भूमण्डलपर तो व्यासके द्वारा ही इसका प्रचार हुआ है।

सूर्य-पूजाका फल

त्रिसन्ध्यमर्चयेद् सूर्यं स्मरेद् भक्त्या तु यो नरः। न स पश्यति दारिद्र्यं जन्मजन्मनि चार्जुन॥

(भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—) हे अर्जुन ! जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें सूर्यकी अर्घ्यादिसे पूजा और स्मरण करता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें कभी दरिद्र नहीं होता—सदा धन-धान्यसे समृद्ध रहता है। (—आदित्यहृदय)

भविष्यपुराणमें* सूर्य-संदर्भ

[भविष्यपुराणके चार पर्व हैं–(१) ब्राह्मपर्व, (२) मध्यमपर्व, (३) प्रतिसर्गपर्व और (४) उत्तर पर्व। परंतु ब्राह्मपर्वके ही ४२वें अध्यायसे सूर्य-संदर्भ प्रारम्भ होता है और १४० अध्यायतक चलता जाता है। इस अन्तरालमें सूर्य-सम्बन्धी विविध ज्ञातव्य विषय हैं, जिनमें मुख्यतः ये हैं—श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चन, नैमित्तिकार्चन और व्रतोद्यापन-विधान, व्रतका फल, माघादि, ज्येष्ठादि, आश्विनादि चार-चार महीनोंमें सूर्य-पूजनका विधान और रथसप्तमीका फल, सूर्यरथका वर्णन, रथके साथके देवताओंका कथन, गमन-वर्णन, उदय-अस्तका भेद, सूर्यके गुण, ऋतुओंमें उनका पृथक्-पृथक् वर्णन, अभिषेकका वर्णन, रथयात्राके प्रथम दिनका कृत्य, रथके अश्व, सारथि, छत्र, ध्वजा आदिका वर्णन तथा नगरके चार द्वारोंपर रथके ले जानेका विधान, रथाङ्गके अङ्गभङ्ग होनेपर शान्त्यर्थ ग्रह-शान्ति, सर्वदेवोंके बलिद्रव्यका कथन, रथ-यात्राका फल, रथसप्तमी-व्रतका विधान और उद्यापन-विधि, राजा शतानीककी सूर्य-स्तुति, दण्डीको सूर्यका उपदेश, उपवास-विधि, पूजन-फलके कथनपूर्वक फलसप्तमीका विधान, सूर्य भगवान्‌का परब्रह्म-रूपमें वर्णन, फल चढ़ाने, मन्दिर-मार्जन करने आदि तथा सिद्धार्थ-सप्तमीका विधान, सूर्यनारायणका स्तोत्र और उसके पाठका फल, जम्बूद्वीपमें सूर्यनारायणके प्रधान स्थानोंका कथन, साम्बके प्रति दुर्वासा मुनिका शाप, अपनी रानियों और अपने पुत्र साम्बको श्रीकृष्णका शाप, सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन, श्रीनारदजीसे साम्बके पूछनेपर उनके द्वारा सूर्यनारायणका प्रभाव-वर्णन, सूर्यकी उत्पत्ति, किरणोंका वर्णन, उनकी व्यापकताका कथन, सूर्यनारायणकी दो भार्याओं और संतानोंका वर्णन, सूर्यको प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा करनेका फल, आदित्यवारका कल्प, बारह प्रकारके आदित्यवारोंका कथन, नन्दनामक आदित्यवारका विधान और फल, आदित्याभिमुख वारका विधान, सूर्यके उपचार और अर्पणका फल, सूर्य-मन्दिरमें पुराण-वाचनेका महत्त्व, सूर्यके स्नानादि करानेका फल, जया सप्तमी, जयन्ती सप्तमी आदिका विधान और फल-कथन, सूर्योपासनाकी आवश्यकता, सप्तमी व्रतोद्यापनकी विधि और फल, मार्तण्डसप्तमी आदिका विधान, मन्दिर बनवानेका फल, सूर्यभक्तोंका प्रभाव, घृत-दुग्धसे सूर्याभिषेकका फल, मन्दिरमें दीपदानका माहात्म्य, वैवस्वतके लक्षण और सूर्यनारायणकी महिमा, सूर्यनारायणके उत्तम रूप बनानेकी कथा और उनकी स्तुति, पुनः स्तुति और उनके परिवारका वर्णन, सूर्याशुध एवं व्योमका लक्षण, रुद्र और लोकोंका वर्णन, साम्बकृत सूर्यके आराधन और स्तुति, सूर्यनारायणका एकविंशति नामात्मक स्तोत्र, चन्द्रभागा नदीसे साम्बको सूर्यनारायणकी प्रतिमा प्राप्त होनेका वृत्तान्त, प्रतिमाविधान और सूर्यनारायणका सूर्यदेवमयत्व-प्रतिपादन, प्रतिष्ठा-मुहूर्त्त, मण्डप-विधान, सूर्य-प्रतिष्ठा करनेका विधान एवं फल, सूर्य-नारायणको अर्घ्य और धूप देनेका विधान, उनके मन्त्र और फल, सूर्य-मण्डलका वर्णन और १७७ श्लोकोंका प्रसिद्ध आदित्यहृदय अनुस्यूत है।

भविष्य किंवा भविष्योत्तरपुराणमें सूर्य-सम्बन्धी निर्दिष्ट विषयोंका-विशेषतः व्रतादि-माहात्म्यका प्राचुर्य है; किंतु यहाँ स्थानाभावके कारण कुछ मुख्य विषय ही संचयित किये गये हैं, यथा—सप्तमीकल्प-वर्णनके प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संवाद, आदित्यके नित्याराधनकी विधि तथा रथसप्तमी -माहात्म्यका वर्णन, सूर्य-योग माहात्म्यका. वर्णन, सूर्यके विराट्‌रूपका वर्णन, आदित्यवारका माहात्म्य, सौरधर्मकी महिमाका वर्णन और ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुतिका संक्षिप्त संकलन है।]

*उपलब्ध भविष्यपुराण मिश्रित श्लोकोंसे भरा पृथुल-काय है जिसकी नारदीय (१ । १००) मत्स्य (५३ । ३०-३१) और अग्नि (२७२ । १२) मे दी हुई अनुक्रमणी पूर्णतः सगत नहीं होती। फिर भी आपस्तम्बमें इसके उद्धरणसे इसकी प्राचीनता निर्विवाद है। वायुपुराण (९ । २६७) और वाराहपुराणमे भी भविष्यके अनेक उल्लेख मिलते हैं। वाराह-पुराणके उल्लेखसे साम्बद्वारा इसके प्रति सस्कार और सूर्य-मूर्तिकी स्थापनाकी बात अनुमोदित होती है।

सप्तमीकल्पवर्णन-प्रसङ्गमें कृष्ण-साम्ब-संवाद

वासुदेवने कहा—साम्ब! समस्त देवता कहीं भी प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा उपलब्ध नहीं हुआ करते। अनुमान और आगमोंके द्वारा अन्य सहस्रों देवताओंका अस्तित्व सिद्ध होता है। साम्बने कहा—जो देवता नेत्रोंके दृष्टिगत और विशिष्ट अभीष्टका प्रदान करनेवाला हो, उसी देवताके विषयमें पहले मुझे बताइये। इसके बाद अन्य देवताओंके विषयमें आप वर्णन करनेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो भगवान् सूर्य हैं, जो इस समस्त जगत्के नेत्र और दिनकी सृष्टि करनेवाले हैं। इससे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न होता और अन्त-समयमें इन्हींमें यह विलीन हो जाता है। कृतादि लक्षणवाला यह काल भी साक्षात् दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अनल, शक्र, प्रजापति, समस्त भूः-भुवः-स्वर्लोक, समस्त नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और अखिल भूतोंका समुदाय है, इन सभीका हेतु स्वयं एक सविता ही हैं। इन्हींकी इच्छासे सचराचर यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है। इन्हींकी इच्छासे यह जगत् स्थिर रहता तथा अपने अर्थमें प्रवृत्त भी हुआ करता है। इनके प्रसादसे ही यह लोक सचेष्ट होता है। इनके उदय होनेपर सभी उदीयमान तथा अस्त होनेपर अस्त होते हैं; क्योंकि जब ये अदृश्य होते हैं तो कुछ भी यहाँ दिखायी नहीं देता। तात्पर्य यह है कि ये प्रत्यक्षसे सिद्ध ही हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें 'जगदात्मा' नामसे कहा गया है।

जब ये अस्ताचलको चले जाते हैं तो अदृश्य होते हैं। इससे यह सिद्ध है कि इनसे परे कोई देवता न है, न हुआ है और न आगे कभी भविष्यमें होगा ही। जो कोई भी इनकी उपासना प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें करता है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता है।

जो विद्वान् व्यक्ति मण्डलमें स्थित इन देवको अपनी बुद्धिके द्वारा अपने देहमें व्यवस्थित देखता है, वस्तुतः वही देखता है। जो मनुष्य इस प्रकार सम्यक्रूपसे सूर्यका ध्यान करके पूजा, जप और हवन करता है, वह समस्त अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है और धर्मध्वजके सांनिध्यको प्राप्त कर लेता है। अतः तुम यदि अपने दुःखोंका अन्त करना चाहते हो और इस लोकमें सुखोपभोग करनेके अभिलाषी हो तथा परलोकमें शाश्वती मुक्ति अर्थात् संसारके जन्म-मरणके आवागमनसे मुक्ति पाना चाहते हो तो अर्कमण्डलमें स्थित अर्क अर्थात् सूर्य भगवान्‌की आराधना करो। इनकी आराधनासे तुमको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख कदापि नहीं होंगे। जो पुरुष भगवान् दिवाकरकी शरणको प्राप्त हो गये हैं, उनको कोई भी भय नहीं होता है। उन सूर्यदेवके उपासक भक्तोंको इस लोकमें और परलोकमें—दोनों जगह निर्बाध सुख प्राप्त होता है। शरीरधारियोंके लिये इससे उत्तम अन्य कोई भी हित प्रदान करनेवाला उपाय नहीं है।

आदित्यके नित्याराधन-विधिका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यकी नित्याराधन-विधि तथा माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेवने कहा—'साम्ब! अब हम तुम्हें धर्मकेतुके उत्तम अर्चनकी विधि बतलाते हैं। यह विधान सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला, पुण्यप्रद एवं विघ्नों तथा पापोंका अपहरण करनेवाला है। इससे पहले सूर्यके मन्त्रोंद्वारा* स्नान करके फिर उन्हीं मन्त्रोंद्वारा भगवान् भास्करका यजन एवं अर्चन करना चाहिये।

* भगवान् सूर्यके अनेक मन्त्र हैं, परंतु यहाँ नाम-मन्त्र 'ॐ सूर्याय नमः' अथवा 'ॐ घृणिः सूर्याय नमः'को प्रयुक्त करना चाहिये।

स्नानकालमें हृदयपूत मन्त्रसे उठकर आचमन करे और वस्त्रोंका परिधान करे तथा पुनः दो बार आचमन करके सम्प्रोक्षण करे। फिर उठकर आचमन करके उसी मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्य देकर उनका जप करे और अपने हृदयमे आत्मस्वरूप उनका ध्यान करे और शुभ आर्क-आयतनमें पहुँचकर आर्कीतनुका यजन करे। फिर अति समाहित होकर पूरक, कुम्भक और रेचक—इन तीनो प्राणायामोकी क्रियाओको करे। तत्पश्चात् ओंकारद्वारा कायादि सम्भूत समस्त दोषोका परिहार करे।

इसके बाद आत्माकी शुद्धिके लिये वायव्य, आग्नेय, माहेन्द्र (पूर्व) और वारुणी (उत्तर) दिशाओमें यथाक्रम वारुण जलसे अपने किल्विष (पाप)का नाश करे। वायु, अग्नि, इन्द्र और जल नामवाली धारणाओके द्वारा यथाक्रम शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करनेपर विशुद्ध आत्माका ध्यान करके भगवान् अर्क(सूर्य)को प्रणाम करे और उसीके द्वारा पञ्चभूतमय इस परदेहका सचिन्तन करे। सूक्ष्म तथा स्थूलको एवं अङ्गोंको अपने स्थानोंपर प्रकल्पित करके हृदय आदिमें समन्त्रक अङ्गोंका विन्यास करे। जैसे—'ॐ खं स्वाहा हृदये,' 'ॐ अर्काय शिरसि,' ॐ उल्कायै स्वाहा शिखायाम्,' 'ॐ यै कवचाय हुम्,' 'ॐ खां अस्त्राय फट्।' इसके अनन्तर मन्त्र-कर्मकी सिद्धिके लिये तीन बार जल-मन्त्रका जप करके और उस मन्त्रसे स्नानके द्रव्योंका सम्प्रोक्षण करके शुभ गन्ध, अक्षत, पुष्प आदिके द्वारा भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये।

रथ-सप्तमी-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें आदित्यके नैमित्तिक आराधनका तथा रथ-सप्तमीके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेवने कहा—इसके पश्चात् मैं नैमित्तिक आराधनका विषय संक्षेपमें बतलाता हूँ।

माघ मासमें सप्तमी तिथिके दिन वरुणका यजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंके लिये खण्डवेष्टकोंका दान तथा यथाशक्ति दक्षिणा भी दे तो वह जो भी फल चाहे, उसे प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार फाल्गुन तथा चैत्र और वैशाखके महीनोमें सूर्यके यजनका विधान है। वैशाख मासमे धाता इन्द्रका तथा ज्येष्ठमें रविका, आषाढ़ और श्रावण मासमें नभका, भाद्रपदमें यमका, मार्गशीर्षमे मित्र तथा पौषमें विष्णुका, आश्विनमें पर्जन्य और कार्तिकमें त्वष्टाका यजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक यजन-अर्चन करनेसे व्रती अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। आगे माघ शुक्ला सप्तमीमें महा-सप्तमी-व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है।

भगवान् वासुदेवने कहा—हे कुलनायक! माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी और षष्ठीकी रात्रिमें एक-भुक्त रहना कहा गया है। हे सुव्रत! कुछ लोग सप्तमीमे उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठी और सप्तमी तिथियोमे उपवासका विधान कहते हैं (इस विषयमे विविध मत हैं)। षष्ठी या सप्तमीमें जिसने उपवास किया है, उसे भास्कर भगवान्‌की पूजा इस प्रकार करनी चाहिये। हे सुव्रत! भास्करका अर्चन रक्त चन्दन तथा करवीरके पुष्पोसे करना चाहिये। हे महान् बाहुओं-वाले! गुग्गुल और संयावसे देवदेवेश भास्कर—रविका पूजन करे। इसी प्रकार माघ आदि चार मासोंमें रविका पूजन करना चाहिये। अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये पञ्चगव्य भी प्राशन करे। आत्माकी शुद्धिके लिये गोमय-(गोबर-) से स्नान करनेका ही विधान है। ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन भी कराना चाहिये।

ज्येष्ठ आदि मासोंमें श्वेत चन्दन शास्त्रविहित है। उत्तम गन्धवाले पुष्प भी श्वेत होने चाहिये। कृष्ण अगुरुका धूप तथा नैवेद्यके लिये पायस हो। हे महामते! उसी

देवसमर्पित नैवेद्यकी वस्तुओंमें जो पायस है, उससे ब्राह्मणोंको पूर्ण तुष्ट करते हुए भोजन कराना चाहिये । हे पुत्र ! पञ्चगव्यका प्राशन और उसीसे स्नान भी कराना चाहिये। कार्तिक आदि मासोंमें अगस्त्यके पुष्प तथा अपराजित धूपके द्वारा पूजन करना चाहिये। नैवेद्यके स्थानमें गुड़के बनाये हुए पूए तथा ईखका रस कहा गया है । हे तात! उसी समर्पित नैवेद्यद्वारा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये । कुशोदकका प्राशन करे और शुद्धिके लिये स्नान भी कुशोदकसे ही करे । हे महान् मतिवाले ! तृतीय पारणके अन्तमें माघ मासमें भोजन और दान दुगुना कहा गया है । विद्वान् पुरुषोंके द्वारा शक्तिके अनुसार देवदेवकी पूजा करनी चाहिये । हे सुव्रत ! रथका दान और रथयात्रा भी करनी चाहिये । हे पुत्र ! रथाह्वा अर्थात् रथके नामवाली सप्तमीका यह वर्णन किया गया है । यह महासप्तमी विख्यात है । यह महान् अभ्युदय प्रदान करनेवाली है । इस दिन मनुष्य उपवास करके धन, पुत्र, कीर्ति और विद्याकी प्राप्ति कर समस्त भूमण्डलको प्राप्त कर लेता है और चन्द्रमाके समान अर्चि (कान्ति)-वाला हो जाता है ।

सूर्ययोग-माहात्म्यका वर्णन

इस प्रकरणमें सूर्ययोगके माहात्म्यका वर्णन किया गया है । महर्षि सुमन्तुने कहा—हे नृप ! उस एक अक्षर, सत् और असत्‌मे भेदाभेदके स्वरूपमे स्थित परम धाम रविको प्रणिपात करना चाहिये । महात्मा विरञ्चिने पहले ऋषियोसे इसका वर्णन किया था । हे नराधिप ! सविताकी आराधना करनेके लिये महान् आत्मा पद्मसम्भव (ब्रह्मा) प्रभुने महर्षियोंको जैसा ब्रह्मपरयोग कहा था, वह समस्त वृत्तियोके सरोधसे कैवल्यका प्रतिपादक योग है । ऋषियोने कहा—हे स्वामिन्! आपने जो वृत्ति-निरोधसे होनेवाला योग बताया है, वह तो अनेक जन्म बीत जानेपर भी अत्यन्त दुर्लभ्य है; क्यों कि ये मनुष्योंकी इन्द्रियोंको हठात् आकृष्ट कर लेती हैं । वृत्तियाँ चञ्चल चित्तसे भी अधिक कठिन हैं । ये राग आदि वृत्तियाँ सैकड़ो वर्षोमें भी किस प्रकार जीती जा सकती हैं !

इन अजेय वृत्तियोंद्वारा मन इस योगके योग्य नहीं होता है । हे ब्रह्मन् ! इस कृतयुगमें भी ये पुरुष अल्पायु होते हैं । त्रेता, द्वापर तथा कलियुगमें तो आयुके विषयमें कहनेकी बात ही क्या है । हे भगवन् ! आप प्रसन्न होकर उपासना करनेवालोंको ऐसा कोई योग बतानेकी कृपा करें, जिससे उपासक अनायास ही इस संसाररूपी महान् सागरसे पार हो जायँ । बेचारे मनुष्य सांसारिक दुःखरूपी जलमें डूबे हुए हैं, आपके द्वारा बताये हुए महान् प्लव (नाव)की प्राप्ति कर लेनेपर ये पार हो सकते हैं । इस प्रकार जब ब्रह्माजीसे कहा गया तो उन्होंने मानवोंके हितकी कामनासे कहा—'इस समस्त विश्वके स्वामी दिवाकरकी तन्द्रा-रहित होकर आराधना करो, क्योंकि इन भगवान् भास्करका माहात्म्य अपरिच्छेद्य है—असीम है ।

तन्निष्ठ होकर सूर्यकी आराधना करे । उन्हींमें अपनी बुद्धिको लगाकर तथा भगवान् भास्करका आश्रय ग्रहण करके उनके ही कर्मोंसे एकमात्र उनकी ही दृष्टिवाले और मनवाले होकर अपने समस्त कर्मोंको सबकी आत्मा उन सूर्यमें ही त्याग कर दे, अर्थात् उन्हें ही समर्पित कर दे ।

सूर्यके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुष उन जगत्पति सर्वेश सर्वभावन मार्त्तण्डकी आराधना करते हैं। अतः हे कुरुनन्दन ! इस परम रहस्यका श्रवण करो । जो इस संसाररूपी समुद्रमें निमग्न हैं और जिनके मन सांसारिक विषयोसे आक्रान्त हो रहे हैं, उनके लिये यह सर्वोत्तम साधन है । हंसपोत (सूर्य)के अतिरिक्त अन्य कोई भी शरणदाता नहीं है । अतः खड़े होकर इन रविका चिन्तन

करो और चलते हुए भी उन गोपतिका ही चिन्तन आवश्यक है । भोजन करते हुए और शयन करते हुए भी उन भास्करका चिन्तन करो । इस प्रकार तुम एकाग्रचित्त होकर निरन्तर रविका आश्रय ग्रहण करो । रविका समाश्रय ग्रहण करके जन्म और मृत्यु जिसमें महान् ग्राह हैं, ऐसे इस संसाररूपी सागरको तुम पार कर जाओगे । जो ग्रहोंके स्वामी, वर देनेवाले, पुराणपुरुष, जगत्‌के विधाता, अजन्मा एवं ईशिता रवि हैं, उनका जिन्होंने समाश्रय ग्रहण किया है, उन विमुक्तिके सेवन करनेवालोंके लिये यह संसार कुछ भी नहीं है अर्थात् उन्हें इस संसारसे छुटकारा मिल जाना अत्यन्त साधारण-सी बात है ।

सूर्यके विराट्‌रूपका वर्णन

अब यहाँ सूर्यके विराट्‌रूपका वर्णन किया जाता है । श्रीनारद ऋषिने कहा—अब सूक्ष्मरूपसे भगवान् विवस्वान्‌का रूप बतलाऊँगा । सुनो ।

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप हैं । जो तत्त्व-चिन्तक पुरुष हैं, वे उनको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं । आदित्य आदिदेव और अजात होनेसे 'अज' नामसे कहे गये हैं । देवोंमें वे सबसे बडे देव हैं; इसीलिये 'महादेव' नामसे कहे गये है । समस्त लोकोंके ईश होनेसे 'सर्वेश' और अधीश होनेके कारणसे उन्हे 'ईश्वर' कहा गया है । महत् होनेसे उनको 'ब्रह्मा' और भवत्व होनेके कारण 'भव' कहा गया है तथा वे समस्त प्रजाकी रक्षा और पालन करते हैं, इसी कारण वे 'प्रजापति' कहे गये हैं ।

उत्पाद्य न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं । ये हिरण्याण्डमे रहनेवाले और दिवस्पति ग्रहोंके स्वामी हैं । अतः 'हिरण्यगर्भ' तथा देवोंके भी देव 'दिवाकर' कहे गये हैं । तत्त्वद्रष्टा महर्षियोंने भगवान् सूर्यको विविध नामोंसे स्मरण किया है ।

आदित्यवारका माहात्म्य

इस प्रकरणमे आदित्यवारके माहात्म्य तथा नन्दाख्य आदित्यवारके व्रत-कल्पके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है ।

दिण्डीने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन दिवाकरका पूजन किया करते हैं और स्नान तथा दान आदिके कर्म करते हैं, उनका क्या फल होता है ! आप कृपाकर यह मुझे बतलाइये ।

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मानव रविवारके दिन श्राद्ध करते हैं, वे सात जन्मोंतक रोगोंसे रहित होते हैं—नीरोग रहते हैं । जो मानव उस दिन स्थिरताका आश्रय लेकर रात्रिके समयमें दान आदि किया करते तथा परम जाप्य आदित्यहृदयका जप करते हैं, वे इस लोकमें पूर्ण आरोग्य प्राप्त करके अन्तमें सूर्यलोकको चले जाते हैं । जो आदित्यके दिन सदा उपवास किया करते हैं, वे भी सूर्यलोककी प्राप्ति करते हैं ।

इस संसारमें महात्मा आदित्यके द्वादश वार कहे गये है, वे ये हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय, रोगहा, महाश्वेतप्रिय । हे गणाधिप ! माघ मासमे शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिमे रात्रिके समय घृतसे रविका स्नपन (स्नान) कराना परमपुण्य बताया गया है । जो ऐसा करता है, वह समस्त पापोंके भयका अपहरण करनेवाला राजा होता है । इसमे आदित्यदेवको अगस्त्य वृक्षके पुष्प, श्वेत चन्दन, धूपोंमे गूगलका धूप, नैवेद्यके स्थानमे पूप (पूआ) ही विशेष प्रिय हैं । पूप (पूआ) एक प्रस्थ प्रमाणमे उत्तम गोधूम (गेहूँके) चूर्णका होना चाहिये । यदि गोधूमका अभाव हो तो विकल्पमे जौके चूर्णसे ही गुड और घृतसे पूप बना लेने चाहिये । इतिहासके वेत्ता ब्राह्मणको सुवर्णकी दक्षिणाके सहित पूओंका दान करना चाहिये अथवा

ऐसे ही अन्य दिव्य पक्वान्न श्रीसूर्यको अर्पित करके देना चाहिये । इस विधानमे मण्डक भी ग्राह्य है । पूप-निवेदनके समय भक्तिपूर्वक आदित्यको नमस्कार करके आदित्यके समक्ष कहे—'प्रभो ! आप मेरा कल्याण करनेके लिये इन पूपोंको ग्रहण करें । मण्डक देनेके समय इस प्रकार कहे—भगवन् ! आप कामनाएँ प्रदान करनेवाले, सुख देनेवाले, धर्मसे समन्वित, धनके दाता और पुत्र प्रदान करते है । हे भास्कर देव ! आप इसे ग्रहण करे । भगवन् ! मै आपको प्रिय मण्डक दे रहा हूँ । हे गणश्रेष्ठ ! ये वस्तुऍ तथा प्रार्थनाऍ आप आदित्यदेवको अत्यन्त प्रिय हैं ।' उपासकके लिये ये कल्याणकारी हैं, इसमे कुछ भी संशय नहीं है । अतः इन्हे निवेदित करना चाहिये । इसके पश्चात् मौनव्रती होकर पूपोसे ब्राह्मणको भोजन कराये ।

जो भक्त मनुष्य इस विधानसे रविका पूजन करता है, वह समस्त पापोसे मुक्ति पाकर सूर्यलोकमे प्रतिष्ठित होता है । उस महान् आत्मावाले पुरुषको न कभी दरिद्रता होती है और न उसके कुलमें कभी कोई रोग ही होता है । जो इस रीतिसे भानुका पूजन करता है, उसकी संततिका कभी क्षय नहीं होता । यदि कभी सूर्यलोकसे भूमण्डलमें आता है तो वह फिर यहाँ राजा होता है और बहुत-से रत्नोंसे सयुक्त होकर तेजस्वी विप्रके तुल्य होता है । त्रिपुरान्तक देव इस विधानको पढ़ने एवं सुननेवालोंको दिव्य और अचल लक्ष्मी देते हैं ।

सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन

इस प्रकरणमें सौर-धर्ममें वर्णित गरुड़ और अरुणके संवादका तथा सौर-धर्मके माहात्म्यका वर्णन किया जाता है । राजा शतानीकने कहा—'हे विप्रेन्द्र ! आप जो परमोत्तम सौर-धर्म है, उसे कृपया पुनः बतलाइये ।' सुमन्तु ऋषिने कहा—हे महाबाहो ! बहुत अच्छा । हे भारत ! इस लोकमें तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा सौर-धर्ममें अनुराग रखनेवाला नहीं है । आज मैं उस परमपुण्य तथा पापनाशक संवादको तुमसे कहता हूँ, सुनो । यह गरुड़ और अरुणका संवाद है । प्राचीन कालमें गरुड़ने निवेदन किया—हे निष्पाप खगश्रेष्ठ ! धर्मोंमें सबसे उत्तम धर्म और समस्त पापनाशक सौरधर्मको आप मुझे पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें। अरुणने कहा—हे वत्स ! बहुत अच्छा, तुम महान् आत्मावाले हो और परम धन्य तथा निष्पाप हो । हे भाई ! तुम जो इस परम श्रेष्ठ सौरधर्मको सुननेकी इच्छा कर रहे हो, यह इच्छा ही तुम्हारी धन्यता और निष्पापता प्रकट कर रही है । मै सुखके उपायस्वरूप महान् फल देनेवाले अत्युत्तम सौरधर्मको बतलाता हूँ । अब तुम श्रवण करो ।

यह सौरधर्म अज्ञानके सागरमें निमग्न समस्त प्राणियोंको दूसरे तटपर लगा देनेवाला तथा अज्ञानियोंका उद्धार कर देनेवाला है । हे खग ! जो लोग भक्तिभावसे रविका स्मरण, कीर्तन और भजन किया करते हैं, वे परम पदको चले जाते हैं । हे खगाधिप ! जिसने इस लोकमें जन्मग्रहण करके इन देवेशका अर्चन नहीं किया, वह संसारमें पड़ा हुआ चक्कर काटने तथा महान् दुःख भोगनेमें लगा है । यह मनुष्य-जीवन परम दुर्लभ है; ऐसे मनुष्य-जीवनको पाकर जिसने भगवान् दिवाकरका पूजन किया, उसीका जन्म लेना सफल है । जो लोग भगवान् सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक स्मरण किया करते हैं, वे कभी किसी प्रकारके दुःखके भागी नहीं होते । अनेक प्रकारके सुन्दर पदार्थोंकी, विविध आभूषणोंसे भूषित स्त्रियोंकी तथा अटूट धनकी प्राप्ति—ये सभी भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके फल हैं ।

जिन्हें महान् भोगोंकी सुख-प्राप्तिकी कामना है तथा जो राज्यासन पाना चाहते हैं अथवा स्वर्गीय सौभाग्य-प्राप्तिके इच्छुक हैं एवं जिन्हें अतुल कान्ति, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य, जगत्की ख्याति, कीर्ति और धर्म आदिकी

अभिलाषा है, उन्हें सूर्यकी भक्ति करनी चाहिये। अतः तुम सूर्यकी भक्ति अवश्य ही करो। समस्त देवगणोंके द्वारा समर्चित सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। भगवान् सूर्यका भक्तिपूर्वक यजन-अर्चन महान् दुर्लभ है। उनके लिये दान देना, होम करना, उनका विज्ञान प्राप्त करना और फिर उसका अभ्यास करना—उनके उत्तम आराधनका विधान जान लेना बहुत कठिन है, हो नहीं पाता। इसका लाभ उन्हीं मनुष्योंको होता है, जिन्होंने भगवान् रविदेवकी शरण ग्रहण कर ली है। इस लोकमें जिसका मन शास्ता भानुदेव (सूर्य) में नित्य लीन हो गया और जिसने दो अक्षरवाले रविको नमस्कार किया, उस पुरुषका जीवन सार्थक है—सफल है।

जो इस प्रकार परम श्रद्धा-भावसे युक्त होकर भगवान् भानुदेवकी पूजा करता है, वह निःसंदेह समस्त पापोंसे मुक्ति पा जाता है। विविध आकारवाली डाकिनियाँ, पिशाच और राक्षस अथवा कोई भी उसको कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकता। इनके अतिरिक्त कोई भी जीव उसे नहीं सता सकते। सूर्यकी उपासना करनेवाले मनुष्यके शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं और उन्हें संग्राममें विजय प्राप्त होती है। हे वीर! वह नीरोग होता है और आपत्तियाँ उसका स्पर्शतक नहीं कर पातीं। सूर्योपासक मनुष्य धन, आयु, यश, विद्या, अतुल प्रभाव और शुभमें उपचय (वृद्धि) प्राप्त करते हैं तथा सदा उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

ब्रह्मकृत सूर्य-स्तुति

इस प्रकरणमें ब्रह्माके द्वारा की हुई सूर्यकी स्तुतिका वर्णन किया जाता है। अरुणने कहा—'ब्रह्माजीने जिस ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति की थी, वह भक्तिके साथ रविदेवकी पूजा करके ही की थी। देवोंके ईश भगवान् विष्णुने विष्णुत्व-पदको सूर्यके अर्चनसे ही प्राप्त किया है। भगवान् शंकर भी दिवाकरकी पूजा-अर्चासे ही जगन्नाथ कहे जाते हैं तथा सूर्यदेवके प्रसादसे ही उन्हें महादेवत्व-पद प्राप्त हुआ है। एक सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रने इन्द्रत्वको प्राप्त किया है।' मातृवर्ग, देवगण, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और सभी सुरोंके नायक ईशान भानुकी सदा पूजा किया करते हैं। यह समस्त जगत् भगवान् भानुदेवमें ही नित्य प्रतिष्ठित है। इसलिये यदि स्वर्गके अक्षय निवासकी इच्छा रखते हो तो भानुकी भलीभाँति पूजा करो। जो मनुष्य तमोहन्ता भगवान् भास्कर सूर्यकी पूजा नहीं करता, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी नहीं है। इससे आजीवन सूर्यका ध्यान करना चाहिये। हे खग! आपत्तिग्रस्त होनेपर भी भानुका अर्चन सदा करणीय है। जो मनुष्य सूर्यकी बिना पूजा किये रहता है, उसका जीवन व्यर्थ समझना चाहिये। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्तिको देवोंके स्वामी दिवाकर सूर्यकी पूजा करके भोजन करना चाहिये। सूर्यदेवकी अर्चनासे अधिक कोई भी पुण्य नहीं है, सूर्यार्चन धर्मसे संयत एवं सम्पन्न है। जो सूर्यभक्त हैं वे समस्त द्वन्द्वोंके सहन करनेवाले, वीर, नीतिकी विधिसे युक्त चित्तवाले, परोपकारपरायण, तथा गुरुकी सेवामें अनुराग रखनेवाले होते हैं। वे अमानी, बुद्धिमान्, असक्त, अस्पर्धावाले, गतस्पृह, शान्त, स्वात्मानन्द, भद्र और नित्य स्वागतवादी होते हैं। सूर्यभक्त अल्पभाषी, शूर, शास्त्रमर्मज्ञ, प्रसन्नमनस्क, शौचाचारसम्पन्न और दाक्षिण्यसे सम्पन्न होते हैं।

सूर्यके भक्त दम्भ, मत्सरता, तृष्णा एवं लोभसे वर्जित हुआ करते हैं। वे शठ और कुत्सित नहीं होते। जिस प्रकार पद्मिनीके पत्र जलसे निर्लिप्त होते हैं, उसी प्रकार सूर्यभक्त मनुष्य विषयोंमें कभी लिप्त नहीं होते।

जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक ही दिवाकरकी अर्चनाका कर्म सम्पन्न कर लेना चाहिये; क्योंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ निकल जाता है। भगवान् सूर्यदेवकी पूजाके समान इस जगत्त्रयमें अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश दिवाकरका पूजन करो। जो मानव भक्तिपूर्वक शान्त, अज, प्रभु, देवदेवेश सूर्यकी पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। सर्वप्रथम अपनी परम प्रहृष्ट अन्तरात्मासे गोपतिकी पूजा करके अञ्जलि बाँधकर पहले ब्रह्माजीने यह (आगे कहा जानेवाला) स्तोत्र कहा था।

ब्रह्माजीने कहा—भग अर्थात् षडैश्वर्यसम्पन्न, शान्त-चित्तसे युक्त, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं सर्वश्रेष्ठ भगवान् रविदेवको मै सदा प्रणाम करता हूँ। जो देवदेवेश शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभानु, दिवाकर और ईशोंके भी ईश हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त दुःखोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, वरके स्थान, वर प्रदान करनेवाले, वरद तथा वरेण्य भगवान् विभावसु हैं, उन्हें मै प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेश्वर, देवरत और विभावसु नामधारी भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार ब्रह्माके द्वारा की हुई स्तुतिका जो नित्य श्रवण किया करता है, वह परम कीर्तिको प्राप्तकर सूर्यलोकमें चला जाता है।

महाभारतमें सूर्यदेव

लेखिका—कु० सुषमा सक्सेना, एम्० ए० (संस्कृत) रामायण-विशारद, आयुर्वेदरत्न)

महाभारतमें सूर्यतत्त्वका पृथक् विवेचन नहीं है। सूर्य-सम्बन्धी उल्लेख जहाँ कहीं भी हैं, आनुषङ्गिक ही हैं; तथापि उनसे हम महाभारतकारकी सूर्य-सम्बन्धी विचारणाका व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त कर सकते हैं। महाभारतमें सूर्यको ब्रह्म, चराचरका धाता, पाता, संहर्ता, एवं एक देवविशेष, कालाध्यक्ष, ग्रहपति, एक ज्योतिष्कपिण्ड और मोक्षद्वारके रूपमें विहित किया गया है। सूर्यदेवके सम्बन्धमे कुछ पुराण-कथाओंका भी अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख महाभारतमें हुआ है। सूर्योपासनाके विषयमें भी कुछ निर्देश प्राप्त होते हैं।

सूर्यकी ब्रह्मरूपता—सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंमें कुछ नाम ऐसे हैं, जो उनकी परब्रह्मरूपता प्रकट करते हैं। ये नाम—हैं अश्वत्थ, शाश्वतपुरुष, सनातन, सर्वादि, अनन्त, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, सर्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा। कुछ नामोंसे उनकी त्रिदेवरूपता व्यक्त होती है। ये नाम हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शौरि, वेदकर्ता, वेदवाहन, स्रष्टा, आदिदेव और पितामह। एक साथ तीनों देवोंका ऐक्य भी ब्रह्मत्व है। महाभारतके अष्टोत्तर शतनाम एवं शिवसहस्रनाममें कुछ नाम समान हैं, जैसे—सूर्य, अज, काल, शौरि, शनैश्चर आदि। अन्धकारका नाश करनेके कारण भी सूर्यको शौरि अर्थात् शूर या पराक्रमी कहा जाता है।

सूर्य चराचरका धाता-पाता-संहर्ता—सूर्यसे समस्त चराचरका उद्भव हुआ है,[1] सूर्यसे ही उसका पोषण होता है और सूर्यमें ही उसका लय होता है। यह दिखानेवाले सूर्यके नाम ये हैं—प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, जीवन, भूताश्रय, भूतपति, सर्वधातुनिषेचिता, भूतादि, प्राणधारक, प्रजाद्वार, देहकर्ता, और चराचरात्मा। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**—इस श्रुति-वचनका प्रतिशब्द चराचरात्मक है। सृष्टिके आरम्भकालमें जब प्रजा भूखसे व्याकुल हो रही थी, तब सूर्यने ही अन्नकी व्यवस्था की थी।

१. महाभारत ३। ३। ३६; २. वही ३। ३। ५; ८।

सूर्य एक देवविशेष हैं—देवताओंमें सूर्यका एक विशिष्ट स्थान है। उनका 'व्यक्ताव्यक्त' नाम यह दिखाता है कि वे शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं और तदनुरूप कार्य करते हैं। वे मनुष्योंसे भी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सूर्यका वंश भी इस पृथ्वीपर चला, जिसे इक्ष्वाकुवंश कहते हैं। भगवान्‌ने सूर्यको और सूर्यने मनुको, मनुने इक्ष्वाकु आदिको कर्मयोग-धर्मका उपदेश भी दिया है, ऐसा गीतामें उल्लेख है[1]। इसीलिये अष्टोत्तरशत सूर्यनामोंमें उनके नाम धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, योगी आदि हैं। सूर्यके 'कामद', 'करुणान्वित' नाम भी उनका देवत्व व्यक्त करते हैं—यह युक्ति-युक्त ही है।

प्रभावती सूर्यकी पत्नी हैं।[2] प्रभा अर्थात् सूर्यकी ज्योति। आगम-शास्त्रमें प्रभाको सूर्यकी शक्ति कहा गया है। पुरुषकी शक्ति पत्नी होती है। अतः प्रभा सूर्यकी पत्नी है।

मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा अदितिके बारह पुत्र सूर्यके ही अंश माने जाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं[3]—धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। इनमें विष्णु छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं[4]। सावित्री[5] और तपती[6] ये दो सूर्यकी कन्याएँ हैं। यम सूर्यके पुत्र हैं[7]। सूर्य-पुत्र होनेके कारण यमका तेज सूर्यके समान ही था[8]।

देवरूपमें सूर्यका मनुष्योंसे सम्बन्ध बतानेवाली कुछ पुराण-कथाओंके उल्लेख भी महाभारतमें मिलते हैं। इनमें एक कथा यह है कि त्वष्टादेवताकी पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था। संज्ञा सूर्यका तेज नहीं सह सकी। इससे वह सूर्यके पास अपनी छाया छोड़कर स्वयं पिताके पास लौट गयी। उस छायासे सूर्यका पुत्र शनैश्चर हुआ[9]। पिताने जब संज्ञाको अपने पतिके पास ही रहनेके लिये कहा तो संज्ञा पिताके यहाँसे तो चली गयीं, किंतु सूर्यसे बचनेके लिये उसने अश्वाका रूप बना लिया और अन्यत्र रहने लगी। सूर्यने अश्वरूप धारण करके संज्ञा (अश्वा)का पीछा किया। तब संज्ञा और सूर्यसे अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अन्ततः त्वष्टाने सूर्यको अपना तेज कम करवानेके लिये सहमत कर लिया। तब त्वष्टाने खरादपर चढ़ाकर सूर्यको छील दिया। त्वष्टाने सूर्यके द्वादश खण्ड कर दिये। इस प्रकार सूर्यका तेज कम हो गया[10]। पाश्चात्त्योंने इससे यह कल्पना की है कि सूर्यकी मूर्तिको शकलोग लंबे वस्त्र पहनाते थे[11]। वही इस कथामें बतलाया गया है। महाभारतकी यह कथा अन्य पुराणोंमें दी हुई कथाका संक्षिप्त रूप है[12]। गोविन्दपुर (जिला गया, विहार प्रान्त)के शिलालेख (शकाब्द १०५९, सन् ११३७-३८ ई०) में लिखा है कि विश्वकर्माने सूर्यदेवके तनुका तेज शाणयन्त्रपर चढ़ाकर कम किया था। इस पुराण-कथाका मूल स्रोत ऋग्वेद है[13]। ऋग्वेदमें त्वष्टाकी पुत्री शरायु और सूर्यके विवाहकी कथा है।

सूर्यदेवकी दूसरी प्रसिद्ध कथा है—'कर्णकी उत्पत्ति'। महाभारतमें सूर्यदेव प्रत्यक्ष पात्रके रूपमें दृष्टिगत होते हैं। पृथापर आनेवाले भावी संकटका विचार करके महर्षि दुर्वासाने पृथाको अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये

---

१. गीता ४। १; २. महाभारत ५। ११७। ८; ३. वही १। ६५। १४; ४. वही १। ६५। १५-१६; ५. वही १। १७०। ७; ६. वही १। १७०। ७, ७. वही १। ७४। ३०, ८. वही १। २९७। ४१; ९. भागवत ६। ६। ४१—'छाया शनैश्चरं लेभे'। १०. मिलाइये—विश्वकर्मा ह्यनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः। भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शातयामास तस्य वै॥ भविष्यपुराण ब्रह्म० ७९। ४१। ११. उदीच्य वेशं गूढं पादादुरो यावत्। (वाराहमिहिर) १२. यह कथा पुराणमें विस्तारसे दी हुई है। १३. ऋग्वेद १। ६४।

वशीकरण मन्त्र दिया[1]। दुर्वासाद्वारा प्राप्त मन्त्रकी परीक्षा लेनेके लिये कुन्तीद्वारा आवाहन किये जानेपर[2] सूर्यदेवका प्रकट[3] होना और कुन्तीको पुत्र (कर्ण)रूप फल प्राप्त होना[4] सूर्यदेवकी प्रत्यक्षता ही है। सूर्य-कुन्तीके पुत्र कर्ण देवमाता अदितिके कुण्डल तथा सूर्यके कवचसहित उत्पन्न हुए थे[5]। सूर्यदेवकी कृपासे कुन्तीका कन्यात्व कर्णको उत्पन्न करनेके बाद भी ज्यों-का-त्यों बना रहा। महाभारतकारने 'कन्या' शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'कम्' धातुसे कन्या शब्दकी सिद्धि होती है। 'कम्' धातुका अर्थ है 'चाहना'; क्योंकि वह स्वयंवरमें आये हुए किसी व्यक्तिको अपनी कामनाका विषय बना सकती है।[6] मन्त्रकी परीक्षा मात्र करनेके विचारसे ही कुन्तीने सूर्यका आवाहन किया था; किंतु उससे जब सूर्य वास्तवमें प्रत्यक्ष हो गये और उससे प्रणययाचना करने लगे तथा कुन्ती सूर्यको आत्म-समर्पण करनेमें भयका अनुभव करने लगी; तब सूर्यने वरदान दिया कि 'तुम कन्या ही बनी रहोगी और स्वयंवरमें किसीका भी वरण करनेमें समर्थ होगी।' यह आश्वासन प्राप्त करके कुन्तीने पुत्र (कर्ण) को प्राप्त किया। कर्ण सूर्यके समान तेजस्वी थे। वे महाभारत-युद्धके प्रमुख महारथियोंमें थे। दुर्योधनने तो इन्हींके बलपर युद्ध छेड़ा था। समय-समयपर सूर्यदेव पुत्र-स्नेहके कारण कर्णपर विपत्ति आनेके पूर्व उन्हें सावधान कर देते थे। नारायण श्रीकृष्णने महाभारत-युद्धमें अर्जुनकी विजय निश्चित की थी। अतः विधाताके इच्छानुसार अपने पुत्र अर्जुनकी विजयके लिये प्रयत्नशील इन्द्रने कर्णसे कवच-कुण्डल दानमें माँगनेका निश्चय किया। सूर्यके लिये सभी अनावृत हैं; अतः सूर्य इन्द्रके इस निश्चयको जान गये और पुत्रस्नेहके कारण योग-समृद्धिसे सम्पन्न वेदवेत्ता ब्राह्मणका रूप धारणकर उन्होंने रातको स्वप्नमें कर्णको दर्शन दिया[7] तथा कर्णसे कहा—'इन्द्र ब्राह्मणका छद्मवेष धारण करके तुम्हारे पास कवच-कुण्डल माँगने आयेंगे, तुम देना मत[8]।' परंतु कर्णने अपने सिद्धान्तके अनुसार याचकको प्राणतक देनेका[9] अपना अटल निर्णय बता दिया। इसपर सूर्यने कर्णसे कहा कि यदि तुमने यह निश्चय कर ही लिया है, तो तुम कवच-कुण्डलके बदले इन्द्रसे अमोघ शक्ति ले लेना। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि सूर्यने कर्णको यह नहीं बताया है कि वे कर्णके पिता हैं। कर्ण यही समझते हैं कि मेरे आराध्यदेव होनेके कारण ही सूर्य मेरे प्रति स्नेह रखते[11] हैं। वैसे तो सूर्यसे ही यह समस्त प्रजा उत्पन्न हुई है और वे सभीका पालन करते हैं[12] तथा सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंमें एक नाम 'पिता' भी है; परंतु अपने अंशरूप कर्णसे उन्हें अधिक प्रेम था।

कालाध्यक्ष सूर्य—सूर्यका नाम काल है। सूर्य अनन्त-असीम कालके विभाजक हैं अर्थात् कालचक्र-प्रवर्तक हैं। अतः समयके छोटे-बड़े सभी विभागोंको महाभारतमें सूर्यरूप कहा गया है। सूर्यके नाम हैं—कृत, त्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सरकर, दिन, रात्रि, याम, क्षण, कला, काष्ठा—मुहूर्तरूप समय। सूर्यके कारण ही हम समयके इन खण्डोंका अनुभव करते हैं, अन्यथा महाकाल तो अनन्त-अखण्ड इन्द्रियातीतकी अनुभूति है। सूर्यका नाम 'तमोनुद्' यह प्रकट करता है कि आद्य तमस्में प्रकाश करके सूर्य 'समय' की भावना उत्पन्न करते हैं। ब्रह्माजीका दिन सहस्र युगोंका बताया गया है। 'कालमान'के जाननेवाले विद्वानोंने उसका आदि और अन्त सूर्यको ही माना है[14]।

---

१. महाभारत १।११०।८; २. वही १।११०।९; ३. वही १।११०।११७-११८; ४. १।११०।१६ के बाद दाक्षिणात्य, ५. वही १।११०।२०; ६. वही ३।३०७।२५-२६; ७. वही ३।३०७।१३; ८. वही ३।३०७।१५; ९. वही ३।३०९।८९; १०. वही ३।३००।१५ से सम्पूर्ण; ११. वही ३।३०१।६-१२; १२. वही ३।३०२।१५; १३. वही ३।३।९; १४. वही ३।३।५५।

ग्रहपति सूर्य—विभिन्न ग्रहोंके नाम सूर्यके अष्टोत्तरशत नामोंके अन्तर्गत हैं। इसका आशय यह होता है कि महाभारतकार सूर्यको ग्रहपति मानते हैं। सूर्यके एक सौ आठ नामोंमे—सूर्य, सोम, अङ्गारक (मङ्गल), बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर भी हैं[1]। सूर्यके 'धूमकेतु' नामसे केतु शब्द व्यञ्जित होता है और उससे राहु-नाम संकेतित हो जाता है। 'राहु' और 'केतु' नाम महाभारतमे अन्यत्र मिलते हैं। आदिपर्वमें अमृत-मन्थनकी कथामें राहुका नाम है, जो चन्द्रग्रहण करता है। उसके कबन्धका भी उल्लेख है। यह कबन्ध ही 'केतु' है। राहु-केतु दोनों नाम साथ-साथ कर्णपर्वमे आये है, जहाँ अर्जुन और कर्णके ध्वजोकी उपमा उनसे दी गयी है[2]। इस प्रकार महाभारतमे नवों ग्रहोंके नाम दिये हुए हैं। और, प्राच्य विद्याके पाश्चात्त्य विचारकोंका यह कथन सत्य नहीं है कि 'महाभारतमे केवल पाँच ग्रहोंका उल्लेख है, जिनके नाम भी नहीं दिये गये हैं[3]।'

ज्योतिष्कपिण्ड सूर्य—सूर्य अपने ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमे प्रतिदिन प्रातः-सायं उदित और अस्त होते हैं[4]। उस समय सूर्यका वर्ण मधुके समान पिङ्गल तथा तेजसे समस्त दिशाओंको उद्भासित (प्रकाशित) करनेवाला होता है[5]। कुन्तीका मन इन्हीं ज्योतिर्मय सूर्यको उदित होते हुए देखकर आसक्त हुआ था[6]। इस प्रसङ्गमे यह वर्णन भी आया है कि सूर्य योग-शक्तिसे अपने दो स्वरूप बनाकर एकसे कुन्तीके पास आये और दूसरेसे आकाशमे तपते रहे[7]। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् सूर्यकी ही शक्ति ज्योतिर्मय पिण्डाकाररूपमे हमे दिखायी देती है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

> तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत्।
> न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन् मनीषिणः॥
> आधानपशुबन्धेष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः।
> त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः॥
> (महाभारत ३ । ३ । ५३-५४)

अर्थात् (भगवन्!) यदि आपका उदय न हो तो यह सारा जगत् अन्धा हो जाय और मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ एवं काम-सबन्धी कर्मोंमें प्रवृत्त ही न हों। गर्भाधान या अग्निकी स्थापना, पशुओंको बाँधना, इष्टि (यज्ञ-पूजा), मन्त्र, यज्ञानुष्ठान और तपश्चर्या आदि समस्त क्रियाएँ आपकी ही कृपासे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगणोंके द्वारा सम्पन्न की जाती हैं।

महाभारतमे स्थान-स्थानपर शूरवीरो एव महर्षियोंके तेजकी तुलना सूर्यसे की गयी है, जो सूर्यके ज्योतिष्कपिण्ड-रूपको समक्ष लाती है। एक बार महर्षि जमदग्नि धनुष चलानेकी क्रीड़ा कर रहे थे[8]। वे धनुष चलाते और उनकी पत्नी रेणुका बाण ला-लाकर देती थीं[9]। क्रीड़ा करते-करते ज्येष्ठ मासके सूर्य दिनके मध्यभागमे आ पहुँचे[10]। इससे रेणुका बाण लानेकी क्रियामे विफल होने लगीं[11]। अतः रुष्ट होकर जमदग्निने कहा—'इस उद्दीप्त किरणोंवाले सूर्यको आज मैं अपने बाणोंके द्वारा अपनी अस्त्राग्निके तेजसे गिरा दूँगा[12]।' जमदग्निको युद्धोद्यत देख सूर्यदेव ब्राह्मणका वेश धारण कर वहाँ आये और कहा—'सूर्यदेवने आपका क्या अपराध किया है? सूर्यदेव तो विश्वकल्याणार्थ कार्यमे लगे हुए हैं। अतः इनकी गति रोकनेसे आपको क्या लाभ होगा[13]?' जमदग्निने सूर्यको शरणागत समझकर कहा—'ठीक है, इस समय तुम्हारे द्वारा जो यह अपराध हुआ है, उसका कोई समाधान सोचो, जिससे तुम्हारी

---

१. महाभारत ३ । ३ । १७-१८, २. वही ८ । ८७ । ९२, ३. ऐसा श्री जे० एन० बनर्जीने अपने ग्रन्थ 'पौराणिक एण्ड तान्त्रिक रिलीजन'मे पृष्ठ १३५ पर लिखा है, ४. महाभारत ३ । ३ । ३०४; ५. वही ३ । ३०४ । ९; ६. वही ३ । ३०४ । ५; ७. वही ३ । ३०४ । १०; ८. वही १३ । ९५ । ६; ९. वही १३ । ९५ । ७; १०. वही १३ । ९५ । ९; ११. १३ । ९५ । १६, १२. वही १३ । ९५ । १८, १३. वही १३ । ९५ । २० ।

किरणोद्वारा तपा हुआ मार्ग सुगमतापूर्वक चलने योग्य हो सके[१]।' यह सुनकर सूर्यने शीघ्र ही जमदग्निको छत्र और उपानह्—दोनों वस्तुएँ प्रदान कीं[२]। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् सूर्य प्रजाके कल्याणार्थ कार्य करते हैं। वे यदि अपने कार्यसे च्युत होंगे तो समस्त संसार नष्ट हो जायगा। अतः किसी भी देवता, गन्धर्व, और महर्षि आदिको उनके कार्यमे व्यवधान पहुँचानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

मोक्षद्वार सूर्य—सूर्यके नामोमें एक नाम 'मोक्षद्वार' है। इसी अर्थका समर्थक नाम है—स्वर्गद्वार। त्रिविष्टप भी सूर्यका एक नाम है। भीष्मने दक्षिणायन सूर्यकी समस्त अवधिमें शर-शय्यापर जीवन धारण किया। भीष्म आठवे वसुके अंशरूप थे[३]। पिताके सुखके लिये भीषण प्रतिज्ञा करनेपर पिताद्वारा उन्हें इच्छामृत्युका वरदान मिला था[४]। जीवनसे उदासीन होनेपर[५] अर्जुनके बाणोसे विकल हो[६] भीष्मने मृत्युका चिन्तन किया। वे अर्जुनद्वारा रथसे गिरा दिये गये[७] थे। किंतु उस समय सूर्य दक्षिणायनमे थे, अतः भीष्म प्राण-त्याग नहीं किये[८]। श्रुतिके अनुसार दक्षिणायन सूर्यके समय प्राणविसर्जन होनेसे पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है। भीष्मकी इच्छा थी कि जो मेरा पुरातन स्थान (वसुगणोके पास स्वर्गमें) है, वहीं जाऊँ[९]। अतः उत्तरायण सूर्यकी प्रतीक्षामे भीष्मने अट्ठावन दिन शरशय्यापर व्यतीत[१०] किया। स्पष्ट है कि सूर्य मोक्षद्वार हैं''। गीता ८। २४ मे स्पष्टतः प्रतिपादित है कि—उत्तरायणमें मरनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं।

सूर्योपासना-अष्टोत्तरशत नामोमें अनुस्यूत **'सर्वलोक-नमस्कृतः'** से स्पष्ट है कि सूर्यकी उपासना अत्यन्त व्यापक है—ऐसा महाभारतकारका मत है। सूर्यके 'कामद' और 'करुणान्वित' नाम यह प्रकट करते हैं कि सूर्यकी पूजासे इच्छाओंकी पूर्ति होती है, और साधकपर भगवान् सूर्य अपनी करुणाकी वर्षा करते हैं। 'प्रजाद्वार' नाम यह बताता है कि सूर्योपासनासे संतानकी प्राप्ति होती है। 'मोक्षद्वार' नाम यह प्रकट करता है कि सूर्योपासनासे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। महर्षि धौम्य कहते हैं कि जो व्यक्ति सूर्यके इन एक सौ आठ नामोका नित्य पाठ करता है, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न, पूर्वजन्म-स्मृति, धृति, बुद्धि, विशोकता, इष्टलाभ और भव-मुक्ति प्राप्त करता है—

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्
स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान्।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा
धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान्॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः
प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागरा-
ल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान्॥
(महाभारत ३। ३। ३०-३१)

युधिष्ठिर कहते हैं कि ऋषिगण, वेदके तत्त्वज्ञ ब्राह्मण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यकनामवाले तैंतीस देवता (बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, इन्द्र और प्रजापति), विमानचारी सिद्धगण, उपेन्द्र, महेन्द्र, श्रेष्ठ विद्याधरगण, सात पितृगण (वैराज, अग्निष्वात्त, सोमपा, गार्हपत्य, एकश्रृङ्ग, चतुर्वेद, कला), दिव्यमानव, वसुगण, मरुद्गण, रुद्र, साध्य, वालखिल्य तथा सिद्ध-महर्षि आपकी उपासना करते हैं। षष्ठी और सप्तमीको सूर्यकी पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। सूर्योपासनासे और भी अनेक प्राप्य हैं, यह बताते हुए युधिष्ठिर कहते हैं—

---

१. महाभारत १३। ९६। १२; २. वही १३। ९६। १३; ३. वही १। ६३। ९१, ४. वही, ५. वही ६। ११९। ३४-३५, ६. वही ६। ११९। ५६; ७. वही ६। ११९। ८६; ८. वही ६। ११९। १०४; ९. वही ६। ११९। ५; १०. वही १३। १६७। २६; ११. वही ३। ३। ३९—४४।

*

न तेषामापदः सन्ति नाधयो व्याधयस्तथा।
ये तवानन्यमनसः कुर्वन्त्यर्चनवन्दनम्॥
सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपापविवर्जिताः।
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः॥
(महाभारत ३।३।६५-६६)

इतना कहनेपर भी महाभारतकारको तृप्ति नहीं हुई। वे पुनः कहते हैं—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम्॥
(३।३।७५)

अर्थात् जो कोई पुरुष मनको संयममे रखकर चित्त-वृत्तियोको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अत्यन्त दुर्लभ वर भी माँगे तो भगवान् सूर्य उसकी उस मनोवाञ्छित वस्तुको दे सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि महाभारतमें विष्णुपुराण आदिकी भाँति व्यापक क्रमबद्धतासे मुख्य संदर्भरूपमें वर्णन नहीं होनेपर भी सूर्यमाहात्म्यके लिये आनुषङ्गिक वर्णन महत्त्वके हैं और उनसे महाभारत-कारकी सूर्यविषयक धारणाएँ विवेचित हो जाती हैं। वस्तुतः महाभारत भगवान् सूर्यकी महत्ताका प्रतिपादन ही नहीं, प्रसंगतः समर्थन भी करता है। सूर्यदेव है और सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। अतः सूर्यकी अर्चना—उपासना करनी चाहिये—यह महाभारतकार-को इष्ट है।

महाभारतोक्त सूर्यस्तोत्रका चमत्कार

(लेखक—महाकवि श्रीवनमालिदासजी, शास्त्रीजी महाराज)

दुर्योधनेनैव दुरोहरेण
निर्वासितायैव युधिष्ठिराय।
पात्रं प्रदत्तं भुवनोपभोज्यं
तस्मै नमः सूर्यमहोदयाय॥

अपने भक्तमात्रको अतिशय उन्नति देनेवाले उन भगवान् सूर्यको मेरा सादर प्रणाम है, जिन्होंने दुर्योधनके द्वारा दुर्व्यवहारमय दुरोहर (जूआ)के निमित्त वनमे निर्वासित युधिष्ठिरके लिये ऐसा चमत्कारमय पात्र प्रदान किया जो भुवनमात्रको भोजन करा देनेमे समर्थ था।

दुर्दान्त दुर्योधनके दुर्दमनीय दुःशासनात्मक दुर्व्यवहारमय दुर्द्यूतके द्वारा पराजित हुए पाँचों पाण्डव जब द्रौपदीके सहित वनको प्रस्थित हो गये, तब धर्मराज युधिष्ठिरकी राज्यसभामे अपने धर्म-कर्मका सानन्द निर्वाह करनेवाले हजारों वैदिक ब्राह्मण निषेध करनेपर भी उनके साथ ही वनको चल दिये। उस समय कुछ दूर वनमें जाकर युधिष्ठिरने अपने पूज्य पुरोहित श्रीधौम्य ऋषिसे प्रार्थना की—'हे भगवन्! ये ब्राह्मण जब मेरा साथ दे रहे हैं, तब इनके भोजनकी व्यवस्था भी मुझे ही करनी चाहिये। अतः आप कृपया इन सबके भोजनकी व्यवस्थाका कोई उपाय अवश्य बताइये।' तब धौम्य ऋषिने प्रसन्न होकर कहा—'मै श्रीब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ अष्टोत्तरशतनामात्मक सूर्यका स्तोत्र तुम्हें देता हूँ; तुम उसके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करो। तुम्हारा मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण हो जायगा।' [वह स्तोत्र महाभारतके वनपर्वमे तीसरे अध्यायमे इस प्रकार है—]

धौम्य उवाच

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च॥

इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वै वरुणो यमः॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमलाश्रयः।
कला काष्ठा मुहूर्त्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः।
वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः।
स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः।
जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचिता॥
मनःसुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः।
धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवो दितेः सुतः॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः॥
एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः।
नामाष्टशतकं चेदं प्रोक्तमेतत् स्वयंभुवा॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं
ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं
प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम्॥
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्
स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान्।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा
धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान्॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः
प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागरा-
ल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान्॥

प्रतिदिन प्रातःकाल संकीर्तनीय अमित तेजस्वी भगवान् श्रीसूर्यदेवका एक सौ आठ नामोंवाला यह स्तोत्र ब्रह्माजीके द्वारा कहा गया है। अतः मैं भी अपने हितके लिये उन भगवान् भास्करको साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ—जो देवगण, पितृगण एवं यक्षोंके द्वारा सेवित हैं तथा असुर, निशाचर, सिद्ध एवं साध्य आदिके द्वारा वन्दित हैं और जिनकी कान्ति निर्मल सुवर्ण एवं अग्निके समान है।

जो व्यक्ति सूर्योदयके समय विशेष सावधान होकर इस सूर्य-स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह व्यक्ति पुत्र, कलत्र, धन, रत्नसमूह, पूर्वजन्मकी स्मृति, धैर्य एवं धारणाशक्तिवाली बुद्धिको अनायास प्राप्त कर लेता है।

जो मनुष्य स्नान आदिसे पवित्र हो विशेष सावधान होकर स्वच्छ मनोयोगपूर्वक, देवश्रेष्ठ सूर्यदेवके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह शोकरूपी दावानलके सागरसे अनायास पार हो जाता है तथा स्वाभिलषित मनोरथोंको भी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार धौम्य ऋषिके द्वारा प्राप्त इस सूर्य-स्तोत्रका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले युधिष्ठिरके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न होकर अक्षयपात्र देते हुए भगवान् सूर्य बोले—'हे राजन्! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे समस्त संगियोंके भोजनकी सुव्यवस्थाके लिये मैं तुम्हें यह अक्षयपात्र देता हूँ; देखो, अनन्त प्राणियोंको भोजन कराकर भी जबतक द्रौपदी भोजन नहीं करेगी, तबतक यह पात्र खाली नहीं होगा और द्रौपदी इस पात्रमें जो भोजन बनायेगी, उसमें छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजनोंका-सा स्वाद आयेगा।'

इस प्रकार सूर्यदेवके द्वारा प्राप्त उस अक्षयपात्रके सहयोगसे धर्मराज युधिष्ठिरने अपने वनवासके बारह वर्ष सभी ब्राह्मणों, ऋषियों, महात्माओंकी तथा अश्व, चाण्डालप्रभृति प्राणियोंकी सेवा करते हुए अनायास व्यतीत कर दिये।

लेखक भी लगभग चौवीस वर्षोंसे इस स्तोत्रका अनुष्ठान कर रहा है । इस स्तोत्रके अन्तमें अपनी अभिलाषाका द्योतक स्वरचित यह श्लोक भी जोड़ देता है—

यावज्जीवं तु नीरोगं कुरु मां च शतायुषम् ।
प्रसीद धौम्यकृतया स्तुत्या मयि विकर्तन ॥

'हे समस्त रोग, दुःख, दोष एव दारिद्र्य आदिका शमन करनेवाले सूर्यदेव ! धौम्य ऋषिके द्वारा की हुई इस स्तुतिसे आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये और मुझको जीवनभरके लिये नीरोग तथा सौ वर्षकी आयुवाला बना दीजिये, जिससे कि मै समस्त शास्त्रोका यथावत् अनुशीलन कर सकूँ ।' इस प्रकारका अनुष्ठान कर प्रत्येक व्यक्ति लाभ उठा सकता है ।

वाल्मीकि-रामायणमें सूर्यकी वंशावली

(लेखक—विद्यावारिधि श्रीसुधीरनारायणजी ठाकुर (सीतारामशरण) व्या०-वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न,)

भगवान् भास्कर एक प्रत्यक्ष शक्तिशाली सत्ता हैं, जिनका प्रभाव सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त है । इस विषयमें विश्वके किसी भी क्षेत्रके विचारकोंमें मतभेद नहीं है; तथापि भारतीय परम्पराके आधारपर (पाश्चात्त्य मान्यताके समान) यह सत्ता कोई जड सत्ता नहीं है । यद्यपि चमकनेवाला तेजःपुञ्ज यह मण्डल जड प्रतीत होता है, फिर भी आर्ष ग्रन्थोकी मान्यतापर विचार करनेसे यही कहा जा सकता है कि यह तेजोमण्डल पृथिव्यादिकी भाँति भले ही जडलोक हो, किंतु उसमें विराजमान कोई अपूर्व चेतनशक्ति अवश्य है जो समस्त सृष्टिकी मङ्गल-कामनासे अनुदिन अपनी कृपावर्षिणी किरणोद्वारा अमृत-वर्षण कर सभी जीवोमे शक्ति प्रदान करती रहती है । अतः भारतीय दृष्टिमे ये 'सूर्य' मण्डल-मात्र नहीं, अपितु साक्षात् नारायण ही है । इसलिये यहाँके विविध ग्रन्थोमें इनके माहात्म्यगानके साथ-साथ इनकी स्वस्थ वशपरम्परा कल्पभेदसे वशानुक्रमणिकामें कुछ वैषम्यके साथ प्राप्त होती है । फिर भी प्रधान-प्रधान राजाओका वर्णन प्रायः सभी वंशानुक्रमणिकाओंमें है । सम्प्रति महर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें इनकी जो वंशपरम्परा दी है, उसे आगे दिखलाया जा रहा है ।

मिथिलामे विवाह-प्रसङ्गमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठने जनकसे इक्ष्वाकुवंशकी परम्पराका निरूपण करते हुए कहा है—'सर्वप्रथम सृष्टिके पूर्व ही अव्यक्तसे शाश्वत (नित्य), अव्यय हिरण्य (ब्रह्म) प्रकट हुए । ब्रह्मासे मरीचि एवं मरीचिसे कश्यपकी उत्पत्ति हुई । इसी महात्मा कश्यपसे विवस्वान् (सूर्यदेव) प्रादुर्भूत हुए । भगवान् विवस्वान्ने कृपा करके मनुको जन्म दिया, जो इस सृष्टिके सर्वप्रथम शासक माने जाते हैं । उन्होंने अपनी शासन-व्यवस्थाके स्वरूपको दृढ रखनेके लिये एक नियम-(विधि-) ग्रन्थका निर्माण किया जो आज भी मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है । इसी मनुसे इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए । इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि, विकुक्षिके पुत्र वाण, वाणके पुत्र अनरण्य, अनरण्यके पुत्र पृथु, पृथुके पुत्र त्रिशङ्कु हुए (जो सशरीर स्वर्ग गये; किंतु ईश्वरीय विधानके विपरीत होनेके कारण उन्हे वहाँ स्थान नहीं मिला, फिर भी विश्वामित्रकी कृपासे वे मर्त्यलोकमें न आकर ऊर्ध्वलोकमे ही लटके रहे) । त्रिशङ्कुके पुत्र धुन्धुमार, धुन्धुमारके पुत्र युवनाश्व, युवनाश्वके पुत्र मान्धाता हुए, जिन्होने अपने शील-गुणके बलपर एक रात्रिमें सम्पूर्ण वसुन्धरापर आधिपत्य प्राप्त कर लिया था । मान्धाताके पुत्र सुसंधि हुए । सुसंधिके दो पुत्र ध्रुवसंधि एवं प्रसेनजित् थे । ध्रुवसंधिके पुत्र भरत, भरतके पुत्र असित हुए । असितकी दो पत्नियाँ

थीं। असित शत्रुओंसे पराजित होकर तपके लिये हिमालय चले गये एवं कालक्रमसे उन्होंने वहीं शरीर-त्याग किया। वहाँ उनकी पत्नियाँ भी थीं। उनमेंसे एक गर्भवती थी। दूसरी पत्नीने अपने सौतको भविष्यमें पुत्रवती होनेकी आशङ्कासे विष दे दिया। ईश्वरानुकम्पासे सगरकी माँको इसका भान हो गया। इसी बीच भाग्यवश महातपा भृगुवंशी च्यवन उस आश्रमके निकट आये। सगरकी माताने सुपुत्र पानेकी लालसासे महात्मा च्यवनकी बहुत अनुनय-विनय—प्रार्थना की। उसकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर महर्षिने उसे सुपुत्र-प्राप्तिका वर दिया। उस आशीर्वादके प्रभावसे गर्भस्थ शिशुपर विषका कोई असर नहीं पड़ा। उसे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। गरलके कारण ही उस कुमारका नाम 'सगर' पड़ा। सगरका पुत्र असमंजस हुआ। असमंजसके पुत्र अंशुमान्, अंशुमान्के पुत्र दिलीप, दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जिनकी तपस्याके कारण आज भी इस धरापर 'ब्रह्मद्रव' कही जानेवाली स्वर्गदा गङ्गा प्रवाहित हैं। भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ, ककुत्स्थके पुत्र महाप्रतापी रघु थे, जिन्होंने विश्वजित् नामक यज्ञमें सर्वस्व देकर भी द्वारपर आये हुए अतिथि कौत्सको विमुख न होने दिया। रघुके पुत्र कल्माषपाद हुए। कल्माषपादके पुत्र शङ्खण, शङ्खणके पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णकी संतति शीघ्रग, शीघ्रगका पुत्र मरु, मरुका पुत्र प्रशुश्रुक, प्रशुश्रुकका पुत्र अम्बरीष, अम्बरीषका पुत्र नहुष, नहुषका पुत्र ययाति, ययातिसे नाभाग, नाभागका पुत्र अज, अजके पुत्र दशरथ हुए। इन्हीं महाराज दशरथसे महातेजस्वी विश्वविख्यात अवर्णनीय छवि राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए। इन चारोंको भी दो-दो संततियाँ हुईं, जिसका वर्णन वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें है। उस वर्णनमें श्रीरामसे लव और कुश; श्रीभरतसे तक्षक तथा पुष्कल; श्रीलक्ष्मणसे अङ्गद एवं चित्रकेतु, श्रीशत्रुघ्नसे सुबाहु और शत्रुघाता हुए। अन्य पुराणोंमें आगेकी वंश-परम्पराका भी वर्णन प्राप्त होता है; किंतु वाल्मीकीय रामायणका प्रतिपाद्य **'सीतायाश्चरितं महत्'** होनेके कारण वर्णन-क्रममें उस कालतककी वंशावलीको ही दिखलाया गया है। ऋक्ष-वानरोंके उत्पत्ति-क्रममें सुग्रीव भास्करपुत्र ही कहे गये हैं। इन समस्त वर्णन-क्रमोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि जैसे भगवान् भास्कर अपने ज्योतिपुञ्जसे जगत्का तिमिर हरण करते हुए सभीके लिये मङ्गल वेला उपस्थित करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने अपनी वंश-परम्पराक्रमसे अपना सहज तेज प्रदानकर तमःप्रधान रावण आदि—आसुरी सम्पदाको समाप्त कर संसारका सर्वविध कल्याण किया है।

आद्यकाव्य वाल्मीकि रामायणमें सूर्यवंशका सर्वोज्ज्वल प्रकाश श्रीरामरूपमें हुआ है। तभी तो तुलसीदासने भी लिखा है—

'उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।

नमो महामतिमान्

(रचयिता—श्रीहनुमानप्रसादजी शुक्ल)

तरणि! आप निज तेजसे, जगको जीवन देत।
जल फल शस्य प्रकाश औ, सृष्टि-प्रलयके हेत॥
आदि-पुरुष हे ओजनिधि, जग-जीवन-आधार।
सुखदायक त्रय लोकके, नमो किरण-करतार॥
जग-पालक, घालक-तिमिर, जप-तप-तेजनिधान!
पूर्वज दिनकर-वंशके, नमो महामतिमान्॥

सूर्यवंशावतंस श्रीराम
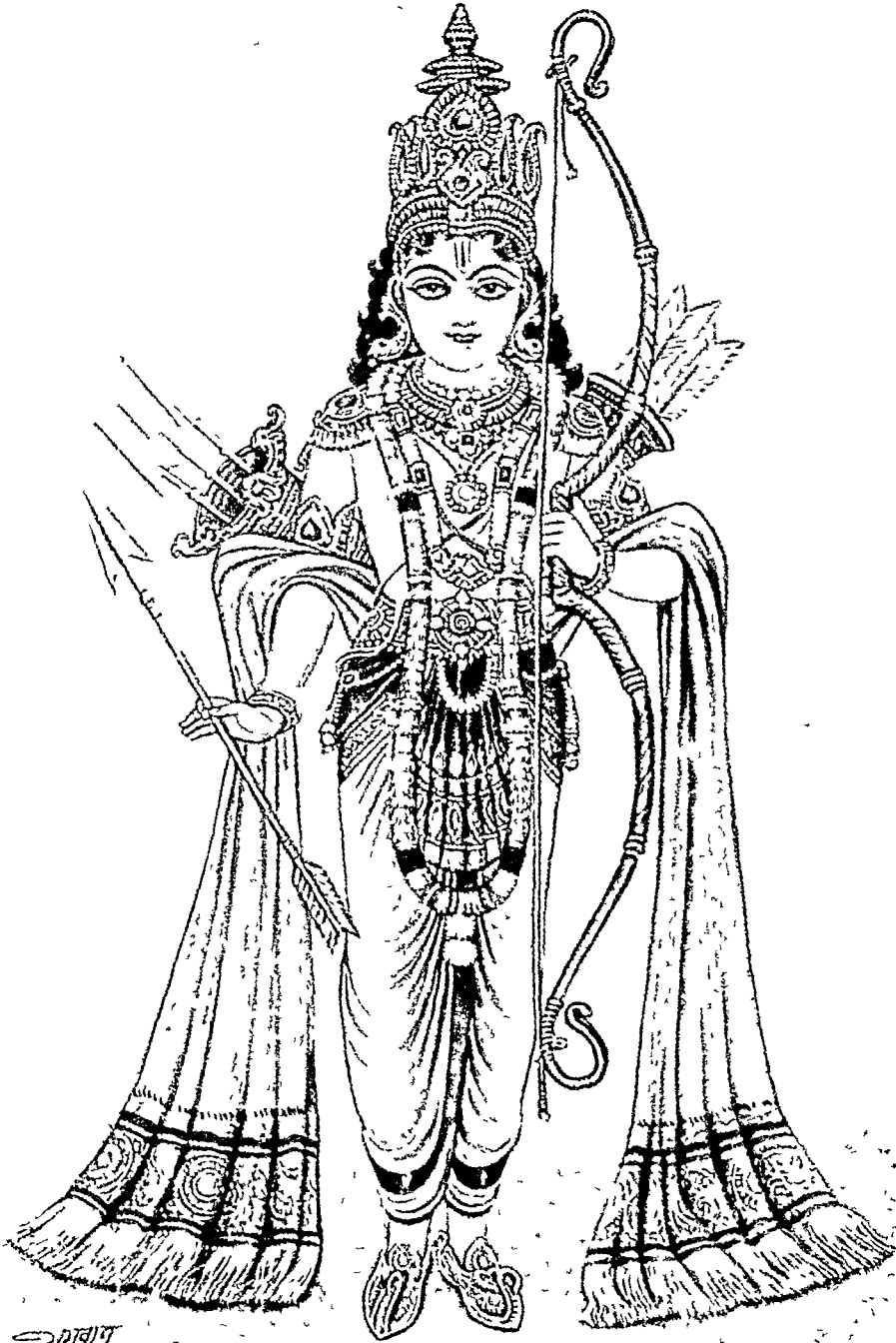
वंश-परम्परा और सूर्यवंश

(पृष्ठभूमि)

पुराणोंमें ऋषिवंश या राजवंशका जो वर्णन प्राप्त होता है, उसका आरम्भ वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भसे ही होता है। इतने समयमे सत्ताईस चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी है और अट्ठाईसवे चतुर्युगीके भी तीन युग व्यतीत हो गये हैं। इस अवधिमे चौथा कलियुग चल रहा है। इतने लम्बे कालके इतिहासकी रूपरेखा हमारे यहाँ सुरक्षित है। किंतु हमारा दुर्भाग्य है कि इस बातपर हमारे ही देशके अधिकतर आधुनिक विद्वान् विश्वास नहीं करते। वे युग शब्दके भिन्न-भिन्न तथा अनर्गल अर्थ लगाकर समयके संकोचकी प्रक्रियामे लगे हुए है। कुछ लोग 'युग' शब्दको अंग्रेजीके 'पीरियड' शब्दका समानार्थक मानते हैं, जैसे आजकल हिंदीमे 'भारतेन्दु-युग', 'द्विवेदी-युग' इत्यादि व्यवहृत होते हैं। कुछ विद्वान् पुराणोंमे वर्णित बारह हजार दैववर्षकी चातुर्युगीको ही मानुषवर्ष मानते हैं। वंगीय साहित्य-परिषद्के श्रीगिरीशचन्द्र वसुने अपनी कल्पनाओंके आधारपर पुराने ऋषि, राजा आदिको बहुत अर्वाचीन सिद्ध करनेका प्रयत्न अपनी 'पुराण-प्रवेश' नामक पुस्तकमे किया है। सृष्टिकी वंश-परम्पराको अर्वाचीन सिद्ध करनेके लिये जितना ही अधिक प्रयत्न किया गया तथा कल्पनाएँ की गयीं, पुराणोंमे उन कल्पनाओंके विरुद्ध उतने ही अधिक प्रमाण मिलते गये हैं। इसीलिये विरोधमे जबतक कोई दृढ और सर्वमान्य प्रमाण प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक हम वैवस्वत मनुसे ही अपने इतिहासका आरम्भ माननेके लिये विवश हैं।

आधुनिक विद्वानोंका कहना है कि यदि वैवस्वत मनुसे राजाओंकी वंश-परम्परा मानी गयी है, तो पुराणोंमें इतने अल्प नाम क्यो आये हैं? नामोंकी संख्या तो हजारों-लाखोंतक जा सकती थी? इसके अतिरिक्त वे यह भी कहते हैं कि पुराणोंमें प्रत्येक राजाकी हजारों वर्षोंकी आयु लिखी है, जो पुराणकर्ताओंकी कोरी कल्पना तथा अविश्वसनीय बात है।

उदाहरणस्वरूप, वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित महाराज दशरथके इस वाक्यको लीजिये कि—

षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ॥
कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि ।
(१ । २० । १०-११)

'हे कौशिक! मैंने साठ हजार वर्षोंकी आयु बिताकर इस वृद्धावस्थामे बड़ी कठिनतासे रामको पाया है। अतः मै इन्हे देनेमें असमर्थ हूँ।' इतना ही नहीं, 'राम'के विषयमे भी कहा गया है कि—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

'दस हजार, दस सौ वर्ष राज्य करनेके बाद राम ब्रह्मलोकको जायँगे।' पुराणोंमें वर्णित इस तरहके सारे वाक्य अनर्गल हैं।

पर, हमारे ये विद्वान् इन ग्रन्थोंके रचनाकालका ज्ञान ठीकसे नहीं रखते हैं और न यह बात ही जानते हैं कि शब्दोंके अर्थोंमे कब और कितना परिवर्तन हुआ और हो रहा है। प्राचीन मीमांसादर्शनमें 'वर्ष' शब्दका अर्थ 'दिन' आया है। इस विषयपर मीमांसादर्शनमे अनेक विचार हैं और वहाँ यह भी कहा गया है कि **'शतायुर्वै पुरुषः'** अर्थात् मनुष्यकी आयु सौ वर्ष ही श्रुतिमे मानी गयी है। उसके विरुद्ध अधिक आयु मनुष्यकी नहीं मानी जा सकती। श्रुतिमें ऐसे भी वाक्य मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि सौ वर्षसे कुछ ऊपर भी मनुष्योंका जीवन होता है। किंतु ज्योतिषशास्त्रमें अधिक-से-अधिक एक सौ बीस या

एक सौ चौवालीस वर्षकी आयु निश्चित की गयी है। जहाँ वर्ष शब्दका अर्थ दिन माननेपर आयु बहुत अधिक प्रतीत हो, वहाँ एक हजार वर्षका अर्थ एक वर्ष मानना चाहिये। इस प्रकार दशरथके साठ हजार वर्ष-वाले कथनमे साठ हजार वर्ष शब्दका अर्थ होगा—पूरे साठ वर्ष। स्मृति या पुराणोमें सत्ययुग, त्रेतायुग आदिमें जो चार सौ या तीन सौ वर्षकी मनुष्यकी आयु लिखी गयी है, उसका तात्पर्य है कि सत्ययुग, त्रेतायुग आदिका परिमाण कलियुगसे चतुर्गुण या त्रिगुण माना जाता है। इसलिये कलियुगके सौ वर्ष ही उन युगोके चार सौ या तीन सौ कहे जाते है। इससे उन वाक्योंका श्रुतिसे विरोध नहीं समझना चाहिये। इसी प्रकार बहुत-बहुत कालके अन्तरपर होनेवाले राजाओंके समयमें भी किसी एक ऋषिके ही अस्तित्वका वर्णन पुराणोमे पाया जाता है। उदाहरणके लिये वसिष्ठ और विश्वामित्रके अस्तित्वको लिया जा सकता है, जो हरिश्चन्द्र और उनके पिता त्रिशंकु आदि राजाओके समयमे भी उपस्थित हैं तथा दशरथ और रामके समयमे भी। इसी प्रकार परशुराम, भगवान् रामके समयमें उनसे धनुर्भङ्गके कारण विवाद करते देखे जाते हैं और महाभारतकालमे भी भीष्म, कर्ण आदिको उन्होंने विद्या पढायी, ऐसा भी प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि नाम कुलपारम्परिक नामका बोधक है। जबतक किसी विशेष कारणसे—प्रवर आदिकी गणनाके लिये नामका परिवर्तन नहीं होता तबतक वही नाम चलता रहता था; किंतु भगवान् रामके राज्यका समय इतना लम्बा किसी प्रकार नहीं हो सकता, अतः समयका संकोच करना आवश्यक होगा। इसलिये दस सहस्र वर्षका अर्थ है—सौ वर्ष और दशशत वर्षका अर्थ है—दस वर्ष; अर्थात् रामने एक सौ दस वर्षोतक राज्य करके ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त किया था। जहाँतक वंश-परम्परामें अल्पाल्प नामोकी चर्चा है, उसके सम्बन्धमें कहना है कि पुराणो-की वंश-परम्परामें क्रमबद्ध सभी राजाओंके नाम नहीं दिये गये हैं, अपितु जिस वंशमें जो अत्यन्त प्रधान राजा हुए, उनके ही नाम पुराणोंमें वर्णित हैं। अनेक वर्णन-प्रसंगमे पुत्रादि शब्दका अर्थ उनका वंशज है। उदाहरण—रामके लिये 'रघुनन्दन' शब्दका व्यवहार आनुवंशिक है, न कि रघुका पुत्र। इस बातकी पुष्टि निम्नलिखित वाक्यसे भी होती है—

अपत्यं पितुरेव स्यात् ततः प्राचामपीति च।

अर्थात् 'पिताका तो अपत्य होता ही है, उसके पूर्वपुरुषोका भी वह अपत्य कहा जाता है।' इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतमें परीक्षितके द्वारा राजाओंके वंश पूछनेपर श्रीशुकदेवजीका उत्तर है कि—

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि॥
(९।१।७)

'वैवस्वत मनुका मैं प्रधानरूपसे वंश सुनाता हूँ। इसका विस्तार तो सैकडों वर्षोमें भी नहीं किया जा सकता।' इससे सिद्ध है कि वंशके नाम बहुत अधिक हैं। 'लिंगपुराण' तथा 'वायुपुराण' (उत्त०, अ० २६, श्लोक २१२)-मे भी राजाओंके वंश-कीर्तनके अन्तमे लिखा गया है कि—

एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधाना एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥

'इक्ष्वाकु-वंशके प्रायः प्रधान-प्रधान राजाओके ही नाम कहे गये हैं।' यही कारण है कि जिनका विवाह आदि सम्बन्ध पुराणोमें लिखा है, उनकी पीढियोसे बहुत भेद पड़ता है। उदाहरणके तौरपर इक्ष्वाकुके तीन पुत्र विकुक्षि, निमि और दण्डक कहे गये हैं। उनमे विकुक्षिके वशमें प्रायः ५५ पुरुषोके अनन्तर रामका अवतार वर्णित है और निमिके वंशमे प्रायः इक्कीस

पीढ़ीके अनन्तर ही सीताके पिता सीरध्वज जनकका नाम आता है। इस तरह दोनोकी पीढ़ियोमे लगभग एक हजार वर्षोका अन्तर असम्भव-सा लगता है। इससे स्पष्ट है कि दोनो वंशोके प्रधान-प्रधान राजाओंके ही नाम पुराणोमें गिनाये गये हैं। अतः जिस राजवंशमे प्रधान और प्रतापी राजा अधिक हुए, उस वंशके अधिक नाम आ गये हैं और जिस वंशमे प्रधान राजा न्यून हुए, वहाँ न्यून नामकी ही गणना हुई है। राजाओंके वंश-वर्णनमे ऐसा भी भेद देखा जाता है कि किसी एक पुराणमें एक वंशके राजाओंके जो नाम मिलते है, वे दूसरे पुराणोमे नहीं मिलते। इसका कारण यह है कि जिस पुराणकारकी दृष्टिमे जो राजा प्रतापवान् और उल्लेखनीय माने गये हैं, उन्हींके नाम उस पुराणकारने गिनाये। कुछ पुराणकारोने तो संक्षिप्तीकरणके विचारसे भी ऐसा किया है। पुराणोमे वंश आदिके वक्ता पृथक्-पृथक् ऋषि आदि हैं, जो पुराणवाचकोको स्पष्ट ही प्रतीत हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि पुराणोकी पीढ़ियोमे प्रधान-प्रधान राजाओंके ही नाम गिनाये गये हैं और भेद भी मिल जाते हैं। राजवंशोंके नाम बहुत पुराणकारोने लोकश्रुतिके आधारपर भी लिखा है, जिस लोकश्रुतिमे सम्पूर्ण राजवंशके प्रत्येक राजाका नाम आना असम्भव था। लोकश्रुति तो प्रधान और अवतारी पुरुषोका ही स्मरण रखती है, अन्य लोगोको छाँटकर किनारे कर देती है। किंतु वंशानुगत यदि सभी राजाओंके नाम और समय उपलब्ध हो जाते तो ठीक-ठीक काल-गणनाका आधार प्राप्त हो जाता। परंतु ऐसा नहीं है, अतः पुराणोमे काल-गणनाका जो विस्तार वैज्ञानिक रीतिसे किया गया है, उसे न मानकर अपनी प्रज्ञासे उसका संकोच करना उपयुक्त नहीं है।

सूर्यवंशका विवेचन

संक्षिप्त रूपसे कालके निरूपण और अनुपपत्तियोंके समाधानके निमित्त कुछ अन्य बातोंके साथ राजवंशोका विवेचन आरम्भ किया जाता है। ऋषियोंके वर्णनका क्रम पुराणोमें प्रायः नहीं मिलता। किसी-किसी पुराणमे ऋषियोंके वंशका कुछ अंश कहा गया है, पर राजवंशोकी तरह ऋषि-वंशानुगत क्रम नहीं मिलता। इन पुराणोमे भारतीय राजाओंके तीन वंश माने गये हैं—सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अग्निवंश। इन तीन दीप्त पदार्थोंके नामपर क्षत्रिय-वंशकी कल्पनाका रहस्य यह है कि सृष्टिमे तेज तीन प्रकारका ही प्रसिद्ध है—सूर्यका प्रखर तेज, चन्द्रका शीतल तेज और अग्निका अल्प स्थानमें व्याप्त दाहक तेज। इनमें भी मुख्य रूपसे सूर्य ही तेजके घन हैं। चन्द्रमाका तेज केवल प्रकाश-रूप है। उसमे उष्णता नहीं है। वह प्रकाश भी सूर्यसे ही प्राप्त है। अग्निमें भी तेज सूर्यके सम्बन्धसे ही प्राप्त होता है। विष्णुपुराणका कहना है कि सूर्य जब अस्ताचलको जाते हैं, तब अपना तेज अग्निमे अर्पित कर जाते हैं। इसीलिये अग्निकी ज्वाला रात्रिमे दूरसे दिखायी देती है* और दिनमे जब सूर्य अग्निसे अपना तेज ले लेते है, तब अग्निका केवल धूम ही दिखायी देता है—दूरसे ज्वाला नहीं दीख पड़ती। यही कारण है कि पुराणोंमे सूर्यवंश ही मुख्य माना गया है। चन्द्रवंश और अग्निवंशको उसीके शाखा-रूपमे प्रतिपादित किया गया है। इनमे भी अग्निवंशका वर्णन पुराणोमे अल्प मात्रामे ही प्राप्त होता है। महाभारत-युद्धके अनन्तर ही चौहान आदि अग्निवंशियोका प्रभाव इतिहासमे दीख पड़ता है। महाभारत-युद्धतक सूर्यवंश और चन्द्रवंशका ही विस्तार मिलता है।

* प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे। विशत्यग्निमतो रात्रौ वह्निर्दूरात्प्रकाशते॥
(विष्णुपु० २।८।२४)

प्राण-प्रक्रियाके साथ मनुष्यचरितका साङ्कर्य

पुराणोंकी यह प्रक्रिया है कि प्राण अथवा प्राणजन्य पिण्डोंके साथ ही मनुष्यका चरित मिला दिया जाता है। पुराणोंमें प्राण या प्राणजनित पिण्डोंका विवरण प्रायः ब्राह्मण-ग्रन्थोंके ही आधारपर है। सूर्यवंशके आरम्भमें भी उसी प्रक्रियाका अवलम्बन किया गया है। उनमें तेजके पिण्डरूप सूर्य और सोमघन-रूप चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है।

सूर्यकी पाँच पत्नियाँ—सूर्यकी पाँच पत्नियोंका वर्णन पुराणोंमें मिलता है—प्रभा, संज्ञा, रात्रि (राज्ञी), वडवा और छाया। इनमें अपनी पुत्री संज्ञाको त्वष्टाने सूर्यको प्रदान किया था। उसके वैवस्वत मनु, यम और यमुना नामकी तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं। संज्ञा अपने पति सूर्यका तेज सहन नहीं कर सकती थी। अतः अपनेको अन्तर्हित कर देनेका विचार करने लगी। उसने अपने ही रूपकी छाया नामक एक स्त्रीको उत्पन्न किया और उसे अपने स्थानपर रखकर स्वयं वडवा बनकर सुमेरु प्रान्तमें चली गयी। जाते समय उसने छायासे कहा—'इस रहस्यको सूर्यसे प्रकट मत करना।' छायाने कहा—'सूर्य जबतक मेरा केश पकड़कर न पूछेंगे, तबतक मैं नहीं कहूँगी।' बहुत कालतक इस रहस्यका भेद नहीं खुल सका और सूर्य छायाको 'संज्ञा' ही समझते रहे। रूप, गुण और व्यवहारमें छाया संज्ञाके समान ही थी, अतः 'सवर्णा' नामसे भी अभिहित हुई। छायाके सावर्णि मनु, शनैश्चर, तापी नदी और विष्टि नामकी चार सन्तानें उत्पन्न हुईं। कुछ समय बीतनेपर छाया अपनी सन्तानोंसे अधिक प्रेम करने लगी और अपनी सपत्नीकी सन्तानोंका तिरस्कार करने लगी। इस विषमताको वैवस्वत मनु सहन नहीं कर सके और सूर्यसे शिकायत की—'माँ छाया, हममें और शनैश्चर आदिमें भेदका व्यवहार करती है।' तत्पश्चात् सूर्यने अपनी पत्नी छायासे इसका कारण पूछा। छायाकी ओरसे जब यथार्थ उत्तर नहीं मिल सका, तो सूर्यने क्रोधमें आकर उसके माथेका बाल पकड़ लिया और डाटते हुए ठीक-ठीक बात बतलानेके लिये उसको बाध्य किया। छायाने अपनी पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार संज्ञावाली बातका रहस्य प्रकट कर दिया और कहा—'आपकी वास्तविक पत्नी संज्ञा अपने स्थानमें मुझे रखकर वह स्वयं वडवारूप धारण करके चली गयी है।' इस रहस्यको जानकर सूर्यने अश्वका रूप धारण किया और संज्ञाको ढूँढ़ने निकल पड़े। ढूँढ़नेके क्रममें संज्ञा सुमेरु-प्रान्तमें मिली और सूर्यने अपने अश्वरूपसे ही उसके साथ समागम किया। इस समागमके फलस्वरूप वडवा-रूपधारी संज्ञासे 'नासत्य' और 'दस्र' नामकी दो सन्तानें उत्पन्न हुईं, जो 'अश्विनी'में उत्पन्न होनेके कारण 'अश्विनीकुमार' नामसे ही देवताओंकी गणनामें प्रसिद्ध हैं। फिर त्वष्टाने सूर्यको अपने सानपर चढ़ाकर इनका बेडौल रूप हटाया और सुन्दर शुद्ध रूप बना दिया। तत्पश्चात् पुनः संज्ञा सूर्यके पास आ गयी।*

इन विषयोंका प्रतीकात्मक आशय यह है कि सूर्य-मण्डलके चारों ओर प्रभा व्याप्त होती है और सर्वदा सूर्यके साथ रहती है। अतः उसे सूर्यकी पत्नी और सहचारिणी कहा गया है। उस प्रभासे ही प्रातःकाल होता है, इसीलिये 'प्रभात' को प्रभाका पुत्र बताया गया है। सूर्यके अस्ताचल चले जानेपर ही रात्रि होती है, जिसका सम्बन्ध सूर्यसे होता है। अतः रात्रिको सूर्य-पत्नियोंमें गिना गया है। सूर्यका जब प्रकाश फैलता है,

*-वायुपुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय २२; मत्स्यपुराण अध्याय ११ और पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ८, श्लोक ३५ से ७५ तक।

तो छप्पर या खिडकी आदिके छोटे-छोटे छेदोमे रेणुकण उडते हुए दीखते हैं। वही 'सुरेणु' नामसे अभिहित हैं और सभी प्राणियोमे संज्ञा, अर्थात् चेष्टा सूर्यसे ही प्राप्त दीख पड़ती है । इसीलिये श्रुतिका कथन है—**'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः'** अर्थात् सूर्यपिण्ड ही सारी सृष्टिमे प्राण-रूपसे उदित है। इसीलिये संज्ञा सूर्यकी सहचारिणी है, जिसे पुराणोमें सूर्यकी पत्नी कहा गया है । त्वष्टा सभी प्राणरूप देवताओके भिन्न-भिन्न स्वरूपोके संगठनका कारण वनता है। 'विशकलित', अर्थात् प्रकीर्ण भावसे विखरे हुए सभी प्राण त्वष्टा-रूप प्राणशक्तिसे ही संगठित होकर अपना रूप ग्रहण करते है। यही कारण है कि त्वष्टा भी प्राणियोकी चेष्टा (सज्ञा) मे कारण वनता है। अतः संज्ञाको त्वष्टाकी पुत्री भी बतलाया गया है । पृथ्वीपर सीधे आनेवाले सूर्यके प्रकाशका ही 'सज्ञा' या प्रभा नाम शास्त्रोमे कहा गया है। जो प्रकाश किसी भित्ति आदिसे रुककर तिरछे आता है, वह 'छाया' या 'सवर्णा' नामसे अभिहित है। स्मरण रहे कि जहाँ हम छाया देखते हैं, वहाँ भी सूर्यका प्रकाश अवश्य है। वहाँ सूर्यकी किरणे भित्ति आदिसे प्रतिहत होकर आती हैं—सीधी नहीं आतीं। अतः इसका नाम 'छाया' या 'सवर्णा' रखा गया। सूर्यका तेज सहन न करनेके कारण 'संज्ञा' अपने स्थानमे 'छाया' या 'सवर्णा'को रखकर चली गयी। संज्ञासे पहले वैवस्वत मनु उत्पन्न हुआ एवं 'सवर्णा' या 'छाया'से 'सावर्णि' मनुका जन्म हुआ—इत्यादि वातोका यही आशय है कि सीधी किरणोसे जो अर्द्धेन्द्र वनता है, वह 'वैवस्वत मनु' और प्रतिहत किरणोसे वननेवाला अर्द्धेन्द्र 'सावर्णि मनु' कहा जाता है। मनुकी उत्पत्तिका वैज्ञानिक विवरण पुराण-परिशीलनके द्वितीय खण्डमें मण्डलोकी उत्पत्तिके प्रसगमे किया जा चुका है।[1] 'संज्ञा' और 'सवर्णा'से 'यमुना' और 'तापी' नामकी दो नदियोकी उत्पत्तिका रहस्य हमने अन्यत्र लिखा है। यमकी उत्पत्ति सूर्यसे हुई है—इसका तात्पर्य यह है कि सूर्यमण्डलसे ही प्राप्त होनेवाली सभी प्राणियोंकी आयु जब किसी शक्तिसे विच्छिन्न होकर टूट जाती है तब प्राणियोकी मृत्यु होती है। सूर्य और उससे उत्पन्न होनेवाली आयुको परस्पर विच्छिन्न करनेवाली शक्तिका नाम ही 'यम' है। वह यम-रूप शक्ति भी कहीं बाहरसे नहीं आती, अपितु सूर्यसे ही उत्पन्न होती है। इसका थोड़ा विवरण हमने 'भृगु' और 'अगिरा'वाले प्रकरणमे दिया है[2]। 'सवर्णा'से उत्पन्न शनैश्चरको भी सूर्यका पुत्र वताया गया है। इसका तात्पर्य है कि 'शनि'नामक तारा सूर्यसे इतनी दूरीपर है कि वहाँ सूर्यकी किरणे सीधी पहुँच ही नहीं पातीं—कुछ वक्र होकर ही वहाँ पहुँचती हैं; इसीलिये उसे 'सवर्णा' या 'छाया' से उत्पन्न वतलाया गया है। शनि इतना वडा है कि अनेक सूर्य उसमे प्रवेश कर सकते है। वह भी इस ब्रह्माण्डकी परिधिपर है, इस कारण उसे सूर्यका पुत्र कहा गया है। जितने भी तत्त्व ब्रह्माण्ड-परिधिपर हैं, वे सभी इस सूर्यसे उत्पन्न माने जाते है। सूर्यका जो प्रकाश सुमेरुकी परिधिमे जाता है, उसे ही प्राणरूप 'अश्व' कहते है । 'संज्ञा' जब वडवा-रूपसे सुमेरु-प्रान्तमे चली गयी, तो सूर्य भी अश्व बनकर सुमेरु-प्रदेशमे पहुँचे और वहाँ अश्व और अश्विनी (वडवा)का संयोग हुआ, जिससे अश्विनीकुमारोकी उत्पत्ति हुई । सुमेरु पृथ्वीकी परिधि है अर्थात् प्रान्त भाग है। वहाँ सूर्य-किरणोंकी अन्यथा ही स्थिति हो जाती है । वहाँ

१—दे० पुराण-परिशीलन पृष्ठ २२३ ।

२. दे०—वैदिक विज्ञान और सस्कृति पृ० ९७ से १०० तक ।

अश्विनी नक्षत्रकी आभाके साथ सूर्यकी किरणोंका अद्भुत समागम होता है, जिससे वहाँका वातावरण अन्य स्थानोंसे भिन्न हो जाता है।

इक्ष्वाकु—पूर्ववर्णित सूर्यवंशी वैवस्वत मनुसे ही इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति पुराणोंमें कही गयी है। प्रत्येक मन्वन्तरमें ब्रह्मासे मनुके उत्पन्न होनेकी कथाका वर्णन आता है और मनुको ही सभी प्राणियोंका स्रष्टा माना जाता है। यही पुराणोंकी प्रक्रिया है। पुराणोंकी प्रक्रियामें सूर्यको ही ब्रह्मारूप माना गया है और उनसे वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति कही गयी है। एक दिशामें जानेवाले प्राणोंके प्रवाहको मनु कहते हैं। इसी कारण सभी प्राणी वृत्ताकार न बनकर लम्बे होते हैं और उनकी आकृतिके एक भागमें ही शक्ति प्रधान रूपसे रहती है, जिसकी चर्चा पहले भी की गयी है।

पुराणोंमें लिखा है कि मनुने अपनी छींकसे इक्ष्वाकुकी उत्पत्ति की। इसका भी तात्पर्य मनुकी प्राणरूपतासे ही है। हमने पूर्व ही 'वराह' के प्रकरणमें लिखा है कि विचार करते हुए ब्रह्माकी नाकसे एक छोटा-सा जन्तु निकला और वही बढ़कर वराहके रूपमें परिणत हो गया। यही प्रक्रिया यहाँ भी समझनी चाहिये। प्राणका व्यापार मुख्यरूपसे नाकसे हुआ करता है और मनु अर्द्धेन्द्र प्राण हैं, अतः उसकी भी सृष्टि नाकसे ही बतलायी गयी है। यही प्राणरूप देवताओंके चरित्रकी संगति मनुष्य-प्राणियोंसे पुराणोंमें मिला दी जाती है। इन सबका तात्पर्य यही है कि सूर्यवंशमें मनुष्य-रूप राजाओंका प्रारम्भ इक्ष्वाकुसे ही होता है। यदि इनके पिता आदिका मनुष्य-रूपमें वर्णन अपेक्षित हो, तो यही कहना होगा कि सूर्य या आदित्य नामका कोई पुरुष-विशेष भी था और उससे मनु नामका कोई पुत्र उत्पन्न हुआ। उसीसे इक्ष्वाकुका जन्म हुआ। इसी इक्ष्वाकुसे उत्पन्न सूर्यवंशके प्रधान राजाओंका वर्णन विस्तारसे पुराणोंमें है और जिन राजाओंके कुछ अद्भुत कर्म हैं या जिनके कार्योंका विज्ञानसे भी सम्बन्ध जोड़ा गया है, उनके चरित्रोंका भी विवरण विशेषरूपसे पुराणोंमें है।*

'पावनी नः पुनातु'

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूं निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित् पावनी नः पुनातु॥

[लोक-कल्याणमें प्रवीण सूर्यवंशीय भगीरथकी भव्य भावनाने गम्भीर प्रयत्नके द्वारा जिस सफलता-सुरसरित्‌की अवतारणा की उनसे पावनताकी प्रार्थनामें ऋषि वाल्मीकिजी गङ्गास्तोत्रमें कहते हैं—]

ब्रह्माण्डको विखण्डितकर आती हुई, महादेवके जटाजूटको सुशोभित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरु पर्वतके समीप विशाल चट्टानोंसे टकराती हुई (सूर्यवंश्य भगीरथके प्रयत्नसे) पृथ्वीपर आकर बहती हुई एवं पापोंकी प्रबल सेनाको नितान्त त्रास देती हुई तथा समुद्रको परिपूर्ण करती हुई पावनी दिव्य नदी (भागीरथी) हम सबको पवित्र करे।

* (—म० म० प० श्रीगिरधरजी शर्मा चतुर्वेदी लिखित—'पुराण-परिशीलन' पृ० २१८ से २२५ तक साभार)

सूर्यकी उत्पत्ति-कथा—पौराणिक दृष्टि

(लेखक—साहित्यमार्तण्ड प्रो० श्रीरंजनसूरिदेवजी, एम्० ए० (त्रय), स्वर्ण पदक प्राप्त, साहित्य-आयुर्वेद-पुराण-पालि-जैनदर्शनाचार्य, व्याकरणतीर्थ, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

सूर्य आगम-निगम-सस्तुत और ज्ञान-विज्ञान-सम्मत देवाधिदेव परम देवता है। उन्हे लोकजीवनके साक्षी और सांसारिक प्राणियोकी ऑखोका प्रकाशक कहा गया है। इसीलिये उनको 'लोकसाक्षी' और 'जगच्चक्षु' कहते है। निरुक्तके अनुसार आकाशमे परिभ्रमण करनेके कारण उन्हे सूर्यकी सज्ञा प्राप्त है। वे ही लोकको कर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा लोकरक्षक होनेसे रविके नामसे उद्घोषित हुए हैं।[1]

प्राचीनतम वैदिक ऋषि-मुनिसे आधुनिकतम वैज्ञानिक-तक सूर्यके भौतिक एवं आध्यात्मिक गुणोसे भलीभॉति परिचित होते रहे हैं। अतएव सूर्यसे भावपूर्ण सम्पर्क स्थापित करनेके लिये उन्होने सूर्योपासनाको विश्वधर्म और संस्कृतिका अनिवार्य अङ्ग बना दिया। फलतः भगवान् सूर्य सम्पूर्ण विश्वके लिये अधिष्ठाताके रूपमे अङ्गीकृत हो गये। रोग-सम्बन्धी जीवाणुओके शमनके लिये सूर्य-किरणोकी उपयोगिता चिकित्साशास्त्रसम्मत है और वनस्पति-शास्त्रमे वनस्पतियोकी अभिवृद्धिके लिये सूर्यकिरणोंकी उपादेयता स्वीकार की गयी है। कृषि-विज्ञानके अनुसार वर्षाके हेतु मेघके निर्माणके लिये सूर्यज्योति अनिवार्य है।[2]

आरोग्य-कामना, निर्धनता-निवारण और संतति-प्राप्ति आदिकी दृष्टिसे तो सूर्यकी पूजा एवं उनके स्तोत्रोके पाठका व्यापक प्रचलन है। कर्मकाण्डमे सूर्यको प्रथम पूज्य देवकी प्रतिष्ठा प्राप्त है। सूर्यको अर्घ्य देनेके बाद ही देवकार्य या पितृकार्यका विधान सर्वसम्मत है। तन्त्रासार या आगमपद्धतिमे तो सूर्यविज्ञानकी अत्यन्त महिमा है।[3] योगासनोमे भी 'सूर्यनमस्कार'को प्राथमिकता दी गयी है। निस्सन्देह सूर्य जागतिक जीवोके प्राणपोषक, सर्वसम्प्रदायसम्मत लोकतान्त्रिक अजातशत्रु देवता है। शास्त्र एवं पुराणोमे ऐसा निर्देश है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करता है, वह हजार जन्मोमे भी दरिद्र नहीं होता।[4] मार्कण्डेयपुराणके अनुसार प्रातःकालीन सूर्य जिस घरमे शय्यापर सोये हुए पुरुषको नहीं देखते, जिस घरमे नित्य अग्नि और जल वर्तमान रहता है और जिस घरमे प्रतिदिन सूर्यको दीपक दिखाया जाता है, वह घर लक्ष्मीपात्र होता है।[5] इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख है कि आरोग्यकामी मनुष्योको सूर्यकी प्रार्थना करनी चाहिये।[6] जिस प्रकार सूर्यकी किरणोसे सम्पूर्ण संसार प्रकाशित

---

१. (क) सरति आकाशे—इति सूर्यः। (ख) सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति इति सूर्यः। (ग) रूयते-इति रविः। (घ) अवतीमास्त्रयान् लोकास्तस्मात् सूर्यः परिभ्रमात्। अचिरात्तु प्रकाशेत अवनात् स रविः स्मृतः॥

२. धूमज्योतिः सलिलमरुता सन्निपातः क्व मेघः। (मेघदूत १। ५)

३. सूर्यविज्ञानके चमत्कारीपक्षके विशद विवरणके लिये द्रष्टव्य—'सूर्यविज्ञान' शीर्षक प्रकरण 'भारतीय संस्कृति और साधना' (खण्ड २, पृष्ठ १६१), म० म० पं० गोपीनाथ कविराज, प्र०विहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-४।

४. आदित्याय नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते॥
(—आदित्यहृदयस्तोत्र)

५. भास्करादृष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च। सूर्यावलोकदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भाजनम्॥
(—मा० पु० ५०। ८१)

६. आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्। ज्ञानं च शङ्करादिच्छेन्मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात्॥
(—भागवते व्यास-वचनम्)

हैं, उसी प्रकार सूर्यकी महिमासे समस्त विश्ववाङ्मय मुखरित है।

यह सर्वज्ञात है कि जो देवता जितने महान् होते हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा उतनी ही अद्भुत होती है। पुराणोंमें वर्णित महामहिम देवता सूर्यकी उत्पत्तिकथा न केवल विचित्र ही है, अपितु इसमें सूर्यके वैज्ञानिक आयामोंका रूपकात्मक विन्यास भी परिलक्षित होता है।

प्रजापति ब्रह्माको जब सृष्टिकी कामना हुई, तो उन्होंने अपने दायें अँगूठेसे दक्षकी और बायेंसे उनकी पत्नीका सृजन किया। ब्रह्मपुत्र मरीचिका ही दूसरा नाम कश्यप था। दक्षकी तेरहवीं कन्याके रूपमें उत्पन्न अदितिके साथ कश्यपका विवाह हुआ। कश्यपके द्वारा स्थापित अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यने जन्म लिया। उन भगवान् सूर्यसे ही समस्त सचराचर जगत्का आविर्भाव हुआ। अदितिने पहले सूर्यकी आराधना की थी, इसीलिये वे अदितिके गर्भसे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए।

ब्रह्माके मुखसे पहले 'ॐ' प्रकट हुआ। उससे पहले भूः, भुवः और स्वः उत्पन्न हुए। यह व्याहृतित्रय ही आदिदेव सूर्यका स्वरूप है। साक्षात् परब्रह्म-स्वरूप 'ॐ' सूर्यका सूक्ष्म रूप है। फिर यथाक्रम उनके 'महः, जनः, तपः और सत्यम्' इन चार स्थूलसे स्थूलतर रूपोंका आविर्भाव हुआ। 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्' ये सूर्यकी सप्तमूर्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। आदि तेज 'ॐ' के स्वभावसे जो तेज उत्पन्न हुआ, वही आदि तेजको सम्यक्रूपसे आवृत करके अवस्थित हुआ। फिर बादमें ब्रह्माके मुखसे निकले हुए ऋक्-मय, यजुर्मय और साममय—अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक तेज परस्पर मिलकर उक्त आद्य तेज 'ॐ' पर अधिष्ठित हो गये। इस प्रकार एकत्र तेजःपुञ्जसे विश्वमें व्याप्त गम्भीर अन्धकार नष्ट हो गया और सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् सुनिर्मल हो उठा। दसों दिशाएँ किरणोंकी प्रखर कान्तिसे चमकने लगीं। इस प्रकार ऋग्यजुः-सामजनित छन्दोमय तेज मण्डलीभूत होकर ॐकारस्वरूप परमतेजके साथ मिल गया और यही अव्ययात्मक तेज विश्वसृष्टिका कारण बना। अदितिसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्यको 'आदित्य' कहा जाता है; किंतु पुराणोंके अनुसार, सृष्टिके आदिमें उत्पन्न होनेके कारण ही सूर्यको 'आदित्य' नामसे सम्बोधित करते हैं।

ऋक्, यजुः और साममय—अर्थात् शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक तेज क्रमशः प्रातः, मध्याह्न और अपराह्णमें ताप देते हैं। पूर्वाह्णके ऋक्तेजकी संज्ञा शान्तिक, मध्याह्नके यजुस्तेजकी पौष्टिक और सायाह्नके सामतेजकी आभिचारिक है। सूर्यका तेज सृष्टिकालमें ऋक्मय ब्रह्मास्वरूप, स्थितिकालमें यजुर्मय विष्णु-स्वरूप तथा संहारकालमें साममय रुद्रस्वरूपमें प्रतिष्ठित रहता है। इसीलिये सूर्यको वेदात्मा, वेदसंस्थित, वेदविद्यामय और परमपुरुष कहा जाता है। सूर्य ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके हेतु एवं सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके आश्रय हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन त्रिदेवोंके प्रतिरूप भी सूर्य ही हैं। इसीलिये देवतागण सदा-सर्वदा इनकी स्तुति करते हैं[1]।

उपरिवर्णित परमतेजोमय सूर्यसे जब संसारका अधः, ऊर्ध्व और मध्यभाग सन्तप्त होने लगे, तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भयत्रस्त हो उठे कि इस आदित्यसे सम्पूर्ण सृष्टि ही भस्म हो जायगी। अतः वे सूर्यकी स्तुति करने लगे। तब उनकी प्रार्थनापर सूर्यने अपने तेजका संवरण कर लिया। फिर तो ब्रह्माने समग्र चराचर जगत्—वन, नदी, पहाड, मनुष्य, पशु, देवता, दानव और उरग आदिकी विराट् सृष्टि की।

१—द्रष्टव्य—विष्णुपुराण द्वितीय अंश, अ० ११ श्लोक ७—१६।

अदितिसे देवता, दितिसे दैत्य तथा दनुसे दानव उत्पन्न हुए। अदिति, दिति और दनुके पुत्र सारे संसारमे फैल गये। देवो और दैत्य-दानवोमे भयंकर युद्ध होने लगा। इस देवासुर-संग्राममे देवता पराजित हो गये। हारे हुए देवोकी दीनता और ग्लानि देखकर अदिति अपनी संतानोकी मङ्गलकामनासे सूर्यकी आराधना करने लगीं, तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर अदितिसे कहा—'मैं तुम्हारे गर्भसे सहस्रांशु होकर जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओका नाश करूँगा।'[१]

भगवान् सूर्यकी किरणोके सहस्रांशुने देवमाता अदितिके गर्भमे प्रवेश करके अवताररूपमे अवस्थित हुआ। अदिति बड़ी सावधानीके साथ पवित्र रहकर, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत करती हुई दिव्य गर्भ धारण किये रही। उनकी कठोर तपश्चर्याको देख पतिदेव कश्यप क्रुद्ध होकर बोले—'नित्य निराहार व्रत करके इस गर्भाण्डको क्यो नष्ट कर रही हो?' अदितिके उत्तरमे आस्था अनुस्वारित हुई—'यह गर्भाण्ड नष्ट नहीं होगा, वरन् शत्रुओके विनाशका कारण बनेगा।' यह कहकर क्रोधाविष्ट अदितिने देव-रक्षक तेजःपुञ्जस्वरूप अपने गर्भाण्डका परित्याग किया। गर्भाण्डके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलने लगा। तब कश्यप सूर्य-सदृश तेजस्वी उस गर्भको देखकर प्राचीन ऋग्वेदोक्त मन्त्रोसे उसकी विनम्र प्रार्थना करने लगे। उस गर्भाण्डसे रक्तकमलके समान कान्तिमान् एक बालक प्रकट हुआ, जिसके तेजसे सभी दिशाएँ समुद्भासित हो उठीं। फिर तो गम्भीर स्वरमे आकाशवाणी हुई—'कश्यप! तुमने अदितिसे कहा था कि क्यो गर्भाण्डको मार रही हो, इसीलिये इस पुत्रका नाम 'मार्तण्ड' (मारिताण्ड) होगा। यह पूर्ण समर्थ होकर सूर्यके अधिकारका कार्य करेगा और यज्ञका भाग हरनेवाले असुरोंका विनाशक होगा।'[२] इस आकाशवाणीको सुनकर परम हर्षित देवता आकाशसे उतरे और दैत्य तेजोबलसे हीन हो गये। पुनः देवताओ और दानवोमे भीषण संग्राम हुआ; किंतु मार्तण्डके तेजसे सभी असुर जलकर भस्म हो गये।

इसके बाद प्रजापति विश्वकर्माने अपनी पुत्री सञ्ज्ञाका उन परम तेजस्वी मार्तण्डके साथ विवाह कर दिया। संज्ञासे भगवान् सूर्यके तीन सतानें—दो पुत्र (वैवस्वत मनु और यम) और एक कन्या (यमुना) उत्पन्न हुई। परतु मार्तण्डके बिम्बका अखिलभुवन सन्तापकारी तेज संज्ञाके लिये असह्य हो गया। तब उसने अपने स्थानपर अपनी छायाको रख दिया और स्वयं पिता विश्वकर्माके घर लौट गयी।

छायासे भी सूर्यने तीन सन्ताने—दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न कीं। वैवस्वत मनुके तुल्य बड़ा पुत्र सावर्णि नामसे प्रसिद्ध हुआ। दूसरा पुत्र शनैश्चर नामक ग्रह हुआ और पुत्रीका नाम 'तपती' रखा गया। 'तपती' को महाराज संवरण विवाहके निमित्त अपने साथ ले गये। छाया अपने औरस बच्चोसे जैसा प्यार करती थी, वैसा प्यार सौतेली सन्तानोको नहीं दे पाती थी। छायाके इस अपराधको वैवस्वत मनुने तो सहन कर लिया, किंतु यमराजसे नहीं सहा गया। वह सौतेली माँपर चरणप्रहार करनेके लिये उद्यत हो गया। फलतः उसे माँके अभिशापका भागी होना पड़ा। हालाँकि अन्तमे वह शापमुक्त होकर, 'धर्मराज' नामसे सम्बोधित होने लगा।

१-सहस्रांशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः। त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृतः॥
(—मार्कण्डेयपुराण १०५। ९)

२-मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने। तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डाख्यो भविष्यति॥
सूर्याधिकारं च विभुर्जगत्येष करिष्यति। हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्॥
(—मा० पु० १०५। १९-२०)

संज्ञाके विरहसे व्याकुल सूर्यने अपना तेज क्षीण करनेके लिये श्वशुर विश्वकर्मासे आग्रह किया। तब विश्वकर्मा उनके मण्डलाकार बिम्बको चाक (सान) पर चढ़ाकर तेज घटाने के लिये उद्यत हुए। फिर शाकद्वीपमें सूर्य चाकपर चढ़कर घूमने लगे। चक्रारूढ़ सूर्यके परिभ्रान्त होनेसे सारे जड-चेतन जगत्में उथल-पुथल मच गयी। पहाड़ फट गये, पर्वतशिखर चूर्ण-विचूर्ण हो गये। आकाश, पाताल और मर्त्य—तीनों लोक एवं भुवन व्याकुल हो उठे। इस प्रकार विश्व-विध्वंसकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। सभी देवी-देवता भयाक्रान्त होकर सूर्यकी स्तुति करने लगे।

विश्वकर्माने सूर्यबिम्बके सोलह भागोंमें पन्द्रह भागोंको रेत डाला। फलतः सूर्यका प्रचण्ड तापकारी शरीर मृदुल मनोरम कान्तिसे कमनीय हो गया। विश्वकर्माने सूर्यतेजके पन्द्रह भागोंसे विष्णुके चक्र, महादेवके त्रिशूल, कुबेरकी शिबिका, यमके दण्ड और कार्तिकेयके शक्ति-पाशकी रचना की एवं अन्यान्य देवोंके प्रभाविशिष्ट विभिन्न अस्त्र-शस्त्र बनाये। अब सूर्यके मञ्जुल रोचिष्मान् शरीरको देखकर संज्ञा परम प्रसन्न हुई।

इस प्रकार भारतीय कला चेतनाके प्रतीक सूर्यकी उत्पत्तिकी कथा थोड़े-बहुत रूपान्तरोंके साथ विभिन्न पुराणोंमें वर्णित है। यह कथा अधिकांशतः मार्कण्डेयपुराणपर आधृत है तथा विशेषकर भविष्यपुराण (ब्राह्मपर्व), वराहपुराण (आदित्योत्पत्ति अध्याय), विष्णुपुराण (द्वितीय अंश), कूर्मपुराण (४०वाँ अध्याय), मत्स्यपुराण (अ० १०१) और ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णखण्ड) आदिमें वर्णित है। इसीलिये प्रायः सभी इन तेजोधाम भगवान् सूर्यकी प्रार्थनामें तत्पर हैं।

यस्य सर्वमयस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभो।
स नः प्रसीदतां भास्वान् जगतां यश्च जीवनम्॥
यस्यैकभास्वरं रूपं प्रभामण्डलदुर्दृशम्।
द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वान् प्रसीदतु॥
ताभ्यां च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम्।
अग्नीषोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु॥
(—मा० पु० १०९। ७२-७४)

जय सूरज

(रचयिता—प० श्रीसूरजचंदजी शाह० 'सत्यप्रेमी' (डाँगीजी))

जय सूरज सबके उजियारे।
आदि नाथ आदित्य प्रभाकर, नारायण प्रत्यक्ष हमारे॥ जय०
तेज स्वरूप, बुद्धिके प्रेरक, सावित्रीके राजदुलारे॥ जय सूरज०॥ १॥
परम प्रचण्ड गुणोंके उद्गम, अग्नि-पिण्ड, ब्रह्माण्ड सहारे॥ जय सूरज०॥ २॥
ज्योति अखण्ड अनन्त तुम्हारी, खण्ड-खण्ड ग्रह-उपग्रह-तारे॥ जय सूरज०॥ ३॥
दिव्य रश्मियोंके दर्शनमें, ऋषि-मुनियोंने तत्त्व विचारे॥ जय सूरज०॥ ४॥
सबके मित्र त्रिकाल विधाता, सभी देव प्रिय प्राण तुम्हारे॥ जय सूरज०॥ ५॥
क्षण-क्षणके अणु-अणुमें व्यापक, तन-मन सबके रोग निवारे॥ जय सूरज०॥ ६॥
रस बरसाते अन्न पकाते सबने पूज्य तुम्हें स्वीकारे॥ जय सूरज०॥ ७॥
निर्गुण सर्वगुणात्मक अद्भुत, सर्वात्मा प्रभु इष्ट हमारे॥ जय सूरज०॥ ८॥
तुम हो निर्मल ज्ञान दान दो, 'सूर्यचंद्र' तन, मन, धन वारे॥ जय सूरज०॥ ९॥

पुराणोंमें सूर्यवंशका विस्तार

(लेखक—डॉ० श्रीभूपसिंहजी राजपूत)

सभी धर्म एवं सभ्य जातियाँ अपने-अपने धर्माचार्यों तथा शासकोंकी वंशावलियाँ सुरक्षित रखती हैं। सेमेटिक धर्मोंकी वंशावलियाँ आदिम आदमी आदमसे शुरू होती हैं। बाइबिलके पूर्वार्ध भागमें आदमसे लेकर जलप्लावन-कालीन नबी नूह तथा बादके अब्राहम, इस्साक और मूसा प्रभृति महापुरुषोंकी वंशावलियाँ संकलित हैं। बाइबिलके उत्तरार्ध भागमे महात्मा ईसाकी वंशावली भी इनमे मिला दी गयी है। मुस्लिम धर्मग्रन्थोंमे ऐसी वंशावलियाँ हैं, जिनके द्वारा हजरत मोहम्मदका सम्बन्ध इस्साकके सौतेले भाई इस्मायलसे जोड़ा जाता है। ईरानके पारसी तथा मुस्लिम नरेशोंकी वंशावलियोंका संकलन महमूद गजनवीने फिरदौसी नामक अपने एक मुस्लिम दरबारी कविसे शाहनामा नामक ग्रन्थमें कराया था। कहनेका अभिप्राय यह कि वंशावलियाँ सभ्य-समाजमें सर्वत्र ही समादृत हैं।

हमारे देशमें इतिहासका प्रमुख स्रोत होनेके कारण वंशावलियोंका संकलन पुराणोंमें बहुत शुद्धता एवं गवेषणात्मक ढंगसे किया गया है। प्राचीन साहित्यमें पुराणोंका सम्बन्ध इतिहाससे इतना घनिष्ठ है कि दोनों सम्मिलितरूपसे इतिहास-पुराण नामसे अनेक स्थानोंपर उल्लिखित हुए हैं। महाभारत भी स्वयंको इतिहासोत्तम कहता है (आदिपर्व २।३—५)। इसी प्रकार वायु-पुराण पुराण होनेपर भी अपनेको पुरातन इतिहास बतलाता है (देखिये वा० पु० १०३।४८—५१)। इसीलिये पुराणके पञ्च लक्षणोंमे वंशावलियोंके वर्णनका भी विधान है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराणोंमे विष्णुपुराणका एक विशिष्ट स्थान है। यह पुराण वैष्णव-दर्शनका मूल आलम्बन है। इसके खण्डोंका नाम अंश है, जिनकी संख्या छः है तथा अध्यायोंकी संख्या १२६ है। इस पुराणका चतुर्थ अंश विशेषतः ऐतिहासिक है। इस अंशमे अनेक क्षत्रिय-वंशोंकी वंशावलियाँ दी गयी हैं, जिनके वंशधर वर्तमानमें राजपूत हैं।

पुराणोंमे वर्णित इतिहासकी सत्यताकी जाँच अन्य प्रामाणिक शिलालेखों तथा मुद्राओंके द्वारा सिद्ध होती है। श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल तथा डॉ० मिराशी-प्रभृति विद्वानोंने बडे परिश्रमसे ऐसे अनेक प्रमाण जुटाये हैं, जिनमें पुराणगत बहुत-से राजचरितोंकी सत्यता प्रभावित हुई है। पश्चिमके प्रसिद्ध विद्वान् पार्जिटर महोदयने इन अनुश्रुतियोंकी प्रामाण्य-सिद्धिमे अनेक प्रमाण तथा युक्तियाँ दी हैं। आपका महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ 'एंशियण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल टेडीशन' पुराणोंके अन्तरङ्ग ऐतिहासिक महत्त्वको विद्वानोंके सामने इस प्रकारसे प्रमाणभूत तथा यथार्थ सिद्ध करता है कि आज पौराणिक अनुश्रुतियाँ पूर्ववत् अविश्वासपूर्ण नहीं मानी जाती हैं।

दो-एक उदाहरण यहाँ देना अप्रासङ्गिक न होगा। पुराणोंमे राजा विन्ध्यशक्तिके चार पुत्रोंका उल्लेख मिलता है, जब कि कुछ समय पहलेके इतिहासकार केवल एक ही गौतमीपुत्रका अस्तित्व मानते थे। किंतु पुनः खुदाईमे प्राप्त हुई मुद्राओंसे इस बातकी पुष्टि हुई कि उसके एकाधिक पुत्र थे।

इसी प्रकार आन्ध्रोंके विषयमें भी पौराणिक अनुश्रुतियोंकी प्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी है। शिशुनाग, नन्द, शुङ्ग, कण्व, मित्र, नाग, आन्ध्र तथा आन्ध्रभृत्य इत्यादि राजवंशोंकी समग्र ऐतिहासिक सामग्रीकी उपलब्धि पुराणोंकी देन है।

पुराणोंकी अनुश्रुतियोंमें सूतोने राजाओंकी वंशावलियोंको वड़ी सावधानीसे सुरक्षित रखा है। जहाँ-कहीं इन वंशावलियोमे एक ही नामके अनेक राजाओका वर्णन आता है, वहाँ सूतोने इन नामोसे होनेवाले भ्रमको दूर करनेके लिये स्पष्ट विभाजन किया है; यथा—नैषध-नल और इक्ष्वाकु-नल, करन्धमका पुत्र मरुत्त तथा अविक्षित्का पुत्र मरुत्त। इसी प्रकारसे ऋक्ष, परीक्षित् तथा जनमेजय दो-दो और भीमसेन तीन हुए हैं। परंतु यह उल्लेख पुराणोमे इतनी सफाईसे किया गया है, जिससे मानना पड़ता है कि यह वर्णन पुराणकारोंके ऐतिहासिक एवं यथार्थ ज्ञानका परिचायक है। सत्य तो यह है कि यदि अवतकके शिलालेखो, ताम्रपत्रों या मुद्राओंके आधारपर उनकी पुष्टि नहीं हुई है तो यह असम्भव नहीं है कि भविष्यकी खोजे उसकी पुष्टि कर सकें।

पौराणिक वंशावलियोंमें सूर्यवंशका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही वह वंश है, जिसमें धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्रोंमें चमकनेवाले अनेक नक्षत्र प्रकट हुए हैं।

धार्मिक क्षेत्रमें ऋषभदेवजी, श्रीरामचन्द्रजी, सिद्धार्थ गौतम बुद्ध, सिद्धार्थ-कुमार वर्धमान महावीर स्वामी, दशमेश-पिता गुरु गोविन्दसिंह, गुरु जम्भेश्वरजी (विश्नोई गुरु), सिद्ध पीर गोगादेवजी, सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा भगीरथ आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार राजनैतिक इतिहासके आकाशमें चमकनेवाले नक्षत्र-सदृश महाराणा प्रतापसिंह, राजरानी मीरावाई, महारानी पद्मिनीदेवी, इन्हींके वंशज छत्रपति शिवाजी महाराज, भारतके अन्तिम प्रतापी सम्राट् पृथ्वीराज चौहान, अग्रवाल-वंशके आदि पुरुष महाराजा अग्रसेनजी, वीर वैरागी लक्ष्मणसिंह, वन्दा बहादुर तथा असी व मसीके सिद्धहस्त कलाकार राजा भोजको कौन भुला सकता है।

*

इसी प्रतापी सूर्यवंशका वर्णन विष्णुपुराणके आधारपर यह अकिंचन अग्रलिखित कुछ पंक्तियोंमें करनेकी कोशिश करता है। इस विषयमें महाकवि कालिदासका रघुवंशमे कथन है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥
(सर्ग १।२)

आदिकवि वाल्मीकि कहते हैं—

सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्॥
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥
(वा० रा० १।५।१, ३)

सर्वप्रथम भगवान् विष्णु जो अनादिदेव हैं, जिनकी नाभिसे ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ तथा जिनके यहाँ सूर्यदेव हुए, आनेवाली सन्तति इनके ही कारण सूर्यवंशी कहलायी।

सूर्यके प्रतापी पुत्र विवस्वान् मनु हुए, जिनके पुत्र मनु हुए। इनकी ही सन्तान होनेसे सभी—नर-नारी मनुष्य मानव कहलाते हैं। मनुजीके प्रतापी पुत्र जो भगवान् विष्णुके अंशावताररूपमें उत्पन्न हुए, इक्ष्वाकु-कुल-संस्थापक ऋषभदेवजीके नामसे लोकविख्यात हैं, उन्हें श्रमण विचारधाराके जैनमतावलम्बी लोग भी प्रथम तीर्थंकर मानते हैं। विकुक्षि इनके ज्येष्ठ पुत्र थे, जिनका शशाद या शशांक नाम भी प्रचलित है। ये अयोध्याके शासक बने तथा इनके कनिष्ठ भ्राता निमि मिथिलाके संस्थापक हुए। जैनलोग इन निमि महाराजको भी अपना एक तीर्थंकर मानते हैं। इन्हींकी बाईसवीं पीढ़ीमे सीताके पिता महाराज सीरध्वज जनक हुए हैं।

विकुक्षिकी पाँचवीं पीढ़ीमें पृथ्वीपति पृथु और आठवीं पीढ़ीमें श्रीवस्ती नगरीके संस्थापक शावस्त हुए तथा सतरहवीं पीढ़ीमे महाराज प्रतापी सम्राट् मान्धाता हुए हैं। इनका एक विरुद राठौर भी है, क्योंकि ये राठ फाड़कर निकले थे। मान्धाताकी बारहवीं पीढ़ीमें

महाराज त्रिशंकु हुए, जो अपने पुरोहित ऋषि विश्वामित्रके तपोबलसे सदेह स्वर्गारोहण कर गये। इन्हीं महाराज त्रिशंकुकी सन्तान सत्यवादी हरिश्चन्द्र हुए, जिनका नाम दानवीरो तथा सत्यवादियोंमें सर्वप्रथम लिया जाता है।

राजा हरिश्चन्द्रकी बारहवीं पीढ़ीमें महाराज दिलीप हुए, जिन्होंने गुरुकी गायकी रक्षाके लिये अपना शरीर सिंहको देनेका प्रस्ताव किया था। दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जो पुण्य सलिला गङ्गाजीको धराधामपर लाये। भागीरथी नदी इनका अमर स्मारक है। इन्हीं भगीरथकी पाँचवीं पीढ़ीमें प्रतापी अम्बरीष हुए और आठवीं पीढ़ीके राजा ऋतुपर्ण, दमयन्तीपति नलके समकालीन थे। सत्रहवीं पीढ़ीमें उत्पन्न राजा खट्वाङ्गने देवासुर-संग्राममें देवपक्षकी ओरसे भाग लेकर अपनी वीरता दिखायी। इन्हीं खट्वाङ्गके पौत्र हुए महाराज रघु, जिनके कारण इनके वंशज रघुवंशी कहलाये। इसी रघुकुलके विषयमें रामचरितमानसमें लिखा गया है—'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥' महाराज रघुके पौत्र राजा दशरथ थे, जिनके यहाँ भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रजीके रूपमे सातवॉ अवतार लिया था।

श्रीराम सूर्यकी छाछठवीं, ऋषभदेवकी बासठवीं, हरिश्चन्द्रकी तैंतीसवीं तथा भगीरथकी इक्कीसवीं पीढ़ीमें हुए थे। भगवान् रामके परमपवित्र जीवन-चरित्रको कौन ऐसा भारतीय होगा जो न जानता हो। आपका उदात्त चरित्र देशों, धर्मों तथा जातियोंकी सीमाओंको लॉघकर भारतके बाहर भी समानरूपसे लोकप्रसिद्ध है। अनेक पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि विश्वके सबसे बडे मुस्लिम राष्ट्र इण्डोनेशिया, विश्वके सर्वाधिक जनसङ्ख्यावाले देश चीन, विश्वके एकमात्र हिन्दूराष्ट्र नेपाल, एशियाके इकलौते ईसाई राष्ट्र फिलीपीन्स तथा विश्वके सभी बौद्धराष्ट्रोंकी अपनी-अपनी सम्पत्ति राम-कथाएँ हैं। सभीमें स्थानीय पुटके कुछ एक स्थलोंको छोडकर मूल कथा वही है, जो वाल्मीकिरामायणकी है। ऐसा लगता है कि इस बातको हजारों वर्ष पूर्व भविष्य-द्रष्टा वाल्मीकिजीने भॉपकर ही यह लिखा था—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

भारतीय राजनीतिमें महाराज रामचन्द्रजीका रामराज्य आज भी एक आदर्श बना हुआ है।

श्रीरामचन्द्रजीके दो पुत्र हुए, जिनमें कनिष्ठ लव थे जो श्रावस्तीके शासक बने। इनकी तिरासीवीं पीढ़ीमें राजा कर्ण हुए हैं, जिनके विषयमें प्रचलित धारणा है कि श्राद्धोंका प्रचलन आपके ही द्वारा किया गया और इसीलिये श्राद्ध कर्णागत (कनागत) भी कहे जाते हैं। महाराज लवकी सत्तावनवीं पीढ़ीमें सिद्धार्थ हुए, जिनके कनिष्ठ पुत्र वर्धमान महावीरके नामसे विख्यात हुए। आपने श्रमण-विचारधाराको समुचितरूपसे अवगुण्ठित कर वर्तमान जैनमतका प्रवर्तन किया है। (इसी वंशसे आगे चलकर जोधपुर, बीकानेर तथा ईडर (गुजरात) और किशनगढ आदि राजघरानोंका निकास हुआ था)।

श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र महाराज कुश अयोध्याके राजा बने। इस वंशमे कुशकी इकतीसवीं पीढीमें राजा बृहद्बल हुए। उन्होने महाभारतके युद्धमे कौरवपक्षकी ओरसे लड़ते हुए अभिमन्युके हाथो वीरगति प्राप्त की। राजा बृहद्बलके बाद उनका पुत्र बृहत्क्षण सिंहासनारूढ हुआ और पाण्डवोसे उसकी मैत्री हुई। राजा बृहद्बलकी बाईसवीं पीढीमें राजा संजय हुए। इनके एक राजकुमार अपने परिजनोंके साथ मुनिवर कपिल गौतमके आश्रममें रहने लगे। वहॉ शाक-वृक्षोंका बड़ा भारी वन था। अतः ये राजकुमार तथा इनका परिवार शाक्यनामसे

प्रसिद्ध हुआ । महाकवि अश्वघोष (ईसापूर्व प्रथम शती) ने 'सौन्दरानन्द'में लिखा है—

शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे ।
तस्मादिक्ष्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृताः॥

इक्ष्वाकुवंशी रघुकुलवाले क्षत्रियोंकी यह शाखा शाक्यके साथ-साथ गौतम भी कहलायी, क्योंकि—

तेषां मुनिरुपाध्यायो गौतमः कपिलोऽभवत् ।
गुरुयोगादतः कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः ॥

(वही)

इन्हीं राजपुत्रोंने कालान्तरमें गुरु कपिलकी स्मृतिमे एक नगर बसाकर उसका नाम कपिलवस्तु रखा और उसे अपनी राजधानी बनायी । शाक्यराजके वंशमे महाराज शुद्धोदन एवं पट्टमहिषी मायादेवीके यहाँ मानवजातिको जन्म, रोग, बुढ़ापा और मृत्युके भयसे मुक्तिका मार्ग दिखानेके लिये राजकुमार सिद्धार्थके रूपमें भगवान् विष्णुका अवतरण हुआ । ये शाक्य-सिंह भगवान् बुद्धके नामसे विख्यात हुए । वैष्णव लोगोंके साथ-साथ दक्षिण एवं पूर्व एशियाके करोड़ों अन्य लोग भी आपको भगवान् मानकर पूजा करते हैं । थोड़े ही समय-तक राजवैभव एवं गृहस्थाश्रमका उपभोग करके आप संन्यासी हो गये ।

आपके पुत्र राजकुमार राहुल हुए । विष्णुपुराणमें यह वंशावली आगे भी चलती है । राहुलके बाद प्रसेनजित, क्षुद्रक, कुण्डल, सुरथ और सुमित्र क्रमशः राजा हुए । इसके बाद इस राजवंशका वर्णन पुराणमें नहीं है । ऐसे तो इस वंशके लाखों लोग अब भी नेपाल एवं भारतमें वर्तमान हैं ।

यहाँ हमने बहुत ही संक्षेपमें प्रतापी सूर्यवंशका वर्णन किया है । यह वर्णन पुराणोंमें पर्याप्त विस्तारसे दिया हुआ है । जिज्ञासु विद्वान् वहाँसे देख सकते हैं । पुराणोंसे आगेके राजवंशोंका वृत्तान्त अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं ।

सुमित्रान्त सूर्यवंश

सूर्यवंशीय राजवंशोंका वृत्तान्त 'बृहद्बल'के बाद आनेवाले सुमित्रतक जाता है । उसमें उनतीस राजाओंकी नामावली आती है । उस नामावलीमें सुमित्र अन्तिम राजा है । वायुपुराणमें भविष्यके राजाओं-का आदिपुरुष प्रथम बृहद्रथको कहा गया है और अन्य पुराणोंमें बृहद्बलको । इसी प्रकार विभिन्न पुराणों-की उक्त नामावलियोंकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रमों और नामोंमें भी थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य हुआ है । महाभारत-संग्राममें कोशलाधिपति बृहद्बल भी सम्मिलित हुआ था और वह अभिमन्युके हाथोंसे मारा गया—यह महाभारत-युद्धमें योग देनेवाले राजाओंकी सूचीसे स्पष्ट है । उसमें भी अनेक नाम ऐसे हैं जो किसी कारण-विशेषसे इतिहासमें प्रसिद्ध हैं, परंतु अधिकतर अप्रसिद्ध ही हैं । विष्णुपुराण-(४ । २२ । १३) में राजाओंके नाम गिनानेके बाद यह श्लोक आया है—

इक्ष्वाकूणामयं वंशस्सुमित्रान्तो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥

अर्थात् इक्ष्वाकुओंके वंशका अन्तिम राजा 'सुमित्र' होगा, जिसके बाद इस वंश-(सूर्यवंश-) की स्थिति कलियुगमें ही समाप्त हो जायगी । इसका तात्पर्य यह है कि इस वंशका अन्तिम प्रतापी राजा सुमित्र होंगे, किंतु आज भी भारतमें सूर्यवंशीय परम्परा सर्वथा टूटी नहीं है—चल रही है ।

भगवान् भुवनभास्कर और उनकी वंश-परम्पराकी ऐतिहासिकता

(लेखक—डॉ० श्रीरजनजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय देवी-देवताओके जन्म, उनके माता-पिता, जाति-वश और कर्म आदिका इतिहास हमारे प्राचीन साहित्यमे उपलब्ध होता हैं । यह सब कुछ आगम और अनुमानके आधारपर ही है । देवताओके अस्तित्वकी सिद्धि कहीं आगमसे और कहीं अनुमानसे प्राप्त होती है । ये इनके अस्तित्वको सिद्ध करते है । कहीं-कहीं प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी इनके अस्तित्वको सिद्ध किया जाता है । यह सत्य भी है कि जो समस्त शरीरधारियोद्वारा देखा जाता है, वह अवश्य ही प्रमाण है । इस प्रकार आगम, अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाणके आधारपर देवी-देवताओका अस्तित्व भारतीय सस्कृतिमे स्वीकार किया जाता है । शाम्ब और भगवान् वासुदेवके वार्तालापसे यह बात सिद्ध होती है । इस परिप्रेक्ष्यमे शाम्बकी जिज्ञासा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । अतः उन्होंने भगवान् वासुदेवसे अपनी उत्कण्ठा प्रकट कर दी—

या चाक्षगोचरा काचिद्विशिष्टेष्टफलप्रदा ।
तामेवादौ ममाचक्ष्व कथयिष्यस्यथापराम् ॥
(भविष्यपुराण प्रथम भाग सप्तमी कल्प अ० ४८ । २०)

अर्थात् जो देवता नेत्रोके गोचर हों और विशिष्ट अभीष्ट प्रदान करनेवाले हो, उन्हींके विषयमे पहले मुझे बताइये । इनके अनन्तर अन्य देवताओके विषयमे वर्णन करनेकी कृपा करेंगे । फिर तो भगवान् वासुदेवने शाम्बको बतलाया—

प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः ।
तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती ॥
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च ।
कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्दिवाकरः ॥
ग्रहनक्षत्रयोगाश्च राशयः करणानि च ।
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः ॥
शक्रः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरास्तथा ॥
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः ।
अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ।
स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थे चानुप्रवर्तते ॥
प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते ।
अस्मिन्नभ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ॥
तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ।
यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ॥
इतिहासपुराणेषु अन्तरात्मेति गीयते ।
बाह्यात्मेति सुषुम्णास्थः स्वप्नस्थो जाग्रतः स्थितः ॥

अर्थात् प्रत्यक्ष देवता सूर्य हैं । ये इस समस्त जगत्के नेत्र हैं । इन्हींसे दिनका सृजन होता है । इनसे भी अधिक निरन्तर रहनेवाला कोई भी देवता नहीं है । इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और अन्त समयमे इन्हींमे लयको प्राप्त होना है । कृतादि लक्षणवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है । जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्य-गण, वसव-गण, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुवः-स्वः आदि लोक, सम्पूर्ण नग, नाग, नदियाँ, समुद्र और समस्त भूतोका समुदाय है—इन सभीके हेतु दिवाकर ही हैं । इन्हींकी इच्छासे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है । इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थमे प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखलायी पड़ता है । इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेपर सब अस्तङ्गत हो जाते हैं । जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पड़ता । तात्पर्य यह है कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है, न हुआ है और न भविष्यमे होगा ही । अतः समस्त वेदोमे 'परमात्मा' नामसे ये पुकारे जाते हैं । इतिहास और पुराणोंमे इन्हें अन्तरात्मा इस नामसे गाया जाता है । ये बाह्य आत्मा, सुषुम्णास्थ, स्वप्नस्थ और जाग्रत् स्थितिवाले होकर रहते है । इस प्रकार ये भगवान् सूर्य आर्यदेवता हैं । ये

अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको उत्प्रेरित करती रहती है—उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ। यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा? परन्तु उनका अवतार तो होता ही है। गीताकी पंक्तियाँ साक्षी हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
(४।७)

तो उनका क्या अवतार हुआ? उन्होंने क्या जन्म ग्रहण किया? 'हाँ और नहीं' के ऊहापोहमे हमें प्राचीन साहित्यकी ओर जाना आवश्यक है। अतः आगे चलें। ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥

अर्थात् मनुष्यके मानसिक, वाचिक अथवा शारीरिक जो भी पाप होते हैं, वे सब भगवान् सूर्यकी कृपासे निःशेष नष्ट हो जाते हैं। भगवान् भुवन-भास्करकी जो आराधना करता है, उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं।

इतिहासप्रसिद्ध देवासुरसग्राममे दैत्य-दानवोंने मिलकर देवताओंको हरा दिया। तबसे देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठा रखनेके लिये सतत प्रयत्नशील थे। देवताओंकी माँ अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थीं। उनका विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दुखी होकर उन्होने सूर्यकी उपासना आरम्भ की। सोचा, भगवान् सूर्य भक्तोंको असीम फल देते है। ब्रह्मपुराणमे कहा गया है—

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि॥
(ब्रह्मपुराण २९।६१)

अर्थात् करुणासिन्धु भगवान् सूर्यदेव तो एक दिनके पूजनसे वह फल देते हैं, जो शास्त्रोक्त दक्षिणासे युक्त सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं मिल सकता। यह जानकर माता अदिति भगवान् सूर्यकी निरन्तर उपासना करने लगीं—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोप (किरणोंके स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके स्वरूपका सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रोंका राज्य एवं यज्ञभाग दैत्यों एवं दानवोंने छीन लिया है। आप अपने अंशसे मेरे गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करें।' तब भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करूँगा।' इसके पश्चात् भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधनामें तल्लीन हो यम-नियमसे रहने लगीं। कश्यपजी इस समाचारको पाकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको भारतीय साहित्यमें मार्तण्डके नामसे पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको भाईके रूपमे प्राप्तकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराणमें चर्चा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचिसे महर्षि कश्यपका जन्म हुआ। ये ही महर्षि कश्यप सूर्यके पिता है।

सूर्यके युवासम्पन्न होनेपर उनका विवाह-संस्कार हुआ। उन्होंने क्रमसे तीन विवाह किये। संज्ञा, राज्ञी और प्रभा—उनकी ये तीन धर्मपत्नियाँ है। राज्ञी रैवतकी पुत्री हैं। इनसे रेवन नामका पुत्र हुआ। प्रभासे सूर्यको प्रभातनामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। इसमे संज्ञाकी कहानी बड़ी रोचक है। उसे हम पाठकोंके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

शिल्पाचार्य विश्वकर्माकी पुत्रीका नाम संज्ञा था। संज्ञाका परिणय भगवान् सूर्यसे हुआ। संज्ञाके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ। उन्हींसे सूर्यको जुड़वी संतान—यम और यमुना भी प्राप्त हुई। कहते हैं देवशिल्पी विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा सूर्यके तेजको सहन करनेमें अपनेको असमर्थ पा रही थी। अतः वे एक दिन मनके समान गतिवाली घोड़ीका रूप धारण कर उत्तरकुरु (हरियाणा)में चली गयीं। जाते समय उसने सूर्यके घरमे अपनी प्रतिच्छाया प्रतिष्ठापित कर दी। सूर्यको यह रहस्य ज्ञात नहीं हो पाया। अतः प्रतिच्छायासे भी सूर्यको पुत्र सावर्णिमनु और शनि तथा कन्या तपती और विष्टि नामक संताने प्राप्त हुईं। इन बालकोपर सूर्यका अगाध प्रेम था। किसीको भी यह रहस्य मालूम नहीं हुआ कि इन बच्चोकी माँ एक नहीं, दो हैं। पर विधाताके विधानको तो देखें; एक दिन छायाके विषमतापूर्ण व्यवहारका भण्डाफोड़ हो गया। संज्ञाके पुत्रोंने शिकायत की। अतः भगवान् भास्कर क्रोधसे तमतमा उठे। उन्होने कहा—'भामिनि! अपने पुत्रोंके प्रति तुम्हारा यह व्यवहार उचित नहीं है।' पर इससे क्या होता। प्रतिच्छाया सज्ञा पुत्रोके साथ अपने व्यवहारमे कोई परिवर्तन नहीं कर पायी। तब विवश होकर सज्ञापुत्र यमराजने बात स्पष्ट कर दी, कहा—'तात! यह हम लोगोकी माता नहीं है। इसका व्यवहार हमलोगोके साथ विमाताके समान है, क्योंकि यह तपती और शनिके प्रति विशेष प्यार करती है।' फिर तो गृहकलह छिड गया। पति-पत्नी दोनोने क्रुद्ध होकर यमको शाप दे दिया। अपने शापवाक्योसे जो किया, वह जगत्प्रसिद्ध यमराज और शनिके द्वारा हमे प्राप्त है। तब माता छायाने यमको शाप दे दिया—'तुम शीघ्र ही प्रेतोके राजा होओगे।' भगवान् सूर्य इस शापसे दुखित हुए। अतः उन्होने अपने तेजोबलसे इसका सुधार किया, जिसके बलपर आज यम यमराजके रूपमें पाप-पुण्यका निर्णय करते हैं और स्वर्गमे उनकी प्रतिष्ठा है। साथ ही सूर्यका छायाके प्रति क्रोध भी शान्त नहीं हुआ। प्रतिशोधकी भावनासे छायाके पुत्र शनिको उन्होने शाप दिया—'पुत्र! माताके दोषसे तुम्हारी दृष्टिमे क्रूरता भरी रहेगी।' यही कारण है कि शनिके कोपभाजन होनेसे प्रायः हमारा अहित होता रहता है।

अब भगवान् सूर्य ध्यानावस्थित होकर संज्ञाका पता लगानेका प्रयत्न करने लगे। ध्यानावस्थामें उन्होने देखा—'संज्ञा उत्तरकुरुदेश (हरियाणा)में घोड़ीका रूप बनाकर विचरण कर रही है।' अतः तत्काल उन्होंने अश्वका रूप धारण कर संज्ञाका साहचर्य प्राप्त किया। कहते हैं—संज्ञाके गर्भमे आत्म-विजयी प्राण और अपान पहलेसे ही विद्यमान थे। फिर तो समय पाकर वे सूर्यदेवके तेजसे मूर्तिमान् हो उठे। इस प्रकार घोड़ी-रूपधारी विश्वकर्माकी पुत्री सज्ञासे दो पुरुष-रत्नकी उत्पत्ति हुई। यही दो पुरुष-रत्न अश्विनीकुमारके नामसे विख्यात हैं। बात यहीं समाप्त नहीं होती है। सज्ञा सूर्यकी पराशक्ति है, पर सूर्यके तेजको सहन करनेमे वह अपनेको बराबर असमर्थ पाती रही। तदनन्तर पिता विश्वकर्माने सूर्य-देवके तेजका हरण किया, तब कहीं सूर्य और संज्ञा—ये दोनों एक साथ रहने लगे। इस प्रकार सब मिलाकर भगवान् सूर्यके दस पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं।

अब सूर्य-पुत्रोके कुटुम्बका वृत्तान्त आगे प्रस्तुत है—

वैवस्वत मनुके दस पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करूष और पृषध्र। ये सभी पिताके समान तेजस्वी और बलशाली थे। मनुकी इला नामकी एक कन्या थी। इलाका विवाह बुधसे हुआ। इन्हींसे पुरूरवाका जन्म हुआ। इसके बाद इलाने अपनेको पुरुष-रूपमें परिणत कर लिया। पुरुषरूपमे इलाका नाम सुद्युम्न हुआ। सुद्युम्नको तीन बलशाली पुत्र हुए—उत्कल, जय और विनताश्व।

नाभागसे परम वैष्णव अम्बरीषका जन्म हुआ। धृष्टसे धार्ष्टक वंशका विस्तार हुआ है। शर्यातिको सुकन्या और आनर्त नामकी सतानें प्राप्त हुईं।

इन दस पुत्रोंमें इक्ष्वाकुकी वंशपरम्परा ही पृथ्वीपर विद्यमान है। शेष नौ पुत्रोंकी कहानी एक या दो पीढ़ियोंके बाद समाप्त हो गयी। इक्ष्वाकु वंशको यहाँ संक्षिप्तमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि थे। ये कुछ समयतक देवताओंके राज्यपर आधिपत्य जमाये रहे। इनके पुत्रका नाम ककुत्स्थ था। ककुत्स्थसे पृथु, पृथुसे युवनाश्व और युवनाश्वसे श्रावन्तक हुए। इसीने श्रावन्तक नामकी नगरी बसायी। श्रावन्तकसे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्व हुए। इनका दूसरा नाम धुन्धुमार भी है; क्योंकि इन्होंने धुन्धुमार नामके दैत्यका वध किया था। इनके तीन पुत्र हुए—दृढाश्व, दण्ड और कपिल। दृढाश्वसे हर्यश्व और प्रमोदकका जन्म हुआ। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे सेहताश्वकी उत्पत्ति हुई। सेहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृशाश्व और रणाश्व। रणाश्वके पुत्रका नाम युवनाश्व था। युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता थे। मान्धाताके दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए—पुरुकुत्स और मुचुकुन्द।

पुरुकुत्ससे त्रसदस्युका जन्म हुआ। इनका दूसरा नाम सम्भूत था। इनके पुत्रका नाम सुधन्वा था। सुधन्वासे त्रिधन्वा और त्रिधन्वासे तरुण हुए। तरुणसे सत्यव्रत और सत्यव्रतसे दानवीर महापराक्रमशाली हरिश्चन्द्रका जन्म हुआ। हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे वृक, वृकसे बाहु और बाहुसे राजा सगरकी उत्पत्ति हुई। राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं। एकका नाम प्रभा और दूसरीका नाम भानुमती था। प्रभाको और्व मुनिकी कृपासे साठ हजार पुत्र हुए और भानुमतीसे राजा सगरके द्वारा असमंजस नामका एक पुत्र हुआ। असमंजसके पुत्र अंशुमान और अंशुमानके राजा दिलीप हुए। राजा दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए। ये राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंके उद्धारके लिये गङ्गाको धरतीपर लाये। कहते हैं, राजा सगरके साठ हजार पुत्र महर्षि कपिलके शापवश पृथ्वी खोदते समय भस्म हो गये थे।

भगीरथसे नाभाग, नाभागसे अम्बरीष और अम्बरीषसे सिंधुद्वीपका जन्म हुआ। सिंधुद्वीपके श्रुतायु, श्रुतायुके ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णके कल्माषपाद, कल्माषपादके सर्वकर्मा और सर्वकर्माके अनरण्य हुए। अनरण्यके निघ्न, निघ्नके दिलीप, दिलीपके रघु, रघुसे अज और अजसे चक्रवर्ती सम्राट् दशरथका जन्म हुआ।

दशरथकी तीन पत्नियाँ थीं। कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा। इनके चार पुत्र हुए—राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। रामने रावणका वध किया। वे अयोध्याके सर्वश्रेष्ठ राजा हुए। महर्षि वाल्मीकि तथा हिंदीके प्रसिद्ध कवि तुलसीदासजीने इन्हींके चरितका वर्णन अपनी-अपनी रामायणमें किया है। श्रीरामका विवाह जनकनन्दिनी जानकीसे हुआ। इनसे रामको दो पुत्र लव और कुश प्राप्त हुए। भरतको लक्ष और पुष्कल, लक्ष्मणको अंगद और चन्द्रकेतु, शत्रुघ्नको सुबाहु और शत्रुघाती प्राप्त हुए।

इसके बाद की वंश-परम्परा निम्न प्रकार है—कुशसे अतिथिका जन्म हुआ। अतिथिसे निषध और निषधसे नलकी उत्पत्ति हुई (ये दमयन्तीके पति नहीं हैं)। नलसे नभ, नभसे पुण्डरीक, पुण्डरीकसे सुधन्वा, सुधन्वासे देवनीक, देवनीकसे अहिनाश्व और अहिनाश्वसे सहस्राश्व हुए। सहस्राश्वके पुत्रका नाम चन्द्रलोक था। चन्द्रलोकसे नारपीड, नारपीडसे चन्द्रगिरि और चन्द्रगिरिसे भानुरथ उत्पन्न हुए। भानुरथके पुत्रका नाम श्रुतायु था। इस प्रकार इस वंशका इतिहास बहुत ही बड़ा है। इसमें आज कुछ परिवार समाप्त हो गये हैं।

(प्रस्तुत वंशावली अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मपुराण, श्रीमद्भागवत, वाल्मीकिरामायण, कल्याणके 'हनुमान-अङ्क,' 'अग्नि-गर्गसंहिता और नरसिंहपुराण-अङ्क'के आधारपर तैयार की गयी है।)

सूर्यसे सृष्टिका वैदिक विज्ञान

(लेखक—वेदान्वेषक ऋषि श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव')

स्वयम्भू प्रजापति इस विश्वप्रवृत्तिके कारण ही 'विश्वकर्मा' कहलाये; जिनकी यह पञ्चपर्वा विश्वविद्या 'त्रिधामविद्या' कहलायी है। स्वयम्भू और परमेष्ठी—इन दो पर्वोंकी समष्टि १—'परमधाम' है; २—सूर्य 'मध्यम धाम' और चन्द्रमा एवं भूमिपिण्ड—इन दोनोका समुच्चय ३—'अवधाम' है। तीन धामोमे एवं पॉच पर्वोंसे समन्वित यह विश्वविद्या विश्वकर्मा स्वयम्भू—प्रजापतिकी 'महिमा-विद्या' भी मानी गयी है। वेदमे कहा है—

या ते धामानि परमाणि यावमा
या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥
(ऋक्० १० । ८१ । ५)

अपने सर्वस्व आहुतिवाली सुप्रसिद्ध 'सर्वहुतयज्ञ' की स्वरूपसिद्धिके लिये यही अपने आकर्षणसे स्वयं **'यजस्व तन्वं वृधानः'** रूपसे सम्पूर्ण प्राणोका आवाहन करता है।

तीनो धामोमे मध्यम धाम 'रविधाम' मानवधर्मके बहुत अनुकूल होता है। वेदमहार्णव स्व० श्रीमधुसूदनजी ओझाने 'धर्मपरीक्षा-पञ्जिका'मे सिद्ध किया है कि—

'नियत्यानुगृहीतो मध्यमो भावो धर्मो न काष्ठानुगतो भावः।'

'विधियुक्त मध्यभाव धर्म है, अतिभाव नहीं।'

'सूर्य तो स्थावर-जङ्गम जगत्के आत्मा हैं' इन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (ऋक्० १ । ११५ । १, यजु० ७ । ४२)

रविका सम्बन्ध वैश्वानरसे है। वैश्वानर दस कलावाला होनेके कारण विराट्पुरुष है। सम्पूर्ण 'पुरुषसूक्त' केवल इसी वैश्वानरवाले विराट्पुरुषका निरूपण करता है। इसी वैश्वानरकी त्रैलोक्य-व्यापकता बतलाते हुए वेदमहर्षि पुरुषसूक्तमे कहते हैं—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
(यजु० २१ । १)

इस पुरुषके हजारो मस्तक हैं, हजारो ऑखें हैं, हजारो पैरहैं। यह भूमिका सब ओरसे स्पर्श (व्याप्त) कर (अध्यात्ममे) दशाङ्गुलका अतिक्रमण कर (दस अङ्गुलवाले प्रादेशमात्र) अर्थात् अंगूठेसे तर्जनीतककी लम्बाईके स्थानमे स्थित हो गया है।'

सूर्य स्थावर-जङ्गम सृष्टिकी आत्मा है— यदि ज्ञानप्रधान सूर्यका तेजोमय वीर्य बहुत थोड़ी मात्रामे पृथ्वीके वैश्वानर अग्निमे आहुत होता है, तो अर्थ-प्रधान 'अचेतनसृष्टि' होती है। इस सृष्टिमे दोनों ही भाग हैं, परंतु विशेषता पृथ्वीके भागकी ही है। इसकी प्रबलताके कारण अल्पमात्रामे आनेवाला सूर्यका तेज दब जाता है। इस सृष्टिमें जैसे सूर्यका ज्ञानभाग दबा हुआ है, उसी प्रकार अन्तरिक्षके वायुका भाग भी दबा हुआ ही है। इसीलिये अचेतनमे अपने स्वरूपकी वृद्धि नहीं है। पहले स्वरूपसे आगे बढना 'व्यापार' है; व्यापार क्रिया है, क्रिया अन्तरिक्षकी वायुका धर्म है; उसका इसमें अभाव है, अतः यह जीववर्ग जैसाका तैसा ही रहता है। कॉच, अभ्रक (भोडल), मोती, हीरा, नीलम, माणिक्य (लाल), पुखराज, लोहा, तॉबा, चॉदी, सोना, हरताल, गन्धक और शिववीर्य

(पारा) आदि सम्पूर्ण जड पदार्थ अर्थप्रधान हैं। वैश्वानर—अग्निमय है।

जगत् अग्नीषोमात्मक है। जैसे अङ्गिराप्रधान आग्नेयप्राण प्राण कहा जाता है, वैसे ही भृगुप्रधान सौम्यप्राण 'रयि' कहलाता है। प्राण अग्नि है और रयि सोम है। इसी अग्नीषोमात्मक प्राण-रयिसे विश्वका निर्माण हुआ है। इनमे सोमरूप रयि ही आगे-आगे होनेवाले संकोचसे मूर्च्छित होती हुई मूर्ति (पिण्ड) वनती है। मूर्च्छित सोम ही 'मूर्ति' है। मूर्ति अर्थ-प्रधाना है, द्रव्यप्रधाना है। इसका सम्बन्ध वैश्वानरको गर्भमे रखनेवाले सोमसे है। सोमका सम्बन्ध विष्णुसे है, अतएव इस अर्थमयी सृष्टिको अर्थात् 'धातुसृष्टि'को हम 'विष्णु' देवतासे सम्बद्ध मानते हैं। यही अचेतनसृष्टि, असंज्ञ, एकात्मक आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—इन तीनोमेंसे इनमें केवल वाक्वाला 'वैश्वानरात्मा' ही प्रधानरूपसे रहता है।

दूसरी अर्द्धचेतनसृष्टि है। सूर्यका तेज कुछ अधिक आया और अन्तरिक्षकी वायुका भाग भी आया, दोनोके आगमनसे सृष्टिमे कुछ अधिक विकास हुआ। इन दोनोंसे अर्द्धचेतनसृष्टि हुई। स्तम्भ (पुष्कर-पर्ण-पानीका पता शैवाल आदि) कुश, कास, वेलड़ियाँ, दूर्वादि छोटे तृण और केला, सुपारी, नारियल, छुहारा, ताड़ आदि वडे तृणवर्ग एव वृक्षादि सब अर्द्धचेतनसृष्टिके अन्तर्भूत है। इसमे अचेतनसृष्टिकी अपेक्षा यद्यपि सूर्यके ज्ञानकी अधिक सत्ता वतलायी है, परंतु इसमें आनेवाला सूर्यका भाग अन्तरिक्षकी वायुसे दब जाता है, इसलिये इसमें भी ज्ञानकी मात्राका पूर्ण विकास होने नहीं पाता। इनमे क्रियामय वायु है, इसलिये ये बढते है एवं पृथ्वीका आकर्षण भी पूर्ण मात्रामें है, अतएव ये पृथ्वीसे पृथक् नहीं हो सकते। वहीं बँधे रहकर ऊपर बढते हैं। इस प्रकार इनमे वैश्वानर और तैजस—इन दो भूतात्माओंकी सत्ता सिद्ध हो जाती है। सुप्तावस्थामें हममें जो ज्ञान है, वही ज्ञान इनमें है। इनमें केवल चमड़ीका विकास हैं। इस एक इन्द्रियसे ही ये अनुभव करते हैं।

तीसरी चेतनसृष्टि है। कृमि, कीट, पशु, पक्षी, मनुष्य, राक्षस, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व आदिका इसीमें अन्तर्भाव है। इसमें सूर्यके सर्वज्ञभागका विकास है। इस सृष्टिमें वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ—ये तीन भाग हैं। दूसरे शब्दोंमें—इनमें ज्ञान, क्रिया और अर्थ—ये तीनो विकसित हैं। ज्ञानमय प्रज्ञाभागके आते ही चैतन्य जाग्रत् हो जाता है। इसके जाग्रत् होते ही इन्द्रियोंका विकास हो जाता है और सुप्तावस्था दूर हो जाती है। यही जीव-सृष्टि ससंज्ञ एवं तीन आत्मावाली आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। पहली सृष्टि धातुसृष्टि है, दूसरी सृष्टि मूलसृष्टि है एवं तीसरी सृष्टि जीवसृष्टि है।

वृक्षादि मूलसृष्टिके पैर नहीं हैं, वे स्वयं 'पादरूप' हैं। पाद ही उनके पालक हैं। उन्हींके द्वारा पृथ्वीके रसका पानकर वे अपनी स्वरूपकी सत्ता रखते हुए 'पादप' नामसे प्रसिद्ध हो रहे हैं। इस मूलसृष्टिने भूपिण्डको नहीं छोड़ा है, अतएव इसे 'अपादसृष्टि' कहते हैं। यहाँसे ऊपर (कृमिसे प्रारम्भकर मनुष्य-तक) की सृष्टि भूतलके मूलसे अलग हो जाती है। इस सृष्टिके पैरवाली होनेके कारण हम इसे 'सपाद'-सृष्टि कहते हैं। मनुष्योके ऊपर आठ प्रकारकी देवसृष्टि है। वह भूतलसे पृथक् है, इसलिये इसे हम 'अपाद' कह सकते हैं। प्रारम्भमें अपाद है, अन्तमे अपाद है और मध्यमे सपाद है। वृक्षादि सृष्टिका मूलभूमिमे बँधा रहता है, अतएव यह सृष्टि 'मूलसृष्टि' कहलाती है। परंतु मध्यकी सृष्टि बन्धनसे अलग है, इसलिये यह अमूलसृष्टि है। इसी अभिप्रायसे ब्राह्मण-श्रुति कहती है—

'अयं पुरुषः—अमूल उभयतः परिच्छिन्नोऽन्तरिक्ष-मनुचरति। (शतपथ ब्रा० २ । १ । १३)

तीसरी सृष्टिकी प्रथम अवस्था कृमि है। यहाँसे उस सर्वज्ञकी चेतनाके विकासका प्रारम्भ है। सूर्यका तेज अधिक होनेके कारण अन्तःसंज्ञ जीव भूपिण्डके बन्धनसे अलग हो गये है। आकर्षणसे अलग होकर हिलने लगे और चलने लगे है। पृथ्वीका बल पहलेकी अपेक्षा कम हो गया है। यह ससंज्ञोमे पहली 'कृमिसृष्टि' है।

सर्वज्ञ इन्द्र (सूर्य) प्रज्ञामय (ज्ञानमय) है। अव्ययपुरुषका विकास इसी भूमिमे होता है। सूर्य विज्ञानघन है। ये ही मघवा—इन्द्र हैं। इसी स्थानपर उस ज्ञानमय पुरुषका विकास है, अतएव ये सूर्यके इन्द्र 'प्रज्ञात्मक' कहलाते हैं। इसी अभिप्रायसे इनके लिये—**'प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा'** कहा जाता है। इसी विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर केनोपनिषद्मे कहा गया है कि 'अग्निके सामने यक्षने तृण रक्खा, परंतु अग्नि उसे न जला सकी, वायु उड़ा नहीं सकी, किंतु जब इन्द्र आये तो तृण और यक्ष दोनों अन्तर्लीन हो गये।' इसका तात्पर्य यही है कि वह तृण ज्ञानमय था, यक्ष स्वय ज्ञानब्रह्म था। अर्थप्रधान अग्नि और क्रियाप्रधान वायु—इन दोनोंकी अपेक्षा यज्ञ-ज्ञान विजातीय था, इसलिये इन दोनोंका उसमे लय नहीं हुआ, परतु इन्द्र ज्ञानमय थे, अतएव सजातीयताके कारण यह ज्ञानकला उस महाज्ञानके समुद्रमे विलीन हो गयी।

साराश यही है कि सूर्यका प्राज्ञ इन्द्र अव्ययके ज्ञानसे युक्त है। इन इन्द्रको आधार बनाकर ही अव्यय आत्मा जीवरूपमे परिणत होता है, अतएव सूर्यको ही स्थावर-जङ्गमकी आत्मा बतलाया जाता है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।
(ऋ० १ । ११५ । १; य० ७ । ४२)

यह इन्द्रमय अव्यय आत्मा एक प्रकारका सूर्य है। इसका प्रतिविम्ब केवल अप् (जल), वायु और सोम (विरल जल) पर ही पडता है।

वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः' (गोपथ पू० २।९) —के अनुसार यही परमेष्ठी है। ईश्वरके शरीरका यही परमेष्ठी 'महान्' है। इसीपर उस चेतनमय सर्वज्ञ-का प्रतिविम्ब पड़ता है, महान् ही उसे अपने गर्भमें धारण करता है, अतएव इसके लिये—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
(गीता १४ । ३)

—इत्यादि कहा जाता है। महान् उसकी योनि है। वह योनि अप्, वायु और सोमके भेदसे तीन प्रकारकी है, अतएव तीन स्थानोंपर ही चेतनाका प्रतिविम्ब पड़ता है। यही कारण है कि चैतन्यसृष्टि सम्पूर्ण विश्वमे आप्या, वायव्या एवं सौम्याके भेदसे तीन ही प्रकारकी होती है। जलमें रहनेवाले मत्स्य (मछली) मगर, केँकड़ा, तिमिङ्ग आदि सब जल-जन्तु आप्यजीव हैं। पानी ही इनकी आत्मा है। बिना पानीके इनका चैतन्य कभी स्थित नहीं रह सकता। कृमि, कीट, पशु, पक्षी और मनुष्य—ये पाँचो जीव वायव्य हैं। वायु ही इनकी आत्मा है। चन्द्रमामे रहनेवाले आठ प्रकारके देवता सौम्य हैं। ये ही जीव हमारे इस प्रकरणके मुख्य पात्र है।

हमारा मस्तक सौरतेजके आधिक्यसे सीधा खड़ा हुआ है। इस मनुष्य-सृष्टिके मध्यमें एक 'अर्द्धमनुष्य'की सृष्टि और होती है; उसी सृष्टिसे सृष्ट 'वानर' नामसे प्रसिद्ध है। इसमे दोनोके धर्म है। मनुष्य हाथोसे खाता है और श्रोणिभागसे बैठता है। पशु मुखसे खाता है और पैरोसे चलता है। वानरमे दोनो धर्म हैं। आप अपने हाथमें चने रखकर बंदरके सामने खड़े हो जाइये, बंदर मनुष्योंकी भाँति हाथसे उठाकर चने खा जायगा

एवं मनुष्यकी भाँति श्रोणिभागसे बैठ जायगा; वह पशुओंकी भाँति चारों हाथ-पैरोंसे चलता भी है। किंतु मनुष्योंके पूर्वज बंदर नहीं थे। 'डारविन थ्योरी'के अनुयायियोंको हम बतला देना चाहते हैं कि मनुष्यका (इस रूपमें) विकास मानना उनकी कोरी कल्पना ही है। मानव-सृष्टिमें नालच्छेद है, जब कि वानर-सृष्टि नालच्छेदसे अलग है। यह दोनोंमें महान् मौलिक भेद है। 'वानर' (—वानर—विकल्पसे नर—) आधा मनुष्य और आधा पशु कहा जाता है। वानरके बाद मनुष्य-सृष्टिका विकास है। सूर्य और पृथ्वीके दो रसोंके तारतम्यसे होनेवाली इस भूतसृष्टिका वास्तविक रहस्य सूर्यमें सृष्टि-का विज्ञान सिद्ध करता है। वस्तुतः सूर्यसे ही सृष्टि हुई है, इसीलिये कहा गया है कि सभी प्राणी सूर्यसे ही उत्पन्न हैं—

'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः'

भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

वैदिक साक्ष्य—मधुच्छन्दाके पुत्र महर्षि अघमर्षणने अपने ऋग्वेदीय एक सूक्तमें यह बताया है कि विधाताने सूर्यको पूर्वकल्पकी सृष्टिके अनुसार (इस कल्पके आरम्भमें) बनाया—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
(—१०।१९०।३)

मित्रावरुण-नन्दन महर्षि वसिष्ठने अपने श्रीविष्णु-सूक्तमें भगवान् विष्णु (और उनके सखा इन्द्र) को अग्नि, उषा और सूर्यका उत्पादक कहा है—

'उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं
जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्'
(—ऋग्वेद ७।९९।४)

पुरुष-सूक्तमें कहा गया है कि सूर्यका उद्गम विराट् पुरुष भगवान्के नेत्रसे हुआ था—

'चक्षोः सूर्यो अजायत'
(—ऋग्वेद १०।९०।१३)

गीताका मत—भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था कि अग्नि, चन्द्र और सूर्यमें जो प्रकाश है, उसे मेरा ही तेज समझो—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥
(—गीता १५।१२)

इसपर भाष्य करते हुए आचार्य शङ्करने लिखा है कि **'मामकं—मदीयं मम विष्णोस्तज्ज्योतिः'** और आचार्य रामानुजने लिखा है कि—**'एतेषामादित्यादीनां यत्तेजस्तन्मदीयं तेजः, तैस्तैराराधितेन मया तेभ्यो दत्तमिति विद्धि।'**

सूर्याधार ध्रुव—सूर्यका आधार ध्रुव हैं और ध्रुव तारावलीविग्रह शिशुमारके पुच्छभागमें अवस्थित हैं। शिशुमारके आधार स्वयं भगवान् नारायण हैं। नारायण उस (शिशुमार) के हृदयमें विराजमान हैं—

(अ) नारायणोऽयनं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हृदि।
(आ) आधारः शिशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः।
(इ) आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तम।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः॥
(—विष्णुपुराण २।९।४, ६, २३)

श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित वचन भी इस प्रसङ्गमें मननीय हैं—

भगणा ग्रहादयः ध्रुवमेवावलम्ब्य परिचङ्क्रमन्ति।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति। यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितः। (—५।२३।३, ४, ५)

ग्रहोंद्वारा प्रदक्षिणीकृत—इस जगत्में तेजस्तत्त्व सर्वत्र अनुस्यूत है। कहीं उसकी उपलब्धि न्यून है तो कहीं अधिक। सूर्य-मण्डल तो साक्षात् तेजोमय ही है। चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रह और हमारी यह पृथ्वी भी सूर्यकी परिक्रमामे सतत निरत है।

भास्करालोकन—उदय होते हुए और अस्त होते हुए अरुणवर्ण सूर्यमण्डलका दर्शन सुगमतासे किया जा सकता है। इन दोनो संध्याओंसे अतिरिक्त दशामें सूर्यकी ओर देखते रहनेसे नेत्रोंमे विकारकी आशङ्का रहती है। इसीलिये भास्करालोकन वर्जित है—

भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्।
(याज्ञवल्क्यस्मृति १। २। ३३)

आदित्यमण्डलके अधिष्ठाता चेतन देवता—आदित्य-मण्डलके अभिमानी देवता चेतन हैं। वे ही सूर्य हैं, जिन्हे भक्तजन अपनी प्रणामाञ्जलियाँ समर्पित किया करते हैं। भौतिक विज्ञानके विद्वान्की दृष्टिमें आदित्य-मण्डल केवल तेजःपुञ्ज है, किंतु वेदानुयायी सनातनधर्मकी मान्यताके अनुसार आदित्यके अभिमानी देवता सूर्य चेतन हैं—

ज्योतिरादिविषया अपि आदित्यादयो देवतावचनाः शब्दाश्चेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेतं तं तं देवतात्मानं समर्पयन्ति।

अस्ति ह्यैश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्।
(ब्रह्मसूत्र १। ३। ३३ पर शाङ्करभाष्य)

विग्रहवान् भगवान् सूर्य—श्रीसूर्यदेव कश्यप और अदितिके पुत्र हैं। 'अदिति' माताके पुत्र होनेके कारण ये 'आदित्य' कहलाते हैं। इनके विग्रहका वर्ण बन्धूक (दुपहरिया) पुष्पके समान है। ये द्विभुज हैं और पद्म धारण किये रहते हैं। इनकी पुरीका नाम विवस्वती है—

विवस्वांस्तु सुरे सूर्ये तन्नगर्यां विवस्वती।
(अमरकोषकी व्याख्या सुधा टीकामे मेदिनीसे उद्धृत)

इनकी संज्ञा-नामिका पत्नीके पुत्र हैं धर्मराज यम और पुत्री हैं यमुना देवी तथा छाया-नामिका पत्नीके पुत्र हैं शनिदेव। माठर, पिङ्गल और दण्ड इनके सेवक हैं, तथा गरुड़जीके भाई अरुण इनके सारथि हैं। इनके रथको सात घोडे चलाते हैं जिसमें केवल एक पहिया है।

याज्ञवल्क्य-स्मृति (१। १२। २९७-३०२) के अनुसार सूर्यदेवकी प्रतिमा ताँबेकी बनानी चाहिये और इनकी आराधनाका प्रधान मन्त्र **'आ कृष्णेन रजसा वर्तमानः'**—इत्यादि है। इनकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले हवनमे आककी समिधाका विधान है।

माणिक्य धारण करनेसे ये शुभ फल प्रदान करते हैं—**'माणिक्यं तरणेः'** (—जातकाभरण, स्मृतिकौस्तुभ)।

श्रीसूर्यदेवसे ही महर्षि याज्ञवल्क्यने बृहदारण्यक उपनिषद् (ज्ञान) प्राप्त किया था—

ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ४। ११०)

तथा पवननन्दन आञ्जनेय श्रीरामदूत हनुमान्जीने भी इनसे शिक्षा प्राप्त की थी।

सूर्यका उपस्थान—वैदिक मान्यता जनताके लिये विहित सध्योपासनाका एक अपरिहार्य अङ्ग है—सूर्योपस्थान, जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्यने दैनिक कर्मोंमें गिनाया है—

स्नानमब्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः।
सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति १। २। २२)

यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखाका अनुसरण करनेवाले सन्ध्योपासक प्रतिदिन **'उद्वयं तमसस्परि स्वः'** (२०। २१), **उदु त्यं जातवेदसम्०** (७। ४१), **चित्रं देवानामुदगादनीकम्०** (७। ४२) तथा **तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्०** (३६। २४)—इन चार प्रतीकवाले मन्त्रोंसे सूर्यका उपस्थान किया करते हैं। चतुर्थ मन्त्रका उच्चारण करते समय उपस्थाताके हृदयमें कैसी भव्य भावना भरी रहती

है; वह कहता है—'हमलोग पूर्व दिशामे उदित होते हुए प्रकाशमान सूर्यदेवका प्रतिदिन सौ वर्षोतक ही नहीं, और भी अधिक वर्षोतक दर्शन करते रहे ।'

सूर्योपासनासे भोग और मोक्षका लाभ—वैदिक संहिताओमें ऐसे अनेक सूक्त हैं जिनके देवता सूर्य हैं, अर्थात् जिनमें सूर्यदेवके अनुभावकी चर्चा की गयी है। एक मन्त्रमें इस प्रकार प्रार्थना है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥
(ऋग्वेद १।५०।११)

शौनकने अपने बृहद्-देवता नामक ग्रन्थमें इस मन्त्रके विषयमें लिखा है कि—

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः ।
रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥

अर्थात् **'उद्यन्नद्य०'**—इत्यादि सूर्यदेवताका मन्त्र पापोंको नष्ट करनेवाला है। (इसके द्वारा सूर्यदेवकी प्रार्थना की जाय तो) यह रोगोंका नाश और विषोंका शमन कर देता है तथा सांसारिक भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है। सूर्योपासनाके स्वास्थ्यप्रद प्रभावके कारण भागवतमें यह वचन उपलब्ध होता है कि **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत् ।'**

सत्राजित्पर कृपा—प्राचीन कालमे इस धराधामके पुण्यात्मा महानुभावोंपर देवताओंका परम अनुग्रहशील व्यवहार होता था। उपस्थापित सूर्यदेवने श्रीकृष्णचन्द्रके श्वशुर सत्राजित्को द्वारकामें सागर-तीरपर स्वय आकर स्यमन्तकमणि प्रदान की थी—

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः ।
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा ॥
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम् ।
ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः ॥
(हरिवंश० १।३८।१६।२२)

आदित्याभिमानी देवता और परमेश्वर—छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थानपर यह कहा गया है कि आदित्य (मण्डल)में एक हिरण्मय पुरुषका दर्शन होता है। उनके दोनों नेत्र कमलके समान (सुन्दर) हैं—

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते- तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी (१।६।६)

इस आशयको स्पष्ट करनेके लिये श्रीवेदव्यासजीने दो सूत्र लिखे हैं—

'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' और 'भेदव्यपदेशाच्चान्यः'
(ब्रह्मसूत्र १।१।२०-२१)

इनपर शाङ्करभाष्यके ये वचन मननीय हैं—

'य एषोऽन्तरादित्ये—इति च श्रूयमाणः पुरुषः परमेश्वर एव, न संसारी ।……अस्ति चादित्यादि- शरीराभिमानिभ्यो जीवेभ्योऽन्य ईश्वरोऽन्तर्यामी । य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद यस्या- दित्यः शरीरं य आदित्यमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत इति श्रुत्यन्तरे भेदव्यपदेशात् । तत्र हि आदित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद इति वेदितुरादित्याद्विज्ञानात्मनोऽन्योऽन्तर्यामी स्पष्टं निर्दिश्यते— ।'

इसका भाव यह है कि प्राकृत पाञ्चभौतिक तेजोमय आदित्यमण्डलमें जो उसके अभिमानी विज्ञानात्मा अर्थात् चेतन देवता हैं, वे भी जिस परमेश्वरको नहीं जानते वे ही **'य एषोऽन्तरादित्ये०'**—आदि श्रुतिके द्वारा प्रतिपाद्य पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर हैं।

सूर्य-तन्त्र—सूर्यदेवके उपासकोंने अपने उपास्यको सर्वोच्च माना है। इनका सम्प्रदाय 'सौर-सम्प्रदाय' कहलाता है। इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका निरूपण पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्यके ग्रन्थोंमें उपलब्ध है। उदाहरणार्थ भविष्यपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रचुर चर्चा द्रष्टव्य है। इसी प्रकार श्रीसूर्यदेवकी उपासना-पद्धतिका निर्देशक एक 'सूर्य-तन्त्र' नामक ग्रन्थ है। इसमें सर्वप्रथम उपास्य देवके ध्यानकी यह स्रग्धरा है—

भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा
रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः
स्वर्णवर्णः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो
भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः
पातु मां विश्वचक्षुः॥

अर्थात् 'विश्वके द्रष्टा, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले, हरि और हरसे आराधित वे श्रीसूर्यदेवता मेरी रक्षा करें—जिनका मुकुट चमचमाते हुए रत्नोंसे जड़ा हुआ है, जो अपने अधरकी अरुणिम कान्तिसे सवलित हैं, जिनके केश आकर्षक हैं, जो प्रकाशरूप है, जिनका तेज दिव्य है, जो अपने हाथोंमें कमल लिये हुए हैं, जो अपनी प्रभाके कारण स्वर्ण वर्णवाले हैं, जो समस्त गगन-मण्डलको प्रकाशित करनेवाले हैं, जो चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहोंके साथ रहते हैं और जो (प्रतिदिन प्रातःकालमें) उदयाचलपर किरणावलीका प्रसार किया करते हैं।'

इस ध्यानके पश्चात् एक यन्त्रका और तदनन्तर सूर्य-मन्त्रका उद्धार किया गया है। फिर पूजा-विधि बताकर साम्बपुराणसे एक सौर-स्तोत्र, ब्रह्मयामलसे त्रैलोक्य-मङ्गल नामका कवच, श्रीवाल्मीकीय रामायणसे आदित्य-हृदय, शुक्लयजुर्वेदसे 'विभ्राट्' पदसे प्रारम्भ होनेवाला सूक्त, महाभारतीय वनपर्वसे सूर्याष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र और भविष्यपुराणके सप्तमीकल्पसे सूर्यसहस्रनामस्तोत्र दिये गये है। यह ग्रन्थ सौर-सम्प्रदायनिष्ठ भक्तजनोंके लिये परम उपादेय है।

गुणाश्रित नामावली—संस्कृत-साहित्यमें सूर्यदेवके अनेक पर्याय प्राप्त होते हैं। ये नाम देवताके विभिन्न गुणोंको प्रदर्शित करते हैं। अमरसिंहने अपने नाम लिङ्गानुशासन नामक कोष—(१।३।२८—३१)में ऐसे सैंतीस नाम दिये हैं, जो अकारादिक्रमसे लिखे जानेपर ये हैं—अरुण, अर्क, अर्यमा, अहर्पति, अहस्कर, आदित्य, उष्णरश्मि, ग्रहपति, चित्रभानु, तपन, तरणि, त्विषांपति, दिवाकर, द्युमणि, द्वादशात्मा, प्रभाकर, पूषा, भानु, भास्कर, भास्वान्, मार्तण्ड, मित्र, मिहिर, रवि, ब्रध्न, विकर्तन, विभाकर, विभावसु, विरोचन, विवस्वान्, सप्ताश्व, सूर, सूर्य, सविता, सहस्रांशु, हंस और हरिदश्व।

सूर्यदेव प्रणम्य हैं, हम यहाँ उन्हें अपनी प्रणामाञ्जलि समर्पित करते हैं—

अरुण किरणके विकिरणसे जो जगतीके सब जीवोंको
जीवनका मधुर पीयूष पिलाकर जीवित प्रतिदिन रखते हैं।
हय-सप्तकयुत एक चक्रके स्यन्दनपर आसीन हुए
वालखिल्य मुनिगण-संस्तुत हो नभके मध्य विचरते हैं॥
भक्तजनोंके संस्तव सुनकर दया-आर्द्र-मन होकर जो
व्याधि-आधिको, रोग-शोकको संतत हरते रहते हैं।
हम उन सूर्यदेवके अतिशय मङ्गलमय पद-पद्मोंमें
नमन-कमलकी अञ्जलियोंको नित्य समर्पित करते हैं॥

सूर्यसहस्रनामकी फलश्रुति

धन्यं यशस्यमायुष्यं दुःखदुःस्वप्ननाशनम्।
बन्धमोक्षकरं चैव भानोर्नामानुकीर्तनात्॥

(भवि० पु० सप्तमीकल्प १२१)

जो भगवान् भानुके नामों-(सूर्यसहस्रनामस्तोत्र-) का प्रतिदिन अनुकीर्तन (पाठ) करते है वे लोकमे यशस्वी होकर धन्य हो जाते है और चिरायु प्राप्त करते हैं। सूर्यदेवके नामोका पाठ करनेसे दुःख और दुःस्वप्न दूर होते हैं तथा बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

सूर्य-तत्त्व (सूर्योपासना)

(लेखक—पं० श्रीआद्याचरणजी झा, व्याकरण-साहित्याचार्य)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', 'सूर्यो वै ब्रह्म', 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्'—इत्यादि सहस्रशः वैदिक तथा केवल पौराणिक एवं धर्मशास्त्रीय वचनोंके आधारपर ही नहीं, किंतु सूर्यशक्तिके स्पष्ट वैज्ञानिक विवेचनके आलोकमें भी एक वाक्यमें यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि 'सूर्य-तत्त्व'से ही इस समस्त चराचर जगतकी सत्ता तथा उपयोगिता है।

कहना न होगा कि ये ही सूर्य अखण्ड प्रकाश-पुञ्जसे ब्रह्माण्डको आलोकित करते हैं; सूर्य-किरणें ही सभी पदार्थोंमें रस तथा शक्ति प्रदान करती हैं। अग्नि-तत्त्व, वायुतत्त्व, जलतत्त्व तथा सूर्य-तत्त्वोंकी ही अशेष, अमित एवं अखण्डशक्ति ऊर्जा प्रदान करनेवाली है। इन तत्त्वोंमें सूर्य-तत्त्व ही सर्वप्रधान है। आकाशमण्डलके सशक्त रहनेपर ही अग्नि, वायु एवं जल अपनी-अपनी शक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं; क्योंकि इन तत्त्वोंका आश्रय-स्थान मुख्यतः आकाशमण्डल ही है। आकाश-मण्डलमें सूर्य-किरणें ही समुद्रों तथा नदियोंसे जल ग्रहणकर अग्नि-वायु-जल-तत्त्वोंके मिश्रणसे मेघोंका निर्माण करती हैं तथा वायुतत्त्वके सहयोगसे यथास्थान स्वेच्छानुसार वर्षा करती है।

सौरमण्डल ही एक वह महान् केन्द्र है जो अपने चुम्बकीय आकर्षणसे देवलोक, पितृलोक आदिका समन्वित कार्य सँभाल रहा है। सभी देव-कर्म सूर्याराधनसे ही प्रारम्भ होते हैं एवं उसीसे सम्पन्न होते हैं। कोई भी आराधना दिनमें 'सूर्यादि पञ्चदेवता-पूजनसे प्रारम्भ होती है। रात्रिमें वे ही 'गणपत्यादि पञ्चदेवता'के नामसे पूजित होते हैं—यह मिथिलाकी परम्परा है। कहीं-कहीं दिनमें भी 'गणपत्यादि पञ्चदेवता' कहकर पूजन प्रारम्भ होता है।

यहाँ जरा सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो स्पष्ट होगा कि ये 'गणपति' भी यथार्थतः 'सूर्य' ही हैं। गणानाम्—नक्षत्राणां पतिः गणपतिः—'सूर्यः'। सूर्यका प्रकाश जिस भूभागपर रहता है वहाँ ये नक्षत्र अदृश्य रहते हैं। सूर्यके प्रकाशके दूसरे भूभागपर चले जानेसे यहाँ चन्द्रमासहित सभी नक्षत्र दृश्य हो जाते हैं।

सूर्यका उदय-अस्त होना श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ८ के अनुसार उनके दर्शन और अदर्शनमात्र हैं, अन्य नहीं—

उदयास्तमनं नास्ति दर्शनादर्शनं रवेः।

इस तरह अहर्निश शब्दका व्यवहार भी सूर्यके दर्शनादर्शन ही हैं। फलतः सूर्य अखण्ड और अविनश्वर हैं। वे सदा एक समान हैं।

यही रहस्य है कि शिवके आत्मज होनेपर भी 'गणपति'का पूजन प्रारम्भमें होता है। वे 'गणपति' यही 'सूर्य-तत्त्व' हैं जो सभी स्थावर-जङ्गममें संचालक हैं। कहा जाता है कि 'शनि'के देखनेसे 'गणपति'के मस्तक गिर गये और महादेवने उसके स्थानपर हाथीका सूँड लगा दिया, जिससे वे 'गजानन' हो गये। इसके रहस्यको यहाँ देखें। 'शुण्ड'को 'कर' कहते हैं, (करम्—शुण्डमस्यास्तीति—करी—हस्ती, हाथी,) कर शुण्ड-का पर्यायवाची शब्द है। क्या यह कर (शुण्ड) सूर्यकी ही तेजःपुञ्ज किरणावली नहीं है, जिसे परम शिवने इस सूर्यके रक्तपिण्डसदृश आरक्त-पृथुल-गणेशके मस्तक—शिरके रूपमें संयुक्त कर दिया ? क्या इस तरह सभी आराधनाओंमें गणेशाराधनका, जो सूर्याराधन ही है गूढ रहस्य प्रकट नहीं होता ? क्या इस विवेचनसे गणपतिके जन्म, शिरःपतन, शिरःसंयोजनादि पौराणिक विस्तृत आख्यानकी गम्भीरताका पता नहीं चलता ?

सभी आराधनाओंके अन्तमें सूर्य-नमस्कारकी प्रक्रिया सर्वत्र प्रचलित है। ये सूर्यनमस्कार और सूर्यार्घ्य भी उन्हीं सूर्यतत्त्वोंकी व्यापकता प्रकट करते हैं। वस्तुतः सभी शुभाशुभ कर्मोंको सूर्यशक्तिमें समर्पित कर देना ही उपासनाका चरम लक्ष्य है।

सामान्य जलमें सभी तीर्थोंका आवाहन अंकुश-मुद्रा-द्वारा सूर्यशक्तिसे ही होता है। यथा—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-किरणें ही सभी तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं। वही उनका उत्स है जो शतशः भूमण्डलपर व्याप्त है।

सूर्यको विष्णु या विष्णुतेज भी कहा जाता है। सूर्यके प्रणाम-मन्त्रमें यह स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा—

'नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे…।' यहाँ **वेवेष्टि—व्याप्नोतीति विष्णुः**—(विष्लृ-व्याप्तौ धातुसे निष्पादित है—विष्णु शब्द) व्याप्त अर्थात्—सूर्यः। अखिल ब्रह्माण्डमें जो अखण्डरूपसे व्याप्त हो वे ही 'विष्णु' हैं और वे प्रत्यक्ष विष्णु सूर्य ही हैं। वे ही विष्णुतेज हैं। पूजान्तमें **'अस्मिन् कर्मणि यद्वैगुण्यं जातं तद्दोषप्रशमनाय विष्णोः स्मरणमहं करिष्ये'**—इस वाक्यसे स्मरणपूर्वक सूर्यार्घ्य दिया जाता है। विष्णु और सूर्य एक हैं।

सर्वाधिक महिमा-गरिमा-शालिनी गायत्रीकी उपासना ही भारतीय जन-जीवनकी वह अखण्ड अशेष तेजस्विनी शक्ति है जिसकी उपासनासे मानव देवत्वको प्राप्त करता है एवं असाध्य साधन करता है। अतीत और अनागत कार्य उसके लिये हस्तामलकवत् हो जाते हैं। यही आराधना नवीन सृष्टिनिर्माणक्षम बनाती है। यह गायत्री ही वसिष्ठको महर्षि तथा भगवान् बनानेका कारण है। इसीने विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि बना दिया।

ऐसे महामहिमशाली गायत्री-मन्त्रका सीधा सम्बन्ध सूर्य-शक्तिसे ही है। **'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'**—इसमें उसी सविता (सूर्य)के अमोघ-शक्ति-संचयनकी प्रक्रिया है, जो सर्वसिद्धिदायिका है।

अब 'पितृलोक'की बातपर थोड़ा ध्यान दें। **'पा-रक्षणे'** धातुसे **'पाति—रक्षति यः सः पिता, पान्तीति पितरः—तेषां पितॄणां लोकः पितृलोकः'**—सिद्ध होता है। यह पितृलोक उन्हीं भगवान् सूर्यका लोक है, जो सभीके रक्षक हैं तथा वहाँ सभी पितरोंका समीकरण है। अतएव तर्पण और पिण्ड-दानादि सभी पितृकर्म सूर्य-शक्तिके द्वारा ही यथास्थान पहुँचते हैं। इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रात्रिमें—सम्बद्ध भूभागके सूर्यादर्शनकालमें कोई पितृकर्म नहीं होते हैं। 'कुतुप' काल—मध्याह्नकालमें ही पिण्डदान आदिका विधान है। श्राद्धमें सपिण्डीकरण भी सूर्यास्तसे बहुत पहले ही करनेका नियम है। दैनिक तर्पण भी रात्रिमें या प्रातः अरुणोदयसे पहले नहीं किये जाते हैं। तात्पर्य यह कि सभी पितृ-कर्मोंका सम्बन्ध सीधे सूर्यतत्त्व—सूर्यशक्तिसे ही है।

कहा जाता है कि आधुनिक वैज्ञानिकोंका हाइड्रोजन-आक्सिजन भी उस वैदिक 'मित्रावरुण'का ही पर्यायवाची शब्द है, जो मित्रावरुण सूर्यशक्ति ही है। मित्रः और सूर्यः—ये पर्यायवाची शब्द हैं तथा वरुण जलतत्त्व-के अधिष्ठाता सूर्यतत्त्वाधीन हैं, जो ऊपरकी पंक्तियोंमें स्पष्ट किया गया है।

आधुनिक वैज्ञानिकोंमें तो आज 'सौर-ऊर्जा' ग्रहण करनेकी होड़-सी लगी हुई है। इसपर तो बहुत अधिक कार्य और प्रयोग भी हो चुके हैं और हो रहे हैं।

क्या शस्योत्पादन—सशक्ति अन्नोत्पादन तथा सुन्दर फल-पुष्पोंके विकासमें सर्वाधिक महत्त्व सूर्यशक्तिका नहीं है?

उपर्युक्त अति संक्षिप्त विवेचनके परिप्रेक्ष्यमे यह कहना पर्याप्त होगा कि 'आध्यात्मिक', 'आधिदैविक' तथा 'आधिभौतिक' शक्तियोकी प्राप्ति एव उनके विकासके लिये सूर्य-शक्ति ही सर्वोपरि है। इस शक्तिके बलपर ही अन्य शक्तियाँ कार्यरत हो सकती हैं।

इस सूर्यशक्तिका संचय आस्तिक, नास्तिक, हिंदू, मुसल्मान, सिख और ईसाई प्रभृति सभीके लिये समान उपयोगी है। संचयनका सरल मार्ग सूर्यकी नैष्ठिक उपासना और अर्चना ही है।

सूर्यतत्त्व-विवेचन

(लेखक—पं० श्रीकिशोरचन्द्रजी मिश्र, एम्० एस्-सी०, बी० एल्० (स्वर्णपदक), बी० एड्० (स्वर्णपदक)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च'

सस्कृत-भापामें 'तत्' एक सर्वनाम पद है, जो किसी भी संज्ञावाचक पदके बदले प्रयुक्त हो सकता है—चाहे वह सज्ञा पुंल्लिग हो या स्त्रीलिंग अथवा नपुंसक। व्याकरणके नियमानुसार व्यक्तिवाचक, पदार्थ-वाचक, जातिवाचक अथवा समूहवाचक सज्ञामे 'त्व' जोडकर भाववाचक सज्ञा बनायी जाती है; जैसे—देवत्व, मनुष्यत्व, असुरत्व-प्रभृति। उसी प्रकार तत् और त्वके सयोगसे तत्त्व शब्द बनता है। तत्त्वका सरल अर्थ है उसका अपनापन, उसकी विशिष्टता अथवा उसका सारभूत निजत्व, जो अन्यत्र अलभ्य हो। अतएव 'सूर्य-तत्त्व'का अभिप्राय यह है कि श्रीसूर्यकी अपनी विशिष्टता, उनका निजत्व, उनका सार-से-सार तत्त्व एवं उनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म अस्तित्व।

किसीकी कुछ विशेपताएँ एवं महिमाएँ इन्द्रियगोचर होती हैं, कुछ इन्द्रियातीत। कुछ ऐसी अनेक विशेपताएँ हैं, जो हमारी इन्द्रियोकी पकडमे नहीं आतीं; क्योकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं—सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वे न किसी सर्जनके शल्यास्त्रके द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं और न विज्ञानकी किसी विश्लेपणात्मक पद्धतिद्वारा ही किसी प्रयोगशाला या परीक्षणशालामे विश्लेपित—परीक्षित हो सकती हैं। उन्हे केवल इन्द्रियातीत अवस्थामे जाकर ज्ञात किया जा सकता है। वैसी इन्द्रियातीत अवस्थामे पहुँच-कर गहन-से-गहन तत्त्वोको स्पष्ट देखनेका श्रेय हमारे किन्हीं पूर्वजोको है, जिन्हे हम ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) कहते हैं। वे ऐसी शक्तियोसे सम्पन्न होते थे कि उनके लिये कुछ भी अज्ञात नहीं रहता अर्थात् उनके लिये सब कुछ हस्तामलकवत् हो जाते थे। वे त्रिकालदर्शी थे। विज्ञान अभीतक इन्द्रियातीत शक्ति प्राप्त नहीं कर सका है। इसलिये अभीतक ऋषि 'ऋषि' हैं और वैज्ञानिक 'वैज्ञानिक'। परंतु ये दोनो हैं सत्यके पुजारी एवं सत्यके अन्वेपक। इसलिये ऋषिद्वारा उद्घाटित अनेक सत्यका समर्थन आज वैज्ञानिक मुक्तकण्ठसे कर रहे हैं और अनेकके अनुसन्धानमे लगे है। ऋषि-संतान होनेके साथ-ही-साथ विज्ञानका एक विद्यार्थी होनेके कारण दोनों दृष्टियोसे सूर्यतत्त्वपर हम प्रकाश डालनेका प्रयास करेगे।

ऋषियोने जो कुछ अनुभव किया है, देखा है और कहा है वे सब वेदमें उपलब्ध हैं। प्राचीनतावश वेदकी भापा एवं कथन-शैली विलक्षण है। कहीं-कहीं प्रतीकात्मक है, परोक्षप्रिय है और कहीं संकेतात्मक है। शब्दार्थ कुछ है और कहनेका असली अभिप्राय कुछ और ही है। किसी वस्तुकी सूक्ष्मतामे जाते-जाते हम ऐसे बिन्दुपर पहुँचते हैं, जिसे अनिर्वाच्य कह सकते हैं; क्योकि वाक् भूतात्मक है, इन्द्रिय-नि:सृत है और इन्द्रियग्राह्य भी। किंतु अनिर्वाच्यावस्था अतीन्द्रिय है एव इन्द्रियके परेकी अवस्था है। अतएव किसीके वास्तविक तत्त्वको, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनिर्वाच्यावस्था या सारको व्यक्त करनेमे भापाकी त्रुटि, भाषाकी अक्षमता हो ही जाती है। इसलिये ऋपिकी बातो एव वेदको समझना

*

अतीव ज्ञानसाध्य तथा श्रमसाध्य है। वह कठोर तपस्या चाहता है। अस्तु।

वैज्ञानिक-दृष्टिसे सूर्य **'अतीव तेजसः कूटः', 'दुर्निरीक्ष्यः', 'ज्योतिषां पतिः'** हैं, वे विशाल प्रकाशपुञ्ज है। उनका व्यास लगभग १३९२००० कीलोमीटर और वजन प्रायः २×१०^{३०} कीलोग्राम है और आभ्यन्तरिक तापमान १३००००००° सेंटीग्रेट है, जिसे कल्पनासे परे कहा जा सकता है। सूर्यके प्रकाशसे सौर-परिवारमे जहाँ जो है, सब प्रकाशित होते रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड* इनसे दीप्त होता रहता है। सूर्यमे प्रकाशकी मुख्यता है। इसलिये चन्द्र (अर्थात् उपग्रह) दामिनी-द्युति (अन्तरिक्षका प्रकाश) और अग्नि सूर्यकी ज्योति ही हैं। इन सबकी रोशनी, उष्मा या ऊर्जाका मूल स्रोत सूर्य ही हैं।

भारतीय वाङ्मयमे प्रकाश विभिन्न अर्थोमे प्रयुक्त होता है। इसका सर्वाधिक प्रचलित अर्थ है ज्ञान, चैतन्य, सज्ञा और बोधलक्षणा बुद्धि। इसी प्रकार अन्धकार अज्ञानता, अविद्या, मूर्च्छा अथवा संज्ञाहीनताका पर्याय है। इस कारणसे भी देवीमाहात्म्यमे उत्तर-चरित्रके विनियोगमे महासरस्वती देवता, सूर्य तत्त्व और रुद्र ऋषि है। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्या, बुद्धि और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीके साथ देदीप्यमान भगवान् सूर्यका अचल सम्बन्ध है। ये दोनो उज्ज्वल है तथा दोनो जाड्य-नाशमे पूर्ण समर्थ है। **'प्राधानिकं रहस्यम्'**मे स्पष्ट कहा गया है कि सरस्वती शिव (रुद्र) की सहोदरा है। एक **'कुन्देन्दुतुसारधवला'** है तो दूसरे **'कर्पूरगौर'** है।

देवीमाहात्म्यके उत्तरचरित्रके पञ्चम अध्यायमे देवताओने देवीकी (सरस्वतीके रूपमे) सर्वव्यापकता-रूपमे स्तुति की है। उसमे उन्होने कहा है—**'या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते'** और **'या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता'** अर्थात् जो देवी सब भूतो-(प्राणियो और पदार्थो-)मे चेतना और बुद्धिरूपसे विराज रही है। मूलतः महासरस्वतीको सूर्यतत्त्व मान लेनेपर सूर्य भी चेतना और बुद्धिरूप सिद्ध हो जाते हैं।

सूर्य (सोम और वैश्वानरका रूप धारण करके) पृथ्वीमे व्याप्त होकर तृण-लता, जीव-जन्तु—प्राणी-प्राणीमे व्याप्त हो इन सबकी उत्पत्ति और पालन-पोषणका कार्य करते रहते है।

इस अर्थमे सूर्य सविता (जन्मदाता) और पूषा (पोषण करनेवाले) भी हैं। वह्निपुराण स्पष्ट शब्दोमे कहता है कि—**'सृष्ट्यर्थं भगवान् विष्णुः सविता स तु कीर्तितः'** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार विष्णु ही सविता कहे जाते हैं। सविता ही विष्णु हैं। विष्णु और सविता—ये दोनो पर्यायवाचक शब्द हैं। सूर्यके कारण ही ओषधियो एव वनस्पतियोकी कृषि पृथ्वी-पर सम्भव है। इनके प्रभावसे ही पृथ्वी शस्यश्यामला बनी रहती तथा वसुन्धरा कहलाती है। धनका प्रभव सूर्यके कारण है।

वेद सबकी उत्पत्ति ब्रह्मसे मानते है। विज्ञानने ब्रह्मसाक्षात्कार अभीतक नहीं किया है। अतः उसके अनुसार कुछ अणुओके किसी कारणवश एक साथ सघबद्ध हो जानेपर उनके रासायनिक विस्फोटसे अत्यधिक ऊर्जाके उत्पन्न होनेसे धीरे-धीरे एक विशाल वाष्पीय धधकता हुआ पिण्ड बन गया। पौराणिक शब्दमे सूर्य स्वयम्भू (अपने आप प्रकट) है। अतएव जन्मके लिये, अपनी ऊष्माके लिये, अपने ईधनके लिये, अपने प्रकाशके लिये और अपने

* जहाँतक सूर्यका प्रकाश जाता है, वहाँतकको एक ब्रह्माण्ड माना जाता है। विश्वमे कोटि ब्रह्माण्ड हैं—ऐसा कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे सूर्यकी भाँति ज्वलन्त प्रकाश-पिण्ड सहस्रो ही नहीं, करोडो हैं।   श्रीदुर्गासप्तशती

नानाविध कार्योंके लिये वे पूर्णतः आत्मनिर्भर हैं। ऐसी धारणामें वैज्ञानिक वेदान्तियोंके साथ इस बातपर सहमत दीख पड़ते हैं कि अद्वैतवादियोंके ब्रह्मकी भाँति सूर्य भी अपने निर्माण, सौर-परिवारके ग्रहों-उपग्रहों तथा पृथ्वीपरकी सारी सृष्टिके निर्माणमें निमित्तकारण हैं, उपादानकारण एवं साथ-साथ कर्ता भी हैं। इस प्रकार पृथ्वी ही नहीं, सम्पूर्ण सौर-परिवारके कर्त्ता, निमित्तकारण और उपादानकारण होनेसे अनेक ब्रह्मविद् ऋषियोंने अपने ब्रह्मजिज्ञासु शिष्योंको ब्रह्मज्ञानके लिये इन्हीं सूर्यकी उपासनाका आदेश दिया था।

ऊर्णनाभि-(मकड़ी-) द्वारा अपने शरीरसे तन्तु निकालकर स्वयं अपना जाल बना लेना सम्भवतः ब्रह्मतत्त्वको स्पष्ट करनेके लिये उतना प्रभावकारी दृष्टान्त नहीं है, जितना सूर्यका अपने-आप शून्यसे प्रकट हो जाना, अपने अंशसे पृथ्वी तथा अन्य ग्रहोंका सृष्टि-कर्ता बनना और अपनी आकर्षणशक्तिसे सब ग्रहों-उपग्रहोंसे अपने चतुर्दिक् चक्कर लगवाना और पृथ्वीपर लाखों-करोड़ों प्रकारके विभिन्न भूतों, पदार्थों एवं प्राणियोंकी सृष्टिकर उनका भरण-पोषण तथा यथासमय लय करना है। ब्रह्मके सदृश (शून्यमात्रसे विश्व निर्माण होना) आदि गुणोंके कारण सूर्यको भारतके मेधावियोंने ब्रह्मको समझनेका सर्वश्रेष्ठ साधन माना है।

संभवतः इसीसे सूर्यको सौर-परिवारका ब्रह्म (प्रभव तथा लयस्थान) होनेके कारण ऋषियोंने इतनी भक्तिसे घोषणा की है—**'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'**—मैं उस सविता देवके वरेण्य भर्गका ध्यान करता हूँ; इसलिये कि वे **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** हमारी ब्रह्मप्रकाशिका बुद्धिको प्रेरित करे, हमे ब्रह्मज्ञान दें—हमें ब्रह्मकी प्राप्ति हो सके। यह निःसंदेह है कि गायत्री (वेदमाता) के सम्यक् अध्ययनसे ब्रह्मसाक्षात्कार हो सकता है। नित्य और नाशवान्‌का, निर्गुण और सगुण-का तथा सत्य और असत्यका ज्ञान हो सकता है एवं महामायाकी कृपासे मायासे मुक्ति भी मिल सकती है।

सूर्यका अत्यन्त गहरा सम्बन्ध काल (समय)-से भी है। कला-काष्ठादिरूपसे परिणामप्रदायक है काल और पृथ्वीपर कालगणनाके मुख्य आधार हैं सूर्य। इसकी विशद विवेचना सूर्यसिद्धान्त-प्रभृति ग्रन्थोंमें है। मनीषियोंने कालको अत्यधिक शक्तिशाली माना है। किसी-किसी-ने इसे एकतत्त्व तथा सृष्टिका एक महत्त्वपूर्ण घटक माना है। कृषिविज्ञानकी उन्नति प्रगति होनेपर भी कुछ शस्य ऐसे हैं, जो पूर्ण प्रयत्न करनेपर भी समयसे पूर्व अङ्कुरित नहीं होते एवं समयसे पूर्व फल-फूल नहीं देते—मानो वे पुष्टि करते हैं इस उक्तिकी—'समय पाय तरुवर फलै केतिक सींचो नीर'। आचार्य वराहमिहिर कालको ही सभी कारणोंका कारण मानते हैं।

'कालं कारणमेके—' (बृहत्संहिता १। ७)। अथर्ववेद इससे भी आगे बढ़कर कहता है—**'कालो हि सर्वेश्वरः'**[1]। सृष्टिके प्रसङ्गमें काली, महा-काली अथवा महाकालकी कल्पना भी कालकी प्रभव-प्रलयकारिणी शक्तिकी परिचायिका है। यहाँ मेरे कहनेका संक्षेपमें अभिप्राय यही है कि 'बालोंको पलित करनेवाला तथा जिसका जन्म हुआ है उसको शैशव, कौमार्य, यौवन, वयस्क, प्रौढ तथा वार्धक्यसे होते हुए मृत्युतक पहुँचानेवाले और पुनः गर्भाधानसे लेकर विकासके विभिन्न सोपानो एव जन्मतक पहुँचानेवाले कालके नियन्ता तथा विभिन्न ऋतुओंके निर्माता सूर्य ही है। अथ च कालकी सम्पूर्ण शक्ति सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपसे सूर्यमें ही सन्निविष्ट है।

अत्यन्त काव्यात्मक तथा विज्ञानात्मक ढंगसे सृष्टिके व्यक्त होनेका वर्णन करती हुई श्रुति कहती है······**चक्षोः सूर्यो अजायत**[2]। सूर्य विराट् पुरुषकी

१. (अथर्ववेद १९। ५३। ३८)। २. (ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ९०)।

ऑखसे प्रकट हुए । अतएव इनका सर्वप्रमुख कार्य हुआ देखना । देखना ही जानना है । सूर्य वस्तुओंको रूपायित करते हैं, दृश्य बनाते हैं, दृष्टिपथमे लाते है, ज्ञान प्रदान करते हैं और बुद्धिको भी प्रेरित या सक्रिय करते हैं । इस कारण सूर्यको **'जगतः चक्षु'** या **'जगच्चक्षु', 'गुरूणां गुरुः'**, 'जगद्गुरु' सर्वश्रेष्ठ अन्धकारनाशक, अज्ञान दूर करनेवाला और कर्मसाक्षी भी कहा जाता है । शायद इसीलिये निभृत-से-निभृत स्थानमे गुप्तातिगुप्तरूपसे किया गया कर्म भी प्रकट हो जाता है और किसी-न-किसी रूपमें सृष्टिको प्रभावित करते हुए कर्त्ताको भी प्रभावित करता है ।

जिस प्रकार निष्क्रिय ब्रह्मकी अनन्तानन्त क्रियाएँ गिनी-गिनायी नहीं जा सकती हैं वैसे ही **'शतधा वर्तमान'** सूर्यकी सैकड़ो क्रियाएँ एवं उनकी सहस्रमुखी समताका विवरण नहीं दिया जा सकता । सूर्यकी ये अनगिनत किरणे प्रतिक्षण अनेकानेक स्थानोंपर—गंदी-से-गदी जगहपर, रम्य-से-रम्य स्थानपर, पवित्र-से-पवित्र स्थलपर और भयंकर एव दुर्गन्धपूर्ण स्थानपर भी पडती हैं; परंतु इसके कारण उनमे कोई विकार नहीं आता है । इतना ही नहीं, सूर्यकिरणे गदगियॉ दूर करती है तथा गङ्गाकी भॉति सबको पवित्र करती हैं । इसलिये संत श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

समरथ के नहिं दोष गुसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

साराशतः सूर्यका प्राकट्य शून्य या विराट् पुरुषकी ऑखसे है । सूर्यके मुख्य-मुख्य कर्म—प्रकाश एवं उष्मादान, धीको प्रेरित करना, ग्रह-उपग्रहोंकी सृष्टि एवं उनका धारण, उनका संचालन प्रभृति, काल-नियन्त्रण, उनकी निर्लिप्तता तथा पवित्र करनेकी क्रिया आदि है । सूर्य-तत्त्वके विषयमे वैज्ञानिक तर्कके आधारपर यदि विज्ञान अभीतक ऋषियोके स्वर-में-स्वर मिलाकर **'आदित्यो ब्रह्म'** नहीं कह सकता है तो इतना तो अवश्य कह सकता है कि सूर्य सृष्टिसंचालिका किसी अज्ञात सर्वश्रेष्ठ शक्तिकी (जिसे वेद ब्रह्म, परमात्मा या आद्याशक्ति कहता है) अति तेजस्वी प्रत्यक्ष विभूति हैं, जो निष्काम कर्मयोगीका सर्वाधिक ज्वलन्त दृष्टान्त है और जो सदैव प्राणियोंका नानाविध कल्याण करनेमे ही लगे रहते हैं । सूर्य वस्तुतः विरञ्चिनारायणशंकरात्मा हैं । 'त्रयीमय' हैं और एक शब्दमे यह 'त्रयीमयत्व' ही सूर्यतत्त्व है । कवि-कुलशिरोमणि संत तुलसीके शब्दोमे 'तेज-प्रताप-रूप-रस-राशि *सूर्यका तत्त्व है; तेज, प्रताप, रूप और रसका प्राचुर्य ही सूर्यत्व है । जो **'आदित्यो ब्रह्म'** यह नहीं स्वीकार कर सके, उन्हे इतना तो स्वीकार करना ही चाहिये कि सूर्य सौर-परिवारके प्रत्यक्ष अध्यक्ष तथा परमात्माके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं । अतः वे सभीके लिये परम पूज्य जगत्के श्रेष्ठ देवता हैं ।

हम सबका कल्याण करे

परम प्रकाशवान् लखि जिसको स्वतः तमादि प्रयाण करे ।
मुक्तिप्रदायक जो भक्तोंका भवबन्धनसे त्राण करे ॥
धर्मवृद्धि कर जो जन-मनमें नित-नवनूतन प्राण भरे ।
परम प्रकाशक सवितामण्डल हम सबका कल्याण करे ॥

—पं० श्रीबाबूलालजी द्विवेदी

* विनयपत्रिका, सूर्यस्तुति २ ।

सूर्यमे ही सभी तत्त्व, सभी भूत, सभी जीवन, सभी क्षर-अक्षर नाशवान् और अव्ययकी मूल सत्ता व्यवस्थित हैं—केवल ब्रह्म-सूर्यमे ही सर्वदा संलग्न हैं। सूर्यकी ही रश्मियोंमे लोक, परलोक, देव, पितर, मानव और ब्रह्माण्ड आदि निवेशित हैं।' इसी प्रकार साम्बपुराण (४।१—५) मे लिखा है—

अनाद्यो लोकनाथः स विश्वमाली जगत्पतिः।
मित्रत्वेऽवस्थितो देवस्तपस्तेपे नराधिपः।
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षर एव च।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्वान् सृष्टाश्च विविधाः प्रजाः।
ततः स च सहस्रांशुरव्यक्तः पुरुषः स्वयम्।

'आदि-अन्तहीन लोकेश्वर ब्रह्माण्डके संरक्षक और जगत्के स्वामी सूर्यने अपने मित्रभावमे अवस्थित होकर तेजतापद्वारा इस चराचर जगत्की रचना की है। विश्व-सृजनके बाद ब्रह्मारूपमे प्रजाकी सृष्टि की है। ये अव्यक्त है एवं हजारो किरणवाले विराट् पुरुष हैं। इन्हींमें सारी सृष्टि है।'

सूर्य—विष्णु

वेद, ब्राह्मण, संहिता और पुराणोमे सूर्य ही विष्णु हैं। विष्णु द्वादशादित्योमे छोटा अर्थात् बारहवाँ आदित्य हैं। वेदका एक मन्त्र यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः॥
(—ऋ० १। २२। १६)

जिस प्रकार सात किरणोके द्वारा विष्णु पृथिवीकी परिक्रमा करते हैं, उसी प्रकार उन्हीं तत्त्वोद्वारा वे हम सबकी रक्षा करें।

वैदिक कोष निघण्टुमे कहा गया है—

तीव्ररश्मिद्वारेण सर्वत्र हि आविशतीति विष्णुः।
(—५। ११)

अपनी तेज और तीक्ष्ण रश्मियोद्वारा सर्वत्र फैलनेके कारण सूर्य विष्णु कहे जाते हैं।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे॥ (ऋ० १। २२। १७)

विष्णु अपने अदृश्य पादसे पृथ्वी, द्यौ और अन्तरिक्षमें किरणद्वारा धूल-धूसरित विश्वको प्रकाशित करते हैं।

सूर्य और शिव तथा शैव शक्तियाँ

सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम्।
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्॥
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रीमेव च॥
(—लिङ्गपु० उ०, अ० १९)

'रुद्रो वैवस्वतः साक्षात्' (—वायुपु० अ० ५३)

सूर्य, शिव, जगन्नाथ और सोम स्वयं साक्षात् उमा है। आदित्य, भास्कर, भानु, रवि तथा दिवाकर देव हैं। इनकी शक्तियाँ ये हैं—उमा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या तथा सावित्री।

इस प्रकार देखा जाता है कि प्राचीन भारतीय त्रैतवाद एक मूलक है। एकेश्वरवाद ही त्रैतवादमे परिणत हुआ है। एकेश्वरवादका मूल आदित्य हैं। भारद्वाज स्मृतिका ७९ श्लोक इस सम्बन्धमे विशेष प्रामाणिक है; यथा—

'आदित्ये तन्महः साक्षात् परब्रह्मप्रकाशकम्।'

इस भूमण्डलपर साक्षात् परब्रह्मरूपमे आदित्य ही प्रकाशित हैं। इसलिये भगवान् ऋग्वेद सर्वत्र केवल सविताको ही देखते हैं—

सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात्
सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं
सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥
(—ऋ० १०। ३६। १४)

सविता देवता मेरे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे सर्वत्र सविता-ही-सविता है। सविता हमे सभी प्रकार सुख देते है। हमारी आयुको बढाते हैं।

गायत्रीमन्त्र सविता-उपासनाका तत्त्व है और सर्वज्ञानी जनोसे समादृत है। यह चारो वेद तथा समस्त ज्ञान-

विज्ञान और प्रज्ञाका सार है। ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका यथार्थ बोधक है। वेद-विहित समस्त उपासना-कर्मोके प्रारम्भमें गायत्री-जप, सूर्यार्घ्य और ॐकारका उच्चारण करनेकी मान्यता है। इसके विना कोई अनुष्ठान सफल नहीं हो सकता है। व्यास, भारद्वाज, पराशर, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, योगी याज्ञवल्क्य एवं अन्य अनेक महान् महर्षियोने ऐसा माना है कि गायत्री-जपसे पाप-उपपाप आदि मलोसे जापककी शुद्धि होती है। यजुर्वेदका ईशोपनिषद् कहता है—

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।

जो वह पुरुष आदित्यमें है, वही पुरुष मै हूँ। उस परमात्मपुरुषकी आत्मा भी 'मै हूँ'। इसीका शुद्ध आत्मतेज रश्मियोके अणुओद्वारा सूर्यमण्डलसे सम्पर्क करते हैं। जगत्मे रहकर भी शुद्ध आत्म-धाममें जानेके लिये सूर्य-रश्मि ही प्रधान योगका द्वार है—वाहक है। यूरोपियन साधक पिथा गोरसने भी माना है कि यह एक तेजधारक पदार्थ है। इसीमेसे होकर आत्म-ज्योति पृथ्वीपर उतरती है।

सूर्यसाधना और उपासना

सूतसहिता (य० वैखा० अ० ६) में भगवान् महेश्वर शिवने कहा है कि—

आदित्येन परिज्ञातं वयं धीमह्युपास्महे।
सावित्र्याः कथितो ह्यर्थः संग्रहेण मयादरात्।
नीलग्रीवं विरूपाक्षं साम्वमूर्तिं च लक्षितम्॥

'नीलग्रीव शिवजीका कहना है कि आदरपूर्वक मै सावित्री-मन्त्रकी, जिसे गायत्री या धीमहि कहते हैं, उपासना करता हूँ।'

भविष्योत्तरपुराणमे भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जो सूर्योपासना वतलायी है, वह आदित्यहृदय है। श्रीकृष्णने कहा है—

रुद्रादिदैवतैः सर्वैः पृष्टेन कथितं मया।
वक्ष्येऽहं सूर्यविन्यासं शृणु पाण्डव यत्नतः॥

अर्थात् अर्जुन! रुद्र आदि देवताओंके पूछनेपर जिस सूर्य-उपासनाको हमने वताया था वही तुमको वताता हूँ, सुनो। श्रीकृष्ण सूर्य (विष्णु)के अंशावतार द्वादशादित्यके अंश थे। इसीसे वे सूर्य (विष्णु) नारायण नामसे भी सम्वोधित हुए। महाभारतके स्वर्गारोहणपर्व-(५ । २५)मे कहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण इहलीला समाप्त कर नारायणमे ही विलीन हो गये।

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह॥

इस प्रकार देवताओंद्वारा आदित्य-उपासनाकी प्राचीनता देखी जाती है।

वृहद्देवता (१५६ अ०)मे लिखा है—**'विष्णुरादित्यात्मा।'** (वायुपुराण अ० ६८। १२)मे कहा गया है कि असुरोके देवता पहले सूर्य और चन्द्रमा थे। इन्होने ही अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार अलग-अलग राज्य वसाया था। इनमे अधिकाश सौर थे। राम-रावण-युद्ध-(वा० रा०, यु० का०, अ० १०७)मे जब भगवान् रामचन्द्रजी विशेप श्रान्त–चिन्तित थे तव ऋपि अगस्त्यने उन्हे सूर्यस्तोत्र वताया था। श्रीरामने अगस्त्य मुनिके उपदेशानुसार पूर्वमुख होकर पवित्र हो तीन बार आचमन किया और सूर्यके स्तोत्रका पाठ किया। इससे उन्हें महावल प्राप्त हुआ और उन्होने रावणका शिरश्छेद किया। द्वितीय जीवितगुप्तके दसवीं शताब्दीका एक शिलालेख कलकत्ताके जादूघरमे है। इसका विवरण कनिंघम साहेवने (Cunningham's Archeological reports Vol xvl, 65 मे) लिखा है कि भास्करके अङ्गसे प्रादुर्भूत प्रकाशमान 'मग' ब्राह्मण शाकद्वीपसे कृष्णभगवान्की अनुमतिसे उनके पुत्र भगवान् साम्वद्वारा लाये गये। उन दिनो विश्वमे ये ही लोग सूर्य-साधनाके विशेषज्ञ थे। यह वात भविष्यपुराण और साम्व-पुराणमे विस्तृतरूपसे वर्णित है। ग्रहयामल ग्रन्थमे भी उक्त वातोका उल्लेख है। इस वातसे प्रमाणित

होना है कि भारतमें भी सूर्य-पूजाका प्रचलन था; किंतु विशेषज्ञोंका अभाव था। बेबिलोनके प्राचीन वृत्तग्रन्थ- (Etna Myth)में लिखा है कि इगल (गरुड़-जाति) पक्षीपर बैठकर कोई राजा तृतीय स्वर्ग (Third heaven of Annu)में जाते हुए जीव-चिकित्सक ओषधि ले गया था। १९७३ ई० के अगस्तमें विख्यात अमेरिकन पत्रिका 'न्यू सायन्टिस्ट' (New Sceintist, August 1973)में प्रख्यात आणविक जीव-विज्ञानी डॉ० फ्रान्सिस्, डॉ० फ्रिक और डॉ० लेसलीने कहा है कि इस पृथ्वीपर हजारों वर्षतक कोई जीवन नहीं था। यहाँतक कि जीवनकी सम्भावना भी नहीं थी। महाकाशके सूर्याश्रयमें स्थित जीवन-स्फुलिङ्ग इस युगकी वन्ध्या पृथ्वीपर (सूर्यके आश्रयके प्राणि-सभ्यतासे छूटकर) आया है। मि० फ्रिक और मि० उरगेलके हस्ताक्षरयुक्त लम्बे वक्तव्यमें यह भी कहा गया है कि छाया-पथसे अन्यत्र अवश्य ही किसी-किसी सभ्यताका विकास था। छाया-पथ तेरह सौ करोड़ वर्षका है। इस पृथ्वीके प्राणियोंके उद्भवका काल चार सौ करोड़ वर्षका है। इस प्रकार नौ सौ करोड़ वर्षोंका अन्तर है।

अन्तर्देशीय सूर्य-अर्चन

विश्वमें सर्वत्र ही अनुमानतः ईसवी सवत्‌से छः हजार वर्ष पूर्वसे लेकर (नवीन मतसे चार करोड़ वर्षसे) १४० ईसवीतक सूर्य-पूजाके प्रमाण मिलते हैं। विश्वका प्राचीन दर्शन-(In early philosophy throughout the world the sun worshia) सौरदर्शन ही है। पर्सियन चर्चोंके मित्र (Mithra) ग्रीकोंके हेलियस (Hlios) एजिप्त (मिश्र) के रा (RA) तातारियोंका भाग्यवर्धक देवता फ्लोरस (Flourished) प्राचीन पेरू (दक्षिण अमरिका)के ऐश्वर्यदाता फुलेस (Fullest) उत्तरी अमरिकनके रेड इंडियनोंके एतना (Atna) और ऐना, अफ्रिकाके विले (श्वेत) (white) चीनका उ० ची० (Wu. chi) प्राचीन जापानियोंका इज्ना-गी (Izna-gi), नवीन सेन्टो ईजमका एमिनो, मिनाका नाची (Ameno-Minak-Nachi) आदि देवता; सूर्य, मित्र, दिवाकर आदिके रूपमें पूजित तथा उपासित थे। निष्कर्ष यह कि सूर्यकी शक्तिसे सारी सृष्टि हुई है। इनकी महिमा अनन्त है और इनकी पूजा-अर्चा अनादिकालसे विश्वभरमें प्रचलित हैं। भारतमें ये प्राचीन कालसे ही प्रत्यक्ष देवता माने जाते हैं।

सूर्यकी विश्व-मान्यता

आकाशके देवता 'एना' और पृथ्वीके देवता 'इया'में निष्ठा रखनेवाले बेबीलोनिया-निवासियोंने दिवका आरम्भ सूर्योदयसे माना।

मिश्रकी नीलघाटी सभ्यतामें सूर्यपूजा मुख्य थी। वहाँ मन्दिरोंको इस ढंगसे बनाया जाता था कि उनके मध्यमें स्थापित मूर्तिपर उदय होते सूर्यकी किरणें पड सकें।

कैल्डियन लोग भी सूर्यको महत्त्व देते थे और उन्होंने सात ग्रहोंका पता लगाया था —जिनके नामपर दिनोंके नाम रखे। वे तारोंकी अवस्थिति और गतिसे भी अवगत थे।

सुमेरियन सभ्यतामें चन्द्रमाको सूर्यसे बड़ा माना गया। उन्होंने ज्योतिषके द्वारा बारह मासोंका पञ्चाङ्ग बनाया।

फिनीशियन सूर्य-चन्द्रके उपासक थे। असीरियावाले भी अपने ढंगसे सूर्यकी पूजा करते थे। सूर्यपूजा सर्वत्र थी।

ऋग्वेदमें सूर्यकी महिमाके सूचक चौदह सूक्त हैं। सौर-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय दैनन्दिन उपासनामें सूर्य-पूजा अनिवार्य है।

ब्रह्माण्डात्मा—सूर्यभगवान्

(लेखक—शास्त्रार्थमहारथी प० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

वेदभगवान्का उद्घोष है कि **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** अर्थात् सूर्य न केवल मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि जङ्गम जीवोंके ही प्राणात्मा है, अपितु वे वृक्ष, लता, गुल्म, वीरुध, ओषधि आदि अचल—अन्तःसज्ञ जीवधारियोंके भी प्राणात्मा है।

जीवनके लिये जिस उक्षिजन (आक्सीजन) तत्त्वकी अनिवार्य आवश्यकता है, वह तत्त्व सूर्य-भगवान् ही निरन्तर ब्रह्माण्डको प्रदान करते रहते है।

श्रीमन्नारायणके दिव्य अङ्ग-प्रत्यङ्गोका ही अपर पारिभाषिक नाम देवता है। निरुक्तकार यास्कने देव शब्दके अनेकविध निर्वचन दिखाते हुए **'दानाद् वा'**, **'द्योतनाद् वा'** कहकर मुख्यतया इसे दानार्थक ही बताया है। अतः भगवान्की अनन्त शक्तियोके भण्डारमेंसे प्राणियोको, उनके जीवन-धारण करनेके लिये तत्तत्-शक्ति प्रदान करनेवाले माध्यमिक दिव्य स्रोतोको देवता कहते है। यद्यपि **'अनन्ता वै देवाः'** इस वेद-प्रमाणके अनुसार वे देवता अनन्त हैं तथापि उनका वर्गीकरण करके उन्हे तैंतीस कोटियोमे बॉटा गया है—अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, मरुत् और इन्द्र। इनमे भी अन्तर्भाव-प्रक्रियासे केवल तीन रूपोको अन्तमे प्रधानता दी गयी है। यास्क कहते है—**'तिस्रो देवताः'** अर्थात् तीन देवता है—पृथ्वी-स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु और द्यु-स्थानीय सूर्य।

सूर्यको केन्द्रबिन्दु मानकर चारो ओर विस्तृत पचीस कोटि योजनात्मक आकाश-कक्षको एक 'ब्रह्माण्ड' कहते हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौः अथवा **'भूः, भुवः, स्वः'** नामक ब्रह्माण्डके तीन कल्पित भाग हैं, जिन्हे त्रिलोकी कहते है। इस त्रिलोकीकी आत्मा सूर्यभगवान् हैं।

वेदोमे सूर्यकी महिमाके द्योतक अनेक सूक्त है। आदिसृष्टिके समय श्रीमन्नारायणद्वारा ब्रह्माजीको जो वेद-ज्ञान प्राप्त हुआ वह केवल वेदबीजभूत ओकार था। वर्णात्मक ओकार अकार, उकार और मकार—इन तीन मात्राओके सघातसे निष्पन्न है। इसकी एक-एक मात्रासे गायत्रीके एक-एक चरणका विकास हुआ है। इसलिये त्रिपदा गायत्री ओकारात्मक बीजका ही प्रस्फुटित अङ्कुर कहा जा सकता है। गायत्रीको **'स्तुता मया वरदा वेदमाता'** आदि शब्दोद्वारा वेदोकी जननी कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि त्रिपदा गायत्रीसे ही वेदत्रयीका प्रादुर्भाव हुआ है।

ओकारकी नाद और बिन्दु नामक अन्यतम दो मात्राऍ तो प्राणसाधनारत योगिजनोके ही ध्येय हैं। वे ही पञ्चमात्रात्मक ओकारके अधिकारी है। वर्णात्मक त्रैमात्रिक प्रणव निवृत्तिमार्गी द्विजमात्रका ध्येय है और आगमोक्त मनुष्यमात्रका उपास्य है।

आदिम महर्षिगण तो **'साक्षात्कृतधर्माणः'** थे। उन्हे स्वय पठनकी आवश्यकता न थी। परतु जब कालक्रमसे यह शक्ति क्षीण हो गयी, तब साक्षात्कृत-धर्मा गुरुओद्वारा असाक्षात्कृतधर्मा शिष्योको वेदोपदेश देना आरम्भ किया गया। इस युगमे जिसको नारायणसे सर्वप्रथम यह उपदेश मिला वह विवस्वान् अपर नामक सूर्यभगवान् ही थे। श्रीमद्भगवद्गीतामे भी श्रीकृष्णभगवान्ने **'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्'** (४। १) यह रहस्य घोषित किया है। शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिनी-संहिता तो महर्षि याज्ञवल्क्यने साक्षात् सूर्यभगवान्से ही प्राप्त की थी, यह सर्वविदित है। इस प्रकार वैदिक ज्ञान-परम्पराको मानव-समाजतक पहुँचानेका श्रेय सूर्य भगवान्को ही है।

ब्रह्म कूटस्थ है, प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। प्रकृतिके रज, सत्त्व और तम—इन तीन गुणोंसे पञ्च-तत्त्व समुद्भूत हुए हैं। प्रकृतिके सत्त्वगुणोद्रेकसे आकाशतत्त्वका, रजोगुणसे अग्नितत्त्वका और तमोगुणसे पृथ्वीतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। ये तीनो तत्त्व विशुद्ध हैं। परंतु सत्त्वगुण और रजोगुणके सम्मिश्रणसे वायुतत्त्वका तथा रजोगुण और तमोगुणके सम्मिश्रणसे जलतत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। उक्त दोनों तत्त्व विमिश्रित तत्त्व हैं। इस प्रकार प्रकृतिके तीन गुणोंसे पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई, जिनका पञ्चीकृत* संघात यह समस्त चराचर जगत् है। उक्त तत्त्वोंके न्यूनाधिक्यके तारतम्यसे ही सृष्टिके पदार्थोंमें विविधता पायी जाती है। इसी तात्त्विक तारतम्यके अनुसार मानव-समाज भी पञ्चविध प्रकृति-सम्पन्न है। अतएव पञ्चविध प्रकृतिवाले मानवोंके लिये एक ही श्रीमन्नारायणके पञ्चविध रूपोंकी कल्पना करके पञ्च-देवोपासनाकी वैज्ञानिक स्थापना की गयी है। शास्त्र कहता है—

'उपासनासिद्ध्यर्थं हि ब्रह्मणो रूपकल्पना'।

तदनुसार आकाशतत्त्वकी प्रधानतावाले सात्त्विक मनुष्योंकी विष्णुभगवान्‌में स्वभावतः विशिष्ट श्रद्धा होती है। अग्नितत्त्वकी प्रधानतावाले रजोगुणी मनुष्य जगन्माता शक्तिमें विशेष आस्था रखते हैं। पृथ्वीतत्त्व-प्रधान तमोगुणी प्रकृतिवाले मनुष्य भूतभावन शिव-भगवान्‌के भक्त होते हैं। वायुतत्त्व-प्रधान सत्त्व और रजोमिश्रित प्रकृतिवाले मनुष्य सूर्य भगवान्‌में श्रद्धालु होते हैं तथा जलतत्त्वकी प्रधानतावाले रज और तमोमिश्रित प्रकृतिके मनुष्य विघ्नेश्वर गणेशमें निष्ठा रखते हैं। इस प्रकार वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—ये पाँचों सम्प्रदाय क्रमशः पाँचों तत्त्वोंके तारतम्यपर परिनिष्ठित हैं। परंतु स्व-स्वसम्प्रदायकी उपासनापद्धतिके अनुसार स्वेष्टकी विशिष्ट पूजा करते हुए भी पूर्वोक्त पाँचों ही सम्प्रदायोंके साधकोंको अनिवार्यरूपसे नित्यकर्मभूत सन्ध्योपासनामें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करना, सावित्री देवताके गायत्री-मन्त्रका जप करना अत्यन्त अत्यावश्यक है जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक साधक पहले सौर है, पश्चात् स्वेष्ट देवताका उपासक है। कारणवश स्वेष्ट देवताकी उपासना न हो पानेकी दशामें उतना प्रत्यवाय (पाप) नहीं है; परंतु सन्ध्याहीन द्विज सभी द्विज-कर्मोंसे अन्त्यजके समान बहिष्कार्य हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्माण्डात्मा सूर्यभगवान्‌का सर्वातिशायी महत्त्व है। उनकी उपासना अनुष्ठेय कर्तव्य है।

---

* पञ्चीकृत किसे कहते हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंमेंसे इनके तामसांश-स्वरूप एक-एक भूतके दो-दो भाग करके और एक-एक भागको पृथक् रखकर दूसरे भागोंको चार-चार भाग करके पृथक् रखे हुए भागोंमें एक-एक भाग प्रत्येक भूतका संयुक्त करनेसे पंजीकरण होता है। इससे निश्चय हुआ कि प्रत्येक भूतके अपने आधेमें प्रत्येक दूसरे भूतोंके आधे भागका चतुर्थांश मिला हुआ रहता है। जैसे पंजीकृत आकाशमें अपंजीकृत आकाशका आधा भाग और दूसरे प्रत्येक अपंजीकृत भूतोंके अर्द्धभागका चतुर्थांश अर्थात् अपर प्रत्येक भूतका अष्टमांश मिला हुआ रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक भूतमें समझ लेना चाहिये। इन पंजीकृत पञ्च महाभूतोंसे ही प्रत्येक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। उन-उन ब्रह्माण्डोंमें चौदह भुवन होते हैं तथा उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—ये चार प्रकारके शरीर उत्पन्न होते हैं। शरीरोंका अभिमान रखनेवाला जीव और अनन्त ब्रह्माण्डोंके अभिमान रखनेवाले ईश्वर हैं।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च

(लेखक—श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

देवोपासनामें भगवान् सूर्यका विशिष्ट स्थान है। भगवान् सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन सभी जनोको प्रतिदिन अनुभूत होता है। वे अनुमानके विषय नहीं हैं, सूर्य सम्पूर्ण विश्वको प्रतिदिन प्रकाशदानसे अनुगृहीत करते है। हम सबपर उनके असख्य उपकार है। सम्पूर्ण वैदिक-स्मार्त अनुष्ठान एव ससारके सभी कार्य भगवान् सूर्यकी कृपाके अधीन हैं। उनकी कृपा सब जीवोपर समान है। सूर्यकी शोधक किरणे कीटाणुओका नाशकर आरोग्य प्रदान करती है। सूर्यकी किरणे जिन घरोमे नहीं पहुँचतीं, वहाँ विविध मच्छर आदि जीवो तथा कीटाणुओका आवास होनेसे विविध रोगोकी उत्पत्ति होती है। सूर्यकी किरणोसे बढकर आरोग्य-प्रदानकी शक्ति अन्यत्र सुलभ अथवा सुगम नही है। सूर्यकिरणोमे रोगविनाशक शक्तिके साथ परम-पावनता भी है। **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'**—सूर्य-नमस्कारसे मन तथा शरीरमे अद्भुत स्फूर्तिका सञ्चार होता है। सूर्यकी विविध शक्तिसम्पन्न ये किरणे ही विविध रूप पृथिवीको सप्तविधरूप-(शुक्ल-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिश-चित्र-) वाली बनाती है। इस प्रकार भगवान् सूर्य हमारे प्रत्यक्ष संरक्षक देव हैं। विश्वका एक-एक जीव उनकी कृपाका कृतज्ञ है। स्थावर-जङ्गम सभी उनसे विकासकी शक्ति पाते है। इसी दृष्टिको लेकर करोड़ो जन **'आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने। जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥'**—के अनुसार प्रतिदिन प्रातः-साय भगवान् सूर्यनारायणको पुष्पसमन्वित जलसे अर्घ्य देकर उनका शिरसा नमन करते हैं। धर्मशास्त्र हमे सूर्योदयसे पूर्व उठनेका आदेश देते है। **'तं चेदभ्युदियात् सूर्यः शयानं कामचारतः'** आदि कहकर स्वस्थ पुरुषको सूर्योदयके पश्चात् उठनेपर उपवासका विधान बताया गया है। ये प्रकाशमय देव हमे प्रकाश देकर सत्कर्मोमे प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देते हैं। गायत्रीके प्रतिपाद्य ये ही सूर्यदेव है। गायत्री-मन्त्रमे इन्हीं सवितादेवके तेजोमय रूपके ध्यानका वर्णन है। **'सूर्यो याति भुवनानि पश्यन्'** सूर्य लोकोको—उनके कर्मोको देखते हुए चलते है। अतः सूर्यका गमन प्रत्यक्ष सिद्ध है। **'मरुच्चलो भूरचला स्वभावतः'**—इस उक्तिके अनुसार पृथिवी अचल और सूर्य गतिशील हैं। भगवान् सूर्य दिव्य तेजोमय, ब्रह्मस्वरूप होनेसे कर्मोके प्रेरक होनेसे 'सविता', 'सर्वोत्पादक', आकाशगामी होनेसे 'सूर्य' कहे जाते हैं। भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। वेदोमे 'पर-अपर'रूपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति है। ये भगवान् सूर्य प्रातः आश्चर्यजनकरूपसे रात्रिके सम्पूर्ण अन्धकारका विनाशकर सम्पूर्ण ज्योतियोकी ज्योति लेकर उदित होते है। ये मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवोके चक्षुःस्वरूप है। सारे देव मनुष्यादिके रूपमे सूर्यके उदयमे ही अभिव्यक्त होते है। सूर्य उदित होकर आकाश तथा भूमिको अपने तेजसे व्याप्त कर देते है। सूर्य चर-अचर सभीके आत्मा हैं। वे सबके अन्तर्यामी है। देवोके द्वारा प्रतिष्ठित तथा देवोके हितकारक विश्वके शुद्ध निर्मल चक्षुःस्वरूप सूर्य पूर्वदिशामे उगते हैं। उनकी अनुकम्पासे हम सब सौ वर्षपर्यन्त नेत्रशक्तिसम्पन्न होकर उन्हे देखे। स्वाधीन-जीवन होकर सौ वर्षतक जीवित रहे। सौ वर्षपर्यन्त कर्णेन्द्रिय-सम्पन्न होकर सुने। श्रेष्ठ वाक्-शक्तिसम्पन्न हो और दीनतासे रहित हो। किसीसे दीनता न दिखाये। सौ वर्षोसे भी अधिक हम सर्वेन्द्रियशक्ति-सम्पन्न रहे—ॐ **चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** (शु० यजु० ७ । ४२) ॐ **तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छु-**

क्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्चशरदः शतात्। (शु० यजु० ३६। २४) सूर्योपस्थानके इन मन्त्रोको प्रत्येक द्विज प्रतिदिन प्रातः-साय दोहराता है। वेदमन्त्रोमे सूर्यको जगत्का अभिन्न आत्मा बताया गया है (शुक्ल यजुर्वेदके तैंतीसवे अध्यायमे और अन्यत्र भी श्रीसूर्यका विशिष्ट वर्णन है)। वेदोमे भगवान् सूर्यकी दिव्य महिमाका विस्तृत वर्णन है। उपनिषदोमे भी सूर्य ब्रह्मस्वरूपसे वर्णित है। ऋषि सूर्यकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—'हे विश्वके पोषण करनेवाले, एकाकी गमन करनेवाले, ससारके नियामक प्रजापतिपुत्र सूर्यदेव ! आप अपनी किरणोको हटा ले, अपने तेजको समेट ले, जिससे मै आपके अत्यन्त कल्याणमय रूपको देख सकूँ।' यह आदित्यमण्डलस्थ पुरुष मै हूँ। इसके पूर्वका मन्त्र भी इसी आशयको अभिव्यक्त करता है—

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य
व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते
पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥
(ईशा० उप० १५। १६)

प्रायः सभी पुराणोमे सूर्यकी महिमा वर्णित है। सत्य, वेद, अमृत (शुभ फल), मृत्यु (अशुभ फल) के अधिष्ठाता पुराणपुरुष भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत सर्वान्तर्यामी श्रीसूर्यकी हम सभी प्रार्थना करते हैं। **'प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः। अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति** (श्रीमद्भा० ५।२०।५) 'हे सवितादेवता ! आप हमारे सभी दुरितो (पापो) को दूर करे तथा जो कल्याण हो उसे लाकर दे' यह कहकर—**'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव।'** (ऋ० ५। ८२। ५) हम भगवान् सूर्यसे सब पापोके विनाशके साथ आत्मकल्याणके लिये प्रार्थना करते है। सम्पूर्ण फलो और सस्योंका परिपाक-परिपाल तथा उनकी दृढता-कठोरता सूर्यकी किरणोंसे ही सम्भव होती है। रसोंके आदान-(ग्रहण-) से ही सूर्यको 'आदित्य' कहते है। वे अदितिसे पुत्ररूपमें उत्पन्न भी है। सम्पूर्ण वृष्टिके आधार ये अंशुमाली ही हैं—**'आदित्याज्जायते वृष्टिः'**। भगवान् सूर्यनारायणकी विभिन्न किरणे ही जलका शोषण कर पुनः जलवर्षणसे जगत्को आप्यायित करती हैं। ये भगवान् भास्कर ही जगत्के सभी जीवोंके कर्मोके साक्षी है। प्रत्यक्ष देवके रूपमे भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत्के परम आराध्य हैं। श्रुतियो एव उनके आधारके शास्त्रवचनोंके अनुसार जब एक आस्तिक हिन्दू अधिष्ठातृ-देवताकी भावनासे सारे जगत्को चिद्विलास—चेतनानुप्राणित मानता है तब सम्पूर्ण तेजःशक्तिके धारक भगवान् सूर्य जो ताप-प्रकाश आदिके द्वारा हमारे परम उपकारक हैं, वे प्रवर्तक-अवस्थामें गतिरहित कैसे मान्य होंगे। वे साक्षात् चेतन परब्रह्मस्वरूप हैं। वे केवल तेजके गोलामात्र नहीं हैं, वे चिन्मय प्रज्ञानघन परमार्थतत्त्व है। जिस प्रकार बाहरी चकाचौंधसे यह आत्मतत्त्व आच्छादित है, उसी प्रकार इस हिरण्मय-सुवर्णवत् प्रकाशमान, चमचमाहटसे सत्यरूप नारायणका मुख (शरीर) छिपा है। साधक उस परमार्थ सत्यके दर्शनार्थ सूर्यसे उस आवरणके हटानेकी प्रार्थना करता है। भगवान् सूर्यके सम्पूर्ण धर्म तथा कार्य जगत्के परम उपकारक हैं। इसीसे हमारे त्रिकालदर्शी महर्षियोने उपासनामे उन्हे उच्च स्थान दिया है। जगत्के एकमात्र चक्षुःस्वरूप, सबकी सृष्टि-स्थिति-प्रलयके कारण, वेदमय, त्रिगुणात्मक रूप धारण करनेवाले, ब्रह्म-विष्णु-शिवस्वरूप भगवान् सूर्यका हम शिरसा नमन करते है। सूर्यमण्डलमध्यवर्ती वे नारायण हमारे ध्येय हैं। हमे उनका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये।

सूर्य-ब्रह्म-समन्वय

(लेखक—श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ)

सर्वेऽपि नाम्ना भगवान् निगद्यते
सूर्योऽपि सर्वेषु विभाति भाषया ।
ब्रह्मैव सूर्यः समुदेति नित्यशः
तस्मै नमो ध्वान्तविलोपकारिणे ॥

वैदिक धर्मकी वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर—ये पाँच प्रसिद्ध शाखाएँ हैं । इनमे विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति और सूर्य—इन पाँचो देवोकी उपासनाका विशद विधान है । यद्यपि वेद और पुराण आदि समस्त शास्त्रोमे एकेश्वरवादका प्रतिपादन एवं समर्थन मिलता है, तथापि भावनाको प्रबल बनानेके लिये उपर्युक्त सनातनधर्मकी पाँचो शाखाओमे वैष्णव विष्णुकी, शैव शिवकी, शाक्त शक्तिकी, गाणपत्य गणपतिकी और सौर सूर्यकी प्रधानता मानकर अपनी-अपनी भावनाको दृढ करते हैं । वस्तुतः ईश्वर—परमात्मा (ब्रह्म) एक ही तत्त्व है, जो चराचरात्मक जगत्का उत्पादक, पालक, संहारक तथा जीवोको जन्म-मरणरूपी संसृतिचक्रसे छुडानेवाला है । शास्त्रकी यह विशेषता है कि अनन्त गुण, शक्ति, रूप एव नामवाले ब्रह्मके जिस नामको लेकर जहाँ विवेचन किया जाता है, वहाँ उसीमे ब्रह्मके समस्त गुण-शक्ति-नाम-रूपादिका समर्थन कर दिया जाता है । साधारण बुद्धिवाले व्यक्ति पूर्णतया मनन न कर पानेसे अपने किसी एक ही अभीष्ट उपास्यकी सर्वोच्चता मानकर परस्परमे कलह-तक कर बैठते है । तत्त्वतः यह ठीक नहीं है ।

वस्तुतः विचार किया जाय तो हमे प्रत्येक दृष्ट एव श्रुत वस्तुमे ब्रह्मत्वकी अनुभूति हो सकती है । सूर्यमे तो प्रत्यक्ष ही वैशिष्ट्यका अनुभव हो रहा है । वेदोमे सैकडो सूक्त है, जिनमे उपर्युक्त पाँचो देवोके अतिरिक्त बृहस्पति आदि ग्रहो और जडतत्त्वमे परिगणित पर्जन्य, रात्रि, रक्षोघ्न, मन्यु, अग्नि, पृथ्वी, उषा और ओषधि आदिके अन्य भी बहुत-से सूक्त है । उनमे उन्हींकी महत्ताका दिग्दर्शन है, जिनके नामसे वे सूक्त सम्बद्ध हैं । श्रीसूर्यदेवके नामसे सम्बद्ध भी अनेक सूक्त है, उनमे—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (ऋ० १ । ११५ । १) इत्यादि मन्त्रोद्वारा स्पष्टतया सूर्यको चराचरात्मक जगत्की आत्मा कहा गया है । सूर्यके जितने भी पर्यायवाची नाम हैं, उन सबके तात्पर्यका ब्रह्मसे ही सम्बन्ध है, क्योकि एक ही परमात्मा वैश्वानर[1], प्राण, आकाश, यम, सूर्य और हस आदि अनन्त नामोसे अभिहित है[2] । वेद एव पुराण आदि उसी एक परमात्माका आमनन करते है[3], अधिक क्या ससारमे—ऐसा कोई शब्द नहीं जो ब्रह्मका वाचक न हो—'उलूक'-जैसे शब्दोकी व्युत्पत्ति भी ब्रह्मपरक लगायी जा सकती है[4] और 'मूढ'-जैसे अपमानसूचक शब्दोसे भी परमात्माकी स्तुति की गयी है[5] । परिवर्तन एव विनश्वरशील प्राणियोके शरीर तथा उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमे भी प्रसङ्गवश भगवत्ताका अभिनिवेश प्रतिपादित किया गया है । ऋषि-महर्षि, मुनि-महात्मा, साधु-सत और ब्राह्मण जब किसीको आशीर्वाद देते हैं, तो अभयमुद्रावाले हाथके लिये सकेत करते है—यह मेरा हाथ भगवान् (भले-बुरे कर्म करनेमे समर्थ) ही नहीं, भगवान्से भी बढकर है; क्योकि इस हाथके द्वारा किये हुए कर्मोका फल देनेके लिये भगवान्को भी विवश होना पडता है । परम्परया कर्म भी मोक्षके

१. अह वैश्वानरो भूत्वा प्राणिना देहमाश्रितः । (गीता १५ । १४)

२. एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । ३. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति ....

४. सर्वे शब्दा ब्रह्मवाचकाः उत्—उद्र्ध्वं लुनातीति उलूकः । (श्रीभाष्य) ५. नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे । (भा० ८ । ३ । १२) (गूढाय पाठ भी मन्तव्य है । स०)

साधक हैं। अतः कर्मोंका कर्ता यह हाथ ही संसारके दुःखोंसे छुड़ानेवाला महान् औषध है, अतएव यही मुक्ति दिलाता है—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥
(ऋ० १०।६०।१२)

सूर्यकी जड़ता और परायणता भारतीय शास्त्रमें भी वर्णित है। पाश्चात्त्य विचारक तो इसे एक आगका गोला मानते ही हैं; किंतु चिन्तित है कि आगमें इन्धन चाहिये। यदि सूर्यरूपी इस आगके गोलेमें इन्धन न पहुँच पायगा और यह शान्त हो जायगा तो दुनियाकी क्या दशा होगी? भारतीय शास्त्रोंके विज्ञाताओंने उपासनाको ही उपास्यका पोषक मानकर इस समस्याका समाधान किया है। अतः सूर्यका जितना अधिक आराधन किया जायगा, उतना ही अधिक सूर्यका पोषण एवं लोकका हित होगा। कोई किसीकी प्रशंसा करता है तो प्रशस्य व्यक्ति प्रफुल्ल एवं प्रमुदित होता है—ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है। वेद भी कहते हैं—'प्रभो! हमारी ये सुन्दर उक्तियाँ आपके तेज-बल आदिको बढ़ावें—व्यक्त करें—जिससे आप हमारी रक्षा एवं पालन-पोषण करें—

वर्धन्तु त्वां सुष्टुतयो गिरो मे
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।

सूर्यको वेद एवं पुराण आदि शास्त्रोंमें कहीं परमात्मासे समुत्पन्न माना गया है[1], कहीं चक्षुसे[2] उद्भूत और कहीं चक्षुस्वरूप ही माना गया है। कहींपर इक्ष्वाकुवंशमें समुत्पन्न और कई स्थलोंमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि देवोंका उपास्य) भी कहा गया है[3]। इन सभी विभिन्न वाक्योंका समन्वय जटिल अवश्य है; किंतु असम्भव नहीं।

अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैव—ये तीन स्वरूप प्रत्येक दृष्ट-श्रुत वस्तुओंके माने जाते हैं। अधिभूत शरीर, अध्यात्म—आत्मा (जीव) और अधिदैव—परमात्मा अन्तर्यामी कहलाता है। इन्हीं तीनों रूपोंसे शास्त्रमें सूर्यका विभिन्न रूपसे वर्णन किया गया है। शास्त्रीय विधान है—**'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'**। इसके अनुसार आराधना करनेपर भगवान् सूर्य आराधकके शरीरको स्वस्थ बनाते हैं। शरीर ही धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयका साधक है। केवल प्राणी ही नहीं, चराचरात्मक अखिल जगत्का सूर्यद्वारा अपार हित होता है। अतएव चाहे आस्तिक हो या नास्तिक, चाहे आर्यसनातनी हो या अन्य धर्मावलम्बी—सभीके लिये जीवनप्रदान करनेवाले ये सूर्य भगवान् उपास्य एवं पूज्य हैं, वे हमारी रक्षा करें।

सर्वोपकारी सूर्य

देवः किं बान्धवः स्यात्प्रियसुहृदथवाऽऽचार्य आहोस्विदर्यो
रक्षाचक्षुर्नु दीपो गुरुरुत जनको जीवितं बीजमोजः।
एवं निर्णीयते यः क इव न जगतां सर्वथा सर्वदाऽसौ
सर्वाकारोपकारी दिशतु दशशताभीशुरभ्यर्थितं नः॥

जिन भगवान् सूर्यनारायणके विषयमें यह निर्णय हो नहीं पाता कि वे वास्तवमें देवता हैं या बान्धव; प्रिय मित्र हैं (अथवा वेदके उपज्ञ) आचार्य किंवा अर्च्य स्वामी; वे क्या हैं—रक्षानेत्र हैं अथवा विश्वप्रकाशक दीपक; वे धर्माचार्य गुरु हैं अथवा पालनकर्ता पिता; प्राण हैं या जगत्के प्रमुख आदिकारण; बल हैं अथवा और कुछ। किंतु इतना निश्चय है कि सभी कालों, सभी देशों और सभी दशाओंमें वे कल्याण करनेवाले हैं। वे सहस्ररश्मि (भगवान् सूर्य) हम सबका मङ्गल-मनोरथ पूर्ण करें। (सूर्यशतकम् १००)

१. सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। (ऋ० १०।१९०।३) २. चक्षोः सूर्यो अजायत। (यजुर्वेद ३१।१२)
३. एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः। (आदित्यहृदय, वा० रा० उ० १०७।८)

चराचरके आत्मा सूर्यदेव

(लेखक—श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)

वेदोंमें सूर्य, सविता और उनकी शक्तियो—मित्र, वरुण, अर्यमा, भग और पूषाके प्रति अनेक सूक्त सम्बोधित किये गये हैं। उनके स्वाध्याय और मननसे विदित होता है कि सूर्य एवं सविता जड़-पिण्ड नहीं, अग्निका गोला ही नहीं, अपितु ताप, प्रकाश, जीवनशक्तिके प्रदाता, प्रजाओंके प्राण 'सूर्य' या 'नारायण' हैं। **'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।'** (ऋक्० १०। ९०। १३), **'यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः'** (अथर्व० १०। ७। ३३) **'यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति। तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन॥'** (अथर्व० १०। ८। १६) इत्यादि मन्त्रोंमें सूर्यको परम पुरुष परमेश्वरके चक्षुसे उत्पन्न, ज्येष्ठ ब्रह्मका चक्षु तथा उन्हींसे उदित और उन्हींमें अस्त होनेवाला कहा गया है। अतः सूर्यदेव मानव-देहकी भाँति जड़-चेतनात्मक हैं। जैसे हमारी देह जड़ और उसमें विराजमान आत्मा चेतन है वैसे ही सूर्यका बाहरी आकार (पिण्ड) भौतिक वा जड़ है, पर उसके भीतर चेतन आत्मा विराजमान है। वे एक देवता हैं—बाह्य और आन्तर प्रकाशके दाता, ताप और जीवनशक्तिके अक्षय भाण्डार, सकल सृष्टिके प्राणस्वरूप। वे आत्मप्रसाद और अप्रसाद—कोप और कृपा, वर और शाप, निग्रह और अनुग्रह करनेमे सर्वथा समर्थ सूर्य-नारायण हैं।

वैज्ञानिक जगत्को जब यह विदित हुआ कि हिंदू-धर्मके अनुसार सूर्य एक देवता हैं जो प्रसन्न एवं अप्रसन्न भी होते हैं तो एक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी। उन्होंने इसकी सत्यता जाँचनेके लिये परीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। मिस्टर जार्ज नामक एक विज्ञानके प्रोफेसरने इस परीक्षणमें सफलता प्राप्त की। ज्येष्ठमासकी कड़कती धूपमे वे केवल पाजामा पहने हुए पाँच मिनट सूर्यके सामने ठहरे। फिर जब कमरेमें जाकर तापमान देखा तो १०३ डिग्री ज्वर चढ़ा पाया। दूसरे दिन पूजाकी सब सामग्री—पत्र, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य आदि लेकर यथाविधि श्रद्धासे पूजा की, शास्त्रोक्त रीतिसे सूर्य-नमस्कार किया। उसमे ११ मिनट लगे। जब कमरेमें जाकर थर्मामीटरसे तापमान देखा तो ज्वर पूरी तरहसे उतरा पाया। इस परीक्षणसे वे इस निश्चयपर पहुँचे कि सूर्य वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अग्निका गोला ही हो, ऐसी बात नहीं है। उसमें चेतन सत्ताकी भाँति कोप-प्रसादका तत्त्व भी विद्यमान है। अतः विज्ञानसे भी सूर्य-नारायणका देवत्व स्पष्ट हो जाता है। वेदोंमें कहा गया है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (ऋक्० १। ११५। १) सूर्यदेव स्थावर और जङ्गम जगत्के जड़ और चेतनके आत्मा हैं। इन्हे मार्तण्ड* भी कहते हैं; क्योकि ये मृत अण्ड (ब्रह्माण्ड) मेंसे होकर जगत्को अपनी ऊष्मा तथा प्रकाशसे जीवन-दान देते हैं। इनकी दिव्य किरणोंको प्राप्त करके ही यह विश्व चेतन-दशाको प्राप्त हुआ और होता है। इन्हींसे चराचर जगत्में प्राणका सञ्चार होता है—**'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः'** (प्रश्न० १। ८)। अतएव वेद भगवान् सूर्यसे शक्ति और शान्तिकी प्राप्तिके लिये उनकी पूजा और प्रार्थना करनेकी आज्ञा देते हैं—

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

* मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यद्भूत ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः।

सजुर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥
(यजु० ३ । ९-१०)

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नो देवः सविता त्रायमाणः
शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
(—ऋ० ७ । ३५ । ८, १०)

तैत्तिरीय आरण्यकमे कहा गया है कि उदय और अस्त होते हुए सूर्यका ध्यान और उपासना करनेसे ज्ञानी ब्राह्मण सब प्रकारकी सुख-सम्पदा और कल्याण प्राप्त करते हैं—उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ।

अब यहाँ वेदके कतिपय सूक्तो, मन्त्रोंके भावोद्वारा सूर्यभगवान्‌के महनीय स्वरूप और कार्य-व्यापारका निरूपण किया जाता है ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
(—ऋ० १ । ५० । १)

'उस सर्वज्ञ सूर्यदेवको उसकी किरणे, उसके ध्वजा-रूपी अश्व (क्षितिजपरसे आकाशमे) ऊपर ले जा रहे हैं, ताकि सम्पूर्ण विश्व, सभी प्राणी उनके दर्शन करें।'

आध्यात्मिक अर्थ—अन्तर्ज्ञानकी रश्मियाँ उपासकको उस सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, स्वयंप्रकाश, सूर्य-परमात्मदेवकी ओर ले जाती हैं जिससे कि वह इस विश्वके रहस्यको साक्षात् देख-समझ सके ।

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ (—ऋ० १ । ५० । २)

'ये सब नक्षत्रगण रात्रिके अन्धकारके साथ चोरोंकी भाँति चुपकेसे इस विश्वदर्शी सूर्यके सामनेसे भागे जा रहे हैं।'

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ (—ऋ० १ । ५० । ३)

'दीप्यमान अग्नियो-जैसे इनके ये ध्वज, ये किरणें, मनुष्य आदि सभी जीव-जन्तुओंको अनुकूल दर्शन करा रही हैं ।'

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचनम् ॥
(—ऋ० १ । ५० । ४)

'हे सूर्यदेव ! आप अन्धकारसे पार लगानेवाले, सर्वसुन्दर, परम दर्शनीय, ज्योतिके स्रष्टा हैं । आप इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को भास्वर-रूपमें प्रकाशित करते हैं ।'

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ (—ऋ० १ । ५० । ५)

'द्युलोकवासी प्रजाओं, मनुष्यों तथा सम्पूर्ण विश्वके सम्मुख आप उदित हो रहे हैं ताकि वे सभी आपकी स्वर्गीय ज्योतिके दर्शन करें ।'

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ (—ऋ० १ । ५० । ६)

'हे पवित्रीकारक, पापनाशक वरुणदेव ! जिस नेत्रसे तुम लोगोंमे कर्मपरायण मनुष्यके सत्य-अनृतका अवलोकन करते हो वह यही सूर्यरूपी नेत्र है ।'

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ (—ऋ० १ । ५० । ७)

'हे सूर्यदेव ! रात्रिके योगसे दिवसोंको सीमित करते हुए या अपनी किरणोसे दिनोका माप करते हुए आप उत्पन्न प्राणिमात्रका निरीक्षण करते-करते द्युलोक और विशाल अन्तरिक्ष-प्रदेशमे संचरण करते रहते हैं ।'

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ (—ऋ० । १ । ५० । ८)

'हे सूक्ष्मदर्शिन् विशालदृष्टे सूर्यदेव ! आपके रश्मि-रूपी सात अश्व किरणरूपी केशोंसे सुशोभित आपको रथमें ले जा रहे हैं ।'

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ (—ऋ० १ । ५० । ९)

'सर्वप्रेरक सूर्यदेवने अपने रथकी सात पवित्र और पवित्रीकारक कन्याओंको रथमें जोत रखा है। स्वयं ही रथसे जुत जानेवाले इन अश्वोंकी सहायतासे वे अपने मार्गका अनुसरण करते हैं।'

उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
(—ऋ० १।५०।१०)

'अन्धकारके उस पार श्रेष्ठ तेजका दर्शन करते-करते हम देवलोकमें सर्वश्रेष्ठ-ज्योतिःस्वरूप सूर्यदेवके पास पहुँच गये हैं।'

आध्यात्मिक अर्थ—अन्तर्यज्ञ करनेवाले हम उपासक अज्ञानान्धकारके ऊपर उच्च और फिर उच्चतर ज्योतिका साक्षात्कार करते हुए अन्तमे उच्चतम-ज्योतिःस्वरूप, देवोमे परमदेव परमात्म-सूर्यतक जा पहुँचे हैं।

हृद्रोग, कामला आदि रोगोंके नाशक सूर्यदेव

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

'हे मित्रकी भाँति उपकारक तेजसे सम्पन्न सूर्यदेव! आप आज उदित होकर फिर उच्चतर बृहत् द्यौमें आरोहण करते हुए मेरे इस हृद्रोग तथा पीलिया (कामला रोग)-का विनाश कर दीजिये।'[1]

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि॥
(—ऋ० १।५०।१२)

'अपना पीलिया (पीलापन) हम अपने शरीरसे अलग कर उसी रंगके शुक और सारिका-नामक पक्षियोंमें तथा हारिद्रव नामक वृक्षोमे रख देते हैं।'[2]

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम्॥
(—ऋ० १।५०।१३)

अदितिके पुत्र ये आदित्यदेव मेरे लिये उपद्रवकारी शत्रु और रोगका नाश करते हुए अपने सम्पूर्ण बलके साथ मेरे समक्ष उदित हुए हैं। (अपना समस्त भार उनपर सौंप चुका हूँ—मैं सूर्यभगवान्‌का उपासक हूँ) अतः अपने अनिष्टकारी मानुष या अमानुष प्राणी या रोगका स्वयं नाश न करूँ, मेरे द्वेषीके विषयमें जो कुछ करना है उसे सूर्य भगवान् ही मेरे लिये करें।

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥
(—ऋ० १।११५।१)

'देवोके ये सुन्दर मुख, मित्र-वरुण और अग्निके नेत्र ये सूर्यदेव उदित हुए हैं। स्थावर-जङ्गम-विश्वके आत्मा इन सूर्यदेवने द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष—इन तीनो लोकोंको अपने दिव्य प्रकाशसे भर दिया है।'

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥
(—ऋ० १।११५।२)

'भगवान् प्रातःकालकी जिस वेलामें सूर्य सौन्दर्यसे दीप्यमान उषादेवीका उसी प्रकार अनुगमन करते हैं जिस प्रकार पति अपनी अनुरक्ता पत्नीका, उस समयमें देवत्वकामी मनुष्य उच्चतर कल्याणकी ओर ले

---

१. सूर्य-किरण-चिकित्साके द्वारा सूर्यके भिन्न-भिन्न रंगोकी किरणोंके यथाविधि सेवनसे देहके विषों और रोगोंका नाशकर बाह्य और आन्तर स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। इसकी विधियाँ विकसित हो चुकी हैं।

भिन्न-भिन्न रंगोकी बोतलोंमें जल भरकर उसे सूर्यकी धूपमें रखनेसे उसमें नाना रोगोंके नाशकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

२. सूर्यदेवकी यथाविधि उपासनासे प्राप्त उनकी कृपा तथा मन्त्रबलसे अपना पीलापन अपने शरीरसे निकालकर उसे उस रंगके पक्षियो या वृक्षोंमे फेंका जा सकता है जिनके लिये वह स्वाभाविक और शोभावर्धक होता है।

जानेवाले कल्याणकी अभिलाषासे अपने यज्ञायोजनोंका विस्तार करते हैं।'

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः
परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥
(—ऋक्० १।११५।३)

'सूर्यके कल्याणकारी, कान्तिमय, नानावर्ण, शीघ्रगामी, आनन्ददायी एवं स्तुत्य रश्मिरूप अश्व अपने स्वामी सूर्यकी पूजा करते हुए द्युलोकके पृष्ठपर आरूढ़ होकर तत्क्षण ही द्यावापृथिवीको व्याप्त कर लेते हैं।'

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था-
दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥
(—ऋक्० १।११५।४)

'यह भगवान् सूर्यका देवत्व और महिमा है कि वे अपने कार्यके बीचमें ही अपने फैले हुए रश्मिजालको समेट लेते हैं। जिस समय वह अपने कान्तिमान्, रश्मिरूप अश्वोंको अपने रथसे समेटकर अपनेमें संयुक्त कर लेते हैं, उसी समय रात्रि समस्त जगत्के लिये अपना अन्धकाररूप वस्त्र बुनती है।'

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः
कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥
(—ऋक्० १।११५।५)

'सबके प्रेरक भगवान् सविता अपनी प्रेम-सामञ्जस्यमयमूर्ति मित्रदेव तथा अपनी पावित्र्य-वैशाल्यमय-मूर्ति वरुणदेवके सम्मुख स्वर्लोककी गोदमें अपना तेजोमय स्वरूप प्रकट कर रहे हैं। इनके कान्तिमान् अश्व इनका एक अनन्त, दीप्यमान, दिनरूपी, श्वेतवर्ण तेज तथा दूसरा निशान्धकाररूपी कृष्णवर्ण तेज निरन्तर लाते रहते हैं।'

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य
निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः
सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥
(—ऋक्० १।११५।६)

'हे देवो! आज सूर्योदयके समय हमें पाप, निन्द्य कर्म और अपकीर्तिके गर्तसे निकालकर हमारी रक्षा करो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ—ये सभी देव हमारी इस प्रार्थनाका सम्मान कर इसे पूर्ण करें, हमारी उन्नति और अभिवृद्धि साधित करें।'*

रोग-सङ्कटादिके निवारक सूर्यदेव

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो
जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामी-
वामप दुष्ष्वप्न्यं सुव॥
(—ऋक्० १०।३७।४)

'हे सूर्यदेव! जिस ज्योतिसे आप तमका निवारण करते और सम्पूर्ण जगत्को अपने तेजसे अभ्युदय प्राप्त कराते हैं, उसीसे आप हमारे समस्त विपत्-सङ्कट, अयज्ञ-भावना, आधि-व्याधि तथा दुःस्वप्न-जनित अनिष्टका भी निवारण कर दीजिये।'

सर्वश्रेष्ठ ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं
विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश
उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम्॥
(—ऋक्० १०।१७०।३)

* 'उदिता सूर्यस्य' इन पदोका साङ्केतिक अर्थ यह है कि सूर्यदेव मित्र, वरुण तथा अन्य देवोके वे नेत्र हैं जो लोगोके सत्य-अनृत एव पाप-पुण्यके साक्षी हैं। अतः ये सूर्य उदित होनेपर सभी देवोके समक्ष हमारे निष्पाप, निरपराध होनेकी साक्षी दें तथा ये देव भी हमे पापसे बचाते हुए हमारी प्रगति एवं विकास साधित करे।

'यह सौर-ज्योति-ग्रह-नक्षत्र आदि ज्योतियोंकी भी ज्योति, उनकी प्रकाशक सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च ज्योति है। यह विशाल, विश्वविजयी और ऐश्वर्यविजयी कहलाती है। सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले ये महान् देदीप्यमान सूर्यदेव अपने विस्तृत तमका अभिभव करनेवाले, अविनाशी ओज-तेजका सबके दर्शनके लिये विस्तार करते हैं।'

देवयानके अधिष्ठाता

अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन्पथि देवयाने भूयात्॥* (—यजु० ५। ३३)

'हे सकल मार्गोंके स्वामिन् सूर्यदेव! मुझे पार लगाइये। इस देवयानमार्गपर मेरा पूर्ण मङ्गल हो!!'

देवोंमें परम तेजस्वी

सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि
भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्॥ (—यजु० ८। ४०)

'हे परमतेजस्विन् सूर्यदेव! आप देवोंमे सबसे अधिक देदीप्यमान है, मैं भी मनुष्योंमें सबसे अधिक देदीप्यमान परम तेजस्वी हो जाऊँ।'

पाप-तापमोचक

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाँसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँ हसः॥
(—यजु० २०। १६)

'जागते या सोते यदि हमने कोई पाप किये हों तो भगवान् सूर्यदेव हमे उन समस्त पापोंसे, कुटिल कर्मोंसे मुक्त कर दे।'

सबके वशीकर्ता

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे॥
(—यजु० ३३। ३५)

'हे वृत्रघातक, असुरसंहारक सूर्यदेव! जिस किसी भी पदार्थ एवं प्राणीके सामने आप आज उदित हुए हैं वह सब—वे सभी आपके वशमें हैं।'

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ
शृणुयाम शरदः शतम्॥
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं
भूयश्च शरदः शतात्।
(—यजु० ३६। २४)

'देखो! वे परमदेवद्वारा स्थापित शुद्ध, पवित्र, देदीप्यमान, सबके द्रष्टा और साक्षी, मार्गदर्शक सूर्यरूप चक्षु हमारे सामने उदित हुए हैं। उनकी कृपासे हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीवित रहे, सौ वर्षोंतक श्रवणशक्तिसे सम्पन्न रहे, सौ वर्षोंतक प्रवचन करते रहे, सौ वर्षोंतक अदीन रहे, किसीके अधीन होकर न रहें, सौ वर्षोंसे भी अधिक देखते, सुनते, बोलते रहे, पराधीन न होते हुए जीवित रहे।'

आवाहन—सूर्योपासनाका मन्त्र

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ (—अथर्व० १७। १। ७)

'हे भगवान् सूर्यदेव! आप उदित हों, उदित हों, अध्यात्म तेजके साथ मेरे समक्ष उदित हों। जो मेरे दृष्टिगोचर होते हैं और जो नहीं होते उन सबके प्रति मुझे सुमति दें। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव! आपके ही नानाविध बलवीर्य नाना प्रकारसे कार्य कर रहे हैं। आप हमें सब प्रकारकी दृष्टि-शक्तियोंसे पूर्ण और परितृप्त कीजिये, परम व्योममें अमृतत्वमें प्रतिष्ठित कर दीजिये।'

---

*. कहीं बाहर कार्यके लिये जाते समय पूर्ण श्रद्धाभक्ति और एकाग्रताके साथ इस मन्त्रका जप करके तथा जप करते हुए जानेसे कार्य-सिद्धि होती है।

सूर्यके सहचारी देव—वरुण, मित्र, अर्यमा, भग, पूषा

अग्नि, इन्द्र, सूर्य और सोम—ये चार प्रधान वैदिक देवता हैं। इनमेंसे प्रत्येकके अपने-अपने सहचारी देव हैं जो सदा उसके सङ्ग रहते हैं और उसके कार्य-व्यापारमें सहायता करते हैं। यहाँ हम वेदके गूढार्थ-द्रष्टा महर्षि श्रीअरविन्दके अनुसार सूर्यके सहचारी देवों—वरुण, मित्र, अर्यमा, भग और पूषाके स्वरूप और कार्यव्यापार संक्षेपमें प्रतिपादित करते हैं।

सूर्यदेव परम सत्यकी ज्योति हैं और हमारी सत्ता, हमारे ज्ञान और कर्मके मूलमें जो सत्य कार्य कर रहा है उसके अधिष्ठातृदेवता भी वे ही हैं। सूर्यदेवताके परम सत्यको यदि हम प्राप्त करना चाहते हैं, अपनी प्रकृतिमें दृढतया स्थापित करना चाहते हैं, तो उसके लिये कुछ शर्तोंकी पूर्ति करना आवश्यक है। एक विशाल पवित्रता एवं निर्मल विशालता प्राप्त करना आवश्यक है जो हमारे समस्त पाप-पुञ्ज एवं कुटिल असत्यका उन्मूलन कर दे। उस विशालता एवं पवित्रताकी साक्षात् मूर्ति ही हैं वरुणदेव। इसी प्रकार प्रेम और समग्र बोधकी शक्ति प्राप्त करना भी अनिवार्य है जो हमारे सभी विचारों, कार्यों और आवेगोंको परिचालित करे और उनमें सामञ्जस्य स्थापित करे। ऐसी शक्तिके साक्षात् विग्रह ही हैं मित्रदेव। और फिर विशद विवेकसे पूर्ण अभीप्सा तथा पुरुषार्थकी अक्षयशक्ति भी अपरिहार्य है। उसीका नाम है अर्यमा। इनके साथ ही अपेक्षित है सब पदार्थोंके समुचित दिव्य उपभोगकी सहज सुखमय अवस्था जो पाप, प्रमाद और पीड़ाके दुःस्वप्नको दूर भगा दे। ऐसा कर सकनेवाली शक्ति ही है भग देवता। ये चारों दिव्यशक्तियाँ सूर्यदेवताके सत्यकी शक्तियाँ हैं।

किंतु हमारे अंदर उनका दिव्य कार्य सहसा ही संपन्न नहीं हो सकता। मनुष्यके अंदर देवत्वकी सृष्टि एकदम ही नहीं की जा सकती, अपितु एकके बाद एक दिव्य उषाओंके उदयसे, प्रकाशप्रद सूर्यके समय-समयपर पुनः-पुनः उदयनसे होनेवाले ज्योतिर्मय विकास एवं क्रमिक पोषणके द्वारा ही साधित हो सकती है। इसके लिये सूर्य अपने आपको एक अन्यरूपमें पोषक एवं संवर्धक पूषाके रूपमें प्रकट करते हैं। साधककी अभीष्ट आध्यात्मिक सम्पदा दिन-प्रतिदिन इस पूषा (पोषक सूर्य) के पुनरावर्तनके समय वृद्धिको प्राप्त होती है। पूषा सूर्यशक्तिके इस पहलूका प्रतिनिधित्व करते हैं।

वरुण परम सत्यके सूर्य परमेश्वरकी सक्रिय सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ताके मूर्त विग्रह है। सत्ता और चेतनाकी विशालता, ज्ञान और शक्तिकी बृहत्ता एवं विराट्ताके राजा हैं वरुणदेव। वे आकाशसदृश, सिन्धुसम, अनन्त विस्तारवाले राजा, स्वराट् और सम्राट् हैं। दुर्निवार पाशरूप शस्त्रके धारक दण्डदाता हैं और उपचारकर्ता भी।

मित्र प्रेमके देवता, दिव्य सखा, मनुष्यों और देवोंके सदय सहायक हैं। वेदोंके अनुसार, सभी देवोंमें प्रियतम देव ये ही हैं। इसी प्रकार अर्यमा अन्तर्यज्ञ और अभीप्साकी तथा सत्यके लिये संग्रामकी मूर्तिमती शक्ति हैं। पूर्णता, प्रकाश और दिव्यानन्दकी प्राप्तिके लिये मनुष्यजाति जो यात्रा कर रही है उसकी संचालक शक्ति अर्यमा ही हैं। सृष्टिके समस्त पदार्थोंके आनन्दका उपभोग करनेवाली शक्ति हैं भगदेवता। प्रचुर ऐश्वर्यों (वाजों*) के प्रभु एवं स्वामी हमारी क्रमिक अभिवृद्धिके अधिपति, हमारे संगी-साथी हैं पूषा देवता। वे हमारे प्रचुर ऐश्वर्योंका क्रमसे संवर्धन करते हैं।

---

* भगवान् सूर्यका नाम वाजसनि भी है।

कल्याण-मूर्ति सूर्यदेव

(लेखक—श्रीमत् प्रभुपाद आचार्य श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी)

आर्य ऋषियोंके मतानुसार अति प्राचीन कालमें जब कहीं कुछ और नहीं था, तब अद्वैत, परमकारण पुरुष इस जगत्के कारण पुरुष थे। वे सच्चिदानन्दमय परम तेजस्वी पुरुष प्रकृतिके अप्रकाश्य पुरुष हैं। उन परम पुरुषके प्राकृतिक हाथ, पैर और नेत्र आदि न होते हुए भी वे ग्रहण, गमन और दर्शन करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। उन्होंने जब एकसे अनेक होनेकी कामना की तो उनके नेत्रोंसे चारो ओर—सर्वत्र सूर्यकी ज्योतिराशि छिटक गयी और प्रकृतिकी रचनामें परमाणु परिव्याप्त होकर विश्वसृष्टिकी आधार-शिला स्थापित हो गयी। उन परम पुरुषोत्तमके दृष्टिपातसे विश्व सहसा आलोकमय और सृष्टि चञ्चल हो गयी। उनके दृष्टि बद करनेसे योग-निद्राकी अवस्थामें सम्पूर्ण विश्वकी नामरूपरहित अन्धकार रात्रि होती है। इस निविड अन्धकारसे मुक्ति पानेके लिये ज्योतिर्मय राज्यमें प्रवेश-प्राप्तिका साधन है—प्रार्थना—मुखर वेदमन्त्र। अनन्त आकाशमे, विचित्र, दिव्य, नाना वर्णोंके आलोकनिर्झरित अनन्त ज्योति-बिन्दु वरुण-लोकमें प्रचुर जल, इन्द्रलोकमें विद्युत्, वज्र, अग्नि, अशनिपात, वर्षाका पानी, शस्य-क्षेत्रका पोषण, प्राणि-जगत्का पालन, सर्वत्र व्यापक स्थावर-जङ्गमकी आत्मा सूर्य हैं। वैज्ञानिकोंके विश्लेषणात्मक मण्डित विचारोंसे सूर्य एक नहीं, अनेक हैं। ग्रहों-उपग्रहोंके सम्बन्धमें सूर्य उनके छोटे-बडे होनेके कारण उनके बीचकी दूरीका परिमाण, तेजविकीर्णता, शक्तिका प्रचुर तारतम्य एव नाना प्रकारसे आकर्षणके धारक हैं। सूर्य ही सम्पूर्ण सौर-जगत्की शक्तिके सचालक, प्रेरक, गतिदायक एव विलोप-साधक हैं। ऋषि-महर्षियोंने एक-दो करके सूर्यकी गणना की। स्थ ा आदित्य अपने अनन्त स्वरूपमें सर्वव्यापक तापशक्तिसे युक्त, परम आश्रय तथा परम अवलम्बन हैं।

अनन्त तरंगोंवाला सागर सूर्यको जलका उपायन देता है। सूर्य उससे मेघोंकी सृष्टि करते है। विद्युत्-तरंगोंसे वे क्रीड़ा करते हैं तथा मेघ-वर्षणके जलसे स्रष्टाकी सृष्टि-जगत्को परितृप्त करते हैं। यज्ञकुण्डमें अग्निरूपमें अवस्थान करके सूर्यदेवता यज्ञेश्वर नारायणकी पूजा ग्रहण करते हैं। जल, पृथ्वी, वायु और आकाशमें—सर्वत्र सूर्य-नारायण और उनकी शक्ति विद्यमान है।

ऐसे परम उपकारी भगवान् सूर्यकी श्रद्धासहित पूजा-उपासना कौन नहीं करेगा। इसीलिये जडवादी, चिद्वादी, देहवादी, वैज्ञानिक, ज्ञानी, विज्ञानी, योगी और साधक भक्तजन—सभी सूर्य तथा सूर्यविज्ञानके रहस्योंके जाननेके लिये सर्वत्र समुत्सुक होकर साधनमें रत हैं। जो शक्ति विश्वप्राणका नियन्त्रण करती है, उसे किसी भी प्रकार सम्मुखस्थ एवं अनुकूल करना सम्भव होनेपर देह, मन, प्राण, सुस्थ, सवल, कर्मठ तथा सब प्रकारसे आत्ममण्डित करना सम्भव है। प्रतिदिन साधुजन तीन बार इन्हीं सूर्यके सम्मुख होनेके लिये मन्त्रोंद्वारा उपासना करते हैं। वे मन्त्र ही सूर्योपस्थान-मन्त्र हैं। सम्यक् ध्यानके लिये वे ही प्रधान मन्त्र हैं। सूर्यदेवताके सम्मुख होकर गायत्रीमन्त्रसे उनकी शक्तिकी प्रेरणा और सद्बुद्धि-लाभकी प्रार्थना की जाती है। जो वाक्शक्ति, वाङ्मय-रचना तथा सूर्याग्नि देवता-का दान है, उसे विश्वजनके लिये विरक्ति उत्पन्न करनेमें प्रयुक्त न कर समाजको धारण-पोषण करनेमें नियुक्त करनेसे ही आत्म-तुष्टि तथा विश्वका कल्याण होता है।

शैव, शाक्त, गाणपत्य और वैष्णव आदि भारतीय साधना-पद्धतियोंके अन्तर्गत सभी ज्योतिर्मण्डलके मध्यस्थ

सूर्य-स्वरूपमें ही अपने आराध्य देवताका ध्यान करते हैं। सूर्यके समक्ष साधुजन शुभ प्रेरणाके निमित्त गायत्री-मन्त्रसे प्रार्थना निवेदित करते हैं। इस विराट् आलोकधाराके साथ एकात्मताकी भावना ही दिव्य भगवदीय प्रेम, परमगति तथा परमशान्ति है। जो प्रेम सूर्यके प्रकाशसे उद्भासित है, वही सच्चा प्रेम है। कवि, ज्ञानी और दार्शनिक—सभी सम्पूर्ण जगत्के साथ प्रेमसम्बन्ध स्थापित करके सच्चे मानव बन सकते हैं।

हम ध्यान करते हैं—**'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य'** परम आदरणीय ये सविता देवता 'भर्ग' अर्थात् दीप्तिसे समस्त विश्वको आलोकित और नियन्त्रित करते हैं। सूर्य देवताकी यह प्रार्थना भारतीय संस्कृतिकी विशिष्ट प्रार्थना है। वैदिक ऋषियोंने सत्य-दर्शनके लिये किस यन्त्र-तन्त्रके द्वारा इस तेजपुञ्जकी महामहिमाका अवधारण किया था, यह कथा आज हमे ज्ञात नहीं है। किंतु वर्तमान युगके वैज्ञानिक उन यन्त्रोंकी सहायतासे गगन-मण्डलचारी नक्षत्रमण्डलके साथ नाना प्रकारसे परिचय-सम्बन्ध और अनुसन्धानके निमित्त सतत जाग्रत् हैं। कल्याण-प्रदाता परब्रह्मस्वरूप इन्हीं भगवान् सूर्यका हम नित्य स्मरण करते हैं।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्। (—ऋक्० १।५०।१)

स्वयंप्रकाश सूर्य समस्त प्राणिसमूहको जानते हैं। उनके अश्वगण (किरणसमूह) उनके दर्शनके लिये उन्हे ऊँचे किये रखते हैं। प्राचीन कालमें लोग जानते थे कि अनन्त आकाशमें बहुत-से ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डका पृथक् नियन्त्रण और अपनी-अपनी महिमा तथा विशिष्ट अवस्थिति है। यद्यपि हमारा यह सौर-जगत् ब्रह्माण्डकी तुलनामें क्षुद्र है; तथापि इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा चतुर्भुज हैं, बृहत्तरमण्डलोंके ब्रह्मा कोई शतमुख तथा कोई सहस्रमुख हैं। आधुनिक वैज्ञानिकगण इस प्रकारके बृहत्तर नक्षत्रमण्डलोंमें सौर जगत्के अवस्थानके सम्बन्धमें निःसदेह हैं। उनके विज्ञानसम्मत उपायोंने दूर-दूरान्तरके विचित्र नक्षत्रोंके समूहोंका अस्तित्व प्रमाणित कर दिया है। एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञानीने भर्ग या कन्या-राशिके परिमण्डलके मध्यमें 'एम० ८७' नामसे एक अपरिमेय बृहत् उपनक्षत्रका अनुसंधान किया है। कैलिफोर्नियामें माउंट पैलीमरिमें अवस्थित हेलमान मन्दिर एवं आरिजोनामें किटपित्रके राष्ट्रिय मानमन्दिरसे पर्यवेक्षण करके उक्त वक्तव्यका समर्थन किया गया है। इस 'एम० ८७' मण्डलकी गुरुत्वाकर्षणशक्ति असाधारण है। परिमण्डलमें अवस्थित इसी 'एम० ८७'ने भर्गो नक्षत्रके १०० नक्षत्रोंको अपनी आकर्षणशक्तिसे महाकाशमें स्थिर बना रखा है। वैज्ञानिकोंका मत है कि इस तथ्यपर विचार करनेसे लगता है—जैसे कोई मानो अलक्ष्य रहकर ग्रह-मण्डलोंकी गतिविधिको नियन्त्रित या सुनियन्त्रित करता है। वही शक्ति विभिन्न प्रकारकी तरंगोंको ५००० प्रकाशवर्षोंकी दूरीतक प्रेषण करती है। **'सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य'**—कहकर मानो भारतके वैदिक ऋषिगण इसी अदृश्य तात्त्विक शक्तिकी ओर इंगित कर नित्य अभ्यर्थना करनेकी प्रेरणा देते हैं।

प्रतत्ते अद्य शिपविष्ट नामार्यः
शंसामि वयुनानि विद्वान्।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥
(—ऋग्वेद ७।१००।५)

हे ज्योतिर्मय प्रभो! तुम्हारे नामकी महिमा जानकर मैं उसीका कीर्तन करता हूँ। हे महामहिमामय भगवन्! मैं क्षुद्र होते हुए भी इस ब्रह्माण्डके उस पार अवस्थित होनेके लिये आपकी स्तुति करता हूँ। (आप मुझे वह परम कल्याण दें; आप कल्याण मूर्ति हैं।)

सर्वस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण

(लेखक—पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)

भुवन-भास्कर भगवान् श्रीसूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं—प्रकाशस्वरूप हैं। वेद, इतिहास और पुराण आदिमें इनका अतीव रोचक तथा सारगर्भित वर्णन मिलता है। ईश्वरीय ज्ञानस्वरूप अपौरुषेय वेदके शीर्षस्थानीय परम गुह्य उपनिषदोंमे भगवान् सूर्यके स्वरूपका मार्मिक कथन है। उपनिषदोंके अनुसार सबका सारतत्त्व एक, अनन्त, अखण्ड, अद्वय, निर्गुण, निराकार, नित्य, सत्-चित्-आनन्द तथा शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप ही परमतत्त्व है। उसका न कोई नाम है न रूप, न क्रिया है न सम्बन्ध और न कोई गुण एवं न जाति ही है। तथापि गुण, सम्बन्ध आदिका आरोप कर कहीं उसे ब्रह्म कहा गया है, कहीं विष्णु, कहीं शिव, कहीं नारायण, कहीं देवी और कहीं भगवान् 'सूर्यनारायण'।

भगवान् सूर्यके तीन रूप हैं—(१) निर्गुण निराकार, (२) सगुण निराकार और (३) सगुण साकार।

प्रथम तथा द्वितीय निराकार-रूपको एक मानकर कहीं दो ही रूपोंका वर्णन मिलता है। जैसे 'मैत्रायण्युपनिषद्'में आया है—

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपं मूर्तं चामूर्तं च। अथ यन्मूर्तं तदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म, यद्ब्रह्म तज्ज्योतिर्यज्ज्योतिः स आदित्यः। (५ । २)

'ब्रह्मके दो रूप हैं—एक मूर्त—साकार और दूसरा अमूर्त—निराकार। जो मूर्त है, वह असत्य—विनाशी है और जो अमूर्त है, वह सत्य—अविनाशी है। वह ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वह ज्योति-प्रकाशस्वरूप है और जो ज्योति है, वह आदित्य—सूर्य है।'

यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण निराकार हैं तथापि अपनी मायाशक्तिके सम्बन्धसे सगुण कहे जाते हैं। वस्तुतः सामान्य सम्बन्धसे नहीं, तादात्म्याध्यास-सम्बन्धसे ही गुणोंका आरोप, क्रियाका कथन, संसारका सर्जन-पालन तथा संहारका भी आरोप होता है। अघटित-घटना-पटीयसी मायाके कारण ही वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, उपास्य तथा समस्त प्राणियोंके कर्मफलप्रदाता कहे जाते हैं। भगवान् सूर्यद्वारा ही सृष्टि होती है। वे अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। अतः चराचर समस्त संसार सूर्यका रूप ही है। सूर्योपनिषद्में इसीका प्रतिपादन कुछ विस्तारसे किया गया है।

कारणसे कार्य भिन्न नहीं होता। सूर्य कारण हैं और अन्य सभी कार्य। इसलिये सभी सूर्यस्वरूप हैं और वे सूर्य ही समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं। यह सूर्यका एकत्व ज्ञान ही परमकल्याण—मोक्षका कारण है। स्वयं भगवान् सूर्यका कथन है—**'त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात् परमात्मनः'** (—मण्डलब्राह्मणोपनिषद् ३ । २) 'परम आत्माके पूर्ण होनेके कारण कोई भेद नहीं है। तुम और मैं एक ही हैं।' **"ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति"** (—मण्डलब्रा० ३ । २) 'मैं ब्रह्म ही हूँ—यह जानकर पुरुष कृतकृत्य होता है।' इस प्रकार निर्गुण-सगुण निराकार भगवान् सूर्यके अभिन्न ज्ञानसे परमपद—मोक्ष प्राप्त होता है।

सगुण निराकार और सगुण साकारस्वरूपकी उपासना-का वर्णन अनेक उपनिषदोंमे मिलता है। **'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत'** (छा० १ । ३ । १)। जो ये भगवान् सूर्य आकाशमें तपते हैं, उनकी उद्गीथ-रूपसे उपासना करनी चाहिये। **'आदित्यो ब्रह्मेति'** (छा० ३ । ३ । १)। आदित्य ब्रह्म है—इस रूपमें आदित्यकी उपासना करनी चाहिये—**'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति'**

(मैत्रा० उ० ५ । २) आदित्य ही ओम् है - इस रूपमें आदित्यका ध्यान करते हुए अपनेको तद्रूप करे।

'अथ ह सांकृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम। तमादित्यं नत्वा चाक्षुष्मतीविद्यया नमस्तुवत्' (—अक्ष्युपनिषद्)। भगवान् सांकृति मुनि आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् सूर्यको नमस्कारकर चाक्षुष्मती विद्याकी प्राप्तिके लिये उनकी स्तुति की। 'याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम। तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुब्रूहीति' (—मण्डल ब्रा० १ । १) महामुनि याज्ञवल्क्य आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् आदित्यको प्रणाम कर कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये।' सूर्यदेवने दोनोको दोनो विद्याएँ दीं।

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शंकरका कैलास तथा चतुर्मुख ब्रह्माका स्थान ब्रह्मलोक है, वैसे ही आप भुवनभास्कर सूर्यका स्थान आदित्यलोक—सूर्य-मण्डल है। प्रायः लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायणको एक ही मानते हैं। सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं। सूर्यसे ही दिन, रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदिका विभाग होता है। सूर्य संसारके नेत्र हैं। इनके बिना सब अन्धकारमय है। सूर्य ही जीवन, तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं— 'आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रं आत्मा-मनः' (—नारायणोपनिषद् १५), 'मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते' (—तै० उ० १।५।२)। 'भूः भुवः स्वः—इन तीन लोकोंकी अपेक्षा 'महः' चौथा लोक है, वह आदित्य ही है। आदित्यसे ही समस्त लोक वृद्धि प्राप्त करते हैं। आदित्यलोक महान् है। भूः आदि तीनों लोक इसके अवयव - अङ्ग हैं और यह अङ्गी है। आदित्यके योगसे ही अन्य लोकादि महत्ता प्राप्त करते हैं। आदित्यकी महिमा अनिर्वचनीय है।

आदित्यलोकमें भगवान् सूर्यनारायणका साकार विग्रह है। वे रक्तकमलमें स्थित, हिरण्मय वर्ण, चतुर्भुज तथा दो भुजाओंमें पद्म धारण किये हुए हैं और दो हस्त अभय तथा वर-मुद्रासे युक्त हैं। वे सात अश्वयुक्त रथमें सवार होते हैं। जो उपासक ऐसे उन भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं, उन्हें मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। उपासकके सम्मुख प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्ति करते हैं।

इस प्रकार भगवान् सूर्य विभिन्न रूपोंमें होते हुए भी एक ही हैं। नाम, रूप, क्रिया और इससे भिन्न जीव तथा अखण्ड, अनन्त, चेतन-तत्त्व भी एकमात्र भगवान् सूर्य ही हैं। एकत्वका प्रतिपादन करनेवाली अनेक श्रुतियाँ हैं। स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः (—तै० उ० ३।१०।४) 'जो वह परमतत्त्व इस पुरुषमें है और जो आदित्यमें है, वह एक ही है।' जैसे घटाकाश और महाकाशमें भेद नहीं है, वैसे ही जीव और परम-तत्त्वमें किंचित् भी भेद नहीं है। वह परमतत्त्व भगवान् सूर्य ही हैं। सूर्य सर्वस्वरूप ब्रह्म हैं।

अप्रतिमरूप रवि अग-जग-स्वामी

(रचयिता—श्रीनरमुनीजी तिवारी)

अनल-अनिल तन उद्भासी, आदिसृष्टिका है वासी।
सहस्र अरुण रुचि कमलाक्षी, सकल विश्वका है साक्षी॥
रूप-गंध अरु रस-कारी, अमित तेजमय छविधारी।
देव-ब्रह्ममय है सब जगका, पूज्य सकल सुर-नर-मुनि-जनका॥
जल-चर, थल-चर, नभ-चर प्राणी, सबका ही वह जीवनदानी।
विष्णु सनातन नित नभगामी, अप्रतिमरूप रवि अग-जग-स्वामी॥

भारतीय संस्कृतिमें सूर्य

(लेखक—प्रो० डॉ० श्रीरामजी उपाध्याय एम्० ए०, डी० लिट्०)

रूपं यदेतद् बहुधा चकास्ति
यद्येन भावी भविता न जातु ।
तच्चक्षुरर्कात्मकमीश्वरस्य
वन्दे वपुस्तैजससारधाम्नः ॥

भारतीय संस्कृतिमे आरम्भसे ही सूर्यकी महिमा अतिशय रही है । वह भारतीय आध्यात्मिक जीवनका उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करती है । स्वामी रामतीर्थके शब्दोमे सूर्य सबसे बडे सन्यासी हैं; क्योकि वे सबको प्रकाश और जीवन-प्रदान करते हैं ।* प्रकाश देनेका काम आचार्यका है । वैदिक कालमे ही सूर्यको आचार्यरूपमे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी । भगवान् सूर्यने याज्ञवल्क्यको वाजसनेयिसंहिताका उपदेश दिया था । गायत्रीके '**धियो यो नः प्रचोदयात्**'के द्वारा सूर्यका गुरुत्व ब्रह्मचारी और आचार्यके सम्बन्धमे प्रस्फुटित हुआ है । वैदिक युगसे ही उपनयनमे अपनी और विद्यार्थीकी अञ्जलि जलसे भरकर आचार्यके मन्त्र पढनेकी विधि रही है; यथा—

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥
(—ऋग्वेद ५ । ८२ । १)

अर्थात्—'हम सवितादेवके भोजनको प्राप्त कर रहे हैं । यह श्रेष्ठ है, सबका पोषक और रोगनाशक है ।' यह मन्त्र पढ़कर आचार्य अपने हाथका जल विद्यार्थीकी अञ्जलिमे डाल देते और उसका हाथ अँगूठेसे पकड़ लेते थे । इसके पश्चात् आचार्य कहते थे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्यां गृह्णाम्यसौ ।

'सवितादेवके अनुशासनमें अश्विद्वयकी बाँहोसे, तथा पूषाके हाथोंसे मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ ।'

इस प्रकार शिष्य और आचार्यके सम्बन्धमें सूर्यकी उपस्थिति प्रमाणित होती थी और यह सिद्ध किया जाता था कि जैसे सूर्य प्रकाश देकर जगत्का अन्धकार निरन्तर दूर करते हैं, वैसे ही आचार्य शिष्यका अज्ञानान्धकार दूर करते रहेगे । इस अवसरपर सूर्यसे प्रार्थना की जाती थी—

मयि सूर्यो भ्राजो दधातु—अर्थात्—'सूर्य मुझमे प्रकाशकी प्रतिष्ठा करे ।'

सूर्यसे आजीवन कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त होती है । सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति है—**सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकम्** अर्थात् सूर्य यत. लोकको कर्ममे लगा देते हैं अतः 'सूर्य' हैं ।

सूर्यको निष्काम कर्मकी प्रेरणा परमात्म-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे मिली जैसा कि गीता (४ । १)में उन्होंने स्वय कहा है ।

सूर्यके सात अश्वोंद्वारा निष्काम कर्मयोगका चारित्रिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है । उनके नाम ये हैं—

जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः ।
मनोजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्तिताः ॥

परम्परा भी सूर्यवंशमे निष्काम कर्मयोग और आत्मज्ञानकी शेवधि (कोष) रही है । सूर्यके पुत्र यमसे नचिकेताने कर्मयोगकी शिक्षा प्राप्त की थी ।

सूर्यकी उपर्युक्त विशेषताओके आधारपर पौराणिक युगमें सौर-सम्प्रदायका प्रवर्तन हुआ । किसी देवताके नामपर सम्प्रदाय बनना तभी सम्भव होता है, जब वह सृष्टिका कर्ता हो, उससे सारी सृष्टिका उद्भव होता हो

* सत्य ताताान सूर्यः । (ऋग्वेद १ । १०५ । १२) यह आध्यात्मिक जीवनका प्रतीक वाक्य है ।

और अन्तमें उसमें सारी सृष्टिका विलय भी हो जाता हो। इसकी पुष्टि सूर्योपनिषद्‌में प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद (१। ११५। १)में भी इस धारणाका परिपाक हुआ है। उसके अनुसार—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

ऋग्वेदमें सूर्यका नाम विश्वकर्मा मिलता है। इससे उनकी सृष्टि-रचनाकी योग्यता प्रमाणित होती है।

सूर्योपनिषद्‌में सूर्यका वह स्वरूप स्पष्टरूपसे वर्णित है, जिससे वे सबका उद्भव और विलयका आश्रय प्रतीत होते हैं। देखिये—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

अर्थात्—'सूर्यसे सभी भूत उत्पन्न होते हैं, सूर्य सबका पालन करते हैं और सूर्यमें सबका विलय भी होता है। जो सूर्य है, वही मैं हूँ।'

उपनिषदोंमे आदित्यको सत्य मानकर उन्हें ब्रह्म बताया गया है। इस प्रकार चाक्षुष पुरुषकी आदित्य पुरुषसे अभिन्नता है; यथा—

तद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तावेतावन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ।

(—बृहदारण्यक० ५।५।२)

'यह सत्य आदित्य हैं। जो इस आदित्यमण्डलमें पुरुष है और जो दक्षिण नेत्रमें पुरुष है, वे दोनो पुरुष एक दूसरेमें प्रतिष्ठित हैं।'[1]

इस प्रकार अधिदैव आदित्य पुरुष और अध्यात्म चाक्षुष पुरुषका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बनाकर सूर्यको प्रथम उद्भव बताया गया है। अथर्ववेदके अनुसार सूर्य सबके नेत्र हैं।[2]

इसके पीछे उपनिषद् दर्शन है—'आप एवेदमग्र आसुः। ता आपः सत्यमसृजन्त। सत्यं ब्रह्म। तद् यत्तत् सत्यमसौ स आदित्यः' इत्यादि। गायत्री सूर्यकी उपासनाका प्रथम सोपान है।

गायत्री आदित्यमें प्रतिष्ठित है। शंकरके अनुसार गायत्रीमें जगत प्रतिष्ठित है। गायत्री जगतकी आत्मा हैं। आदित्य-हृदयमें इस विचारधाराका समर्थन करते हुए कहा गया है—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥

परवर्ती कालमें 'सर्वदेवमयो रविः' के प्रतिभासके द्वारा सभी सम्प्रदायोंको परस्पर निकट लाया गया। महाभारतमें युधिष्ठिरने सूर्यकी स्तुति की है—

त्वमिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥

अर्थात्—'सूर्य! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, मन, प्रभु और ब्रह्म हैं।'

सूर्यतापिनी उपनिषद्‌में उपर्युक्त विचारधाराका समर्थन मिलता है; यथा—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥
प्रत्यक्षं दैवतं सूर्यं परोक्षं सर्वदेवताः।
सूर्यस्योपासनं कार्यं गच्छेद् वै सूर्यसंसदम्॥

आदित्यहृदयके अनुसार एक ही सूर्य तीनों कालोंमें क्रमशः त्रिदेव बनते हैं। यथा—

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः॥

---

१. स आदित्यः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति चक्षुषीति। २. सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथ्वी शरीरम्।
(—अथर्व० ५।७।९)

केवल देव ही नहीं, अपितु त्रिपुरसुन्दरी ललिता-देवीका ध्यान करनेके लिये भी उनका सूर्यमण्डलस्थ-स्वरूप वरणीय है; यथा—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत् सुसाधकः॥

विष्णुके समान उनके आराधनकी विधियाँ रही हैं। कुछ पूजा-सम्बन्धी विशेपताएँ भी हैं; जैसे—सूर्य-नमस्कार, अर्घ्यदान आदि। सूर्योदयसे सूर्यास्ततक सूर्योन्मुख होकर मन्त्र या स्तोत्रका जप आदित्यव्रत होता है। षष्ठी या सप्तमी तिथियोंमें दिनभर उपवास करके भगवान् भास्करकी पूजा करना पूर्ण व्रत होना है। पौराणिक धारणाके अनुसार जो-जो पदार्थ सूर्यके लिये अर्पित किये जाते हैं, भगवान् सूर्य उन्हे लाख गुना करके लौटा देते हैं। उस युगमे सूर्यकी एक दिनकी पूजा सैकड़ों यज्ञोके अनुष्ठानसे बढकर मानी गयी है।[1]

सौर पुराणोमें सूर्यको सर्वश्रेष्ठ देव बतलाया गया है और सभी देवताओको इन्हींका स्वरूप कहा है। इन पुराणोके अनुसार भगवान् सूर्य बारंबार जीवोंकी सृष्टि और संहार करते हैं। ये पितरोंके और देवताओके भी देवता हैं। जनक, बालखिल्य, व्यास तथा अन्य संन्यासी योगका आश्रय लेकर इस सूर्य-मण्डलमें प्रवेश कर चुके है। ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगतके माता, पिता और गुरु हैं।[2]

सूर्यके बारह रूप हैं। इनमेसे इन्द्र देवताओके राजा हैं, धाता प्रजापति हैं, पर्जन्य जल बरसाते हैं, त्वष्टा वनस्पति और ओषधियोमें विराजमान हैं, पूषा अन्नमें स्थित है और प्रजाजनोंका पोषण करते हैं, अर्यमा वायुके माध्यमसे सभी देवताओमें स्थित हैं, भग देहधारियोके शरीरमें स्थित हैं, विवस्वान् अग्निमे स्थित हैं और जीवोके खाये हुए भोजनको पचाते हैं, विष्णु धर्मकी स्थापनाके लिये अवतार लेते हैं, अंशुमान् वायुमें प्रतिष्ठित होकर प्रजाको आनन्द प्रदान करते हैं, वरुण जलमें स्थित होकर प्रजाकी रक्षा करते हैं तथा मित्र सम्पूर्ण लोकके मित्र हैं। सूर्यका उपर्युक्त वैशिष्ट्य उन्हे अतिशय लोकपूज्य बना देता है।[3]

सूर्यके हजार नामोंकी कल्पना स्तोत्ररूपमे विकसित हुई है। इन्हीं नामोका एक संक्षिप्त संस्करण बना, जिसमे केवल इक्कीस नाम हैं। इसको स्तोत्रराजकी उपाधि मिली। इसके पाठसे शरीरमे आरोग्यता, धनकी वृद्धि और यशकी प्राप्ति होती है।[4]

सौर-सम्प्रदायके अनुयायी ललाटपर लाल चन्दनसे सूर्यकी आकृति बनाते है और लाल फूलोकी माला धारण करते हैं। वे ब्रह्मरूपमें उदयोन्मुख सूर्यकी, महेश्वर-रूपमें मध्याह्न सूर्यकी तथा विष्णुरूपमें अस्तोन्मुख सूर्यकी पूजा करते हैं। सूर्यके कुछ भक्त उनका दर्शन किये बिना भोजन नहीं करते। कुछ लोग तपाये हुए लोहेसे ललाटपर सूर्यकी मुद्राको अङ्कित करके निरन्तर उनके ध्यानमें मग्न रहनेका विधान अपनाते हैं।

भगवान् सूर्यके कुछ उपासक तीसरी शताब्दीमे बाहरसे भारतमे आये। ऐसी जातियोंमे मगोंका नाम उल्लेखनीय है। राजपूतानेमें मग जातिके ब्राह्मण आजकल भी मिलते हैं। यह जाति मूलतः प्राचीन ईरानकी 'मग' जाति है। वहींसे ये भारतमे आये। कुशानयुगमे सूर्यकी पूजा-विधि ईरानसे भारतमें आयी। सूर्य-पूजाका प्रसार प्राचीन कालमे एशिया माइनरसे रोम तक था। यूनानका सम्राट् सिकन्दर सूर्यका उपासक था।

भारतमें सूर्यकी पूजासे सम्बद्ध बहुत-से मन्दिर पाँचवीं शतीके आरम्भ कालसे बनते रहे हैं। इनमेसे सबसे अधिक प्रसिद्ध तेरहवीं शतीका

१. ब्रह्मपुराण, अध्याय २९ से। २. वही अध्याय २९-३०से। ३. वही अध्याय २९-३० से। ४. वही अध्याय ३१। ३१—३३।

कोणार्क सूर्य-मन्दिर आज भी वर्तमान है। छठी शतीसे कुछ राजा प्रमुखरूपसे सूर्यके उपासक रहे हैं। इनमेंसे हर्षवर्धन और उनके पूर्वजोंके नाम प्रसिद्ध हैं।

सौर-सम्प्रदायका परिचय ब्रह्मपुराणके अतिरिक्त सौर-पुराणसे भी मिलता है। ब्रह्मपुराणमें सूर्योपासनाकी प्रमुखता होनेसे इसका भी नाम सौरपुराण है। सौरपुराणमें शैव-सम्प्रदायोंका परिचय विशेषरूपसे मिलता है। इसमें शिवका सूर्यसे तादात्म्य भी दिखलाया गया है। स्वयं सूर्यने शिवकी उपासनाको श्रेयस्कर कहा है।

अकबरने आदेश निकाला था। प्रातः, मध्याह्न, सायं और अर्धरात्रि—चार बार सूर्यकी पूजा होनी चाहिये। वह स्वयं सूर्यके अभिमुख होकर उनके सहस्र-नामका पाठ एवं पूजन करता था। इसके पश्चात् दोनों कानोंका स्पर्श करके चक्राकार घूमता और अपनी अंगुलियोंसे कर्णपालीको पकड़ता था। वह अन्य विधियोंसे भी सूर्यकी पूजा करता था। जहाँगीर भी सूर्यका आदर करता था। उसने अकबरके द्वारा सम्मानित सौर-संवत्को राजकीय आय-व्ययकी गणनाके लिये प्रचलित रखा था।*

भगवान् भास्कर

(लेखक—डॉ० श्रीमोतीलालजी गुप्त, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

सृष्टिका वैचित्र्य देखकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है, कल्पना कुण्ठित होती है और मनकी मनस्विता भी हार मानकर बैठ जाती है। जिधर भी दृष्टि डालिये—कितना विशाल, विस्तृत, वैविध्यपूर्ण, विचित्र प्रसार लक्षित होता है—कलकल ध्वनि करते झरने, पयस्विनी सरिताएँ, स्फटिकमणिसदृश पारदर्शी सरोवर, रत्नगर्भा पृथ्वी, उच्च शिखरोंसे युक्त एवं हिमाच्छादित दीर्घकाय पर्वत-मालाएँ, शीतल-मन्द-सुगन्ध गुणोंका वाहक समीर और उधर प्रकृतिका अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रलयकारी रूप जलप्लावन, भूमि-विघटन, भूचाल, विद्युत्-प्रतारण आदि रूपमें देखा जाता है। पर पृथ्वीके इस विस्मयकारी दृश्यसे भी बढ़कर अति विस्तृत, सर्वत्र व्याप्त तथा असीम आकाशमण्डल है, जिसके नक्षत्र अथवा ग्रह-पिण्ड हमें अपनी स्थिति एवं गतिसे ही प्रभावित नहीं करते, अपितु हम आश्चर्यचकित हो विस्फारित नेत्रोंसे उनकी ओर देखते ही रह जाते हैं। डेनमार्कके एकान्त उपवनमें स्थित कुटियाकी वे रातें मुझे स्मरण हैं। उस समय आकाश निर्मल था। वह ऐसा प्रतीत होता था जैसे मोटे-मोटे वृहदाकार तारोंसे परिपूरित आकाश ही बहुत समीप आ गया हो। इसी प्रकार नक्षत्रोंका वह स्वच्छ चन्द्र-बिम्ब भी, जो आकारमें इतना विशाल दिखायी देता था, मानो एक बड़ा-सा जलशायी वह कमल-पत्र, जिसका व्यास लगभग १॥ मीटरका था और उठे हुए किनारे कमल-पत्रको एक बड़ी परातका रूप प्रदान कर रहे थे। इतना विशाल चन्द्रबिम्ब और तारोंकी वह अनूठी जगमगाहट केवल वहीं देखा। गगनमण्डलके इन विस्मयकारी तथ्योंका परिचय प्राप्त करनेके लिये वैज्ञानिक सतत प्रयत्नशील हैं—रहस्योद्घाटन तो शब्दमात्रसे ही बोधित है। इस प्रसङ्गमें चन्द्रलोक, मङ्गल और शुक्र आदिके लोकोंकी यात्राओंके अभियान सफलता-असफलताके बीच झूलते चलते हैं। सफलता जो मिली है, वह भी तो कितनी—अगण्य-सी! परंतु भगवान् भास्कर तो हमारे इस आश्चर्यमय अनुभव और सृष्टि-वैचित्र्यकी पराकाष्ठा है।

सूर्य और सौर-मण्डल-सम्बन्धी अनेक अन्वेषण, परीक्षण एवं स्पष्टीकरण आदि पढ़ने-सुननेमें आते हैं; पर

* आइन-अकबरी ब्लाख्मैनका अंग्रेजी अनुवाद, १९६५ ई०, पृ० २०९-२१२ से।

उनका परिमाण, मेरे अनुमानसे एक अणु-सदृश ही है। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। हमारी सृष्टिके महत्त्वपूर्ण आधार सूर्य यदि प्रकाश-पुञ्ज हैं तो जीवन-प्रदायिनी ऊष्माके भी वे जनक हैं। वन, उपवन, जल, कृषि, गतिके विभिन्न रूप, फल, फूल तथा वृक्ष-लता आदि—यहाँतक कि जीवन भी उन्हींके द्वारा प्रदत्त उपहार है। सम्पूर्ण विश्व उनसे लाभान्वित है। न जाने कितने लोक सौरमण्डलके अधिष्ठाताका गुणगान करते है। भगवान् सूर्यके विषयमे कहा गया है कि उनके प्रकाशमण्डलका व्यास ८६४००० मील है—पृथ्वीके व्याससे १०९ गुना। इनका पुञ्ज २२४ पर २५ शून्य लगाकर अङ्कित किया जाता है, जो पृथ्वी-पुञ्जसे लगभग ३ लाख गुना है। सूर्यसे हमारी पृथ्वीकी दूरी १४९८९१००० किलोमीटर है। वहाँसे प्रकाशके आनेमें ही प्रकाश-गतिसे ८॥ मिनिट लगते हैं। ये सख्याएँ—ऑकडे सूर्यकी अति महत्ता, अति विस्तार और अति प्रचण्डताके द्योतक है। ऋतुओंका विभाजन, दिन-रातकी सीमाएँ, प्रकाश-अन्धकारकी गति, वर्षा-अतिवर्षा, अवर्षा—यहाँ-तक कि जीवनके विभिन्न उपक्रम सूर्यपर ही निर्भर हैं। यही कारण है कि अनादि कालसे सूर्यकी उपासना न केवल हमारे देशमे, वरन् विश्वके विभिन्न भागोमें भक्ति एवं श्रद्धाके साथ की जाती रही है। सूर्य एक ऐसी परम शक्ति हैं, उत्कृष्ट देवता हैं जिसमे उनकी अमित शक्तिका उपयोग नियमानुकूल ही होता है—नियमोंकी अवहेलना नहीं होती। यही कारण है कि खगोल-शास्त्रियों एवं ज्योतिषियोंका ज्ञान-विज्ञान दृढताके साथ प्रतिफलित होता रहता है। यदि निश्चित नियमो-का अतिक्रमण केवल गतिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशमे भी हो जाय तो उसका परिणाम निश्चय ही महाप्रलय है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि पृथ्वीके प्रत्येक खण्डमें तारोसे जटित आकाश सर्वदासे ही विस्मय और खोजका विषय रहा है—सभी वर्गके लोग इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं। जिन नौ या सात ग्रहोंकी कल्पना विश्वके विविध मनीषियोंने की, उनमें सूर्यको सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया जाता रहा है। अनेक लोक-कथाएँ एवं जन-श्रुतियाँ भी चलती आयी हैं और सूर्यको अनेक रूपोंमें देखा गया है। एक पाश्चात्त्य लोककथा है—'जब सृष्टिके आरम्भमे सामोरने नाइगको युद्धमें परास्तकर कारागारमें डाल दिया, तब पराजित करनेवाली शक्तिको गुलाकर (गोला बनाकर) शून्यमे डाल दिया। वही शक्ति गोलाकार होकर इधर-उधर लुढकती रही। बहुत समय पश्चात् माउई नामके वीरने इस लुढकनेवाले गोलेका मार्ग नियमित कर दिया और तभीसे सूर्यका मार्ग निर्धारित हो गया।'

सूर्य-चन्द्रको किसी दैत्यद्वारा निगलनेकी बात भी बहुत प्राचीन कालसे चलती आ रही है। अमेरिकाके रेड इंडियन भी अनेक प्रकारकी सूर्य-कथाएँ कहते रहे है। ज्योतिषका आधार तो सूर्य ही रहा है। चीनके प्राचीन विद्वानोने सूर्यको आधार मानकर अपने खगोल-शास्त्र, ज्योतिर्विद्या तथा धर्मका विस्तार किया। चीनमे सूर्यका नाम 'यॉग' है और चन्द्रका 'यिन'। सूर्योपासनाके प्रसङ्ग भी वहाँ मिलते हैं। 'लीकी' की पुस्तक 'कि आओ तेह सेग'मे नवीं पुस्तकके अन्तर्गत सूर्यको 'स्वर्ग-पुत्र' कहा गया है और दिनका प्रदाता कहकर उनकी अभ्यर्थना की गयी है। बौद्ध जातकोंमें भी सूर्यके प्रसग आते हैं और उन्हे वाहनके रूपमे मान्यता मिलती है। इसकी अजवीथि, नागवीथि और गोवीथि नामके मार्गोंपर तीन गतियॉ मानी गयी है। इस्लाममें सूर्यको 'इल्म अहकाम अन नजूम'का केन्द्र माना गया है। मुस्लिम विद्वानोंकी मान्यता रही कि सूर्य आदि चेतन हैं, इच्छाशक्तिका उपयोग करते हैं और उनके पिण्ड उनमे व्याप्त अन्तरात्मासे प्रेरित होते हैं। ईसाइयोंके 'न्यू टेस्टामेंट'में सूर्यके धार्मिक महत्त्वका कई बार वर्णन आया है। सेंटपॉलने आदेश दिया है कि—सूर्यके द्वारा

पवित्र किया गया रविवार दानकी अपेक्षा करता है। इसे प्रभुका दिन माना गया है और इसीलिये यह उपासनाका प्रमुख दिन है। ग्रीक और रोमन विद्वानोंने भी इसी दिनको पूजाका दिन स्वीकार किया और महान् थियोडोसियसने तो रविवारके दिन नाच-गान, थियेटर, सरकस-मनोविनोद और मुकदमेबाजीका निषेध किया। बाल्टिक समुद्रके आसपास सूर्यके प्रसङ्गमे अनेक कथाएँ प्रचलित हुई। 'एडा'की कविताओंमे सूर्यको चन्द्रमाकी पत्नी* माना गया है और उनकी पुत्री उषाको देवपुत्रकी प्रेयसी, जिसके दहेजमे सूर्यने अपनी किरणोंके उस अंशको दे दिया, जिससे गगनमण्डलमें बादलोंके कँगूरे प्रतिभासित होते हैं तथा वृक्षोंके ऊपरकी टहनियोंमें शोभा छा जाती है। वर्णन आता है—'अपने रजत पदत्राणोंसे सूर्यदेवी रजतगिरिपर नृत्य करती हुई अपने प्रेमी चन्द्रदेवका आवाहन करती है। वसंत ऋतुकी प्रतीक्षा होती है और तब उनके प्रणयस्वरूप संततिकी सृष्टि है, जो तारोंके रूपमे आकाशको आच्छादित कर लेती है। परंतु दुर्भाग्यसे चन्द्रदेव सोते ही रहते हैं और सूर्यदेवी उठकर चली जाती हैं और तबसे इन दोनोंका चिर वियोग ही रहता है…………आदि।'

आर्य और अनार्य—सभीने सूर्यको उपासनीय माना है। द्रविड़ोंने सूर्यको 'परमेश्वर' कहकर उन्हें महान् माना और विविध प्रकारकी पूजाका विधान किया। हिन्दूओंमे सूर्यकी त्रिकाल उपासना-विधि चली और उन्हें जीवनका दाता एवं पोषक माना। सूर्यके कहीं सात और कहीं दो घोड़ोंसे कल्पित स्वर्णरथकी बात अनेक स्थलोंपर आती है। 'सौर्य'-सम्प्रदायका भी वर्णन मिलता है। सूर्य-साहित्य वास्तवमें बहुत विस्तृत तथा सर्वत्र उपलब्ध भी है।

इस स्थानपर सूर्यसम्बन्धी समय-सूचक कुछ अनुभव प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) अपने देशमें तो सूर्य अधिक-से-अधिक ७॥ बजेतक रहते हैं और सूर्यास्तके उपरान्त शीघ्र ही रात्रिका पदार्पण हो जाता है; परंतु उत्तरमें सूर्यास्त ग्रीष्मऋतुमें बहुत देरसे होता है और उसके बाद सन्ध्याकाल घंटों बना रहता है। मेरा सर्वप्रथम लम्बे दिनका अनुभव एडिनबरामें हुआ, जब मुझे एक स्कॉट-दम्पतीने चाय-पानका निमन्त्रण रात्रिके नौ बजेका दिया था। हमारे यहाँ तो यह समय ४-४॥ बजेका होता है। मैंने अपने मित्रसे कहा—'रातको नौ बजे चाय कैसी?' उन्होंने उत्तर दिया—'यहाँ तो यही उपयुक्त समय है, जब आरामसे बैठकर बातें करने तथा विचार-विनिमयमें सुविधा होती है।' वे भी मेरे साथ जानेको थे। हम रातमे नौ बजे निमन्त्रणको सार्थक करने पहुँचे और वे स्कॉट-दम्पति ही नहीं, भगवान् सूर्य भी आकाशमें अपने प्रकाशसे हमारा स्वागत कर रहे थे। तबसे मैंने भगवान् सूर्यके ये चमत्कार विश्वके अनेक भागोंमे देखा।

(२) वायुयानकी यात्रामें घड़ीकी अदल-बदलका अवसर तो आता ही रहता है—यदि आप भारतसे यूरोप एवं अमेरिका जा रहे हैं तो निरन्तर संकेत मिलता रहेगा—'अब इतना पीछे, अब और इतना पीछे, अब और-और।' इस प्रकार निरन्तर आपकी घड़ी पीछे होती जायगी और जब आप वहाँसे लौटेंगे तो आगे, आगे और आगे घड़ीकी सुइयाँ खिसकानी पड़ेंगी। पर यदि आप जापान जा रहे हैं तो यह क्रिया उल्टे रूपमे होगी यानी जापान जाते समय आगे और लौटते समय पीछे। और इन सबके कारण हैं भगवान् भास्कर, जिनकी

* वेद-वैदिक एवं भारतीय अन्य विस्तृत साहित्योंमे भगवान् सूर्यको स्वतन्त्र, सर्वशक्ति-सम्पन्न तथा अखिल जगत्परिपालक मानते हैं। इन्हीं भगवान् सूर्यसे सृष्टि हुई है। अतः हमारी मान्यता उपर्युक्त कहानीसे मेल नहीं खाती। यह अंश अन्यत्रकी जन-श्रुतियोंकी मात्रजानकारी हेतु ही दिया गया है।

ज्योति समयक्रमको एक निश्चित क्रियासे परिचालित करती रहती है ।

(३) पिछले वर्ष मैं स्वीडेन गया । वहाँ लिंचोफिंग तथा ऊमियो-विश्वविद्यालयोंमें मुझे व्याख्यान देने थे । ऊमियोमें भाषण देनेके पश्चात् जब मैं अपने स्थानपर लौटा तब कहा गया—'कमरेमें खिड़कियोंके पर्दे खींच लें, अन्यथा नींदमें बाधा आयेगी ।' मैं हॉलसे निकला, आकाशमें सूर्य विद्यमान थे—कोई विशेष बात न थी, क्योंकि मैं ९-९॥ बजे रात्रिमें सूर्यको देखनेमें अभ्यस्त हूँ । पर यहां तो १०॥ बजे रातमें भी सूर्यभगवान् आकाशमें विराज रहे थे और अब तो ११ बजने जा रहे हैं—अस्तु, सूर्यास्त हुआ; पर अन्धकारका नाम नहीं । मैंने खिड़कीसे देखा प्रकाश-जैसा ही था । पर्दे खींचकर सोनेका उपक्रम किया, पर ११ बजे रात्रिको सूर्यदर्शनकी बात मस्तिष्कमें घूम रही थी, १ बजे फिर देखा—वही प्रकाश, और दोबारा जब ३ बजेके लगभग देखा तब तो सूर्यदेव अपनी सम्पूर्ण आभासहित आकाशमें विद्यमान थे ।

अगले दिन मैंने अपना अनुभव भाषाविद् डॉ० सोडरवर्ग तथा संस्कृत-विदुषी प्रोफेसर ब्रोराको सुनाया तो उन्होंने कहा—'यह तो सामान्य बात है । हम आपको उस स्थानपर ले जानेकी तैयारी कर रहे हैं जहाँ आप अर्द्धरात्रिके समय सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन करेंगे तथा रात्रिका नितान्त अभाव देखेंगे ।' यह स्थान लगभग चार-पाँच सौ किलोमीटर दूर था, पर यूरोपकी व्यवस्थित सड़कोंपर यह दूरी अधिक नहीं थी । पूरा कार्यक्रम तैयार हो गया; परंतु मौसम एकदम खराब हो गया और मौसमकी भविष्यवाणीने २-३ दिनोंतक बहुत खराब मौसम रहनेकी घोषणा की । आप समझ सकते हैं कि क्या परिणाम हुआ—मेरी अर्द्धरात्रिमें सूर्यको देखनेकी आशा निराशामें परिवर्तित हो गयी, बादल और वर्षामें यह कैसे सम्भव होता !

हाँ, उसी यात्रामें एक जर्मन मित्रके घरपर उनकी नार्वेपर बनायी एक फिल्म देखी, जिसमें उन्होंने इस अलभ्य दृश्यका सम्यक् रूपसे दर्शन कराया था । उनकी घड़ीमें रातके १२ बजे थे और सूर्य अपनी पूर्ण आभाके साथ आकाशमें शान्तभावसे आसीन प्रतीत हो रहे थे । यह आभास ही नहीं होता था कि अर्द्धरात्रि है—जब सूर्य विद्यमान हैं तब अन्धकार कहाँ, रात्रि कैसी !

(४) मैं टोकियोमें था, हवाई द्वीपके होनो लूलूकी यात्राका आरक्षण हो चुका था । मेरी यात्रा सम्भवतः १८ अगस्तको थी । मैंने जापान एयर लाइन्सने यात्राकी पुष्टि कराते हुए होटल-आरक्षणके लिये कहा तो उन्होंने शीघ्र ही बिना कुछ पूछे, १७ अगस्तसे होटल-आरक्षण कर दिया; विचित्र बात । मैंने देखा-समझा, कुछ भूल हुई ! १८की उड़ान और १७से आरक्षण ! मैंने संकेत किया—आपसे कुछ भूल हो रही है, मैं दिनाङ्क १८को उड़ान ले रहा हूँ, १७को होटलका उपयोग किस प्रकार कर सकता हूँ ? कहा गया —भूल नहीं है, ठीक है—क्योंकि मैरिडिन रेखा पार की जायगी और उसमें एक दिनका अन्तर पड़ जाता है । मैं चुप हो गया । पर थी आश्चर्यजनक बात । मैरिडिन रेखा पार की गयी और उस वायुयानमें ही मुझे एक प्रमाण-पत्र दिया गया, जिसमें इस बातका उल्लेख था कि अमुक व्यक्तिने अमुक उड़ानसे यह रेखा पार की । साथ ही घड़ीका समय और दिनाङ्क बदलनेके लिये भी संकेत दिये गये । दिनाङ्क १८ को मैं उड़ा था और दिनाङ्क १७ को मेरे मित्र होनो लूलू हवाईअड्डेपर मेरे स्वागतार्थ उपस्थित थे—सभी स्थानोंमें दिनाङ्क १७ था । कितनी विचित्र है भगवान् भास्करद्वारा विविध स्थानोंपर समय-रचना !

इस प्रकारके मेरे अनेक अनुभव हैं—कहीं रात, रात, रात, कहीं सर्वदा दिन । कहीं ३-४ घंटोंका

सन्ध्याकाल; कहीं सहसा सूर्यास्तके तत्काल बाद ही रात्रिका आगमन। एक ही सूर्यनारायण इस पृथ्वीको कितने अन्तरालोंमें विभक्त कर देते हैं!

लोग कहीं सूर्यके दर्शनके लिये तरसते हैं; कहीं सूर्यकी प्रखरतासे बचनेके लिये छायाका अन्वेषण करते हैं; कहीं सूर्यकी रश्मियोंका शरीरमें सेवनकर श्वेत वर्णमें कमी करना चाहते हैं; कहीं कालिमाके दोषसे बचनेकी चेष्टा करते हैं। मेरे एक मित्रने अन्धकार, सर्दी, वर्षासे त्रस्त होकर लिखा था—'आप अपने देशसे थोडा-सा सूर्यका प्रकाश और उसकी किञ्चित् ऊष्मा हमें भेज दें, हम आपको कुछ बादल और वर्षा भेज देंगे'—यह एक हास्य-प्रसङ्ग-सा लगता है, पर है यह सूर्यकी महत्ता और उनके प्रभाव-वैविध्यका परिचायक। मेरा तो ऐसा अनुमान है कि सृष्टिकी विभिन्न शक्तियोंमें सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और जीवनका नियमन, प्रलयन, विघटन, विस्फारण आदि उन्हींकी शक्तिपर निर्भर है। अतः लोकोपकारी, लोक-नियन्ता, लोकोत्तर भगवान् भास्करको और उनकी प्रखर, प्रचण्ड, उद्दीप्त, जीवनदायिनी, सर्वपरितोषिणी आभाको पुनः-पुनः नमस्कार है।

सूर्यदेवता, तुम्हें प्रणाम !

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

उषा, उषाकी मधुमय वेला! कैसा अद्भुत सौन्दर्य!! कैसा अद्भुत आनन्द!!!

सूर्यकी अग्रगामिनी उषाके दर्शन करके मानव अनादिकालसे मुग्ध होता आया है। ऋषि लोग उषाके गीत गाते नहीं थकते। ऋग्वेदमें, विश्वके इस प्राचीनतम ग्रन्थमें उषासम्बन्धी अनेक ऋचाएँ हैं। परमेश्वरकी संदेशवाहिका उषाको सम्बोधित करते हुए ऋषि कहते हैं—'तू हिमकिरणोंसे स्नान करके आयी है। तू अमृतत्वकी पताका है। तू परमेश्वरका संदेश लायी है। तेरा दर्शन करके यदि परमेश्वरका रूप न दीखे तो फिर मुझे कौन परमेश्वरका दर्शन करायेगा?'

ऋषि लोग मुग्ध हैं उषाके सौन्दर्यपर, उसकी अनोखी सुषमापर। अनेकानेक विशेषणोंसे उन्होंने उषाको अलङ्कृत किया है; जैसे—

सूनरी (सुन्दरी), सुभगा (सौभाग्यवती), विश्ववारा (सबके द्वारा वरण की जानेवाली), प्रचेता (प्रकृष्ट ज्ञानवाली), मघोनी (दानशीला), रेवती (धनवाली), अश्ववती और गोमती आदि।

ऋषि कहते हैं—

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः॥
(—ऋ० १। ४८। ५)

'उषा एक सुन्दरी युवतीकी भाँति सबको आनन्दित करती हुई आती है। वह सारे प्राणिसमूहको जगाती है। पैरवालोंको अपने-अपने कामपर भेजती है और परवाले पक्षियोंको आकाशमें विचरण करनेके लिये प्रेरित करती है।'

नित्य नवीन उषा प्रकाशमय परिधान पहने दर्शकोंके समक्ष प्रकट होती है। उसके आगमनसे अन्धकार विलीन होता है और सर्वत्र प्रकाश फैलता है। वह चमकनेवाले वेगवान् सौ रथोंपर आरूढ है। रात्रिकी बड़ी बहन—तथा द्यौस्‌की बेटी वह उषा सूर्यका मार्ग प्रशस्त करती है। भगवान् सूर्यके साथ उसका निकटतम सम्बन्ध है।

ऋषि उषासे कहते हैं—

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम्॥
(—ऋ० १। ४८। १०)

*

'हे सूनरि ! तू जब प्रकाशित होती है तो सम्पूर्ण प्राणियोका प्राण तथा जीवन तुझमें विद्यमान रहता है । हे प्रकाशवति, हे विभावरि ! बड़े रथपर आसीन हमारी ओर आनेवाली चित्रामघे अर्थात् विचित्र धनवाली उषे ! हमारी पुकार सुनो ।'

उषा है भगवान् अंशुमालीका पूर्वरूप ।

यह लीजिये, आकाशके सुन्दर क्षितिजपर आ विराजे है—सविताभगवान् । इन सवितादेवका सब कुछ स्वर्णिम है—केश स्वर्णिम, नेत्र स्वर्णिम, जिह्वा भी **स्वर्णिम** । हाथ स्वर्णिम, अँगुलियाँ स्वर्णिम और तो और, आपका रथ भी स्वर्णिम है ।

सविता है—प्रकाशक देवता ।

पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक—सर्वत्र वे ही प्रकाश बिखरते है । स्वर्णिम रथपर आरूढ सवितादेव सभी देवताओके ही नेता नहीं है, अपितु स्थावर और जङ्गम सभीपर उनका आधिपत्य है । सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले तथा सबको कर्म-जगत्मे प्रेरित करनेवाले उन सविता भगवान्‌की हम गायत्री-मन्त्रसे वन्दना करते हैं और उनसे सद्‌बुद्धिकी याचना करते हैं—

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

कितना भव्य होता है बाल-रविका दर्शन !

निरभ्र आकाशमे उनकी झाँकी कैसी अद्‌भुत होती है ! फिर यदि गङ्गा, यमुना और गोदावरी आदिका तट हो, पर्वतराज हिमाचल अथवा विन्ध्य पर्वतमाला-जैसे किसी उत्तुङ्ग शैलका कोई कोना या सागरका शुभ्र किनारा हो—जहाँ उज्ज्वल जलधितरङ्गे क्रीडा करती हो—फिर तो उसके सौन्दर्यका क्या कहना ! देखिये, देखते ही रह जाइये !!

वेदमे भगवान् सूर्यको स्थावर-जङ्गमका आत्मा कहा गया है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** । सूर्यमे परमात्माके दर्शन करनेका सुझाव देते हुए आचार्य विनोबा 'गीता-प्रवचन'मे कहते हैं—

'सूर्यका दर्शन मानो परमात्माका ही दर्शन है । वे नाना प्रकारके रंग-बिरंगे चित्र आकाशमे खींचते हैं । सुबह उठकर परमेश्वरकी कला देखे तो उस दिव्य कलाके लिये भला क्या उपमा दी जा सकती है ? ऋषियोने उन्हे 'मित्र' नाम दिया है—

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
(—ऋ० ३ । ५९ । १)

ये मित्रसञ्ज्ञक सूर्य लोगोको सत्कर्ममे प्रवृत्त होनेके लिये पुकारते हैं । उन्हे कामधाममे लगाते है । ये स्वर्ग और पृथिवीको धारण किये हुए है ।

दिनभर सारे जगत्मे प्रकाश और आनन्द बिखेर-कर सांध्य-वेलामे अस्ताचलकी ओर जानेवाले भगवान् भास्करका सौन्दर्य भी अद्भुत है !

वह कौन किसीसे कम है ? प्रसिद्ध अंग्रेज कवि लागफैलो मुग्ध है उनके सौन्दर्यपर—मानो सिनाई पर्वतसे उतर रहे हो पैगम्बर !

'Down Sank the great red sun
And in golden glimmering Vapours
Veiled the light of his face,
Like the Prophet descending from sinai.'
(-Evangeline)

प्रात. एव सायकालमे भगवान् सूर्यके इस मनोरम दृश्यको देखकर यदि हम आनन्दविभोर न हो उठें तो हमसे अभागा और कौन होगा ?

इतना ही नहीं । 'बर्षा काल मेघ नभ छाए' हो और उस समय भगवान् भास्कर बादलोसे ऑख-मिचौनी खेलते हों—तब यदा-कदा हमे आकाशमें एक सतरगा धनुष दीखता है —इन्द्रधनुष । कैसी है उसकी वह छटा !

कोई पार है उनकी शोभाका—उनकी मनोरम छटाका ?

प्रसिद्ध दार्शनिक स्पिनोजाने तो वर्षाकालके इन्द्रधनुषपर एक लेख ही लिख डाला है। और वह भावुक कवि वर्ड्सवर्थ ! वह तो झूम-झूमकर गा उठा—

My heart leaps up when I behold
A rainbow in the Sky,
So was it when my life began,
So it is now when I am a man,
So be it when I shall grow old,
Or let me die.

मेरा हृदय उछलने लगता है, आकाशमें इन्द्रधनुषको देखकर। बचपनमें भी मेरा यही हाल था और आज जवानीमें भी। मैं बूढ़ा हो जाऊँ अथवा मर ही क्यों न जाऊँ, पर मैं चाहूँगा यही कि इन्द्रधनुषको देखकर मेरा हृदय इसी प्रकार हिलोरें मारता रहे ! कैसी है कविकी भव्य अनुभूति !

वेदमें अनेक देवताओंके मन्त्र हैं।

पहली ही ऋचा है—'अग्निमीळे पुरोहितम्०…'

(—ऋ० १।१।१)

कौन है—ये अग्निदेव ?

इनके तीन रूप बताये गये हैं—

पृथिवीपर पार्थिव अग्नि, अन्तरिक्षमें वैद्युत् और द्युलोकमें भगवान् सूर्य।

विष्णुदेवको लीजिये।

और्णवाभ कहते हैं—'सूर्योदय है विष्णुका प्रथम चरण।' 'मध्याह्न है विष्णुका द्वितीय चरण।' 'सूर्यास्त है विष्णुका तृतीय चरण।'

विल्सन हो या मैक्समूलर, मैकडानल हो या कीथ—वेदके विद्वान् इसी मतको प्रामाणिक मानते हैं।

पूषन् !

सबको जाननेवाले, सबको देखनेवाले, पशुओंको विशेषरूपसे रक्षा करनेवाले देव; इन्हें भी सूर्य माना गया है।

और इन्द्र !

परम शक्तिशाली इन्द्रदेव हैं। मैक्समूलर कहते हैं कि इन्द्र भी सूर्यके प्रतिरूप हैं।

सभी मयाने एक मत।

उषा देव हों या सविता, अग्नि हों या विष्णु, पूषन् हों या इन्द्र सभी सूर्यदेवता हैं।

मित्र, रवि, सूर्य, भानु, खग, पूषन्—सूर्यनमस्कारमें आनेवाले सभी नाम भगवान् सूर्यके हैं। इनके मन्त्र ये हैं—

ॐ ह्रां मित्राय नमः। ॐ ह्रीं रवये नमः। ॐ ह्रूं सूर्याय नमः। ॐ ह्रैं भानवे नमः। ॐ ह्रौं खगाय नमः। ॐ ह्रः पूष्णे नमः।

और सूर्यकी किरणें ?

उनका जादू किससे छिपा है ? वेदमें सूर्यकी किरणों Ultra violet Rays को 'एतश' या 'तोत्र्याय' कहा गया है। शेक्सपियर कहते हैं इन किरणोंके जादूगर,—मिट्टीको सोना बनानेवाले जादूगर—

The glorious sun
Stays in his course and plays the alchemist,
Turning with Splendour of his precious eye
The meagre cloddy earth to glittering gold.

(-King John, III, 1)

प्रातःकालीन सूर्यकी सुनहली किरणें पृथ्वीकी देहपर सोना ही बरसाती जान पड़ती हैं। यह कोरी कल्पना नहीं है।

आज तो विज्ञान भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता है कि रहे सूर्य पृथ्वीसे नौ करोड़ मील दूर, पर यह उसीकी कृपा है कि सारी सृष्टि, सारा जगत् जीवित है। सूर्य न हो तो पृथिवी ही न रहे, वनस्पति न रहे और न रहे कोई जीव-जन्तु या प्राणी ही।

सूर्य-प्रकाशकी बदौलत ही धरती सोना उगलती है। सूर्य ही चन्द्रमा और तमाम नक्षत्रोंके परम प्रकाशक हैं। सब उन्हींके प्रकाशसे टिमटिमाते हैं। वही बिजलीघर है, सारा सौरमण्डल है और उनसे प्रकाशमान होनेवाला नक्षत्र-पुञ्ज है।

सूर्य-किरणोंमें क्षय, रिकेट्स, रक्ताल्पता-जैसे परम भयंकर रोगोंको निर्मूल करनेकी तो अद्भुत शक्ति है ही; आरोग्य, बल, जीवन, प्राण, स्वास्थ्य, सौन्दर्य—सब कुछ प्रदान करनेकी भी उनमें जादूभरी शक्ति है। सूर्य-किरणें मानवके, सारे प्राणि-जगत्के सर्वाङ्गीण विकासके अनुपम साधन हैं। ज्ञान और विज्ञान—सभी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं।

अभागा होगा वह जो सूर्यदेवताको प्रणाम न करे। सूर्यस्नान, सूर्यनमस्कार आदि विज्ञानसम्मत साधन पुकार-पुकारकर कहते हैं—'उठो! सूर्यदेवताको प्रणाम करो! वे तुम्हें शक्ति देंगे, बल देंगे, बुद्धि और यश देंगे। तुम उन्हे प्रणाम करके भी तो देखो!'

जैन-आगमोंमें सूर्य

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसी)

जैन-तत्त्व-विद्याका मूलभूत आधार है—जैन-आगम। इन आगमोंकी संरचनामें जैन-तीर्थंकरों और गणधरोंकी ज्ञान-चेतनाका उपयोग हुआ है। तत्त्व-विद्याके मूल स्रोतोंका अवबोध तीर्थंकरोंके पास उपलब्ध होता है और उसके विस्तृत विश्लेषणमें गणधरोंकी मेधा सक्रिय होती है। इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि जैन-आगमोंकी आर्षीपरम्परा तीर्थंकरोंसे अनुबन्धित है तथा उन्हें शाब्दिक परिवेशमें ढालनेका काम गणधरों और स्थविरोंका है।

जैन-तत्त्व-विद्या बहु-आयामी तत्त्वविद्या है। धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, कला, गणित, भूगोल आदि विविध विषयोंका तलस्पर्शी विवेचन जैन-आगमोंमें प्राप्त होता है। मुख्यरूपसे इनमें चेतन और अचेतन—इन दो तत्त्वोंकी व्याख्या है। संसारके सारे तत्त्व इन दोनों तत्त्वोंमें अन्तर्भुक्त हैं। इसलिये जैन-शास्त्रोंको विश्वके प्रतिनिधि शास्त्रोंकी श्रेणीमें स्थापित किया जा सकता है। प्रस्तुत संदर्भमें जैन-आगमोंके आधारपर सूर्य-सम्बन्धी विवरणकी संक्षिप्त सूचनामात्र दी जा रही है।

जैन-आगमोंमें चार प्रकारके जीव माने गये हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। देवोंके सम्बन्धमें वहाँ विस्तारसे चर्चा है। देवोंकी मुख्यरूपमें चार श्रेणियाँ हैं—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। असुर, नाग आदि दस प्रकारके देव भवनपति देव कहलाते हैं। पिशाच, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि देव व्यन्तर देवोंकी श्रेणीमें आते हैं। सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिष्क देव हैं। लोकके ऊर्ध्वभागमें रहनेवाले देव वैमानिक देवके नामसे पहचाने जाते हैं।

ज्योतिष्क देव पाँच प्रकारके हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा। इन पाँचों देवोंमें सूर्य और चन्द्रमाको इन्द्र माना गया है। सूर्य इनमें सबसे अधिक तेजस्वी हैं। प्रकाश और तापके अतिरिक्त भी लोक-जीवनमें सूर्यकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जैन धर्मके

मुख्य शास्त्रोंमे एक आगम 'सूर्यप्रज्ञप्ति' है। उसमे सूर्य-का विभिन्न दृष्टियोसे प्रतिपादन किया गया है। इस एक आगममें सूर्य-सम्बन्धी इतनी सूचनाएँ है कि उनके आधारपर ज्योतिषके क्षेत्रमे कई विद्वान् अनुसधान कर सकते हैं।

जैन-शास्त्रोंके अनुसार यह दृष्ट सूर्य सूर्यदेव नहीं, अपितु उनका विमान हैं। सूर्य एक पृथ्वी है। उसमें तैजस परमाणु-स्कन्ध प्रचुरमात्रामे उपलब्ध हैं, अतः उससे प्रकाशकी रश्मियाँ विकीर्ण होती रहती हैं। सूर्य आदि देवोंके विमान सहजरूपसे गतिशील रहते हैं। फिर भी उनके स्वामी देवोंकी समृद्धिके अनुरूप हजारो-हजारों देव-विमानोंकी गतिमे अपना योगदान देते हैं। सूर्यका विमान मेरु पर्वतके समतल भूमिभागसे आठ सौ योजनकी ऊँचाईपर अवस्थित है। इन योजनोंका माप जैनागमोंमें वर्णित प्रमाणाङ्गुलके आधारपर किया गया है।

सूर्यका प्रकाश कितनी दूर फैलता है? इस प्रश्न-के उत्तरमे भगवती-सूत्रमें बताया गया है कि सूर्यका प्रकाश सौ योजन ऊपर पहुँचता है। अठारह सौ योजन नीचे पहुँचता है और सैंतालीस हजार दो सौ तिरसठ (४७२६३) योजनसे कुछ अधिक क्षेत्रफलमे तिरछा पहुँचता है।

जैन-शास्त्रोमे सूर्य और चन्द्रमाकी सख्याका पूरा विवरण है। विश्वके समग्र सूर्योकी सख्याका आकलन किया जाय तो वे हमारे गणितके निश्चित मापकोंको अतिक्रान्त कर असंख्यतक हो जाते है। वैसे मनुष्य-लोकमें एक सौ बत्तीस सूर्य हैं। इनके सम्बन्धमे जम्बू-द्वीप तथा प्रज्ञापनासूत्रमें विस्तृत विवेचन है। एक सौ बत्तीस सूर्योंकी अवस्थिति इस प्रकार है—

जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं। लवणसमुद्रमें चार सूर्य हैं। धातकीखण्डमें सूर्योंकी संख्या बारह हो जाती है। कालोदधिमे बयालीस सूर्य हैं और पुष्करार्धद्वीपमें ये बहत्तरकी सख्यातक पहुँच जाते हैं। कुल मिलाकर इनकी संख्या एक सौ बत्तीस हो जाती है।

ज्योतिष्क देव चर और अचर दोनों प्रकारके हैं। मनुष्यलोकमें जो सूर्य, चन्द्रमा आदि हैं, वे चर हैं। उनसे बाहर जो असंख्य सूर्य और चन्द्रमा हैं, वे स्थिर हैं। कालका समग्र निर्धारण सूर्यकी गतिके आधारपर होता है। मनुष्यलोकसे बहिर्वर्ती क्षेत्रोंमें सूर्यकी गति नहीं है, इसलिये वहाँ व्यावहारिक काल-जैसी कोई व्यवस्था भी नहीं है। सामान्यतः सूर्य और पृथ्वीकी गति एक विवादास्पद पहलू है। पर जैन-शास्त्रीय दृष्टिकोणसे समय-क्षेत्र (मनुष्यलोक) के सूर्य चर और उससे बहिर्वर्ती सूर्य स्थिर हैं।

जैन-मुनियोंकी चर्यामें सूर्यका एक विशेष स्थान है। उनके अनेक कार्य सूर्यकी साक्षीसे ही हो सकते हैं। सूर्यकी अनुपस्थितिमें जैन मुनि भोजन भी नहीं कर सकते। इस तथ्यकी अभिव्यक्ति आगम-वाणीमें इस प्रकार हुई है—

अत्थंगयम्मि आइच्चे पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमइयं सव्वं मणसा वि न पत्थए॥

सूर्यास्तसे लेकर जबतक सूर्य पुनः पूर्वमे निकल न आयें, तबतक मुनि सब प्रकारके आहारकी मनमे भी इच्छा न करे।

उग्गएसूरे अणत्थमियसंकप्पे

सूर्योदय होनेके बाद जबतक सूर्य फिर अस्त नहीं होते हैं तबतक ही मुनि भोजन, पानी, ओषधि आदि ग्रहण करनेका संकल्प कर सकता है।

जैन-धर्ममें प्रत्याख्यानकी परम्परामें भी सूर्यको साक्षीरूप रखा जाता है। उसका एक निदर्शन इस प्रकार है—

'उग्गए सूरे णमुक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अण्णत्थणाभोगेणं सहसागारेणं वोसिरामि।'

नमस्कारसहिता, पौरिषी आदि प्रत्याख्यानके क्रममे कालकी सीमाका निर्धारण सूर्योदयसे किया जाता है।

जैन-मुनि अपने जीवनमें साधनाके अनेक प्रयोग करते हैं। उन प्रयोगोंके साथ भी सूर्यका सम्बन्ध है। जैनोंके बृहत्तम आगम 'भगवती'में ऐसे अनेक प्रसङ्ग उपस्थित किये गये है। उनमें एक प्रसङ्ग है—गृहपति तामलिका। तामलि अपने भावी जीवनको उदात्त बनानेके लिये चिन्तन करता है—'जबतक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम है तबतक मेरे लिये यही उचित है कि मैं परिवारका पूरा दायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्रको सौंप दूँ और स्वयं सहस्ररश्मि, दिनकर, तेजसे जाज्वल्यमान सूर्यके कुछ ऊपर आ जानेपर प्रव्रज्या स्वीकार करूँ।'

प्रव्रज्या स्वीकार कर वह एक विशेष संकल्प स्वीकार करता है—'आजसे मै निरन्तर दो-दो दिनका उपवास करूँगा। उपवासकालमें 'आतापना'-भूमिमे जाकर दोनों हाथोंको ऊपर फैलाकर सूर्याभिमुख हो आतापना लूँगा।'

तपस्याके साथ सूर्यके आतपमे आतापना लेनेकी बात कई दृष्टियोसे महत्त्वपूर्ण है। तपस्यासे कर्म-शरीर क्षीण होता है और आत्माकी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होती है। उसके साथ सूर्यकी आतापना लेनेसे तैजस-शरीर प्रबल होता हैं। इससे शरीरकी कान्ति और ओज प्रदीप्त होता है। जैन-शास्त्रोमे एक विशेष लब्धि 'तैजस-लब्धि'की चर्चा है। यह शक्ति जिस साधकको उपलब्ध हो जाती है वह तैजस-शरीरके प्रयोगसे अनेक चमत्कार दिखा सकता है। यह शक्ति अनुग्रह और निग्रह दोनो स्थितियोंमें काम आती है। इस शक्तिको प्राप्त करनेके लिये लगातार छ: मासतक सूर्याभिमुख आताप लेनेका विधान है।

शरीर-शास्त्रीय दृष्टिसे जैन-साधना-पद्धतिमें सूर्यकी रश्मियोंके प्रभावको नकारा नहीं जा सकता। जैन-शास्त्रोमे रात्रि-भोजनको परिहार्य बताया गया है। इस प्रतिपादनका वैज्ञानिक विश्लेषण न हो तो उक्त पद्धति-मात्र एक परम्परा-सी प्रतीत होती है; किंतु इस परम्पराके पीछे रहे हुए दृष्टिकोणको समझनेसे इसकी वैज्ञानिकता स्वय प्रमाणित हो जाती है।

यह तथ्य निर्विवाद है कि सूर्यकी रश्मियोमे तेज है। इस तेजका प्रभाव प्राणि-जगत्के पाचन-संस्थानपर अत्यधिक पड़ता है। जो व्यक्ति सूर्यास्तके बाद भोजन करते हैं, वे भोजनको पचानेके लिये सूर्य-रश्मियोंकी ऊर्जाको उपलब्ध नहीं कर सकते। इसीलिये उनकी पाचनक्षमता क्षीणप्राय हो जाती है और अजीर्णरोग-जैसी बीमारियाँ उन्हें लग जाती हैं। सूर्यास्तके पश्चात् भोजन करनेवालोंकी भाँति सूर्योदयसे पहले या तत्काल बाद भोजन करनेसे भी पाचन-संस्थान सूर्यकी रश्मि-तेजसे अप्रभावित होता है; क्योंकि सूर्यके उदय हो जानेपर भी उनकी रश्मियोका ताप प्राणि-जगत्को उपलब्ध होनेमे पचास-साठ मिनटका समय लग ही जाता है। यद्यपि बाल-सूर्यकी रश्मियोमे भी 'विटामिन्स' होते हैं, पर भोजन पचानेमे सहायक तत्त्व कुछ समय बाद ही मिल सकते है। सम्भव है, इसी दृष्टिसे जैन-धर्ममें नमस्कार-सहिता-तप और रात्रिमे चतुर्विध आहार-परित्याग तपकी प्रक्रियाको स्वीकृत किया गया है।

जैन-शास्त्रोमे सूर्यका जो विवेचन है, उसका समीचीन सकलन करनेके लिये वर्षोंतक उनका गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। ज्योतिषके क्षेत्रमे अनुसंधान करनेवालोंको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

आदित्यकी ब्रह्मरूपमें उपासना

आदित्य नारायण ब्रह्म हैं—ऐसा उपदेश है, उसीकी व्याख्या की जाती है। पहले वह असत ही था फिर वह सत् (कार्याभिमुख) हुआ। जब वह अङ्कुरित हुआ तब एक अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, वर्षपर्यन्त उसी प्रकार पड़ा रहा। फिर वह फूटा और उसके दो खण्ड हो गये। उन दोनों अण्डोंके खण्ड रजत और स्वर्णरूप हो गये। उनमें जो खण्ड रजत हुआ, वह यह पृथ्वी है और जो सुवर्ण हुआ, वह ऊर्ध्वलोक है। उस अण्डेका जो जरायु (स्थूल गर्भवेष्टन) था, (वही) वे पर्वत हैं, जो उल्व (सूक्ष्म गर्भवेष्टन) था, वह मेघोंके सहित कुहरा है, जो धमनियाँ थीं, वे नदियाँ हैं तथा जो वस्तिगत जल था, वह समुद्र है। फिर उससे जो उत्पन्न हुआ, वह ये आदित्य हैं। उनके उत्पन्न होते ही बड़े जोरोंका शब्द हुआ तथा उसीसे सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग हुए। इसीसे उनका उदय और अस्त होनेपर दीर्घ शब्दयुक्त घोष उत्पन्न होते हैं तथा सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग भी उत्पन्न होते हैं। यह जानकर जो आदित्यको 'यह ब्रह्म है' उनकी उपासना करता है (वह आदित्यरूप हो जाता है, तथा) उसके समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आते हैं और उसे सुख देते हैं, सुख देते हैं।

(—छा० उ० ३।१९।१४)

सूर्यकी महिमा और उपासना

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पण्डित श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य)

नित्य, नैमित्तिक और काम्य अनुष्ठानोंमें नवग्रहका स्थापन और पूजन अनिवार्य है। नवग्रह-पूजनमें भी सर्वप्रथम सूर्यका नाम आता है, जिनका ग्रहोंके मध्यमें पूजन किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक यज्ञ-यागादि—हवन-कर्ममें भी सर्वप्रथम नवग्रहका ही हवन होता है, जिसमें सर्वप्रथम सूर्यदेवको आहुति दी जाती है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक धार्मिक कर्ममें सूर्यकी उपासना आवश्यक है। जो मनुष्य सूर्य-पूजनके बिना कोई भी कर्म करते हैं, वे अपूर्ण माने जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि जिस कर्ममें सूर्यका पूजन नहीं होता, वह अपूर्ण है।

सूर्यकी उपासना हिंदू-समाजमें विविध रूपमें की जाती है। कुछ लोग पूजात्मक, कुछ लोग व्रतात्मक, कुछ लोग पाठात्मक, कुछ लोग जपात्मक और कुछ लोग हवनात्मकरूपसे उपासना करते हैं। सूर्यकी सभी प्रकारकी उपासनाओंमें उपासकको अद्भुत सुख-शान्तिकी अनुभूति प्राप्त होती है।

जगत्के और देवोंके आत्मा भगवान् सूर्यकी सत्ता द्युलोक और पृथ्वीलोकमें व्याप्त है। सूर्यकी सत्ता द्युलोक और पृथ्वीलोकमें होनेके कारण द्युलोकस्थ देवताओंसे और पृथ्वीलोकस्थ मनुष्योंसे इनका विशेष सम्बन्ध है।

वेदोंमें कहा गया है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥
(ऋ० १।११५।१, शु० य० ७।४२, अथर्व० १३।२।३५)

भगवान् सूर्य तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं। वे मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं एवं सम्पूर्ण विश्वके नेत्र हैं तथा स्थावर-जङ्गम—सबके अन्तर्यामी एवं सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा हैं। वे सूर्य आकाश, पृथ्वी और

अन्तरिक्ष—इन तीनों लोकोंको अपने प्रकाशसे पूर्ण व्याप्त करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हुए हैं। वे 'सूर्य स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा हैं।' यह भी कहा गया है कि—

'सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा।'
(—सूर्य-उपनिषद्)

'सूर्य ही समस्त देवताओंके आत्मा हैं।'

इसलिये स्पष्ट है कि भगवान् सूर्य देवताओं, मनुष्यों और स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं।

सूर्यकी प्राणरूपता—सूर्यके द्वारा ही संसारके समस्त जड और चेतन-जगत्को जीवन-शक्ति और प्राण-शक्ति प्राप्त होती है। अतः सूर्यको प्राणिमात्रका 'प्राण' कहा गया है।

'उद्यन्नु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्राणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते।' (—ऐतरेय-ब्राह्मण २५। ६) **'आदित्यो ह वै प्राणः।'** (—प्रश्नोपनिषद् १। ५)।

अर्थात् उदित होते हुए सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको प्राण-दान देते हैं, इसलिये सूर्यको प्राण कहते हैं।

अतः निश्चित है कि सूर्य ही प्राणिमात्रको प्राणदान करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंके प्राणोंका रक्षण और पोषण होता है। इसलिये सूर्य ही प्राणिमात्रके जीवन हैं।

सूर्यकी ब्रह्मरूपता—**'आदित्यो ब्रह्म'** छान्दोग्योपनिषद् (—३। १९। १)-के और **'असावादित्यो ब्रह्म'** सूर्योपनिषद्के अनुसार भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही हैं। सूर्यके 'ब्रह्म' होनेके कारण ही उन्हें कर्ता, धर्ता एवं संहर्ता कहा गया है।

'स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन्।'
(—छान्दोग्योपनिषद् ३। १९। ४)

'उसके अनुसार जो आदित्य (सूर्य) को 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार ब्रह्मरूपसे उपासना करता है, वह आदित्यरूप हो जाता है तथा उसके समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आते हैं और वे सुख देते हैं।'

सूर्यका सर्वप्रसवितृत्व—भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य साक्षात् 'नारायण' हैं। ये ही समस्त संसारके उत्पादक हैं। ऋग्वेद (७। ६३। ४) में कहा गया है—**'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूताः।'** 'निश्चय ही मनुष्य सूर्यसे उत्पन्न हुए हैं।' सूर्योपनिषद्में भी कहा गया है—'सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। सूर्यसे ही पालन होता है और सूर्यमें ही लय होता है और जो सूर्य हैं, वही मैं हूँ।'

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

सूर्य समस्त संसारके प्रसविता (जन्मदाता) हैं। इसीलिये इनका नाम 'सविता' है—**'सविता वै प्रसवानामीशे सवितारमेव।'** (—कृष्णयजुर्वेद २। १। ६। ३) 'सूर्य ही संसारके प्रसविता हैं और वे ही अपने ऐश्वर्यसे जगत्के प्रकाशक हैं।' तथा **'सविता सर्वस्य प्रसविता।'** (—निरुक्त, दैवतकाण्ड ४। ३१) 'सविता सबके उत्पादक हैं।'

भगवान् सूर्य संसारके सृष्टिकर्ता हैं। अतः सूर्यसे ही सांसारिक सृष्टिचक्र प्रवर्तित और प्रचलित है। सूर्यसे ही प्राणीकी उत्पत्ति होती है। सूर्यसे ही कृषि (खेती) होती है। सूर्यसे ही वृक्ष, फल, फूल,

वनस्पति, ओषधि और अन्न होता है। इसी प्रकार सूर्यसे समस्त सांसारिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यदि सूर्य न हो तो सांसारिक सृष्टि-चक्र ही नहीं चल सकता। अतः सूर्य ही समस्त सृष्टि-चक्रके मूल हैं।

सूर्यकी सर्वदेवमयता—'सर्वदेवमयो रविः'-के अनुसार सूर्य-नारायण सर्वदेवमय हैं—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो हरिः॥
(—सूर्यतापिन्युपनिषद् १।६)

'ये सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं तथा त्रिमूर्त्यात्मक और त्रिवेदात्मक सर्वदेवमय हरि हैं।'

भगवान् सूर्यका सर्वदेवतात्मरूप प्रसिद्ध है। अतः सूर्यमें समस्त देवताओंका निवास माना गया है। सूर्यके सम्बन्धमें कहा गया है—

त्वमिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥
(—महाभारत, युधिष्ठिरस्तोत्र)

'भगवन्! आपको इन्द्र कहा गया है। आप रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, सूक्ष्म मन, प्रभु और वेद हैं।'

सूर्योपनिषद्में **'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुः'**—इत्यादिद्वारा सूर्यको 'सर्वदेवरूप' कहा गया है।

सूर्यका प्रत्यक्ष देवत्व—'साक्षाद् देवो दिवाकरः'-के अनुसार भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता है। ये प्रतिदिन प्रातःकालमे उदित और सायकालमे अस्त होकर संसारके समक्ष अपने देवत्वको प्रत्यक्ष प्रकट करते है तथा समस्त ससारका सब प्रकारसे कल्याण करते है। इसीलिये सूर्यके प्रत्यक्ष देवत्वको आस्तिक और नास्तिक प्रायः सभी प्रकारके मनुष्य सहर्ष स्वीकार करते है। अतः भगवान् सूर्य सभीके लिये उपास्य और आराध्य है।

देवताओमे भगवान् सूर्य सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक उपकारक हैं। ये प्रतिदिन अपनी अमृतमयी किरणोंकी ज्योतिद्वारा समस्त संसारमे प्रकाश और उष्णता आदि प्रदान करते हैं जिससे मनुष्य, पशु-पक्षी और पेड-पौधे—वनस्पति आदि सभी जीवन-शक्ति प्राप्तकर बलिष्ठ और सुरक्षित रहते हैं। इसलिये सूर्यकी किरणोकी ज्योति प्राणिमात्रके लिये आवश्यक और उपयोगी है। अतः स्पष्ट है कि सूर्य ही संसारके समस्त जड और चेतन प्राणियोंके जीवन-ज्योतिके मूल स्रोत हैं। इसलिये सूर्यको समस्त प्राणियोका जीवन कहा गया है—**'जीवनं सर्वभूतानाम्'** (—ब्रह्मपुराण ३३।९)।

सूर्यकी काल-विभाजकता—भगवान् सूर्य ही समय-नियन्ता और समय-विभाजक हैं। सूर्यसे ही दिन, रात, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग, मन्वन्तर, और कल्प आदिके समयका यथार्थ ज्ञान होता है। सूर्य न हों तो दिन एवं रात आदिके समयका ज्ञान ही नहीं हो सकता। समयके ज्ञान न होनेसे सांसारिक किसी भी कामका व्यवस्थित रूपमें होना असम्भव हो जाय, अतः ससारके समस्त कार्य सूर्यपर ही अवलम्बित हैं।

सूर्यकी अनादि उपासना—भगवान् सूर्य आदिदेव है। अतएव इनकी उपासना अनादिकालसे प्रचलित है। सूर्यवशी भगवान् राम और चन्द्रवंशी भगवान् कृष्ण, भीष्मपितामह, धर्मराज युधिष्ठिर और राजा जनक आदि गृहस्थ योगी, वालखिल्य आदि ब्रह्मवादी महर्षि, व्यास आदि वानप्रस्थ ऋषि एवं वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, नारद, कपिल आदि तपस्वी ऋषि-मुनि सूर्यकी उपासना करते थे। इसलिये सूर्योपासना सभीके लिये आवश्यक और नित्यकर्म है। यद्यपि कालचक्रके दुष्प्रभावसे वर्तमान समयमे सूर्योपासनाका बहुत ही ह्रास हो गया है, तथापि धर्मप्रधान भारतवर्षमे सनातनधर्मी जनता किसी-न-किसी रूपमे अब भी सूर्योपासना करती ही है। व्रत, अनुष्ठान और सन्ध्याके रूपमे सूर्योपासना तो चल ही रही है।

उपासकोंके कामधेनु—भगवान् सूर्य अत्यन्त उपकारक और दयालु है । वे अपने उपासकको सब कुछ प्रदान करते है—

किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि स पशूंस्तथा ॥
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च ।
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम् ॥

(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ९ । ४७-४८)

'जो मनुष्य सूर्यकी यथासमय सम्यक् प्रकारसे उपासना करते हैं, उन्हे वे क्या-क्या नहीं देते—वे अपने उपासकको दीर्घायु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री, विविध प्रकारके उन्नतिके व्यापक क्षेत्र, आठ प्रकारके भोग, स्वर्ग और अपवर्ग (सब कुछ) प्रदान करते है ।'

भगवान् सूर्य परब्रह्ममय, सर्वदेवमय, सर्वजगन्मय और परम ज्योतिर्मय देवता है । ये अपनी दिव्य सहस्र रश्मियोसे सभीका, विशेषतः अपने उपासकोका सभी प्रकारसे कल्याण करते है । अतः यह समस्त चराचर संसार भगवान् सूर्यका ऋणी है । इनसे उऋण होनेके लिये मनुष्यमात्रको सर्वदा सूर्यकी उपासना करनी चाहिये । जो मनुष्य श्रद्धा-भक्तिसे यथासमय नियमपूर्वक प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करते हैं, वे उस ज्ञानमय प्रकाशयुक्त 'सूर्यलोक'को प्राप्त करते है, जहाँ पुण्यात्मा मनुष्य जाते है । जो मनुष्य सूर्यकी उपासना नहीं करते, वे अज्ञानमय प्रकाशहीन[1] 'असूर्यलोक' (असुरोंके लोक) को प्राप्त करते है, जिसको आत्मघाती पापी मनुष्य प्राप्त करते हैं ।

सूर्योपासनाका महत्त्व

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीउमाकान्तजी 'कपिध्वज' एम्० ए०, पी-एच्० डी०, काव्यरत्न)

हिंदूधर्म समस्त सृष्टि और सृष्टिके अतिरिक्त भी जो कुछ है, सभीको एक पूर्णत्वमे समाहितकर आध्यात्मिक रूप प्रदान करनेकी प्रक्रियाको सदैव महत्त्व देता रहा है । वैदिककालके प्रारम्भसे ही **'भूमा वै सुखम्'**[2] की विचारधाराको प्रश्रय मिला है । आर्योंकी यह 'भूमा'वाली दृष्टि उन्हे सीमितसे असीमितकी ओर बढ़ने तथा उसके साथ तादात्म्य स्थापित करनेकी प्रेरणा देती रही है । इसी क्रममे एक ओर जहाँ उन्हे सृष्टिके नियामकरूपमे अनेक देवी-देवताओंके दर्शन हुए, वहीं तीनो लोकोमे अपनेको समाहित करनेकी एव तीनो लोकोंके नियन्ताके साथ तादात्म्य स्थापित करनेकी उत्कट अभिलाषाकी जागृति भी हुई । इसलिये उन्होने जो प्रयास किये तथा जिस विधिसे अपने उपास्यकी अनुकम्पाके लिये उनकी उपासना की, उसीको आदर्श मानकर हम अपने उपास्यकी उपासना करते है । हमारी उपासना-परम्परामे उनकी निर्देश-सरणी ही आदर्श है ।

हिंदूजातिमे प्रचलित इन उपासना-पद्धतियोमें सूर्योपासनाका एक विशिष्ट स्थान है । इसका प्रमुख कारण यह है कि सौरमण्डलमे सूर्य-चन्द्रादि नवग्रह, त्रिदेव,

१. असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥
(—शु० यजु० ४० । ३)

२. (क) 'यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति' (—छान्दोग्य० ७ । २३ । १)
(ख) 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा, यो वै भूमा तदमृतम् ।'
(—छान्दोग्य० ७ । २४ । १)

गयी है। गायत्री-मन्त्रमें कहे गये 'सवितुः'[1] पदसे सूर्यका ही ग्रहण होता है। अतः सूर्य सविताका ही पर्यायवाची शब्द है।[2] गायत्री और सूर्यका परस्पर जो अभिन्न सम्बन्ध है, वह वाच्य-वाचकरूपसे निर्दिष्ट है। अर्थात् सूर्य गायत्रीके साक्षात् वाच्य हैं और गायत्री उन सविताकी वाचिका है।[3] तभी तो कहा गया है कि गायत्री-मन्त्रद्वारा जलको अभिमन्त्रित करके जिसने भगवान् सूर्यको यथासमय तीन अञ्जलियाँ जल अर्पित कीं, क्या उसने तीनों लोकोंको नहीं दे दिया ?[4]

कतिपय स्तुतियों और प्रार्थनाओंके माध्यमसे भी वेदोंमें मानव-समुदायके समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हुए सूर्यकी महिमामयी गाथाका बखान किया गया है। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें ऋषि कहते हैं कि हम बार-बार देते हुए, किसीकी धारणा करते हुए, जानते हुए परस्पर मिलते रहें और सूर्य-चन्द्रमाके समान कल्याण-पथका अनुसरण करते रहें।[5] अर्थात् जिस प्रकार सूर्य-चन्द्रमा परस्पर आदान-प्रदानकर लाखों वर्षोंसे नियमित रीतिसे कार्य कर रहे हैं, कभी अपने काममें प्रमाद नहीं करते, अपने आश्रित-जनोंको धोखा नहीं देते, प्रत्युत यथोचित समयपर कार्य करनेमें सहायता देते हैं, ठीक उसी प्रकार हम भी उनका आदर्श सामने रखकर काम करें। हम भी अपने विलास (चन्द्रमा-Materialism, worldly gait)को विवेक (सूर्य-Spiritual Knowledge) के अधीन मर्यादित रखें। अवसर देखकर कभी उग्रतासे और कभी शान्तिसे काम करें। ऋग्वेदमें ऋषि अन्यत्र कहते हैं कि 'हे सवितादेव! आप सब प्रकारके कष्टों (पापों) को दूर करें और जो कल्याणकारक हो वही हमारे लिये दें—उत्पन्न करें।'[6] अभिप्राय यह कि सूर्य तभी कल्याण करते हैं, जब हम उनके समान नियमसे काम करनेवाले हों। यदि हम प्रातःकाल उठकर सूर्य-सेवन (खुले मैदानमें सन्ध्योपासन, जीवन-निर्वाहके कार्य) करते हों तो सब प्रकारसे कल्याण हो सकता है। स्वास्थ्य बढ़ सकता है,

सूर्यकी आराधना और प्राकृतिक नियमोंके पालनसे रोग दूर होते हैं तथा स्वास्थ्य स्थिर रहता है,—ऐसी हमारी वैदिक और पौराणिक मान्यता है। इसी परिप्रेक्ष्यमें ऋग्वेदके ऋषि भगवान् आदित्यकी स्तुति करते हुए कहते हैं—'हे अखण्ड नियमोंके पालन-कर्ता परम देव (आदित्यासो)! आप हमारे रोगोंको दूर करें, हमारी दुर्मतिका दमन करें और पापोंको दूर हटा दें।'[7] इसी सदर्भमें ब्रह्मपुराणका स्पष्ट उद्घोष है कि मनुष्यके मानसिक, वाचिक और शारीरिक जो भी पाप होते हैं, वे सब भगवान् सूर्यकी कृपासे निःशेष नष्ट हो जाते हैं।[8] इतना ही नहीं सूर्याराधकका अन्धापन,

---

१. यजुर्वेद (३६।३), २. (क) 'असौ वा आदित्यो देवः सविता।' (—शतपथ० ६।३।१।२०), (ख) 'आदित्योऽपि सवितेवाच्यते।' (—निरुक्त, दैवतकाण्ड ४।३१)

३. 'वाच्यवाचकसम्बन्धो गायत्र्याः सवितुर्द्वयोः। वाच्योऽसौ सविता साक्षाद् गायत्री वाचिका परा॥ (—स्कन्दपुराण ४।१।९।५४)

४. गायत्रीमन्त्रतोयाढ्यं दत्तं येनाञ्जलित्रयम्। काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्तं जगत्त्रयम्॥ (—स्कन्दपुराण ४।१।९।४६)

५. स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ (—ऋक्० ५।५१।१५)

६. 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव।' (—ऋक्० ५।८२।५)

७. 'अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः।' (—ऋक्० ८।१८।१०)

८. मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्। सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥' (२९।६०)

कोढ़, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलह—ये सभी विश्वेश्वर सूर्यकी कृपासे निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। जो भयंकर कष्टसे दुखी, गलित अङ्गोवाला, नेत्रहीन, बडे-बडे घावोंसे युक्त, यक्ष्मासे ग्रस्त, महान् शूलरोगसे पीड़ित अथवा नाना प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त हैं, उनके भी समस्त रोग सूर्य-कृपासे नष्ट हो जाते हैं—इसमे कुछ भी सदेह नहीं है। ध्यातव्य है कि पुराणोमे विशेषतः कुष्ठरोगकी निवृत्तिके लिये ही सूर्यकी उपासनाका प्रारम्भ बतलाया गया है। भविष्यपुराणके ब्रह्मपर्वमे दुर्वासाके शापसे कृष्ण-पुत्र साम्बके कुष्ठरोगसे आक्रान्त होनेकी प्रख्यात कथा है। श्रीकृष्णचन्द्रके आग्रहपर गरुडने शाकद्वीपसे वैद्यविद्याके ज्ञाता ब्राह्मणोको लाकर इस रोगकी निवृत्तिका मार्ग उन्मुक्त किया। इन ब्राह्मणोंने सूर्यमन्दिरकी स्थापना करायी तथा सूर्यकी आराधनासे साम्बको रोगमुक्त कर दिया था।*

पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ८२में महाराज भद्रेश्वरकी प्रख्यात गाथा भी इसका प्रभूत प्रमाण है। महाराज भद्रेश्वरके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया था। वैद्योंने बहुत उपचार किया, पर कोढका चिह्न मिटनेके बजाय और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। फलतः ब्राह्मणोंकी सम्मतिमे महाराज भद्रेश्वरने सूर्याराधनके द्वारा ही कुष्ठ-रोगसे छुटकारा पाया। प्रसिद्ध 'सूर्यशतक'के रचयिता मयूर कविने भी कुष्ठरोगके निवारणार्थ भगवान् सूर्यकी आराधना करते हुए 'सूर्यशतक'की रचना कर अपनेको कुष्ठरोगसे निर्मुक्त किया था। स्कन्दपुराणके नागरखण्डमे जिन तीन सूर्य-विग्रहोका वर्णन है, उनमे प्रथमका नाम 'मुण्डीर', दूसरेका 'कालप्रिय' तथा तीसरेका 'मूलस्थान' है। भगवान् सूर्य प्रातःकाल मुण्डीरमे, मध्याह्नके समय कालप्रियमे तथा सध्या-समय मूलस्थानमें जाते हैं। उस समय जो मनुष्य इन तीनो सूर्य-विग्रहोमेंसे किसी एकका भी भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह निःसंदेह सभी प्रकारके रोगोंसे मुक्त होकर मोक्षको प्राप्त होता है। समुद्रके निकट विटङ्कपुर नामक नगरमें रहनेवाले एक ब्राह्मणकी गाथा इसका प्रमाण है। उस ब्राह्मणने हाटकेश्वर क्षेत्रमे जाकर मुण्डीर स्वामीकी आराधना की, जिससे उसका कुष्ठरोग जाता रहा तथा शरीर परम सुन्दर हो गया।

अब हम भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध कतिपय पठनीय वैदिक ऋचाओके दैनिक पाठसे प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन करते है। लेखका कलेवर बढ़ न जाय इस लिये जान-बूझकर ऋचाओका सकेतमात्र दिया जा रहा है—

(१) **'उद्वयं तमसः०'** (—ऋग्वेद १।५०।१०) तथा **'उदु त्यं जातवेदसम्०'** (—ऋक्० १।५०।१)—जो व्यक्ति प्रतिदिन इन ऋचाओंसे उदित होते हुए सूर्यका उपस्थान करता है तथा उनके उद्देश्यसे सात बार जलाञ्जलि देता है, उसके मानसिक दुःखका विनाश हो जाता है।

(२) **'पुरीष्यासोऽग्नयः०'**(—ऋग्वेद ३।२२।४)—इस ऋचाका जप आरोग्यकी कामना करनेवाले रोगीके लिये बहुत ही उपादेय है।

(३) **'अप नः शोशुचदघम्०'** (—ऋग्वेद १।९७।१-८)—इत्यादि ऋचाओके द्वारा मध्याह्नकालमे सूर्यदेवकी स्तुति करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके पापोसे मुक्त हो जाता है।

(४) **'चित्रं देवानाम्०'** (—ऋग्वेद १।११५।१)—मन्त्रसे हाथमे समिधाएँ लेकर प्रतिदिन तीनो सध्याओंके समय सूर्यका उपस्थान करनेवाला व्यक्ति मनोवाञ्छित धन प्राप्त करता है।

---

* ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम्। साम्बेनाप्तं तथाऽऽरोग्यं रूपं च परमं पुनः॥
(—भविष्य०, ब्रह्मपर्व ७३।४९)

(५) 'हंसः शुचिषत्०' (—ऋग्वेद ४।४०।५)—इस मन्त्रका जप करते हुए सूर्यका दर्शन पवित्रता प्रदान करता है।

(६) 'तच्चक्षुर्देवहितम्०' (—ऋग्वेद ७।६६।१६)—इस ऋचासे उदयकालिक एवं मध्याह्नकालिक सूर्यका उपस्थान करनेवाला दीर्घकालतक जीवित रह सकता है।

(७) 'वसन्तोऽस्यासीद्०' (—यजुर्वेद ३१।१४)—इस मन्त्रसे घृतकी आहुति देनेपर भगवान् सूर्यसे अभीष्ट वरकी प्राप्ति होती है।

(८) 'असौ यस्ताम्रः०' (—यजुर्वेद १६।६)—मन्त्रका पाठ करते हुए नित्य प्रातःकाल एवं सायकाल आलस्यरहित होकर भगवान् सूर्यका उपस्थान अक्षय अन्न एवं दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला होता है।

(९) 'अद्य नो देव सवितः०' (—सामवेद १४१)—यह मन्त्र दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला है।

(१०) 'ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो
याति भुवनानि पश्यन्॥'
(—ऋग्वेद १।३५।२, यजु० ३३।४३)

—यह मन्त्र सभी प्रकारकी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है। प्रतिदिन प्रातःकाल इस मन्त्रका कम-से-कम सात हजार जप करना चाहिये।

भगवान् सूर्यसे सम्बद्ध मन्त्रोंमें अधोलिखित मन्त्र सभी प्रकारके नेत्ररोगोंको यथाशीघ्र समाप्त करनेवाला अनुभूत मन्त्र है। (मैंने जीवनमें कई बार इस मन्त्रसे आश्चर्यजनक सफलता अर्जित की है।) यह पाठ-मात्रसे सिद्ध होनेवाला है। इसे 'चाक्षुषोपनिषद्'के नामसे भी जाना जाता है तथा इसका वर्णन कृष्ण-यजुर्वेदमें मिलता है।

'अस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्री छन्दः, सूर्यो देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।'

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहं अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षि-तेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुले अन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्या-सिद्धिर्भवति[१]।

---

१ 'ॐ इस चाक्षुषी विद्याके ऋषि अहिर्बुध्न्य हैं, गायत्री छन्द है, सूर्यनारायण देवता हैं तथा नेत्र-रोगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है। (भगवान्‌का नाम लेकर कहे) हे चक्षुके अभिमानी सूर्यदेव! आप मेरे चक्षुमें चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायँ। मेरी रक्षा करें, रक्षा करें। मेरी आँखके रोगोंका शीघ्र शमन करें, शमन करें। मुझे अपना सुवर्ण-जैसा तेज दिखला दें, दिखला दें। जिससे मैं अन्धा न होऊँ (कृपया) वैसा ही उपाय करें, उपाय करें। मेरा कल्याण करें, कल्याण करें। दर्शनशक्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्मार्जित जितने भी पाप हैं, उन सबको जड़से उखाड़ दें, जड़से उखाड़ दें। ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है। ॐ करुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है। ॐ सूर्य भगवान्‌को नमस्कार

सविता देवता हैं। महावीररूप कर्ममे अर्थात् यज्ञमें आद्योपान्त शान्तिके लिये विनियोग है।

भूका अर्थात् पृथ्वीके चैतन्यपुरुषका हम सब मिलकर ध्यान करे। आकाशके पुरुषका हम ध्यान करे। स्वर्गलोकके चैतन्य पुरुषका ध्यान करें और उस सविताकी अर्थात् आदित्य या सूर्यके भर्गकी, पाप-मार्जनकारी तेजकी तथा वीर्यकी हम चिन्ता करे। वह किस प्रकारका भर्ग है? श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है। वे सविता कैसे है? जगत्के जन्मदाता हैं—उन्हींसे जगत्की सृष्टि हुई है। ये सविता हमे सब कुछ दे रहे हैं। हमे एवं पृथ्वीके समस्त प्राणियोको प्राण दे रहे हैं, अन्न दे रहे हैं, हमारा पालन-पोषण कर रहे हैं। यही है सविताका तेज। सविता भगवान् सूर्यके शरीराभिमानी देवता हैं। हम सबकी बुद्धिको तथा सब प्रकारके परम पुरुषार्थको, जिसमें धर्म, अर्थ एवं काम गौण हैं और मोक्ष मुख्य है, प्रदान करते हैं।

अतः भगवान् सूर्यके इस प्रस्रवणी शक्ति सावित्रीकी उपासना ही ब्रह्मविद्याकी साधना है। यही मनुष्यको जन्म और मृत्युसे छुडाकर मोक्षरूप फल प्रदान करती है।

(२) आदित्य ब्रह्मस्वरूप

'ॐ असावादित्यो ब्रह्म॥' 'ये सूर्य ही ब्रह्मके साकारस्वरूप हैं।'

(यह मन्त्र अथर्ववेदीय सूर्योपनिषद्मे है। सूर्योपनिषद्का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद्में है।)

(३) हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण

'षट्स्वरारूढेन बीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितं सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरद-हस्तं कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः।' (—सूर्योपनिषद्)

'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः।' (—छान्दोग्य उ० १।६।६)

भावार्थ—सूर्यमण्डलमे हिरण्यवर्ण श्रीसूर्यनारायण अवस्थित हैं। वे सप्ताश्वरथमें सवार, रक्तकमलस्थित कालचक्रप्रणेता चतुर्भुज हैं, जिनके दो हाथोमे कमल और अन्य दो हाथोमे अभय वर मुद्रा है। ये हिरण्यश्मश्रु एवं हिरण्यकेश हैं। इनके नखसे लेकर सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुवर्ण वर्णके हैं। इस प्रकार इन आदित्य देवका दर्शन होता है। जो इनको जानते हैं, वे ही ब्रह्मवित् अर्थात् ब्राह्मण हैं।

(४) सूर्य ही स्थावर-जङ्गम—सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा हैं

वेदके अनेक मन्त्रोमे सूर्यको चक्षु कहा गया है। नीचे केवल परिचय-हेतु कुछ मन्त्र दिये जाते हैं—

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

भाष्य

(असौ) सूर्य उदगात् (उदितोऽभवत्)। कीदृशः? मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः (देवानां त्रयाणां तदुपलक्षितानां त्रयाणां जगताम्) चक्षुः (प्रकाशकः)। तत्र सूर्यदेवताकः स्वर्लोकः, वरुणदेवताकः महर्लोकः, अग्निदेवताकः भूर्लोकश्च। पुनः कीदृशः? देवानामनीकम् (समष्टिस्वरूपः)। कथमुदगात्? चित्रम् (आश्चर्यं यथा भवति तथा)। (उदयादनन्तरं) द्यावा पृथिवी (दिवं पृथिवीं च) अन्तरिक्षम् (आकाशम्) आप्राः (आप्रात् पूरितवान् स्वेन रश्मिणा जालेनेति शेषः)। पुनः किम्भूतः? जगतः (जङ्गमस्य) तस्थुषः (स्थावरस्य) च आत्मा (स्थावरजङ्गमात्मकसंकल्पसंसारमयोऽयमेव सूर्य इत्यर्थः)।

भाष्यार्थ—मित्र, वरुण एवं अग्निके द्वारा अधिष्ठित, त्रिलोकके प्रकाशक, सभी देवताओंके समष्टिस्वरूप तथा स्थावर-जङ्गमके अन्तर्यामी प्राणस्वरूप भगवान् सूर्य आश्चर्य-

रूपसे उदित हुए हैं। स्वर्ग, मर्त्य और आकाशको अपने रश्मिजालसे परिपूर्ण किये हैं।

इस वेदमन्त्रके अन्तर्निहित गम्भीर सत्यको आधुनिक जड़ विज्ञान तथा पाश्चात्त्य जातिवाले भी क्रमशः हृदयङ्गम कर स्वीकार करने लगे हैं। सूर्यसे ही इस दृश्यमान पृथ्वी तथा अन्य लोक एवं समस्त भूतगणोंकी सृष्टि, स्थिति तथा लय होती है। सूर्यके नहीं रहनेसे समस्त प्राणी और उद्भिज्ज—दोनोंका ही जीना असम्भव है।

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।

(मनुस्मृति)

सूर्यसे वर्षा, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्रजा अर्थात् प्राणीका अस्तित्व होता है।

नीचेके मन्त्रमें सूर्यनारायणको त्रिलोकीमें स्थित समस्त देवगणोंका **'चक्षुः'** कहा गया है।

(५) विष्णुगायत्री

'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्।'

भावार्थ—उस सर्वव्यापी विष्णुके परमपदका, जो कि तुरीयस्थान है, ज्ञानीजन सर्वदा आकाशस्थित सूर्यके समान सभी ओर दर्शन करते हैं।

अतः हे साधक! तुम निराश मत हो, तुम भी क्रमशः साधन-पथसे चेष्टा करनेपर इसकी उपलब्धि कर सकोगे।

(६) जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यकी कृपासे दीर्घ स्वास्थ्यमय जीवन-लाभ होता है

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्॥

*

भाष्य

तत् चक्षुः जगतां नेत्रभूतम् आदित्यरूपं पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि उच्चरत् उच्चरति उदेति। कीदृशम्? देवहितं देवानां हितं प्रियम्। पुनः कीदृशम् शुक्रं शुक्लम् अपापं स्पष्टं शोचिस्सद् वा। तस्य प्रसादात् शतं शरदः वर्षाणि वयं पश्येम शतवर्षपर्यन्तं वयम-व्याहतचक्षुरिन्द्रिया भवेम। शतं शरदः जीवेम अपराधीनजीविनो भवेम। शतं शरदः शृणुयाम स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम। शतं शरदः प्रब्रवाम अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम। न कस्याप्यग्रे दैन्यं कुर्याम। शतवर्षोपर्यपि बहुकालम् इत्यादि।'

भाष्यार्थ—हम जिनकी स्तुति कर रहे हैं, वे जगत्के नेत्रस्वरूप भगवान् आदित्य पूर्व दिशामें उदित हो रहे हैं। ये देवगणके हितकारी हैं। वे शुक्रवर्ण अर्थात् निष्पाप और दीप्तिशाली हैं। इनके अनुग्रहसे हम सौ वर्षोंतक चक्षुहीन न होकर सब कुछ देख सकें। हम सौ वर्षोंतक पराधीन न होकर जीवित रह सकें। हम सौ वर्षोंतक श्रवणहीन न होकर स्पष्ट सुन सकें। हम सौ वर्षोंतक वाक्-शक्तिहीन न होकर उत्तमरूपसे बोल सकें। किसीके भी समक्ष मैं दीन न बनूँ। सौ हजार वर्षोंतक ऐसा ही हो।

इस प्रकार अनेक वेद-मन्त्रोंमें आदित्यदेवको परमब्रह्मके चक्षुके समान बताया गया है एवं उनका स्तवन किया गया है। वे जगत्के साक्षी हैं।

(७) पञ्चमहाभूत, पञ्चदेवता एवं पञ्चोपासना

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पञ्च-महाभूत—क्रमशः सूक्ष्मसे स्थूल हैं। पहले अपञ्चीकृत सूक्ष्म महाभूत थे। ईश्वरकी इच्छासे सृष्टिद्वारा परस्पर मिलित होकर पञ्चीकरणद्वारा स्थूल महाभूत हुए हैं। प्रत्येक महाभूतके पाँच-पाँच तत्त्व और हैं। कुल मिलाकर पचीस तत्त्व हैं। प्रत्येक प्राणीकी स्थूल देहमें ये सारे महाभूत पञ्चीकृत होकर पचीस भागोंमें वर्तमान हैं।

इन सब महाभूतोंके अधिपति पाँच देवता हैं—गणेश, शक्ति, शिव, विष्णु और सूर्य। सनातन-धर्मके उपासक-

पञ्चदेवोंमें सूर्य

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम् ।
पञ्चदैवत मित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥

मात्र पाँच प्रकारके सम्प्रदायमें हैं; यथा—गाणपत्य (गणेश-उपासक), शाक्त (शक्ति-उपासक), शैव (शिव-उपासक), वैष्णव (विष्णु-उपासक) और सौर (सूर्य-उपासक) । चाहे किसी भी सम्प्रदायके हों, चाहे किसी भी देवताकी पूजा करें, पहले पञ्चदेवताकी पूजा करनी पड़ती है । इष्टदेव चाहे कोई भी हो, सर्वप्रथम गणेशजीकी पूजा करनी पड़ती है । उपास्य इष्टदेवके साथ अभेद-भावसे निष्ठापूर्वक सबकी पूजा करनी पड़ती है ।

भगवान् शंकराचार्यके उदेशानुसार दाक्षिणात्य ब्राह्मणगण पञ्चदेवताकी पूजा एक ही साथ पञ्चलिङ्गमें करते हैं । इष्टदेवताका लिङ्ग बीचमे रखा जाता है और चारो तरफ दूसरे चार देवताओंके लिङ्ग रखते हैं । शिव—वाणलिङ्ग, विष्णुलिङ्ग—शालग्राम-शिला, गणेश-लिङ्ग—रक्तवर्ण चतुष्कोण पत्थर, शक्तिलिङ्ग—धातु-निर्मित यन्त्र और सूर्यलिङ्ग—स्फटिक-बिम्ब (गोल) । वाराणसीमे ये पञ्चलिङ्ग न्योछावर (मूल्य) देनेपर उपलब्ध होते हैं ।

इन पञ्चदेवताओकी जो कि पञ्चमहाभूतोके अधिपति हैं, इनकी पूजा आदिका रहस्य बड़ा गहरा है । सनातनधर्मकी पूजा-पद्धति साम्प्रदायिक होते हुए भी असाम्प्रदायिक है । सर्वप्रथम पञ्चदेवताकी पूजा ही इसका प्रमाण है । स्थानाभावके कारण विस्तृत आलोचना यहाँ असम्भव है ।

(८) वैदिक तथा पौराणिक साधनामें सूर्यकी उपासनाका मुख्य स्थान है

त्रैकालिक वैदिक संध्यामें, आचमनमें, सूर्यके लिये जलाञ्जलिमें, गायत्रीके जपमें, सूर्यार्घ्यदानमें तथा सूर्यके प्रणाम आदिमें सूर्यकी उपासना ओतप्रोत है। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक पौराणिक अथवा तान्त्रिक उपासनामें सूर्यकी पूजा एक आवश्यक कर्तव्य है । अतः सनातनधर्मको माननेवाले सूर्यके उपासक सभी स्त्री-पुरुष सौर हैं ।

(९) रामायण और महाभारतमें सूर्यका उपाख्यान

इतिहासों और पुराणोंमें सूर्यपर अनेक उल्लेख हैं । श्रीहनुमान्‌जीने सूर्यसे व्याकरण-शास्त्र आदिकी शिक्षा प्राप्त की थी । उन्हें सूर्यदेवसे कई वर मिले थे ।

महाभारतमें मिलता है कि कौरव-पाण्डव—दोनों तापत्य थे । क्योंकि उनके पूर्वपुरुष राजा संवरणने सूर्यकन्या तपतीसे विवाह किया था । सूर्यके तेजसे कुन्तीके गर्भमें वैकर्तन महावीर कर्णने कवच-कुण्डलसहित जन्म ग्रहण किया था । वे प्रतिदिन सूर्यकी उपासना करते थे । वन-वासकालमे सूर्यकी उपासना करनेसे युधिष्ठिरको एक पात्र मिला था । महारानी द्रौपदी उसमे भोजन बनाती थीं । उनके भोजनके पूर्व उसमें अन्न आदि अक्षय्य होता था । हजारों अतिथि प्रत्येक दिन इस पात्रसे आहार प्राप्त करते थे । द्रौपदीके अज्ञातवासके समय सूर्यके निकट प्रार्थना करनेसे सूर्यने द्रौपदीको कीचक नामक राक्षसके अत्याचारोसे बचाया था । परंतु वे स्वयं अदृश्य थे । श्रीकृष्ण एवं जाम्बवतीके पुत्र साम्ब सूर्यकी उपासना करके दुःसाध्य रोगसे मुक्त हुए थे ।

राजा अश्वपतिने सूर्यकी उपासना करके सावित्री देवीको अपनी कन्याके रूपमे प्राप्त किया था । इसी सावित्रीने यमलोकसे अपने पति सत्यवान्‌को वापस लाकर सदाके लिये भारतवर्षमें सतीत्वकी मर्यादा स्थापित की है ।

ये सभी घटनाएँ सत्य हैं, काल्पनिक समझनेसे भूल होगी । सूर्यकी उपासना करनेसे आज भी इसका फल प्राप्त होता देखा जाता है ।

(१०) अब भी दर्शन होता है

इस लेखकको मध्यप्रदेशके नर्मदा नदीके किनारे ब्रह्माण नामक स्थानमें सन् १९३४ में एक महापुरुषके

दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे। उन्होंने सात बार गायत्री-पुरश्चरण किया था। पञ्चम पुरश्चरणके अन्तमे आपको नर्मदाके वक्षमें एक निर्जन द्वीपमें 'साक्षसूत्रकमण्डलु' बालिकाके वेशमें गायत्रीदेवीका प्रत्यक्ष दर्शन मिला। आप गद्गद होकर गिड़गिड़ाने लगे। माता,—'करते जा'—ऐसा आदेश देकर अन्तर्हित हो गयीं।

उन्होंने लेखकको और भी बताया कि देवप्रयाग नामक स्थानमे एक वेदमन्त्रके सात हजार बार जप करनेसे उन्हें सप्ताश्ववाहित रथपर सवार हुए सूर्यदेवका भी दर्शन हुआ था।

(११) सूर्यमें त्राटकयोग

लेखकको एक बार नादसिद्ध परमहंस योगीका परिचय हुआ था। 'पातञ्जलयोगदर्शन' मे है कि सूर्यपर संयम करनेसे भुवनज्ञान होता है। उस योगीने सूर्योदयसे सूर्यास्ततक सूर्यपर एकटक त्राटक कर सिद्धि प्राप्त की थी। किसीको देखकर उसका प्रकृत स्वरूप और सारा वृत्तान्त उनके आँखोंके सामने आ जाता था।

(१२) रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख

महाकवि कालिदास (प्रथम ई० पू० श०) सिद्ध तान्त्रिकाचार्य और महायोगी थे। उन्होने रघुवंशमें जगन्माता सीतादेवीका सूर्यपर त्राटकयोगका उल्लेख किया है।

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-
　　रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि
　　त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥
　　　　　　(रघु० १४। ६६)

महासती सीतादेवीने वनवासका आदेश पाकर लक्ष्मणके पास सूर्यवंशके दीपक श्रीरामके नाम एक सन्देश भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'मेरे गर्भमें स्थित सूर्यवंशधर संतानका जन्म हो जानेके बाद मैं सूर्यपर दृष्टि निबद्ध कर अनन्यहृदयसे तपस्या करूँगी जिससे जन्मान्तरमें भी आपको ही पतिरूपमें पाऊँ—कभी भी आपके साथ विच्छेद न हो।'

मुस्लिम यात्री इब्न बतूताने अपनी भ्रमण-कहानीमें लिखा है कि उन्होंने एक हिंदू योगीको सूर्यपर त्राटक करते हुए देखा। कुछ सालोंके बाद जब वे अपनी यात्रासे वापस लौट रहे थे, तब उन्होंने फिरसे उसी योगीको सूर्यपर त्राटक लगाये हुए देखा।

(१३) 'क सूर्यप्रभवो वंशः'

सूर्यवंशके प्रवर्तक मनुको श्रीभगवान्ने स्वयं कर्मयोगका उपदेश दिया था। गीतामें श्रीकृष्णने इसका उल्लेख किया है। सूर्यवंशके क्षत्रिय राजागण आरम्भ-कालसे वर्णाश्रम-धर्मके सेतु रहे एवं वे ही जातीय स्वतन्त्रताकी रक्षा करते रहे हैं।

उदयपुर (चित्तौड़)के महाराणा लवके वंशज हैं। सूर्य ही उनके ध्वजके प्रतीक हैं। कुशवाह अर्थात् कुशके वंशज राजागण भी और कई राज्योंमें यवनोंके साथ युद्धकर आधुनिक कालतक शासन करते आये हैं। सूर्यवंशी क्षत्रिय इतिहासके गौरव हैं।

(१४) सूर्य-मन्दिर

भारतमें सूर्यकी उपासना बहुत कालपूर्वसे प्रचलित थी। खेदका विषय है कि अधिकतर सूर्य-मन्दिर मुस्लिम शासनकालमें नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये। जिनमेंसे कुछ मन्दिरोंके विषयमें उल्लेख किया जा रहा है—

१—मुल्तान (मूलस्थानपुर) सूर्य-मन्दिरके लिये विख्यात था। सिन्धदेशके पराधीन होनेके बहुत दिनों बादतक भी यह मन्दिर रहा। मुस्लिम शासक

इस मन्दिरसे कर वसूल करते रहे। अब वहाँ सभी कुछ लुप्त है।

२—कश्मीरमे पर्वतके ऊपर मार्तण्ड-मन्दिरका विशाल भग्नखण्ड (खण्डहर) आज भी है। इस मन्दिरको तोडनेके लिये अत्यधिक गोले-बारूदकी आवश्यकता पड़ी थी। वे इसे साधारण औजारोसे नही तोड़ सके।

३—चित्तौड़गढमे सूर्य-मन्दिर कालिकाजीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है; इस समय वहाँ सूर्यदेवकी कोई मूर्ति नहीं है।

४—मोधेरा (गुजरात) में कुण्डके किनारे एक विशाल भव्य सूर्यमन्दिर था। अब उसका एक टुकड़ामात्र ही शेष बचा है। इस मन्दिरकी शिल्पकला अपूर्व एवं विस्मयकर है।

५—कोणार्क-(उडीसा-) का सूर्य-मन्दिर तेरहवीं शताब्दीमे निर्मित हुआ था। मूल मन्दिर (विमान) कम-से-कम २२५ फुट ऊँचा था। १५७० ई०मे उड़ीसा-जयके बाद काला पहाड और दूसरे मुस्लिम शासकोंने इसे नष्ट कर दिया। अब भी नाट-मन्दिर और जगमोहन, जो खण्डहरके रूपमें बचा है, वह पृथ्वीभरमें एक आश्चर्यजनक कृति है। मराठोंके शासनकालमें यहाँके अरुणस्तम्भको पुरीमें जगन्नाथ-मन्दिरके सामने स्थापित किया गया। सूर्यकी महिमा अक्षुण्ण है, उन्हें प्रणाम है—

जवाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

भगवान् सूर्यका दिव्य स्वरूप और उनकी उपासना

(लेखक—महामहोपाध्याय आचार्य श्रीहरिशंकर वेणीरामजी शास्त्री, कर्मकाण्ड-विशारद, विद्याभूषण, संस्कृतरत्न, विद्यालंकार)

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

श्रीसूर्यनारायण स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत्की आत्मा हैं।

सूर्य शब्दकी व्युत्पत्ति—

रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्यः। सरति आकाशे इति सूर्यः। सुवति लोकं कर्मणा प्रेरयति इति वा सूते सर्वं जगत् इति सूर्यः।

अर्थात्—रश्मियोका, प्राणोका और रसोंका स्वीकार करनेसे, आकाशमे गमन करनेसे, उदयकालमे लोगोको कर्म करनेमें प्रेरणा करनेसे अथवा सर्वजगत्को उत्पन्न करनेवाला होनेसे भुवन-भास्करको सूर्य कहा जाता है। सूर्यनारायण परब्रह्म परमात्मा—ईश्वरके अवतार हैं। अव्याकृत परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनके हेतुरूप, प्राणस्वरूप, सबको सुख देनेवाले तथा सचराचर जगत्के उत्पादक सूर्य ईश्वररूप हैं। अतः ये ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्यदेव हैं। जगत्के व्यवहारमें काल, देश, क्रिया, कर्ता, करण, कार्य, आगम, द्रव्य और फल—ये सब भगवान् सूर्य हैं। समस्त जगत्के कल्याण और देवता आदिकी तृप्तिके आधार सूर्यभगवान् हैं। अतएव श्रीसूर्यनारायण सर्वजगत्की आत्मा हैं।

सगुण-साकार पञ्चदेवोपासनामे विष्णु, शिव, देवी, सूर्य और गणपति—ये पाँचो देवता सगुण परब्रह्मके प्रचलित रूप है—इनमें श्रीसूर्यनारायण अन्यतम हैं। सूर्यमण्डलमे सूर्यनारायणकी उपासना करनेके लिये वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र एवं मनु आदि स्मृतियोमें तथा पुराण, आगम (तन्त्रशास्त्र) आदि ग्रन्थोंमे विस्तृत वर्णन किया गया है।

श्रीपरमात्मा सूर्यात्मारूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परमज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। भगवान् सूर्यनारायणकी उदयास्त-समय उपासना करनेसे

ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति होती है और परम कल्याण होता है। शास्त्रमें कहा है—

'उद्यन्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कर्म कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।'

भगवान् श्रीसूर्यके स्वरूपका ध्यान

'भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाःकरकमलयुतःस्वर्णवर्णःप्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः॥

'उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधर-ओष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशमें उदयगिरि—उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें।'

इस ध्यानमे सारे रूपोंके द्वारा ब्रह्मके ज्योतिर्मय प्रभावका वर्णन किया गया है। श्रीपरमात्मा सूर्यात्मा-रूपसे सूर्यमण्डलमें विराजमान हैं और उनकी परम ज्योतिका स्थूल दृश्य सूर्य हैं। इसी भावको प्रकट करनेके लिये सूर्य-ध्यानमें इस प्रकार ज्योतिर्मय रूपका वर्णन किया गया है। सूर्यकिरणोंमें हरित, पीत, लाल, नील आदि सप्तवर्णके समन्वयके कारण ही सूर्यकिरण श्वेतवर्ण हैं। इसलिये सप्तवर्णोंके रूपसे सप्ताश्वको सूर्यका वाहन कहा गया है। क्योंकि ज्योतिर्मय कारण-ब्रह्मसे जब कार्य-ब्रह्मका आविर्भाव होता है, उस समय सप्तरंग ही प्रथम परिणमित होता है। इसी कारण व्यक्तावस्थाका द्योतक वाहन और अव्यक्तरूपी ज्योतिर्मय सगुण ब्रह्मका द्योतक सूर्यका ध्यान है। हाथका कमल मुक्तिका प्रकाशक है, अर्थात् जीवको मुक्ति देना सूर्यके हाथमें है। अरुणका उदय सूर्योदयसे पूर्व होता है, इसलिये सप्ताश्ववाही रथके सारथि सूर्यके सम्मुख विराजमान अरुण हैं। इसी प्रकार सूर्यभगवान्का ध्यान भास्वान् भावोंके अनुसार वर्णित किया गया है।

परमात्मा एक, अद्वितीय, निराकार एवं सर्वव्यापक होनेपर भी पञ्चदेवतारूप सगुणरूपमें प्रकट होते हैं—

विष्णुश्चिता यस्तु सता शिवः सन्
स्वतेजसार्कः स्वधिया गणेशः।
देवी स्वशक्त्या कुशलं विधत्ते
कस्मैचिदस्मै प्रणतिः सदास्ताम्॥

'जो परमात्मा चित्-भावसे विष्णुरूप होकर, सत्-भावसे शिवरूप होकर, तेजरूपसे सूर्यरूप होकर, बुद्धिरूपसे गणेशरूप होकर और शक्तिरूपसे देवीरूप होकर जगत्का कल्याण करते हैं, ऐसे परब्रह्मको नमस्कार है।'

तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्दमय, मन-वाग्-बुद्धिसे अतीत, निराकार, निष्क्रिय, तत्त्वातीत, निर्गुण-पद कुछ और ही है। वह निर्गुण परब्रह्म-भाव जब सगुण-साकाररूपसे उपासकके सम्मुख ध्याता-ध्यान-ध्येयरूपी त्रिपुटीके सम्बन्धसे आविर्भूत होता है, तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवलम्बन या तो चित्-भावमय होगा अन्यथा सद्भावमय होगा अथवा तेजोमय होगा, नहीं तो बुद्धिमय या शक्तिमय होगा।

चिद्भावका अवलम्बन करके जो भावना चलेगी वह विष्णुरूपमें, जो सद्भावका अवलम्बन करके चलेगी वह शिवरूपमें, जो दिव्य तेजोमय भावका अवलम्बन करके चलेगी वह सूर्यरूपमें, जो विशुद्ध बुद्धि-भावका अवलम्बन करके अग्रसर होगी वह गणपतिरूपमें और जो अलौकिक अनन्त शक्तिका अवलम्बन करके अग्रसर होगी वह देवीके रूपमें परिणत होगी। पाँचों रूप ही सगुण ब्रह्मके परिचायक होते हुए पाँचों भावोंके अवलम्बनसे पञ्चधा बन गये हैं।

वेदमें सूर्योपासना—

यजुर्वेद अध्याय ३३, मन्त्र ४३में भगवान् सूर्यनारायण हिरण्यमय रथमें आरूढ होकर समस्त भुवनोंको देखते हुए गमन करते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

सबके प्रेरक सवितादेव सुवर्णमय रथमे आरूढ होकर कृष्णवर्णकी रात्रि-लक्षणवाले अन्तरिक्षपथमें पुनरावर्तनक्रमसे भ्रमण करते, देवादिको और मनुष्यादिको अपने-अपने व्यापारमे स्थापन करते एवं सम्पूर्ण भुवनोंको देखते हुए गमन करते हैं—अर्थात् कौन साधु और कौन असाधु कर्म करते हैं, इसका निरीक्षण करते हुए निरन्तर गमन करते रहते हैं। इसलिये भगवान् सूर्यनारायण मनुष्योके शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी हैं।

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि
सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्याऽमतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥
(शुक्लयजु० ४। २५)

‘उस द्यावा-पृथ्वीके मध्यमें वर्तमान दिव्यगुणयुक्त, सर्वतो दीप्तिमान्, बुद्धिप्रदाता, क्रान्तकर्मा, अप्रतिहतक्रियायुक्त, सिद्धिकी प्रेरणा करनेवाले, रमणीय रत्नोंके धारक एवं पोषक, दाता, रत्नरूप, ब्रह्मविद्याके धाम, समस्त चराचरके प्रियतम, मननयोग्य, अनुपम कल्पनाशक्ति-सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, वेदविद्याके उपदेष्टा, भगवान् सविता—सूर्य-देवता अर्थात् सबके उत्पादक परमात्माका सब प्रकारसे मैं पूजन करता हूँ, जिनकी अपरिमेय दीप्ति गगनमण्डलमे सबके ऊपर विराजती है तथा आकाशमण्डलमें अनन्त नक्षत्रमण्डल जिनकी दीप्तिसे दीप्तिमान् हैं और जिनकी आत्मप्रकाशरूप मति सर्वत्र विराजमान है, जो सबको कर्मकी अनुज्ञा करते हैं, जो ज्योतिरूप हाथ (किरण) तथा प्रकाशमान व्यवहारवाले हैं एवं सिद्ध-सङ्कल्प हैं और जिनकी कृपासे स्वर्ग निर्मित हुआ है, उन सूर्यदेवकी मै पूजा करता हूँ।’

भगवान् सूर्य सबके आत्मा—

सूर्यनारायण स्थावर-जङ्गमके आत्मा—अन्तर्यामी हैं—**‘सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च’**। इसलिये सूर्यकी आराधना करनेकी वेदमें आज्ञा है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (शुक्लयजु० ७। ४२)

‘यह कैसा आश्चर्य है कि किरणोके पुञ्ज तथा मित्र, वरुण और अग्निके नेत्र, समस्त जगत्के प्रकाशक, जङ्गम और स्थावर सम्पूर्ण जगत्की आत्मा—अन्तर्यामी सूर्यभगवान् उदय होते हुए, भूलोकसे द्युलोकपर्यन्त अन्तरिक्ष अर्थात् लोकत्रयको अपने तेजसे पूर्ण करते हैं।’

भगवान् सूर्यकी उपासनासे धनकी प्राप्ति—

चित्रमित्युपतिष्ठेत त्रिसंध्यं भास्करं यथा।
समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात्॥

हाथमें समिधा लेकर **‘चित्रं देवानाम्’**—इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यकी त्रिकाल प्रार्थना करनेवाला पुरुष इच्छित धनको प्राप्त करता है।

सूर्यकी महत्ता—

बण्महाꣳ असि सूर्य बडादित्य महाꣳ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाꣳ असि॥
(शुक्लयजु० ३३। ३९)

‘हे जगत्को अपने-अपने कार्यमे प्रेरित करनेवाले सूर्यरूप परमात्मन्! सत्य ही आप सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं। सबको ग्रहण करनेवाले हे आदित्य! सत्य ही आप बडे महान् हैं। बड़े महान् होनेसे आपकी महिमा लोकोंसे स्तुत की जाती है। हे दीप्यमान सूर्यदेव! सत्य ही आप सबसे श्रेष्ठ हैं।’

सूर्यके उदयसे सब जगत् अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। सूर्यके उदयसे जाड्यादिका नाश होकर अङ्कुरादिकी उत्पत्ति होती है। ब्रह्मका हृदयमें प्रकाशरूप उदय होनेसे अज्ञानका नाश—मुक्तिकी प्राप्ति होती है। जैसा कि शुक्लयजुर्वेद ३३। ४०में स्पष्ट है—

बट्सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥

'हे सूर्य! सत्य ही धन और यशसे तथा अन्नके प्रकट करनेसे आप श्रेष्ठ हैं। हे दीप्यमान! प्राणियोंके हितकारी! देवताओंके मध्यमें—आप सब कार्योंमें प्रथम पूज्य हैं। इसीलिये देवताओंकी पूजामें आपको अर्घ्य प्रदान करनेके बाद ही दूसरे देवताका अधिकार है। आप व्यापक, उपमारहित, किसीसे न रुकनेवाले तेजयुक्त, यज्ञद्वारा महत्त्वसे अधिक श्रेष्ठ हैं अर्थात् माहात्म्यके प्रभावसे एक कालमें सर्वदेशव्यापी अप्रतिद्वन्द्वी ज्योतिका विस्तार करते हुए प्राणिमात्रके हितकारीस्वरूपसे प्रथम पूजनीय हैं।'

गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्यनारायण—

प्रातःकालसे ही भगवान् सूर्यकी उपासनाका आरम्भ होता है। प्रातःकालमें प्रातः-संध्योपासनासे आरम्भ होकर सायंकालमें सायं संध्योपासना-पर्यन्त त्रिकाल संध्योपासनामें भगवान् सूर्यनारायणकी उपासना की जाती है।

श्रुतिमें 'अहरहः संध्यामुपासीत' कहा गया है। संध्योपासनाके मन्त्रोंमें सूर्यकी उपासना है। सूर्योपस्थानमें भगवान् सूर्यकी आराधना है। यथा—

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तरम्॥
(शुक्लयजु० २०। २१)

'हम तमःप्रधान इस लोकसे पर—श्रेष्ठ स्वर्गको देखते हुए तथा भगवान् सूर्यको देवलोकमें देखते हुए श्रेष्ठ ब्रह्मरूपको प्राप्त हुए हैं।'

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (शुक्लयजु० ७। ४१)

'किरणें उन प्रसिद्ध, सब पदार्थोंके ज्ञाता वेदज्ञान-रूपी धनवाले, प्रकाशात्मक सूर्यदेवको इस समस्त विश्वके प्रकाश करनेके निमित्त, विश्वके साथ प्रतिनियत ऊर्ध्व-वहन करती हैं।'

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्।
(शुक्लयजु० ३६। २४)

वे (सूर्य) देवताओंद्वारा स्थापित अथवा देवताओंके हितकारी जगत्के नेत्रभूत, शुक्ल—मलसे रहित, शुद्ध प्रकाशरूप पूर्वदिशामें उदित होते हैं। उन परमात्मा (सूर्यनारायण) के प्रसादसे हम सौ शरद्पर्यन्त देखें अर्थात् सौ वर्षपर्यन्त हमारे नेत्र-इन्द्रियकी गति निर्बल न हो। सौ शरद् ऋतुओंतक अपराधीन होकर जियें। सौ शरद्पर्यन्त स्पष्ट श्रोत्र-इन्द्रियवाले हों। सौ शरद्-पर्यन्त अस्खलित वाणीयुक्त रहें। सौ शरद्पर्यन्त दीनतारहित हों। सौ शरद्ऋतुओंसे अधिक काल-पर्यन्त भी देखें, सुनें और जीवित रहें। आशय यह कि शत-शत वर्षात्मक, अनेक निष्पाप जीवन अर्थात् अतिपावन जीवन प्राप्त करें।

संध्योपासनामें सूर्योपस्थानके अनन्तर गायत्री-मन्त्रका जप करनेका विधान है। गायत्री-मन्त्रमें उपास्य सूर्य हैं, इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य गायत्री-मन्त्रद्वारा सूर्य-भगवान्की उपासना करते हैं—

गायत्री-मन्त्र—ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥
(शुक्लयजु० ३६। ३)

'**भूः**' यह प्रथम व्याहृति, '**भुवः**' दूसरी व्याहृति और '**स्वः**' तीसरी व्याहृति है। ये ही तीनों व्याहृतियाँ पृथ्वी आदि

तीनों लोकोंके नाम हैं। इनका उच्चारण कर प्रजापतिने तीन लोकोंकी रचना की है। अतः इनका उच्चारण करके त्रिलोकीका स्मरण कर गायत्री-मन्त्रका जप करे। पहले ॐकारका उच्चारण करे, तत्पश्चात् तीनों व्याहृतियोंका उच्चारणकर गायत्री-मन्त्रका जप करे।

गायत्री-मन्त्रका अर्थ—(**तत्**) उस (**देवस्य**) प्रकाशात्मक (**सवितुः**) प्रेरक—अन्तर्यामी विज्ञानानन्द-स्वभाव हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न आदित्यके अन्तः-स्थित पुरुष—'**योऽसावादित्ये पुरुषः** (यजु० ४०) वा ब्रह्मके (**वरेण्यम्**) सबसे प्रार्थना किये हुए (**भर्गः**) सम्पूर्ण पापके तथा संसारके आवागमन दूर करनेमें समर्थ सत्य, ज्ञान तथा आनन्दादिमय तेजका हम (**धीमहि**) ध्यान करते हैं, (**यः**) जो सवितादेव (**नः**) हमारी (**धियः**) बुद्धियोंको सत्कर्ममें (**प्रचोदयात्**) प्रेरित करे।

अथवा 'सवितादेवके उस वरणीय तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है'—वह सविता ही है।

भगवान् शंकराचार्यने संध्याभाष्यमे गायत्री-मन्त्रके अर्थमें भगवान् सूर्यके माहात्म्यका वर्णन किया है। यथा—

'सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति श्रवणात्, ईश्वरस्यैवायमवताराकारः सूर्य इति। अर्थात्—**अव्याकृत-स्वरूपस्य परमात्मनः सर्वेषां जीवनप्राणस्वरूपिणः सर्वसुखदायकस्य च सचराचरजगदुत्पादकस्य प्रकाशमानस्य सूर्यरूपेश्वरस्य तत्प्रसिद्धं सर्वश्रेष्ठं सर्वाभिलषणीयं पापभर्जकं तेजो वयं ध्यायेमहि, वा यः सूर्योऽस्माकं बुद्धीरसन्मार्गान्निवृत्य सन्मार्गं प्रेरयति।**'

'स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण जगत्के आत्मा सूर्य ही हैं' इस प्रकार भगवान् सूर्य ईश्वरावतार ही हैं, अर्थात् अव्याकृतस्वरूप, परमात्मरूप, सर्वप्राणियोंके जीवनका हेतुरूप और प्राणस्वरूप एवं सबको सुख देनेवाले, सचराचर जगत्के उत्पादक सूर्यरूप ईश्वरका सबसे श्रेष्ठ और पापका नाश करनेवाले तेजका हम ध्यान करते है। वे भगवान् सूर्य हमारी बुद्धियोंको असन्मार्गसे निवृत्त करके सन्मार्गमे प्रेरणा करते हैं।'

निष्कर्ष यह कि परमात्मस्वरूप सबका जीवनरूप और सर्वजगत्का उत्पादक ईश्वरावतार भगवान् सूर्य ही सबके उपास्य देव हैं। उनकी शास्त्रविधिसे नित्य उपासना करनी चाहिये।

सूर्य-दर्शनका तान्त्रिक अनुभूत प्रयोग

(लेखक—प० श्रीकैलासचन्द्रजी शर्मा)

सभी तन्त्र-रसिकजन तन्त्रग्रन्थोंमें शिरोमणि दत्तात्रेय-तन्त्रके महत्त्व तथा उपयोगितासे परिचित हैं। योगिराजने इस ग्रन्थरत्नमे तन्त्रविद्याके अत्युत्तम एवं लाभदायक प्रयोग बताये हैं। तन्त्र-प्रयोग यद्यपि केवलमात्र अधिकारी तान्त्रिकोंको ही प्रदातव्य होते हैं, अतः उनसे सम्बद्ध ग्रन्थोंको सामान्यतः गुप्त रखनेका ही प्रयत्न किया जाता है, तथापि भगवान् सूर्यके दर्शनका यह तान्त्रिक प्रयोग पाठकोंके लाभार्थ यहाँ दिया जा रहा है। उक्त प्रयोग दत्तात्रेय-तन्त्रके एकादश पटलमे निम्न प्रकारसे बताया है—

मातुलुङ्गस्य बीजेन तैलं ग्राह्यं प्रयत्नतः।
लेपयेत्ताम्रपात्रे च तन्मध्याह्ने विलोकयेत्॥
रथेन सह साकारो दृश्यते भास्करो ध्रुवम्।
विना मन्त्रेण सिद्धिः स्यात् सिद्धयोग उदाहृतः॥

'बिजौरा नींबूके तैलको यत्नसे निकालकर ताम्रपत्र-पर लेप करके मध्याह्न-समय उस ताम्रपत्रको सूर्यके सम्मुख रख-कर देखे। इससे रथसहित सूर्यका पूर्ण आकार निश्चय ही दीख पड़ेगा। यह बिना मन्त्रका सिद्ध प्रयोग कहा गया है।'

काशीकी आदित्योपासना

(लेखक—प्रो० श्रीगोपालदत्तजी पाण्डेय, एम्० ए०, एल्० टी०, व्याकरणाचार्य)

भारतीय उपासना-पद्धतिमें सूर्यका स्थान अतीव प्रभावकारी है। वैदिक वाङ्मयसे लेकर पुराणोंतक आदित्यकी श्रेष्ठता एवं उनके स्वरूपका विवेचन विशद-रूपमें उपलब्ध होता है। सूर्यका एकमात्र प्रत्यक्षरूप उनके वैशिष्ट्यका प्रतिपादक है। उनके ही प्रकाशसे सारा भौतिक जगत् प्रकाशमान होता है। वे ही प्राणिमात्रके उद्बुद्ध होनेमें कारण हैं। उनके उदित होते ही सभी प्राणी क्रियाशील हो जाते हैं। वे ही स्थावर और जङ्गम प्राणियोंको जीवन्त बनाते हैं—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (—ऋ० १।११५।१)। प्रत्यक्ष रूपमें यह जगत् सूर्यके आश्रित है। इसका कारण यह है कि सूर्य आठ महीनोंतक अपनी किरणोंसे छहों रसोंसे विशिष्ट जलको ग्रहणकर उसे सहस्र-गुणित करके चार महीनोंमें वर्षाके द्वारा संसारको ही अर्पित कर स्वयंको ऋणमुक्त कर लेते हैं। वर्षाका यह जल जन-जीवनके लिये अमृततुल्य है। इसी दृष्टिसे वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें सूर्यको भी 'जीवन' नाम दिया गया है। ऋग्वेदमें भी सूर्यको[1] जगत्‌का आधार माना गया है। उनकी तेजस्विता ही जगत्‌को आलोकित कर अहर्निश एकरूपता प्राप्त करती हुई जीव और जगत्‌के नेत्रोंका रूप धारण कर लेती है।[2]

सूर्यके अनेक पर्यायवाची नाम हैं। उनमेंसे एक नाम 'आदित्य' भी है। सामान्यतया 'आदित्य' शब्दसे दो प्रकारके अर्थोंका बोध होता है—एक अदितिकी संतान और दूसरा आदित्यकी संतति। इस प्रकार 'आदित्य' शब्द अपत्यवाचक है। अदिति (कश्यप-पत्नी) देव-माता हैं। सब देवता उन्हींकी संतति माने जाते हैं। उन्हींमें-से एक आदित्य भी हुए[3]। लोक और वेदमें 'सूर्य' नामसे उन्हींका प्रतिपादन होता है। वेदमें सात आदित्योंका उल्लेख मिलता है। वे क्रमशः—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष, अंश तथा मार्तण्ड हैं। शतपथ ब्राह्मणमें एक स्थलपर मार्तण्डको सम्मिलित कर उनकी संख्या आठ बतलायी गयी है[4]। साथ ही दूसरी जगह वहीं द्वादश आदित्योंका भी उल्लेख मिलता है; किंतु उनके नामोंका उल्लेख नहीं किया गया है[5]। आगे चलकर विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराणोंमें द्वादशादित्योंको विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशु तथा भग नामोंसे अभिहित किया गया है। इन नामोंसे—मत्स्यपुराणके यम और अंशुमान्—ये दो विशिष्ट शब्दोंमें भिन्नता दिखायी देती है। सूर्यके पर्यायवाची 'आदित्य' शब्दका अर्थ पुराणोंमें विष्णुकी शक्तिसे संवलित हो आदित्यगणके रूपमें परिवर्धित हो गया है। तदनुसार ये आदित्यगण सूर्यके मण्डलको तेजोयुक्त बनाते हैं[6]। इस

---

१. सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृत तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा। (ऋ० १।१६४।१४)

२. उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (ऋ० १।५०।१)

३. सप्त दिशो नाना सूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः। देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव (ऋ० ९।११४।३)

४. अष्टौ ह वै पुत्रा अदितेः। यास्त्वेतद्देवा आदित्या इत्याचक्षते सप्त हैव तेऽविकृतं हाष्टमं जनयांचकार मार्ताण्डं सं देघो हैवास यावानेवोर्ध्वस्तावांस्तिर्यङ् पुरुषसम्मित इत्यु हैकऽआहुः॥ (श०ब्रा० ३।१।३।३)

५. स मनसैव वाचं मिथुनं समभवत्। स द्वादश द्रप्सान् गर्भ्यभवत् ते द्वादशादित्या असृज्यन्त तान् दिव्युपादधात्॥ (श० ब्रा० ६।१।२।८)

६. सूर्यमापादयन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम्॥ (मत्स्यपुराण १२६।२५)

प्रकार आदित्यगण देवपदको प्राप्तकर सूर्यके सहचर तथा सहयोगी ही नहीं रहे, अपितु आगे चलकर उनका तादात्म्य भी सूर्यसे स्थापित हो गया।

सूर्यकी उपासनाके अनेक प्रकार हैं। प्रथम परम्पराप्राप्त अङ्गके रूपमें और द्वितीय साक्षात् प्रधानके रूपमें वे पूजित होते हैं। स्मार्त देव-उपासनामें पञ्चदेव (पाँच देवता) पूजित होकर शिव, विष्णु, देवी, गणेश तथा सूर्यको मान्यता प्रदान करते हैं। इनमेसे प्रत्येक अपनेको मध्यमें रख अवशिष्ट चारोंको दिगन्तरालोमें स्थापित करवा कर अर्चनाके स्वरोंको उदात्त करते हैं। साधनाके क्षेत्रमे शिव, शक्ति एवं विष्णुका अधिकतर प्राधान्य है। उसमें भी विष्णु पालनकर्ताके रूपमें अधिक व्यापक हैं। आदित्य भी इस दृष्टिसे विष्णुकी कोटिमें समाविष्ट होते हैं; क्योंकि उनका क्षेत्र अखिल विश्व है। वे प्रतिदिन विश्वका भ्रमण कर अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त रहते हैं[1]। इस प्रकार सूर्यके दैवी तत्त्वका परिचिन्तन भारतीय पूजा-पद्धतिकी विशेष विधा रही है। सूर्यके दैवी तत्त्वके साथ ही उसके उपासना-तत्त्वका सूत्रपात हुआ है।

आदित्योपासनाका वैदिक स्वरूप स्वाभाविक एवं सरल था। इसका आभास अब भी प्रातः उठते ही उदयोन्मुख सूर्यको नमस्कार करना एवं स्नानसे निवृत्त हो अर्घ्य-प्रदान आदि क्रिया-कलापमें प्रवृत्त होना उसकी स्वाभाविकता-का स्मरण दिलाते हैं। भक्तिका यह प्रकार श्रीसम्पन्न एवं विपन्न—दोनोके लिये समान है। आगे चलकर सौर-पूजामें प्रतिमा-प्रतिष्ठा तथा देवालयनिर्माणका सन्निवेश किन परिस्थितियोंमें हुआ—यह विचारणीय विषय रहा है। ऊपरकी पङ्क्तियोंमें यह संकेत किया जा चुका है कि वैष्णव, शैव तथा शाक्त—इन सबकी उपासनामें अन्य देवता इनके अङ्ग थे। ऐसी परिस्थितिमे सूर्योपासकोंमें सूर्यकी पूजाका माध्यम सूर्यकी दृश्यमान आकृतिसे साम्य रखनेवाला चिह्न चक्र (मण्डल) स्वीकार किया गया तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इस चक्रके स्वरूपकी प्रेरणा पुराणोंमे निरूपित सत्राजित्के आख्यान-से मिलती है। तदनुसार सत्राजित्की उपासनासे संतुष्ट होकर सूर्य अग्निज्वालासे परिवेष्टित वृत्तकी आकृतिमें प्रकट हुए थे। सत्राजित्ने सूर्यसे वास्तविक स्वरूपको प्रकट करनेका आग्रह किया। तत्पश्चात् सूर्यने स्यमन्तक मणि हटाकर अपना दर्शनीय कलेवर दिखाया। वह रूप लोहित-ताम्रवर्णात्मक था तथा नेत्र भी लाल थे। साम्बपुराणके अनुसार सूर्यके प्रचण्ड रूपको न सह सकनेके कारण उनकी पत्नी संज्ञाके तथा ब्रह्माके निवेदन करनेपर विश्वकर्माने सूर्यकी तेजोमय आकृतिमें काट-छाँट कर दिया। पर चरणोंका तेज वैसे ही रहने दिया। अतएव पुराणोमे यह निर्देश मिलता है कि सूर्यकी प्रतिमा बनाते समय उनके चरणोंका अनावृत प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। इस प्रकारकी कल्पनाका सामञ्जस्य शतपथ ब्राह्मणमे वर्णित सूर्यके 'पराक्रम' को स्पष्ट करते हुए चरणोके अभावमे भी गतिशील रहने-की विशेषताद्वारा प्रकट करना है[2]। इस परिप्रेक्ष्यमें सूर्यके विग्रह अधिकतर मण्डलात्मक अथवा अष्टदल-कमलके मध्यस्थित चक्रके रूपमें ही दृष्टिगोचर होते हैं। आकृति-विशेषसहित विग्रह विरले ही हैं। कहीं जो हैं, वे भी अनावृत-चरणोके प्रदर्शनसे रहित ही हैं। रथारूढ़ सूर्यकी कल्पनामें भी उनका स्वरूप मण्डलाकृति-प्रधान ही अङ्कित मिलता है। पूजा-पद्धतिमें सूर्यका ध्यान भी इसी रूपमें वर्णित है।

---

१. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥ (ऋ० १।३५।२)

२. यदिह वा अप्यपाद्भवति अलमेव प्रतिक्रमणाय भवत्यु-पापवक्ता हृदयाविषश्चिदिति तदेनं सर्वस्माद् हृद्यादेनसः पाप्मनः प्रमुञ्चति॥ (श० ब्रा० ४।४।५।५)

काशीमें प्रधानतया शिवकी उपासना की जाती है। यह अविमुक्त क्षेत्र है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक 'विश्वेश्वर' नामक शिवका यह पूजा-स्थल है। कहा जाता है कि भगवान् शंकरके त्रिशूलपर बसी यह नगरी कभी ध्वस्त नहीं होती। शैव-धर्मके अतिरिक्त यहाँ शक्ति तथा विष्णुकी उपासना भी उसी तरह होती है। काशीकी उपासनाके विषयमें 'काशीखण्ड'से विशेषरूपमें संकेत प्राप्त होते हैं। तदनुसार काशीमें शिवपीठ, देवीपीठ, विष्णुपीठ, विनायकपीठ, भैरवपीठ, षडाननपीठ और आदित्यपीठ आदि अनेक देवस्थान हैं, जहाँ भक्तगण प्रतिदिन पूजा-अर्चामें संलग्न रहते हैं। काशीके आदित्य-पीठ भी अपनी ऐतिह्य विशेषता लिये आज भी लोकमानसमे प्रतिष्ठित हैं। इनमेंसे कुछ तो अब अपना अस्तित्व खो बैठे हैं—केवल उनके स्थानकी पूजा होती है। कुछ अपने स्थानको परिवर्तित कर केवल महत्त्व बनाये हुए हैं। काशीखण्डमे बारह आदित्यपीठोंका उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार जगत्‌के नेत्र सूर्य स्वयं बारह रूपोंमें विभक्त होकर काशीपुरीमें व्यवस्थित हुए*। इनका उद्देश्य अपने तेजसे नगरकी रक्षा करना है। जिस प्रकार नगरके कीलन करनेमें गणेश और भैरव प्रत्येक दिशामें स्थापित किये जाते हैं, उसी प्रकार आदित्यकी द्वादश मूर्तियाँ काशी-क्षेत्रमें दुष्टोंके दलन करनेमें अग्रसर रही हैं। इन द्वादशपीठोंके अतिरिक्त सुमन्तादित्य तथा कर्णादित्यके अन्य विग्रह भी उपलब्ध होते हैं। आदित्योपासनाका प्रमुख उद्देश्य स्वास्थ्यकी रक्षा करना है। उसमे भी विशेषतया रक्तदोष-जनित रोगोंको शमन करना है। अतः रविवारके व्रतमें नमक, उष्ण जल एवं दूध वर्जित हैं। शास्त्रोंमें सूर्योदयसे पूर्व शीतल जलसे स्नान करके पूजन करनेका विधान है। पौष मासके रविवार सूर्यकी उपासनाके लिये विशेषरूपमें ग्राह्य हैं। वैसे प्रत्येक रविवारको सूर्यकी पूजा होती ही है। काशीके आदित्यो-पासनाके द्वादश पीठोंमें प्रमुख लोलार्कका वर्णन 'कृत्यकल्पतरु'में प्राप्त होता है। उसमें अन्य पीठोंका उल्लेख नहीं है। ऐसा विदित होता है कि लोलार्ककी मान्यता काशीके आदित्यपीठोंमें सर्वाधिक रही है। तदनुसार आदित्यपीठोंमें लोलार्कका स्थान सर्वप्रमुख रहा है; इस बातकी पुष्टि वामनपुराणके इस कथनसे भी होती है कि वाराणसीमें तीन देवता हैं—'अविमुक्तेश्वर, केशव तथा लोलार्क।' लोलार्कका स्थान वर्तमान भदैनी मुहल्लेमें स्थित है। यहीं तुलसीघाट भी है। लोलार्क-प्रभृति आदित्यपीठोंका वर्णन क्रमशः इस प्रकार है—

(१) लोलार्क—यह आदित्यपीठ वाराणसीके आदित्यपीठोमें मूर्धन्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इससे सम्बद्ध एक कुण्ड भी है, जिसे 'लोलार्क-कुण्ड' कहा जाता है। इस कारण लोलार्कको तीर्थकी महत्ता भी प्राप्त है। असि-संगमके समीप होनेके कारण लोलार्क-कुण्डका जल गङ्गामें मिल जानेके बाद उत्तरवाहिनी गङ्गाके तटीय अन्य तीर्थोंमें पहुँचता है।† प्राचीनकालमें लोलार्क-कुण्डका सङ्गम गङ्गासे होता था। वर्तमान समयमें यह कुण्ड ऊँचे कगारपर है और इसका जल केवल वर्षा-ऋतुमें एक सुरंगके द्वारा गङ्गामें पहुँचता है। देवपूजनका माहात्म्य उसके तटवर्ती समीपस्थ जलाशयमें स्नान करनेके बाद अधिक पुण्यजनक माना गया है।

---

* इति काशीप्रभावज्ञो जगच्चक्षुस्तमोनुदः। कृत्वा द्वादशधात्मानं काशिपुर्यां व्यवस्थितः॥
लोलार्क उत्तरार्कश्च साम्बादित्यस्तथैव च। चतुर्थो द्रुपदादित्यो मयूखादित्य एव च॥
खखोल्कश्चारुणादित्यो वृद्धकेशवसंज्ञकौ। दशमो विमलादित्यो गङ्गादित्यस्तथैव च॥
द्वादशश्च यमादित्यः काशिपुर्यां घटोद्भव। तमोऽधिकेभ्यो दुष्टेभ्यः क्षेत्रं रक्षन्त्यमी सदा॥

† सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः। ततोऽङ्गान्यन्यतीर्थानि तज्जलप्लावितानि हि॥
(का० खं० ४६। ५९)

ऐसे जलाशय, कुण्ड और ह्रद आदि भौम-तीर्थोंकी कोटिमें आते हैं। इस कारण तत्सम्बद्ध जलाशय और उसके समीपस्थ देवस्थान एक-दूसरेके पूरक हो जाते हैं। लोलार्ककुण्डकी प्रख्यातिसे प्रभावित हो महाराज गोविन्द-चन्द्रने यहाँ स्नानकर ग्राम-दान किया था।*

'लोलार्क' नामकरणके सम्बन्धमें वामनपुराणमें वर्णित सुकेशिचरितका उपाख्यान अविस्मरणीय है। तदनुसार 'सब दानव सुकेशीके उपदेशसे आचारसम्पन्न, धनधान्य एवं संततियुक्त हो सुख प्राप्त करने लगे। उनके वर्चस्वसे सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्र भी श्रीहत हो गये। यहाँतक कि लोक निशाचरोंसे प्रभावित हो गया। वह निशाचर-नगरी दिनमें सूर्यके समान तथा रात्रिमें चन्द्रमाके सदृश प्रतीत होने लगी। इन राक्षसोंके इस कुकृत्यसे क्रोधाविष्ट हो भगवान् सूर्यने उस नगरीको देखा। सूर्यकी प्रखर किरणोंके प्रभावसे वह नगरी इस प्रकार ध्वस्त हुई, जैसे आकाशसे गिरता हुआ कोई ग्रह हो। नगरको गिरता हुआ देखकर सुकेशी राक्षसने शिवका स्मरण किया। सब राक्षसोंके हा-हा-क्रन्दन (आर्त्तनाद) तथा आकाश-विहारी चारणोंके—'हरभक्तका नाश होने जा रहा है'—इस वाक्यको सुनकर भगवान् शंकर विचारमग्न हो गये। इस राक्षस-पुरीको सूर्यने नीचे गिरा दिया है—यह जानकर भगवान् शंकरने क्रुद्ध हो सूर्यको आकाशसे नीचे गिरा दिया। सूर्यके वाराणसीमें नीचे गिरते ही स्वयं ब्रह्मा और इन्द्र अन्य देवताओंके साथ मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शंकरको प्रसन्न करके पुनः वाराणसीमें सूर्य-को ले आये†। इस प्रकार शिवने प्रसन्न होकर अन्तरिक्षसे विचलित हुए सूर्यको अपने हाथसे उठाकर उनका नाम 'लोलार्क' रख उन्हें रथपर बैठाया।' काशीखण्डमें यह उपाख्यान दूसरी तरह वर्णित हुआ है। उसके अनुसार राजा दिवोदासको धर्मच्युत कर वाराणसी नगर उनके हाथसे छीन लेनेके लिये भगवान् शंकरने योगिनियोंको भेजा था। वे इस कार्यमें असफल रहीं। अन्तमें शिवने सूर्यको भेजा। उन्हें भी कठिनाइयाँ हुईं। अनेक रूप धारण करने पड़े। प्रथम रूप उन्होंने लोलार्कका धारण किया। काशीकी विशालता या मतान्तर-से शिवके कोपसे उनका मन चञ्चल हो उठा; अतः वे लोलार्क कहलाये। इसीके साथ वह स्थान भी लोलार्क कहलाया एवं कुण्ड भी उसी नामसे प्रसिद्ध हुआ।

---

* द्रष्टव्य—प० श्रीकुबेरनाथ सुकुलकृत—'वाराणसी-वैभव' पृ० ७३।

† ततः सुकेशिवचनात् सर्व एव निशाचराः। तेनोदितं तु ते धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः॥
ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छन्त निशाचराः। पुत्रपौत्रार्थसयुक्ताः सदाचारसमन्विताः॥
ततस्त्रिभुवनं ब्रह्मन् निशाचरपुरेऽभवत्। दिवा सूर्यस्य सदृशः क्षणदाया च चन्द्रवत्॥
तद् भानुना तदा दृष्टं क्रोधाध्मातेन चक्षुषा। निपपाताम्बराद् दृष्टः क्षीणपुण्य इव ग्रहः॥
पतमानं समालोक्य पुर शालकटंकटः। नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरधीयत॥
तच्चारणवचः शर्वः श्रुतवान् सर्वतोऽव्ययः। श्रुत्वा स चिन्तयामास केनासौ पात्यते भुवि॥
ज्ञातवान् देवपतिना सहस्रकिरणेन तत्। पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः॥
क्रुद्धस्तु भगवान् दृग्भिर्भानुमन्तमपश्यत। दृष्टमात्रस्त्रिनेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात्॥
ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्धं समभ्ययात्। रम्यं महेश्वरावासं मन्दरं रविकारणात्॥
गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शकरं शूलपाणिनम्। प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत्॥
ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः। कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत् पुनः॥
आरोपिते दिनकरे ब्रह्माभ्येत्य सुकेशिनम्। सबान्धवं सनगरं रथमारोपयद्दिवि॥
(वामनपु० अ० १५)

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी अथवा सप्तमीको रविवारका योग होनेपर लोलार्क-दर्शनका विशेष माहात्म्य है।[1] आजकल यहाँकी वार्षिक यात्रा भाद्रपद शुक्ला षष्ठीको सम्पन्न होती है। व्याधिग्रस्त स्त्री-पुरुष एवं निःसंतान स्त्रियाँ लोलार्क-षष्ठीके दिन लोलार्ककुण्डमें स्नान कर गीले वस्त्र वहीं छोड देतीं और लोलार्ककी अर्चना-वन्दना कर इच्छित वरदान माँगती हैं। सूर्यपीठ होनेके कारण प्रति रविवारको भी यहाँ पूजन करनेका माहात्म्य है।[2] लोलार्क-तीर्थको काशीका नेत्र माना गया है। यह तीर्थ नगरके दक्षिणभागमें स्थित होनेके कारण दक्षिणी भागका रक्षक कहा गया है। दक्षिणसे प्रवेश करनेवाले समस्त पापोंका यह तीर्थ अवरोध करता है। नगरके दक्षिण भागकी विशेषता गङ्गा-असि-संगमके साथ लोलार्ककी स्थितिके कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

२-उत्तरार्क—वाराणसीकी उत्तरी सीमाका सूर्यपीठ उत्तरार्क है। इससे सम्बद्ध जलाशय उत्तरार्क-कुण्डके नामसे विख्यात था।[3] वर्तमान समयमे यह बकरिया-कुण्ड कहलाता है। कदाचित् यह बालार्क-कुण्डका ही अपभ्रंश है। इसकी वर्तमान स्थिति पूर्वोत्तर रेलवे स्टेशन अलईपुर (वाराणसी नगर) के समीप ही है। मुसलमानोंके आधिपत्यके प्रारम्भमे ही यह सूर्यपीठ नष्ट हो गया था, उसका पुनः निर्माण अबतक नहीं हुआ। उत्तरार्ककी मूर्ति लुप्त है। केवल उसके स्थानकी पूजा होती है। अब इसपर मस्जिद-मजार बने हुए हैं। इन भवनोंमें प्रयुक्त पत्थरोंपर अङ्कित चित्रोंको देखकर प्रतीत होता है कि प्राचीन कालमें यहाँ विहार तथा मन्दिर विद्यमान रहे हों।

पौष मासके रविवार यहाँकी यात्राके लिये प्रशस्त माने गये हैं।[4] यह क्रम अब समाप्त हो गया है। इसके विपरीत अब यहाँ ज्येष्ठके रविवारोंको गाजीमियाँका मेला लगता है।

काशीखण्डके अतिरिक्त 'आदित्यपुराण'में उत्तरार्कका माहात्म्य बड़े विस्तारके साथ वर्णित है। इस उपाख्यानके अनुसार जाम्बवतीके पुत्र साम्बने अपने पिता कृष्णसे यह निवेदन किया कि आप सूर्योपासनाका ऐसा उपाय बतलायें कि लोग व्याधिनिर्मुक्त हो सुखी जीवन व्यतीत करें; क्योंकि मैंने सूर्यकी अर्चना कर महारोग (चर्मरोग) से मुक्ति पायी है। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने कहा कि क्षेत्र-भेदसे भगवान् सूर्य विशेष फलदायक होते हैं[5]। इसी प्रकार वाराणसीमें उत्तरार्क विशेषरूपमें व्याधिनाशक हैं। दैत्योंद्वारा देवताओंके पराजित किये जानेपर अदिति-के गर्भसे मार्तण्ड उत्पन्न हुए। सब देवोंके मित्र होनेके कारण उन्हे मित्र भी कहा गया। वे ही सूर्य, ज्योतिष्, रवि और जगच्चक्षु आदि नामोंसे सम्बोधित किये गये।

---

१. मार्गशीर्षस्य सप्तम्यां षष्ठ्यां वा रविवासरे। विधाय वार्षिकीं यात्रां नरः पापैः प्रमुच्यते ॥
(का० खं० अ० ४६)

२. प्रत्यर्कवारं लोलार्कं यः पश्यति शुचिव्रतः। न तस्य दुःखं लोकेऽस्मिन् कदाचित् सम्भविष्यति ॥
(वही ४६। ५६)

३. अथोत्तरस्यामाशायां कुण्डमर्काख्यमुत्तमम्। तत्र नाम्नोत्तरार्केण रश्मिमाली व्यवस्थितः ॥
(वही ४७। १)

४. उत्तरार्कस्य देवस्य पुष्ये मासि रवेर्दिने। कार्या संवत्सरी यात्रा नरैः काशीफलेप्सुभिः ॥
(वही ४७।५७)

५. यद्यप्यतिप्रसिद्धो हि सर्वत्रैव दिवाकरः। तथापि क्षेत्रभेदेन फलदो हि रविः स्मृतः ॥
यथा शुक्तिषु मुक्तात्वं विषत्वं विषवत्सु च। एकमेव जलं मेघैः स्वातौ मुक्तां प्रपद्यते ॥
(आदित्यपुराण)

दुखी देवताओंने सूर्यकी प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर सूर्यने कहा—'मैं दानवोंका संहार करनेके लिये दृढ एवं अजेय शस्त्रोंको उत्पन्न करूँगा।' ध्यानमग्न हो सूर्यने स्वकीय तेजसे पूरित शिलाको उत्पन्न कर देवताओंसे उसे वाराणसीके उत्तर भागमें ले जानेको कहा। इसके साथ ही वरुणाके दक्षिण तटपर विश्वकर्माने उस शिलासे सर्वलक्षणसम्पन्न उत्तरार्ककी दिव्य प्रतिमा बनायी। शिलाके गढ़े जानेपर पत्थरोंके टुकड़ों (शस्त्रों) द्वारा देव-सेनाको सुसज्जितकर दैत्योंपर विजय प्राप्त की। वहाँ शिलाके अवघट्टन (रगड़)से जो गड्ढा बना, वह जलाशय 'उत्तरमानस' के नामसे प्रख्यात हुआ[1]। उसमें स्नानकर देवताओंने रक्त चन्दनयुक्त करवीर (कनेल) के पुष्प तथा अक्षत आदिसे उत्तरार्ककी पूजा की। इस पूजनके फल-स्वरूप उत्तरार्कने देवोंको अजेय होनेका वर दिया तथा अपनी उत्पत्तिके विषयमें यह कहा कि पौष मासकी सप्तमी तिथि, रविवार, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ है[2]। सूर्यकी कृपाके फलस्वरूप देवोंने उत्तरार्कके पूर्वमें गणेश, दक्षिणमें क्षेत्रपाल तथा भैरव और पश्चिममें 'उत्तर-मानसरोवर' स्थापित किये। यह 'मानसरोवर' जल-रूपमें सूर्यकी शक्ति 'छाया' मानी गयी[3]। इसके उत्तरमें स्वयं उत्तरार्क विराजमान हैं। उनकी बायीं ओर 'धर्मकूप' बनवाया गया।

आदित्यपुराणमें वर्णित उत्तरार्क तथा उसके समीप-वर्ती पूजा-स्थलोंका विशद परिचय प्राप्त होता है। इस कथानकसे यह अभिव्यञ्जित होता है कि एक बार तो इस स्थलके विध्वंसक पराजित हो गये हैं। यहाँके आक्रमणोंके सम्बन्धमें इतिहास इस बातका साक्षी है कि सन् १०३४-३५ ई०के आसपास सालार मसऊद गाजी (जो गाजीमियाँके नामसे प्रसिद्ध रहे) के आदेशसे उनके सेनापति मलिक अफजल अलवीकी सेना वाराणसीमें प्रथम बार पराजित हो गयी थी। ११९४ ई० के बादसे जब कुतुबुद्दीन ऐबककी सेनाने वाराणसीकी सेनापर विजय प्राप्त कर राजघाटका किला ढहा दिया, तभी अनेक मठ-मन्दिरोंका भी विध्वंस हुआ। उस समयके विध्वस्त मन्दिरोंमें 'उत्तरार्क' (बकरियाकुण्ड) का मन्दिर भी है। इस क्षेत्रके आसपासकी विध्वस्त मूर्तियोंमेंसे बकरियाकुण्डसे प्राप्त गोवर्धनधारी कृष्णकी गुप्तकालीन विशाल मूर्ति 'कला-भवन'में सुरक्षित है[4]। इस वर्णनसे आदित्यपुराणमें वर्णित यहाँपर अनेक देवस्थानोंके होनेका प्रमाण परिपुष्ट होता है। (क्रमशः)

आदित्यके प्रातःस्मरणीय द्वादश नाम

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः। तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः॥
पञ्चमं तु सहस्रांशुः षष्ठं त्रैलोक्यलोचनः। सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसुः॥
नवमं दिनकरः प्रोक्तो दशमं द्वादशात्मकः। एकादशं त्रयोमूर्तिः द्वादशं सूर्य एव च॥

(—आदित्यहृदयस्तो०)

---

१. घटनाटङ्कघातेन या खनिः समपद्यत। सरः समभवत् तत्र नाम्ना चोत्तरमानसम्॥
शिलाकणाणुभिः शुद्ध व्याधिनाशनहेतुभिः। पूरितं स्वच्छमक्षोभ्यं भास्करस्येव मानसम्॥

२. अद्य पौषस्य सप्तम्यामर्कवारे ममोद्भवः। अभूदुत्तरफाल्गुन्यां नक्षत्रे भगदैवते॥
(आदित्यपुराण)

३. ज्योत्स्ना छायेति तामाहुः सूर्यशक्तिं महाप्रभाम्। अपां रूपेण सा तत्र स्थिता सरसि मानसे॥
(आदित्यपुराण)

४. द्रष्टव्य—पं० कुबेरनाथ सुकुलकृत-'वाराणसी-वैभव' पृष्ठ २०८—२८१।

भगवान् सूर्यदेव और उनकी पूजा-परम्पराएँ

(लेखक—डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक, एम्०ए०, पी-एच्० डी०(द्वय), डी० लिट्०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, पुराणाचार्य)

किसी भी राष्ट्रका अस्तित्व उसकी अपनी संस्कृतिपर ही मुख्यतया आधारित रहता है। संस्कृतिके ही अस्तित्व और अनस्तित्वसे राष्ट्र उत्थान-पतनकी अवस्थामे रहता है। जहाँ संस्कृतिकी अपेक्षा रहती है, वहीं राष्ट्र सार्वत्रिक रूपसे उन्नतिकी ओर निरन्तर प्रगतिशील रहता है और तद्विपरीत जहाँके प्रशासनमे अपनी संस्कृतिकी उपेक्षा होने लगती है, वहाँ उस राष्ट्रका पतन भी अवश्यम्भावी है—चाहे वह क्रमिक हो या आकस्मिक, पर उसका ऐसा होना निश्चित है। भारतका राष्ट्रिय उत्थान तो एकमात्र सांस्कृतिक अनुष्ठानपर ही आधारित रहता आ रहा है। आजसे ही नहीं, सनातनकालसे इतिहास ही इसका मुख्य साक्षी है। भारतीय संस्कृतिकी आधारशिला है वर्णाश्रम-धर्मका पालन। ब्राह्मणादि वर्णचतुष्टय एवं ब्रह्मचर्यादि आश्रमचतुष्टयका अभिप्रेत है ऐहिक अभ्युदयकी प्राप्ति तथा आमुष्मिक निःश्रेयस्की उपलब्धि—आत्माकी परमात्मामे एकाकारता और इन दोनो उपलब्धियोका एकमात्र साधन है—भगवदुपासना। भगवदुपासनाके दो प्रकार हैं—सगुण-साकाररूपात्मक तथा निर्गुण-निराकाररूपात्मक; पर इस उपलब्धिद्वयके लिये तदुपासना है परम अनिवार्य—'**नान्यः पन्था विद्यते अयनाय**'। अनुभवी एवं सिद्ध उपासकोंके मतसे निर्गुण-निराकारोपासनाकी अपेक्षा सगुण-साकारोपासना सरलतर है और यह अभ्युदय तथा निःश्रेयस् दोनों उपलब्धियोंके लिये प्रथम सोपान है। प्रथम सोपानपर दृढ़मूल हो जानेपर अग्रिम पथ सुगम हो जाता है। निष्ठा एवं श्रद्धापूर्ण आचरणसे लक्ष्यकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता। एतन्निमित्त विश्वासपूर्वक निरन्तर नियमरूपसे अनुष्ठानकी परम आवश्यकता है।

साकारोपासनामें पञ्चदेवार्चन मुख्यतया कर्तव्य है। पञ्चदेवोंमें सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु हैं—

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥
(संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ, पृ० ६२५)

सूर्य इन पाँच देवताओंसे अन्य हैं और नवग्रहदेवोंमें इनका प्रथम स्थान है।

आधुनिक कोषकारोंके मतानुसार सूर्य सौरमण्डलका एक प्रधान पिण्ड या जाज्वल्यमान तारा है, जिसकी पृथ्वी, सौर-मण्डलके अन्यान्य ग्रह एवं उपग्रह प्रदक्षिणा करते रहते हैं। साथ ही जो पृथ्वीको प्रकाश और उष्णता मिलनेका साधन तथा उसके ऋतुक्रमका कारण है*।

शब्दशास्त्रीय निरुक्तिके अनुसार सूर्यका व्युत्पत्त्यर्थ होता है—वह एक ऐसा महान् तत्त्व, जो आकाशमण्डलमें अनवरत गतिसे परिभ्रमण करता रहता है—'**सरति सातत्येन परिभ्रमत्याकाश इति सूर्यः**'। यह शब्द भ्वादिगणीय 'सृ गतौ' धातुके आगे 'क्यप्' के योगसे निष्पन्न हुआ है†। पौराणिक विवृतिके अनुसार मरीचिपुत्र कश्यप ऋषिकी पत्नी दक्षकन्या अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्यका एक नाम आदित्य है और यह आदित्य (सूर्य) संख्यामें बारह हैं। यथा—१—शक्र (इन्द्र), २—अर्यमा, ३—धाता, ४—त्वष्टा, ५—पूषा, ६—विवस्वान्, ७—सविता, ८—मित्र, ९—वरुण,

* बृहत् हिन्दीकोश, १२९२ तथा सं० श० कौ०, पृ०१२२४। वस्तुतः ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं और उपग्रह अपने ग्रहकी परिक्रमा करते हैं, परंतु दोनोकी परिक्रमा सूर्यकी परिक्रमा हो जाती है—यही यहाँ अभिप्राय है।

† राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः (पा० अ० सू० ३ । १ । ११४)

१०—अंशु, ११—भग और १२—विष्णु[1]। महाभारतमें भी इन्हीं बारह सूर्योंकी मान्यता है[2]। तदनुसार इन्द्र सबसे बडे हैं और विष्णु सबसे छोटे। भगवान् सूर्यकी उपासना बारह महीनोमे इन्हीं बारह नामोसे होती है; जैसे—मधु (चैत्र) मे धाता, माधव (वैशाख) मे अर्यमा, शक्र (ज्येष्ठ) में मित्र, शुचि (आषाढ) में वरुण, नभ (श्रावण) मे इन्द्र, नभस्य (भाद्रपद) में विवस्वान्, तप (आश्विन) मे पूषा, तपस्य (कार्तिक) मे क्रतु या पर्जन्य, सह (मार्गशीर्ष) में अंशु, पुष्य (पौष) मे भग, इष (माघ) में त्वष्टा और ऊर्ज (फाल्गुन) में विष्णु[3]। यही भगवान् सूर्यका उपासनाक्रम है। अमरकोषमें सूर्यके एतदतिरिक्त ३१नामोका उल्लेख है; यथा—१—सूर, २—आदित्य, ३—द्वादशात्मा, ४—दिवाकर, ५—भास्कर, ६—अहस्कर, ७—ब्रध्न, ८—प्रभाकर, ९—विभाकर, १०—भास्वान्, ११—सप्ताश्व, १२—हरिदश्व, १३—उष्णरश्मि, १४—विकर्तन, १५—अर्क, १६—मार्तण्ड, १७—मिहिर, १८—अरुण, १९—द्युमणि, २०—तरणि, २१—चित्रभानु, २२—विरोचन, २३—विभावसु, २४—ग्रहपति, २५—त्विषां पति, २६—अहर्पति, २७—भानु, २८—हंस, २९—सहस्रांशु, ३०—तपन और ३१—रवि। इन नामोके अतिरिक्त १६ नाम और उल्लिखित है—

१—पद्माक्ष, २—तेजसा राशि, ३—छायानाथ, ४—तमिस्रहा, ५—कर्मसाक्षी, ६—जगच्चक्षु, ७—लोकबन्धु, ८—त्रयीतनु, ९—प्रद्योतन, १०—दिनमणि, ११—खद्योत, १२—लोकबान्धव, १३—इन, १४—धामनिधि, १५—अंशुमाली और १६—अब्जिनीपति[4]। ऋग्वेदमें १—मित्र, २—अर्यमा, ३—भग, ४—(बहुव्यापक) वरुण, ५—दक्ष और ६—अश—इन छः नामोंकी चर्चा है[5]।

उपरिसंख्यक सूर्यनामोका उल्लेख तो औपचारिकमात्र है, यथार्थतया तो सूर्यके नाम अनन्त—असंख्य हैं; क्योंकि सूर्य और विष्णु दोनों अभिन्न तत्त्व है। जो विष्णु हैं, वे ही सूर्य और जो सूर्य है, वे ही विष्णु; वस्तुतः सूर्य एक ही हैं; किंतु कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार सूर्यके विविध नाम रखे गये हैं—नामी एक, नाम अनेक।

वैदिक साहित्य और सूर्योपासना

पाश्चात्त्य सभ्यताके अनुरागी आधुनिक इतिहासके समर्थक अधिकांश भारतीय विद्वानोके मतानुसार सूर्योपासना आधुनिक है। उनके मतमे प्राचीन कालमे सूर्य-पूजाका प्रचलन नहीं था। किंतु उन विद्वानोकी यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है, क्योकि भारतीय प्राचीन परम्परामें सूर्यके आराधनापरक प्रमाण प्रचुरमात्रामें प्राप्त होते हैं। वेद विश्वके साहित्यमे प्राचीनतम हैं। इस मान्यतामें कदाचित् दो मत नहीं हो सकते हैं। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकके मतानुसार ऋग्वेद-संहिताका निर्माण-काल ९,००० वर्षोंसे कमका नहीं है। ऋग्वेदमे सूर्योपासनाके अनेक प्रसङ्ग मिलते हैं[6]। कतिपय प्रसंगोका उल्लेख करना उपयोगितापूर्ण है; यथा—मण्डल १ सूक्त ५० ऋचा १—१३ अनुष्टुप् छन्दोबद्ध है। इसके ऋषि कण्वके पुत्र प्रस्कण्व हैं। इसमे महिमा-गानके द्वारा रोगनिवारणके लिये प्रार्थना की गयी है। पुनः सूक्त ११५, १६४ और १९१ में, जिनके ऋषि अंगिराके पुत्र कुत्स, उक्थ्यके पुत्र दीर्घतमा और अगस्त्य हैं, सूर्य-महिमाका गान है।

मण्डल ५ सूक्त ४० में ऋषि अत्रि हैं। मण्डल ७ सूक्त ६० में ऋषि वसिष्ठ हैं। इसकी एक ही ऋचाके द्वारा सूर्यके अनुष्ठानमे यजमानने पापमुक्तिके

---

१. विष्णुपुराण १ । १५ । १३१—१३३; २. महाभारत १ । ६६ । ३६; ३. वि० पु० २ । १० । ३—१८ । ४. अमरकोष १ । ३ २८—३०½ तथा (२८—४१). ५. ऋग्वेद ४ । २७ । १; ६. पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, हिन्दी ऋग्वेदकी भूमिका, पृ० १५ ।

लिये उनसे प्रार्थना की है। मण्डल ८ में सूक्त १८के ऋषि इरिम्बिठि और छन्द उष्णिक् हैं। इसमें रोगशान्ति, सुखप्राप्ति तथा शत्रुनाशकी प्रार्थना है।

मण्डल ९ में सूक्त ५ के ऋषि पृषध्र हैं। इसमें सूर्यको स्वर्गीय शोभारूप बतलाया गया है। मण्डल १०में सूक्त ३७, ८८, १३६, १७० और १८९ के ऋषि सूर्यपुत्र अभितपा, मूर्द्धन्वान्, जूति, सूर्यपुत्र चक्षु और ऋषिका सार्पराज्ञी नामकी हैं। इनमें क्रमशः दरिद्रताके अपहर्ता, द्यावापृथिवीके धारणकर्ता, लोकोत्पादक, अन्नदाता, यज्ञादि शुभानुष्ठानोंमें पूज्य और यजमानके आयुर्दाता आदि विविध विशेषणोंके साथ सूर्यकी स्तुति की गयी है।

इसके अतिरिक्त वरुण, सविता, पूषा, आदित्य, त्वष्टा, मित्र, वरुण और धाता आदि अन्यान्य नामोंसे भी सूर्यकी पूजा एवं आराधनाके प्रसङ्ग हैं।

द्विजमात्रके लिये अनिवार्य कृत्यके रूपमें दैनिक त्रिकाल सन्ध्योपासनामे गायत्री-जपके पूर्व सूर्योपस्थानका विधान है। उपासक सूर्यको तमस्—अन्धकारसे उठाकर प्रकाशमें ले जानेवाले मानते हुए स्वर्गदर्शनके साथ सर्वोत्तम ज्योतिर्मय सत्यकी प्राप्तिके लिये उनसे प्रार्थना करता है[1]। सूर्य तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं तथा मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं एवं सम्पूर्ण विश्वके नेत्र हैं। वे स्थावर तथा जङ्गम—सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं। भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष-लोकोंको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित होते हैं[2]। देवता आदि सम्पूर्ण जगत्के हितकारी और सबके नेत्ररूप तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशामें उदित हो रहे हैं। (उनके प्रसादसे) हमारी दृष्टिशक्ति सौ वर्षोंतक अक्षुण्ण रहे, सौ वर्षोंतक हम स्वस्थताके साथ जीते रहें। सौ वर्षोंतक हमारी श्रुति (कान) सशक्त रहे। सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दैन्यावस्थाको प्राप्त न हों; इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे भी चिर—अधिक कालतक हम देखें, जीवित रहें, सुनें, बोलें एवं कदापि दीन-दशापन्न न हों[3]।

वैदिक मन्त्रराज ब्रह्मगायत्रीमें भगवान् सूर्यको त्रिभुवनके उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा माना गया है। गायत्रीकी व्याख्यामें कहा गया है—हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजने योग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मों—आत्मचिन्तनकी ओर प्रेरित करें—वे देव भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोकरूप सच्चिदानन्दमय परब्रह्म हैं[4]।

वैदिक वाङ्मयमें सूर्यके विवरण बहुशः उपलब्ध हैं। एक स्थानपर सूर्यको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका ही रूप माना गया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।[5]

योगदर्शनके मतानुसार सूर्यमें संयम करनेसे सम्पूर्ण भुवनका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है। भुवन शब्दसे यहाँ तात्पर्य चतुर्दश लोकोंसे है—सात ऊर्ध्वलोक ये हैं। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक,

---

१. उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (—यजुर्वेद २। २१)

२. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (—वही ७। ४२ और ऋग्वेद १। ११५। १)

३. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (—वही ३६। २४)

४. ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (—वही ३६। ३)

५. सूर्योपनिषद्, पृ० ५५, बलदेव उपाध्याय—पुराणविमर्श, पृ० ४९९।

*

तपोलोक और अन्तिम सत्यलोक है; सात अधोलोक ये हैं—म तल, रसातल, अतल, सुतल, वितल, तलातल तथा अन्तिम पाताल। यौगिक साधना करनेवाला उपासक जब सूर्यमे एकान्त ध्यानकी सिद्धि पा जाता है, तब सम्पूर्ण चतुर्दश लोकोमे क्या घटना हो रही है, इसका टेलिविजनके समान उसे प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।[1]

सूर्यपरक अनेक पौराणिक आख्यायिकाओका मूल वैदिक है। सूर्यकी उपासनाका इतिहास भी वैदिक ही है। उत्तर वैदिक साहित्य तथा रामायण-महाभारतमें भी सूर्योपासनासम्बन्धी चर्चाका बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकालके पूर्वसे ही सूर्योपासकोका एक सम्प्रदाय बन चुका था, जो सौर नामसे प्रसिद्ध था। सौर-सम्प्रदायके उपासक अपने उपास्यदेव सूर्यके प्रति अनन्य आस्थाके कारण उन्हे आदिदेवके रूपमे मानते थे। भौगोलिक दृष्टिसे भी भारतमें सूर्योपासना व्यापक थी। मथुरा, मुल्तान, कश्मीर, कोणार्क और उज्जयिनी आदि स्थान सूर्योपासकोके प्रधान केन्द्र थे।[2]

सूर्योपासनाका आरम्भिक स्वरूप प्रतीकात्मक था। सूर्यकी प्रतिमा चक्र एव कमल आदिसे व्यक्त की जाती थी। मूर्तरूपमे सूर्य-प्रतिमाका प्रथम प्रमाण बोधगयाकी कलामे है। बौद्ध-सम्प्रदायमे भी सूर्योपासना होती थी। भाजाकी बौद्ध-गुफामे भी सूर्यकी प्रतिमा बोधगयाकी परम्परामे ही निर्मित हुई है। इन दोनो प्रतिमाओका काल ईसाकी पूर्व प्रथम शती है। बौद्ध-परम्पराके ही समान जैन-गुफामे भी सूर्यकी प्रतिमा मिली है। खण्डगिरि—उड़ीसाकी अनन्त गुफामे सूर्यकी जो प्रतिमा है (ईसवीकी दूसरी शतीकी) वह भी भाजा और बोधगयाकी ही परम्परामे है। चार अश्वोसे युक्त एकचक्र-रथारूढ सूर्यकी प्रतिमा मिली है। गधारसे प्राप्त सूर्य-प्रतिमाकी एक विचित्रता यह है कि सूर्यके चरणोको जूतोंसे युक्त बनाया गया है। इस परम्पराका परिपालन मथुराकी सूर्य-मूर्तियोमे भी किया गया है।[3] मथुरामे निर्मित सूर्य-प्रतिमाओको उदीच्य वेशमे बनाया गया है।

गुप्तकालीन सूर्य-प्रतिमाओमे ईरानी प्रभाव कम था—बिलकुल नहीं। निदायतपुर, कुमारपुर (राजशाही बंगाल) और भूमराकी गुप्तकालीन सूर्यप्रतिमाएँ शैली, भावविन्यास और आकृतिमे भारतीय है। सूर्यके मुख्य आयुध कमल दोनों हाथोमें ही विशेषतया प्रदर्शित हैं। मध्यकालीन उपलब्ध सूर्यप्रतिमाएँ दो प्रकारकी—स्थानक सूर्य-प्रतिमाएँ और पद्मस्थ प्रतिमाएँ हैं।[4]

सूर्यकी स्थिति

विश्वाकाश अनन्त एवं असीम है। इसकी सीमाको नापना मानव-मस्तिष्कके लिये सर्वथा तथा सर्वदा असम्भव है। वह इसकी सीमाके परीक्षणमें शत-प्रतिशत असफल होता है। पञ्चभूतो (पृथिवी आदि) में आकाश विशालतम है और सूक्ष्मतम भी। इस विश्वाकाशमें सूर्यकी अपेक्षा असंख्य गुना विशाल तथा अगण्य प्रकाशपिण्ड सृष्टिके आदिकालसे निरन्तर गतिशील हैं। उनके प्रति सेकण्ड लाख-लाख योजनकी रफ्तार—गतिसे चलनेपर भी आजतक उनका प्रकाश इस पृथ्वीपर नहीं पहुँच सका है—वेदादि शास्त्रीय विद्वानोके अतिरिक्त आधुनिक विज्ञानाचार्योकी भी विश्वासपूर्ण यही घोषणा है। सूर्य आकाशमण्डलके साक्षात् दृश्यमान ग्रहो-पग्रह-नक्षत्रादि प्रकाश-पिण्डोमें विशालतम हैं। इनके रथका विस्तार नौ सहस्र योजनोमे है और इससे दूना रथका ईषादण्ड (जूआ और रथके मध्यका भाग) है।

१. भुवनज्ञानं सूर्येसंयमात्। पातञ्जल-योगदर्शन, विभूतिपाद, सूत्र २६। २. पुराणविमर्श पृ० ४९९।
३. वही पृ० ५००। ४. वही पृ० ५०१।

उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लम्बा है, जिससे रथका पहिया लगा हुआ है। सूर्यकी उदयास्त गतिसे काल अर्थात् निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, रात्रि-दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और चतुर्युग (कलि, द्वापर, त्रेता, सत्ययुग) आदिका निर्णय होता है।

पुराण-वाङ्मयमे सूर्यका परिचय पार्थिव जगत्के एक आदर्श राजाके रूपमें भी मिलता है। राजा अपनी प्रजाओंसे राज्य-कर (टेक्स) बहुत कम—नाममात्रका ही लेते हैं, पर उसके बदलेमें प्रजाओंको अनेक गुना अधिक दे देते हैं और उनके स्वास्थ्य आदि समग्र सुख-सुविधाओंका समुचित प्रबन्ध कर देते हैं। इस सम्बन्धमें बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। सूर्य अपनी किरणोके द्वारा पृथ्वीसे जितना रस खींचते हैं, उन सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये (वर्षा ऋतुमें) बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्य तृप्ति करते रहते हैं। सूर्यके ही कारण होनेवाली वृष्टिसे पृथ्वीके वृक्ष-वनस्पति, कन्द-मूल और जड़ी-बूटियाँ प्रभृति भैषज्य-पदार्थ पोषित और ओषधि गुणोंसे सम्पन्न होते हैं और ओषधिरूप इन्हीं पदार्थोंके उपयोगसे प्रजा रोगमुक्त होती है। कालिदासने अपने महाकाव्यमें सूर्यके सम्बन्धमें ऐसा ही सुन्दर चित्रण उपस्थित करते हुए कहा है—सूर्यदेव ग्रीष्मकालमे पृथ्वीके जिस रसको खींचते हैं—ग्रहण करते हैं, उसे चतुर्मासमे हजार गुना अधिक करके दे देते हैं। विश्वको सूर्यकी इस विसर्गवृत्तिसे परहितके लिये त्याग करनेकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भारतने उनकी इस विसर्ग-वृत्तिसे परहितार्थ त्याग करनेकी शिक्षा ली थी। इस वृत्तिको अपनानेसे प्रजावर्गके लिये आध्यात्मिक उपलब्धि भी निश्चय ही सम्भव है। भारतमें भगवान् सूर्य ही एकमात्र आरोग्यदाता देवताके रूपमें स्वीकृत हैं। उपासना करनेपर अग्निदेव जिस प्रकार धन देते हैं, भगवान् शंकर ऐश्वर्य देते हैं और महायोगेश्वर कृष्ण ज्ञान देते हैं, उसी प्रकार उपासित भगवान् भास्कर शारीरिक, मानसिक आदि सर्वविध आरोग्य प्रदान करते हैं। अतः उन-उनकी पूर्ति हेतु उन-उन देवताओंसे प्रार्थना करनी चाहिये—

आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ऐश्वर्यमीश्वरादिच्छेज्ज्ञानमिच्छेज्जनार्दनात्॥

भारतीय मान्यतामें संयम-नियमपूर्वक सूर्यकी आराधना करनेसे असाध्य और भयंकर गलित कुष्ठरोगसे पीड़ित व्यक्ति भी नैरोग्य लाभ करते हैं।

समस्त पुराणों और उप-पुराणोमें सूर्योपासना आदि-के सम्बन्धमें विविध विवृत्तियाँ निहित हैं, पर संक्षिप्त रूपमें इतना ही वर्णन पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त पुराणेतर समस्त भारतीय साहित्य भगवान् सूर्यका विविध विवरण देता है। सबका सार है—भगवान् सूर्यकी उपासना, पूजा एवं अर्चना। सूर्य हमारे सदासे पूज्य और अर्च्य रहे हैं।

सूर्योपासनाकी परम्परा

(लेखक—डॉ० पं० श्रीरमाकान्तजी त्रिपाठी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

सूर्यका वर्णन वैदिक कालसे ही देवताके रूपमें मिलता है, किंतु वैदिक कालमें सूर्यका स्थान गौण समझा जा सकता है; क्योंकि वैदिक कालमें इन्द्र तथा अग्नि इनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली देवता माने गये हैं। पौराणिक गाथाओंके आधारपर सूर्यको देवमाता अदिति तथा महर्षि कश्यपका पुत्र माना जाता है। अदिति-पुत्र होनेके कारण ही इन्हें आदित्यकी संज्ञा प्रदान की गयी है। वेदोंमें सबसे प्राचीन ऋग्वेद (मण्डल २, सूक्त २७, मन्त्र १) मे छः आदित्य माने गये हैं—मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष तथा अंश। किंतु ऋग्वेदमें ही आगे (मण्डल ९, सूत्र, ११४ मन्त्र ३ में) आदित्यकी संख्या सात बतलायी गयी है। पुनः आगे चलकर हमें अदिति[1]के आठ पुत्रोंका नाम मिलता है। वे निम्न हैं—मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, भग, अंश, विवस्वान् तथा आदित्य। इनमेंसे सातको लेकर अदिति चली गयी और आठवें आदित्य- (सूर्य-) को आकाशमें छोड़ दिया। वेदोंके पश्चात् शतपथ-ब्राह्मणमे द्वादश आदित्योंका उल्लेख मिलता है। महाभारत- (आदिपर्व, अध्याय १२१) में इन आदित्योंका नाम धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, सविता तथा विष्णु बताया गया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न उल्लेख मिलनेसे यह निश्चित करना कठिन है कि वास्तवमे कौन-से अदिति-पुत्र सूर्य हैं। आदित्य तथा सूर्य कहीं-कहीं अभिन्न माने जाते हैं। किन्हीं-किन्हीं विद्वानोंका मत है कि वस्तुतः ये द्वादश आदित्य एक ही सूर्यके कर्म, काल और परिस्थितिके अनुसार रखे गये भिन्न-भिन्न नाम हैं। कुछ विद्वान् तो यह भी कहते हैं कि ये द्वादश आदित्य (सूर्य)के द्वादश मासोंमें उदित होनेके भिन्न-भिन्न नाम हैं। यही कारण है कि पूषा, सविता, मित्र, वरुण तथा सूर्यको लोग अभिन्न मानते हैं। किंतु इतना तो निश्चित है कि इन देवताओंमें कुछ-न-कुछ स्वरूपभेद अवश्य रहा होगा, जिसके कारण इन्हें पृथक्-पृथक् नामोंसे निर्दिष्ट किया गया है। यह भेद समयके साथ लुप्त हो गया और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अब हमें कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता है।

सूर्यके विषयमें यह भी प्रसिद्ध है कि वे आकाशके पुत्र हैं। यह तथ्य ऋग्वेदसे भी वहाँ प्रमाणित होता है, जहाँ आकाश-पुत्र सूर्यके लिये गीत गानेका वर्णन मिलता है।[2] कहीं-कहीं उषाको सूर्यकी माता बतलाया गया है, जो चमकते हुए बालकको अपने साथ लाती है तथा उसका मातृत्व सूर्यसे प्रथम उदय होनेके कारण माना गया है। ऋग्वेदमें ही सूर्य तथा उषा दोनोंको इन्द्रसे उत्पन्न बताया गया है।[3] उषाको ऋग्वेदमें ही एक स्थानपर सूर्यकी पत्नी[4] तथा एक अन्य स्थानपर सूर्य-पुत्री माना गया है।[5] इस प्रकार वेदोंके आधारपर यह निश्चित करना कठिन है कि सूर्य किसके पुत्र थे; क्योंकि स्थान-स्थानपर भिन्न-भिन्न वर्णन मिलते है।

सूर्यके जन्मके विषयमें इन सबसे विचित्र कथानक विष्णुपुराणमें मिलता है, जहाँ सूर्यको विश्वकर्माकी शक्तिके आठवें अंशसे उत्पन्न कहा गया है। विष्णुपुराणकी कथा निम्न प्रकार है—'विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाके

१. हिंदी ऋग्वेद—इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लिमिटेड, प्रयाग, पृ० १३३६, मन्त्र ८-९। २. ऋग्वेद १०। ३७। १ 'दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत'। ३. ऋग्वेद (२। १२। ७) 'यः सूर्यं य उषसं जजान'। ४. ऋग्वेद (७। ७५। ५)। ५. ऋग्वेद (४। ४३। २) सूर्यस्य दुहिता।

साथ सूर्यका विवाह हुआ तथा तीन पुत्रोंको जन्म देनेके पश्चात् उसने अपने पतिकी शक्तिको असहनीय समझा तथा स्वनिर्मित छायासे अपना स्थान ग्रहण करनेको कहकर वह वनको चली गयी। छायाने अपनी भिन्नता सूर्यसे नहीं बतायी। सूर्यने कुछ वर्षोंतक इसपर ध्यान भी नहीं दिया। एक दिन संज्ञाके एक पुत्र यमने छायाके साथ कुछ दुर्व्यवहार कर दिया और छायाने उसे शाप दे दिया। सूर्यने (जिन्हें यह ज्ञात था कि माताका शाप पुत्रपर कोई प्रभाव नहीं डालता) इस विषयमें खोज की। उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी कल्पित पत्नी कौन है। सूर्यके क्रुद्ध तेजसे छाया नष्ट हो गयी। तदनन्तर वे संज्ञाकी खोजमें गये, जो उन्हे घोड़ीके रूपमें वनमें भ्रमण करती हुई दिखायी दी। सूर्यने इस बार अपनेको अश्वरूपमें परिवर्तित कर दिया और वहींपर उन दोनोंने कुछ समयतक जीवन व्यतीत किया। कुछ समयके अनन्तर वे अपने पशु-जीवनसे ऊबकर वास्तविक रूप धारण करके घर लौट आये। विश्वकर्माने इस प्रकारकी घटनाकी पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये सूर्यको एक पाषाणपर स्थित कर दिया तथा उनके आठवें अंशका अपहरण करके उससे विष्णुके चक्र, शिवके त्रिशूल तथा कार्तिकेयकी शक्तिका निर्माण किया।[1]

इस प्रकार सूर्यके जन्मके विषयमें भिन्न-भिन्न कथाएँ होनेके कारण यह निश्चित करना सम्भव नहीं है कि वे वास्तवमे किस देवताके पुत्र थे। सम्भव है कि वे अदितिके ही पुत्र हो; क्योंकि अदितिको प्रायः सभी देवताओंकी माता माना गया है।

मित्र, सविता, सूर्य तथा पूषा—ये चारो ही नाम वस्तुतः सूर्यके ही द्योतक हैं, किंतु पूषाका स्वरूप कहीं-कहीं सूर्यसे भिन्न-सा प्रतीत होता है। मित्र, सविता तथा सूर्य शब्द वेदोंमें सूर्यके लिये ही प्रयुक्त हुए हैं। मित्र सूर्यके सञ्चारके नियामक हैं तथा वे सवितासे अभिन्न माने जाते हैं। वैदिक 'मित्र' पारसी-धर्मके 'मिथ्र'से स्वरूपतः अभिन्न है। मित्रका अर्थ सुहृद् अथवा सहायक है और निश्चय ही वह सूर्यकी रक्षण-शक्तिका द्योतक है। सविता 'हिरण्यमयदेव' हैं, जिनके हाथ, नेत्र और जिह्वा सब हिरण्मय हैं। सविता विश्वको अपने हिरण्यमय नेत्रोंसे देखते हुए गमन करते हैं[2]। सविताका अर्थ है 'प्रसव करनेवाला', 'स्फूर्ति प्रदान करनेवाला' देवता। निश्चय ही वे विश्वमें गतिका सञ्चार करनेवाले तथा प्रेरणा देनेवाले सूर्यके प्रतिनिधि हैं।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ३५वें सूक्तके ग्यारह मन्त्र सूर्यकी स्तुतिमें कहे गये हैं। यहाँ सूर्यके अन्तरिक्ष-भ्रमण, प्रातःसे सायंतक उदय-नियम, राशि-विवरण, सूर्यके कारण चन्द्रमाकी स्थिति आदिका वर्णन मिलता है। प्रथम मण्डलके ५०वें सूक्तके आठवें मन्त्रमें लिखा है—'सूर्य! हरित नामक सात अश्व रथसे आपको ले जाते हैं। किरणें तथा ज्योति ही आपके केश हैं। ऋग्वेदमें आगे कहा गया है—'सूर्यके एकचक्र रथमें सात अश्व जोते गये हैं। एक ही अश्व सात नामोसे रथ-वहन करता है।[3] वे सभी प्राणियोके, शोभन तथा अशोभन कार्योके द्रष्टा हैं तथा मनुष्योके कर्मोके प्रेरक देव हैं। सूर्य आकाशमें चमकते हुए अन्धकारको दूर भगाते हैं। अपने गौरव तथा महत्त्वके कारण उन्हे देवोका पुरोहित कहा गया है। सूर्यको मित्र तथा वरुणका नेत्र बताया जाता है।'[4]

सूर्यके विविध रूपोका स्पष्ट वर्णन वेदोंमें उपलब्ध होता है। ऋषि लोग अन्धकारको दूर भगानेवाले सूर्यके तीन

---

१. Thomas—Epicsm myths and leg ends of India, P. 116—118.

२. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽ देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

३. हिन्दी ऋग्वेद (इंडियन प्रेस पब्लिकेशन्स, लिमिटेड प्रयाग, पृ० ३४५, मन्त्र २)

४. उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ (—ऋ० १।५०।१०)

रूपोंका वर्णन करते हैं—उत्, उत् + तर—उत्तर, उत् + तम—उत्तम, जो क्रमशः माहात्म्यमें बढकर हैं । सूर्यकी उस ज्योतिका नाम उत् है जो इस भुवनके भौतिक अन्धकारके अपहरणमें समर्थ होती है । देवोंके मध्यमें जो देव-रूपसे निवास करती है, वह 'उत्तर' है; परंतु इन दोनोंसे बढकर एक विशिष्ट ज्योति है, जिसे उत्तम कहते हैं ।* ये तीनो शब्द सूर्यके कार्यात्मक, कारणात्मक तथा कार्यकारणसे अतीत अवस्थाके द्योतक हैं । इस एक ही मन्त्रमें सूर्यके आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक स्वरूपोंका संकेत किया गया है । (वेद सूर्यके इन तीनों स्वरूपोंका प्रतिपादन करते हैं ।)

वेदोंमें सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा गौण नहीं है । तथ्य उनके महत्त्वको अनेकशः सूचित करते हैं । चार धार्मिक सम्प्रदायोंमेंसे सूर्यकी आराधना करनेवाला एक सौर-सम्प्रदाय भी है । एक विशेष प्रकारका धार्मिक सम्प्रदाय सूर्यकी आराधना करता है । इसीसे स्पष्ट होता है कि अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका अधिक महत्त्व है ।

वेदका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र गायत्री है, जिसे वेदोंकी माता भी कहा जाता है । यह मन्त्र सविता अथवा सूर्यके महत्त्वका ही वर्णन करता है । पौराणिक एकाक्षर 'ॐ' भी सूर्यसे ही सम्बद्ध है । यह सूर्यसम्बन्धी अग्नि तथा त्रिदेवोंका प्रतीक है । यह एक चक्रमे लिखा हुआ सूर्य-मण्डलका द्योतक है । छान्दोग्य-उपनिषद्में 'ॐ'का महत्त्व इस प्रकार कहा गया है—'सभी प्राणियोंका सार पृथ्वी है, पृथ्वीका सार जल है, जलका सार वनस्पति है, वनस्पतियोंका सार मनुष्य है, मनुष्यका सार वाणी है, वाणीका सार ऋग्वेद है, ऋग्वेदका सार सामवेद है, सामवेदका सार उद्गीथ है और उसीको 'ॐ' कहते हैं ।'

'स्वस्तिक' हिन्दू मात्रका एक सौर चिह्न है । इस शब्दका अर्थ है 'भलीभाँति रहना' । यह तेज अथवा महिमाका द्योतक है तथा इस बातका संकेत करता है कि जीवनका मार्ग कुटिल है तथा वह मनुष्यको व्याकुल कर सकता है; किंतु प्रकाशका मार्ग उसके साथ-ही-साथ चलता है ।

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्य

ग्रीक-पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका वर्णन लगभग वैसा ही मिलता है, जैसा कि भारतीय धर्मप्रधान वेदोंमे । वास्तवमें यदि देखा जाय तो हम इस निष्कर्षपर सफलतासे पहुँच सकते हैं कि ग्रीक-धर्म वैदिक धर्मका अनुकरणमात्र है । ग्रीककी पौराणिक गाथाओंके अनुसार देवी गाला (Gala) पृथ्वीकी देवी हैं । इन्होंने Chaos के पश्चात् जन्म लिया एवं आकाश, पर्वत तथा समुद्रका निर्माण स्वयं किया । उरानस (Uranus) इनके पति तथा पुत्र दोनों ही है । इन दोनोंके संयोगसे Cronus (Saturn) उत्पन्न हुए जो इनके सबसे छोटे पुत्र हैं वे देवताओंके सम्राट् माने गये हैं । Cronusकी पत्नीका नाम Rttea है तथा इन दोनोंके संयोगसे जेउस (Zeus) उत्पन्न हुए । ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यको इन्हीं Zeus का पुत्र माना गया है । सूर्यको ग्रीककी पौराणिक गाथाओंमें Phoebs Apollo (फोएबस अपोलो) तथा Helios नामोंसे सम्बद्ध किया गया है । पौराणिक गाथाओंमें सूर्यके प्रासाद आदिका भी वर्णन मिलता है । एक पौराणिक गाथाके अनुसार सूर्य-पुत्र Phaethon उनके प्रासादमें

* उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥
(—ऋ० १ । ५० । १०)

पहुँचा जो कान्तियुक्त स्तम्भोंपर आश्रित था[1] तथा स्वर्ण एवं लाल मणियोंसे दीप्तिमान् हो रहा था। इसकी कारनिस चमकीले हाथी-दाँतोंसे बनी थी और चौड़े चाँदीके द्वारोंपर उपाख्यान एवं अद्भुत कथाएँ लिखी थीं।

फोएबस (Phoebus) लोहित वर्णका जामा पहने हुए अनुपम मरकतमणियोंसे शोभायमान सिंहासनपर वे आरूढ थे। उनके भृत्य दायीं तथा बायीं ओर क्रमसे खडे थे। उनमें दिवस, मास, वर्ष, शताब्दियाँ तथा ऋतुएँ भी थीं। वसन्त ऋतु अपने फूलोंके गुलदस्तोंके साथ, ग्रीष्म ऋतु अपने पीत वर्णके अन्नोंसहित तथा शरद् ऋतु, जिसके केश ओलोंकी भाँति श्वेत थे, उनके चारों ओर नम्रभावसे स्थित थे। उनके मस्तकके चारों ओर जाज्वल्यमान किरणें बिखर रही थीं।

सूर्यके प्रासादमें पहुँचनेके पश्चात् Phaethon ने उनसे कहा कि वे अपना रथ एक दिवसके लिये उसको दे दें। उस स्थानपर, जब सूर्य उसको रथ न माँगनेके लिये समझाते हैं, तब वे स्वयं रथका वर्णन अपने मुखसे करते हैं, जो निम्न है—

केवल मैं ही रथके प्रज्वलित धुरेपर, जिससे चिनगारियाँ बिखरती रहती हैं एवं जो वायुके मध्य घूमता है, खडा रह सकता हूँ। रथको एक निर्दिष्ट मार्गसे जाना चाहिये। यह अश्वोंके लिये एक कठिन कार्य होता है, जब कि प्रातःकाल स्वस्थ भी रहते हैं। मध्याह्नमें रथको आकाशके मध्यभागमें होना चाहिये। कभी-कभी मैं स्वयं भी घबड़ा जाता हूँ, जब मैं नीची भूमि और समुद्रको देखता हूँ।[2] लौटते समय भी अभ्यस्त हाथ ही रश्मियोंको सँभाल सकते हैं। Thetis (समुद्रोंकी देवी) भी, जो मुझे अपने शीतल जलमें ले लेनेकी प्रतीक्षा करती रहती है, पूर्णरूपसे सावधान रहती है, जबतक मैं आकाशसे फेंक नहीं दिया जाता। यह भी एक समस्या है कि स्वर्ग निरन्तर चलता रहता है तथा रथकी गति चक्रके समान तीव्र गतिके विपरीत होती है।[3]

इस प्रकार रथका जो वर्णन हमें यहाँ मिलता है, लगभग वैसा ही वर्णन भारतीय पौराणिक गाथाओंमें भी मिलता है। सूर्यके रथमें वहाँ तो अग्निका निवास ही माना गया है, फिर यदि उसके धुरेसे अग्नि निकलती है तो कोई विशेष बात नहीं। वेदमें सूर्यके आकाशसे फेंके जानेका वर्णन अवश्य नहीं मिलता; यह ग्रीक-धर्मकी अपनी परिकल्पना है।

इसके पश्चात् Apollo अपने पुत्रसे कहते हैं कि यदि मैं तुम्हें अपना रथ दे भी दूँ तो तुम इन बाधाओंका निराकरण नहीं कर सकते, किंतु phaethon के विशेष आग्रहपर सूर्य उसको रथ दिखलानेके लिये ले जाते हैं। वहाँ पुनः रथका वर्णन आया है और वह तो भारतीय धर्मका अनुकृतिमात्र प्रतीत होता है। वर्णन

1. 'Borne by Illuminous Pillars, the Palace of the Sun God rose lustrous with gold and flamered rubies. The Cornice was of dazzling ivory, and carved in relief on the wide silver doors were legends and miracle tales.'

—Gods and Heroes—Gustav sehwab—Translated in English—Olgamarx and Ernst Morwitz, (Page. 49.)

2. "I myself am often shaken with dread when, at a such height. I stand upright in my chariot. My head spins when I look down to the land and sea so far beneath me."—Gods and Heroes, (P. 49, Eng. Trans)-

3. "Heaven turns incessantly and that the driving is against the sweep of its vast rotations." (Gods and Heroes, P. 49, Eng. Trans.)

इस प्रकार है—'रथ-धुरा तथा चक्र-हाल स्वर्णनिर्मित थे। उसकी तीलियाँ चाँदीकी थीं तथा जुआ चन्द्रकान्तामणि तथा अन्य बहुमूल्य मणियोंसे चमक रहा था।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय पौराणिक गाथाओं तथा ग्रीक पौराणिक गाथाओंमें पर्याप्त साम्य है और सूर्यका जो महत्त्व भारतीय धर्ममें है, वही महत्त्व ग्रीक-धर्ममें भी प्रतिपादित किया गया है। लगभग सभी पौराणिक गाथाओंमें सूर्यका स्थान महत्त्वपूर्ण है तथा ये ही एक ऐसे देवता हैं, जिनकी आराधना प्रायः सभी धर्मोंमें समान रूपसे होती है।

ऐतिहासिक युगमें सूर्योपासना

वैदिक कालमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा सूर्यका स्थान गौण था, किंतु आगे चलकर सूर्यका महत्त्व अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक हो गया। महाभारतके समयसे ही समाजमें सूर्य-पूजाका प्रचलन हो गया था। कुषाण-कालमें तो सूर्य-पूजाका प्रचलन ही नहीं था, वरन् कुषाण-सम्राट् स्वयं सूर्योपासक थे। कनिष्क (७८ ई०) के पूर्वज शिव तथा सूर्यके उपासक थे।[1] इसके पश्चात् हमें तीसरी शताब्दी ई० के गुप्त-सम्राटोंके समयमे भी सूर्य, विष्णु तथा शिवकी उपासनाका उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त-(४१४–५५ ई०)के समयमे ब्राह्मण-धर्मका विशेष अभ्युत्थान हुआ तथा उस समयमे विष्णु, शिव तथा सूर्यकी उपासना विशेषरूपसे होती थी—यद्यपि स्वयं कुमारगुप्त कार्तिकेयका उपासक था।[2] स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०) के समयमे तो बुलन्दशहर जिलेके इन्द्रपुर नामक स्थानपर दो क्षत्रियोंने एक सूर्य-मन्दिर भी बनवाया था।[3] गुप्त-सम्राटोंके कालतक सूर्य-आराधनाका विशेष प्रचलन हो गया था और उनके समयमें मालवाके मन्दसौर नामक स्थानमें, ग्वालियरमें, इन्दौरमें तथा बघेलखण्डके आश्रमक नामक स्थानमें निर्मित चार श्रेष्ठ सूर्य-मन्दिरोंका उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उनके समयकी बनी हुई सूर्यदेवकी कुछ मूर्तियाँ भी बंगालमें मिलती हैं[4] जिनसे यह प्रतीत होता है कि गुप्त-सम्राटोंके समयमें सूर्यभगवान्‌की आराधना अधिक प्रचलित थी।

सातवीं ईसवीमें हर्षके समयमें सूर्योपासना अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी। हर्षके पिता तथा उनके कुछ और पूर्वज न केवल सूर्योपासक थे, अपितु 'आदित्य-भक्त' भी थे। हर्षके पिताके विषयमें तो बाणने अपने 'हर्षचरित'में लिखा है कि वे स्वभावसे ही सूर्यके भक्त थे तथा प्रतिदिन सूर्योदयके समय स्नान करके 'आदित्य-हृदय' मन्त्रका नियमित जप किया करते थे।[5] हर्षचरितके अतिरिक्त अन्य कई प्रमाणोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि सौर-सम्प्रदाय अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अधिक उत्कर्षपर था। हर्षके समयमें प्रयागमें तीन दिनका अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशनमें पहले दिन बुद्धकी मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी तथा दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य तथा शिवकी पूजा की गयी थी।[6] इससे भी ज्ञात होता है कि उस कालमें सूर्य-पूजाका पर्याप्त महत्त्व था। सूर्योपासनाका वह चरमोत्कर्ष हर्षके समयतक ही सीमित नहीं रहा, अपितु

१. डा० भगवतशरण उपाध्याय—प्राचीन भारतका इतिहास (संस्करण १९५७) पृष्ठ २१७।

२. वही पृष्ठ २५८।

३. श्रीनेत्र पाण्डेय—भारतका बृहत् इतिहास (स० १९५०) पृ० २६८।

४. वही पृ० २८०।

५. हर्षचरित—चौखम्बा-प्रकाशन, पृ०२०२।

६. प्राचीन भारतका इतिहास—डा० भगवतशरण उपाध्याय, पृ०३०६, स० १९५७।

लगभग ग्यारहवीं शतीतक सूर्य-पूजाका प्रचलन रहा। हर्षके पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड़ (७२४–७६०ई०) नामक एक अन्य राजा भी सूर्यका भक्त था। उसने सूर्यके 'मार्तण्ड-मन्दिर'का निर्माण करवाया, जिसके खँडहरोंसे प्रतीत होता है कि वह मन्दिर अपने समयमें विशाल रहा होगा।* प्रतिहार-सम्राटोंके समयमें भी सूर्य-पूजाका विशेष प्रचलन था। ग्यारहवीं शताब्दीके लगभग निर्मित कोणार्कका विशाल सूर्य-मन्दिर भी जनताकी सूर्य-भक्तिका ही प्रतीक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद-कालसे लेकर लगभग ग्यारहवीं शताब्दीतक सूर्यने अन्य देवताओंकी अपेक्षा विशेष सम्मान प्राप्त किया।

कुष्ठ-रोग-निवारणमें सूर्यका महत्त्व

जनश्रुतिके अनुसार मयूरको कुष्ठरोग हो गया था तथा इस भयंकर रोगसे त्राण पानेके लिये उन्होंने भगवान् सूर्यकी उपासना की एवं भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर पुनः स्वास्थ्य-लाभ किया। इस जनश्रुतिमें सत्यांश कितना है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किंतु इतना अवश्य है कि भारतीय परम्परामें प्रारम्भसे ही सूर्यको इस रोगसे मुक्त करनेवाला देवता माना गया है।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इसका उल्लेख मिलता है। वहाँ सूर्यको सभी चर्मरोगों तथा अनेक अन्य भीषण रोगोंका विनाशक वताया गया है—सूर्य उदित होकर और उन्नत आकाशमें चढ़कर हमारा मानसरोग (हृदय रोग), पीतवर्ण-रोग (पीलिया) तथा शरीर-रोग विनष्ट करें। मैं अपने हरिमाण तथा शरीर-रोगको शुक एवं सारिका पक्षियोंपर न्यस्त करता हूँ। आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोगके विनाशके लिये समस्त तेजके साथ उदित हुए हैं†। इन मन्त्रोंसे ज्ञात होता है कि सूर्योपासनासे न केवल शारीरिक अपितु मानसिक रोग भी विनष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक सूर्योपासक अपनी आधि-व्याधिके शमनके लिये इन मन्त्रोंको जपता है। सायणके विचारसे इन्हीं मन्त्रोंका जप करनेसे प्रस्कण्व ऋषिका चर्मरोग विनष्ट हो गया था।

सूर्योपासनासे कुष्ठरोगका निवारण हो जाता है, यह धारणा न केवल भारतीयोंमें ही बद्धमूल थी, अपितु प्राचीनकालसे ही पारसियोंमें भी मान्य थी। हेरोडोरसके अनुसार कुष्ठरोगका कारण सूर्यभगवान्के प्रति अपराध करना था। उसके इतिहासकी प्रथम पुस्तकमें इस प्रकारका उल्लेख मिलता है—'कोई भी नागरिक जो कुष्ठरोग या श्वेतकुष्ठसे ग्रस्त होता था, नगरमें प्रविष्ट नहीं होता था, न वह अन्य पारसियोंसे मिलता-जुलता था तथा अन्य लोग यह कहते थे कि इसके इस रोगका कारण सूर्यके प्रति किया गया कोई अपराध है।'‡ इससे यह भी ज्ञात होता है कि पारसियोंका यह विश्वास था कि जो देवता इस प्रकारके संक्रामक रोगोंकी उत्पत्तिका कारण है, केवल वही उस रोगका विनाशक हो सकता है।

आज भी भारतवर्षमें कई स्थानोंपर इस प्रकारकी धारणा प्रचलित है कि सभी प्रकारके चर्मरोगोंका विनाश

* प्राचीन भारतका इतिहास (पृ० ३०६)—डा० भगवतशरण उपाध्याय।

† ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, सूक्त ५०, मन्त्र ११–१३

‡ "Whatsoever one of the citizens has leprosy or the white (leprosy) does not come into city, nor does he mingle with the other Persians. And they say that he contracts these (diseases) because of having committed some sin against the Sun." Quackenbos, Sanskrit Poems of Mayura, P. 35.

आदित्योपासनासे हो जाता है । अयोध्याके निकट सूर्यकुण्ड नामक एक जलाशय है । जनश्रुति है कि उस कुण्डमें स्नान करनेसे सभी प्रकारके चर्मरोगोंका विनाश हो जाता है । मिथिलामें भी ऐसी धारणा है कि कार्तिक शुक्लपक्षकी षष्ठीके दिन सूर्योपासना करनेसे मनुष्यको किसी प्रकारका चर्मरोग नहीं हो सकता है ।

इसके अतिरिक्त अन्य सभी पौराणिक कथाओंको अन्धविश्वास कहनेवाले वैज्ञानिक भी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि सूर्य-किरणें सभी प्रकारके चर्मरोगोंके विनाशके लिये अत्यन्त लाभदायक हैं । आजकल तो अनेक चिकित्सालयोंमे सूर्यकी किरणोंसे ही कुष्ठरोग-ग्रस्त लोगोंका उपचार किया जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य ही एक ऐसे देवता हैं, जिनकी उपासना समस्त जाति करती है । सूर्योपासनाकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और आज भी प्रायः सर्वत्र प्रचलित है ।

सूर्याराधना-रहस्य

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

भगवान् सूर्यनारायण ही संसारके समस्त ओज, तेज, दीप्ति और कान्तिके निर्माता हैं । वे आत्मशक्तिके आश्रयदाता तथा प्रकाश-तत्त्वके विधाता हैं । वे आधि-व्याधिका अपहरण करते और कष्ट तथा क्लेशका शमन करते हैं और रोगोंको आमूल-चूल हनन कर हमारे जीवनको निर्मल, विमल, स्वस्थ एवं सशक्त बना देते हैं ।

यदि हम असत्से सत्की ओर, मृत्युसे अमरत्वकी ओर तथा अन्धकारसे प्रकाश-पथकी ओर जाना चाहते हैं, तो जगत्-प्रकाश-प्रकाशक भगवान् सूर्यकी सत्ता-महत्ताको समझकर हमे उनकी आराधना और उपासना मनोयोगसे करनी चाहिये ।

वेदोंमे सूर्यको चराचर जगत्की आत्मा कहा गया है और इसी आत्मप्रकाशको बृहदारण्यक उपनिषद्में देखनेयोग्य, सुननेयोग्य तथा मनन करनेयोग्य बताया गया है—**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।** (बृ० उ० २ । ४ । ५) ।

सौर-सम्प्रदायवाले सूर्यको विश्वका स्रष्टा मानकर एकचित्तसे उनकी आराधना करते हैं । पहले सौर-सम्प्रदायवालोंकी छः शाखाएँ थीं । सभी अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करते, लाल चन्दनका तिलक लगाते, माला धारण करते और सूर्यकी भिन्न-भिन्न देवोंके रूपमें आराधना करते थे । कोई सूर्यकी ब्रह्माके रूपमें, दूसरे विष्णुरूपमें, तीसरे शिवके रूपमें, चौथे त्रिमूर्तिके रूपमें आराधना करते थे । पाँचवें सम्प्रदायवाले सूर्यको ब्रह्म मानकर सूर्यबिम्बके नित्य दर्शनकर षोडश उपचारोंद्वारा उनकी पूजा करते थे और सूर्यके दर्शन किये बिना जल भी नहीं पीते थे । छठे सम्प्रदायवाले सूर्यका चित्र अपने मस्तक तथा भुजाओंपर अङ्कित कराके सतत सूर्यका ध्यान करते थे । श्रुतियों, भविष्यत्, ब्रह्म आदि पुराणों, बृहत्संहिता तथा सूर्यशतक आदिमे सूर्यके महत्त्वका वर्णन किया गया है ।

वेदोंमें कहा गया है कि—

'उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ।

(तै० आ० प्र० २, अ० २)

अर्थात्—'उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी आराधना ध्यानादि, करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है ।'

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं; इसीलिये वे 'सूर्यनारायण' कहलाते हैं । सर्गके आदिमें भगवान् नारायण ही सूर्यरूपमें प्रकट होते हैं; तभी तो सूर्यकी गणना पञ्चदेवोंमें है । वे स्थूलकाल-के नियामक, तेजके महान् आकर, इस ब्रह्माण्डके केन्द्र तथा भगवान्की प्रत्यक्ष विभूतियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । इसीलिये सन्ध्योपासनमें सूर्यरूपसे ही भगवान्की आराधना की जाती है । उनकी आराधनासे हमारे तेज, बल, आयु और नेत्रोंकी ज्योतिकी वृद्धि होती है ।

इस जगत्में सूर्यभगवान्की आराधना करनेवाले अनेक राष्ट्र हैं । शास्त्रीय शोध जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे यह सिद्ध होता जा रहा है कि सूर्यमें उत्पादिका, संरक्षिका, आकर्षिका और प्रकाशिका—सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं । भगवान् सूर्य अपनी शक्ति अपने कुटुम्बके प्रत्येक सदस्य—चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदिको यथायोग्य परिमाणमें नित्य प्रदान करते हैं । सूर्य-सिद्धान्त ज्योतिष्शास्त्रकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है । कहा जाता है कि भगवान् सूर्यनारायणने 'मय' नामक असुरकी आराधनासे प्रसन्न होकर उसको यह ज्ञान दिया था । सूर्य ज्ञान देव भी हैं ।

यौगिक क्रियाओंके स्फुरण और जागरणमें भी भगवान् सूर्यनारायणकी आराधनाकी महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है । महाकुण्डलिनी नामकी शक्ति, जो समस्त सृष्टिमें परिव्याप्त है, व्यक्तिमें कुण्डलिनीके रूपमें व्यक्त होती है । प्राणवायुको वहन करनेवाली मेरुदण्डसे सम्बद्ध इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना—ये तीन नाड़ियाँ हैं । इनमें इडा और पिङ्गलाको सूर्य-चन्द्र कहा जाता है । इनकी नियमित साधना और आराधनासे ही योगी षट्चक्र-भेदनकर कुण्डलिनी-शक्तिको उद्बुद्ध कर सकनेमें सक्षम हो पाता है ।

ज्ञानयोग और भक्तियोगके साथ-साथ सूर्यनारायण निष्काम कर्मयोगके भी आचार्य माने जाते हैं । इसीलिये समस्त ज्ञान-विज्ञानके सारसर्वस्व भगवद्गीता (४ । १)के अनुसार योगशिक्षा सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने सूर्यनारायणको ही दी ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

भगवान् श्रीकृष्णकी उस दिव्य निष्काम कर्मयोगकी शिक्षाको सूर्यनारायणने इस प्रकार आत्मसात् कर लिया है कि तबसे वे नित्य, निरन्तर, नियमितरूपसे गतिशील रहकर सम्पूर्ण संसारको कर्म करनेका पथ-प्रदर्शन करते चले आ रहे हैं । इसीलिये भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करनेवाले लोगोंको भी निष्काम कर्मयोग करनेकी नित्य नयी शक्ति, शारीरिक स्फूर्ति तथा राष्ट्र, समाज और विश्वकी सेवा करनेकी अनुपम भावभक्ति प्राप्त होती रहती है ।

कर्मयोगी सूर्यका श्रेष्ठत्व

भगवान् श्रीकृष्णने विवस्वान् (सूर्यदेव) को कर्मयोगका उपदेश दिया था । सूर्य कर्मशीलता, कर्मठता किंवा लोकसंग्रहके अद्वितीय उदाहरण हैं । वे मेरु-मण्डलके चारों ओर निरन्तर भ्रमण करते हुए अपने प्रकाश एवं चैतन्यसे-निष्कामभावसे विश्व-कल्याण करते हैं । ऐतरेय ब्राह्मण (३३ । ३ । ५) में इन्द्रने रोहितको कर्म-सौन्दर्य (कर्मकौशल) का उपदेश देते हुए कहा है कि—'सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति ।,'—'देखो, सूर्यका श्रेष्ठत्व इसीलिये है कि वे लोक-मङ्गलके लिये निरन्तर गति-शील रहते हुए तनिक भी आलस्य नहीं करते हैं; अतः सूर्यदेवकी भाँति कर्तव्य-पथपर सदैव चलते ही रहो ।'

सौरोपासना

(लेखक—स्वामीश्रीशिवानन्दजी)

वैदिकधर्मके अनुसार देवता-देवियोंकी संख्या गणनातीत है। 'हिंदुओंके तैंतीस कोटि देवता हैं' इस कथनका तात्पर्य संख्यासे नहीं है। इसका अर्थ यह है कि अगणित प्राणमय विभिन्न आकृतिपूर्ण यह जो सृष्टि है, इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके रूपमे इसके पीछे कोई सर्वशक्तिमान् पुरुष है। देवताओ, देवियोंके असंख्य नाम उसीकी विभिन्न शक्तियोंके वाहकमात्र हैं। वैदिकधर्ममे बहुदेवत्ववादकी जो कल्पना की गयी है, वह सब उस सर्वशक्तिमान्‌के असंख्य रूपकी कल्पनामात्र ही है। कारण, वेद कहते हैं कि वस्तुतः एक आत्मा ही विश्वव्याप्त है। अर्थात् सभी रूपोंमें वे एक ही हैं। ऋग्वेदकी मन्त्र-संख्या ३। ५३। ८ मे यह स्पष्ट कथन है—**"रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।"** निरुक्तभगवान् कहते हैं—**महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।** (७। १। ४) अतएव इसके द्वारा यह सिद्धान्त निरूपित होता है कि विभिन्न देव-देवियोंकी विभिन्नता रूपमे, गुणमे है; किंतु मूलमें नहीं है, अर्थात् मूल तत्त्व एक होनेके बावजूद भी विभिन्न गुणोंके परिप्रेक्ष्यमे इसीका संख्यातीत सम्बोधन होता है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वह एक कौन है? किसकी द्युतिच्छटा सभी देवी-देवताओंमें प्रतिभासित होती है? इसके उत्तरमें ऋग्वेद कहता है—**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** परमात्मा सूर्य ही नित्य भास्वर अनन्त ज्योतिरूपसे विभूषित हो रहे हैं।

वेद और उपनिषद्‌की दृष्टिमें भी—'**हंसः शुचिषद्**' और (ऋक्० ४। ४०। ५) '**आ कृष्णेन रजसा०**' तथा (ऋ० १। ३५। २) **तद्भास्कराय विद्महे प्रकाशाय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्।** (मैत्रायणीय-कृष्णयजुर्वेद २। ९। ९) आदिसे यह मान्य है। अतएव आत्म-स्वरूप सूर्यनारायण ही प्रधान देवता हैं। विभिन्न मन्त्रोंमे यही प्रतिपादित हुआ है। वे (सूर्य) विराट् पुरुष नारायण हैं। इसीलिये वेद भी उनके प्रति प्रार्थना-मुखर हैं।

वे ही विराट् पुरुष सूर्यनारायण हैं। जिनके नेत्रसे अभिव्यक्ति होती है, जो लोक-लोचनोंके अधिदेवता हैं, जिनकी उपासना-द्वारा समस्त रोग, नेत्रदोष आदि तथा ग्रहबाधा दूर होती है, जिनकी उपासनासे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, अनादिकालसे वर्णश्रेष्ठ द्विजगण जिनके उद्देश्यसे प्रतिदिन अर्घ्याञ्जलि निवेदन करते हैं, वे ही चर एवं अचर जगत्‌के जीवन-देवता हैं। उन्हीं ज्योतिर्घन, जीवन-स्रष्टा, ज्ञानस्वरूप भगवान् श्रीसूर्यनारायणको हम प्रणाम करते हैं। सुतराम्, सूर्यनारायण ही विराट् पुरुष हैं, यह निःसंदेह-रूपसे स्वीकार किया जा सकता है।

इनसे अभिन्न शक्तित्रय—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं। ये सभी भगवान् सूर्यके अभिन्न अङ्गस्वरूप हैं। इनमें किंचित् भी भेद नहीं है। इसका प्रमाण शास्त्रने इस प्रकार दिया है—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥

(सूर्यतापनी-उपनिषद् १। ६)

इसकी पुष्टि शिवपुराणसे भी हो जाती है—

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

अर्थात् शिव और सूर्य दोनो अभिन्न हैं।

सूर्यनारायणकी उपासनाके विषयमें पौराणिक दृष्टान्त भी उपलब्ध होते हैं। सृष्टिके अनादि-कालसे मनुष्यलोक और सौरमण्डलका सम्बन्ध अच्छेद्य है।

सौरमण्डलमें सूर्य, चन्द्र आदि नवग्रह, त्रिदेव, साध्यदेव, मरुद्गण और सप्तर्षिगणोंका निवास है। इन सबका प्रतिनिधित्व सूर्य ही करते हैं। तात्पर्य यह कि विश्व-ब्रह्माण्डमे इस अचिन्त्य-शक्तिके नियामक तेजोराशि भगवान् भास्कर ही हैं। देहधारी प्राणीकी सक्षेपतः तीन ही मुख्य अपेक्षाएँ हैं—तेज, भुक्ति और मुक्ति। इन तीनोकी प्राप्तिके लिये वेद संध्योपासनाको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। वर्ण-श्रेष्ठ द्विजातियोंके लिये शास्त्रके शासन—'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'के अनुसार यह सन्ध्योपासना ही सूर्यकी उपासना है। इसके द्वारा चतुर्वर्गका फल प्राप्त होता है; यथा—

मन्देहदेहनाशार्थमुदयास्तमये रविः।
समीहते द्विजोत्सृष्टं मन्त्रतोयाञ्जलित्रयम्॥
गायत्रीमन्त्रतोयाढ्यं दत्तं येनाञ्जलित्रयम्।
काले सवित्रे किं न स्यात् तेन दत्तं जगत्त्रयम्॥
किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि च पशूनि च॥
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च।
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम्॥
(स्कन्दपु० काशीखण्ड ९। ४५—४८)

जगत्‌में पञ्चभूतोंके साथ प्राणिमात्रका सम्बन्ध अच्छेद्य है। इन पञ्चभूतोंके अधिनायक पाँच देवता हैं। अतः प्राणिमात्र इन पञ्चदेवताओंके द्वारा विवृत हैं। इसीलिये कहा गया है कि—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

विष्णु आकाशके स्वामी हैं, अग्निकी महेश्वरी, वायुके सूर्य, पृथ्वीके विष्णु एवं जलके गणेश अधिदेवता हैं। अतएव इनके अस्तित्वके बिना पाञ्चभौतिक देहका अस्तित्व ही नहीं रह जाता। इसी कारण सभी कर्मोंमें पूजा करनेका विधान है।

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

आयुर्वेदशास्त्रमें स्पष्ट उल्लेख है कि शरीरस्थ पञ्च-तत्त्वोंमेंसे किसी एकके कुपित होनेपर नाना प्रकारके रोग होते हैं। इस विषयमें चरक एवं सुश्रुत प्रमाण ग्रन्थ हैं। इन पञ्चतत्त्वोंके बीच वायु प्रबलतम है। वायु-विकृति ही अस्वस्थताका प्रमुख कारण है। वायुके अधिदेवता भी सूर्य हैं, अतएव सूर्यकी उपासना अवश्य करनी चाहिये।

पुराण-ग्रन्थोंमें कुष्ठरोगके निवारणार्थ सूर्यदेवकी उपासनाकी प्रधानता स्वीकार की गयी है। भविष्य-पुराणके ब्रह्मपर्वमें पाया जाता है कि कृष्णपुत्र साम्ब दुर्वासाके शापसे कुष्ठरोगग्रस्त हो गये। इस कारण श्रीकृष्णको दुःखी देखकर गरुड़ने शाकद्वीपसे वैद्यविद्यापार-दर्शी पण्डित—ब्राह्मणादिको लाकर उस रोगकी निवृत्ति-के लिये प्रार्थना की। उन ब्राह्मणोंने सूर्य-मन्दिरकी स्थापना करायी और साम्बने सूर्यकी उपासनाके द्वारा रोगसे मुक्ति पायी।

ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम्।
साम्बेनाप्तं तथारोग्यं रूपं च परमं पुनः॥

मयूर कवि भी सूर्य-शतककी रचना करके इस रोगसे मुक्त हुए थे। प्राकृतिक कथा यही है कि प्राणिमात्रके लिये सूर्य-पूजा एकान्तप्रयोजनीय और अवश्य करणीय है। इस प्रकार सूर्यकी उपासना पृथक्-पृथक् मासमें पृथक्-पृथक् नामोंसे सालभर प्रतिमास करनी चाहिये, शास्त्रोंमें निर्देश है—

चैत्रमें धाता, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमे मित्र, आषाढ़मे वरुण, श्रावणमें इन्द्र, भाद्रपदमें विवस्वान्, आश्विनमें पूषा, कार्तिकमें क्रतु, मार्गशीर्षमें अंशु, पौषमें भग, माघमें त्वष्टा, फाल्गुनमें विष्णु नामसे।

भारतमें हिंदू-जातिमें आदिकालसे ही इस पूजा और उपासनाका प्रचलन है, इसके प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। केवल भारतवर्षमें ही नहीं, मानवजातिमें

आदिकालके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे इसका भूरि-भूरि प्रमाण पाया जाता है कि मानवजातिकी चिन्तन-धाराके साथ-साथ सूर्यपूजा आदिकालसे ही सम्बद्ध है । सुप्रसिद्ध संस्कृतितत्त्ववेत्ता प्रो० ए० बी० कीथने कहा है कि अत्यन्त प्राचीनकालसे ही ग्रीक दर्शनमे सूर्यपूजाका प्रमाण मिलता है । Ghales भी जिनका जन्म एशिया माइनरमे ६४० खीष्ट पूर्वार्द्ध (ईसापूर्व)में हुआ था । उनका भी ऐसा ही मत है ।

ग्रीक दार्शनिक Empedoeles ने सूर्यको अग्निके मूल स्रोतके रूपमे वर्णित किया है । और उन्होंने यह भी मत स्वीकार किया है कि सूर्य ही विश्वस्रष्टा हैं । हमारी उषा देवीकी सूर्य-परिक्रमाकी कथा और ग्रीक देशकी अपोलो और वियनाकी कहानी इसी तथ्यकी पोषक प्रतीत होती है । ग्रीक देशके भी विवाहमन्त्रमें आज भी सूर्य-मन्त्र पढा जाता हे ।

मैक्सिकोमें आदिकालसे ही प्रचलित मत यही है कि विश्वब्रह्माण्डकी सृष्टिकी जड़मे सूर्य ही विद्यमान हैं ।

हमारे देशमे अति प्राचीनकालसे ही सूर्यमूर्ति (बुद्धगयाके स्तूपकी) एवं तात्कालीन शिलालेख और इलोराकी गुफाओंकी सूर्यप्रतिमा इस तथ्यका उद्‌घाटन करती है कि अति प्राचीनकालसे ही सूर्यपूजाका प्रचार एवं प्रसार इस देशमे चला आ रहा है; यहाँतक कि जैन-धर्ममे भी देवतागणोके समूहमे सर्वोच्च स्थान सूर्यका ही है अर्थात् वे देवाधीश हैं ।

निदान, सूर्यनारायणकी स्तुति-प्रार्थना एवं उपासना आदिकालसे ही प्रचलित है और चलती रहेगी । इस विषयमें संदेहके लिये कोई स्थान नहीं है ।

भगवान् भुवन-भास्कर और गायत्री-मन्त्र

(लेखक—श्रीगङ्गारामजी शास्त्री)

सूर्यका एक नाम सविता भी है । सविताकी शक्तिको ही सावित्री कहते हैं । '**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्**'—यह सविताका मन्त्र है । इसमे गायत्री-छन्दका प्रयोग होनेके कारण इसीको गायत्री-मन्त्र कहने लगे हैं । सक्षेपमें इस मन्त्रका अर्थ है—देदीप्यमान भगवान् सविता (सूर्य) के उस तेजका हम ध्यान करते हैं । वह (तेज) हमारी बुद्धिका प्रेरक बने । इस मन्त्रमे प्रणव और तीन व्याहृतियाँ जोड़कर '**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**'—इस मन्त्रका साधक अनुष्ठान-कर्ता जप करते हैं । इसी मन्त्रके द्वारा वेदपाठ प्रारम्भ करनेके पूर्व यज्ञोपवीत पहनाकर ब्रह्मचारीका उपनयनसंस्कार सम्पन्न कराया जाता है । किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये पुरश्चरण प्रारम्भ करनेके पूर्व दस सहस्र गायत्री-मन्त्र-जपका विधान है । इतना ही नहीं, गायत्रीकी महत्ता तो यहाँतक है कि किसी भी कार्यसिद्धिके लिये जहाँ शास्त्रमे अनुष्ठान-विशेष कथित न हो, वहाँ गायत्री-मन्त्रका जप और तिलका हवन करना चाहिये; यथा—

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्याश्च जपस्तथा ॥

किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये सामान्य नियम यह है कि मन्त्रमे जितने अक्षर हों, उतने ही लक्ष मन्त्रका जप करके जपसङ्ख्याका दशांश हवन, हवनका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश मार्जन और मार्जनका दशांश ब्राह्मण-भोजन करानेसे उस मन्त्रका पुरश्चरण पूरा होता है । पुरश्चरणके द्वारा मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर कार्यविशेषके लिये उसका जप और कामनापरत्वसे विशेष द्रव्यका हवन करनेपर सिद्धि

सम्भव होती है। कभी-कभी इतना करनेपर भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। उस समय आचार्य कह देते हैं कि अमुक त्रुटि रह जानेके कारण अनुष्ठान सफल नहीं हुआ। पर गायत्री-मन्त्रके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। एक बार गायत्री-मन्त्रका चौबीस लाख जप और तद-नुसार हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजनके द्वारा पुरश्चरण सम्पन्न हो जानेपर स्वयं गायत्री-माता साधकका योगक्षेम-वहन करती हैं। वैसे गायत्री-मन्त्रके द्वारा भी कामनापरक अनुष्ठान किये जा सकते हैं।

त्रिकाल-सन्ध्या—जिस प्रकार किसी भी मन्त्रको सिद्ध करनेके पूर्व अयुत गायत्री-जप करना होता है, उसी प्रकार प्रतिदिनके कार्यमे शरीर और आत्माकी पवित्रता और शक्तिसञ्चयके लिये त्रिकाल—सन्ध्या आवश्यक है। प्रतिदिनके कार्योंमें हमारे शरीरकी ऊर्जाका जो व्यय होता है उसकी पूर्ति सूर्योपस्थानके द्वारा भगवान् भुवन-भास्करसे होती है। इससे आध्यात्मिक शक्तिमें वृद्धि होती है। इसके साथ प्रतिदिन कम-से-कम एक माला गायत्री-जपका विधान है। त्रिकाल-सन्ध्याके लिये गायत्री-माताके तीन अलग-अलग रूपोंका ध्यान किया जाता है जो इस प्रकार है—

प्रातःकालीन ध्यान—

हंसारूढां सिताब्जे त्वरुणमणिलसद्भूषणां साष्टनेत्रां
वेदाख्यामक्षमालां स्रजमयकमलं दण्डमप्यादधानाम्।
ध्याये दोर्भिश्चतुर्भिस्त्रिभुवन-
जननीं पूर्वसन्ध्यादिवन्द्याम्।
गायत्रीमृक्सवित्रीमभिनव-
वयसं मण्डले चण्डरश्मेः॥
विश्वमातः सुराभ्यर्च्ये पुण्ये गायत्रि वेधसि।
आवाहयाम्युपास्त्यर्थमेह्येनोघ्नि पुनीहि माम्॥

'प्रातः-संध्याके समय सूर्यमण्डलमें श्वेत कमलपर स्थित, हंसपर आरूढ, लालमणिके भूषणोंसे अलंकृत, आठ नेत्रों तथा चार हाथोंवाली और उनमें क्रमशः वेद, रुद्राक्षमाला, कमल एवं दण्डको धारण किये, ऋग्वेदकी जननी, किशोरी, त्रिभुवनकी माता गायत्रीका मैं ध्यान करता हूँ।'

'जगत्‌की माता देवताओंद्वारा पूजित, पुण्यमयी भगवती गायत्री! मैं उपासनाके लिये आपका आवाहन करता हूँ।'

मध्याह्नकालीन ध्यान—

वृषेन्द्रवाहना देवी ज्वलत्त्रिशिखधारिणी।
श्वेताम्बरधरा श्वेतनागाभरणभूषिता॥
श्वेतस्रगक्षमालालंकृता रक्ता च शंकरा।
जटाधराधराधात्री धरेन्द्राङ्कभवाम्भवा।
मातर्भवानि विश्वेशि आहूतैहि पुनीहि माम्॥

मैं वृषभवाहना, प्रज्वलित त्रिशूल एवं श्वेत वस्त्रधारिणी, श्वेतस्रग, रुद्राक्षमाला एवं श्वेत सर्पसे विभूषित, लाल वर्णवाली, जटाधारिणी, पर्वतपुत्री, शिवरूपा, भवानी (संध्यादेवी) का आवाहन करता हूँ। आप आये तथा मुझे पवित्र करें।'

सन्ध्याकालीन ध्यान—

सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवा सरस्वती।
खगगा कृष्णवक्त्रा तु शङ्खचक्रधरापरा॥
कृष्णस्रग्भूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमयी वरा।
वीणाक्षमालिका चारुहस्ता स्मितवरानना॥
मातर्वाग्देवते स्तुत्ये आहूतैहि पुनीहि माम्॥

'मैं कृष्णवर्णा, कृष्णमुखी, कृष्णवर्णके माल्याभूषणोंसे युक्त, गरुडवाहना विष्णुदैवत्या, शङ्खचक्रधारिणी, वीणा-रुद्राक्ष लिये, सुन्दर मुस्कानवाली, सर्वज्ञानमयी सायंकालीन सन्ध्या रूपिणी सरस्वतीका आवाहन करता हूँ। स्तुति करनेयोग्य माँ वाग्देवी आप यहाँ आये तथा मुझे पवित्र करें।'

त्रिकाल-सन्ध्यामें हम अङ्गन्यास, करन्यासके द्वारा प्रतिदिन सूर्योपस्थान-मन्त्रोंसे सूर्यकी दिव्य शक्ति और दिव्य तेजका भौतिक शरीर और अन्तरात्मामें आवाहन करते हैं। इस प्रकार त्रिकाल-सन्ध्यामात्र धार्मिक
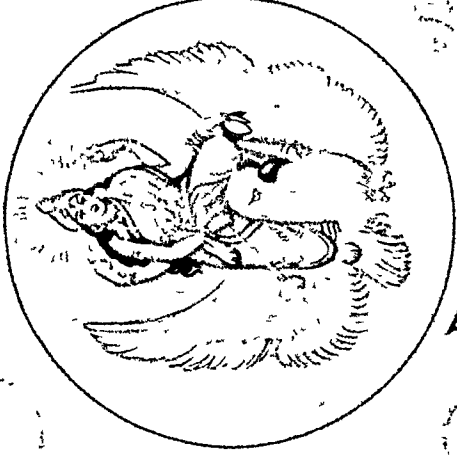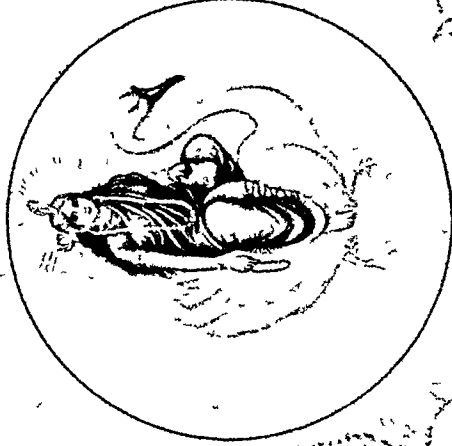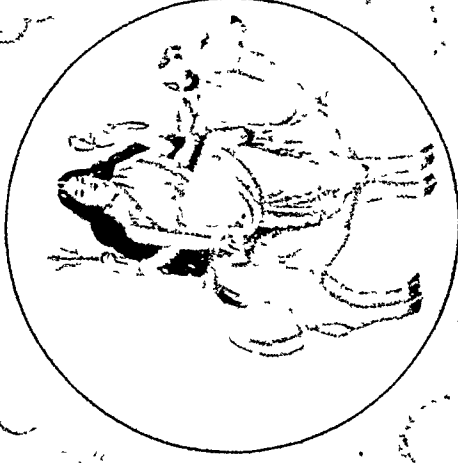
सावित्रीका त्रिकाल-ध्यान

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी। गायत्र्यास्तु परं नास्ति देवि चेह न पावनम्॥

अनुष्ठान न होकर व्यस्त जीवनमें भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करनेका सरलतम साधन है।

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्—

सूर्य आरोग्य प्रदान करनेवाले देवता हैं। वे जीवमात्रके प्रेरणाके स्रोत हैं। सूर्योदय होते ही मनुष्य कर्ममार्गमे प्रवृत्त होता है। इसीलिये कहा है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**—सूर्य ही इस चराचर-सृष्टिके प्रेरक हैं। मनुष्यमे चेतनता अथच पेड़-पौधोंमे हरीतिमा सूर्यसे ही है। यदि उन्हे पर्याप्त प्रकाश न मिले तो पत्तियोंका रग पीला पड़ने लगता है; पेड़-पौधे मुरझाने लगते हैं। प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंसे अनेक रोग दूर होते हैं। रिकेट्स और क्षयरोग-जैसी बीमारियाँ प्रातःकालीन धूपके सेवनसे दूर होती हैं। सूर्यकी किरणोंके सात रंग ही सूर्यके सात अश्व हैं। इसलिये सूर्यका एक नाम सप्ताश्व भी है। विभिन्न रंगोंकी बोतलोमे जल भरकर सूर्यके प्रकाशमे रखनेसे उस जलमें रोगोंको नष्ट करनेकी शक्ति आ जाती है। इस प्रकार चिकित्सा करनेकी प्रणालीको सूर्य-किरण-चिकित्साका नाम दिया गया है। यह प्रणाली एलोपैथी, होम्योपैथी, एक्यूपंक्चर आदि चिकित्सा-प्रणालियोंसे कम सफल नहीं है। हिंदी भाषामे इस विषयपर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्रातःकाल सूर्याभिमुख होकर एक विशेष प्रकारसे जो व्यायाम किया जाता है, उसे सूर्य-नमस्कार कहते हैं। इस व्यायामसे शरीर स्वस्थ रहनेके साथ ही रोगोंके आक्रमणकी सम्भावना नहीं रहती। मध्यप्रदेश तथा अन्य कुछ राज्योंमे बालकोंसे पी० टी०के स्थानपर सूर्य-नमस्कारका अभ्यास कराया जाता है। यह अच्छी योजना है, अन्य प्रदेशोंमे भी इसका अनुसरण होना चाहिये।

कुष्ठ-जैसे भयंकर रोगकी सफलचिकित्सा विज्ञान अबतक नहीं खोज सका है। सूर्य भगवान्‌की आराधनासे अनेक कुष्ठरोगी स्वस्थ होते देखे गये हैं। भारतमें बहुत-से स्थानोंपर सूर्योपासनाके लिये बालार्क (बालादित्य)के मन्दिर बने हैं, जहाँ प्रतिवर्ष हजारों चर्मरोगी स्वास्थ्य-लाभके लिये जाते हैं। दतिया जिलेके उनाव नामक स्थानपर बालाजीका भारत-प्रसिद्ध मन्दिर है, जहाँ असाध्य कुष्ठके रोगियोंको चामत्कारिकरूपसे स्वास्थ्य-लाभ होता है।

प्रातःकाल स्नानकर सूर्यभगवान्‌को अर्घ्य देनेका विधान है। यदि आप किसी जलाशयमें स्नान करते हैं तो जलमें खड़े होकर ही अर्घ्य देते हैं। सूर्यके सम्मुख खडे होकर अर्घ्य देनेसे जलकी धाराके अन्तरालसे सूर्यकी किरणोंका जो प्रभाव शरीरपर पड़ता है, उससे शरीरमें स्थित रोगके कीटाणु नष्ट होते हैं और शरीरमे अज्ञातरूपसे ऊर्जाका सचार होता है। प्राकृतिक चिकित्साके साथ रंगीन काचके द्वारा सूर्यकिरणोंकी प्रभासे रोगीका उपचार किया जाता है, जिसमें उक्त सिद्धान्त ही कार्य करता है। इसीलिये कहा है—

अर्घ्यदानमिदं पुण्यं पुंसामारोग्यवर्धनम्।

भगवती गायत्रीके ध्यानमे भी जो पाँच मुख और उनके पाँच रंगोका वर्णन है, वह सूर्य-मण्डल-मध्यस्थ शक्तिके पाँच दृश्य रंग ही हैं। यथा—

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वात्मवर्णात्मिकाम्।
सावित्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

(—शारदाति० २१। १५)

गायत्री और सूर्यके अभिन्न होनेका एक प्रमाण इस निम्नलिखित ध्यानसे भी मिलता है—

हेमाम्भोजप्रवालप्रतिमनिजरुचिं चारुखट्वाङ्गपद्मौ
चक्रं शक्तिं सपाशं सृणिमतिरुचिरामक्षमालां कपालम्।
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्वेदवक्त्राभिरामं
मार्तण्डं वल्लभार्धं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजामः॥

(—शारदाति० १४। ७१)

उक्त दोनो ध्यानोंमें स्वरूप और आयुधकी कितनी समानता है। इसीलिये सूर्यके साथ सौरपीठमें ही

सूर्यकी शक्ति—सावित्री (गायत्री) की स्थापना और उपासनाका विधान है।

ज्योतिषां रविरंशुमान्—

श्रीमद्भगवद्गीताके उक्त कथनके अनुसार ज्योतिष्पिण्डोंमें सूर्यको परब्रह्मका स्वरूप ही माना गया है। इसीलिये त्रिकाल-सन्ध्यामें सूर्य, गायत्री और प्रणवस्वरूप ब्रह्मकी उपासना प्रत्येक द्विजके लिये आवश्यक है। ग्रहके रूपमें भी आद्य गणनाके अनुसार सूर्यकी प्रधानता बतायी गयी है। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार विचार करनेपर पता चलता है कि अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा सूर्यके अनिष्ट स्थानमें स्थित होने अथवा क्रूर ग्रहके साथ सूर्यका किसी भी प्रकारका योग होनेसे ही अधिकांश रोग होते हैं। ग्रहका परस्पर सम्बन्ध चार प्रकारसे होता है; यथा—

प्रथमः स्थानसम्बन्धो दृष्टिजस्तु द्वितीयकः।
तृतीयस्त्वेकतो दृष्टिः स्थितिरेका चतुर्थतः॥

यहाँ अनिष्ट स्थानस्थ सूर्यके कारण होनेवाले कुछ रोगोंका उल्लेख किया जाता है—

कर्कराशिस्थ शनिदृष्ट सूर्य अर्शरोग (बवासीर) कारक हैं। इसी योगसे वातव्याधि (गठिया) होती है। बुधसे दृष्ट कर्कराशिस्थ सूर्य कफ और वातरोगकारक हैं। भौमदृष्ट कर्कस्थ सूर्य भगन्दरकारक हैं। सिंहस्थ सूर्य रतौंधी-कारक है। कुम्भस्थ सूर्य हृदयरोगकारक हैं। शनि और भौमके साथ अष्टमस्थ सूर्य अपस्मार-(मृगी-) कारक है। शत्रुराशिस्थ सूर्य कुब्जत्व, नेत्ररोग और कृमिरोगकारक हैं। भौमदृष्ट अष्टमस्थ सूर्य विसर्प और मसूरिकाकारक हैं। राहु और भौमके साथ अष्टमस्थ रवि कुष्ठकारक हैं। एकराशिस्थ शुक्र-सूर्य-शनि कुष्ठरोगकारक हैं। शुक्रसे दृष्ट सिंहस्थ रवि कुष्ठकारक है। शुक्रसे दृष्ट वृश्चिकस्थ सूर्य कुष्ठकारक हैं। नीचराशिस्थ सूर्य कुष्ठकारक हैं। शुक्रकी दशामें सूर्यकी अन्तर्दशा हो तो वे उन्माद, उदररोग, नेत्र और गुप्तरोगकारक हैं। सूर्यकी दशामें शुक्रकी अन्तर्दशा हो तो वे शिरोरोग, गलरोग, श्वेतकुष्ठ, ज्वर, शूल आदि कारक हैं।

इस प्रकार बहुसंख्यक रोगोंके होनेमें सूर्यका कोप प्रधान कारण होता है। इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखते हुए शास्त्रोंमें अर्घ्यदान और त्रिकाल-सन्ध्याका दैनिक विधान किया गया है। साथ ही ग्रहजनित व्याधियोंकी शान्तिके लिये ओषधि-मिश्रित जलसे स्नान और रत्नधारण भी निर्दिष्ट किया जाता है। सूर्य-किरणोंके विद्युमवर्गी होनेसे सूर्यप्रसादनके लिये उनका धारण करना बताया गया है। सूर्यकिरणोंके लिये अधिक संवेदनशील होनेसे यह रत्न शरीरपर सूर्यकिरणका तत्काल प्रभाव छोड़ता है। निम्नलिखित ओषधियोंसे मिश्रित जलसे स्नान करना भी बताया गया है—

मैनसिल, छोटी इलायची, देवदारु, कुंकुम, खस, मुलहठी, मधु और लाल चन्दन। हस्तादित्ययोगमें सूर्याथर्वशीर्ष, आदित्यहृदयस्तोत्रका पाठ और नेत्ररोगोंमें नेत्रोपनिषद्का पाठ करना बताया गया है। रोगोपशमनके लिये व्रत, पूजा-पाठ, सूर्यनमस्कार और औषधोपचार विहित हैं।

जिस प्रकार सूर्यकिरणोंसे आकृष्ट जल पृथ्वीपर जीवनदायी है, उसी प्रकार सूर्यकिरणोंसे आप्यायित होकर हमारा मन और शरीर नवीन स्फूर्ति पाता है। यदि विज्ञानकी वर्तमान प्रगति जारी रही तो वह दिन दूर नहीं, जब दैनिक ईंधन, विद्युत् और क्षुधाशान्तिके लिये सौर-ऊर्जाका प्रयोग सम्भव होगा। इस दिशामें तेजीसे काम हो रहा है। इस भौतिक उपलब्धिसे संसारका अत्यधिक कल्याण सम्भावित है। भगवान् भास्कर सर्वथा उपास्य हैं।

—:o:—

अक्ष्युपनिषद्

(नेत्ररोगहारी विद्या)

हरिः ॐ। अथ ह साङ्कृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम । स आदित्यं नत्वा चक्षुष्मतीविद्यया तमस्तुवत्। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः। ॐ खेचराय नमः। ॐ महासेनाय नमः। ॐ तमसे नमः। ॐ रजसे नमः। ॐ सत्त्वाय नमः। ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। हंसो भगवाञ्छुचिरूपः अप्रतिरूपः। विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वाहेति।

एवं चक्षुष्मतीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽब्रवीच्चक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाथ विद्यासिद्धिर्भवति। य एवं वेद स महान् भवति।

× × × ×

कथा है कि एक समय भगवान् साङ्कृति आदित्यलोकमे गये। वहाँ सूर्यनारायणको प्रणाम करके उन्होने चक्षुष्मती विद्याके द्वारा उनकी स्तुति की। चक्षु-इन्द्रियके प्रकाशक भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। आकाशमे विचरण करनेवाले सूर्यनारायणको नमस्कार है। महासेन (सहस्रों किरणोकी भारी सेनावाले) भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। तमोगुणरूपमे भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। रजोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। सत्त्वगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। भगवन्! आप मुझे असत्से सत्की ओर ले चलिये, मुझे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये, मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये। भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं और वे अप्रतिरूप भी हैं—उनके रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है। जो अखिल रूपोको धारण कर रहे हैं तथा रश्मिमालाओंसे मण्डित हैं, उन जातवेदा (सर्वज्ञ, अग्नि स्वरूप) स्वर्णसदृश प्रकाशवाले ज्योतिःस्वरूप और तपनेवाले (भगवान् भास्करको हम स्मरण करते हैं।) ये सहस्रों किरणोवाले और शत-शत प्रकारसे सुशोभित भगवान् सूर्यनारायण समस्त प्राणियोके समक्ष (उनकी भलाईके लिये) उदित हो रहे हैं। जो हमारे नेत्रोके प्रकाश हैं, उन अदितिनन्दन भगवान् श्रीसूर्यको नमस्कार है। दिनका भार वहन करनेवाले विश्ववाहक सूर्यदेवके प्रति हमारा सब कुछ सादर समर्पित है।

इस प्रकार चक्षुष्मती विद्याके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् सूर्यनारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे आँखका रोग नहीं होता, उसके कुलमे कोई अंधा नहीं होता। आठ ब्राह्मणोको इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है। जो इस प्रकार जानता है, वह महान् हो जाता है।

कृष्णयजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्

अब नेत्र-रोगका हरण करनेवाली तथा पाठमात्रसे सिद्ध होनेवाली चाक्षुषीविद्याकी व्याख्या करते हैं, जिससे समस्त नेत्ररोगोका सम्पूर्णतया नाश हो जाता है और नेत्र तेजयुक्त हो जाते हैं। उस चाक्षुषी विद्याके अहिर्बुध्न्य ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, भगवान् सूर्य देवता हैं, नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये इसका जप होता है—यह विनियोग है*।

चाक्षुषीविद्या

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जात-

* ॐ तस्याश्चाक्षुषीविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्री छन्दः, सूर्यो देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।

रूपं तेजो दर्शय दर्शय । यथाहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय । कल्याणं कुरु कुरु । यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमः सूर्याय । ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः । खेचराय नमः । महते नमः । रजसे नमः । तमसे नमः । असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृतं गमय । उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः । य इमां चक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति । न तस्य कुले अन्धो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॥

ॐ (भगवान्का नाम लेकर कहे), हे चक्षुके अभिमानी सूर्यदेव ! आप चक्षुमे चक्षुके तेजरूपसे स्थिर हो जायँ । मेरी रक्षा करें, रक्षा करें । मेरी आँखके रोगोंका शीघ्र शमन करें, शमन करें । मुझे अपना सुवर्ण-जैसा तेज दिखला दें, दिखला दें । जिससे मैं अन्धा न होऊँ, कृपया वैसे ही उपाय करें, उपाय करें । मेरा कल्याण करें, कल्याण करें । दर्शन-शक्तिका अवरोध करनेवाले मेरे पूर्वजन्मार्जित जितने भी पाप हैं, सबको जडसे उखाड़ दें, जड़से उखाड दें । ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) नेत्रोंको तेज प्रदान करनेवाले दिव्यस्वरूप भगवान् भास्करको नमस्कार है । ॐ करुणाकर अमृतस्वरूपको नमस्कार है । ॐ भगवान् सूर्यको नमस्कार है । ॐ नेत्रोंके प्रकाश भगवान् सूर्यदेवको नमस्कार है । ॐ आकाश-विहारीको नमस्कार है । परम श्रेष्ठस्वरूपको नमस्कार है । ॐ (सबमें क्रिया-शक्ति उत्पन्न करनेवाले) रजोगुणरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार है । (अन्धकारको सर्वथा अपने भीतर लीन करनेवाले) तमोगुणके आश्रयभूत भगवान् सूर्यको नमस्कार है । हे भगवन् ! आप मुझको असत्से सत्की ओर ले चलिये । अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये । मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये । उष्ण-स्वरूप भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं । हंसस्वरूप भगवान सूर्य शुचि तथा अप्रतिरूप हैं— उनके तेजोमय स्वरूपकी समता करनेवाला कोई भी नहीं है । जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे नेत्र-सम्बन्धी कोई रोग नहीं होता । उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता । आठ ब्राह्मणोंको इस विद्याका दान करनेपर—इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है ।*

---

* चाक्षुषी-(नेत्र-) उपनिषद्की शीघ्र फल देनेवाली विधि—नेत्ररोगसे पीडित श्रद्धालु साधकको चाहिये कि प्रतिदिन प्रातःकाल हल्दीके घोलसे अनारकी शाखाकी कलमसे काँसेके पात्रमें निम्नलिखित बत्तीसा यन्त्रको लिखे—

८	१५	२	७
६	३	१२	११
१४	९	८	१
४	५	१०	१३

फिर उसी यन्त्रपर ताँबेकी कटोरीमें चतुर्मुख (चारों ओर चार बत्तियोंका) घीका दीपक जलाकर रख दे । तदनन्तर गन्ध-पुष्पादिसे यन्त्रका पूजन करे । फिर पूर्वकी ओर मुख करके बैठे और हरिद्रा (हल्दी)की मालासे 'ॐ ह्रीं हंसः' इस बीजमन्त्र-की छः मालाएँ जपकर चाक्षुषोपनिषद्के कम-से-कम बारह पाठ करे । पाठके पश्चात् फिर उपर्युक्त बीजमन्त्रकी पाँच मालाएँ जपे । इसके बाद भगवान् सूर्यको श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर प्रणाम करे और मनमें यह निश्चय करे कि मेरा नेत्ररोग शीघ्र ही नष्ट हो जायगा । ऐसा करते रहनेसे इस उपनिषद्का नेत्ररोगनाशमें अद्भुत प्रभाव 'मम चक्षूरोगान् शमय शमय' बहुत शीघ्र देखनेमें आता है ।

—पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य

भगवान् सूर्यका सर्वनेत्ररोगहर चाक्षुषोपनिषद्

(एक अनुभूत प्रयोग)

अक्षि-उपनिषद् भगवान् सूर्यकी नेत्र-रोगोंके लिये एक रामबाण उपासना है। रविवारको किसी शुभ तिथि और नक्षत्रमे प्रातः सूर्यके सम्मुख नेत्र बंद करके खडे हो या बैठकर—'मेरे समस्त नेत्ररोग दूर हो रहे हैं' इस भावनासे रविवारसे बारह पाठ नित्य किये जाते हैं। यह प्रयोग बारह रविवारतकका होता है। यदि पुष्य नक्षत्रके साथ रविवारका योग मिल जाय तो अति उत्तम है। हस्त नक्षत्रयुक्त रविवारसे भी यह पाठ प्रारम्भ किया जाता है। लाल कनेर, लाल चन्दन मिले जलसे ताम्र-पात्रसे सूर्यनारायणको अर्घ्य देकर नमस्कार करके पाठ प्रारम्भ करना चाहिये। यह सैकड़ो बारका अनुभूत प्रयोग है। रविवारके दिन सूर्य रहते बिना नमकका एक बार भोजन करना चाहिये।

—पं० श्रीमथुरानाथजी शुक्ल

चक्षुदृष्टि एवं सूर्योपासना

(चक्षुष्मतीविद्या)

(लेखक—श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०)

मनुष्यको सुख-दुःख आदिकी प्राप्ति उसके द्वारा किये गये अपने कर्म, आचार एवं आहार-विहार आदिके अनुसार होती है। रोगजन्य क्लेशोके मूल कारण भी उसके पूर्वजन्मकृत कर्म तथा मिथ्या आहार-विहारजन्य दोपके प्रकोप हैं। धर्मानुष्ठान, पुण्यकर्माचरण एवं सुविहित औषधसेवनसे भी जो रोग शान्त नहीं होते है, उन्हे पूर्वजन्मकृत पापसे उत्पन्न समझना चाहिये। जबतक यह पूर्वजन्मका किया हुआ पाप-दोप निर्मूल नहीं होता, तबतक वह व्याधिरूपमे पीडा देता रहता है। ऐसे पाप-दोपकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त, देवाराधन, देवाभिषेक, जप, होम, मार्जन, दान, दिव्य मणि एवं यन्त्रका धारण, अभिमन्त्रित उत्तम ओषधिका सेवन आदिके रूपमे दैवव्यपाश्रय चिकित्साका विधान मिलता है। चरक (सूत्र० अ० ११, चिकित्सा० अ० ३), अष्टाङ्गहृदय (चिकित्सा० अ० १९) एव वीरसिंहावलोक आदि कई ग्रन्थोमे अनेक स्थानोपर दैवव्यपाश्रय चिकित्सा करनेका विधान मिलता है।

भारतीय दर्शन पिण्ड एवं ब्रह्माण्डमें अभेद मानता है। छान्दोग्य एव बृहदारण्यकोपनिषद्मे अक्षिपुरुषविद्या—(उपकोसलविद्या—) प्रकरणमें चक्षुर्मण्डल तथा सूर्य-मण्डलमें अभेददृष्टि रखकर उपासना करनेका वर्णन मिलता है। वस्तुतः सृष्टि-व्यवस्थामे अध्यात्म और अधिदैवत जगत् परस्पर उपकार्योपकारकरूपमे अवस्थित हैं। सर्वलोकचक्षु भगवान् सूर्य ही पिण्डमे चक्षुःशक्तिके रूपमे प्रविष्ट हुए है। अतः वे ही प्राणियोकी दृष्टिशक्तिके अधिष्ठाता देव है। इसलिये दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति एव नेत्रगत रोगोको दूर करनेके लिये भगवान् सूर्यकी आराधना की जाती है।

परशुरामकल्पसूत्रके परिशिष्ट एव श्रीउमानन्दनाथ-कृत नित्योत्सवमे दूरदृष्टिकी सिद्धि प्रदान करनेवाली चक्षुष्मतीविद्याका वर्णन मिलता है। सोलह मन्त्रोंसे समन्वित समष्टिरूपिणी यह विद्या है। मूलाधारमें ध्यान केन्द्रित करके इसका जप किया जाता है। इस विद्याके सिद्ध होनेपर साधक अन्य देश या द्वीपमे स्थित धन एवं अन्य पदार्थोंको भी यथावत्रूपमे देख एवं जान सकता है। इस विद्याका विनियोग, ध्यान एवं पाठ निम्नलिखित-रूपमे मिलता है—

विनियोग—

चक्षुष्मतीमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, नाना छन्दांसि, चक्षुष्मती देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यान—

चक्षुस्तेजोमयं पुष्पं कन्दुकं बिभ्रतीं करैः ।
रौप्यसिंहासनारूढां देवीं चक्षुष्मतीं भजे ॥

चक्षुष्मतीविद्याका पाठ—

ॐ सूर्यायाक्षितेजसे नमः, खेचराय नमः, असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय । उष्णो भगवान् शुचिरूपः । हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः ।

वयःसुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः । अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥ पुण्डरीकाक्षाय नमः । पुष्करेक्षणाय नमः । अमलेक्षणाय नमः । कमलेक्षणाय नमः । विश्वरूपाय नमः । श्रीमहाविष्णवे नमः ॥

इति षोडशमन्त्रसमष्टिरूपिणी चक्षुष्मतीविद्या दूरदृष्टिःसिद्धिप्रदा ।

वीरसिंहावलोकमे नेत्रके रोगीके लिये निम्नलिखित दैवीचिकित्साका विधान मिलता है ।

(१) **अक्षिसम्भवरोगाणामाज्यं कनकसंयुतम् ।**

अर्थात्—नेत्ररोगी विधिपूर्वक स्वर्णयुक्त घृतकी दस हजार आहुतियाँ अग्निमे दे ।

(२) जबतक रोगसे मुक्ति न हो तबतक प्रतिदिन —**ॐ चक्षुर्मे धेहि चक्षुषे चक्षूर्विख्यै तनूभ्यः । स चेदं वि च पश्येम ॥** (—काठकसं० ९ । ११ । ७८) इस मन्त्रका जप करे एवं ब्राह्मणको मुद्गान्न (मूँग)का दान दे । तथा—

(३) **'वयः सुपर्णो सुपर्णोऽसि'**—इस मन्त्रसे घृतसहित चरुकी एक हजार आठ आहुतियाँ दे ।

(४) मन्ददृष्टि होनेपर **'उद्यन्नद्यमित्रमहः'** इत्यादि ऋचाओसे हजार कलशोंद्वारा भगवान् सूर्यका अभिषेक करे ।

(५) गरुड़गायत्री—**'ॐ पक्षिराजाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ॥'** इस मन्त्रसे घृत मिले हुए तिलकी आहुति आँखके रोगको दूर करती है ।

(६) नक्तान्ध व्यक्ति—**'विष्णो रराट०, प्रतद्विष्णु०, 'विष्णोर्नुकम्०'**—इनमेसे किसी एक मन्त्रका जप करे तथा शुद्ध एवं पवित्र हो पूर्वाभिमुख बैठकर समिदाज्यतिलकी (लकड़ी, घी, तिलकी) एक सौ आठ आहुतियाँ प्रतिदिन अग्निमे दे ।

नेत्ररोगोको दूर करनेके लिये पुराणोक्त नेत्रोपनिषद् अथवा यजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्का जप करनेका विधान भी मिलता है । इन दोनोके पाठोमे बहुत ही कम अन्तर हैं । दोनो ही उपनिषदें 'चक्षुष्मतीविद्या'के नामसे प्रसिद्ध हैं, परंतु इनके प्रयोगमे भिन्नता मिलती है । (प्रयोग-विधिसहित इनका पाठ पहले दिया गया है ।)

नेत्रोपनिषद्का पाठ कर्मठगुरुमे मिलता है । रविव्रतके अनुष्ठानपूर्वक रोगके अनुसार इसका एक सौ, एक हजार या दस हजार पाठ पुरश्चरणके रूपमें करना चाहिये । योगीगुरुके अनुसार सूर्योदयके एक घंटा पश्चात्तक एवं सूर्यास्तके एक घंटा पूर्वकालसे लेकर इसका पाठ करना आवश्यक है । नेत्ररोगसे पीड़ित साधक खडे रहकर अथवा एक पैरपर स्थित होकर भगवान् सूर्यके पूर्ण अरुणमण्डलको दोनो नेत्रोसे देखता हुआ हृदयमे जप करे एवं शनैः-शनैः (सूर्यमण्डलका तेज नेत्रोंको सह्य होनेकी क्षमताके साथ-साथ) जपकी संख्यामें वृद्धि करे ।

पूर्णारुणे दिनमणौ नयनोत्पलाभ्या-
मालोकयेद्धृदि जपन् ननु निर्निमेषम् ।
आरूढ उन्नतपदे शनकैः प्रवृद्धिं
कुर्यादुपासनविधिं प्रतिसंख्यमेतत् ॥

सूर्योदयानन्तरहोरैकमात्रमस्ताच्च प्राक् तावदेवेति भावः (योगीगुरुः) ।

नेत्रोपनिषद् (चाक्षुषीविद्याका पाठ पृष्ठ ३३१ मे है ।)

कृष्णयजुर्वेदीय चाक्षुषोपनिषद्‌के अन्तिम भागमें नेत्रोपनिषद्‌की अपेक्षा कुछ मन्त्र अधिक मिलते हैं। इस उपनिषद्‌के पाठके आरम्भ एवं अन्तमे—'**सह नाववतु०**' इस शान्तिमन्त्रका पाठ करना चाहिये। इस चाक्षुषोपनिषद्‌की प्रयोगविधि 'कल्याण'के२३वे वर्षके उपनिषद्-अङ्कमे प्रकाशित हुई थी।

उपर्युक्त दोनो उपनिषदोकी विद्यासिद्धिका उपाय यह बताया गया है कि ये विद्याएँ आठ ब्राह्मणोको ग्रहण करवा देनेपर सिद्ध हो जाती हैं। इन्हे लिखकर आठ शुचि सुसंस्कृत ब्राह्मणोको दे तथा उन्हे शुद्ध उच्चारणसहित पाठविधि सिखा दे—ऐसा करनेपर इनकी सिद्धि हो जाती है। उसके बाद इन्हे अपने या अन्यके हितके लिये प्रयोगमे लाना चाहिये।

बत्तीसायन्त्र* सूर्योपासनासे सम्बद्ध है तथा सर्वदु:खनिवारण एवं अभीष्टकार्यकी सिद्धिके लिये इसके दो अन्य प्रयोग कर्मठगुरुमे मिलते हैं—

(१) रविवारके दिन इस यन्त्रको भोजपत्र या कागजपर हरिद्राके रससे अनारकी लेखनीके द्वारा लिखे एवं इस यन्त्रके नीचे अपना मनोरथ लिख दे। पुनः इसपर रूई बिछाकर यन्त्रलिखित कागजको लपेट दे और बत्तीरूपमे बनाकर इससे ज्योति प्रज्वलित करे। इसके बाद हरिद्राकी मालासे—'ॐ ह्रीं हंसः'—इस भास्करबीजमन्त्रका एक हजार एक सौ बार जप करे। इस प्रकार लगातार सात रविवारको निर्दिष्ट विधिका अनुष्ठान कर मनुष्य सभी दु:खोसे मुक्त होकर अत्यन्त सुख पाता है।

(२) रविवारके दिन प्रातःकाल उठकर स्नान करके हरिद्रारससे कास्यपात्रमे बत्तीसायन्त्र लिखे और उसके ऊपर चतुर्मुख दीपककी स्थापना करके सूर्योदय होनेपर मन्त्रका पञ्चोपचार पूजन करे। दोनो हाथोसे इस यन्त्रपात्रको उठा ले और सूर्यके सम्मुख स्थित होकर—'ॐ ह्रीं हंसः'—इस मन्त्रका जप करे। सूर्य दिनमें जैसे-जैसे परिवर्तित होते जायँ, वैसे-वैसे साधक भी घूमता जाय। सूर्यके अस्त होनेपर उन्हे अर्घ्य देकर प्रणाम करे, इस प्रकार अनुष्ठानको सम्पन्न करके मिष्टान्न भोजन कर भूमिपर शयन एवं ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे। इस प्रकार कार्यकी गुरुताके अनुसार प्रति रविवारको सवा मास, तीन मास, छः मास अथवा एक वर्षतक इसका अनुष्ठान करनेसे भगवान् श्रीसूर्यकी कृपासे सभी दुरूह कार्य सिद्ध होते हैं। अस्तु।

चक्षुष्मतीविद्याके चमत्कारका एक अनुभवपूर्ण प्रयोग, पाठकोके लाभार्थ दिया जा रहा है। यह प्रयोग कुछ दिन पूर्व 'स्वास्थ्य' पत्रिकाके अनुभवाङ्क (फरवरी, १९७८)मे छपा था। लेखकके विवरणके अनुसार राजपीपला-(गुजरात-)के प्रसिद्ध डाक्टर श्रीनरहरि भाईको सन् १९४०में Detatchment of Retina नामक भयंकर नेत्ररोग हुआ। इस रोगमे ऑखका पर्दा फट जाता है एवं ज्योति आंशिक रूपमे या सर्वांशमे चली जाती है। सर्जनोके प्रयत्न असफल रहनेपर डाक्टर साहब अत्यन्त निराश हो गये। उक्त डाक्टर साहबके घरपर प्रातःस्मरणीय पूज्य महात्मा पुरुष श्रीरङ्ग अवधूत महाराज आया करते हैं। ये महात्मा ईश्वरका दर्शन किये हुए पवित्र सिद्ध अवतारी पुरुष माने जाते हैं। डाक्टर साहबकी प्रार्थनापर पूज्य

* द्रष्टव्य—पृष्ठ ३३२ की टिप्पणी जहाँ वह विधि पूर्ववत् दी गयी है।

श्रीअवधूतजी महाराजने उन्हें प्रसादस्वरूप विधिसहित 'चक्षुष्मतीविद्या' प्रदान की। इस विद्याका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेसे डाक्टर साहबको नेत्रज्योति प्राप्त हुई। उसके बाद उन्होंने कई वर्षोंतक जनसेवा की तथा उनकी दृष्टि-शक्ति अब भी बनी हुई है। डाक्टर साहब कहते हैं कि इस चक्षुष्मतीविद्याके प्रभावसे आज मेरी नेत्र-ज्योति है, अन्यथा मैं बचपनमें अन्धा हो गया था। उन्होंने इस विद्याकी प्रतियाँ छपवाकर निःशुल्क प्रसादीके रूपमें जनसमुदायको वितरित की हैं। श्रद्धा एवं धैर्यके साथ विधिपूर्वक इस विद्याका प्रयोग करनेसे नेत्रके अनेकविध रोग सर्वांशमें दूर हो सकते हैं।

पूज्य श्रीअवधूतजीद्वारा बनायी गयी चक्षुष्मती-विद्याका पाठ एवं इसके प्रयोगकी विधि नीचे दी जा रही है।

प्रयोगविधि—प्रातः शौच आदिसे निवृत्त होकर स्नान-सन्ध्या वन्दनके बाद पूजास्थानपर बैठिये और आचमन, प्राणायाम करनेके बाद नेत्ररोगकी निवृत्तिके लिये चक्षुष्मती-विद्याके जपका संकल्प कीजिये। फिर गन्ध-पुष्पादिसे सूर्यदेवका पूजन कीजिये। पूजा-द्रव्यके अभावमें मानसो-पचारसे पूजन कीजिये। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी पूजा करनेके बाद एक कांस्यधातुकी थाली या अन्य किसी चौडे मुखवाले कांस्यपात्रमें शुद्ध जल भरकर उसे ऐसी जगहपर रखिये, जिससे उस पात्रके जलमें सूर्य देवताका प्रतिबिम्ब दीखता रहे। नेत्ररोगी साधकको उस पात्रके सामने पूर्वाभिमुख बैठकर पात्रके जलके भीतर सूर्य-प्रतिबिम्बकी ओर दृष्टि रखकर भावनायुक्त अर्थानुसन्धानके साथ दस, अट्ठाईस या एक सौ आठ पाठ करना चाहिये। यदि नित्य इतने पाठके लिये समय न मिले तो प्रतिदिन भले ही दस बार पाठ किया जाय, परंतु रविवारके दिन अट्ठाईस या एक सौ आठ पाठ करनेका प्रयत्न अवश्य किया जाय। यदि प्रारम्भमें नेत्र सूर्य-प्रतिबिम्बकी ओर देखना सहन न कर सकें तो घृत-दीपकी ज्योतिकी ओर देखते हुए पाठ कर सकते हैं। (नेत्रोंके अच्छा होनेपर जलमें प्रतिबिम्बित सूर्य-बिम्बकी ओर देखते हुए ही पाठ करना चाहिये)। पाठ पूर्ण होनेपर जप श्रीसूर्यनारायणको अर्पित करके नमस्कार कीजिये। फिर उस कांस्यपात्रस्थित शुद्ध जलसे अधखुले नेत्रमें धीरे-धीरे छिड़काव कीजिये। जल छिड़कनेके बाद दोनों आँखें पाँच मिनटतक बंद रखिये। तत्पश्चात् सभी विधियाँ पूर्ण कर अपने दैनिक कार्य कीजिये।

पाठके उपरान्त नित्य—'ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि स्वाहा'—इस मन्त्रको बोलते हुए गोघृतकी दस आहुतियाँ अग्निमें देनी चाहिये। रविवारके दिन बीस आहुतियां आवश्यक हैं। यदि आहुति न दे सकें तो कोई आपत्ति नहीं, परंतु यदि पाठके साथ नित्य यज्ञाहुति भी दी जा सके तो उत्तम है।

चक्षुष्मतीविद्याका पाठ—

अस्याश्चक्षुष्मतीविद्याया ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री-च्छन्दः। श्रीसूर्यनारायणो देवता। ॐ बीजम्। नमः शक्तिः। स्वाहा कीलकम्। चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।

ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् प्रशमय प्रशमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय, यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय, कृपया कल्याणं कुरु कुरु। मम यानि यानि पूर्वजन्मो-पार्जितानि चक्षुःप्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि

निर्मूलय निर्मूलय । ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्यभास्कराय । ॐ नमः करुणाकरायामृताय । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः । ॐ खेचराय नमः । ॐ महासेनाय नमः । ॐ तमसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्याय (सत्त्वाय ?) नमः । ॐ असतो मा सद्गमय । ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय । ॐ मृत्योर्माऽमृतं गमय । उष्णो भगवाञ्छुचिरूपः । हंसो भगवाञ्छुचिरप्रतिरूपः ।*

ॐ विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं
हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाऽक्षितेजसेऽहोवाहिनि वाहिनि स्वाहा ॥

ॐ वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि-
चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥

ॐ पुण्डरीकाक्षाय नमः । ॐ पुष्करेक्षणाय नमः । ॐ कमलेक्षणाय नमः । ॐ विश्वरूपाय नमः । ॐ श्रीमहाविष्णवे नमः । ॐ सूर्यनारायणाय नमः ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

जो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, जो किरणोंमें सुशोभित एवं जातवेदा (भूत आदि तीनों कालोंकी बातको जाननेवाले) हैं, जो ज्योतिःस्वरूप, हिरण्मय (सुवर्णके समान कान्तिमान्) पुरुषके रूपमें तप रहे हैं, इस सम्पूर्ण विश्वके जो एकमात्र उत्पत्ति-स्थान हैं, उन प्रचण्ड प्रतापवाले भगवान् सूर्यको हम नमस्कार करते हैं । वे सूर्यदेव समस्त प्रजाओं (प्राणियों) के समक्ष (उनके कल्याणार्थ) उदित हो रहे हैं ।

ॐ नमो भगवते आदित्याय अहोवाहिनी
अहोवाहिनी स्वाहा ।

षड्विध ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् आदित्यको नमस्कार है । उनकी प्रभा दिनका भार वहन करनेवाली है, हम उन भगवान्के लिये उत्तम आहुति देते हैं । जिन्हें मेधा अत्यन्त प्रिय है, वे ऋषिगण उत्तम पंखोंवाले पक्षीके रूपमें भगवान् सूर्यके पास गये और इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—'भगवन् ! इस अन्धकारको छिपा दीजिये, हमारे नेत्रोंको प्रकाशसे पूर्ण कीजिये तथा तमोमय बन्धनमें बँधे हुए-से हम सब प्राणियोंको अपना दिव्य प्रकाश देकर मुक्त कीजिये । पुण्डरीकाक्षको† नमस्कार है । पुष्करेक्षणको नमस्कार है । निर्मल नेत्रोंवाले—अमलेक्षणको नमस्कार है । कमलेक्षणको नमस्कार है । विश्वरूपको नमस्कार है । महाविष्णुको नमस्कार है ।'

इस (ऊपर वर्णित) चक्षुष्मतीविद्याके द्वारा आराधना किये जानेपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीसूर्यनारायण संसारके सभी नेत्र-पीड़ितोंके कष्टको दूर करके उन्हें पूर्ण दृष्टि प्रदान करें—यही प्रार्थना है ।

---

* उपर्युक्त अंशका अर्थ पृष्ठ ३३२ के मूलके साथ देखें ।

† 'पुण्डरीकाक्ष', 'पुष्करेक्षण' और 'कमलेक्षण'—इन तीनों नामोंका एक ही अर्थ है—कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् । कमलके इन नेत्रों तथा उपमादिकी सूक्ष्मताओंको समझनेके लिये अमरकोशकी क्षीरस्वामी, अनुदीक्षितकी टीकाएँ आदि देखनी चाहिये । साहित्यलहरी प्रपञ्चसारके अनुसार समानार्थक शब्दोंमें भी मन्त्रके चमत्कार सनिहित रहते हैं ।

सूर्य और आरोग्य

(लेखक—डॉ श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, डी० एस्-सी०)

भगवान् मरीचिमालीकी महत्ताका प्रतिपादन भारतीय वाङ्मयकी वह अमूल्य थाती है, जिसका आवश्यकतानुसार उपयोग कर भारतीय मेधाने स्वयंको कृतकृत्य करनेका बहुशः सफल प्रयास किया है । भगवान् सूर्य आकाशमण्डलके समुज्ज्वलमणि, खेचर-समुदायके चक्रवर्ती, पूर्वदिशाके कर्णाभरण, ब्रह्माण्ड-सदनके दीपक, कमलसमूहके प्रिय, चक्रवाक-समुदायका शोक हरनेवाले, भ्रमरसमूहके आश्रयभूत, सम्पूर्ण दैनिक कार्यव्यवहारके सूत्रधार तथा दिनके स्वामी हैं । ये ही दिन और रातके निर्माता, वर्षको बारह मासोंमे विभक्त करनेवाले, छहो ऋतुओंके कारण यथासमय दक्षिण और उत्तर दिक्का आश्रय लेकर दक्षिणायन तथा उत्तरायणके विधायक हैं । ये ही युगभेद, तथा कल्पभेदका विधान करते है । ब्रह्मकी परार्द्ध-सख्या इन्हींके आश्रयसे सम्पन्न होती है । ये ही संसारके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं । इन्हीं सब विशेषताओंके कारण वेद इनकी वन्दना करते हैं । गायत्री इन्हींका गान करती है और ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हींकी उपासना किया करते हैं । ये ही भगवान् श्रीरामके कुलके मूल हैं । भगवान् नारायणका नाम भी इनके साथ जुडकर अमित तेजस्विताका ज्ञापन करके मर्त्यलोकवासियोंको परमपिताके प्रति अपने दायित्वको निभानेकी प्रेरणा देता है । श्रीसूर्यनारायण हमारी दैनिक अर्चाके देव हैं ।

अठारह पुराणोंमें भगवान् सूर्यके सम्बन्धमें प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है । श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूर्लोक, स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागोंका विभाजन होता है—

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ।
स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥
(५ । २० । ४५)

इसके साथ ही वहाँ यह भी स्पष्ट रूपमें बताया गया है कि भगवान् सूर्य ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप, लतावृक्षादि एवं समस्त जीवसमुदायके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं—

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥
(५ । २० । ४६)

भगवान् सूर्यकी स्थिति-गति आदिका परिचय श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें बीसवें अध्यायसे बाईसवें अध्याय पर्यन्त दिया हुआ है ।

श्रीविष्णुपुराणके द्वितीय अंशमे आठवें अध्यायसे दसवें अध्यायतक भगवान् सूर्यके वैशिष्ट्य, स्थिति-गति आदिका सुरुचिपूर्ण वर्णन हुआ है । दसवें अध्यायमे विभिन्न मासपरक सूर्यके बारह अन्वर्थक नाम इस प्रकार बताये गये हैं—

चैत्रके सूर्य हैं—धाता, वैशाखके अर्यमा, ज्येष्ठके मित्र, आषाढ़के वरुण, श्रावणके इन्द्र, भाद्रपदके विवस्वान्, आश्विनके पूषा, कार्तिकके पर्जन्य, मार्गशीर्षके अंशु, पौषके भग, माघके त्वष्टा तथा फाल्गुनके विष्णु ।

भगवान् सूर्यके इन नामोंका वैज्ञानिक महत्त्व है, केवल परम्परानिर्वहणार्थ यह नामकरण नहीं किया गया है ।

चैत्रके सूर्यका नाम है—धाता; धाता कहते हैं—निर्माता (Creator,), संग्राहक (Preserver,), समर्थक (Supporter,) प्राण (The soul,) और भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माको। उक्त सभी नामोकी विशेषताएँ भगवान् सूर्यमे संनिहित हैं। वे निर्माता भी हैं और रसोंके संग्राहक भी। ऑक्सीजन (Oxygen)के अधिष्ठान होनेके कारण प्राणभूत भी हैं और धान्यमें रसोत्पादक होनेके कारण समर्थक तथा प्राणरक्षक होनेके कारण विष्णु भी हैं।

वैशाखके सूर्यका नाम है अर्यमा। अर्यमा कहते हैं—पितृश्रेष्ठको **'पितॄणामर्यमा चास्मि'** (गीता १० । २९) अर्क (आक) के पौधेको जिस प्रकार पितृगण अपने वंशजोंके उपकारमें सन्नद्ध रहते हैं, उसी प्रकार सूर्य भी अर्क-वृक्षकी भाँति सदा हरे-भरे रहनेकी प्रेरणा देते हैं। अतः यह नाम भी अन्वर्थक है।

ज्येष्ठके सूर्य हैं मित्र। मित्र कहते हैं—वरुणके सहयोगी आदित्यको, राजाके पडोसी तथा सुहृद् (Friend,) को। सूर्य वर्षाऋतुके मित्र और पडोसी हैं अर्थात् आषाढमें वर्षा होनेसे पूर्व सूर्य अपने प्रभावसे भूमण्डलको तपाकर वर्षागमनकी पृष्ठभूमि तैयार करके एक सुहृद्की भाँति भूमण्डलका हितसाधन करते हुए वरुणके सहयोगी आदित्य तथा मित्र दोनो ही नामोंको अन्वर्थक बनाते हैं।

आषाढके सूर्यका नाम है वरुण। वरुणको 'अपाम्पति' कहा गया है, जिसका अर्थ है—जलके स्वामी। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हे अपना स्वरूप बतलाते हुए भगवद्गीतामे कहा है—**'वरुणो यादसामहम्'** (१० । २९) इसके अतिरिक्त समुद्र (Ocean)को भी वरुण कहते हैं। आषाढ वर्षाऋतुका मास है। सूर्य समुद्रीय जलका आकर्षण कर वरुणरूपमें इसी मासमें उसे जलहितार्थ लौटाकर **'आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव'** की उक्तिको सार्थक बनाते हुए अपने मासाधिष्ठातृभूत नामको अन्वर्थक बनाते हैं।

श्रावणके सूर्यका नाम है इन्द्र। इन्द्र कहते हैं—देवाधिप (The Lord of Gods,), वर्षाधिप (The God of rain,), वर्षा-शासक (ruler) तथा सर्वोत्कृष्ट (best) को। इस मासमें सूर्य इन्द्ररूपमे मेघोंका नियन्त्रण कर आवश्यकतानुसार वर्षणद्वारा पृथ्वीको आप्लावितकर अपनी सर्वोत्कृष्टता तथा शासनपटुताकी अमिट छाप जन-मनपर छोड़ते हैं। अतः यह नाम कितना अन्वर्थक है—इसे सहज ही जाना जा सकता है।

भाद्रपदके सूर्यका नाम है विवस्वान्। विवस्वान् कहते हैं—वर्तमान मनु, अर्कवृक्ष तथा अरुण आदिको। भाद्रपदकी उष्मा कितनी उग्र होती है—इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अनेक कृषक इससे व्यथित हो संन्यासीके समान घर त्याग देते हैं। सूर्य ब्रह्माकी भाँति इस समय धरापर अपनी तेजस्विताकी छाप अङ्कित करने लगते हैं—**'त्वष्टा विवस्वन्तमिवोल्लिलेख'** (किरात, ५ । ४८; १७ । ४८ आदि)। इस प्रकार सूर्यका यह नाम भी अन्वर्थक है।

आश्विन मासके सूर्यका नाम है—पूषा। पूषाका भावार्थ है—पोषक तथा गणक; क्योंकि इस मासके सूर्य धान्यका पोषण भी करते हैं और आकाशमे उन्मुक्त-प्रकट होकर सहविचरण भी। अतः यह नाम भी अन्वर्थक और उसके मासगत वैशिष्ट्यका परिचायक है—**'सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कलयति'** (नीतिशतक ११४)।

कार्तिकके सूर्यका नाम है—पर्जन्य; पर्जन्य कहते हैं—बरसने अथवा गरजनेवाले मेघको—A rain cloud, Thundering cloud—**'प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारंगैरभिनन्दितः'** (रघु० १७। १५)। वर्षा (Rain) तथा इन्द्र (God of rain) को शरद् ऋतुमें पर्जन्य नाम देना कहाँतक सत्य है, इसके लिये गो० तुलसीदासजीके इस कथनको मानससे उद्धृत किया जा सकता है कि **'कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी'**। इस कालमे सूर्य पर्जन्य- (मेघ) के रूपमें सृष्टिकी पिपासाकुल आत्माको परितोष देते हुए अपना नाम अन्वर्थक बनाते हैं और इन्द्र-रूपमे सूखी सरदीको आर्द्रतासे सिंचित कर नियन्त्रित करते हैं। नामकी उपयुक्तता यहाँ भी पूर्ववत् है।

मार्गशीर्षके सूर्यका नाम है—**अंशुः**। अंशुका अर्थ है—रश्मि (Rays), ऊष्मा (hot)। अपनी ऊष्मरश्मियोसे मार्गशीर्षके प्रखर शीतको अपसारित करनेकी क्षमतासे सम्पन्न सूर्यका यह मासगत नाम भी सार्थक है।

पौषके सूर्यका नाम है—भग। भग कहते हैं—सूर्य (Sun), चन्द्रमा (Moon),शिव-सौभाग्य (Good-fortune) प्रसन्नता (happiness), यश (fame), सौन्दर्य (beauty,),प्रेम (love) गुण-धर्म (merit-religious) प्रयत्न (Effort), मोक्ष (Finel beatitude) तथा शक्ति (strength) को। पौषके भयंकर शीतमें सूर्य चन्द्रकी भाँति शैत्य बढाकर, शिवकी भाँति कल्याण कर, प्रकृतिमें स्वर्गीय सुषमाकी सृष्टि कर, ठिठुरते हुए व्यक्तियोंको ऊष्माप्रदानद्वारा धार्मिक कृत्योके सम्पादनार्थ शक्ति प्रदान कर तथा शीतसे मोक्ष प्रदान कर अपना नाम अन्वर्थक बनाते है।

माघके सूर्यका नाम है—**'त्वष्टा'**। त्वष्टा कहते हैं—बढई (carpenter), निर्माता (builder) तथा विश्वकर्मा (The architect of the Gods)—देवशिल्पीको। ये नाम भी सार्थक हैं; क्योंकि इस मासमें सूर्य प्रकृतिके जराजर्जरित उपादानोंको कुशल शिल्पीकी भाँति तराशकर (काट-छाँटकर—खरादकर) अभिनवरूप प्रदान करते हैं और त्वष्टाकी भाँति भूमण्डलको सानपर तराशकर उज्ज्वल रूप देनेकी दिशामें अग्रसर होने लगते हैं।

फाल्गुनके सूर्यका नाम है—विष्णु, पराशरजीके वचनानुसार विष्णुका अर्थ है—रक्षक (protector), विश्वव्यापक, सर्वत्रानुविष्ट।

यस्माद्विष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात्॥
(—विष्णुपुराण ३। १। ४५)

'यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्माकी ही शक्तिसे व्याप्त है, अत. वे विष्णु कहलाते हैं; क्योंकि 'विश' धातुका अर्थ प्रवेश करना है।'

इस मासमें पहुँचते-पहुँचते सूर्य शक्तिसम्पन्न हो शिशिर-विजड़ितसृष्टिमें शक्तिसंचार करनेमें समर्थ हो जाते हैं। उनकी उत्पादन-शक्ति प्रखर हो उठती है। अग्निकी तेजस्विता उनमें प्रत्यक्षरूपसे अनुभूत होने लगती है तथा एक धर्मनिष्ठ व्यक्तिकी भाँति वे निजधर्मका तत्परतासे पालन करते हुए अपना नाम अन्वर्थक बनाने लगते हैं।

इस प्रकार पुराणोक्त सूर्यकी द्वादशमासीय महत्तापर स्वल्पमात्र दृष्टिपात कर हम अपने प्रतिपाद्य विषयकी ओर अग्रसर होते हैं।

वेदोमें जहाँ अपने उपाङ्गभूत आयुर्वेदका वर्णन है, वहाँ आयुर्वेदान्तर्गत चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियो—सूर्यचिकित्सादिका भी उल्लेख है। प्राकृतिक चिकित्सामे सूर्य-चिकित्साका विशेष स्थान है। वेदोमें सूर्यचिकित्साकी महत्तापर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। वेद

और पुराण—दोनोंमे ही सूर्यको विश्वकी आत्मा बताया गया है। वेद जहाँ **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**(यजु० ७ । ४२) कहते हैं वहीं पुराण भी—**'अथ स एष आत्मा लोकानाम्** ।'(भा० ५ । २२। ५) कहते हैं।

ससारका सम्पूर्ण भौतिक विकास सूर्यकी सत्ता-पर निर्भर है। सूर्यकी शक्तिके बिना पौधे नहीं उग सकते, वायुका शोधन नहीं हो सकता और जलकी उपलब्धि भी नहीं हो सकती है। सूर्यकी शक्तिके बिना हमारा जन्म तो दूर रहा, पृथ्वीकी उत्पत्ति भी असम्भव होती।

प्रकृतिका केन्द्र सूर्य हैं। प्रकृतिकी समस्त शक्तियाँ सूर्यद्वारा ही प्राप्त हैं। आत्मापर शरीरकी भाँति सूर्यकी सत्तापर जगत्की स्थिति है। यदि धारण करनेके कारण धराको माता माना जाय तो पोषणके कारण सूर्यको पिता कहा जा सकता है। शारीरिक रसोका परिपाक सूर्यकी ही ऊष्मासे होता है। शारीरिक शक्तियोका विकास, अङ्गोकी पुष्टि तथा मलोका शरीरसे निःसरण आदि कार्य सूर्यकी महत्-शक्तिद्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

सूर्यमे ऐसी प्रवल रोगनाशक शक्ति है, जिससे कठिन-से-कठिन रोग दूर हो जाते हैं। उदाहरणार्थ उन्मुक्त वातावरणमे रहनेवाले उन ग्रामीणोको लिया जा सकता है; जो बिना पौष्टिक आहारके भी स्वस्थ रहते हैं, वैसे नगरोमे देखनेको भी नहीं मिलते। इसके विपरीत सूर्यके दर्शन न होनेसे ही वहाँके प्राणी अनेकानेक रोगोके शिकार बने रहते है। स्त्रियोमें पाये जानेवाले रोग आस्टोमलेशियाका कारण Astromalaha भी सूर्य-तापकी कमी ही है। महिलाओमे अधिक रोग पाये जानेका कारण सूर्यके पूजनादिसे दूर रहना ही है। कुछ व्यक्ति स्त्रियोके व्रतादि करनेके पक्षपाती नहीं होते। वे उनके लिये सूर्यके पूजनादिको भी हितकर नहीं मानते। उनकी इस धारणाने आधुनिक बहुत-सी स्त्रियोमे सूर्य-व्रतादिके प्रति जो अरुचि उत्पन्न की उससे उनमें रोगोकी अधिकता होने लगी और उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया और सतत गिरता चला जा रहा है; क्योंकि सूर्यकी साधनात्मक ससर्ग न रहनेसे रोगका होना स्वाभाविक है।

स्वस्थ जीवनके लिये सूर्यकी सहायता पूर्णरूपेण अपेक्षित है। इसकी आवश्यकता और महत्ता देखकर हमारे स्वस्थ जीवनके लिये सूर्यकी सहायता पूर्णरूपेण अपेक्षित है, इसकी आवश्यकता और महत्ता देखकर ही हमारे ऋषियो और आचार्योंने सूर्य-प्रणाम एवं सूर्योपासना आदिका विधान किया था। पाश्चात्त्य विद्वान् डॉ० सोलेने लिखा है—'सूर्यमे जितनी रोगनाशक शक्ति विद्यमान है, उतनी ससारके अन्य किसी भी पदार्थमे नहीं है। कैन्सर, नासूर आदि दुस्साध्य रोग, जो बिजली और रेडियमके प्रयोगसे अच्छे (ठीक) नहीं किये जा सकते थे, सूर्य-रश्मियोका ठीक ढंगसे प्रयोग करनेसे वे अच्छे हो गये।'

सूर्यकी रोगनाशक शक्तिका परिचय देते हुए अथर्व-वेदमे लिखा है—

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु॥
(—६ । ८३ । १)

'जिस प्रकार गरुड़ वसतिसे दौड जाता है, उसी प्रकार अपचनादि व्याधियाँ दूर चली जायँगी। इसके लिये सूर्य ओषधि बनाये और चन्द्रमा अपने प्रकाशसे उन व्याधियोका नाश करे।'

इस मन्त्रमे स्पष्टरूपसे कहा गया है कि सूर्य ओषधि बनाते है, विश्वमे प्राणरूप है तथा वे अपनी रश्मियोद्वारा स्वास्थ्य ठीक रखते हैं; किंतु मनुष्य अज्ञान-

वश अन्धेरे स्थानमें रहते हैं और सूर्यकी शक्तिसे लाभ न उठाकर सदा रोगी बने रहते हैं।

डॉ० होनगने लिखा है—'रक्तका पीलापन, पतलापन, लोहेकी कमी और नसोंकी दुर्बलता आदि रोगोंमें सूर्य-चिकित्सा लाभदायक पायी गयी है।'

सुप्रसिद्ध दार्शनिक 'न्योची' का मत है कि 'जबतक ससारमें सूर्य विद्यमान हैं तबतक लोग व्यर्थ ही दवाओंकी अपेक्षामें भटकते हैं। उन्हे चाहिये कि शक्ति, सौन्दर्य और स्वास्थ्यके केन्द्र इन (सूर्यदेव) की ओर देखें और उनकी सहायतासे वास्तविक अवस्थाको प्राप्त करें।'

हमारे ऋषि सूर्य-चिकित्साके रहस्यसे अपरिचित नहीं थे। प्राचीनकालमे पाठ याद न करनेपर अथवा किसी प्रकारकी अविनय करनेपर धूपमे खड़े रहनेका दण्ड दिया जाता था। योगी धूपमें तप करते थे। सूर्य-सेवनसे कुष्ठनाशकी तो अनेको कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

रोगका कारण—सूर्यचिकित्साके सिद्धान्तके अनुसार रोगोत्पत्तिका कारण शरीरमे रंगोका घटना-बढना है। रंग एक रासायनिक मिश्रण हैं। हमारा शरीर भी रासायनिक तत्त्वोंसे बना हुआ है। जिसके जिस अङ्गमें जिस प्रकारके तत्त्वकी अधिकता होती है, उसके उसी अङ्गमे उसके अनुरूप उस अङ्गका रंग हो जाता है!

शरीरके विभिन्न अङ्गोमे विभिन्न रंग होते है; जैसे चर्मका गेहुआँ, केशोंका काला एवं नेत्रगोलकका श्वेत आदि। शरीरमे किस तत्त्वकी कमी है, यह अङ्ग-परीक्षा-द्वारा जाना जा सकता है; जैसे—चेहरेकी निस्तेजताका कारण रक्ताल्पता है। शरीरमे रंग एक विशेष तत्त्व है। इसमें घट-बढ़ होना रोगका कारण माना जाता है। सूर्यमें सातो रंग विद्यमान रहते हैं, इसीलिये विभिन्न रंगोंवाली बोतलोंमे जल भरकर उन्हे धूपमे रखकर उन रंगोंको उन रंगीन बोतलके माध्यमसे उस जलमे आकर्षित किया जाता है और फिर वह जल ओषधिके रूपमें रोगियोको इस दृष्टिसे दिया जाता है कि जिससे रोगियोंके शरीरसे तत्तद् रंगोंकी कमी दूर हो और वे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करें।

अथर्ववेद—(१ । २२)में वर्णचिकित्साके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है—

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि॥

अर्थात्—**ते हरिमा**—तुम्हारा पीलापन (पाण्डु, कामला आदि) तथा **हृद् द्योतः**—हृदयकी जलन (हृदय-रोग), **सूर्यमनु**—सूर्यकी अनुकूलतासे, **उत् अयताम्**—उड़ जायें, **गोः**—रश्मियोंके तथा प्रकाशके उस, **रोहितस्य**—लाल, **वर्णेन**—रंगसे, **त्वा**—तुझे, **परि**—सब ओर, **दध्मसि**—धारण करता हूँ।

भाव यह है कि पाण्डु-रोग और हृद्रोगोंमें सूर्योदयके समय सूर्यकी लालरश्मियोंके प्रकाशमें खुले शरीर बैठना तथा लाल रंगकी गौके दूधका सेवन करना बहुत ही लाभदायक होता है।

रोगनिवृत्ति ही नहीं अपितु दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये भी प्रातःकाल सूर्योदयके समय उनके रक्तवर्णवाले प्रकाशका सेवन करना चाहिये। अथर्ववेदमे रक्तवर्णसे दीर्घायु-प्राप्तिका उपाय लिखा है—

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत्॥
(१ । २२)

अर्थात्—दीर्घायु-प्राप्तिके लिये तुम्हें लाल रंगोंसे चारों ओर धारण करता हूँ, जिससे पाण्डुता दूर होकर नीरोग हो जाऊँ, भाव स्पष्ट है लाल वर्णोंके प्रयोगसे पाण्डुरोग और तज्जन्य शारीरिक फीकापन दूर हो जाता है तथा मानव आरोग्यके साथ-साथ दीर्घायु प्राप्त करता है।

लाल रंग शरीरके लिये अत्यधिक लाभदायक है, इसीलिये उदय होते हुए सूर्यका सेवन विशेष हितकर माना गया है और लाल गायका दूध पीना भी महत्त्वपूर्ण प्रतिपादित किया गया है—

या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः।
रूपरूपं वयो वयस्ताभिष्ट्वा परिदध्मसि ॥
(–अथर्व० १ । २२)

अर्थात् **या देवत्याः**–जो चमकीली, **रोहिणीः**–रक्तिम सूर्य-रश्मियाँ हैं, **उत**–और, **या रोहिणीः गावः**–जो रक्तिम गौएँ (सूर्यकी किरणे) हैं, उनसे रूप और **वयः**–आयु प्राप्त होती है, **ताभिः**–उनके साथ, **त्वा**–तुझे, **परि**–चारों ओर, **दध्मसि**–धारण करते हैं। भाव यह है रक्तिम सूर्य-रश्मियोके सेवन तथा रक्तिम गौओका दूध पीनेसे रोग निवृत्त होकर आरोग्यरूप और दीर्घायुकी प्राप्ति होनी है।

इतना ही नहीं, सूर्यरश्मियोसे रोगोत्पादक कृमियोंका भी नाश हो जाता है—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥
(अथर्व० २ । ३२ । १)

अर्थात् **उद्यन्नादित्यः**—उदय होता हुआ सूर्य, **क्रमीन् हन्तु**—कीटाणुओका नाश करे तथा **निम्रोचत्** अस्त होता हुआ सूर्य अपनी—**रश्मिभिः**—किरणोसे, उन कृमियोको नष्ट करे, जो—**गवि अन्तः**—पृथ्वीपर हैं।

सूर्य पृथ्वीपर स्थित रोगाणुओ (कृमियो) को नष्ट कर निज रश्मियोका सेवन करनेवाले व्यक्तिको दीर्घायु प्रदान करते है। सूर्यद्वारा विनष्ट किये जानेवाले रोगोत्पादक कृमि निम्नलिखित है—

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः॥
(–अथर्व २ । ३२ । २)

अर्थात् **विश्वरूपम्**—नानारूप-रंगवाले, **चतुरक्षम्**—चार नेत्रोंवाले, **सारङ्गम्**—सारंग वर्णवाले, **अर्जुनम्**—श्वेत रंगवाले कृमिको मैं **शृणामि**—मारता हूँ। **अस्य**—इस कृमिकी **पृष्टीः**—पसलियोंको तथा **शिरः**—सिरको भी **वृश्चामि**—तोड़ता हूँ।

रोगोत्पादक कृमि नाना वर्ण और आकृतिके होते हैं। सूर्यके सेवनद्वारा इन्हे नष्ट कर व्यक्तिको स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये।

सूर्य स्वास्थ्य और जीवनीय शक्तिके भण्डार हैं। जो व्यक्ति सूर्यके जितने अधिक सम्पर्कमें रहते है, उतने ही स्वस्थ पाये जाते हैं और सूर्यसे बचकर रहनेवाले सर्वथा निस्तेज और भयंकर रोगोसे ग्रस्त मिलते हैं।

स्वास्थ्य स्थिर रखने और रोगोसे बचनेके लिये आवश्यक है कि हम धूप और सूर्यके प्रकाशसे सदा बचकर न रहें और इनके अधिक सम्पर्कमे रहे—विशेषकर प्रातःकालीन आतप अधिक हितकर होता है, वही रुग्ण और स्वस्थ दोनोको समान लाभ पहुँचाता है। केवल मध्याह्नकी धूपको छोड़कर शेष समय यथासम्भव उसके न्यूनाधिक सम्पर्कमे रहना चाहिये। सूर्य-स्नान करते समय यथासम्भव निर्वस्त्र रहे या बिल्कुल हल्के-पतले (झीने) वस्त्रोका प्रयोग करना चाहिये, जिससे सूर्यकी किरणे सरलताके साथ प्रत्येक अङ्ग-उपाङ्गतक पहुँच सके।

आजका प्रबुद्ध मानव इस तथ्यसे भलीभाँति परिचित हो चुका है कि सक्रामक रोगोका विशेष प्रकोप ऐसे स्थानोपर ही प्रमुखतः होता है, जहाँ सूर्यकी रश्मियाँ नहीं पहुँच पातीं। इस स्थितिमे हमे मकान सदा ऐसे बनवाने चाहिये, जहाँ धूप और वायुका उचित मात्रामे अबाध प्रवेश हो सके।

विटामिन (खाद्यौज)की उत्पत्तिका कारण भी सूर्यकी रश्मियाँ हैं। सूर्यके बिना जीवनीय शक्ति सर्वथा नहींके बराबर ही रहती है।

सूर्यकी उपयोगिता परिलक्षित कर आयुर्वेदमें भी सूर्य-स्नानका प्रतिपादन किया गया है, अष्टाङ्गहृदयमें इसके महत्त्व-पर विशेष बल दिया गया है, भले ही आज (Natureo Pathy) नेचुरोपैथीके लिये इसका प्रयोग किया जाता हो, पर है यह आयुर्वेदकी ही देन, और साथ ही हमारे महर्षियोंकी बुद्धिमत्ताका, विशेष ज्ञानका तथा मानव-कल्याणकी भावनाका जीता-जागता उदाहरण भी।

स्वास्थ्यकामी प्रत्येक व्यक्तिको सूर्यकी महत्ताको पहचानकर, उसका सेवनकर अपने स्वास्थ्य और आयुकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। अतः मत्स्य पुराणका वचन है -

'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'।

श्रीसूर्यसे स्वास्थ्य-लाभ

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेन्द्रप्रसादजी गर्ग, एम०ए०, एल्-एल्० बी०, एन्० डी०)

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान् हैं। हमें उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शनके लिये भावनाकी वैसी कोई आवश्यकता नहीं है, जैसी अन्य देवोंके लिये अपेक्षित होती है। अतः सूर्यदेवकी प्रत्यक्ष आराधना की जा सकती है।

सौरपुराणोंमे भगवान् सूर्यकी अलौकिक सम्पदाओं, शक्तियों आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सूर्य-मण्डलमें प्रवेश करके ही जीव ब्रह्मलोक अर्थात् भगवान्का सांनिध्य प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः सूर्य-नारायणकी आराधना किये बिना बुद्धि शुद्ध नहीं होती। सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। श्रीकृष्णने स्वयं गीतामें 'ज्योतिषां रविरंशुमान' कहा है। धर्मराज युधिष्ठिर सूर्यकी उपासना करते थे और सूर्यदेवने उन्हें एक अक्षय पात्र दिया था। भगवान् राम भी सूर्योपासक थे। ऋग्वेदमें सूर्यकी उपासनाके कई मन्त्र हैं और भगवान् आदित्यसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की गयी है। लिखा है—'आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छे-ज्जनार्दनात्।' आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रियोंने सूर्यकी स्वास्थ्यदायिनी शक्तिको भलीभाँति समझा और अनुभव किया है। सूर्य-किरण-चिकित्सापर देशी-विदेशी चिकित्सकोंने कई ग्रन्थ लिखे हैं। एक अंग्रेजी कहावत है—(Light is life and darkness is death) 'लाइट इज लाइफ ऐण्ड डार्कनेस इज डेथ' अर्थात्—प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार ही मृत्यु है। जहाँ सूर्यकी किरणें अथवा प्रकाश पहुँचता है, वहाँ रोगके कीटाणु स्वतः मर जाते हैं और रोगोंका जन्म नहीं होता। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा अनेक प्रकारके आवश्यक तत्त्वोंकी वर्षा करते हैं और उन तत्त्वोंको शरीरद्वारा ग्रहण करनेसे असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंने चिकित्साकी दृष्टिसे सूर्य-का अनेक प्रकारसे प्रयोग किया है। शास्त्र कहते हैं कि सूर्यके प्रकाशमें सप्तरश्मियाँ—लाल, हरी, पीली, नीली, नारंगी, आसमानी और कासनी रंग—विद्यमान हैं एवं सूर्य-प्रकाशके साथ इन रंगों तथा तत्त्वोंकी भी हमारे ऊपर वर्षा होती है। उनके द्वारा प्राणी तथा वानस्पतिक वर्गको नवजीवन एवं नवचैतन्य प्राप्त होता रहता है। यह कहनेमें कि यदि सूर्य न होते तो हम जीवित नहीं रह सकते थे —कोई अत्युक्ति नहीं है। यही कारण है कि वेदोंमे सूर्य-पूजाका विधान तथा महत्त्व है और हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने सूर्यसे शक्ति प्राप्तकर प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेका आदेश किया है। आदिकालके ग्रीक और यूनानी लोगोंने भी सूर्य-चिकित्सालय बनवानेके साथ-साथ सूर्यकी पूजा की है। पाश्चात्त्य चिकित्सा-विज्ञानका प्रथम उपासक हिप्रोक्रेट्स भी सूर्यद्वारा रोगियोंको ठीक करता था।

धीरे-धीरे अवनतिके गर्तमे पडते हुए ससारने सूर्यके महत्त्वको अपने मस्तिष्कसे भुला दिया। फलस्वरूप सैंकड़ो रोगोको, जिनका पहले नामोनिशानतक न था, जन्म दे दिया। वैज्ञानिकोके निरन्तर प्रयत्नशील रहने तथा अनुसधान और अन्वेषण करते रहनेपर भी वे संसारको रोगोसे मुक्त न कर सके और अन्तमे विवश हो प्रकृतिकी ओर लौटे। कुछेकने सूर्यके महत्त्वको समझा और सूर्य-ऊर्जा आदिका पता लगाया। सर्वप्रथम डेनमार्कके निवासी डॉ० नाईस फिसेनने १२९३ ई०मे सूर्य-प्रकाशके महत्त्वको प्रकटकर १२९५मे सूर्यद्वारा एक क्षयके रोगीको स्वस्थ किया। किंतु आपकी तैंतालीस वर्षकी अवस्थामे ही असामयिक मृत्यु हो गयी। दूसरे वैज्ञानिकोको इतनेसे संतोष न हुआ। उन्होने नयी-नयी खोजें आरम्भ कीं। इसके फलस्वरूप चिकित्सा-ससारमे सूर्यचिकित्सा अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने लगी है। डॉ० ए० जी० हार्वे, डॉ० एलफ्रेड व रोलियर आदिने वडे-वडे सैनेटोरियम स्थापित किये। सन् १९०३से डॉ० रोलियर अपनी पद्धतियो (systems) द्वारा आल्पस्पर्वतपर लेसीन नामक प्राकृतिक सौन्दर्यसे सुसज्जित स्थानमे रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं और नैसर्गिक सूर्य-प्रकाशको काममे लाते हैं। (श्रीमती कमलानेहरू शायद यहीं अपनी चिकित्साके लिये गयी थीं।) डॉ० रोलियरका तरीका अपने ढगका अकेला है और ये सहिष्णुता तथा पृथक्ता (एकलीमेटीसेशन तथा आइसोलेशन) आदि विधियोद्वारा चिकित्सा करते हैं। इसका पूर्ण उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता। इसके बाद 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) का जन्म हुआ और वैज्ञानिकोने बतलाया कि शरीरमे किसी विशेष रगकी कमीके कारण भी विशेष रोग उत्पन्न हो सकते हैं और उसी रगकी बोतलमे तैयार किया जल पिलाने तथा शरीरपर प्रकाश डालनेसे वे रोग दूर हो सकते है। इस विषयके डॉ० आर० डी० स्टकर, डॉ० ए० ओ० ईव्स, डॉ० वेबिट आदि ज्ञाता हुए है। यह चिकित्सा-पद्धति बड़ी उपयोगी और भारत-जैसे गरीब देशके लिये अत्यावश्यक है। पर इसमे कठिनाई केवल इतनी ही है कि 'क्रोमोपैथी' (chromopathy) द्वारा एक सद्वैद्य ही, जो रोगनिदानमें निपुण है, रोगियोको लाभ पहुँचा सकता है। ठीक निदान न होनेपर हानि हो सकती है।

जटिल एवं तथोक्त असाध्य रोगो—जैसे क्षय, लकवा, पोलियो, कैन्सर आदिमे भी विधिवत् सूर्य-स्नान करनेसे अद्भुत लाभ होता है और रोगको दूर भगानेमे बड़ी सहायता मिलती है। पर इस सम्बन्धमें विशेषज्ञोंसे परामर्श कर लेना वाञ्छनीय है। कई बार स्थानीय रूपमे भी सूर्यकी किरणोका प्रयोग किया जाता है, अर्थात् शरीरके किसी एक अङ्गविशेषको कुछ समयके लिये धूपमे रखा जाता है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार अलग-अलग रंगोके अलग-अलग गुण होते हैं; उदाहरणार्थ लाल रग उत्तेजना और नीला रंग शान्ति पैदा करता है। इन रगोसे लाभ उठानेके लिये रगीन बोतलोमे छः या आठ घंटेतक धूपमे लकडीके पाटोपर सफेद कॉचकी बोतलोमें आधा-आधा कुएँ या नदीका शुद्ध जल भरकर रखा जाता है। फलस्वरूप इस जलमें रगके गुण उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उस जलकी दो-दो तोलेकी खुराक दिनमे तीन-चार बार ली जाती है। पर बोतलको जमीनपर अथवा अन्य प्रकारके किसी प्रकाशमे नहीं रखना चाहिये। एक दिनका तैयार किया जल तीन दिनतक काम दे सकता है। जलकी भाँति तैल भी लगभग एक महीनेतक धूपमे रखकर तैयार किया जाता है। यह तैल पर्याप्त गुणकारी होता है।

सूर्य-रश्मियोसे लाभ उठानेकी एक निरापद् एवं हानिरहित विधि यह है कि श्वेतवर्णकी बोतलमे जल तैयार करके उसका सेवन किया जाय।

दैनिक सूर्यस्नान—स्वास्थ्य-इच्छुकोंको प्रतिदिन सूर्यस्नान करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि सुहाती-सुहाती धूपमें अपने सम्पूर्ण शरीरको शक्ति, रुचि एवं ऋतुके अनुसार नंगा रखा जाय। शरीरके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गपर सूर्यकी किरणें पड़ें। यदि असहनीय हो तो सिरको श्वेत गीले वस्त्रसे तथा शरीरके अन्य भागोंको सात्त्विक वृक्षों—जैसे केले, जामुन, आमके पत्तोंसे ढका जा सकता है। शरीरको धूपमें रखनेसे पसीना आता है। यद्यपि यह एक प्रकारका विष है, तथापि पसीनेमें ही ठंडे जलसे रगड़-रगड़कर स्नान करना अत्यन्त गुणदायक एवं लाभकारी होता है। इस प्रकार पसीनेमें स्नान करना कभी कोई हानि नहीं करता। जर्मनके प्रसिद्ध जल-चिकित्सक डॉ० लुई कूनेने वाष्प-स्नानके ठीक पश्चात् ठंडे जलसे स्नान करनेकी परिपाटी डाली थी। इस पद्धतिके द्वारा हजारों रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर चुके हैं और कर रहे हैं।

सूर्यस्नान करनेमें ऋतुके अनुसार समय एवं अवधिका भी ध्यान रखना चाहिये। ग्रीष्मकालमें प्रातः ८बजेतक और सायं ४ बजेके पश्चात् एवं शरदृऋतुमें किसी भी समय सूर्यस्नान किया जा सकता है। इसकी अवधि १५ से ३० मिनटतक रखी जानी चाहिये।

सूर्यनमस्कार-व्यायाम—स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दैनिक त्रिकाल संध्याओंका अत्यन्त महत्त्व है। प्राणायाम भी संध्योपासनाका अङ्ग है। प्राणायामसे शरीरका दूषित रक्त शुद्ध होकर अनेक रोगोंसे शरीरकी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त सूर्यकी प्रार्थना एवं उनके ध्यानसे बुद्धिका परिमार्जन होकर सद्विवेक जागृत होता है और मनुष्य पाप-कर्मोंसे सहज ही बच जाता है।

आधुनिक विद्वानोंने सूर्यनमस्कार-व्यायाम-पद्धतिका भी उद्भव किया है। इस सम्बन्धमें 'लीडरप्रेस' इलाहाबाद-द्वारा प्रकाशित 'सूर्य-नमस्कार' नामक पुस्तक अत्यन्त प्रामाणिक, अनुभवपूर्ण, असंगतियोंसे शून्य एवं ज्ञानवर्धक है। विद्वान् एवं अनुभवी लेखकने विषयका विश्लेषण वैज्ञानिक रीतिसे करके 'सूर्य-नमस्कार-व्यायाम'-पद्धतिका प्रचार किया है। इस पद्धतिमें शरीरके विभिन्न अङ्गोंको दस अवस्थाओं (पाजों)में रखने, साथमें श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रिया करते हुए, मन-ही-मन मुखको बिना खोले मन्त्रोच्चारण करनेका विधान है। इनमें चौबीस मन्त्र हैं। इन्हें पढ़ते हुए प्रतिदिन प्रातःस्नान करके सूर्याभिमुख होकर विधिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। यह नमस्कार एकसे आरम्भ करके कम-से-कम चौबीस बारतक किया जाय। इनके अभ्याससे शरीर स्वस्थ, बलिष्ठ, नीरोग तथा दीर्घजीवी होता है। साथ-ही-साथ आहार-विहारके अन्य सामान्य नियमोंका भी पालन उचित है।

भ्रान्तियाँ—धूप अथवा सूर्यके सम्बन्धमें कुछ भ्रान्तियाँ भी फैली हैं। वस्तुतः धूप कभी कोई हानि नहीं करती, तथापि भरपेट भोजनके पश्चात् कड़ी धूपमें जाना वर्जित है। खाली पेट धूपमें घूमनेसे कभी कोई हानि नहीं होती। हमारे ग्रामोंमें आज भी वहाँके निवासी चिलचिलाती धूप एवं गर्म लूमें रहते हैं और वे नगरके कृत्रिम जीवनके आदी नागरिकोंकी भाँति धूप एवं लूके शिकार नहीं बनते।

सूर्यकी किरणोंद्वारा पके फलों, सब्जियों तथा खाद्यान्नोंमें एक विशेष प्रकारका रस पैदा होता है और वे अनेक प्रकारके खाद्योंसे भरपूर हो जाते हैं। जिन पेड़-पौधोंको सूर्य-किरणें नहीं मिलतीं, वे मर जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सूर्यकी किरणें प्राणका संचार करती हैं और उनकी सहायतासे भयंकर-से-भयंकर रोग सहज ही बिना किसी व्ययके दूर किये जा सकते हैं। सूर्यके तापसे क्षय, कैंसर, पोलियो आदि रोगोंके जीवाणु स्वतः मर जाते हैं। जिन कमरोंमें सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं, वे कठोर शीतमें भी रात्रिको गर्म रहते हैं। उन्हींमें शयन करना स्वास्थ्यदायक एवं सुविधाजनक होता है।

भगवान् सूर्य और उनकी आराधनासे आरोग्यलाभ

(लेखक—श्रीनकुलप्रसादजी झा 'नलिन')

यो देवेभ्य आतपति यो देवानाम्पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

(शुक्लयजु० ३१ । २०)

'जो भगवान् सूर्य देवताओंके लिये प्रकाशित रहते हैं, जो देवताओंके पुरोधा—नेता हैं तथा जो देवताओंसे पहले हुए हैं, ऐसे मङ्गलदायक भगवान् सूर्यको मेरा प्रणाम है ।'

हिंदू-धर्मग्रन्थोंकी मान्यताके अनुसार देवताओंकी संख्या ३३,००,००,००० (तैंतीस करोड़) है। कहा जाता है कि ये देवता संख्यामें पहले मात्र तैंतीस[1] थे। स्कन्दादि पुराणोंके अनुसार विभिन्न पुण्योंसे मनुष्योंको लाभान्वित होते देख देवता भी उनमें सम्मिलित हो गये। ये प्रतिदिन एक-एक करके उसमें सम्मिलित होते थे, अतः उसके पुण्य-प्रभावसे प्रत्येक एक-एक कोटि-कोटिकी संख्यामें परिणत होते चले गये और देवताओंकी संख्या तैंतीस करोड़ हो गयी[2]। इन्हींमेंसे भगवान् सूर्य-नारायण एक हैं।

भगवान् श्रीसूर्यदेव अत्यन्त अनादि[3] एवं प्रतापशाली देवता हैं। अतः निगम-आगम-स्मृति-पुराण इतिहास-ग्रन्थोंके अतिरिक्त इनका वर्णन लौकिक साहित्यमें भी उपलब्ध होता है। इतना ही नहीं, भारतीय ग्रन्थोंके अतिरिक्त रोम, यूनान, मिश्र, जर्मन आदि देशोंके ग्रन्थोंमें भी इनकी चर्चा देखी जाती है। यह मान्यता कि 'मरीचिनन्दन प्रजापति कश्यपके पुत्र होनेके कारण ये बहुत बादके—अर्वाचीन देवता हैं' भ्रान्तिपूर्ण है। ये तो कश्यपसे भी अतिपूर्व ही थे। कश्यपके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करना चन्द्रमा या सप्तर्षि आदिके समान इनका दूसरा जन्म है।

नवग्रहों तथा पञ्चदेवोंमें यद्यपि ये प्रथम[4] पूज्य माने गये हैं, तथापि ब्रह्मेशानाच्युतस्वरूप होनेके कारण इन्हें कहीं ब्रह्म[5], कहीं सत्य[6], कहीं जगदात्मा[7] तो कहीं जगत्-कारण[8] कहा गया है। ऋग्वेद (शा० १। ११५। १) तथा यजुर्वेद (७। ४२)में इन्हे सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डकी आत्मा कहा है। साथ ही 'देवीभागवत'में इन्हें आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त जीवमात्रकी भी आत्मा कहा है—

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपविरूधसाम्।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः॥

(८ । १४)

श्रीमद्भागवतका—**'एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः'**—सूर्य सम्पूर्ण लोककलापोंकी आत्मा हैं—वचन भी इसका अनुमोदन करता है।

---

१. आठ वसु, ग्यारह रुद्र (इन्द्र), बारह आदित्य, एक राजर्षि तथा एक प्रजापति—ये तैंतीस देवता हैं।

२. अत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत् पुरा कृत्वा प्रदक्षिणाम्। प्रत्यहं मार्गमासीनाः प्रत्येके कोटिता गताः।

(स्क० पु० १ । ३ । १ । ५ । ५५ आदि)

३. दुनियामें जिस देवताकी सबसे पहले पूजा हुई, वे सूर्यनारायण थे। (—'विज्ञानप्रगति' जुलाई, ७५)

४. पञ्चदेवोंमे दिनकी पूजामें प्रथम सूर्य और रातकी पूजामें प्रथम गणेश पूजे जाते हैं।

(—स्क० पु० ३, चातुर्मास्यमा० ६ । ९)

५. (क) छा० उ० ३ । १९ । १, सू० उ० । (ख) म० पु० १६५ । १, प० पु० १ । ७९ । ८ ।
(ग) त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः। त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम् ॥

(—महाभारत)

६. छा० उ० ५ । ५ । १ । ७. सूर्य आत्मास्य जगतस्तस्थुषस्तमसो रिपुः। (स्क० पु०, का० ख० २ । १)

८. बृहत्संहिता १ । १, भविष्यो० पु०, आदित्यहृदय स्तोत्र।

दर्शनीय और आकाशके सभी ज्योतिष्पिण्डोंके प्रकाशक हैं।'

अथर्ववेदमे पाँव, जानु, श्रोणि, कधा, मस्तक, कपाल, हृदय आदिके रोगोंको उदीयमान सूर्यरश्मियोंके द्वारा दूर करनेकी बात कही गयी है[1]। पुनः इसी वेदमें उगते हुए सूर्यकी रक्ताभकिरणोसे[2] रोगियोंको चिरायु करनेका वर्णन प्राप्त होता है[3]। अथर्ववेदमें ही सूर्यसे गण्डमालारोगको दूर करनेकी बात आयी है[4]।

यद्यपि श्रीमद्भागवतमे सूर्यसे तेज—**'तेजस्कामो-विभावसुम्'**, स्कन्दपुराणमे सूर्यसे सुख—**'दिनेशं सुखार्थी'** तथा वाल्मीकीय रामायणमे सूर्यसे अरिविजयकी कामना की गयी है तथापि अन्य पुराणोने एक स्वरसे 'सूर्यसे आरोग्य-लाभ'का डिण्डिमघोष किया है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥
(मत्स्यपु० ६७।७१)

इस तरह आजसे हजारो वर्ष पूर्वसे ही भारतीय जनसमुदाय सूर्यकी कृपासे आरोग्यलाभ प्राप्त करता आ रहा है। पाँच सहस्रसे भी अधिक वर्ष बीत गये, जब दुर्वासाके शापसे कुष्ठग्रस्त श्रीकृष्ण और जाम्बवती-नन्दन साम्बको सूर्यनारायणकी आराधनाने निरामय और सुन्दर बनाया था।

सुप्रसिद्ध भक्तकवि मयूरभट्ट, जो बाणके[5] साले एवं भूषणभट्टके मातुल थे, सूर्यकी आराधना कर न केवल नीरोग, कञ्चनकाय हो गये, अपितु उन्होने सूर्यकी स्तुतिमें रचित सौ श्लोकोके संग्रह—**'सूर्यशतकम्'**-से अमरता भी प्राप्त कर ली। यह **'सूर्यशतकम्'** आज संस्कृतसाहित्यकी एक अमूल्य निधि बना हुआ है।

इस तरह सूर्याराधनासे स्वास्थ्यलाभकी अनेक कथाएँ पुराणान्तरोमें देखी जाती हैं। स्यात्, इसी कारण विश्वके अनेक देश 'सूर्यसे आरोग्यलाभ'पर प्रयोग चला रहे हैं, जिसका ज्वलन्तनिदर्शन प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति (Naturopathy) है। अमेरिकाके सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री मिस्टर जॉन डोनने तो सूर्यरश्मियोंसे यक्ष्मा (T. B.)-जैसे भयंकर रोगके कीटाणुओंके नष्ट होनेका दावा किया है।

'मार्तण्डमरीचियोंसे निरामयता' पर विदेशोमें आज जो अनुसंधान[6] और प्रयोग चल रहे हैं, आस्तिक हिंदूका उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं है; क्योंकि वह जानता है कि शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है, वह ऋषि-महर्षियोंकी दीर्घकालीन गवेषणाका परिणाम है। शास्त्रोका एक-एक वचन अकारण-करुणाकर, सर्व-मङ्गलकामी, दीनवत्सल, परमवैज्ञानिक ऋषि-मुनियोके चिरकालीन अन्वेषण-मनन-चिन्तन एव अनुभवके निकषपर कसकर ही अभिहित हुआ है। इसी आस्था-सम्बलके सहारे वह आज भी निर्द्वन्द्व, निश्चिन्त चलते चल रहा है। उसकी धारणा है कि—

पुराणे ब्राह्मणे चैव देवे च मन्त्रकर्मणि।
तीर्थे वृद्धस्य वचने विश्वासः फलदायकः॥
(स्क० पु० २, उत्क० ख० ६०।६२)

---

१. अथर्ववेद स० (९।८।१९, २१, २२)

२. सूर्य-रश्मिके सात रगोमे दूसरा रग है नीला, जिसे अल्ट्रा-वायलेट भी कहते हैं। वैज्ञानिकोके मतानुसार यह अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्द्धक कहा गया है। ३. अथर्ववेदसहिता (१।२२।१, २)

४. वही (६।८३।१)

(क) जयार्थी नित्यमादित्यमुपतिष्ठति वीर्यवान्। नाम्ना पृथिव्या विख्यातो राजञ्शतबलीति यः॥
(युद्धका० २७।४४)

(ख) युद्धकाण्डका ही 'आदित्यहृदय'स्तोत्र।

५. बाणभट्ट और मयूरभट्ट दोनो ही महाराज हर्षवर्द्धनके दरबारमे रहते थे।
(—बलदेव उपाध्यायका सस्कृत-साहित्यका इतिहास)

६. 'सूर्य-रश्मियोसे आरोग्य-लाभ'पर डॉ० जेम्सकुक, (Jams Cook) ए० बी० गार्डेन, (A. B. Gorden) एच० जी० वेल्स प्रभृति अनेक पाश्चात्त्य मनीषी अनुसधान कर रहे हैं।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥
(वही ५ । २ । २२७ । २०)

आधुनिक मनोविज्ञानका यह कहना कि व्यक्तिकी भावना ही बहुधा उसके सुख-दुःखका कारण बनती है, भारतीय समाज इसी आस्थामूलक धारणासे मिलता-जुलता है और इसी धारणाके वशीभूत फलोन्मुखी अपेक्षा समय तथा साधनके अनुसार भगवान् सूर्यकी आराधनासे लाभान्वित हो जाती है। यद्यपि आधुनिक भौतिक विज्ञानने कुछ लोगोंकी आस्थाको डिगा दिया है, फिर भी कुछ लोग आज भी इसको परम सत्य, सरल तथा सुलभ मानकर दवाओंके चक्करमें न पड़कर सीधे उपासनापर उतर जाते हैं। पैसेवाले 'बाबू' या 'मैकाले मार्का-शिक्षा' (!)की किन्हीं उपाधियोंसे विभूषित तथाकथित भद्रमहाशय या तत्प्रभावित व्यक्ति पैसेके बलपर स्वास्थ्य खरीदनेमें जब अपने-आपको अक्षम पाते हैं और शनैः-शनैः स्वास्थ्यके साथ सम्पत्ति (Health and Welth) भी खो बैठते हैं तब 'जैसे उड़ि जहाजके पंछी पुनि जहाजपर आवे'—घूम-फिरकर इन्हीं भगवान् सूर्यकी शरणमें आ जाते हैं और नीरोगताको प्राप्त करते हैं। पूर्वमें उनको न मानकर पश्चात् माननेमें उन्हें कोई क्षोभ या आक्रोश नहीं; क्योंकि उनकी तो उद्घोषणा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः⋯⋯⋯॥ (—गीता ९ । ३०)

कोई पूर्वका स्वयं दुराचारी क्यों न हो, यदि अनन्यभावसे भगवान्‌की भक्ति करने लगे तो उसे साधु ही मानना चाहिये। भगवान् भक्तिपूर्वक पूजा करनेवालेका शरीर नीरोग कर देते हैं—

सूर्यो नीरोगतां दद्याद् भक्त्या यैः पूज्यते हि सः।

उसके शरीरको नीरोग तो करते ही हैं, दृढ भी बना देते हैं—

अरोगो दृढगात्रः स्याद् भास्करस्य प्रसादतः॥

यही नहीं, अपितु भगवान् भास्कर नीरोग बनानेके साथ-साथ जिसपर प्रसन्न होते हैं उसे निःसन्देह धन और यश भी प्रदान करते हैं—

शरीरारोग्यकृच्चैव धनवृद्धियशस्करः।
जायते नात्र संदेहो यस्य तुष्येद्दिवाकरः॥
(पद्मपु० १ । ८० । ५८)

'ज्योति तेरी जलती है'

(रचयिता—श्रीकन्हैयासिंहजी विसेन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

रोग को मिटावे दुख विपदा घटावे तू ही,
तेरे ही प्रताप से धरित्री टिकी रहती है।
बन्ध्या को बालक और अंधन को आँख देत,
अष्ट सिद्धि नवो निद्धि संग लगी रहती है॥
तू ही है अनादि नित्य अविचल अविकारी देव,
तेरे ही प्रभाव से यह सृष्टि सब चलती है।
धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थों का,
स्वामी एक तू ही प्रभो! ज्योति तेरी जलती है॥

सूर्यचिकित्सा

(लेखक—प० श्रीशंकरलालजी गौड़, साहित्य-व्याकरणशास्त्री)

मनीषियोंका कथन है कि सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक कृमियोंका नाश होता है। जिस प्रकार वात-चिकित्साका विधान शास्त्रोमे वर्णित है, उसी प्रकार अथवा इससे कहीं अधिक सूर्य-चिकित्साका विधान है। वायु-चिकित्सा सूर्य-प्रकाशसे ही सफल होती है। यदि प्रकाश न हो और इन प्रत्यक्ष देवकी किरण विश्वमे प्रसारित न हो तो जीव जीवित नहीं रह सकते। उपनिषद्का वचन है—**'अथादित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते'** (प्रश्न० उ० १६) सूर्य जब उदय होते है तो सभी दिशाओमें उनकी किरणोंद्वारा प्राण रखा जाता है अर्थात् सूर्यप्रकाश ही वायुमण्डलको शुद्ध करता है। सूर्यकी किरणोके बिना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। वेदमें आयु, बल और आरोग्यादि वर्णनके साथ सूर्यका विशेप सम्बन्ध है। शीतकालमे शीत-निवारणके लिये सूर्यकी ओर पीठकर उनकी रश्मियोका सेवन करके आनन्द लेना चाहिये—जैसा कि प्राकृतिक चिकित्साकी विधि गोस्वामीजी अपनी विशुद्ध भावनाओमे प्रकट करते है; यथा—**भानु पीठि सेइअ उर आगी** (मानस)। प्राय: हमने देखा है कि बहुत-से लोग अन्धकारयुक्त स्थानों अर्थात् अन्धकारयुक्त (अन्धतामिस्र) नरकमें जीवननिर्वाह करते है। जहाँ भगवान् सूर्यकी किरणें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ शीतकालमें शीत तो बना ही रहता है। साथ ही वहाँके प्राणी भयंकर रोगके शिकार हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—गठिया, गृध्रसी, स्नायुरोग, और पक्षाघात आदि। ऐसे लोग वैद्य, डाक्टर तथा हकीमोकी शरणमे जाकर भी अपना शारीरिक कष्ट (रोग) निवारण नहीं कर पाते। सूर्यका प्रकाश दुर्गन्धको दूर करनेवाली वायुको शुद्ध कर देता है। तभी तो गोस्वामीजी लिखते हैं—**'भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं'** विशेप—**'प्राणो वै वातः'** सूर्यकी किरणें रोगरूपी राक्षसोका विनाश करती हैं। **'सूर्यो हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता'**। सूर्यप्रकाशसे रोगोत्पादक कृमियोका नाश होता है। यथा—

उद् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च क्रिमीन् जम्भयामसि (अथर्व० ५। २३। ६) सूर्य पूर्व दिशामें उदय होता है तथा पश्चिम दिशामे अस्त होता हैं एवं वह अपनी किरणोद्वारा सभी दिखने तथा न दिखनेवाले कृमियोका नाश करता है। इन कृमियोका स्वरूपवर्णन वेदमें इस प्रकार आता है—**शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः। भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः॥** (अथर्व० २। ३२। २,६) शरीरमें विद्यमान रहनेवाले विभिन्न प्रकारके कृमि भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न करते हैं, उनका हनन भगवान् सूर्यके प्रकाशसे ही होता है। अब सूर्यके प्रकाश, धूप तथा किरणोंका सेवन प्रत्येक ऋतुमे आवश्यक है, इसे हम वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे तथा स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बतलाते हैं। भारतीय विद्वानोंने वसन्तऋतुको ऋतुराजकी संज्ञा दी है। इसमे चैत्र-वैशाख मास आते है। इस ऋतुमें प्रातः और सायंकाल घूमना हितकर बतलाया है। यथा—**'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्'** तथापि मध्याह्न-समयमें घूमना श्रेष्ठ नहीं है। प्रत्युत इससे ज्वर, माता, मोतीझला, खसरा आदि रोगोका प्रादुर्भाव भी सम्भव है। ग्रीष्मऋतुमें भुवनभास्कर अत्यन्त तीक्ष्ण किरण फेंकते हैं, इससे कफ क्षीण होकर वायु बढती है। इसलिये इस ऋतुमें नमकीन, अम्ल, कटु पदार्थका भोजन, व्यायाम और धूपका त्याग करना हितकर होता है। मधुर अम्ल, स्निग्ध एवं शीतल द्रव्य भोजन करे। ठण्डे जलसे स्नान एवं अङ्गोंका सिंचन कर शक्करयुक्त सत्तूका प्रयोग करे। मद्य (शराब) न पीये। बेलाकी माला धारण करनी चाहिये। सफेद

चन्दनको घिसकर लगाना चाहिये। इससे शिरोरक्त एवं दाह शान्त होते हैं। एक धर्मशास्त्रीय वचन भी है; यथा—

चन्दनस्य महत् पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठतु सर्वदा॥

आपदाका ग्रन्थकारका भाव मस्तिष्कदाह तथा ऐहलौकिक एव पारलौकिक विपत्तियोंके नाशसे है। वर्षाऋतुमे अग्निके मन्द होनेसे क्षुधाका ह्रास होता है **'वर्षास्वग्न्यबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः'**—वर्षाऋतुमें जठराग्निका दुर्बल हो जाना सम्भव है, जिससे वात आदि रोग उत्पन्न होते हैं। वास्तवमे मल तथा अग्निका दूषित होना ही रोगोपद्रवका प्रमुख कारण है। **'आमाशयस्य कायाग्नेर्दौर्बल्यादपि पाचितः'** आमाशयकी खराबीसे मन्दाग्नि हो जाती है; इसलिये अग्नि प्रदीप्त करनेवाली व्रतोपवास प्राकृतिक चिकित्सा करनी चाहिये। इस ऋतुमें धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनने चाहिये। ऋतुओमें सबसे खराब वर्षाऋतु होती है। इसमें धूप-सेवन थोड़ी देरतक ही करना चाहिये। शरद्ऋतुमें वास्तवमे सूर्य-चिकित्साका विधान भारतीय तथा पाश्चात्त्य विद्वानोंने किया है। इस ऋतुमें पित्त प्रकुपित रहता है, इसलिये भूख अच्छी लगती है। शीतल, मधुर, तिक्त, रक्तपित्तको शमन करनेवाला अन्न एवं जलका उचित मात्रामे सेवन करना चाहिये। साठी और गेहूँका सेवन करना ठीक है। विरेचन भी लेना चाहिये। दिवा-शयन और पूर्वी वायुका सेवन त्याग देना चाहिये। इस ऋतुमे दिनमें सूर्यकी किरणोसे तप्त और रात्रि-किरणोद्वारा शीतल अगस्त्य नक्षत्रके उदित होनेसे जल निर्मल और पवित्र हो जाता है। इस जलको हंसोदक कहते हैं। यह स्नान, पान और अवगाहनमे अमृतके समान होता है। इस प्रकार ऋतुओमे होनेवाले भयंकर रोगोंसे हम सूर्यकी कृपासे बच सकते हैं। तभी तो कहा है—**'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'**। भगवान् सूर्यकी किरणें निःसंदेह शुद्ध करनेवाली हैं—**'एते वा उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः'** "The rays of sun are certainly purifying.' सूर्य ही विनाशक राक्षसोंका नाश करनेवाले हैं अर्थात् जो राक्षसरूप भयंकर रोग हैं, उनका विनाश हो सकता है। "For the sun is the speller of the evil spirits, and the sickness.' सूर्यके प्रकाशसे रोगोत्पादक जन्तु मर जाते हैं, ऐसा ही सामवेदमें निर्देश है—**'वेत्थाहि निर्ऋतीनां वज्र हस्त परिव्रजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव।'** सूर्य! आप प्रतिदिन राक्षसोंके वर्जनको अवश्य जानते हैं अर्थात् सूर्य रोगरूपी राक्षसोंके विनाशक हैं। सूर्य दीर्घायुष्य देनेवाले परमात्मा हैं; यथा—**'तु चे तुनाय तत्सुनोद्राघीय आयुर्जीवसे। आदित्यासः सु महसः कृणोतन॥'** (सामवेद) सूर्यके प्रकाशद्वारा कीटाणु मर जाते हैं। इस विषयमे अथर्ववेदका प्रमाण प्रत्यक्ष है **'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि॥'** (—अथर्व० २। ३२। १) अर्थात् सूर्यकिरणोंसे छिपे हुए रोग-जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यसे विनय

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव॥

(ऋ० १०। ३७। ४)

अये सूर्यदेव! आप अपनी जिस ज्योतिसे अँधेरेको दूर करते और विश्वको प्रकाशित करते हैं, उसी ज्योतिसे हमारे पापोंको दूर करें, रोगोंको और क्लेशोंको नष्ट करें तथा दारिद्र्यको भी मिटाये।

श्वेतकुष्ठ और सूर्योपासना

(लेखक—श्रीकान्तजी शास्त्री वैद्य)

श्रीपीताम्बरापीठ दतियाके संस्थापक परमपूज्य श्रीस्वामीजी महाराजका अनुभव है कि सूर्याष्टकका श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करनेसे श्वेतकुष्ठके रोगी लाभान्वित होते हैं। श्रृङ्गवेरपुरनिवासी एक महात्माका अनुभव है कि रविवारका व्रत रखने और सूर्यनारायणको नित्य अर्घ्य देनेसे श्वेतकुष्ठ जाता रहता है। अर्घ्यके बाद कंडेकी आगपर शुद्ध घृत और गुग्गुलुका धूप देना चाहिये। जले हुए गुग्गुलुको उठाकर सफेद दागोंपर मलना चाहिये।

जिन लोगोंको लगातार विरुद्ध आहार करते रहना पडता है या जो पेचिसके रोगी है अथवा अम्लपित्तसे ग्रस्त हैं, उनमें इसकी सम्भावना अधिक होती है, यह देखनेमें आता है। विरुद्ध आहारकी सूची लम्बी है, पर मोटे तौरसे यह समझ लेना चाहिये कि दूधके साथ खटाई और केले इत्यादिका सेवन विरुद्ध आहारोमे आता है। अतः कारणोंपर ध्यान देकर थोडा-बहुत औषधोपचार चलाते रहनेसे लाभकी शीघ्र सम्भावना है। लौहघटित योगको बाकुचीके हिमसे सेवन करानेसे भी लाभ देखा गया है।

इसके रोगीको खटाई, मिर्च, मांस, अडा, मदिरा, डालडा, अरवी, उड़द, तली-भुनी वस्तुएँ, भारी चीजें नहीं खानी चाहिये। स्टेनलेस स्टील और अल्म्यूनियमके बर्तनोंका प्रयोग भी विशेपतः भोजन-पाक करनेमे अवश्य बंद कर देना चाहिये। (सूर्याष्टक आगे प्रकाश्य है।)

सूर्यकिरणें कल्पवृक्षतुल्य हैं

(एक विशेषज्ञसे हुई भेंट-वार्तापर आधारित)

'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'—के अनुसार इस मानवशरीरमे रोग होना स्वाभाविक है। सम्भवतः इसे ही देखकर ऋषियोने लोककल्याणार्थ व्याधिचिकित्साके लिये उपवेदोमे आयुर्वेदको भी स्थान दिया। आयुर्वेदमे कई रोगोके निवारणार्थ सूर्यकिरण-सेवन और सूर्यार्चनका विधान है। मानव सूर्यकिरणोद्वारा आरोग्य प्राप्त कर सकता है, यह मानकर एक प्रख्यात आयुर्वेदज्ञ और रसायनवेत्ता डॉक्टरसे सम्पर्क स्थापित कर 'सूर्यकिरणोद्वारा स्वास्थ्यलाभ'-विषयपर प्रेषकने चर्चा की तो उन्होने इसपर विस्तृत प्रकाश डाला, जिसका संक्षिप्तरूप यहाँ प्रस्तुत है।

प्रश्न—डॉ० साहब! आप इस क्षेत्रके प्रख्यात चिकित्सक है और सूर्यकिरणोके माध्यमसे चिकित्सा करते हैं; कृपया यह बताइये कि सूर्यकिरण चिकित्सा-पद्धति प्राचीन है या नवीन? यह पूर्वकी देन है या पश्चिमकी? वर्तमानरूपमे इसे लानेका श्रेय किसे है?

उत्तर—देखिये! इसमे कोई संदेह नहीं कि आयुर्वेदमे जहाँ रोगनाशहेतु ओषधियोकी बात कही गयी है, वहीं प्रत्येक रोगके रोगाधिकारी देवताओंकी उपासनाका भी निर्देश है। इसके लिये उसमे यन्त्र, मन्त्र और स्तोत्र भी वर्णित हैं। शिवप्रणीत शावरमन्त्रोमे भी अनेक रोगनाशार्थ मन्त्र कहे गये है। जहाँतक सूर्य-किरण-चिकित्साकी बात है, यह निःसंदेह हमारे देशकी प्राचीन पद्धति है। वेदोमें भी इसपर प्रकाश डाला गया है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च'**—अर्थात् सूर्य ही स्थावर-

जङ्गमकी आत्मा हैं। अथर्ववेदके एक सूक्तमें भी कहा है कि तेरा हृदयरोग और पाण्डु (पीलिया, पीलक) रोग सूर्य-किरणोंके साथ सम्बन्ध करनेसे चला जायगा। जहाँतक आयुर्वेदमें सूर्योपासनाकी बात है उसमें भी चर्म और कफ रोगोंके निवारणार्थ इसपर बल दिया गया है। यदि आप विचार करें तो पायेंगे कि सूर्यकिरणें इस पृथ्वीपर कामधेनुस्वरूपा और कल्पवृक्षतुल्य हैं। सूर्यकिरण-चिकित्सा-पद्धति प्राचीन और भारतीय है। पर इसके गुणोंको पश्चिमवालोंने भी अपनाया। वे विटामिन 'डी'के प्राप्त्यर्थ इसे ही एकमात्र साधन बताते हैं। यही नहीं, अमरीकाके बहुत-से चिकित्सकोंने इसके सफल प्रयोग भी किये हैं।

पर यह भारतका अभाग है कि इसने आविष्कार तो बहुत किये; परंतु इसकी बौद्धिक दासताने सभी प्रयोग दबा दिये। मौर्य-गुप्त राजाओंके समयसे यूनानी चिकित्सा आने लगी। अंग्रेजोंके साथ एलोपैथी आयी। आयुर्वेद और उसके प्रयोग दबते ही रहे। इस आधारपर चर्चित चिकित्साको वर्तमान स्वरूपमें सर पल्झिन होन लाये। उन्होंने अपनी 'आसमानी रंग और सूर्य-प्रकाश' नामक पुस्तकमें आसमानी रंगों और सूर्य-किरणोंसे कई रोग समाप्त करनेका वर्णन किया है। इसके बाद डॉ० येनस्कॉटने अपनी (Blue and red lights) 'नीला और लाल प्रकाश' तथा डॉ० एडविन वेबिटने 'प्रकाश और रंगोंके नियम'-नामक पुस्तकमें इस पद्धतिपर प्रकाश डाला है और डॉ० रोबर्ट बोहलेन्ड साहबद्वारा अनेक दुःसाध्य रोगोंपर इसका सफल प्रयोग हुआ है।

अपने देशमें भी स्वनामधन्य स्व० स्वा० सरस्वती-नन्दने मराठीमें अपनी पुस्तक 'वर्ण-जल-चिकित्सा'-में इसकी चर्चा चलायी। कुछ वर्ष पूर्व दिवङ्गत श्रीयुत गोविन्द बापूजी टोगूने इस दिशामें सर्वाधिक सफल प्रयोग कर सहस्राधिक जनोंको लाभान्वित किया।

प्रश्न—डॉ० साहब! सूर्यकिरणोंके माध्यमसे क्या सभी रोग ठीक हो सकते हैं या कुछ विशेष?

उत्तर—इस पद्धतिके उपचारमें नीले रंगके प्रयोगसे बुखार, पुरानी पेचिश, अतिसार, संग्रहणी, खाँसी, कास-श्वास, शिरःशूल, शिरोरोग, गर्मी, प्रमेह, मूत्ररोग, विस्फोटक, श्लीपद इत्यादि; लाल रंगके प्रयोगसे समस्त वात-व्याधि, पीले रंगसे समस्त उदररोग, समस्त हृद्रोग आदि; हरे रंगसे समस्त त्वचारोग और किमधिकम् प्रायः सभी रोग नष्ट हो सकते हैं।

इस पद्धतिका मुख्य तात्पर्य उस पद्धतिसे है जिसमें लक्षाधिक ओषधियोंका प्रयोग न कर ओषधि-सेवन और संयम सबमें भानु-रश्मिकी प्रधानता हो और जिसमें सूर्य-किरणोंसे निर्मित जल, तैल, दिव्य शर्करा और गोलियोंका प्रयोग हो, धूपस्नानका प्रयोग हो।

प्रश्न—अभी आपने तैल, शर्करा, दिव्य जल और गोलियोंकी बात कही। कृपया उन्हें निर्मित करनेकी संक्षिप्त विधि बतायें!

उत्तर—जल-विधि-इस पद्धतिके अनुसार उपचार करनेके लिये रोगानुसार विभिन्न रंगोंकी बोतलें लेनी चाहिये, जो सर्वथा स्वच्छ, पारदर्शी और दाग या धब्बेसे रहित हों। बोतलके रंगका ही उसका ढक्कन या कार्क (डॉट) हो। फिर कूप, तालाब, नदी, झरना या चापाकल (हैण्डपाइप)का सर्वथा स्वच्छ जल चार परत मोटे वस्त्रसे छान लें। तब उसे किसी बोतलमें इतना भरें कि केवल चार अङ्गुल ऊपर वह खाली रह जाय। फिर बोतलको ढक्कनसे भली प्रकार बदकर उसे धूपमें खुली हवा और स्वच्छ स्थानमें एक लकड़ीकी पटिया अथवा तिपाई या चौकीपर रखें। उस स्थानपर पूर्वाह्न दस बजेसे अपराह्न पाँच बजेतक सूर्य-किरणें अबाधगतिसे आती हों

और छाया न पड़ सके। पाँच बजते ही तत्काल बोतल वहाँसे हटाकर बोतलके रंगके ही पतंगी कागजमें लपेट कर आलमारीमें रख दे। धूपमें रखी बोतलोंमे धूपसे उष्णता पाकर जब रिक्त भागमे वाष्पबिन्दु एकत्र हो जाय तो उस जलको निर्मित मान लेना चाहिये। इस जलको रोग और मात्राके अनुसार पी भी सकते हैं और इसकी पट्टीद्वारा या इससे धोकर बाह्य उपचार भी कर सकते हैं। किंतु उपर्युक्त निर्देशका पालन अवश्य हो। त्रुटि हानिप्रद हो सकती है। यदि भूलसे बोतल सूर्यास्ततक वहाँ रह जाय अर्थात् उसपर चन्द्रमा आदिकी रोशनी पड़ जाय तो जल तत्काल फेंक देना चाहिये और बोतलको धो देना चाहिये। वैसे जल, शर्करा, गोलियाँ या तैल सभी चैत्रसे ज्येष्ठ मासतक तैयार करें; क्योंकि तब यथेष्ट किरणें मिलती हैं। जब कई रंगकी बोतलें धूपमें रखनी हों तो उन्हें सटाकर नहीं रखना चाहिये। एक बोतलमें केवल एक बार जलादि तैयारकर उसमे तीन दिन-तक नहीं रखे, वरन् दूसरी श्वेत वर्णकी बोतलमे उलट दे। यदि कई बोतलें आलमारीमें रखी हों तो उनपर उन्हीं रंगोंका कागज लपेट दे। एककी छाया दूसरे-पर न पड़ सके। एक दिनका तैयार जल केवल तीन दिनोंतक प्रयोग करे, फिर दूसरा बना ले।

तैल—शिरोरोगमे काचकी नीली बोतलमे शुद्ध तिल, नारियल या बादामका तेल और त्वचा-रोगोमें हरे रंगकी बोतलमे केवल तिलका तेल पूर्वोक्त रीतिसे भरकर कार्क या ढक्कनमें रूई लपेटकर भलीभाँति बंद कर दे। उसे भी लकड़ीपर ही ९० दिनोतक रखे। प्रतिदिन रूई बदलता रहे। तैयार हो जानेपर इत्र मिला सकते हैं, पर रंग नहीं।

दिव्य शर्करा—अभीष्ट रंगकी बोतलोंमें दूधकी चीनी या पिसी मिश्री भरकर पूर्वोक्त विधानसे धूपमें रखे। शर्करा उसी बोतलमें रहने दे। जिस समय धूप न हो और धूपित जल उपलब्ध न हो, उस समय एक बड़ी श्वेत बोतलमें आधा सेर जलमे तीन माशा शर्करा घोल दे तो वह जल भी पूर्वोक्त धूपित जलके समान हो जायगा। सूखी शर्करा सेवन न करे।

गोलियाँ—होमियोपैथीकी दूधसे बनी सादी गोलियाँ (Suger of Milk) आवश्यकतानुरूप कई बोतलोंमें पंद्रह दिनतक रखकर तैयार कर ले। वर्षाके समय पानी या शर्कराके स्थानपर इसकी एक या दो गोलियाँ मुखमें रखकर पानी पी ले।

धूप-स्नान—इसके विषयमें प्रायः सभी जानते हैं। पर यदि रोगीको कमरेमे स्नान कराना हो तो कमरे-की खिडकियोमे रोगानुसार काच लगा दे तो दिनभर रोगी धूप सेवन कर सकता है।

प्रश्न—डॉ० साहब! कृपया यह बताइये कि क्या यह पद्धति अन्य पद्धतियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है? यदि हाँ, तो इसे सर्वसाधारणमें मान्यता क्यों नहीं प्राप्त है?

उत्तर—देखिये भाई! आज चमत्कारका युग है। शिशुसे वृद्धपर्यन्त सभी चमत्कार चाहते है। उन्हे प्राकृतिक चिकित्सा स्वीकार नहीं है। वे सद्यः प्रभाव चाहते हैं, भले ही वह किसी अन्य आपत्तिको जन्म दे दे। इस पद्धतिमें ऐसी बात नहीं है। यह सर्वसुलभ है, अल्पव्ययी है और गुणकारी भी है। पर विज्ञानद्वारा आलसी और सुखेच्छु मानव इतनी सावधानी और प्रयत्नका कार्य क्यों करे? नहीं तो यह पद्धति उचित प्रकारसे प्रयुक्त होनेपर अमोघ सिद्ध हो सकती है। अतएव श्रेष्ठ है।

प्रेषक—श्रीअश्विनीकुमारजी श्रीवास्तव 'अनल'
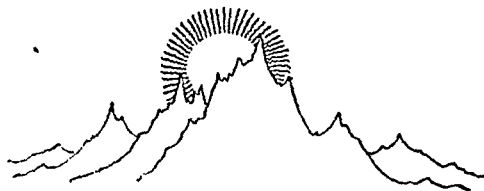
प्राकृतिक चिकित्सा और सूर्य-किरणें

(लेखक—महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती)

सम्पूर्ण सौर-मण्डलके प्रकाशक भगवान् सूर्य भारतीय परम्परामे देवरूप माने गये हैं। वेदमे भी चिकित्सा और ज्ञानकी दृष्टिसे सूर्यका वर्णन भिन्न-भिन्न स्थानोमे आता है। ईशावास्योपनिषद्मे आत्मारूपसे इनकी वन्दना की गयी है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

'हे जगत्के पोषण करनेवाले, एकाकी गमन करनेवाले, संसारका नियमन करनेवाले, प्रजापति-नन्दन सूर्य! आप अपनी किरणोको समेट ले; क्योंकि जो आपका कल्याणतम रूप है, उसे मै देख रहा हूँ। यह जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष है, वह मैं हूँ। अर्थात् आत्मज्योतिरूपसे हम एक है। इस प्रकार आत्मारूपसे भगवान् सूर्यकी वन्दना की गयी है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवनमे श्रीसूर्य और किरणोका क्या महत्त्व है—यह भी छिपा नहीं है।

सामान्य जन तो उदयमे प्रकाश और अस्तमे अन्धकारकी कल्पना करके शान्त हो जाते है; किंतु शास्त्रीय एव वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रतिक्षण सूर्यका सम्बन्ध हमारे जीवनसे रहता है। सूर्यके बिना क्षणभर भी रहना असम्भव है।

यदि यह कहा जाय कि सभीके जीवनका आधार सूर्य ही हैं तो अनुचित न होगा; क्योंकि हमारी सारी शक्तियोके स्रोत सूर्य ही हैं और उन्हींके प्रभावसे सबका जीवन सुखमय बीतता है।

संसारकी सारी वनस्पतियाँ उन सूर्यकिरणोद्वारा ही पुष्ट होती हैं, जिनके सहारे हमलोग जीवन धारण करते हैं। पौधे तथा हमलोग सूर्यसे अपने जीवनकी शक्ति प्राप्त करते है। दूध पीते समय जो प्रोटीन हमें प्राप्त होता है, वह सूर्यकी किरणोंसे ही; क्योंकि गौएँ घास और सब्जियोको कार्बोहाइड्रेटमें परिणत किये बिना हमें दूध नहीं दे सकती हैं।

प्रत्यक्षरूपसे भी सूर्य-किरणे मानव-जीवनको प्रभावित करती हैं। उनके रंगोंका प्रभाव हमारे ऊपर बहुत होता है। रंगकी किरणोका अधिक महत्त्व हैं, क्योंकि रंगोका समूह, जो हमारे वातावरणको बनाता है, उनको वे रूप देती हैं। रंगके प्रति जो हमारी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि वे हमलोगोंके न केवल शरीरको प्रभावित करती हैं, अपितु उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी हमपर पड़ता है। इस बातका प्रत्येकने अनुभव किया होगा कि जब बादल या धूल वातावरणमें रहते हैं और उनके बीचसे सूर्यकी किरणें आती है, तब कैसा अच्छा लगता है। कितना हमारी मनोदशा तथा जीवनकी स्थितिपर रंगका गहरा प्रभाव पड़ता है। हम हरे-भरे रंगको देखकर स्वयं भी हरे-भरे हो जाते हैं।

यह प्रयोगद्वारा देखा गया है कि नीले रंगका प्रभाव ठंडा होता है। लाल रगसे उष्णता और तेज रंगसे घरमें तथा कारखानेमे काम करनेकी स्फूर्ति पैदा होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगका जो भावात्मक प्रभाव पड़ता है, उसीपर चिकित्सा करनेका एक सिद्धान्त बनाया गया है। मनकी स्वस्थताका प्रभाव शरीरपर प्रत्यक्षतः पड़ता है।

प्रत्यक्षरूपसे जिस कारणको हम प्राप्त करते हैं, वह हमारे लिये मूल्यवान् है, किंतु अदृश्य किरणें भी हमारे लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वर्णक्रमके अन्तमें जो लाल रंग रहता है, वहाँ तापके इन्फ्रा-रेड किरणे रहती हैं। ये ही किरणें हमारी पृथ्वीको गरम रखती है। ये बेधनेवाली किरणें हैं। जैसे-जैसे ताप बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे

वायोकेमिकल क्रिया तेज होती जाती है। इसी कारण हम शीत ऋतुकी अपेक्षा ग्रीष्म ऋतुमे योग्यतापूर्ण कार्य करनेकी विशेष क्षमता प्राप्त करते है।

प्रभातकालीन सूर्यके सामने नगे बदन रहना स्वास्थ्यके लिये अत्यधिक लाभदायक है। प्राकृतिक चिकित्सामे शरीरके आन्तरिक एव बाह्य रोगोमे रोगीको सूर्य-स्नान करवाया जाता है। इस चिकित्सामे सूर्यकी अनेक महत्त्वपूर्ण क्रियाओमे सूर्यस्नान अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

यह सूर्यस्नान दोपहर होनेसे पहले किया जाता है। इस प्रयोगमे स्नानकर्ताको अपने सिरके ऊपर ठंडे जलसे भीगा हुआ एक तौलिया अवश्य रखना चाहिये। साथ ही नगे बदन होकर एक गिलास जल पी लेना भी आवश्यक है। फिर नगे बदन सिरपर भीगे हुए तौलिये-सहित धूपमे चला जाय। गर्मीमे १५-२० मिनटतक एव सर्दीमे ३०-३५ मिनटतक वहाँ रहना चाहिये। समयानुसार धूपमे रहकर पुनः तुरंत ठंडे जलसे स्नान करनेका विधान है। बादमे शरीरको पोछकर कुछ देर विश्राम करके लगभग एक घटे पश्चात् भोजन करे। इस स्नानसे शरीरके सभी चर्मरोग नष्ट हो जाते है। कुष्ठरोग तथा पाचन क्रियाके लिये एव नेत्रज्योति और श्रवण-शक्ति आदि बडे-बडे रोगोंके लिये यह वरदान सिद्ध हुआ है। यहाँ सूर्यसे कुष्ठरोग विनष्ट होनेका एक ही प्रचलित उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारतीय सस्कृत भाषाके सुप्रसिद्ध गद्य-साहित्यकार बाणभट्टके साले मयूरभट्ट एक बार कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गये। सूर्योपासनासे उनका यह रोग समूल विनष्ट हो गया। क्या आपने कभी विचार किया कि किसानलोग अधिकतर बीमार क्यो नहीं पड़ते? मुख्यतः कारण यही है कि ऊपरसे पड़ती धूपमे काम करनेवाले किसानका सूर्य-स्नान प्रतिदिन होता है। कभी धूप तो कभी वर्षा—ऐसी स्थितिमे सूर्य-स्नान स्वतः हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामे रोगीको सूर्यका पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिये उषाकालमे प्रतिदिन उठना चाहिये। उषाकालकी सुखद वायु एव प्रभातकालीन सूर्यकी रश्मियोका सेवन करनेवाला व्यक्ति सदैव नीरोग रहता है।

इतना ही नहीं, सूर्यकी किरणोंद्वारा विटामिन डी० की उत्पत्ति होती है। वर्णक्रमके अन्तिम छोरके गुलाबी रगपर अदृश्य अल्ट्रावायलेट किरणें रहती हैं। जब ये किरणे त्वचातक पहुँचती हैं, तब हम उन्हे शोषित करते है। वे त्वचाके नीचे एक प्रकारके तेलयुक्त पदार्थद्वारा शोषित की जाती है। उन किरणोकी शक्तिसे त्वचाके बीच रहनेवाले पदार्थ विटामिन 'डी'मे परिणत किये जाते हैं। यही एकमात्र विटामिन है, जिसको हम अपने आप तैयार करते है तथा जो हमारे लिये आवश्यक है। उसी विटामिनके द्वारा शरीर मुख्य खनिज तत्त्वोको व्यवहारमे लाता है—विशेषकर कैल्शियम और फासफोरसको। इनके द्वारा शरीरकी सरचना, हड्डियाँ और दाँत इत्यादिके निर्माण होते है। इन्हींके द्वारा शरीरकी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

वर्षा-ऋतुका जल छोटे-छोटे गड्ढोंमे भरकर गंदा हो जाता है। वही जल एक दिन सूर्यकी किरणोद्वारा वाष्प बनकर जब बादलोके द्वारा पुनः बरसता है तो गङ्गाजलके सदृश निर्मल हो जाता है। इसे विज्ञानमे स्रावित-जल कहते हैं। यह बड़ी-बड़ी ओषधियोके काम आता है।

ऊपरकी बातोको ध्यानमे रखकर हम जितना अधिक समय सूर्यकी किरणमे खुले बदन व्यतीत करेंगे, उतना ही हमारे लिये लाभप्रद होगा। हम कितनी ही अधिकमात्रामे पशुसे उत्पादित 'डी' विटामिन प्राप्त करें, आगसे सूर्यके बदले उष्णता प्राप्त करें और रगके लिये विद्युत्का उपयोग करें, किंतु प्रत्यक्षरूपसे सूर्यकी किरणोमे स्नान करनेसे जो पूर्ण लाभ प्राप्त होता है, वह इन साधनोसे किसी हालतमे प्राप्त नहीं हो सकता। सूर्यकी किरणोसे हमे न केवल रोशनी, उष्णता और स्वास्थ्यप्रद विटामिन 'डी' प्राप्त होते हैं, अपितु उससे टॉनिक भी प्राप्त होता है, जो हमारे शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये क्रियाशील बनाता है।

ज्योतिष और सूर्य

(लेखक—स्वामी श्रीसीतारामजी ज्योतिषाचार्य, एम्० ए०)

ज्योतिष शास्त्रके अनुसार सम्पूर्ण विश्व ही राशि-नक्षत्र और ग्रहोंसे प्रभावित होता है। इसमें सूर्य एक महान् नक्षत्र और ग्रहोंके राजा कहे गये हैं; अतः सूर्यका ज्योतिष शास्त्रमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह शास्त्र आकाशमें ग्रहोंकी दृश्य स्थितिका निर्देशक है—उसके अनुसार सूर्य अन्य ग्रहोंकी भाँति किसी-न-किसी राशिमें दृष्टिगोचर होते हैं; अतएव ज्योतिषमे सूर्यको एक ग्रह माना गया है। पृथ्वीसे देखनेपर विभिन्न समयोंमें सूर्य राशि-चक्रके विभिन्न भागोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। इसको हम सूर्यद्वारा विभिन्न राशियोका भोग कहते हैं। एक राशिपर सूर्य एक मास रहते हैं। इस समयको सौर-मास कहा जाता है। अक्षांश और देशान्तर-भेदसे भिन्न-भिन्न स्थानोंका उदयकाल एवं दिनमान अलग-अलग होता है।

सूर्य आत्माके अधिष्ठाता हैं; अतः जातकका आत्मबल सूर्यसे देखा जाता है। उनके जगत्-पिता होनेके कारण जातकका पितृ-सुख भी जन्म-कुण्डलीमें सूर्यकी स्थितिसे देखते हैं। काल-पुरुषके शीर्ष-भागपर सूर्यका आधिपत्य माना गया है। सूर्य पित्तके अधिपति भी हैं। ये पुरुषग्रह, पूर्व दिशाके स्वामी, अग्नि-तत्त्व-वाले, क्षत्रिय वर्ण तथा ताम्र रंगवाले क्रूर ग्रह हैं। सिंहराशिके स्वामी हैं। मेष सूर्यकी उच्च और तुला नीच राशि है। मेषके दश अंशतक परमोच्च एवं तुलाके दश अंशतक परम नीच माने जाते हैं। सिंह-राशिके बीस अंशतक सूर्यका मूल त्रिकोण तथा उसके बाद तीस अंशतक स्वराशि होती है। चन्द्र, मङ्गल और गुरु सूर्यके मित्र, बुध सम तथा शुक्र-शनि शत्रु होते हैं।

विभिन्न भावगत सूर्यका फल

सूर्य यदि चारों केन्द्रों तथा दोनों त्रिकोणोंमेंसे किसी एक भावके स्वामी होकर त्रिकोण, केन्द्र तथा लाभ स्थानमें स्थित होते हैं, तो वे लाभ देते हैं। द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भावके स्वामी सूर्य हों तो अकारक होते हैं तथा अपनी दशामें हानि करते हैं। इसके अतिरिक्त सिंह और मेष राशिके सूर्य बलवान् तथा तुला राशिके सूर्य दुर्बल माने जाते हैं।

यदि लग्नमें सूर्य बैठे हों तो जातक कठोर, सिरदर्दका रोगी, स्त्री और सहोदरसे कलह करनेवाला होता है, उसके शरीरमें पित्त-वातजन्य पीड़ा और परदेशमें व्यापारसे धन-हानि होती है। सूर्य यदि मेष राशिके हैं, तो विद्या और धनदाता तथा सिंह राशिके हैं तो शरीर-सुखके साथ रतौंधी करते हैं। तुलाके सूर्य शारीरिक कष्टके साथ जातकको राजपत्रित अधिकारी बनाते हैं।

द्वितीय भावमें सिंहके सूर्य लाभदायक तथा तुलाके सूर्य भयङ्कर रूपसे धन हानि करते हैं। अन्य राशियों-के सूर्य भी धन हानि एवं कुटुम्ब हानि करते हैं। तृतीय भावमें सूर्य जातकको पराक्रमी बनाते हैं। कुम्भ राशिके सूर्य भाग्यशाली भी बनाते हैं। चतुर्थ भावमें सूर्य सुखमें बाधा डालते हैं। तुलाके सूर्य बार-बार स्थानान्तर करवाते हैं। सिंहके सूर्य जमीन-जायदाद तथा मातृ-सुख देनेवाले होते हैं।

पञ्चम भावमें सूर्य उदररोग और संतान-कष्ट देते हैं, पर जातकमें सूझ-बूझ अच्छी होती है। षष्ठ भावमें सूर्य शत्रुपर विजय दिलवाते हैं। सप्तम भावमें सूर्य हों तो स्त्रीसे संताप, शरीरमें पीड़ा तथा दुष्टलोगोंद्वारा मनमें

चिन्ता होती है। अष्टम भावस्थ सूर्य नेत्र-विकारप्रद एव धन तथा आत्मबलका अभाव करते हैं।

नवम भावके सूर्य लाभप्रद होते हैं। सिंह तथा मेष राशिके सूर्य विशेष लाभ देनेवाले होते है। तुला राशिके सूर्य स्त्री-कष्ट देते हैं। दशम भावके सूर्य सरकारसे लाभ दिलवाते हैं। यदि मेष राशिके सूर्य दशम भावमे हो तो वह व्यक्ति राजाके समान होता है। तुलाके सूर्य सरकारसे हानि तथा पिताकी हानि कराते हैं। एकादश भावमे सूर्य हो तो राजाओकी कृपासे धनकी प्राप्ति, पुत्रसे संताप तथा वाहनका सुख देते है। द्वादश भावमे सूर्य हो तो बायें नेत्रमे कष्ट तथा हानि करते हैं। इस प्रकार सूर्यदेव अन्य ग्रहोंके साथ भूमण्डलवासी व्यक्तियोको प्रभावित करते रहते हैं।

ज्योतिषशास्त्रमें सूर्यसम्बन्धी योग

सूर्य आत्मा, पिता, पराक्रम, तेज, क्रोध, हिंसक-कार्य तथा शासनके कारक ग्रह हैं। एकादश भावमे विशेषकारक माने जाते हैं।

किसी भी जन्मपत्रीका फलादेश बतलाते समय सूर्यसे सम्बद्ध अप्राङ्कित योगोपर सावधानीपूर्वक अवश्य विचार कर लेना चाहिये।

१—**वेशियोग**—चन्द्रमाके अतिरिक्त कोई अन्य ग्रह सूर्यसे द्वितीय भावमें स्थित हों तो वेशियोग बनता है। द्वितीय भावमें शुभ ग्रह हो तो शुभवेशि तथा पापग्रह हों तो पापवेशि कहलाता है। शुभवेशि योगमें प्रादुर्भूत व्यक्ति सुन्दर, अच्छा वक्ता, नेतृत्वकार्यमें चतुर तथा जनताका श्रद्धाभाजन होता है। वह आर्थिक-दृष्टिसे सम्पन्न होता है, उसके शत्रु पराजित होते है तथा वह जातक प्रसिद्धि प्राप्त करता है। अशुभ वेशियोगमे जन्म लेनेवाला व्यक्ति दुष्टोकी संगति करता है, उसके मस्तिष्कमें कुचक्र घूमते रहते हैं तथा आजीविकाके लिये वह परेशान रहता एवं कुख्यात होता है।

२—**वासीयोग**—चन्द्रमाके अतिरिक्त अन्य ग्रह सूर्यसे बारहवें भावमें स्थित हो तो वासीयोग बनता है। इस योगवाला व्यक्ति अपने कार्योंमें दक्ष होता है। यदि शुभ-ग्रह हो तो जातक प्रसन्नचित्त, निपुण, विद्वान्, गुणी और चतुर होता है। पारिवारिक दृष्टिसे सुखी तथा शत्रुओंका संहार करनेवाला होता है। यदि पापग्रह द्वादश भावमे हो तो जातककी निवासस्थानसे दूर रहनेकी प्रवृत्ति होती है। वह भूलनेवाला, क्रूर भावना रखनेवाला तथा दुःखी होता है।

३—**उभयचरीयोग**—यदि जन्मकुण्डलीमे सूर्यके दोनो ओर (द्वितीय तथा द्वादश भावमे) चन्द्रमाके अतिरिक्त अन्य ग्रह स्थित हो तो उभयचरी-योग बनता है। शुभग्रह हो तो व्यक्ति न्याय करनेवाला तथा प्रत्येक स्थितिको सहन करनेमे समर्थ होता है। यदि पापग्रह हो तो जातक कपटी, झूठा न्याय करनेवाला तथा पराधीन होता है।

४—**भास्करयोग**—यदि सूर्यसे द्वितीय भावमें बुध हों और बुधसे एकादश भावमें चन्द्रमा हों तथा चन्द्रमासे पाँचवे या नवें भावमे गुरु हो तो भास्करयोग बनता है। इस योगका जातक अत्यन्त धनी, अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, बलशाली, कलाप्रेमी तथा सबका प्रिय होता है।

५—**बुधादित्ययोग**—कुण्डलीके किसी भी भावमें सूर्य और बुध एक साथ स्थित हों तो बुधादित्ययोग बनता है। इस योगमे जन्म लेनेवाला व्यक्ति बुद्धिमान्, चतुर, प्रसिद्ध तथा ऐश्वर्य भोगनेवाला होता है।

६—**राजराजेश्वरयोग**—जन्मकुण्डलीमे सूर्य मीन-राशिमें तथा चन्द्रमा कर्म-लग्नमें स्वगृही हों तो राजराजेश्वरयोग बनता है। यह एक प्रबल राजयोग

है। इस योगवाला व्यक्ति सुखी, धनी तथा ऐश्वर्यवान् होता है।

७–**राजभङ्गयोग**—यदि सूर्य तुला-राशिमे दस अंशके अन्तर्गत हों तो राजभङ्ग योग बनता है। इस योग-वाला व्यक्ति दुःखी, उद्विग्न, मानसिक चिन्ताओंसे ग्रस्त तथा दरिद्री होता है। ऐसा व्यक्ति राजसुख नहीं भोगता।

८–**अन्धयोग**—सूर्य और चन्द्रमा—ये दोनों ग्रह बारहवे भावमे हो तो अन्धयोग बनता है। ऐसे योगमे उत्पन्न व्यक्ति अन्धा हो सकता है।

९–**उन्मादयोग**—यदि लग्नमे सूर्य तथा सप्तम भावमें मङ्गल हो तो उन्मादयोग बनता है। ऐसा व्यक्ति गप्पी तथा व्यर्थका वार्तालाप करनेवाला—बावली होता है।

१०–यदि पञ्चम भावमे कुम्भ-राशिके सूर्य हो तो वे जातकके बडे भाईका नाश करते हैं।

११–तृतीय भावमें स्वगृही सूर्यके साथ यदि शुक्र स्थित हो तथा उसपर शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो छोटे भाई तथा पिताकी हानि होती है।

१२–यदि सूर्य तथा चन्द्रमा नवम भावमे स्थित हो तो पिताकी मृत्यु जलमे होनेकी संभावना रहती है।

१३–जन्म वृष लग्नका हो तथा सूर्य निर्बल होकर राहु एवं शनिसे दृष्ट अथवा युक्त हों तो व्यक्तिका कई वार स्थानान्तरण होता है तथा राजकीय सेवामे कई उत्थान-पतन देखने पड़ते हैं।

१४–यदि पञ्चम भावमें तुला राशिके सूर्य हों तो जातक हड्डियोंके रोगसे पीड़ित रहता है तथा उसे जीवनमें कई वार चोट लगती है।

१५–यदि मिथुन लग्नमे अकेले केतु हों तथा सूर्य चतुर्थ, सप्तम या दशम भावमे हो तो व्यक्ति पराक्रमी एवं तेजस्वी होता है।

१६–द्वितीय भावमे कर्क राशिके सूर्य और चन्द्रमा मङ्गलसे दृष्ट हो तो दृष्टिनाशक योग बनता है।

१७–मिथुन लग्नका जन्म हो और सूर्य दशम या एकादश भावमे हो तो व्यक्ति उच्च महत्त्वाकाङ्क्षी तथा श्रेष्ठतम लोगोंसे सम्पर्क रखनेवाला होता है।

१८–कर्क लग्नका जन्म हो और सूर्य दशम भावमें स्वगृही होकर मङ्गलके साथ स्थित हो तो जातकका राज्यपक्ष बड़ा प्रबल होता है। वह नृपतुल्य होता है।

१९–दशम भावमें मेष राशिके उच्च सूर्य जातकको राजाके समान प्रभावशाली बनाते हैं।

२०–यदि लग्नमें स्वगृही सूर्य हो तो व्यक्ति स्वाभिमानी, प्रशासनमे कुशल तथा राज्यमें उच्च पदका अधिकारी होता है।

२१–यदि तुला राशिके सूर्य लग्नमे हो तो व्यक्ति राजासे सम्मान पानेवाला अधिकारी होता है।

२२–वृश्चिक लग्नका जन्म हो, सूर्य छठे या दशम भावमे हो तो जातकका पिता विख्यात कीर्तिमान् होता है।

२३–धनुलग्नका जन्म हो, सूर्य दशम भावमें बृहस्पतिके साथ हो तो व्यक्ति श्रेष्ठ प्रशासक होता है।

२४–यदि सप्तम भावमे स्वगृही सूर्य हो तो उस पुरुषकी स्त्री साहसी, लड़ाकू तथा दृढ़ विचारोंवाली होती है।

२५–यदि नीच (तुला) राशिके सूर्य नवम भावमें हों तो उस पुरुषकी पत्नी अल्पायु होती है।

२६–यदि तृतीय भावमे मेष राशिके सूर्य हों तो व्यक्ति निश्चय ही उच्च विचारोंवाला तथा किसी बड़े पदका अधिकारी होता है।

२७–यदि द्वितीय भावमे उच्च राशिके सूर्य हो तो जातकके मामा यशस्वी, धनी तथा कुलमें श्रेष्ठ होते हैं।

२८–यदि मेष लग्नका जन्म हो तथा षष्ठेशसे युक्त सूर्य छठे या आठवे भावमे हो तो जातक राज रोगवाला होता है।

२९—यदि मेष जन्म लग्न हो एवं सूर्य तथा शुक्र लग्न या सप्तम भावमें हो तो जातककी स्त्री वन्ध्या होती है।

३०—लग्नसे दशम भावमें रहनेवाले सूर्य पितासे धन दिलवाते हैं।

३१—यदि मेष लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा एक साथ बैठे हो तो राजयोग बनाते हैं।

३२—यदि मेष लग्नमें सूर्य हों तथा एकादश भावमें शनि बैठे हो तो व्यक्तिके पैरोंमें चोट लगती है।

३३—यदि मेष लग्नमें शनि तथा छठे भावमें सूर्य हो तो जातक आजन्म रोगी बना रहता है।

३४—दशम भावके मेषलग्नमें स्थित सूर्य जातकको भाषणकी कलामें निपुण बनाते हैं।

३५—यदि जन्म-कुण्डलीमें सूर्य वृश्चिकके तथा शुक्र सिंहके हो तो उस व्यक्तिको ससुरालसे धन प्राप्त होता है।

३६—यदि चतुर्थ भावमें वृश्चिक राशि हो तथा उसमें सूर्य और शनि एक साथ बैठे हों तो जातकको वाहन-सुख प्राप्त होता है।

३७—यदि सूर्य लग्नमें स्वगृहीके हों तथा सप्तम भावमें मङ्गल हो तो जातकको उन्मादरोग होता है।

३८—वृश्चिक लग्नवाली कुण्डलीके तृतीय भावमें यदि सूर्य हो, लग्नमें स्थित शनिकी दृष्टि पड़ती हो तो जातकको हृदयरोग होता है।

३९—यदि लाभस्थानमें सूर्य नीच राशिके हो और उनके दोनों ओर कोई ग्रह न हो तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४०—यदि पञ्चम भावमें उच्च राशिस्थ सूर्यके साथ बुध बैठे हो तो जातक धनवान् होता है।

४१—यदि धनु लग्न हो और उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा साथ बैठे हो तो दारिद्र्ययोग बनता है।

४२—कुम्भ राशिके सूर्य लग्नमें हों तो व्यक्तिको दादका रोग होता है।

४३—यदि दशम भावमें कुम्भ लग्नके सूर्य हों तथा चतुर्थ भावमें मङ्गल हो तो जातककी मृत्यु सवारीसे गिरनेके कारण होती है।

ज्योतिषमें सूर्यका पारिभाषिक संक्षिप्त विवरण

सूर्य ग्रहराज हैं। सदा 'मार्गी (अनुक्रम—सीधी गतिसे चलनेवाले) हैं; वे कभी 'वक्री' नहीं होते। ये सिंह राशिके स्वामी हैं। इनका 'मूलत्रिकोण' भी सिंह राशि ही है। सिंह (चक्रके ५वें स्थान) में 'स्वगृही' कहे जाते हैं। इनकी उच्च राशि मेष और नीच तुला है। ये एक राशिपर १३ मास रहते हैं। सूर्य क्षत्रिय वर्ण, सत्त्वगुणी, लाल-कृष्णवर्णके एवं स्थिर स्वभावके गोल (चक्राकार) पुरुषग्रह हैं। ये राजविद्याके अधिष्ठाता, जगत्के पिता, आत्माके अधिकारी माने गये हैं। इनका रत्न माणिक्य और धातु ताँबा है।

सूर्य अन्य ग्रहोंकी भाँति अपने स्थानसे सातवेंमें स्थित ग्रहोंको पूर्णतः देखते हैं; किंतु तृतीय और दशममें स्थित ग्रहको एकपाद, पञ्चम एवं नवममें स्थितको द्विपाद, चतुर्थ-अष्टममें स्थित ग्रहको त्रिपाद-दृष्टिसे देखते हैं। ये उत्तरायणमें बलवत्तर होते हैं। इनके पुत्र शनि सब ग्रहोंसे निर्बल माने गये हैं; पर वे सूर्य-बलको नष्ट करनेमें समर्थ होते हैं। सूर्यके चन्द्र मङ्गल बृहस्पति मित्र, बुध सम और शुक्र-शनि शत्रु कहलाते हैं। सूर्यके मारक (प्रभावको नष्ट करनेवाले) शनि और राहु हैं। परंतु सूर्य अन्य सब ग्रहोंके दोषोंका शमन करते हैं। सूर्यकी राशिगत और भावगत स्थितिसे फलका विचार होता है। भाव लग्नसे चलते हैं जो संक्षेपमें तन, धन इत्यादि नामसे बारह हैं।

जन्माङ्गपर सूर्यका प्रभाव

(लेखक—ज्योतिषाचार्य श्रीवलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

ज्योतिष-विज्ञानके फलित-विभागमे 'जातक' ग्रन्थोका विशेष महत्त्व है । जातकोका विशेष महत्त्व इसलिये है कि उनसे मानव अपने भविष्यका चिन्तन करता है । वह अपने सुखद भविष्यकी कल्पनासे प्रसन्न हो जाता है और दुःखद भविष्यकी वातको समझकर उपायमें लग जाता है । जातकको फलित ज्योतिषका यह जातक-अंश फल वतलाकर सावधान कर देता है । शिशु जव धरतीपर आता है, उस समय कौन लग्न किस अंशपर है, इसीको आधार मानकर जन्माङ्ग वनाया जाता है और लग्नका विचार-कर सूर्यादि ग्रहोंकी स्थिति स्पष्ट की जाती है । जन्माङ्ग-चक्रमें ग्रहोको स्थापित करके फलका विचार किया जाता है । प्रस्तुत प्रकरणमें ग्रहाधिपति सूर्यदेवका जन्माङ्गके ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? इसपर संक्षिप्त विचार किया जा रहा है । यह तो सर्वविदित है कि सूर्य ग्रहोंके अधिपति हैं । ग्रहोंके राजा होनेके नाते सूर्य समस्त राशियोंपर अपना विशेष प्रभाव दिखलाते हैं; किंतु सिंहराशिपर सूर्यका विशेष प्रभाव पड़ता है ।

जन्माङ्गमे वारह भाव या स्थान होते हैं । तन, धन, सहज, सुख, पुत्र, शत्रु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय—ये वारह भाव हैं । इन वारह भावोंसे मानवके समस्त जीवन-प्रसङ्गोका विचार होता है । तन-धन नाम केवल सकेतमात्र हैं । इतना ध्यानमे रहे कि केवल एक ही भावके आधारपर सम्पूर्ण विचार नहीं होते । इन सव वातोका विचार करनेके लिये ग्रहोंके स्थान-वल, उनका दृष्टि-वल, आपसमे अन्य ग्रहोकी मित्रता और शत्रुता, समता, एक दूसरेसे अन्यका सम्बन्ध देखकर ही फल-विचार होता है । सूर्य कई कारणोंसे अशुभ ग्रह माने गये हैं । सूर्य सर्वदा सभी स्थानों या भावोंमें अपना अशुभ फल ही नहीं देते, उत्तम फल भी देते हैं । सक्षेपमे वारह भावोंमें सूर्यका सामान्य प्रभाव निम्न होता है ।

लग्न—सूर्य यदि लग्नमें पड़े हों तो वालक आकारमें लम्वा, कर्कश-स्वभाव, गर्म प्रकृतिका होता है और प्रायः वात, पित्त, कफसे पीड़ित रहता है । ऐसे वालकको अपनी वाल्यावस्थामें अनेक पीड़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं तथा उसकी आँखोंमें भी कष्टकी आशङ्का वनी रहती है । स्वभावसे जातक वीर, क्षमाशील, कुशाग्र-वुद्धि, उदार, साहसी, आत्मसम्मानी होता है । वह क्रोध तो करता ही है, कभी-कभी क्रोधावेशमे सनकीकी भांति आचरण करने लगता है । उसके सिरमें चोट लगनेकी भी सम्भावना रहती है । हॉ, ये अनिष्ट फल विशेषतया तव घटित होते हैं, जव सूर्यदेव किसी दुःखद ग्रहके साथ हों या शत्रु-ग्रहके साथ हो अथवा शत्रुके गृहमें हों; तव सभी अनिष्ट फल घटते हैं अन्यथा अनिष्ट फल विलीन भी हो जाते हैं । यदि सूर्यभगवान् मेष राशिगत होकर लग्नमें हों तो जातकको नेत्ररोग अवश्य होता है; किंतु धनकी कमी नहीं रहती । सूर्य यदि वलवान् ग्रहसे देखे जाते हों तो जातक विद्वान् भी होता है । यदि सूर्य तुला राशिगत हो तो वह वालक विशेष नेत्ररोगसे प्रभावित होता है ।

द्वितीय भाव—द्वितीय भावमे सूर्यके रहनेसे वालक अपने जीवनमे मित्र-विरोधी वनता है, उसे वाहनका सुख नहीं मिलता है । ऐसे जातकको राजाकी ओरसे दण्ड मिलता है । नेत्रकष्ट और शरीरमे विकार होता है । शिक्षामें रुकावट होती है । जातक हठी और चिडचिडे स्वभावका होता है । पुत्र-सुख भी मिलता है । नेत्र-रोग भी होता है ।

तृतीय भाव—तृतीय भावमे रहकर सूर्य अपना उत्तम प्रभाव दिखलाते हैं । जातक पराक्रमी, कुशाग्रवुद्धि,

*

प्रियभाषी होता है। धन-धान्य एवं नौकरोंसे युक्त होकर सम्मानित होता है। उसके सगे भाइयोंकी संख्या कम होती है। सूर्य यदि पापग्रहोंसे युक्त हो तो विष और अग्निसे भय तथा चर्मरोगकी सम्भावना होती है। सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो या पापग्रहसे दृष्ट हो तो भाईकी मृत्यु होती है, कोई एक बहन विधवा भी हो सकती है। कभी-कभी भाई या बहनकी मृत्यु विष या सर्पदंशसे होती है। हाँ, ऐसा जातक धनवान् होता है। ग्रहोंके अन्य प्रभावसे अग्रजकी मृत्यु अल्प समयमें हो जाती है।

चतुर्थ भाव—चतुर्थ भावमें सूर्यके रहनेपर जातक मानसिक चिन्तायुक्त होता है। जातकका शरीर क्षीण या विकृत अवयवका होता है। जातक आत्मीय जनोंसे द्वेष रखता है, घृणा करता है और घमण्डी तथा कपटी होता है। उसकी ख्याति भी बढ़ती है। उसको कई स्त्रियाँ होती हैं। यह सब होते हुए भी ऐसा जातक धन-सुखसे रहित होता है। वह पिताकी सम्पत्तिसे वञ्चित होता है। यदि चतुर्थ स्थानका स्वामी बली ग्रहोंसे युक्त हों या लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम किसी भी केन्द्रस्थानमें हो तो जातकको वाहनादि सुखकी प्राप्ति होती है। यदि चतुर्थका स्वामी केन्द्रके अतिरिक्त त्रिकोणगत भाव अर्थात् तृतीय, पञ्चम अथवा नवमगत हो तो भी जातकको वाहनादि सुखकी प्राप्ति होती है।

पञ्चम भाव—यदि सूर्य पञ्चम स्थानगत हो तो जातक अल्प संतानोंवाला होता है। उसका शरीर मोटा होता है, वह शिव या शक्तिका पूजक होता है। जातक सत्क्रियाशील रहता है, किंतु उसका चित्त उद्भ्रान्त रहता है। ऐसा जातक सुख एवं सुतसे रहित भी होता है। वह वातरोगसे पीडित होता है। सूर्य यदि स्थिर राशिगत हो, अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भराशिगत हों तो पञ्चम संतानकी मृत्यु अल्पकालमें हो जाती है। चर राशिगत सूर्य होनेसे अर्थात् मेष, कर्क, तुला, मकर राशिगत सूर्यके होनेसे जातककी संतानका नाश नहीं होता। ऐसे जातककी स्त्रीका कभी-कभी गर्भपात भी हो जाता है। पञ्चम स्थानका स्वामी यदि बलवान् ग्रहोंके साथ हो तो जातकको पुत्रका सुख मिलता है, यदि सूर्य पापग्रहोंके साथ हो या उनपर पापग्रहकी दृष्टि पड़ती हो तो उसको कन्याएँ अधिक होतीं हैं। पञ्चमस्थ सूर्यपर यदि शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातकको पुत्र-सुख मिलता है।

षष्ठ भाव—षष्ठ भावगत सूर्य होनेसे जातकको अत्यन्त सुखकी प्राप्ति होती है। जातक बलवान्, शत्रुपर प्रभाव दिखलानेवाला, विद्वान्, गुणवान् और तेजस्वी होता है। वह राजपरिवारसे सम्मानित होता है और सुन्दर वाहनोंसे युक्त होता है। षष्ठ स्थानगत सूर्य यदि बलवान् ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक नीरोग होता है। छठे स्थानका स्वामी यदि बलहीन होता है तो शत्रुका नाश होता है।

सप्तम भाव—सप्तम स्थानमें सूर्यके रहनेसे जातकका शरीर दुबला तथा मझोला होता है। वह मनसे चञ्चल, पापकर्मलीन और भययुक्त होता है, स्वस्त्रीविरोधी और पर-स्त्रीप्रेमी होता है। दूसरोंके घर भोजन करनेमें वह दक्ष होता है। एक स्त्रीसे अधिक सम्बन्ध होते हुए दूसरीसे भी सम्बन्ध बनाये रहता है। वह राज्य-सरकारके कोपसे कष्ट पाता है। पर सिंह राशिगत सूर्य यदि बली हो तो जातकको एक ही स्त्री होती है।

अष्टम भाव—सूर्य यदि अष्टम भावगत हों तो जातक बुद्धि-विवेकहीन, शरीरका दुबला और अल्प संतानवाला होता है। उसको नेत्ररोग भी होता है। उसे धनकी कमी रहती है तथा शत्रु बहुत सताते हैं। उसके शिरोभागमें दर्दकी सम्भावना रहती है। यदि सूर्य बली ग्रहोंके साथ हों तो उसे कृषिकर्ममें सफलता

मिलती है और यदि उच्चका हो अर्थात् मेष राशिगत हों तो जातक दीर्घजीवी होता है।

नवमभाव—सूर्य यदि नवम भावगत हो तो जातक मित्र और पुत्रसे सुखी होता है। वह मातृकुलका विरोधी और पिताका भी विरोधी होता है; किंतु देवोंकी पूजा करता है। जातक अच्छी सूझ-बूझका उदार व्यक्ति होता है; किंतु पैतृक सम्पत्तिका त्याग करता है। ऐसा जातक कल्ही तथा मितव्ययी होता है। उसकी कृषि उत्तम होती है। जातकके भाई नहीं होते हैं। यदि भाई हो तो जातकसे उनका सम्बन्ध नहीं रहता। सूर्य यदि उच्च अर्थात् मेष राशिगत हो अथवा सिंह राशिगत हो तो उसका पिता दीर्घायु होता है। उत्तम ग्रहोंके सहयोगसे जातक देवताओं और गुरुजनोंका पूजक होता है। सूर्यके तुला राशिगत होनेपर जातक भाग्यहीन और अधार्मिक होता है तथा यदि पापराशिगत हों या शत्रुगृही हों तो पिताके लिये अनिष्टकर होते हैं। शुभग्रहोंसे दृष्ट सूर्य पिताको आनन्द देते हैं।

दशमभाव—दशम भावगत सूर्यके होनेसे जातक बुद्धिमान्, धन-उपार्जनमें चतुर, साहसी और संगीतप्रेमी होता है, वह साधुजनोंसे प्रेम करता है, राजसेवामें तत्पर एवं अतिसाहसी होता है। वह पुत्रवान् और वाहन-सुखसे सम्पन्न होता है। स्वस्थ और शूरवीर भी होता है। सूर्य यदि मेषराशिके हों या सिंहराशिके हों तो यशस्वी भी होता है। ऐसा जातक धार्मिक स्थानके निर्माणसे यश प्राप्त करता है। सूर्य यदि पाप ग्रहोंसे युक्त हों तो जातक आचरणभ्रष्ट हो जाता है।

एकादशभाव—सूर्य एकादश भावगत हों तो जातक यशस्वी, मनस्वी, नीरोग, ज्ञानी और संगीतविद्यामें निपुण एवं रूपवान् तथा धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। वह राज्यानुगृहीत होता है। ऐसा जातक सेवकजनोंपर प्रीति करनेवाला होता है। यदि सूर्य मेष या सिंहराशिगत हों तो जातकको राजा आदिसे धनकी प्राप्ति होती है। ऐसे जातकको सदुपायसे भी धन मिलता है।

द्वादशभाव—द्वादश भावगत सूर्यके होनेसे जातक पिताविरोधी, अतिव्ययी, अस्थिरबुद्धि, पापाचरणमें लीन, धनकी हानि करनेवाला, मनका मलीन, नेत्ररोगी और दरिद्र भी होता है। ऐसे जातकसे लोकविरोधी कार्य हो जाते हैं। वह दरिद्रताके कारण भी कष्ट पा जाता है। यदि बारहवें स्थानके स्वामी कोई शुभ ग्रह हों तो वह जातक किसी देवताकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है, पर सूर्यके साथ कोई दुष्ट ग्रह हो तो वह जातक सदा अनैतिक कामोंमें अपना धन व्यय करता है। यदि सूर्यके साथ षष्ठ स्थानके स्वामी बैठे हों तो उस जातकको कुष्ठ-रोगसे कष्ट होता है। इस प्रकार सूर्यके भावगत फलको जानना चाहिये।

जन्माङ्गमें विभिन्न राशिगत सूर्यका फल

तन, धन, सहज आदि विभिन्न भावोंमें सूर्यके रहनेका फल जाननेके बाद विभिन्न राशिगत सूर्यका संक्षिप्त फल निम्न प्रकारसे है—

मेष—मेषराशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसी, भ्रमणशील और चतुर तथा धनी परिवारका सदस्य, किंतु रक्त एवं पित्तके विकारोंसे पीडित होता है। सूर्य यदि अपनी उच्च राशि मेषमें परमोच्च अंशतक हो तो जातक परम धनी होता है। सूर्य मेषमें दश अंशतक परमोच्च माने जाते हैं। सूर्यके प्रभावसे जातक अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाला होता है।

वृष—वृषराशिगत सूर्यके होनेसे जातक उत्तम वस्त्र धारण करनेवाला एवं सुगन्धित पदार्थोंको धारण करनेवाला होता है। ऐसे जातकके पास चतुष्पदोंका सुख अधिक रहता है। ऐसे जातकको स्त्रियोंसे शत्रुता

होती है। वह समयानुसार योग्य कार्य सम्पादित करता है। ऐसे जातकको जलसे भयकी सम्भावना रहती है।

मिथुन—मिथुन राशिगत सूर्यके प्रभावसे जातक गणितशास्त्रका ज्ञाता होता है। विद्वान्, धनी एवं अपने वशमें प्रख्यात होता है। ऐसा जातक नीतिमान्, विनयी और शीलवान् होता है। जातक सूर्यके प्रभावसे मधुरभाषी, वक्ता एवं धन तथा विद्याके उपार्जनमें अग्रणी होता है।

कर्क—कर्कराशिगत सूर्यके कारण जातक क्रूर स्वभाववाला, निर्दयी, दरिद्र, किंतु परोपकारी भी होता है। ऐसे जातकको पितासे विरोध रहता है।

सिंह—सिंह राशिगत सूर्य अपने राशिमें रहनेके कारण जातकको विशेष प्रभावित करते हैं। ऐसा जातक चतुर, कलाविद्, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और पराक्रमी होता है तथा कीर्ति प्राप्त करता है। वह प्राकृतिक पदार्थोंसे प्रेम करता है।

कन्या—कन्याराशिगत सूर्यके होनेसे जातक चित्रकला, काव्य एवं गणित आदि विद्याओंमें रुचि रखनेवाला होता है। ऐसा जातक संगीतविद्यासे भी प्रेम करता है और राजासे सम्मानित होता है। यह सब होते हुए भी ऐसा जातक यदि पुरुष है तो उसकी मुखाकृति स्त्रीके समान और यदि स्त्री है तो पुरुषाकृतिकी होती है।

तुला—तुला राशिगत सूर्यके होनेपर जातक साहसका परिचय देता है, किंतु राजपरिवारसे सताया जाता है। ऐसा जातक विरोधी स्वभावका होता है और पापकर्ममें निरत रहता है। कलहप्रिय होते हुए भी ऐसा जातक परोपकारी होता है। वह धनहीन होनेपर भी मद्यपान करनेमें प्रवृत्त होता है।

वृश्चिक—वृश्चिक राशिगत होनेपर सूर्यका प्रभाव निम्न प्रकारसे होता है। ऐसा जातक कलहप्रिय होते हुए भी आदरका पात्र होता है। माता-पिताका विरोधी भी रहता है। कृपण स्वभावके कारण अपमानित भी होता है। अस्त्र-शस्त्रका चालक होता तथा साहसी होता है। वह क्रूरकर्मा भी होता है। ऐसे जातकको विष और शस्त्रसे भय रहता है। वह विष, शस्त्र आदिसे धनोपार्जन करनेवाला होता है।

धनु—धनु राशिगत सूर्यके कारण जातक संतोषी, बुद्धिमान्, धनवान्, तीक्ष्णस्वभाव, मित्रोंसे धन प्राप्त करनेवाला और मित्रोंका हित करनेवाला भी होता है। ऐसे जातकका सम्मान प्राय. लोग करते हैं। ऐसे जातकको शिल्पका भी ज्ञान होता है।

मकर—मकर राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है तथा अपमानित होता है। अपने वशवालोंसे विरोध करता है। वह अल्प धनके कारण भी दुःख पाता है। यह सब होते हुए ऐसा जातक कर्मशील होता है; भ्रमण करता है। यदा-कदा ऐसे जातकका भाग्य दूसरेके अधीन हो जाता है।

कुम्भ—कुम्भ राशिगत सूर्यके कारण जातक नीच कर्ममें निरत रहता है और मलिन वेष धारण करता है। जातकको अपने स्वभावसे सुख नहीं मिल पाता।

मीन—मीन राशिगत सूर्यके कारण जातक कृषि और व्यापारद्वारा धनका उपार्जन करता है। अपने स्वजनोंसे ही दुःख पाता है। धन और पुत्रका भी सुख उसे कम मिल पाता है। ऐसे जातकको जलसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंसे प्रचुर धन मिल जाता है।

विशेष—सूर्यदेवसे जन्माङ्ग पर विचार करते समय सूर्यकी निम्न स्थितियोंको ध्यानमें रखना पड़ेगा।

सूर्य सिंह राशिके स्वामी होते हैं। वे मेष राशिमें दश अंशतक परम उच्च और तुला राशिमें दश अंशतक परम नीच माने जाते हैं। सूर्य ग्रह सिंहके बीस अंशतक मूल त्रिकोणके माने जाते हैं,

वे शेष अंशमे 'स्वगृही' माने जाते हैं। वे काल-पुरुषके आत्मा माने गये हैं। यह सब होते हुए इन्हें पापग्रह ही कहा गया है। पापग्रह केवल फला-देशके लिये माना गया है। सूर्य पुरुषग्रह हैं। सूर्य पूर्व दिशाके स्वामी और पित्तकारक भी माने गये हैं। फलादेशमें आत्मा, स्वभाव और आरोग्यता आदिके बोधक हैं। ये पितृकारक ग्रह माने गये हैं। सूर्यका प्रभाव राज्य, देवालय आदिपर विशेष पड़ता है। जातकके हृदय, स्नायु, मेरुदण्ड आदिपर भी इनका प्रभाव पड़ता है। सातवे स्थानपर सूर्यकी पूर्ण दृष्टि पड़ती है। इन बातोंपर ध्यान देकर ही सूर्यसे फल-विचार किया जाता है।

विभिन्न भावोंमें सूर्य-स्थितिके फल

(लेखक—पं० श्रीकामेश्वरजी उपाध्याय, शास्त्री)

सूर्य सौर-मण्डलके प्रधान ग्रह हैं। इनकी दिव्य रश्मियाँ सभी जीव-जन्तुओंको प्रभावित करती हैं। सूर्य ऊर्जाके अक्षय कोश एवं सत्यके प्रतीक हैं—शक्तिकी अमरनिधि हैं। इनकी आकृति, प्रकृति और ऊर्जा-शक्ति सभी प्राणियोंपर अन्य ग्रहोंकी अपेक्षा अत्यधिक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसीलिये फलित-ज्योतिषमे सूर्यका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

फलित-ज्योतिषमे द्वादश भावोंकी कल्पना की गयी है। ये द्वादश भाव ग्रहोंके गृह भी कहे जाते हैं। इन द्वादश स्थानोंमे राशियाँ स्थित रहती हैं। इन भावों और ग्रह-संयोगके द्वारा जातकके जन्मजात वाता-वरणोत्पन्न कर्म एवं कर्तव्यपथका विचार किया जाता है। ये स्थान भविष्यके निर्देशक हैं। प्रवेशका कार्यक्रम इन्हीं भावोंद्वारा सम्पादित किया जाता है—चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। ये भाव क्रमसे निम्नलिखित हैं—

देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मृति-
भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां
तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः॥
(—जातकालङ्कार १।५)

इसीको प्रकारान्तरसे लिखते हैं—
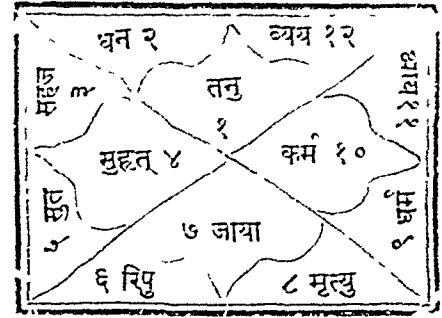
इन द्वादश भावोंमे सूर्यकी सत्ता विभिन्न परिस्थितियों-की जन्मदात्री है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि द्वादश भावोंमे सूर्यका विद्यमान होना भिन्न-भिन्न प्रकारसे लोगोंको प्रभावित कर सकता है। इन द्वादश भावोंका क्रमसे अध्ययन कर प्राचीन आचार्यगण विभिन्न परिणामोंतक पहुँचे हैं, जो अत्यधिक सीमातक सत्य उतरते हैं। उदाहरणार्थ द्वादश भावोंका फलकथन आवश्यक है।

(१) जिस जातकके तनुभावमे सूर्य स्थित हो, वह समुन्नतकाय, आलसी, क्रोधी, उग्र स्वभाववाला, पर्यटक, कामी, नेत्ररोगसे युक्त एवं रुक्षकाय होता है। यथा—

तनुस्थो रविस्तुङ्गयष्टिं विधत्ते
मनः संतपेद्दारदायादवर्गात्।

वपुः पीड्यते वातपित्तेन नित्यं
स वै पर्यटन् ह्रासवृद्धिं प्रयाति॥
(—चमत्कारचिन्तामणि १)

लग्नेऽर्केऽल्पकचः क्रियालसतनुः क्रोधी प्रचण्डोन्नतः
कामी लोचनरुक्सुकर्कशतनुः शूरः क्षमी निर्घृणः।
(—जातकाभरणम्, सूर्यभावाध्याय १)

(२) धनभावमे स्थित सूर्य जातकको भाग्यशाली होनेकी सूचना देते है। धनभावमें स्थित सूर्यकी मैत्री धनेशसे हो तो जातक निश्चय ही धनवान् होगा। उस जातकको पशु-सुख भी उत्तम रहेगा। पुत्र-पौत्रादिके भी सुख उसे अनायास प्राप्त होते रहेंगे। कतिपय आचार्योंके अनुसार वह जातक वाहनहीन रहेगा—

धने यस्य भानुः स भाग्याधिकः स्या-
च्चतुष्पात्सुखं सद्व्यये स्वं च याति।
कुटुम्बे कलिर्जायया जायतेऽपि
क्रिया निष्फला याति लाभस्य हेतोः॥
(—चमत्कारचिन्तामणि २। २)

(३) सहजभावमे स्थित अर्क सभी प्रकारके सुखोंके दाता होते हैं—

प्रियंवदः स्याद्धनवाहनाढ्यः
सुकर्मचित्तोऽनुचरान्वितश्च।
मितानुजः स्यान्मनुजो बलीयान्
दिनाधिनाथे सहजेऽधिसंस्थे॥
(—जातकाभरणम्)

अन्य आचार्योंके अनुसार वह (जातक) अतीव शौर्यशाली एव यशस्वी होता है।

(४) मित्रभावमे स्थित दिनकर जातकके मैत्रीको भङ्ग करनेवाले होते है। जातक स्थायी-रूपमे एक स्थानपर स्थित नही रह सकता—

तुरीये दिनेशेऽतिशोभाधिकारी
जनः सँल्लभेद्विग्रहं बन्धुतोऽपि।
प्रवासी विपक्षाहवे मानभङ्गं
कदाचिन्न शान्तं भवेत्तस्य चेतः॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(५) सुतभावमे विद्यमान सूर्य मनुष्यको बुद्धिमान् एवं धनिक बनाते हैं। श्रीनारायण दैवज्ञके अनुसार जिसके पञ्चम भावमे सूर्य होते हैं, वह जातक हृदय-रोगसे मरता है—

सुतस्थानगे पूर्वजापत्यतापी
कुशाग्रा मतिर्भास्करे मन्त्रविद्या।
रतिर्वञ्चनो संचकोऽपि प्रमादी
मृतिः क्रोडरोगादिजा भावनीया॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

(६) जिसके रिपु (छठे) भावमे दिवाकर रहते हैं वह व्यक्ति रिपुध्वंसक होता है—प्रायः सभी आचार्योंकी ऐसी सम्मति है। षष्ठ भाव (रिपुभाव)में स्थित सूर्य उत्तम जीविकाप्रदायक भी होते हैं—

शश्वत्सौख्येनान्वितः शत्रुहंता
सत्त्वोपेतश्चारुयानो महौजाः।
पृथ्वीभर्तुः स्यादमात्यो हि मर्त्यः
शत्रुक्षेत्रे मित्रसंस्था यदि स्यात्॥
(—जातकाभरणम्)

(७) जिस जातकके जाया (सप्तम) भावमें सूर्य होते हैं वह व्यक्ति व्याधियोसे सयुक्त, चिडचिडे स्वभावका होता है। अनेक दैवज्ञोंके अनुसार सप्तमस्थ सूर्य स्त्रीक्लेश-कारक भी होते हैं—

द्युनाथो यदा द्यूनजातो नरस्य
प्रियातापनं पिण्डपीडा च चिन्ता।
भवेत्तुच्छलब्धिः क्रये विक्रयेऽपि
प्रतिस्पर्धया नैति निद्रां कदाचित्॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

यदि किसी स्त्रीके कुण्डलीमे सूर्य सप्तमस्थ हो तो वह कुलटा एव परपतिगामिनी होती है।

(८) मृत्युभावमे स्थित सूर्य जातकको अनेक प्रकारके विघ्न-बाधाओसे क्लान्त रखते हैं। अष्टम भावमे स्थित सूर्य विदेशीय स्त्री एव शराबसे सम्बन्धकारक भी होते हैं। जो कुछ भी हो अष्टमस्थ सूर्य हानिकारक एवं तुच्छ फलदायक ही होते हैं।

(९) धर्मस्थानमें स्थित सूर्य जातकको कुशाग्रबुद्धि बनाते हैं, किंतु व्यक्ति दुराग्रही, कुतार्किक और नास्तिक भी हो सकता है। नवमस्थ सूर्य जातकके अन्तःपुरमें कलहके उद्रेककर्ता भी होते हैं।

(१०) दशमभावमें स्थित सूर्य जातकको उच्च आश्रय प्रदान करते हैं। पारिवारिक असुविधा भी यदा-कदा प्राप्त हो सकती है, लेकिन जातक लक्ष्मीसे युक्त होता है। दशम भावस्थ सूर्य आभूषणादिके संग्रहण-कर्त्ता भी होते हैं।

(११) आय या एकादश स्थानमें विद्यमान सूर्य जातकको कलाप्रेमी एवं संगीतज्ञ बनाते हैं। ये सूर्य व्यक्तिको सभी प्रकारका सौख्य एवं श्री प्रदान करते हैं। अन्य आचार्यगणके अनुसार एकादश भावस्थ सूर्य पुत्रके लिये क्लेशकारक भी होते हैं।

गीतप्रीतिं चारुकर्मप्रवृत्तिं
चञ्चत्कीर्तिं वित्तपूर्णं [illegible]
भूपात् प्राप्तिं नित्यमेव प्रकुर्यात्
प्राप्तिस्थाने भानुमान् मानवानाम् ॥
(—जातकाभरणम्)

जिस कन्याके एकादशभावमें सूर्य स्थित हैं, वह सद्गुणयुक्ता होती है—

भूपप्रिया भवस्थेऽर्के सदा लाभसुखान्विता।
गुणाढ्या रूपशीलाढ्या धनपुत्रसमन्विता ॥
(—स्त्रीजातकम्)

(१२) सभी दैवज्ञ एकमतसे उद्घोषित करते हैं—द्वादश भावस्थ सूर्य नेत्ररुजकारक होते हैं तथा जातक कामातुर भी होता है। कतिपय आचार्योंके कथनानुसार व्ययस्थ सूर्य धनदायक होते हैं, लेकिन यात्राकालमें असम्भावित क्षति भी हो सकती है; यथा—

रविर्द्वादशे नेत्रदोषं करोति
विपक्षाहवे जायतेऽसौ जयश्रीः।
स्थितिर्लङ्घ्यया हीयते देहदुःखं
पितृव्यापदो हानिरध्वप्रदेशे ॥
(—चमत्कारचिन्तामणि)

इस प्रकारसे श्रीसूर्यदेव विभिन्न भावोंमें रहकर जातकके लिये विभिन्न स्थितियोंको समुत्पन्न करते हैं। निदान, ग्रहपति सूर्य सर्वःपरिणामदायक, सभी दैवज्ञोंके ध्येय, नमस्य एवं प्रणम्य हैं। गगनाङ्गनमें चमकते इन दिव्य पुरुषको हमारे शत-शत नमन हैं।

सूर्यादि ग्रहोंका प्रभाव

दैवज्ञों और वृद्धोंका अनुभव है कि ग्रह [illegible] पर बैठा देते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्नकर सत्ताच्युत भी करा देते हैं। सच तो यह है कि [illegible] प्रभावसे यह सारा चराचरात्मक संसार व्याप्त है। शास्त्रका वचन है—

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च। ग्रहैस्तु व्यापितं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥

इसी आधारपर यह शास्त्रोक्ति है कि ज्योतिश्चक्रमें सभी लोगोंके शुभाशुभ फल कहे गये हैं—
'ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम्।'

पाश्चात्त्य विद्वान् एलेन लियोने अपनी पुस्तक एस्ट्रोलॉजी फार आल (Astrology for all) की प्रस्तावनामें लिखा है कि 'अवज्ञाकी दृष्टिको छोड़कर, परिश्रमसे यदि इस विज्ञानकी सत्यताको खोजा जाय तो हमारे पूर्वज ऋषियोंके उच्चकोटिके विचार और अनुभव सत्य प्रमाणित होंगे।'

ग्रहणका रहस्य—विविध दृष्टि

(लेखक—प० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, विद्यानिधि)

जो वस्तु ब्रह्माण्डमे पायी जाती है, वह वस्तु पिण्डमे भी पायी जाती है। जैसे ब्रह्माण्डमे सूर्य और चन्द्रमा है, वैसे पिण्डमे भी है। जाबालोपनिषद्के चतुर्थ खण्डमे योगीके लिये शरीरस्थ चन्द्रग्रहणका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

इडायाः कुण्डलीस्थानं यदा प्राणः समागतः।
सोमग्रहणमित्युक्तं तदा तत्त्वविदां वरः॥ (४६)

वहीं सूर्यग्रहणके विषयमे कहा गया है—

यदा पिङ्गलया प्राणः कुण्डलीस्थानमागतः।
तदा तदा भवेत् सूर्यग्रहणं मुनिपुंगव॥

साङ्कृतिके गुरु महायोगी दत्तात्रेयजी अपने शिष्य साङ्कृतिको अष्टाङ्गयोगका उपदेश करते हैं। उसी योगोपदेश-के प्रसङ्गमे इडा, कुण्डली, पिङ्गला—इन नाडियोका वर्णन है। कन्दके मध्यमे सुषुम्ना नाडी है। जिसके चारो ओर बहत्तर हजार नाडियाँ हैं। उनमेसे चौदह नाडियाँ मुख्य हैं। पीठके बीचमे स्थित जो हड्डीरूप वीणादण्डके समान मेरुदण्ड है, उससे मस्तकपर्यन्त निकली हुई नाडीको सुषुम्ना कहते है। सुषुम्नाके बाये भागमे इडा नाडी है और दक्षिणमे पिङ्गला नाडी है। नाभिकन्दसे दो अङ्गुलि नीचे कुण्डली नाडी है। इडा नाडीसे जब प्राण कुण्डलीके स्थानमे पहुँचता है तब चन्द्रग्रहण होता है। जब पिङ्गलासे कुण्डलीके स्थानमे प्राण जाता है तब सूर्यग्रहण होता है। योगीलोग इसीको चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण कहते हैं।

पुराणोंमें ग्रहणका स्वरूप

श्रीमद्भागवतस्थ अष्टम स्कन्धके नवम अध्यायमे चौबीसवे श्लोकसे छब्बीसवेतक ग्रहणके विषयमे कहा गया है—

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि।
प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः॥
चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाप्लावितोऽपतत्॥
शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत्।
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः॥

'भगवान् विष्णु जब मोहिनीका रूप बनाकर देवताओको अमृत पिलाने लगे तब राहु देवताओका रूप बनाकर उनकी पङ्क्तिमे बैठ गया। उस समय सूर्य और चन्द्रमाने राहुकी सूचना दे दी। सूचना देनेपर भगवान्ने सुदर्शनचक्रसे राहुके शिरको काट दिया; परन्तु अमृतसे भरपूर धड़का नाम केतु और अमरता[illegible] प्राप्त हुए शिरका नाम राहु हो गया। भग[illegible] उसको ग्रह बना दिया। यह वैरके कारण पौ[illegible] चन्द्रमाकी ओर तथा अमावास्यामे सूर्यकी ओर दौ[illegible] यही पुराणोमे ग्रहणका स्वरूप है।

ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण

ग्रहणकालमे पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है। यदि सूर्यग्रहण हो तो चन्द्रमा सूर्यको ढक लेते हैं, जैसा कि 'सिद्धान्तशिरोमणि'के पर्वसम्भवाधिकारमें श्रीभास्कराचार्यजीने कहा है—**'भूभा विधुं विधुरिनं ग्रहणे पिधत्ते'** (श्लोक ९)। यही बात सूर्यसिद्धान्तके चन्द्रग्रहणाधिकारप्रकरणमे कही गयी है।

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद् भवेत्।
भूछायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ॥

अर्थात्—नीचे होनेवाला चन्द्रमा बादलकी भाँति सूर्यको ढक लेता है। पूर्वकी ओर चलता हुआ चन्द्रमा पृथिवीकी छायामे प्रविष्ट हो जाता है। इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढकनेवाली है। यह विशेषरूपसे ध्यातव्य है कि पृथिवीकी छायाको 'सूर्यसिद्धान्त' चन्द्र-ग्रहणाधिकार (५) मे **'तम'** नामसे कहा है—

'विशोध्य लब्धं सूच्यां तमो लिप्तादनु पूर्ववत्'

अमरकोशमे 'तम' नाम राहुका है—'**तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः**'। पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु है, यह विषय सिद्धान्तशिरोमणिके श्लोकसे भी पुष्ट हो जाता है। श्रीभास्कराचार्यजी स्पष्ट कहते हैं—

> राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं
> शशाङ्कगश्छादयतीव बिम्बम्।
> तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्
> सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ॥

'पृथिवीकी छायाका अधिष्ठाता राहु चन्द्रमाको ढक लेता है।' इसलिये 'सिद्धान्तशिरोमणि'के पर्वसम्भवाधिकार-(२) में 'अगु च तदोक्तवत्' इस पद्यांशमे 'अगु' अर्थात् राहुको भी ग्रहणके लिये स्पर्श करना लिखा है।

कूर्मपुराणके पूर्वार्ध ४१वें अध्यायमें स्पष्ट लिखा है कि पृथिवीकी छायासे राहुका अन्धकारमय मण्डल बनता है; जैसा कि कहा है—

> उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः।
> स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम् ॥

सूर्यग्रहणके अमावास्या एवं चन्द्रग्रहणके पौर्णमासीको होनेके कारण

सूर्यसिद्धान्त, चन्द्रग्रहणाधिकार छठे श्लोकके अनुसार पृथिवीकी छाया सूर्यसे ६ राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है और पौर्णमासीको चन्द्रमाकी सूर्यसे ६ राशिके अन्तरपर भ्रमण करती है—

'भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा।'

इसलिये पृथिवीकी छाया चन्द्रमाको ढक लेती है; परंतु छः राशिका अन्तर होते हुए जिस पौर्णमासीको सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोके अंश, कला तथा विकला पृथिवीके समान होते है, उसी पौर्णमासीको चन्द्रग्रहण होता है।

अमावास्याका दूसरा नाम सूर्येन्दुसंगम भी है; अर्थात् अपनी-अपनी कक्षामे होते हुए भी सूर्य और चन्द्रमा अमावास्याको एक राशिमें होते हैं। ऐसा संगम प्रत्येक अमावास्यामें होता है। 'अमावास्या' शब्दकी व्युत्पत्तिमे भी पता चलता है कि सूर्य और चन्द्रमा अमावास्याको एक राशिमें होते है। '**अमया सह वसतः चन्द्रार्कौ अस्यामिति अमावास्या**'—जिस तिथिको सूर्य और चन्द्रमा एक राशिमे रहते हैं, उस तिथिको अमावास्या कहते हैं। परंतु जिस अमावास्याको सूर्य तथा चन्द्रमाके अंश, कला-विकला समान हों, उस अमावास्याको ही सूर्य-ग्रहण होता है। इसी विषयको सूर्यसिद्धान्तके चन्द्रग्रहणाधिकार (९)में स्पष्ट कहा है—

> तुल्यौ राश्यादिभिः स्यातामभावास्यान्तकालिकौ।
> सूर्येन्दू पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिकौ समौ ॥

ग्रहणके समय चन्द्रमाका विभिन्न रंग तथा सूर्यका काला ही क्यों रहता है ?

यह विषय सूर्यसिद्धान्तके छेद्यकाधिकार (२२)में स्पष्ट है—

> अर्धादूने ताम्रं स्यात् कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
> विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकलग्रहे ॥

यदि आधेसे कम चन्द्रमाका ग्रास हो तो ताँबे-जैसा, आधेसे अधिकके ग्रासमें काला, चतुर्थांशसे अधिकके ग्रासमे कृष्णताम्र और सम्पूर्णके ग्रासमें चन्द्रमाका रंग कपिल होता है। पृथिवीकी छाया काली है तथा चन्द्रमा पीले रंगके है। इसलिये दो वर्णोंका मेल होनेसे ग्रासकी कमी तथा अधिकताके कारण चन्द्रमाके विभिन्न रंग हो जाते हैं। चन्द्रमा तो जलगोलक है। इसलिये अमावास्यामें चन्द्रमाका दृश्य बिम्ब सदा ही काले रंगका होता है। ग्रहणकालमें सूर्यका आच्छादक चन्द्रमा होता है, इसलिये ग्रहणकालमें सूर्यका रंग सदा काला ही रहता है चाहे कितने ही भागका ग्रास हो। आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण (सुन्दरकाण्ड, सर्ग २९, श्लोक ४८)में त्रिजटाकी राक्षसियोंके प्रति उक्ति है—

छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम् ।

सीताके दुःखकी उपस्थिति छायावैगुण्यमात्र अर्थात् ग्रहणकालमे चन्द्रमाके छायावैगुण्यकी भाँति है । इससे ग्रहणकालमे पृथिवीकी छायाका अनुमोदन हो जाता है ।

काव्यकी दृष्टिसे ग्रहण—जिस कालिदासको ऐतिहासिक दो सहस्र वर्षसे अधिक पुराना मानते हैं, उन्होने रघुवंश (१४ । ७)मे पृथिवीकी छायाका चन्द्रमापर पड़ना स्पष्ट लिखा है—

अवैमि चैनामनघेति किन्तु
लोकापवादो बलवान् मतो मे ।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वा-
दारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥

जब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम चौदह वर्षका वनवास व्यतीत कर अयोध्या लौट आये तो सीताके विषयमें लोकापवाद सुनकर कहते हैं कि मै समझता हूँ कि सीता निष्कलंक है, परन्तु लोकापवाद बलवान् है; क्योकि पड़ती तो चन्द्रमापर पृथिवीकी छाया है; परंतु प्रजा उसे चन्द्रमाका मल कहती है । यह ज्ञान कालिदासको भी था । वैज्ञानिकोने कोई नयी खोज नहीं की है ।

किस स्थानमें किस ग्रहणका महत्त्व अधिक है ?—पुराणोमे चन्द्रग्रहणका महत्त्व वाराणसीमे बताया है और सूर्यग्रहणका महत्त्व कुरुक्षेत्रमे । यही कारण है कि श्रीकृष्णके पिता वसुदेवजी सूर्यग्रहणमे कुरुक्षेत्र आये और उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ किया । यह श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उत्तरार्धमे स्पष्ट लिखा है ।

धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—धर्म-शास्त्र तथा पुराणोका कथन है कि ग्रहणकालमे जप तथा दान एव हवन करनेसे बहुत फल होता है । यह विषय श्रीभास्कराचार्यजीने उठाया और समर्थन किया है । 'धर्मसिन्धु'मे आता है कि ग्रहण लगनेपर स्नान, ग्रहणके मध्यकालमे हवन तथा देवपूजन और श्राद्ध, ग्रहण जब समाप्त होनेवाला हो तब दान और समाप्त होनेपर पुनः स्नान करना चाहिये । यदि सूर्यग्रहण रविवारको हो और चन्द्रग्रहण सोमवारको हो तो उसे चूडामणि कहते हैं । उस ग्रहणमे स्नान, जप, दान, हवन करनेका और भी विशेष फल है ।

तन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे ग्रहण—शारदातिलक, द्वितीय पटलके दीक्षा-प्रकरणकी पदार्थदर्श-व्याख्यामे रुद्रयामल-ग्रन्थको उद्धृत करके लिखा है—

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः ।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन् न शोधयेत् ॥

अगस्तिसहितामे भी कहा है—

सूर्यग्रहणकालेन समोऽन्यो नास्ति कश्चन ।
तत्र यद् यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥
सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाऽऽयासेन वेगतः ।
कर्तव्यं सर्वयत्नेन मन्त्रसिद्धिरभीप्सुभिः ॥

तीर्थों और सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमे मन्त्र-दीक्षा लेनेके लिये कोई विचार न करे । सूर्यग्रहणके समान और कोई समय नहीं है । सूर्यग्रहणमे अनायास ही मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है । इन श्लोकोंमे मन्त्र शब्द यन्त्रका भी उपलक्षक है । इसका सारांश यह है कि ग्रहणकाल-मे मन्त्रोको जपनेसे तथा मन्त्रोको लिखनेसे विलक्षण सिद्धि होती है । इसके अतिरिक्त इस कालमे रुद्राक्ष-मालाके धारणमात्रसे भी पापोका नाश हो जाता है । इसलिये जाबालोपनिषद्के चौवालीसवें श्लोकमे लिखा है कि—

ग्रहणे विषुवे चैवमयने सङ्क्रमेऽपि च ।
दर्शेषु पौर्णमासेषु पूर्णेषु दिवसेषु च ॥
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

गणपत्युपनिषद्मे भी लिखा है कि सूर्यग्रहणमे महानदी अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नदियोमें या किसी प्रतिमाके पास मन्त्र जपनेसे वह सिद्ध हो जाता है ।

'सूर्यग्रहणे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा स सिद्धमन्त्रो भवति' (गणपत्युपनिषद्, मन्त्र ८)

इसलिये सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणमें दान तथा हवन एवं मन्त्रोंका जप तथा यन्त्रोंको लिखना चाहिये।

ग्रहणकालमें कुशाका महत्त्व—ग्रहणकालमें विशेषतः जल आदिमें कुश डालना चाहिये। कुशा डालनेसे ग्रहणकालमें जो अशुद्ध परमाणु होते हैं, उनका कुशा डाली हुई वस्तुपर कोई प्रभाव नहीं होता, यह डाक्टरोंका अनुभव है और धर्मशास्त्रादिसम्मत भी है। इसलिये निर्णयसिन्धुमें मन्वर्थमुक्तावलीके वचनको उद्धृत करके कुशाके महत्त्वको बताया है—'वारितक्रारनालादि तिलदर्भैर्न दुष्यति'—ग्रहणकालमें जल, छाछ (लस्सी) तथा काँजी आदिमें कुशा डालनेसे वे दूषित नहीं होते। इसीलिये कुशाके आसनपर बैठकर योगसाधन तथा भजनका विधान है। यह श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायके ११वें श्लोकसे भी स्पष्ट है। कुशाके आसनपर बैठनेमें अशुद्ध परमाणुओंका सम्पर्क सर्वथा नहीं होता। अतएव मन पूर्ण संयत रहता है और बुद्धि इतनी स्वच्छता-से काम करती है कि तनिक भी प्रमाद नहीं होने पाता। कुशाका महत्त्व महाभाष्यके तीसरे आह्निकके 'वृद्धिरादैच् (१।१।१)—इस सूत्रके व्याख्यानमें बताया है—'प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः सूत्राणि प्रणयति स्म' इत्यादि अर्थात् प्रामाणिक आचार्यने कुशाकी पवित्री हाथमें डालकर पवित्र स्थानमें पूर्वाभिमुख बैठकर सूत्र बनाये हैं; इसलिये किसी सूत्रका एक वर्ण भी अनर्थक नहीं हो सकता—'वृद्धिरादैच्' इतना बड़ा सूत्र कैसे अनर्थक हो सकता है? प्रतिदिन होनेवाले तर्पण, हवन तथा श्राद्धकर्ममें कुशाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्राद्ध और कुशकण्डिकामें उसकी प्रधानता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथिवीकी छाया पड़नेसे ग्रहण होता है, यह उनका कथन कुछ अंशतक ठीक है। वस्तुतः पृथिवीकी छाया पड़नेसे चन्द्रग्रहण होता है और चन्द्रमाद्वारा सूर्यके ढके जानेसे सूर्यग्रहण होता है, जो हमने शास्त्रके प्रमाणोंसे ही सिद्ध कर दिया है। वैज्ञानिकोंके सिद्धान्त अपने ढंगके हैं। पहले वैज्ञानिक आकाशको नहीं मानते थे, अब 'ईथर' नामसे उसे मानने लगे हैं। भारतीय ग्रन्थोंने तो श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन, ज्यौतिष आदिमें आकाशको माना है। न्यायशास्त्रमें तो बड़े दृढ़ प्रमाण देकर आकाशको सिद्ध किया गया है। आकाश अन्यतम पञ्चमहाभूत है।

कुछ वैज्ञानिक आरम्भमें भी नौ ग्रह मानते थे; किंतु अब मानना छोड़ दिया है। दिव्यदृष्टि महर्षियोंने सब बातें योगबलसे प्रत्यक्ष करके लिखी हैं। इसलिये ग्रहणका स्वरूप भी हमने भारतीय शास्त्रोंके आधारपर दिया है।

ग्रहणमें स्नानादिके नियम

चन्द्र-सूर्य दोनों राहुसे ग्रस्त हुए अस्त हो जायँ तो पुनः उनका दर्शन करके स्नान और भोजन करना चाहिये। भोजन अपने घरका करे। ग्रस्तास्तमें दिन-रात—दोनोंमें भोजन निषिद्ध है। चन्द्रमा राहुग्रस्त उदित होते हों तो प्रथम दिन भोजन न करे। चन्द्रमाके प्रातःकाल ग्रस्तास्त हो जानेपर प्रथम रात्रि तथा अगले दिनका भोजन निषिद्ध है; किंतु स्नान-हवन आदि मोक्ष-समयसे किया जा सकता है। ग्रहणके एक प्रहर पहले बालक, वृद्ध और रोगी भी भोजन न करें। वेध या ग्रहण-कालमें पक्वान्न भी नहीं खाना चाहिये। ग्रहणमें सभी वर्णोंको सूतक लगता है—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।' नवनीत, दूध-दही, मट्ठा, घीका पका अन्न और मणिमें रखा जल तिल या कुश डालनेपर अपवित्र नहीं होते। गङ्गाजल अपवित्र नहीं होता। जैमिनि पुत्रवान्‌को रविवार और संक्रान्तिके सिवा ग्रहणमें भी उपवास वर्जित करते हैं। हाँ, सबके लिये जप आदिका विधान और शयन आदिका निषेध अवश्य है—

सूर्येन्दुग्रहणं यावत् तावत् कुर्याज्जपादिकम्। न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः॥

(नि० सु०)

सूर्यचन्द्र-ग्रहण-विमर्श

ग्रहण आकाशीय अद्भुत चमत्कृतिका अनोखा दृश्य है। उससे अश्रुतपूर्व, अद्भुत ज्योतिष्क-ज्ञान और ग्रह-उपग्रहोंकी गतिविधि एवं स्वरूपका परिस्फुट परिचय प्राप्त हुआ है। ग्रहोंकी दुनियाकी यह घटना भारतीय मनीषियोंको अत्यन्त प्राचीनकालसे अभिज्ञात रही है और इसपर धार्मिक तथा वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक ग्रन्थों और ज्योतिष-ग्रन्थोंमें होता चला आया है। महर्षि अत्रि मुनि ग्रहण-ज्ञानके उपज्ञ (प्रथम ज्ञाता) आचार्य थे। ऋग्वेदीय प्रकाशकालसे ग्रहणके ऊपर अध्ययन, मनन और स्थापन होते चले आये हैं। गणितके बलपर ग्रहणका पूर्ण पर्यवेक्षण प्रायः पर्यवसित हो चुका है, जिसमें वैज्ञानिकोंका योगदान भी सर्वथा स्तुत्य है।

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें यह चामत्कारिक वर्णन मिलता है कि 'हे सूर्य ! असुर राहुने आपपर आक्रमण कर अन्धकारसे जो आपको विद्ध कर दिया—ढक दिया, उससे मनुष्य आपके (सूर्यके) रूप-(मण्डल-) को समग्रतासे देख नहीं पाये और (अतएव) अपने-अपने कार्यक्षेत्रोंमें हतप्रभ-(ठप-)से हो गये। तब महर्षि अत्रिने अपने अर्जित सामर्थ्यसे अनेक मन्त्रोंद्वारा (अथवा चौथे मन्त्र या यन्त्रसे) मायाश (छाया)का अपनोदन (दूरीकरण) कर सूर्यका समुद्धार किया।'—

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥
स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया
अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन
तुरीयेण ब्रह्मणाऽविन्ददत्रिः॥
(—ऋ० ५ । ४० । ५-६)

अगले एक मन्त्रमें यह आता है कि 'इन्द्रने अत्रिकी सहायतासे ही राहुकी मायासे सूर्यकी रक्षा की थी।' इसी प्रकार ग्रहणके निरसनमें समर्थ महर्षि अत्रिके तपःसन्धानसे समुद्भूत अलौकिक प्रभावोंका वर्णन वेदके अनेक मन्त्रोंमें प्राप्त होता है।* किंतु महर्षि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्यसे इस अलौकिक कार्यमें दक्ष माने गये, इस विषयमें दो मत हैं—प्रथम परम्परा-प्राप्त यह मत कि वे इस कार्यमें तपस्याके प्रभावसे समर्थ हुए और दूसरा यह कि वे कोई नया यन्त्र बनाकर उसकी सहायतासे ग्रहणसे उन्मुक्त हुए सूर्यको दिखलानेमें समर्थ हुए।† यही कारण है कि महर्षि अत्रि ही भारतीयोंमें ग्रहणके प्रथम आचार्य (उपज्ञ) माने गये। सुतरां इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीनकालमें भारतीय सूर्यग्रहणके विषयमें पूर्णतः अभिज्ञ थे।

मध्ययुगीन ज्योतिर्विज्ञानके उच्चतम आचार्य भास्कराचार्य प्रभृतिने सूर्यग्रहणका समीचीन विवेचन प्रस्तुत किया है तथा उसके अनुसन्धानकी विशिष्ट प्रणाली भी प्रदर्शित की है। किंतु इस आकाशीय चमत्कृतिके लिये प्रयासका पर्यवसान उन्होंने भी वेद-पुराण जाननेवालोंके माध्यमसे ग्रहणकालमें जप, दान, हवन, श्राद्धादिके बहुफलक होनेकी फलश्रुतिमें करते हुए भारतकी अन्तरात्मा—धर्मको ही पुरस्कृत किया है—

'बहुफलं जपदानहुतादिके
श्रुतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।'

आधुनिक पाश्चात्त्य खगोलशास्त्रियों-(वियद्-विज्ञानियों-)ने भी अटूट श्रमकर विषय-वस्तुको बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया है। किंतु उनका ध्येय ग्रहणके तीन प्रयोजनोंमेंसे तीसरा प्रयोजन—सूर्य-चन्द्रमाके बिम्बोंका भौतिक एवं रासायनिक अन्वेषण-विश्लेषण ही

*—द्रष्टव्य—५ । ४० । ७—९ तकके मन्त्र।

†—पहला मत सायणप्रभृति वेद-भाष्यकारोंके संकेतानुसार परम्पराप्राप्त है और दूसरा मत वेदमहार्णव प० मधुसूदनजी ओझाका है, जिसे उन्होंने अपने 'अत्रिख्याति' नामक ग्रन्थमें प्रतिष्ठित किया है।

है। वे धार्मिक महत्त्वको तथा लोगोमे कौतूहलजनक उसके चमत्कारको उतनी उच्च मान्यता नहीं देते हैं। यहाँ हम संक्षेपमे सूर्यचन्द्र-ग्रहणोका सामान्य परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

आकाशीय तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डोके सामने जब कोई अप्रकाशित अपारदर्शक पदार्थ आ जाता है तब उस तेजस्वी ज्योतिष्कपिण्डका प्रकाश उस अपारदर्शक पदार्थ-भागके कारण छिप जाता है और दूसरे पारवालोके लिये छाया बन जाती है। यही छाया 'उपराग' या 'ग्रहण'का रूप ग्रहण कर लेती है।

चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह और अपारदर्शक हैं जो स्वतः प्रकाशक न होनेके कारण अप्रकाशित पिण्ड हैं। अण्डेके आकारवाले अपने भ्रमण-पथ (अक्ष) पर घूमते हुए वे (सूर्यकी परिक्रमा करती हुई) पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं।* वे कभी पृथ्वीके पास और कभी इससे दूर रहते हैं। उनका कम-से-कम अन्तर १,२१,००० मील और अधिक-से-अधिक २,५३,००० मील होता है। अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए चन्द्रमा अमावास्याको सूर्य और पृथ्वीके बीचमे आ जाते हैं और कभी-कभी (जब तीनो बिल्कुल सीधमे होते हैं तब) सूर्यके प्रकाशको ढक लेते हैं—हमारे लिये उसे मेघकी भाँति रोक देते हैं, जिससे सूर्योपराग अर्थात् सूर्यग्रहण हो जाता है।† जब वे पृथ्वीके पास हों और राहु या केतु बिन्दु‡पर हों, तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। पास होनेके कारण उनका बिम्ब बड़ा होता है, जिससे हमारे लिये सूर्य पूर्णतः ढक जाते हैं और तब हम पूर्ण सूर्यग्रहण कहते हैं। उस समय चन्द्रमाका अप्रकाशित भाग हमारी ओर होता है और उसकी घनी और हल्की परछाईं पृथ्वीपर पड़ती है। सूर्य पृथ्वीके जितने भागपर घनी छाया (प्रच्छाया) रहनेसे दिखलायी नहीं देते, उतने भागपर सूर्यका सर्वग्रास (खग्रास) सूर्यग्रहण होता है और जिस भागपर कम परछाईं (उपच्छाया) पड़ती है, उसपर सूर्यका खण्डग्रास होता है। निष्कर्ष यह कि सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी—तीनो जब एक सीधमें नहीं होते अर्थात् चन्द्र, ठीक राहु या केतु बिन्दुपर न होकर कुछ ऊँचे या नीचे होते हैं तब सूर्यका खण्ड-ग्रहण होता है। और, जब चन्द्रमा दूर होते हैं तब उनकी परछाईं पृथ्वीपर नहीं पड़ती तथा वे छोटे दिखलायी पड़ते हैं—उनके बिम्बके छोटे होनेसे सूर्यका मध्यभाग ही ढकता है, जिससे चारों ओर कङ्कणाकार सूर्य-प्रकाश दिखलायी पडता है। इस प्रकारके ग्रहणको कङ्कणाकार या वलयाकार सूर्यग्रहण कहते हैं। पूर्ण सूर्यग्रहणको 'खग्रास' और अपूर्णको 'खण्डग्रास' भी कहा जाता है। निदान, सूर्यग्रहण मुख्यतः तीन प्रकारके होते हैं—(१) सर्वग्रास या खग्रास—जो सम्पूर्ण सूर्य-बिम्बको ढकनेवाला होता है, (२) कङ्कणाकार या वलयाकार जो सूर्य-

* चन्द्रमाकी अपने कक्षकी एक परिक्रमा २७ दिन ७ घंटे ४३ मिनट और १२ सेकण्डमे होती रहती है।

† सिद्धान्तशिरोमणि (के गो० प्र० वा० १)में भास्कराचार्यने इस स्थितिका निरूपण निम्नाङ्कित श्लोकमे किया है—

पश्चाद् भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रोभानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात् स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव क्वापि च्छन्नः क्वचिदपिहितो नैव कक्षान्तरत्वात्॥

‡ ज्योतिषीको किसी असुरके शरीरमे दिलचस्पी (स्पृहा) नहीं है। उसके लिये तो राहु और केतुका दूसरा ही अर्थ है। जिस मार्गपर पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है या यों कहिये कि सूर्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता है वह क्रान्तिवृत्त एवं चन्द्रमाका पृथ्वीके चारो ओरका मार्ग-वृत्त (अक्ष)—ये दोनो जिन बिन्दुओपर एक-दूसरेको काटते हैं, उनमेसे एकका नाम 'राहु' और दूसरेका 'केतु' है' (—ग्रहनक्षत्र) [‡ आकाशमे उत्तरकी ओर बढते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यको काटती है तब उस सम्पात बिन्दुको राहु और दक्षिणकी ओर नीचे उतरते हुए चन्द्रमाकी कक्षा जब सूर्यकी कक्षाको पार करती है, तब उस सम्पात-बिन्दुको केतु कहते हैं।]
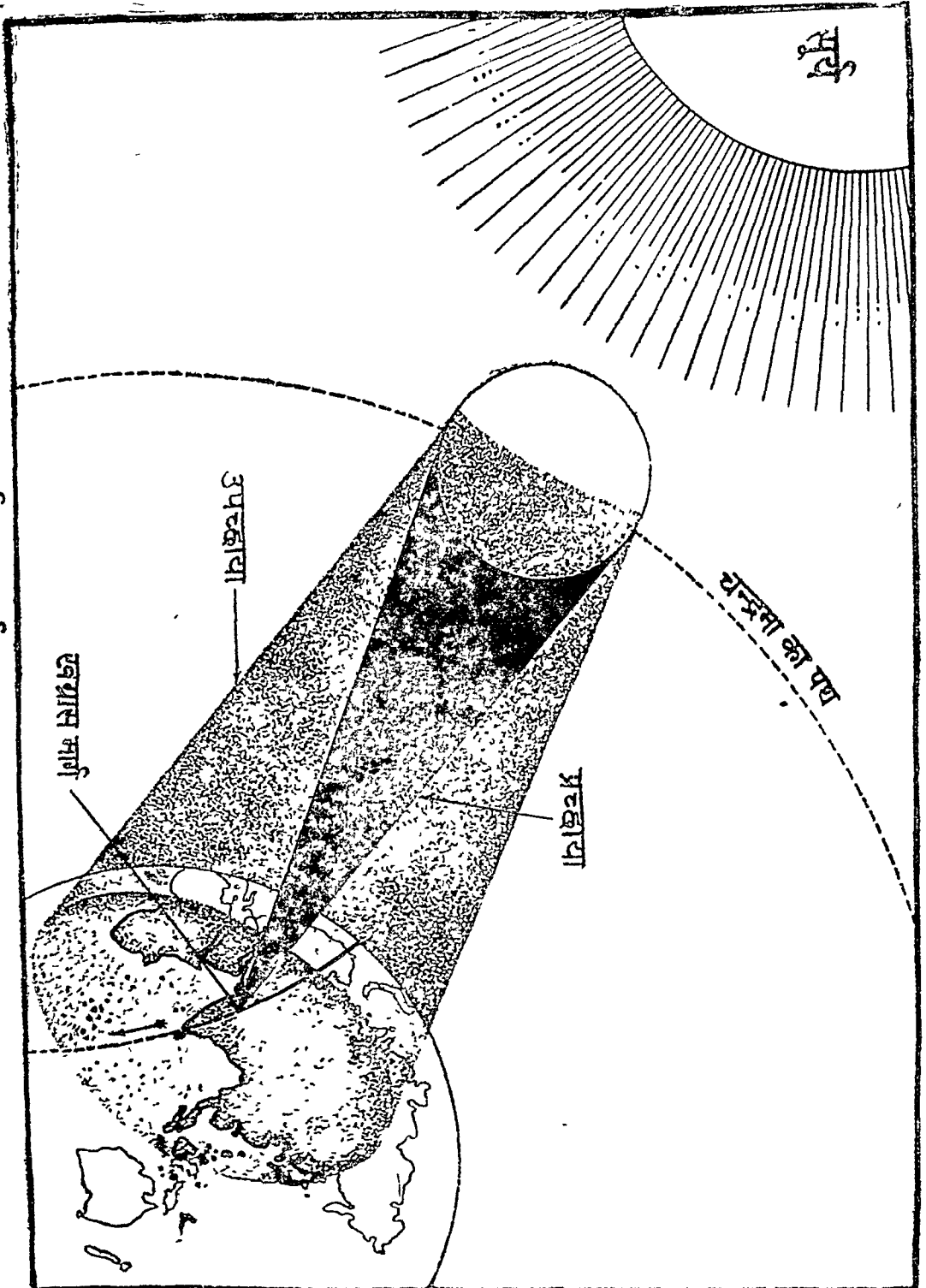
टिप्पणी—सूर्यका क्रान्तिवृत्त प्रत्येक तीस अंशोंकी बारह राशियोंके (१२×३०=) ३६० अंशोंका माना गया है । मोटे तौरपर पूर्णिमाका चन्द्र-मण्डल आधे अंशका होता है ।

बिम्बके बीचका भाग ढकता है तथा (३) खण्ड-ग्रहण—जो सूर्य-बिम्बके अंशको ही ढकता है । इनकी निम्नाङ्कित परिस्थितियाँ होती हैं—

(१) खग्रास सूर्य-ग्रहण तब होता है जब (क) अमावास्या* हो, (ख) चन्द्रमा, ठीक राहु या केतु बिन्दुपर और (ग) पृथ्वी-समीप बिन्दुपर हो । इस प्रकारकी स्थितिमे चन्द्रमाकी गहरी छाया जितने स्थानोपर पड़ती है, उतने स्थानोपर खग्रास ग्रहण दृग्गोचर होता है और जितने स्थानोपर हल्की परछाईं पड़ती हैं, उतने स्थानोपर खण्डग्रास ग्रहण होता है और जहाँ वे दोनों परछाइयाँ नहीं होतीं वहाँ ग्रहण ही नहीं दीखता है । इसलिये ग्रहण लिखते समय ग्रहणके स्थानो एवं प्रकारको भी सूचित करना पञ्चाङ्गकी प्रक्रिया है ।

(२) **कङ्कणाकार** अथवा वलयाकार सूर्य-ग्रहण तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु बिन्दुपर होते हैं, किंतु (ग) चन्द्रमा पृथ्वीसे दूरबिन्दुपर होते है ।

(३) **खण्डित ग्रहण** तब होता है जब—(क) अमावास्या होती है, (ख) चन्द्रमा ठीक राहु या केतु-बिन्दुपर न होकर उनमेसे किसी एकके समीप होते हैं ।

चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण पूर्णिमाको होता है—जबकि सूर्य और चन्द्रमाके बीच पृथ्वी होती है और तीनो—सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा—बिल्कुल सीधमे, एक सरल रेखामें होते हैं । पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमाके बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें होकर गुजरते है तब चन्द्रग्रहण होता है—पृथ्वीकी वह छाया चन्द्रमण्डलको ढक देती है, जिससे चन्द्रमामे काला मण्डल दिखलायी पड़ता है । वही चन्द्रग्रहण कहा जाता है । सूर्य और चन्द्रमाके बीचसे गुजरनेवाली पृथ्वीकी बायीं ओर आधे भागपर रहनेवाले मनुष्योको चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है ।

सूर्यबिम्बके बहुत बडे होने तथा पृथ्वीके छोटे होनेके कारण पृथ्वीकी परछाईं हमारी परछाईंकी भाँति न होकर काले ठोस शङ्कुके समान—सूच्याकार होती है और चन्द्र-कक्षाको पारकर बहुत दूरतक निकल जाती है ।† आकाशमे फैली हुई पृथ्वीकी यह छाया लगभग ८, ५७,००० मील लम्बी होती है । इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्यके बीचकी दूरीपर निर्भर होती है, अतः यह छाया घटती-बढती रहती है । इसीलिये यह परछाईं कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है । शङ्कु-सदृश इस प्रच्छायाके साथ ही शङ्कुके ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है । चन्द्रमा अपने भ्रमण-पथपर चलते हुए जब पृथ्वीकी उपच्छायामे पहुँचते हैं तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छायाके समीप आ जाते हैं, त्यों ही उनपर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छायाके भीतर आ जाता है तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णग्रास चन्द्रग्रहण लग जाता है । इसे हम ज्योतिषके दृष्टिकोणसे और स्पष्टतासे समझे ।

'रात्रिमे दिखलायी देनेवाला अन्धकार पृथ्वीकी छाया है । यह छाया जब चन्द्रमापर पड़ जाती है तब चन्द्रमापर ग्रहण लगा कहा जाता है । चन्द्रमा पृथ्वीके उपग्रह हैं । अतः वे पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं । पृथ्वी यतः सूर्यकी

*—द्रष्टव्य—कमलाकरका निम्नाङ्कित श्लोक—

अथात्र भागावयवेन तुल्यौ यत्कालिकौ सूर्यविधू स्फुटौ स्तः । अमान्तसंज्ञोऽस्ति स एव विज्ञैरर्कग्रहार्थे प्रथमं प्रसाध्यः ॥

—सि० तत्त्व वि०, सूर्य-ग्रहणाधिकार ५

†भानोर्बिम्बपृथुत्वादणुत्वात्पृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा । दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता ॥

—भास्कराचार्य

परिक्रमा करती हैं, अतः पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनोके भ्रमण-क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमाको पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमाके बीच हो जाती है। उसकी छाया शङ्कुवत् होती है। जब वह छाया चन्द्रमापर पड़ जाती है अथवा यों कहिये कि चन्द्रमा अपनी गतिके कारण पृथ्वीके छाया-शङ्कुमे प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाता है और कभी उसका कुछ अश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्रके ढकनेकी अवस्थामे सर्वग्रास चन्द्रग्रहण और अशतः ढकनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है; परतु यहाँ प्रश्न उठता है कि प्रत्येक पूर्णिमाको उपर्युक्त ग्रह-स्थितिके नियत रहनेपर प्रत्येक पूर्णिमाको ग्रहण क्यो नहीं लगता ? इसका समाधान यह है कि पृथ्वी और चन्द्रमाके मार्ग एक सतहमे नहीं है। वे एक दूसरेके साथ पॉच अशका कोण बनाते है, जिससे ग्रहणका अवसर प्रतिपूर्णिमाको नहीं होता है। (एक सतहमे दोनोके भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावास्याको चन्द्र-सूर्य-ग्रहण होते।) बात यह है कि चन्द्रमाकी कक्षा पृथ्वीकी कक्षासे ५८ अशके कोणपर झुकी हुई है और यह भी है कि चन्द्रमाकी पातरेखा चल है। पात-रेखाकी परिक्रमाका समय प्राय. १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधिके बाद ग्रहणोके क्रमकी पुनरावृत्ति होती है। इस समयको 'चन्द्रकक्ष' कहा जाता है।

भारतके प्रसिद्ध ज्योतिषी स्व० श्रीबापूदेवजी शास्त्रीने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रको लिखे अपने एक पत्रमे लिखा था कि 'सूर्यके अस्त हो जानेपर रात्रिमे जो अन्धकार दीखता है, वही पृथ्वीकी छाया है। पृथ्वी गोलाकार है और सूर्यसे बहुत छोटी है, इसलिये उसकी छाया सूच्याकार काले ठोस शङ्कुके आकारकी होती है। यह अवकाशमे चन्द्रमाके भ्रमण-मार्गको लॉघकर बहुत दूरतक सदा सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर रहती है। पूर्णिमाके अन्तमे चन्द्रमा भी सूर्यसे छः राशिके अन्तरपर रहते है। इसलिये पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए चन्द्रमा जिस पूर्णिमाको पृथ्वीकी छायामे आ जाते है अर्थात् पृथ्वीकी छाया चन्द्रमाके बिम्बपर पड़ती है, उसी पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होता है और जो छाया चन्द्रमापर दिखायी पड़ती हैं, वही ग्रास कहलाती है। पौराणिक श्रुति प्रसिद्ध है कि 'राहु नामक एक दैत्य चन्द्रग्रहण-कालमे पृथ्वीकी छायामे प्रवेशकर चन्द्रमाकी ओर प्रजा (जनता) को पीड़ा पहुँचाता है। इसलिये लोकमे राहुकृतग्रहण कहलाता है और उस कालमें स्नान, दान, जप, होम करनेसे राहुकृत पीड़ा दूर होती है तथा पुण्य लाभ होता है।'

'चन्द्रग्रहणका सम्भव भूच्छायाके कारण प्रति पूर्णिमाके अन्तमे होता है और उस समयमे केतु और सूर्य साथ रहते है; परंतु केतु और सूर्यका योग यदि नियत संख्याके अर्थात् पाँच राशि, सोलह अशसे लेकर छः राशि चौदह अंशके अथवा ग्यारह राशि सोलह अंशसे लेकर बारह राशि चौदह अशके भीतर होता है, तभी ग्रहण लगता है और यदि योग नियत सख्याके बाहर पड जाता है, तो ग्रहण नहीं होता।'

यह प्रकारान्तरसे कहा जा चुका है कि पृथ्वीके मध्य-बिन्दुके क्रान्तिवृत्तकी सतहमे होनेसे पृथ्वी वर्णित पूर्णिमामे सूर्यका प्रकाश चन्द्रमापर नहीं पड़ने देती, जिससे उसकी छायाके कारण चन्द्रमाका तेज कम हो जाता है। ऐसी स्थिति राहु और केतु-बिन्दुपर या उनके समीप—कुछ ऊपर या नीचे—चन्द्रमाके होनेपर ही आती है। यह भी कहा जा चुका है कि चन्द्रमाके राहुकेतु बिन्दुपर होनेपर ही पूर्ण चन्द्रग्रहण होता है और उनके समीप होनेपर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् चन्द्रमाके कुछ भागका प्रकाश कम हो जाता है, जिससे वे निस्तेज प्रतीत होने लगते है, पर बिल्कुल काले नहीं होते। हाँ, वे जब गहरी छाया (प्रच्छाया) मे आ जाते है, तब काले होने लगते हैं। फिर भी वे

पूर्णतः अदृश्य न होकर कुछ लालिमा लिये हुए ताँबेके रंगके दृष्टिगोचर होते हैं; क्योंकि सूर्यकी रक्तिम किरणें पृथ्वीके वायुमण्डलद्वारा नीलांशशोषित होनेपर परिवर्तित होकर चन्द्रमातक पहुँच जाती हैं। इसी कारण हम पूर्ण चन्द्रग्रहणके समय भी चन्द्रमण्डलको देख सकते हैं।

ग्रहण-कालकी अवधि—चन्द्रमा और पृथ्वीकी दूरीके ऊपर निर्भर होती है। कभी पृथ्वीकी छाया उस स्थानपर चन्द्रमाके व्याससे तिगुनीसे भी अधिक हो जाती है, जहाँ चन्द्रमा उसे पार करते हैं। छायाकी चौड़ाई इस स्थानपर जितनी अधिक होती है, उतनी ही अधिक अवधितक चन्द्रग्रहण रहता है। पूर्ण चन्द्र-ग्रहणकी अवधि प्रायः दो घंटोतक और ग्रहणका सम्पूर्ण समय चार घंटोतकका हो सकता है। चन्द्र-मण्डलकी ग्रस्तताके अनुसार खण्ड-चन्द्रग्रहण अथवा पूर्ण चन्द्रग्रहण (खग्रास चन्द्रग्रहण) कहा-सुना जाता है। इसी प्रकार 'चन्द्रोपराग' भी शास्त्रीय चर्चामे व्यवहृत होता है।

खगोल-शास्त्रियोने गणितसे निश्चित किया है कि १८ वर्ष १८ दिनोकी अवधिमें ४१ सूर्यग्रहण और २९ चन्द्र-ग्रहण होते हैं। एक वर्षमे ५ सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्र-ग्रहणतक होते है। किंतु एक वर्षमे दो सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिये। हाँ, यदि किसी वर्ष दो ही ग्रहण हुए तो दोनो ही सूर्यग्रहण होगे। यद्यपि वर्षभरमे ७ ग्रहणतक सम्भाव्य है, तथापि चारसे अधिक ग्रहण बहुत कम देखनेमे आते है। प्रत्येक ग्रहण १८ वर्ष ११ दिन बीत जानेपर पुनः होता है। किंतु वह अपने पहलेके स्थानमे ही हो—यह निश्चित नहीं है; क्योंकि सम्पात-विन्दु चल है।

साधारणतया सूर्य-ग्रहणकी अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते है, पर सच तो यह है कि चन्द्र-ग्रहणसे कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते है। तीन चन्द्र-ग्रहणपर चार सूर्यग्रहणका अनुपात आता है। चन्द्र-ग्रहणोंके अधिक देखे जानेका कारण यह होता है कि वे पृथ्वीके आधेसे अधिक भागमे दिखलायी पड़ते हैं, जब कि सूर्यग्रहण पृथ्वीके बहुत थोड़े भागमें—प्रायः सौ मीलसे कम चौड़े और दो हजारसे तीन हजार मील लम्बे भूभागमें—दिखलायी पड़ते हैं। बम्बईमे खग्रास सूर्यग्रहण हो तो सूरतमे खण्ड सूर्यग्रहण दिखायी देगा और अहमदाबादमें दिखायी ही नहीं पडेगा।

खग्रास चन्द्रग्रहण चार घंटोंतक दिखायी पड़ता है, जिनमे दो घंटोतक चन्द्रमण्डल बहुत ही काला नजर आता है। खग्रास सूर्यग्रहण दो घंटोतक रहता है, परतु पूरा सूर्यमण्डल ८–१० मिनटोंतक ही घिरा रहता है और साधारणतः दो-ही-तीन मिनटतक गाढ़ा रहता है। उस समय रात्रि-जैसा दृश्य हो जाता है।

सूर्यका खग्रास ग्रहण दिव्य होता है। सूर्यके पूरी तरह ढकनेके पहले पृथ्वीका रंग बदल जाता है और यत्किञ्चित् भयका भी संचार होता है। चन्द्रमण्डल तेजीसे सूर्यबिम्बको ढक लेता है, जिससे अँधेरा छा जाता है। पशु-पक्षी भी विशेष परिस्थितिका अनुभवकर अपनी रक्षाका उपाय करने लगते हैं! परंतु आकाशकी भव्यता और उपयोगिता बढ़ जाती है। सूर्यके पार्श्व प्रान्तमें मनोरम दृश्य देखनेको मिलता है। उसके चारो ओर मोतीके समान स्वच्छ 'मुकुटावरण' दृगोचर होता है, जिसके तेजसे ऑखोमे चकाचौंध होने लगती है। उसके नीचेसे सूर्यकी लाल ज्वाला (प्रोन्नत ज्वाला) निकलती देख पड़ती है। उस समय उसके हल्के प्रकाशसे मनुष्योंके मुँह लाल वर्णके-से जान पड़ते है। किंतु यह दृश्य दो-चार मिनटतक ही दिखलायी पड़ता है, फिर अदृश्य हो जाता है। इस मनोज्ञ दिव्य दृश्यको देखनेके लिये दैवज्ञ ज्योतिषी और भौगोलिक दूर-दूरसे ज्ञान-पिपासा शान्त करनेकी प्रक्रियामे यन्त्रोसे सज्ज होकर प्रयोगार्थ वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ पूर्ण सूर्यग्रहण (खग्रास सूर्यग्रहण) होता है। भारतवर्षमे सन् १८७१ ई०

*

और सन् १८९८ ई०में सूर्यके खग्रास ग्रहण लगे थे।

ग्रहणसे ज्ञानार्जन— बहुत होता है। भारतके प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिषियो और धर्मशास्त्रियोंने ग्रहणके लोक-पक्षीय धर्म्य विचार भी प्रस्तुत किये हैं। आचार्य आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्तने लिखा है कि सूर्य और चन्द्रमाकी गतिकी अवगति ग्रहणसे ही हुई। हम गणितसे कह सकते हैं कि स्थान-विशेषमें कितनी अवधिमें कितने ग्रहण लग सकते हैं। उदाहरणार्थ—बम्बईमें वर्षभरमें प्रायः चार सूर्यग्रहण एवं दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। किंतु लगभग दो सौ वर्षोंके कालान्तरपर कुल मिलाकर सात ग्रहणोंका होना सम्भाव्य है, जिनमें चार सूर्यग्रहण और तीन चन्द्र-ग्रहण अथवा पॉच सूर्यग्रहण तथा दो चन्द्रग्रहण हो सकते हैं। साधारणतः प्रतिवर्ष दो ग्रहणोका होना अनिवार्य है। हॉ, इतना नियत है कि जिस वर्ष दो ही ग्रहण होते हैं, उस वर्ष दोनो ही सूर्यग्रहण ही होते हैं। गणितद्वारा आगामी हजारो वर्षोंके ग्रहणोकी संख्या उनकी तिथि और ग्रहणकी अवधि ठीक-ठीक निकाली जा सकती है।

ग्रहण केवल सूर्य और चन्द्रमामें ही नहीं लगते, प्रत्युत अन्य ग्रहो, उपग्रहोमें भी होते हैं, जिसके लिये विशेषकृत्य निर्धारित नहीं है। निदान, ग्रहों, उपग्रहोंकी गतिशीलताकी विशेष स्थितिमें एकसे अन्यके प्रकाशका आवरण हो जाना या छायासे उसका ढक जाना नितान्त सम्भव है, जो सूर्य-चन्द्रसे सबद्ध होनेपर ही 'ग्रहण' कहा जाता है।* पृथ्वीपर ग्रहणके प्रभाव होनेसे धार्मिक कृत्य—स्नान, दान, जपादिका विधान है।

ग्रहणके धार्मिक कृत्य—सूर्यग्रहणके बारह घंटे और चन्द्रग्रहणके नौ घंटे पहलेसे विधवा, यति, वैष्णव और विरक्तोंको भोजन नहीं करना चाहिये। बाल, वृद्ध, रोगी और पुत्रवान् गृहस्थके† लिये नियम अनिवार्य नहीं है। ग्रहण-कालमें शयन और शौचादि क्रिया भी निषिद्ध है। देवमूर्तिका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहणमें पुष्कर और कुरुक्षेत्रके तथा चन्द्रग्रहणमे काशीके स्नान,‡ जप, दानादिका बहुत महत्त्व है। ग्रहणमे विहित श्राद्ध कच्चे अन्न या स्वर्णसे ही करनेका विधान है। श्राद्ध अवश्य ही करना

---

* किंतु सूर्य-बुधका अन्तर्योग ग्रहण नहीं, 'अधिक्रमण' कहा जाता है। यह ग्रहण-जैसा ही होता है जिसे सूर्यका 'भेदयोग' भी कहते हैं। बुध जब सूर्य और पृथ्वीकी सीधमेंसे गुजरते हैं तो सूर्यबिम्बपर छोटे-से कलंकके समान चलबिन्दु दिखलायी पड़ता है। ज्योतिषी इसे ग्रहण-जैसा कोई महत्त्व नहीं देते हैं, पर आकाशीय यह घटना दर्शनीय होती है। सूर्य-कलंकसे इसकी भिन्नता, इसकी पूर्णतः गोलाई और शीघ्रगामितासे समझी जाती है। बुध सूर्यसे प्रायः साढे तीन करोड़ मीलपर रहते हैं।

निकटतर भूतमें ऐसा योग ६ नवम्बर १९६० को तथा शनिवार ९ मई १९७० ई० को हुआ था और भारत, चीन, रूस—एशिया, अफ्रीका, योरप, दक्षिणी अमेरिका, कुछ भागोंको छोड़कर उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, ग्रीनलैण्ड फीलीपाइन आदि ससारके प्रायः सभी देशोंमे देखा गया था। ऐसा ही योग निकटतम भूतकाल ९ नवम्बर १९७३ मे हुआ था। पुनः १२ नवम्बर १९८६ ई० को होगा। ज्योतिषके संहिताग्रन्थोंमे ऐसे योगको अनिष्ट-कारी बताया गया है और सत्तापरिवर्तनमें नेतृपरिवर्तन सम्भाव्य होता है। (बुध-सूर्यका बहिर्योग भी होता है—जब बुध-पृथ्वीके बीचमें सूर्य होते हैं।)

† आदित्येऽहनि सक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पारण चोपवास च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही॥

पुत्रवान् गृहीके लिये रविवार, संक्रान्तिमें भी पारण तथा उपवास वर्जित है।

‡ स्नानके लिये गरम जलकी अपेक्षा शीतजल, दूसरेके जलसे अपना जल, भूमिसे निकाले हुएकी अपेक्षा भूमिमें स्थित तालाबका और उससे झरनेका, उससे गङ्गाका और गङ्गासे समुद्रका जल अधिक पुण्यप्रद होता है।

चाहिये, अन्यथा नास्तिकतावश कीचड़में फँसी गायकी भाँति दुर्गतिमें पड़ना पड़ता है।*

जन्म-नक्षत्र अथवा अनिष्टफल देनेवाले नक्षत्रमें ग्रहण लगनेपर उसके दोषकी शान्तिके हेतु सूर्यग्रहणमे सोनेका और चन्द्रग्रहणमें चाँदीका बिम्ब तथा घोड़ा, गौ, भूमि, तिल एवं घीका यथाशक्ति दान देनेका महत्त्व शास्त्रोंमें प्रतिपादित है। भगवन्नाम-संकीर्तन और जप आदि तो सभीको करना ही चाहिये।

'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्'

वैदिक सूर्य तथा विज्ञान

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

गायत्रीके **'सवितुर्वरेण्यम्'** मन्त्रके ऋषिसे लेकर आजतक—जब भारतीय वैज्ञानिक मेघनाद शाहा, विदेशी वैज्ञानिक एडिंगटन, जीन्स, फाल्र, एडवर्ड आर्थर, मिलने या रसेलने भगवान् सूर्यके सम्बन्धमे बहुत छानबीन तथा खोज कर डाली है—वैदिक कालमें सूर्यकी सत्ता, गति तथा महत्ताके विषयमें जो सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिये गये थे, उनमे न तो कोई मौलिक अन्तर पड़ा है और न कोई ऐसी बात कही गयी है जो यह सिद्ध कर सके कि भारतीय सूर्यके वैज्ञानिक रूपसे अपरिचित थे तथा उन्हें केवल एक दैविक शक्ति मानकर उनके विषयमें छानबीन करना अपराध या पाप समझते थे। भारतीय सभ्यताकी प्राचीन कालीन सबसे बड़ी विशिष्टता है—विचार-स्वातन्त्र्य तथा विचार-औदार्य। प्रत्येक महापुरुष तथा मनीषीको पूरी स्वच्छन्दता थी कि वह जगत्के गूढ़तम सत्यकी खोज अपने ढंगसे करे और उसे प्राप्त करनेका स्वतन्त्र प्रयास करे। उदाहरणके लिये कपिल तथा कणादको ले। कपिल बुद्धसे बहुत पहले तथा उपनिषदोमेंसे कुछकी सग्रथनाके पूर्वके ऋषि हैं; इसमे संदेह नहीं है। श्वेताश्वतरोपनिषद्के **'ऋषिप्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे'**(५।१) से ही यह प्रकट है। पर कपिल वैदिक धारणाके विपरीत असख्य आत्मा या पुरुष मानते थे। प्रकृति सब आत्माओसे सम्बन्ध निबाहनेके लिये कार्यरत है। इसी प्रकार खेतोंमें गिरे अन्नको खाकर जीवननिर्वाह करनेवाले तपस्वी कणादके वैशेषिक दर्शनमें ईश्वरका उल्लेख नहीं है। इसलिये कुछ लोग उन्हे नास्तिक भी कहते हैं, जो उचित नहीं है। पुनर्जन्म और कर्मफलको माननेवाला व्यक्ति नास्तिक कैसे हो सकता है? अतः कणादकी रचनाको छः आस्तिक-दर्शनोंमें माना गया है।

तात्पर्य यह है कि हिंदू या आर्य-धर्म सदासे वैज्ञानिक खोज तथा निरन्तर अनुसन्धानमे लगा रहा। किंतु वेदमे वर्णित प्रत्येक विषयकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बहुत समझ-बूझकी आवश्यकता पड़ती है। वैदिक प्रसङ्गोंमें शब्दके अर्थका उसके सामान्यतः प्रचलित अर्थसे निश्चय नहीं करना चाहिये, न किया जा सकता है। बादरायण व्यासने वेदान्तसूत्र (१।२।१०) मे स्पष्ट लिख दिया है कि वैदिक शब्दोका अर्थ संदर्भके अनुसार करना समुचित है—**'प्रकरणाच्च'**। सम्बद्ध प्रसङ्गका अन्वितार्थ ही स्पष्टीकरण कर सकता है; क्योंकि प्रसङ्गको जाननेपर ही वाक्योंका अन्वय ठीक-ठीक बैठता और तात्पर्य ज्ञात होता है—वाक्यान्वयात् (७१।४।१९)। उदाहरणके लिये छान्दोग्य उपनिषद्मे 'प्राण' शब्दको

* सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति॥
(—महाभा० स० प० ७९)

लें। प्रश्न होता है—यह कौन-सा देव है ? उत्तर है—प्राण (१ । ११ । ४)। प्राणका अर्थ यहाँ ब्रह्म हुआ। वेदमें 'आकाश' केवल पञ्च महाभूत—(क्षिति, अप, तेज, वायु तथा आकाश) वाला ही एक महाभूत नहीं है। वह वेदान्तसूत्रके अनुसार (१ । १ । २२) ब्रह्मका (भी) वाचक है। अस्तु।

हमारे शास्त्रोमे १२ आदित्योका वर्णन है। आज विज्ञानने मान लिया है कि १२ सूर्योंका तो पता चला है, किन्तु बाकी कितने हैं, यह नहीं कहा जा सकता। यह भी सिद्ध है कि इन १२ आदित्योंमें जो हमसे सबसे निकट हैं, वे ये ही सूर्य हैं, जिन्हे हम देखते हैं। पर सभी आदित्योंमे ये सबसे छोटे हैं। जिन भगवान् सूर्यकी अनन्त महिमा है, वे स्यात् हमारी दृष्टिकी परिधिके बाहर है। आज विज्ञान भी कहता है कि ग्रहोंमें सूर्य सबसे बडे और प्रकाशमान होते हुए भी वास्तवमें सबसे छोटे और धुँधले है। यही नहीं, ये अपने निकटतम तारेसे कम-से-कम ३,००,००० गुना अधिक दूर हैं। सत्रहवीं सदीमे जॉन केपलरने यह हिसाब लगाया था। अति प्रकाशवान 'एरोस' (सूरः) पृथ्वीसे १ करोड़ ४० लाख मील दूर है। पृथ्वीसे सूर्यकी दूरीका जो हिसाब प्राचीन भारतीय ग्रन्थोसे लगता है, वे भी अब निर्धारित हो रहे हैं। पृथ्वीसे ९,२९,००,०००. मील दूरीका अनुमान तो लग चुका है। इतने विशाल सूर्य कैसे बन गये, यह विज्ञान केवल अनुमान कर सका है। इनका व्यास लगभग ८,६४,००० मील है। अणु-परमाणुके इन महान् पुञ्जको निकटसे देखनेसे वास्तवमे वे एकदम साफ प्रकाशकी तश्तरीसे नहीं, बल्कि प्रज्वलित देदीप्यमान चावलके कणोके समूह-से दीखते है। इनका अध्ययन अत्यन्त रोचक है।

इन्हीं सूर्यसे सृष्टिका पोषण होता है—यह हमारा शास्त्र कहता है। विज्ञान कहता है कि इनमे निहित ६६ तत्त्वोंका पता लग चुका है, जो पृथ्वीके लिये पोषक तथा जीवनदाता हैं; पर और कितने अनगिनत तत्त्व हैं तथा किस शक्तिने इनको एक ग्रहमें रख दिया है, इसका अनुमान भी नहीं लग पाता। यह विज्ञानका मत है कि जिन सूर्यसे हम प्रकाश पा रहे हैं, उनकी न्यूनतम केन्द्रीय उष्णता ६,००० डिग्रीकी अवश्य है। प्रतिक्षण ये सूर्य संसारको ३३७९×१० मान शक्ति दे रहे हैं। इनकी यह शक्ति प्रकाश तथा उष्णताके रूपमें प्राप्त हो रही है। यदि इस शक्तिका वजनमें कथन किया जाय तो सूर्यसे प्रतिक्षण प्रति सेकेण्ड चालीस लाख ४०,००,००० टन शक्ति झर रही है, जो हमारे ऊपर गिर रही है। इतनी शक्तिका क्षय होनेपर भी उनका शक्ति-कोष खाली नहीं हो रहा है और कैसे उतनी शक्ति बराबर बनती जा रही है—इसका उत्तर विज्ञानके पास नहीं है। विज्ञानके लिये यह 'अद्भुत रहस्य' है।

सूर्यका उपयोग

सूर्यका नाम द्वादशात्मा भी है; विवस्वान् तथा भगः भी है। **'सूर्यः सरति'** अर्थात् आकाशमें सूर्य खिसक रहा है, अतः आकाशके प्रलयका कारण होगा—यह भारतीय मान्यता है। आज विज्ञान भी कहता है कि १२ सूर्य धीरे-धीरे पृथ्वीके निकट आ रहे हैं और अधिक निकट आ गये तो प्रलय हो जायगी। आज विज्ञान सूर्यकी शक्तिका संकलन करके कोयला, पानी, ईंधन और बिजली—इन सबका काम उससे लेना चाहता है। बड़े-बडे यन्त्र इसलिये बनाये गये है कि सूर्यकी किरणोंसे प्राप्त शक्तिका संचय कर उससे काम लें। अमेरिकाकी 'टाइम' पत्रिकाके अनुसार इस समय ५०,००० अमेरिकन घरोमे सूर्य-शक्तिसे यन्त्रद्वारा प्रकाश प्राप्त करने, भोजन बनाने तथा मकानको गर्म रखनेका कार्य हो रहा है। इजरायलमें जितने मकान हैं, उनके पाँचवे अंशमे यानी २,२०,००० मकानोंमें सूर्य-शक्ति ही काम दे रही है। जापानके

बीस लाख (२०,००,०००) मकानोंमे सूर्य-शक्ति ही कार्य कर रही है । फ्रांसमे एक बड़ा छापाखाना केवल सूर्य-शक्तिसे चलता है । वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि यदि सूर्यकी शक्तिका ठीकसे संचय हो जाय तो आज संसारमें जितनी बिजली पैदा होती है, उसकी एक लाख (१,००,०००) गुना अधिक बिजली प्राप्त हो सकती है । आज हम भारतीय तो सूर्य-उपासना छोडते जा रहे हैं, पर पश्चिमीय जगत्ने (इस संदर्भमें) ३ मई, बुधवार १९७८ को सूर्य-दिवस मनाया था ! उस दिन अमेरिकन राष्ट्रपति कार्टरने सूर्यकी उपासना की थी । विश्व सूर्यकी महिमाको अधिकाधिक समझने लग गया है । भारतने अत्यन्त प्राचीन समयमें ही सूर्योपासना प्रारम्भ कर दी थी जो आज भी दैनन्दिन सन्ध्या-गायत्रीमें प्रचलित है ।

हमने ऊपर लिखा है कि भारतमें सदैव चिन्तन तथा विचारकी स्वतन्त्रता रही है तथा यदि प्रचलित धार्मिक विश्वासके प्रतिकूल गति ढूँढ निकाली गयी तो लोगोंने उनको धैर्यपूर्वक सुना और आदर किया । आर्यभट्टने छठी सदीमें गणितसे सूर्यकी गति, १२ महीनेका वर्ष, प्रति तीसरे साल एक माह जोड़नेकी विधि निकाली थी, ग्रहण आदिका निरूपण किया था । उन्हीं दिनों यदि वे मध्य यूरोप आदिमें उत्पन्न हुए होते तो इस अनुसन्धान आविष्कारके पुरस्कारमें मार डाले जाते!

यूनानमें ईसासे ५३० से ४३० वर्ष पूर्वका काल बड़े वैज्ञानिक खोजका वर्ष समझा जाता है । यह काल कपिल, कणाद, बादरायण आदिके बादका है । पर यूनानमें जब अनाक्सगोरसने यह सिद्ध किया कि सूर्य तथा चन्द्रमाकी गतिका वैज्ञानिक आधार है तो यूनानी गणतन्त्रने उन्हें 'अधार्मिक' कहकर प्राणदण्ड सुना दिया था । यह तो कहिये कि उनकी शासक पेरीक्लीजसे मित्रता थी, अतएव उन्होंने उसे राज्यसे भाग जानेमें सहायता दी, अन्यथा वह मृत्युके मुँहमे चला गया होता । ऐसी थी यूनानी धारणा !

भारतमें ऐसा कभी नहीं हुआ । अतएव आज भी सूर्य तथा चन्द्रमाके वैज्ञानिक अन्वेषणके प्रति हमको आदर तथा सहिष्णुताका भाव रखना पड़ेगा और तब हम किसी निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि समीक्षा अधिक स्पष्ट हो गयी है, पर वैदिक सिद्धान्त सर्वोपरि है ।

वैज्ञानिक सौरतथ्य

१-सूर्यका व्यास ८,८०,००० मील है अर्थात् वह पृथ्वीसे लगभग ११० गुना बड़ा है ।

२-सूर्यका भार भी पृथ्वीके भारसे लगभग ३,३३,००० गुना अधिक है । यदि समस्त सौरमण्डलके ग्रहोंके भारको सम्मिलित कर लिया जाय तो सूर्यका भार समस्त ग्रहोंके भारसे एक हजारगुना अधिक है ।

३-सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी ९ करोड़ ७० लाख मील है ।

४-सूर्यके प्रतिवर्ग इंचपर २०,००,००,००,००० मनका दबाव है तथा इसका तापक्रम ४,००,००,००० अंश है ।

५-सूर्यके केन्द्र भागका तापमान लगभग १६,००,००,००० सेंटीग्रेड है ।

६-प्रकाश-किरणोंका वेग प्रतिसेकंड ३,००,००० किलोमीटर है ।

७-सूर्यकी किरणोंको पृथ्वीतक पहुँचनेमें ८ मिनट १८ सेकंड समय लगता है ।

८-एक वर्षमें प्रकाश ९४,६३,००,००,००,००० किलोमीटरकी यात्रा करता है ।

९-सूर्यसे आकाशगङ्गाके केन्द्रकी दूरी लगभग ३०,००० प्रकाश-वर्ष है ।

१०-सूर्यको आकाशगङ्गाके केन्द्रकी एक परिक्रमा पूरी करनेमें लगनेवाला समय २५ करोड़ वर्ष है ।

११-सूर्यकी आयु लगभग ६ अरब वर्ष है ।

प्रेषक—श्रीजगन्नाथप्रसादजी, बी० काम०

सूर्य, सौरमण्डल, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा

(लेखक—श्रीगोरखनाथसिंहजी, एम्० ए०, अंग्रेजी-दर्शन)

एक अंग्रेजी कहावतके अनुसार (Man does not live on bread alone) 'मनुष्य केवल रोटीसे ही जिंदा नहीं रहता है' उसे अपनी जिज्ञासाकी शान्तिके लिये कुछ और चाहिये। इसमें उसका सम्पूर्ण परिवेश—जीव, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्म सभी आते हैं। पुनश्च जीव और ब्रह्माण्डकी प्रकृतिमें पर्याप्त समानताएँ हैं। इस उद्देश्यसे भी यह मीमांसा समीचीन है। इसी तथ्यको हावर्ड विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर एव ज्योतिषी हार्लो शेपली (Harlow Shapley) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तारे और मनुष्य—बढते हुए ब्रह्माण्डमे मानवीय प्रतिक्रिया' (Stars and Human—Response to an expanding universe) के तीसरे अध्यायमें निम्न प्रकारसे व्यक्त किया है—'मनुष्यके शरीरमे जितने तत्त्व हैं, वे सब-के-सब पृथ्वीकी ठोस पपडीमे या उसके ऊपर मौजूद हैं। यदि सबका नहीं तो उनमेंसे अधिकांश-के अस्तित्वका तारोंके उत्तप्त वातावरणोंमें भी परिचय मिला है। जन्तुओंके शरीरोमे किसी प्रकारके भी ऐसे परमाणु नहीं मिले हैं, जिनकी उपस्थिति अजीव-परिवेशमे सुपरिचित न हो। स्पष्ट है कि मनुष्य भी तारोंके साधारण द्रव्यसे ही वना है और उसे इस वातका गर्व होना चाहिये।

इस वातमे जन्तु और पौधे तारोंसे बढकर हैं। अणुओ तथा आणविक संगठनोकी जटिलतामें जीवित प्राणी, अजीव-जगत्के पारमाणविक संयोजनोसे वहुत आगे वढ गये हैं। कटरपिलरकी रचना कार्बनिक-रसायन-सम्बन्धी रचनाकी तुलनामें सूर्यके प्रज्वलित वातावरण तथा अन्तरङ्गकी रासायनिक संरचना वहुत ही सरल पायी गयी है। यही कारण है कि हम कीटडिम्भ (Insect Larvae)की अपेक्षा तारोंका रहस्य अधिक समझ सके हैं। तारोंकी प्रक्रियाएँ गुरुत्वाकर्षण, गैसों तथा विकिरणके नियमोंके अनुसार होती हैं। अतः उनपर दवाव, घनत्व एवं तापमानका प्रभाव पड़ता है; किंतु प्राणियोंके शरीर गैसो, द्रवो तथा ठोस पदार्थोंके निराशाजनक मिश्रण हैं—निराशाजनक इस अर्थमे कि उनके लिये हम कोई परिपूर्ण गणितीय तथा भौतिक-रासायनिक सूत्र प्राप्त करनेमें सफल नहीं हो सके हैं। जीवरसायन विज्ञानी (Bio-chemis) को जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, उनको देखते हुए ताराभौतिकज्ञ (Astro physicist) का काम वहुत ही सरल है।'

यह आकाश तारों, ग्रहों, उपग्रहों, उल्काओं तथा धूमकेतुओसे परिपूर्ण है। तारे स्वय प्रकाशमान होते हैं। सूर्य* भी विभिन्न गैसोसे युक्त एक प्रकारका तारा है। इसमें पृथ्वी-जैसे कई लाख गोले समा सकते हैं। इसकी दूरी पृथ्वीसे लगभग १५ करोड किलोमीटर है। यह पृथ्वीके निकटका सवसे वड़ा तारा है; इसलिये इतना विशाल दिखायी पड़ता है।

आकाशमे उन पिण्डोको सौरमण्डल कहा जाता है, जिनका सम्बन्ध सूर्यसे है। ये सूर्यके चारो ओर परिक्रमा करते हैं। इन्हे ग्रह कहा जाता है। इनमेंसे पृथ्वी भी एक ग्रह है। इसके अतिरिक्त आठ अन्य ग्रह भी हैं। ये सव अपनी-अपनी कक्षामें सूर्यके चारों ओर चक्कर लगाते हैं। सूर्यके चारो ओर चक्कर लगानेके साथ ये ग्रह पृथ्वीकी भाँति अपनी धुरीपर भी चक्कर लगाते हैं। सूर्य भी अपनी धुरीपर घूमता है। इस सौरमण्डलमें ३० उपग्रह भी हैं। उपग्रह हमारी धरती-जैसे ग्रहोंके चारों ओर घूमते हैं। इसके अतिरिक्त १५०० सूक्ष्मपिण्ड भी सौर-

* वैज्ञानिक भौतिक ज्योति पिण्डका ही विश्लेषण करते हैं। उनकी शैली-परम्परामें ग्रहोंके लिये एकवचनका प्रयोग मान्य है। हमने उसे उसी रूपमें रहने दिया है। (आधिदैविकरूपके पूज्य होनेसे आदरार्थक वहुवचन प्रयोज्य होता है।) [—सं०]

ग्रहोंकी सूर्य-परिक्रमा
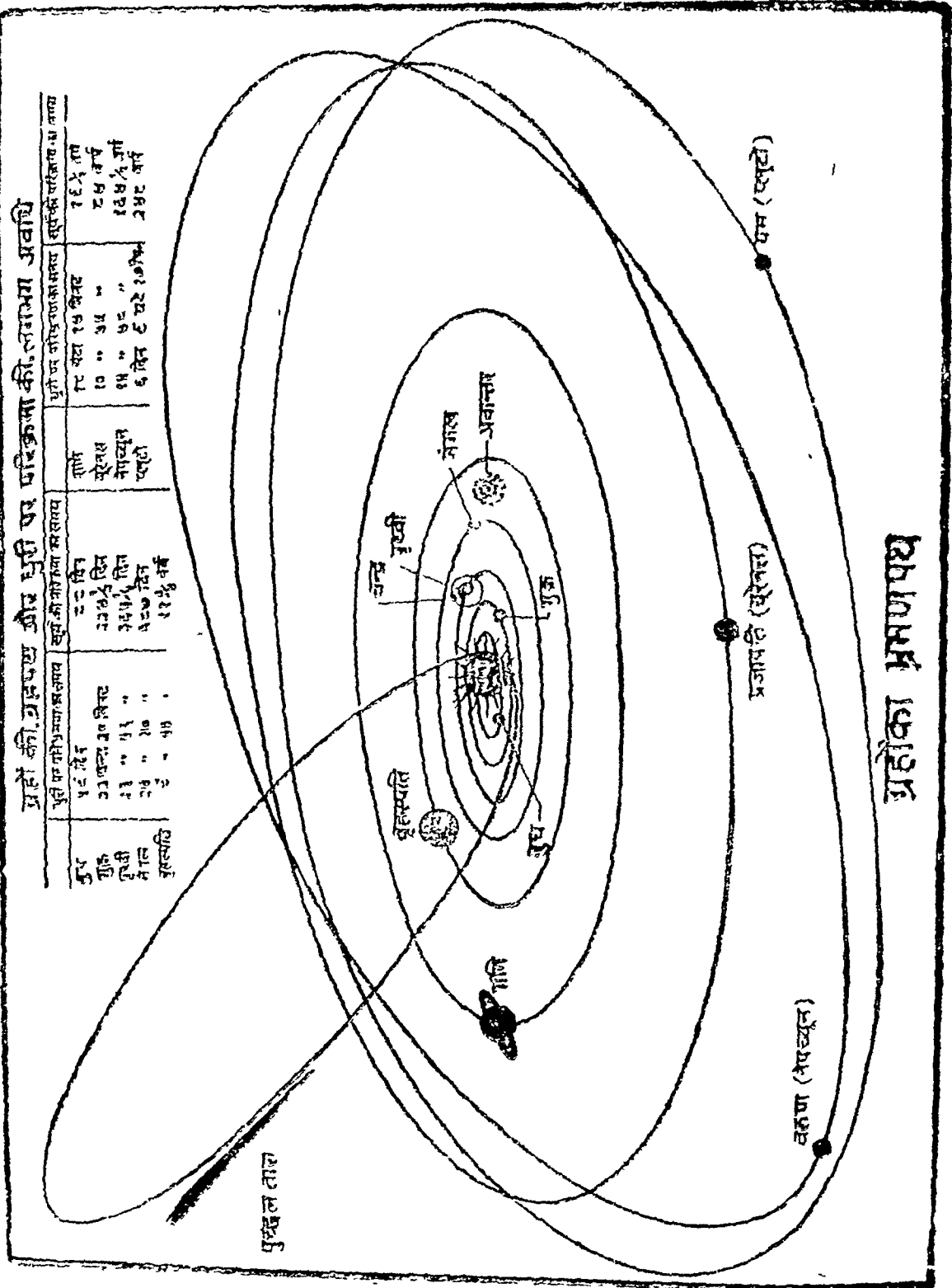
परिवारमे है। उल्लेखनीय है कि मनुष्यद्वारा निर्मित उपग्रह भी अनेक है। इस प्रकारका उपग्रह सर्वप्रथम १९५७ ई०मे बना। ये उपग्रह कुछ घण्टोमे ही पृथ्वीका एक चक्कर लगा लेते है।

चन्द्रमा पृथ्वीका उपग्रह है। यह २९ दिनोंमें पृथ्वीका एक चक्कर लगाता है। यह पृथ्वीसे ४ लाख किलोमीटर दूर है। मनुष्य चन्द्रमापर १९६९ ई०मे सबसे पहली बार उतरा। फलतः अनेक भ्रान्तियोका निवारण हुआ। सूर्यके पासवाला ग्रह बुध है। इसके बाद क्रमसे शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो हैं। ये अपनी कक्षाओमे होकर सूर्यके चतुर्दिक् चक्कर लगाते हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी अपनी कीलीपर २४ घंटेमे एक बार परिक्रमा करती है और उसके फलस्वरूप प्रातः, दोपहर, सायं, रात और दिन होते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा एक वर्ष (३६५ दिन)मे करती है। इसीसे जाड़ा, गरमी और बरसात होती है।

सूर्यसे हमे उष्मा और प्रकाश दोनो प्राप्त होते हैं। यही उष्मा ऊर्जा (Energy)का स्रोत है। ऊर्जाका उपयोग भापके इंजिनोके चलानेमे भी होता है। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि सूर्यसे मिलनेवाली ऊर्जासे ही लकड़ी, कोयला और पेट्रोल आदि बनते है। सूर्यकी उष्मा ही समुद्रके जलको भाप बनाकर वर्षाके रूपमें पहाडोपर पहुँचाती है। यही भाप पहाडोपर बर्फके रूपमें मिलती है। कालान्तरमे यही बर्फ पिघलकर नदियोमे बहती है, जिससे हमें विद्युत् बनानेके लिये 'ऊर्जा' मिलती है। हवा, आँधी एव तूफान भी सूर्यकी उष्मासे ऊर्जा पाकर चलते हैं। पृथ्वीपर जिन स्रोतोसे भी हमे ऊर्जा मिलती है, वे सब सूर्यसे ही ऊर्जा प्राप्त करते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पृथ्वीपर ऊर्जाका असली स्रोत यह सूर्य है, जिसके अभावमे इस पृथ्वीपर किसी जीवकी कल्पना करना असम्भव है। इसी बातको डाक्टर निहालकरण सेठी भी अपनी पुस्तक 'ताराभौतिकी'मे इस प्रकार दुहराते है—'सूर्यसे तो हमे गर्मी भी बहुत मिलती है। हमारे दिन-रात, हमारी ऋतुएँ, हमारे पेड़-पौधे तथा कृषि—वस्तुतः हमारा समस्त जीवन सूर्यकी उष्मापर ही आधारित है।'

सूर्यकी बनावट—सूर्यके सर्वग्रहणको देखकर वैज्ञानिकोको उसके अंदरकी बनावटके बारेमे पर्याप्त पता चल गया है। अतः वे उसे छः भागोमे विभाजित करते हैं। यथा (१) प्रकाश-मण्डल, (२) सूर्य-कलङ्क, (३) सूर्यकी जटाएँ, (४) पलटाऊ तह, (५) सूर्यमुकुट, (६) हाइड्रोजन अथवा कैल्शियम गैसे।

(१) प्रकाश-मण्डल—सूर्यका वह भाग है, जो हमको रोज दिखायी पड़ता है तथा जिसे हम प्रकाश-मण्डल कहते हैं। यह बहुत गर्म है।

(२) सूर्य-कलङ्क—चन्द्रमाकी भाँति सूर्यपर भी काले धब्बे हैं। ये कभी छोटे, कभी बडे, कभी कम और कभी बहुत-से दिखायी देते हैं। इन्हे 'सूर्य-कलङ्क' कहा जाता है। सूर्य-कलङ्क सदा एक ही जगहपर नहीं रहते है, क्योकि धरतीके समान सूर्य भी अपनी धुरीपर नाचता है। यह अपनी धुरीपर चौबीससे बत्तीस दिनोमे एक चक्कर पूरा कर लेता है।

(३) सूर्यकी जटाएँ—जब सम्पूर्ण ग्रहण लगता है तो सूर्यके काले गोलेके चारो ओर जलती गैसोकी लम्बी-लम्बी ज्वालाएँ निकलती हुई दिखायी पड़ती हैं। ये जटाएँ लाखो मील लम्बी होती है। ये प्रकाश-मण्डलसे भी अधिक गरम है तथा इसकी तह करीब १,००० मील मोटी है।

(४) पलटाऊ तह—प्रकाश-मण्डलके ऊपर उससे कुछ कम गर्म गैसोकी तहको 'पलटाऊ तह' कहते है।

इस तहमें वे सभी तत्त्व हैं, जो धरतीपर पाये जाते हैं। परंतु भयानक गर्मीके कारण ये पदार्थ अपनी असली हालतमें वहाँ नहीं रह सकते। इसमें हीलियम नामकी एक गैस भी पायी जाती है।

(५) **सूर्य-मुकुट**—सूर्यके गोलेके बाहर सूर्यका मुकुट है। इसका आकार सदा एक-सा नहीं रहता है। यह सूर्यके प्रकाश-मण्डलसे बीस-पचीस लाख मील ऊपरतक फैला है। यह गैसकी एक बहुत ही पतली झीनी तह है। सूर्यकी जटाएँ सूर्य-मुकुटके बाहर फैली हैं।

(६) **हाइड्रोजन गैस**—सूर्यमें हाइड्रोजन गैस बादलके रूपमें कलङ्कोंके पास चक्कर काटती हुई जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त सूर्यपर कैल्शियमके बादल भी हैं। ये बड़े ही सुन्दर जान पड़ते हैं।

पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी—पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९,२८,७०,००० मील है। यह दूरी इतनी है कि सूर्यके प्रकाशको; जो १,८६,००० मील प्रति सेकंडके वेगसे चलता है, पृथ्वीतक पहुँचनेमें लगभग ८ मि० १८ से०का समय लग जाता है।

सूर्यका व्यास—इसका व्यास ८,६४,००० मील है। यह सख्या पृथ्वीके व्याससे १०० गुनीसे भी अधिक है।

सूर्यका भ्रमण—सूर्य पृथ्वीकी तरह अपने अक्षपर घूम रहे हैं। ये चार सप्ताहमें एक चक्कर लगाते हैं। वैज्ञानिकोंके अनुसार सूर्यकी रचना 'ठोस' नहीं है; बल्कि 'गैसीय' है। यह अनेक प्रकारकी गैसोंसे निर्मित है, जो इसकी अनन्त उष्मा और ऊर्जाके कारण है और ये ही इस पृथ्वीके समस्त ऊर्जाके स्रोत हैं।

ब्रह्माण्डकी परिभाषा तथा उसका स्वरूप—आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, ज्ञात तथा अन्य अनेक अज्ञात पिण्ड जिसमें स्थित हैं; उसे ब्रह्माण्ड (Universe) कहते हैं। यह शब्द 'विश्व' तथा जगत्‌का पर्याय है। प्रारम्भमें गैलेक्सी (Galaxy) शब्द 'मिल्की-वे' (Milky way) का पर्याय था। इसका अर्थ था 'दूधियामार्ग'। भारतमें इसे 'आकाशगङ्गा' अथवा 'मन्दाकिनी' कहते हैं। इसमें असंख्य तारे हैं। हमारा सूर्य भी उन्हींमेंसे एक तारा है। जितने तारे आँखोंसे अथवा दूरबीनसे दिखायी पड़ते हैं, वे सब आकाशगङ्गाके ही सदस्य हैं। यही हमारा विश्व है। इसका विस्तार बहुत बड़ा किंतु परिमित है।

आकाशमें कुछ ऐसी वस्तुएँ भी हैं, जो तारोंके समान बिन्दुसदृश नहीं हैं; किंतु बादलके टुकड़ेके समान दिखायी देती हैं। इन्हें 'नीहारिका' (Nebula) कहते हैं। इनमेंसे कुछ आकाशगङ्गाके सदृश हैं तथा उसीके अन्तर्गत आती हैं। परंतु करोड़ों नीहारिकाएँ हमारी आकाशगङ्गासे (हमारे विश्वसे) बिल्कुल बाहर और बहुत ही अधिक दूरीपर स्थित हैं। इन्हें 'अङ्गाङ्ग नीहारिकाएँ' (Extra-Galetic Nebulae) कहा जाता है।

ये 'अङ्गाङ्ग नीहारिकाएँ' हमारी आकाशगङ्गाकी तरह असंख्य तारोंके समूह हैं। इन अङ्गाङ्ग नीहारिकाओंके समूह भी हमारे विश्वकी तरह दूसरे विश्व हैं। इस प्रकारसे इस ब्रह्माण्डमें कई करोड़ विश्व हैं। अतः 'विश्व' शब्द अपने प्राचीन अर्थमें न तो हमारी 'आकाशगङ्गा'के लिये उपयुक्त है और न 'अङ्गाङ्ग नीहारिकाओं' के लिये ही। इन्हें अब 'उपविश्व' (Sub-Universes) अथवा द्वीपविश्व (Islands universes) कहने लगे हैं; तथापि 'विश्व' शब्द अब भी इनके लिये प्रचलित है और इसीके द्वारा इन करोड़ों द्वीपविश्वोंके अखिल समुदायको भी व्यक्त किया जाता है, जो सर्वथा भ्रामक है। अतः इसके स्थानपर 'ब्रह्माण्ड' शब्दका प्रयोग करना ज्यादा समीचीन होगा। ब्रह्माण्ड अनन्त है।

ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके सिद्धान्त—ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके सिद्धान्त उच्चतरगणित—विशेषकर अल्बर्ट आइन्स्टीन (Albert Einstein) के सापेक्षतावादके सिद्धान्त

(Theory of Reletivity) पर आधारित हैं। इन सिद्धान्तोमे दो प्रमुख है—(१) विकासवादी सिद्धान्त तथा (२) सतुलित ब्रह्माण्डका सिद्धान्त । प्रथमके अनुसार ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति शक्तिके एक विशाल गोलेके विराट् विस्फोटके फलस्वरूप हुई और उस विस्फोटसे उत्पन्न मन्दाकिनियाँ अब भी घूम रही हैं। गणितज्ञोंने यहाँतक हिसाब लगाया है कि यह विस्फोट ५० खरबसे ८० खरब साल पहलेके बीचमें हुआ। इस मतके वैज्ञानिकोंका कथन है कि वर्तमान स्थिति बार-बार घटित होनेवाली प्रक्रियाकी ही एक मंजिल है। कोई एक समय ऐसा आयेगा, जब यह प्रक्रिया उलट जायगी, इस विश्वका प्रलय हो जायगा और ब्रह्माण्ड सिकुडकर फिर एक विशाल गोला बन जायगा। तत्पश्चात् पुनः विस्फोट होगा—सृष्टिकी शुरुआत होगी।

संतुलित ब्रह्माण्डके सिद्धान्तके अनुसार—इस ब्रह्माण्डकी न तो कोई शुरुआत है और न कोई अन्त। इसमे द्रव्यका विभाजन सदासे रहा है और आगे भी सदा रहेगा। जैसे-जैसे मन्दाकिनियाँ छितराती जाती हैं, वैसे-वैसे नयी मन्दाकिनियोंके निर्माणके लिये आवश्यक द्रव्य इस गतिसे पैदा होता जाता है कि वर्तमान मन्दाकिनियोंकी कमी पूरी हो सके। लेकिन वर्तमान मन्दाकिनियाँ कहाँ जायँगी? चूँकि ये ज्यादा-से-ज्यादा तेजीके साथ एक दूसरेसे अलग हटती जा रही हैं और इससे इनकी गति और भी बढती जा रही है, इसलिये अन्तमे जाकर इनकी रफ्तार प्रकाशकी गतिके बराबर हो जायगी। वर्तमान सिद्धान्तोंके अनुसार पदार्थ या द्रव्य इतनी द्रुतगति नहीं प्राप्त कर सकता है। तो क्या ये मन्दाकिनियाँ गायब हो जायँगी? इसका निश्चित उत्तर अभी विज्ञानके पास नहीं है।

ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मकी मीमांसा—अन्तिम प्रश्न है ब्रह्माण्ड और ब्रह्मकी मीमांसाका। इस सम्बन्धमे भी हार्लो शेपली महोदयने पुस्तकके प्रथम अध्यायमे निम्नवत् विवेचन किया है। उनका प्रश्न है—'यह ब्रह्माण्ड क्या है?' इसके उत्तरमे उनका कहना है—'ब्रह्माण्ड-रचनाके सम्बन्धमे विचार और अनुसंधानमें व्यस्त वैज्ञानिक और वे थोडेसे दार्शनिक जिनके अध्ययनमें ब्रह्माण्डविज्ञान (Cosmology) भी समाविष्ट है, शीघ्र ही इस परिणामपर पहुँचते हैं कि यह भौतिक जगत् जिन मूलभूत सत्ताओं-(Entities)-के संयोगसे बना है या जिनके द्वारा हमें उसका ज्ञान प्राप्त होता है और जिनकी सहायतासे हम उसका पर्याप्त स्पष्टतासे वर्णन कर सकते हैं, उनकी संख्या चार है। हम इन्हे आसानीसे पहचान सकते हैं; इनका नामकरण कर सकते हैं और किसी हदतक इन्हें एक-दूसरेसे पृथक् भी कर सकते है। सम्भव है कि निकट भविष्यमे यह सख्या चारसे अधिक हो जाय। अतः सुगमताके लिये हम भौतिक विज्ञानके जड़जगत्को और शायद समस्त जीवजगत्को भी इन्हीं चार सत्ताओंके ढाँचेमे निविष्ट करनेके लोभका संवरण नहीं कर सकते। ये चार सत्ताएँ निम्न हैं—(१) आकाश(space,)(२)काल (Time,)(३)द्रव्य (Matter) और (४) ऊर्जा (Energy)। इनके अतिरिक्त अनेक उपसत्ताओसे भी हम परिचित हैं; यथा गति, वर्ग, पाचन-क्रिया (Metabolism),एण्ट्रापी (Antropy),सृष्टि आदि।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यद्यपि अभीतक इन सत्ताओका अस्तित्व सर्वमान्य नहीं हुआ है और न ये एक दूसरेसे पृथक् ही की जा सकती है, तो क्या इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण सत्ताएँ हैं ही नहीं? विशेषतः क्या इन चारके अतिरिक्त भौतिक जगत्का एक ऐसा भी गुण और है जो इस ब्रह्माण्डके अस्तित्व तथा प्रवर्तनके लिये अनिवार्यतः आवश्यक हो? इस प्रश्नको दूसरे रूपमें यों पूछा जा सकता है—यदि आपको ये चारों मूल सत्ताएँ दे दी जायँ, आपको पूरा अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हो जायँ एवं आपके मनमे इच्छा भी

हो तो क्या आप आकाश, काल, द्रव्य और ऊर्जाके द्वारा इस जगत्के समान ही दूसरे जगत्का निर्माण कर सकते हैं ? या आपको किसी पाँचवीं सत्ता, मूलगुण या क्रियाकी आवश्यकता पड़ जायगी ?

शायद ऐसा सम्भव हो सकता है कि हम इस पाँचवीं सत्तापर अधिक जोर दे रहे हैं; किन्तु आगे चलकर इस रहस्यमय पाँचवीं सत्ताका अनेक बार जिक्र करना पड़ेगा। उसका अस्तित्व है, इसमें शङ्का करना कठिन है। तब क्या वह कोई प्रधान सत्ता है ?—शायद आकाश और द्रव्यसे भी अधिक आधारभूत है; सम्भवतः उसमें ये दोनों ही समाविष्ट हैं। क्या यह उपर्युक्त चारों सत्ताओंसे सर्वथा भिन्न है ? क्या उसके बिना काम नहीं चल सकता है ? क्या वह ऐसी सत्ता है, जिसके ही कारण तारों, पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंसे भरे हुए तथा प्राकृतिक नियमोंसे नियमित इस जगत्का कार्य यथाक्रम चल रहा है ? क्या इसकी अनुपस्थितिमें इस संसारकी समस्त क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जायँगी ?

सम्भवतः इस सम्बन्धमें कुछ पाठकोंका ध्यान 'ईश्वर'के नाम और उसके द्वारा व्यक्त धारणाकी ओर अवश्य किया जाय। सम्भवतः इस संसारमें कुछ ऐसे प्रच्छन्न लक्षण अवश्य विद्यमान हैं, जिनको प्रेरणा देनेवाली कोई स्वतन्त्र विश्वशक्ति है, जिसे हम निर्देशन, निरूपण, संचालन, सर्वशक्तिमान्की इच्छा अथवा चेतना कह सकते हैं। किन्तु यदि इस संचालन अथवा चेतनाका अस्तित्व हो भी तो उसे विश्वव्यापी होना चाहिये। (इसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वरकी संज्ञा दे सकते हैं, जिस ब्रह्मकी इच्छासे ही सृष्टिप्रक्रिया चलती है।)

ब्रह्माण्डके सम्बन्धमें निम्न तीन प्रश्न हो सकते हैं।

१. इसका स्वरूप क्या है ? २. इसकी क्रियाएँ कैसे घटित होती हैं ? ३. इसका अस्तित्व क्यों है ?

पहले प्रश्नका प्राथमिक तथा स्थूल उत्तर हम दे सकते हैं और इस साहसिक किन्तु आंशिक उत्तरमें हम जड़ द्रव्य गुरुत्वाकर्षण, काल, प्रोटोप्लाज्म आदिके सम्बन्धमें कुछ अस्फुट बातें कह सकते हैं। दूसरेके उत्तरमें हम प्राकृतिक नियमोंका, उष्माके लोप हो जानेका तथा नीहारिकाओंके निरन्तर दूरगामी पलायनका उल्लेख कर सकते हैं। किन्तु इसका अस्तित्व क्यों है ? इस प्रश्नके उत्तरमें शायद हमें यही कहना पड़े कि 'ईश्वर ही जाने'। यह ईश्वर सब कार्योंके कारणके रूपमें निरूपित किया जा सकता है और वास्तवमें वही इसका असली कारण भी है। वस्तुतः वही ब्रह्म है।

विज्ञान-दर्शन—समन्वय

उच्चतम वैज्ञानिक दर्शन-चिन्तनका निष्कर्ष है कि विश्व-ब्रह्माण्डकी संचालिका कोई 'विशिष्ट शक्ति' है। प्राच्य मनीषाने अचिन्त्य सद्रूपी ब्रह्मकी सैद्धान्तिक प्रतिष्ठा कर निश्चयात्मकरूपसे कह दिया है कि वही यह विशिष्ट शक्ति है—'एतद्वै तत्।' वस्तुतः उसी ब्रह्मका—उस ब्रह्मकी इच्छाशक्तिका-विलास यह विश्व है, जो अनन्त ब्रह्माण्डोंमें व्यक्त हुआ है। वह ब्रह्म यद्यपि सर्वत्र परिव्याप्त है, फिर भी गूढ होनेसे सूक्ष्मदर्शियोंके द्वारा ही और उनकी अग्र्य सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसे समझा जा सकता है। (क० उ० ३। १२), उसी दर्शन-दिशामें अग्रसर वैज्ञानिककी चिन्तना किसी विशिष्ट शक्तिका स्पर्श कर रही है। प्राच्यदर्शन और पाश्चात्त्य विज्ञानकी यह समन्वय-दिशा अद्भुत और स्पृहणीय है। ××××× सद्रूपी परब्रह्मसे सृष्टिके सब जीव और निर्जीव व्यक्त पदार्थ जिस क्रमसे उत्पन्न होते हैं, उसके ठीक विपरीत क्रमसे उनका लय अव्यक्त (सूक्ष्म) प्रकृतिमें और प्रकृतिका मूल ब्रह्ममें हो जाता है। सृष्टि और संहारका यह क्रम शाश्वत है। ब्रह्मके अव्याकृत आदि प्रतीक सूर्यको सूर्योपनिषद्ने इसी रूपमें दर्शाते हुए दिशा-निर्देश किया है—

सूर्याद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

पुराणोंमें सूर्यसम्बन्धी कथा

(लेखक—श्रीतारिणीशजी झा)

पुराणोमे सूर्यकी कथाएँ अनन्त है । इसका कारण यह है कि सूर्य प्रत्यक्ष देवता और जगच्चक्षु है । इनके बिना ससारकी स्थितिकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिये हिंदुओकी पञ्चदेवोपासनामे प्रथम स्थान इन्हींको प्राप्त है । वैदिक कर्मकलापके प्रारम्भमे पञ्चदेवताकी पूजा आवश्यक मानी गयी है, जिसमे पञ्चदेवताके आवाहनके लिये—**'सूर्यादिपञ्चदेवता इहागच्छत इह तिष्ठत'**—पढा जाता है । इससे भगवान् भुवन-भास्कर-की प्रमुखता स्वयं सिद्ध है ।

ऐसे प्रत्यक्ष देवकी कथा न केवल पुराणोंमें अपितु वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रोमे भूरिशः वर्णित है । किंतु यहाँ हमें पुराणोक्त सूर्य-कथापर ही थोडा प्रकाश डालना है । मार्कण्डेयपुराणके अनुसार विस्पष्टा, परमा विद्या, ज्योतिर्भा, शाभूवती, स्फुटा, कैवल्या, ज्ञान, आविर्भू, प्राकाम्य, संवित्, बोध, अवगति इत्यादि सूर्यकी मूर्तियाँ हैं । **'भूः भुवः स्वः'**—ये तीन व्याहृतियाँ ही सूर्यका स्वरूप है । ॐसे सूर्यका सूक्ष्मरूप आविर्भूत हुआ । पश्चात् उससे—**'महः, जनः, तपः, सत्यम्'** आदि भेदसे यथाक्रम स्थूल और स्थूलतर सप्तमूर्तिका आविर्भाव हुआ । इन सबके आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं । ॐ ही उनका सूक्ष्म रूप है । उस परम रूपका कोई आकार-प्रकार नहीं है । वही साक्षात् परब्रह्म है । इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण सूर्यको अव्याकृत ब्रह्मका मूर्तरूप निरूपित करके आगे उनकी उत्पत्ति-विवरण भी प्रस्तुत करता है; जो यह है—

अदितिने देवताओको, दितिने दैत्योको और दनुने दानवोको जन्म दिया । दिति और अदितिके पुत्र सम्पूर्ण जगत्मे व्याप्त हो गये । अनन्तर दिति और दनुके पुत्रोने मिलकर देवताओके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया । इस युद्धमे देवता पराजित हुए । तब अदितिदेवी सतानकी मङ्गलकामनासे भगवान् सूर्यकी आराधनामे लग गयीं । भगवान्ने उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कहा—'मै आपके गर्भसे सहस्रांशमे जन्म लेकर शत्रुओको विनष्ट करूँगा ।' अनन्तर अदितिके तपस्यासे निवृत्त होनेपर सूर्यकी 'सौषुम्न' नामक किरण उनके उदरमे प्रविष्ट हो गयी । देवजननी अदिति भी समाहित होकर कृच्छ्र-चान्द्रायणव्रत आदिका अनुष्ठान करने लगीं । किंतु उनके पति कश्यपजीको उनके द्वारा अनुष्ठान करना पसद नहीं आया । इसलिये एक दिन उन्होने अदितिसे कहा—'तुम प्रतिदिन उपवास आदि करके क्या इस गर्भाण्डको मार डालोगी ?' इसपर अदितिने कहा—'मै इसे मारूँगी नहीं । यह स्वयं शत्रुओकी मृत्युका कारण बनेगा ।'

अदितिने यह बात कहकर उसी समय गर्भाण्डको त्याग दिया । गर्भाण्ड तेजसे जलने लगा । कश्यपने उदीयमान भास्करके समान प्रभाविशिष्ट उस गर्भको देखकर प्रणाम किया । पश्चात् सूर्यने पद्मपलाशप्रतिभ कलेवरमें उस गर्भाण्डसे प्रकट होकर अपने तेजसे दिशा-मुखको परिव्याप्त कर दिया । उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे मुने ! इस अण्डको 'मारित' अर्थात् मार डालनेकी बात तुमने कही है, इसलिये इसका नाम **'मार्तण्ड'** होगा । यह पुत्र जगत्मे सूर्यका कर्म और यज्ञभागहारी असुरोका विनाश करेगा ।'

अनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा सूर्यके पास गये और अपनी सज्ञा नामकी कन्याको उनके हाथमे सौप दिया । संज्ञाके गर्भसे तीन सताने उत्पन्न हुई—यमुना नामकी एक कन्या और वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र । किंतु सज्ञाको सूर्यका तेज असह्य लगता था, इसलिये

वह अपनी जगह छायाको छोड़कर पिताके घर चली गयी। विश्वकर्मासे यह रहस्य मालूम होनेपर सूर्यने उनसे अपना तेज घटा देनेको कहा। विश्वकर्मा सूर्यकी आज्ञा पाकर शाकद्वीपमे उन्हें भ्रमि अर्थात् चाकपर चढ़ाकर तेज घटानेको उद्यत हुए। जब समस्त जगत्के नाभिस्वरूप भगवान् सूर्य भ्रमिपर चढ़कर घूमने लगे तब समुद्र, पर्वत एव वनके साथ सारी पृथिवी आकाश-की ओर उठने लगी। ग्रहो और तारोके साथ आकाश नीचेकी ओर जाने लगा। सभी समुद्रोंका जल बहने लगा। बड़े-बड़े पहाड़ फट गये और उनकी चोटियाँ चूर-चूर हो गयीं। इस प्रकार आकाश, पाताल और मृत्यु-भुवन—सभी व्याकुल हो उठे। समस्त जगत्को ध्वस्त होते देख ब्रह्माके साथ सभी देवगण सूर्यकी स्तुति करने लगे। विश्वकर्माने भी नाना प्रकारसे सूर्यका स्तवन कर उनके सोलहवें भागको मण्डलस्थ किया। पंद्रह भागके तेज शाणित होनेसे सूर्यका शरीर अत्यन्त कान्तिविशिष्ट हो गया। पश्चात् विश्वकर्माने उनके पंद्रह भागके तेजसे विष्णुका चक्र, महादेवका त्रिशूल, कुबेरकी शिबिका, यमका दण्ड और कार्तिकेयकी शक्ति बनायी। अनन्तर उन्होने अन्यान्य देवताओंके भी परम प्रभाविशिष्ट अस्त्र बनाये। (इस प्रकार उस तेजभागका विशिष्ट उपयोग हुआ।)

भगवान् दिवाकरका तेज घट जानेसे वे परम मनोहर दिखायी देने लगे। संज्ञा सूर्यका यह कमनीय रूप देखकर बड़ी प्रसन्न हुई।

भगवान् सूर्यकी उत्पत्ति और माहात्म्य आदिका विशेष विवरण भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें, वराहपुराणके आदित्योत्पत्ति नामक अध्यायों, विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके दशम अध्यायमें, कूर्मपुराणके ४०वें अध्यायमें, मत्स्यपुराणके १०१वे अध्यायमे और ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डके ५०वें अध्यायमें मिलता है। विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ वह सब नहीं लिखा जा रहा है। हाँ, विभिन्न पुराणोमे सूर्यकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ-कुछ भिन्नता पायी जाती है; पर उनकी उपास्यता और महत्ताके सम्बन्धमे सभी पुराण एकमत हैं। उनकी उपासनामें विशेष साधनकी आवश्यकता भी नहीं है। नमस्कार करनेमात्रसे ये देव प्रसन्न हो जाते हैं। कहा भी है—**'नमस्कारप्रियो भानुर्जल-धाराप्रियः शिवः'**। अतः सूर्योपस्थानसे और सूर्य-नमस्कारसे सूर्याराधन करना प्रत्येक कल्याणाभिलाषीका कर्त्तव्य है।

सूर्योपस्थान और सूर्य-नमस्कार

सन्ध्योपासना करनेवाले चार वैदिक मन्त्रोंसे सूर्यनारायणका उपस्थान (उपासना) करते हैं। क्रम यह होना चाहिये—दाहिने पैरकी एँड़ी उठाकर सूर्याभिमुख भक्ति-भावसे आप्लावित हृदयसे मन्त्रोंका पहले विनियोग करे और तब आगे नीचे झुके हाथ पसार कर खड़े-खड़े अर्थपर ध्यान रखते हुए निम्न प्रतीकात्मक चार मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करे—(१) ॐ उद्वयन्तमसस्परि०, (२) ॐ उदुत्यञ्जात-वेदसम्०, (३) ॐ चित्रन्देवानाम्०, (४) ॐ तच्चक्षुर्देवहितम्०। सूर्योपस्थानसे वर्चस्विता प्राप्त होती है।

सूर्य-नमस्कार—अपने आपमें सूर्याराधन भी है और स्वास्थ्यकर व्यायाम भी। आराधना—साधनासे सिद्धि मिलती है और व्यायामसे शारीरिक स्वास्थ्य-सौन्दर्यकी सम्पुष्टि होती है। यह एक विशिष्ट पद्धति है—सिद्धिकी और शारीरिक सौन्दर्य-सम्पत्ति प्राप्त करनेकी *।

* 'सूर्य-नमस्कार' सविधि आगे प्रकाश्य है।

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

(लेखक—श्रीराधेश्यामजी खेमका, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एव कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है । यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत् विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी, अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी-प्रभृति सैकड़ो देव-देवियाँ काशी-वासीजनोंके योग-क्षेम, सरक्षण, दुरित एवं दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं । इनमें द्वादश आदित्योका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है । यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योका संक्षिप्त माहात्म्य-चित्रण कथाओमे प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) लोकार्ककी कथा—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई । उन्होने सूर्यसे कहा—सप्ताश्व ! तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमे जाओ । धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है । उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, वैसा उपाय शीघ्र करो; किंतु राजाका अपमान न करना ।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया । उन्होने काशी पहुँचकर राजाकी धर्मपरीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, भिक्षु आदि बनकर उन्होने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगी, किंतु राजाके कर्तव्यमे त्रुटि या राजाकी धर्म-विमुखताकी गन्धतक उन्हें नहीं मिली ।

उन्होने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण शिवजीकी झिडकीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्याग कर काशीमे ही रहनेका निश्चय किया । काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ । वे गङ्गा-असि-सङ्गमके निकट भद्रवनी (भदैनी) में विराजमान हैं । वे काशीनिवासी लोगोका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते है । वाराणसीमे निवास करनेपर जो लोलार्कका भजन, पूजन आदि नहीं करते है, वे क्षुधा, पिपासा, दरिद्रता, दद्रु (दाद) फोडे-फुसी आदि विविध व्याधियोसे ग्रस्त रहते है ।

काशीमे गङ्गा-असि-सङ्गम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमें वर्णित है—

सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः ।
लोलार्ककरनिष्टप्ता असिधारविखण्डिताः ।
काश्यां दक्षिणदिग्भागे न विशेयुर्महामलाः ॥

(—स्कन्दपु० काशीखण्ड, ४६ । ५९, ६७)

(२) उत्तरार्ककी कथा—बलिष्ठ दैत्योद्वारा देवता बार-बार युद्धमे परास्त हो जाते थे । देवताओने दैत्योंके आतंकसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की । स्तुतिसे सम्मुख उपस्थित प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओने प्रार्थना की कि बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते है और हमे परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं । निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय, वैसा समाधायक उत्तर आप हमे देनेकी कृपा करे ।

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हे दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधायक उत्तर है । इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वकर्मा-द्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ । मूर्ति बनाते समय छेनीसे इसे तराशनेपर जो प्रस्तर-

खण्ड निकलेंगे वे तुम्हारे दृढ अस्त्र-शस्त्र होंगे। उनसे तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे।

देवताओंने वाराणसी जाकर विश्वकर्मा-द्वारा सुन्दर सूर्यमूर्तिका निर्माण कराया। मूर्ति तराशते समय उससे पत्थरके जो टुकड़े निकले, उनसे देवताओंके तेज और प्रभावी अस्त्र बने। उनसे देवताओंने दैत्योंपर विजय पायी। मूर्ति गढते समय जो गड्ढा बन गया था, उसका नाम उत्तरमानस (उत्तरार्ककुण्ड) पड़ा। वहीं कालान्तरमें भगवान् शिवसे माता पार्वतीकी यह प्रार्थना करनेपर कि **'बर्करीकुण्डमित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम्।'** (स्कन्दपु०, काशीखण्ड ४७। ५६) अर्थात् 'अर्ककुण्ड' (उत्तरार्ककुण्ड)का नाम बर्करी-कुण्ड हो जाय, वही कुण्ड बर्करीकुण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्तमानमें उसीका विकृत रूप 'बकरियाकुण्ड' है। यह अलईपुराके समीप है। उत्तररूपमें दी गयी शिलासे मूर्ति बननेके कारण उनका उत्तरार्क नाम पड़ा। उत्तरार्कका माहात्म्य बडा ही अद्भुत और विलक्षण है। पहले पौषमासके रविवारोंको वहाँ बड़ा मेला लगता था, किंतु सम्प्रति वह मूर्ति भी लुप्त है।

उत्तरार्कस्य माहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयान्वितः।
... ...
लभते वाञ्छितां सिद्धिमुत्तरार्कप्रसादतः।
(आदित्यपु०, रविवारव्रतकथा ३६–३८)

(३) साम्बादित्यकी कथा—किसी समय देवर्षि नारदजी भगवान् कृष्णके दर्शनार्थ द्वारकापुरी पधारे। उन्हे देखकर सब यादवकुमारोंने अभ्युत्थान एवं प्रणाम कर उनका सम्मान किया; किंतु साम्बने अपने अत्यन्त सौन्दर्यके गर्वसे न अभ्युत्थान किया और न प्रणाम ही; प्रत्युत उनकी वेषभूषा और रूपपर हँस दिया। साम्बका यह अविनय देवर्षिको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इसका थोड़ा-सा इङ्गित भगवान्के समक्ष कर दिया।

दूसरी बार जब नारदजी आये, तब भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें गोपीगण-मण्डलके मध्य बैठे थे। नारदने बाहर खेल रहे साम्बसे कहा—'वत्स! भगवान् कृष्णको मेरे आगमनकी सूचना दे दो।' साम्बने सोचा, एक बार मेरे प्रणाम न करनेसे ये खिन्न हुए थे। यदि आज भी इनका कहना न मानूँ तो और भी अधिक खिन्न होंगे; सम्भवतः शाप दे डालें। उधर पिताजी एकान्तमें मातृमण्डलके मध्य स्थित हैं। अनुपयुक्त स्थानपर जानेसे वे भी अप्रसन्न हो सकते हैं। क्या करूँ, जाऊँ या न जाऊँ! मुनिके क्रोधसे पिताजीका क्रोध कहीं अच्छा है—यह सोचकर वे अन्तःपुरमें चले गये। दूरसे ही पिताजीको प्रणाम कर नारदके आगमनकी सूचना उन्हें दी। साम्बके पीछे-ही-पीछे नारदजी भी वहां चले गये। उन्हें देखकर सबने अपने वस्त्र सँभाले।

नारदजीने गोपीजनोंमें कुछ विकृति ताड़कर भगवान्से कहा—'भगवन्! साम्बके अतुल सौन्दर्यसे ही इनमें कुछ चाञ्चल्यका आविर्भाव हुआ प्रतीत होता है।' यद्यपि साम्ब सभी गोपीजनोंको माता जाम्बवतीके तुल्य ही देखते थे, तथापि दुर्भाग्यवश भगवान्ने साम्बको बुलाकर यह कहते हुए शाप दे दिया कि एक तो तुम अनवसरमें मेरे निकट चले आये, दूसरा यह कि ये सब तुम्हारा सौन्दर्य देखकर चञ्चल हुई हैं, इसलिये तुम कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो जाओ।'

घृणित रोगके भयसे साम्ब काँप गये और भगवान्के समक्ष मुक्तिके लिये बहुत अनुनय-विनय करने लगे। तब श्रीकृष्णने भी पुत्रको निर्दोष जानकर दुर्दैववश प्राप्त रोगकी विमुक्तिके लिये उन्हें काशी जानेका आदेश दिया। तदनुसार साम्बने भी काशी जाकर विश्वनाथजीके पश्चिमकी ओर कुण्ड बनाकर उसके तटपर सूर्यमूर्तिकी स्थापना की एवं भक्तिभावसहित सूर्याराधनासे रोग-विमुक्त हुए।

तभीसे सब व्याधियोंको हरनेवाले साम्बादित्य सकल सम्पत्तियाँ भी प्रदान करते हैं। इनका मन्दिर सूर्यकुण्ड

मुहल्लेमे कुण्डके तटपर है। साम्बादित्यका माहात्म्य भी वडा चमत्कारी है।

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधिहरो रविः।
ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः॥

(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४८।४७)

(४) द्रौपदादित्यकी कथा—प्राचीन कालमे जगत्-कल्याणकारी भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पॉच पाण्डवोंके रूपमे प्रादुर्भूत हुए एव जगज्जननी उमा द्रौपदीके रूपमें यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुईं। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमे अवतीर्ण हुए।

महाबलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बड़ी विपत्तिमे पड़ गये। उन्हे राज्य त्यागकर वनोकी धूलि फॉकनी पडी। अपने पतियोंके इस दारुण क्लेशसे दुःखी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी इस आराधनासे सूर्यने उसे कलछुल तथा ढक्कनके साथ एक बटलोई दी और कहा कि जबतक तुम भोजन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयेगे वे सब-के-सब इस बटलोईके अन्नसे तृप्त हो जायँगे। यह सरस व्यञ्जनोंकी निधान है एवं इच्छानुसारी खाद्योंकी भण्डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाद यह खाली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमे सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त हुआ। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि विश्वनाथजीके दक्षिण भागमे तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी प्रतिमाकी जो लोग पूजा करेंगे उन्हे क्षुधा-पीड़ा कभी नहीं होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षय-वटके नीचे स्थित हैं। द्रौपदादित्यके सम्बन्धमे काशीखण्डमे बहुत माहात्म्य है। उसीकी यह एक बानगी है—

आदित्यकथामेतां द्रौपद्याराधितस्य वै।
यः श्रोष्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति॥

(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९।२४)

(५) मयूखादित्य-कथा—प्राचीन कालमे पञ्चगङ्गाके निकट 'गभस्तीश्वर' शिवलिङ्ग एव भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गला गौरीकी स्थापना कर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारों वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपतः त्रैलोक्यको तप्त करनेमे समर्थ हैं। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे। त्रैलोक्यको जलानेमें समर्थ सूर्य-किरणोसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा। वैमानिकोने तीव्रतम सूर्य-तेजमे फतिंगा बननेके भयसे आकाशमे गमनागमन त्याग दिया। सूर्यके ऊपर, नीचे, तिरछे—सब ओर किरणे ही दिखायी देती थी। उनके प्रखरतम तेजसे सारा ससार कॉप उठा। सूर्य इस जगत्की आत्मा हैं, ऐसा भगवती श्रुतिका उद्घोष है। वे ही यदि इसे जला डालनेको प्रस्तुत हो गये तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है? सूर्य जगदात्मा है, जगच्चक्षु है। रात्रिमें मृतप्राय जगत्को वे ही नित्य प्रातःकालमे प्रबुद्ध करते है। वे जगत्के सकल व्यापारोंके संचालक है। वे ही यदि सर्वविनाशक बन गये तो किसकी शरण ली जाय? इस प्रकार जगत्को व्याकुल देखकर जगत्के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देनेके लिये सूर्यके निकट गये। सूर्य भगवान् अत्यन्त निश्चल एव समाधिमे इस प्रकार निमग्न थे कि उन्हे अपनी आत्माकी भी सुधि नहीं थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिवको उनकी तपस्याके प्रति महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होने सूर्यको पुकारा, पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे। जब भगवान्ने अपने अमृत-वर्षी हाथोंसे सूर्यका स्पर्श किया तब उस दिव्य स्पर्शसे सूर्यने अपनी ऑखे खोलीं और उन्हे दण्डवत्-प्रणामकर उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'सूर्य! उठो, सब भक्तोंके क्लेशको दूर करो। तुम मेरे स्वरूप ही हो। तुमने मेरा और गौरीका जो स्तवन किया है, इन दोनों

स्तवनोंका पाठ करनेवालोंको सब प्रकारकी सुख-सम्पदा, पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धि, शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे एवं प्रिय-वियोगजनित दुःख कदापि नहीं होंगे। तुम्हारे तपस्या करते समय तुम्हारे मयूख (किरणें) ही दृष्टिगोचर हुए, शरीर नहीं; इसलिये तुम्हारा नाम मयूखादित्य होगा। तुम्हारा पूजन करनेसे मनुष्योंको कोई व्याधि नहीं होगी। रविवारके दिन तुम्हारा दर्शन करनेसे दारिद्र्य सर्वथा मिट जायगा—

त्वदर्चनान्नृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभविष्यति।
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारे त्वदीक्षणात्॥
(—स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९। ९४)

मयूखादित्यका मन्दिर मङ्गलागौरीमें है।

(शेष अगले अङ्कमें)

आचार्य श्रीसूर्य और अध्येता श्रीहनुमान्

[एक भावात्मक कथा-विवेचन]

(लेखक—श्रीरामपदारथसिंहजी)

प्रकाश विकीर्ण कर लोगोंको सत्यका ज्ञान देनेवाले एवं अचेतनोंमें चेतनाका संचार करनेवाले सर्वप्रेरक सूर्यदेव आचार्योचित पूजाके योग्य हैं। उनके ज्ञान-दानकी प्रशंसा वेदकी ऋचाओंमें भी सुशोभित है। तथ्योद्घाटनके लिये एक प्रमाण यहाँ पर्याप्त होगा—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः॥ (—ऋ० १। ६। ३)

'हे मनुष्यो! अज्ञानीको ज्ञान देते हुए, अरूपको रूप देते हुए ये सूर्यरूप इन्द्र किरणोंद्वारा प्रकाशित होते हैं।'

सूर्यदेवद्वारा वेद-वेदाङ्ग-कर्मयोगादिकी शिक्षा दी जानेकी चर्चा अन्य आर्ष ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होती है। उनसे मनु, याज्ञवल्क्य, साम्ब आदि शिक्षित होकर कृतार्थ हुए। अञ्जनादेवीके अङ्कमें त्रिभुवनगुरु शिव जब अवतरित हुए, तब उनके भी आचार्य सूर्यदेव ही बने। श्रीआञ्जनेय सविधि विद्या-अध्ययनके लिये उन्हींके पास गये—'*भानु सों पढ़न हनुमान गये*' (—हनु० बा० ४)।

भगवान् सूर्य और हनुमान्‌जीके मध्य गुरु-शिष्य-सम्बन्धका प्रारम्भ जिस ढंगसे हुआ, वह बड़ा ही रहस्यपूर्ण और सांकेतिक है। आदिकाव्यमें कथा आती है कि बाल हनुमान्‌को एक बार बड़ी भूख लगी। उन्होंने उदीयमान सूर्यको लाल फल समझा और उछलकर उन्हें निगल लिया। उसी प्रसङ्गका स्मरण हनुमानचालीसामें निम्नाङ्कित रूपमें है—

जुग सहस्र जोजन पर भानू।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥
(—हनुमानचालीसा १८)

उस दिन सूर्यग्रहण होनेवाला था। राहु हनुमान्‌जीके डरसे भागा और सुरेन्द्रसे शिकायत करने गया कि उसका भक्ष्य दूसरेको क्यों दे दिया गया? देवराज ऐरावतपर चढ़कर राहुको आगे कर घटनास्थलको चले। राहु उनके भरोसे सूर्यदेवकी ओर बढ़ा कि हनुमान्‌जी उसे बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े। वह 'इन्द्र-इन्द्र' कहता हुआ भागा! देवराज 'डरो मत' कहते हुए आगे बढ़े कि हनुमान्‌जी ऐरावतको ही बड़ा फल समझकर पकड़ने दौड़े! वह भी उल्टे पाँव भागा। इन्द्र भी डरे और उन्होंने बचावके लिये वज्रप्रहार कर दिया, जिससे हनुमान्‌जीका चिबुक कुछ टेढ़ा हो गया और उन्हें तनिक मूर्च्छा भी आ गयी! इससे पवनदेवको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने क्रुद्ध होकर अपनी गति बंद कर दी जिसके कारण सबके प्राण संकटमें

आचार्य सूर्य और अध्येता हनुमान्

श्रीसूर्यभगवान
आरसाविल्ली
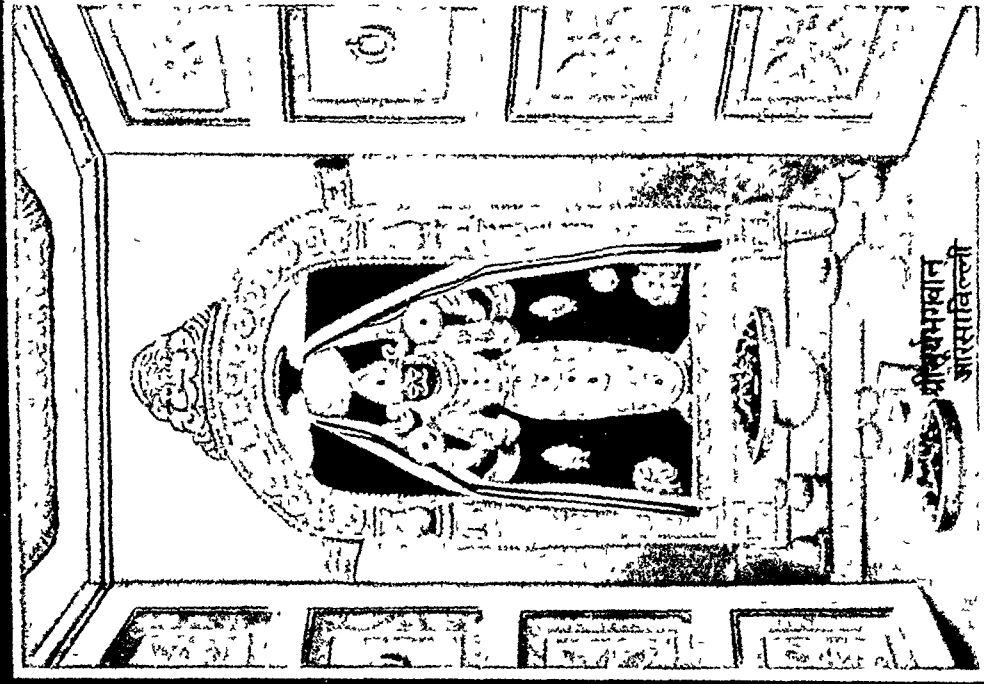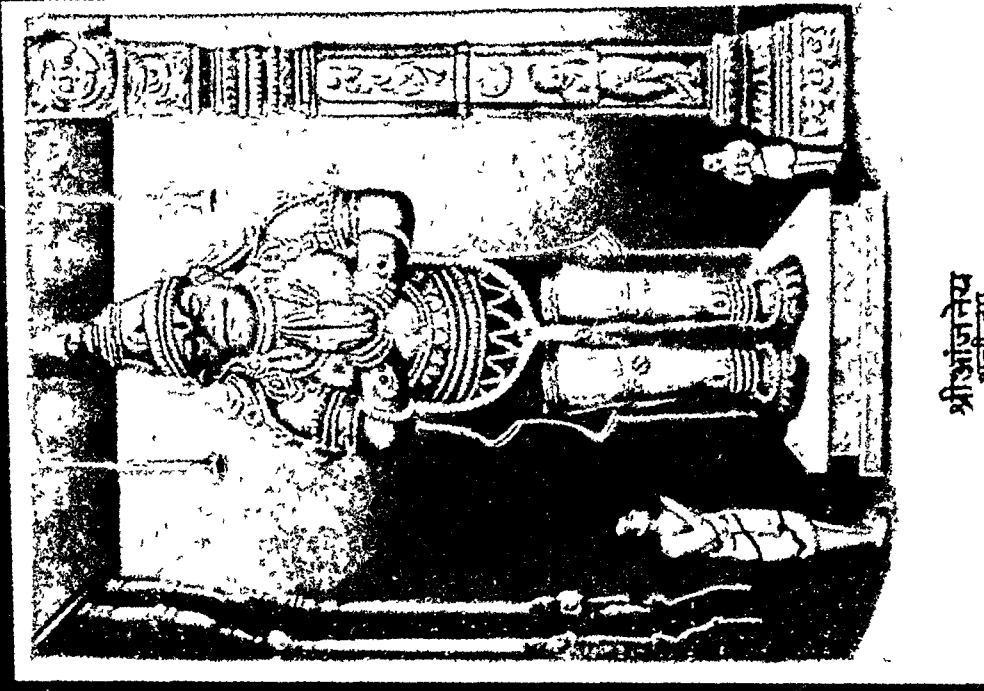
श्रीआंजनेय
शुचीन्द्रम

दाक्षिणात्य प्राचीन मूर्तियाँ

पड गये । इसके बाद सब देवता ब्रह्माजीको साथ लेकर पवनदेवके पास गये और उन्हे प्रसन्न किया तथा हनुमान्‌जीको आशीर्वाद और अपने-अपने शस्त्रास्त्रोंसे अवध्यताका वर दिया । उस समय सूर्यदेवने भी उन्हे अपने तेजका शतांश देते हुए शिक्षा देकर अद्वितीय विद्वान् बना देनेका आश्वासन दिया; यथा—

मार्त्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः ।
तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥
यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ।
(—वा० रा० ७ । ३६ । १३-१४)

उपर्युक्त परिस्थितिमे सूर्य भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको शिक्षा देनेका जो आश्वासन दिया, वह विचारणीय है । उन्हे अपने तेजका शतांश ही देना था तो दूसरे देवताओकी भॉति अपने शस्त्रास्त्रोसे अवध्यताका वर देते या कोई दूसरी वस्तु; जैसे श्रीमद्भागवतके अनुसार राज्याभिषेकके समय महाराज पृथुको जब सब अपने-अपने पासकी कुछ-न-कुछ उत्तम वस्तु देने लगे, तब सूर्यदेवने उन्हे रश्मिमय बाण दिये—**'सूर्यो रश्मिमयानिषून्'** (—४ । १५ । १८) । हनुमान्‌जीको भी वैसा ही कुछ दिया जा सकता था, पर उन्हे मिला शिक्षाका आश्वासन । इससे ध्वनित होता है कि वे सूर्यदेवके पास ज्ञानके लिये ही गये थे । उनकी ऊँची उडान आचार्याभिमुख होनेके निमित्त हुई थी ।

ज्ञान जीवनका फल है । सूर्यदेव ज्ञानस्वरूप हैं । अतः ज्ञानरूपी फलकी प्राप्तिके लिये बाल हनुमान् उनकी ओर उडे । उनके भावकी शुद्धताका प्रमाण यह भी है कि सूर्यदेवने उन्हे निर्दोष ही नहीं वरन् दोषानभिज्ञ भी समझा और जलाया नही । यथा—

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः ।
कार्यं चास्मिन् समायत्तमित्येवं न ददाह सः ॥
(—वा० रा० ७ । ३५ । ३०)

'यह बालक दोषको जानता ही नहीं है और आगे इससे बडा कार्य होगा, यह विचारकर दिवाकरने इन्हे जलाया नहीं ।'

हनुमान्‌जीकी भूख शुभेच्छाका प्रतीक है, जो ज्ञानकी प्रथम भूमिका है । अतः उन्हे सूर्यदेवकी अनुकूलता प्राप्त हुई । सम्पाती भी सूर्यदेवके समीप उड़कर चले गये थे, पर शुभेच्छापूर्वक नही, अभिमानपूर्वक । उन्होने स्वयं स्वीकारा है—**'मै अभिमानी रबि निअरावा'** (—रा० च० मा० ४ । २७ । २) । परिणाम प्रतिकूल हुआ । उनके पंख जल गये—**'जरे पंख अति तेज अपारा'** (—रा० च० मा० ४ । २७ । २) । हनुमान्‌जी ज्ञानके भूखे थे, सम्पातीकी भॉति मानके भूखे नही थे । उनकी तीव्र भूख सद्‌गुणकी थी । सद्‌गुणके उत्कर्षसे ज्ञान होता है—**'सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्'** (—गीता १४ । १७) । इसीलिये ज्ञानस्वरूप सूर्यदेवने उन्हे विद्या देनेका आश्वासन दिया ।

देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत गज वस्तु—वाहनादिके लोभका और राहु प्रमादका प्रतीक है, जो क्रमशः रजोगुणी और तमोगुणी है । लोभ और प्रमाद ज्ञानके बाधक हैं । प्रमादी शरीर-सुखको जीवनका बड़ा फल समझता है और ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करता । वह विद्याको उदरपूर्तिका साधन समझता है; यथा—

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं
(—रा० च० मा० ७ । ९९ । ४)

लोभी दृष्ट-अदृष्ट सुखको जीवनका बडा फल समझकर उसके लिये प्रयत्न करता है, ज्ञानके लिये नहीं । अतः लोभ भी ज्ञानका शत्रु है और प्रकारान्तरसे प्रमादकी सहायता करता है । इसीलिये राहुकी सहायतामे ऐरावत आता है । ज्ञानेच्छुको प्रमाद और लोभको दबाना चाहिये । हनुमान्‌जी राहु और ऐरावतको डराकर दूर कर देते है । वे वायु, गरुड़ और मनको भी मात

कर देनेवाली गतिसे सूर्यदेवकी ओर आकाशमें उडे थे। वे यदि राहु और ऐरावतको सचमुच पकड़ना चाहते तो वे दोनो बचकर भाग नहीं सकते थे। इससे माल्रम होता है कि हनुमान्जी उन्हे बड़ा फल समझकर पकड़नेकी मुद्रामे उनकी ओर दौड़कर उन्हे भयभीत कर भगाना ही चाहते थे।

राहुके लिये ज्ञानस्वरूप सूर्य भक्षणीय हैं और हनुमान्जीके लिये सुरक्षणीय। अतः उन्होंने उन्हे सुरक्षाकी दृष्टिसे मुखमे रख लिया; क्योंकि पुस्तकीय ज्ञानसे अधिक सुरक्षित मुखस्थ ज्ञान होता है और महत्त्वपूर्ण वस्तुको मुखमें सुरक्षित रखनेका उनका स्वभाव भी है। श्रीसीताजीको पहचानमें देनेके लिये भगवान् श्रीरामद्वारा उन्हे जो मुद्रिका मिली थी, उसे वे मुखमे ही रखकर लङ्का गये थे; यथा—

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माहीं। जलधि लॉघि गए अचरज नाहीं॥

(—हनुमानचा० १९)

सर्वान्तर्यामी सूर्यदेव हनुमान्जीकी भावनासे संतुष्ट ही हुए, रुष्ट नहीं। विविध विघ्नोकी विजयके बाद ज्ञान-प्राप्तिकी साधना करनेवालोके समक्ष देवता बाधक बनकर आते हैं। रामचरितमानसके ज्ञान-दीपक-प्रसङ्गसे इस तथ्यकी पुष्टि होती है; यथा—

जौं तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥

(—रा० च० मा० ७। ११८। ५)

देवराजकी भूमिका ऐसी ही है, पर अदम्य ज्ञानेच्छाके समक्ष उनके कठिन कुलिशके मद-रद टूट गये और ज्ञान-सूर्यने हनुमान्जीसे संतुष्ट होकर ज्ञान देनेका आश्वासन दिया। देवावतार रामायणका यह प्रसङ्ग वैदिक ऋचाओकी भॉति ही आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक अभिप्रायोसे युक्त है।

कुछ समयके पश्चात् अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ। उनकी अध्ययनशैली अद्भुत है। आदिकविने उस ओर सकेत करते हुए कहा है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः॥

(—वा० रा० ७। ३६। ४५)

'अप्रमेय वानरेन्द्र ये हनुमान् व्याकरण सीखनेके लिये सूर्यके सम्मुख हो प्रश्न करते हुए, महाग्रन्थको याद करते हुए उदयाचलसे अस्ताचलतक चले जाते थे।' गोस्वामी तुलसीदासने भी इस अध्ययन-अध्यापनकी अद्भुतताका वर्णन किया है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥

(—ह० बा० ४)

आशय यह है कि सूर्यभगवान्के पास हनुमान्जी पढ़ने गये, सूर्यदेवने बाल-क्रीड़ा समझकर टालमटोल की कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और बिना आमने-सामनेके पढना-पढाना असम्भव है। वे हनुमान्जीकी ज्ञानेच्छाकी पुनः परीक्षा ले रहे थे। हनुमान्जीकी ज्ञानकी प्रबल भूखने कठिनाइयोकी तनिक भी परवाह नहीं की। उन्होंने सूर्यदेवकी ओर मुख करके पीठकी ओर पैरोसे प्रसन्नमन आकाशमे बालकोके खेल-सदृश गमन किया और उससे पाठ्यक्रममे किसी प्रकारका भ्रम नहीं हुआ।

सूर्यदेव दो हजार, दो सौ, दो योजन प्रति निमिषार्द्धकी चालसे चलते हुए वेद-वेदाङ्गो एवं सम्पूर्ण विद्याओके रहस्य जल्दी-जल्दी समझाते चले जाते थे और हनुमान्जी सब कुछ धारण करते जाते थे। ऐसा अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापन इन्द्रादि लोकपाल तथा त्रिदेवादिने कभी देखा नहीं था। इस दृश्यको देखकर वे चकित रह गये और उनकी ऑखे चौधिया गयीं—

कौतुक विलोकि लोकपाल हरि हर विधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो ॥
(—ह० बा० ४)

हनुमान्‌जीने सूर्यभगवान्‌से सम्पूर्ण विद्याएँ शीघ्र ही पढ लीं । एक भी शास्त्र उनके अध्ययनसे अछूता नहीं रहा; यथा—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः ।
न ह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ।
(—वा० रा० ७ । ३६ । ४५-४६)

अर्थात्—'वानरेन्द्रने (तत्कालीन) सूत्र, वृत्ति, वार्तिक और संग्रह*-सहित 'महाभाष्य' ग्रहण कर उनमे सिद्धि प्राप्त की । इनके समान शास्त्र-विशारद और कोई नहीं है । ये समस्त विद्या, छन्द, तपोविधान—सबमें बृहस्पतिके समान हैं ।'

गोस्वामी तुलसीदासने भी हनुमान्‌जीको **'ज्ञानिनाम-ग्रगण्यम्'** और **'सकलगुणनिधानम्'** माना है और उनकी गुणनिर्देशात्मक स्तुति करते हुए कहा है—

जयति वेदान्तविद विविध-विद्या-विशद
वेद-वेदांगविद ब्रह्मवादी ।
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो
विमल गुण गनति शुक नारदादी ॥
(—वि० प० २६)

भगवान् श्रीरामसे हनुमान्‌जीकी जब पहले-पहल बातचीत हुई, तब श्रीभगवान् बडे प्रभावित हुए और उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी प्रशसा करते हुए लक्ष्मणजीसे बोले—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥
(—वा० रा० ४ । ३ । २८-२९)

अर्थात्—'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता । निश्चय ही इन्होने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन किया है; क्योकि बहुत-सी बाते बोलनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली ।'

श्रीसीताशोधके लिये लङ्काकी यात्रा करते समय सुरसाद्वारा ली गयी बड़ी परीक्षामें हनुमान्‌जीकी बुद्धिमत्ता प्रमाणित हुई और लङ्कामे उन्होने पग-पगपर बुद्धिमानीका ऐसा परिचय दिया कि रावणके समीपस्थ सचिव, पत्नी-पुत्र-भ्राता—सब उनके पक्षका समर्थन करने लगे । इससे उनकी विद्या-बुद्धिकी विलक्षणताकी झलक मिलती है और साथ ही आचार्य सूर्यकी शिक्षाकी सफलतापर भी प्रकाश पड़ता है । हनुमान्‌जीकी बौद्धिक सफलताका कारण आचार्यका प्रसाद था ।

अध्ययनके उपरान्त यथाशक्ति गुरुदक्षिणाकी भी विधि है । हनुमान्‌जीने अपने आचार्यसे गुरुदक्षिणाके लिये इच्छा व्यक्त करनेका निवेदन किया । निष्काम सूर्यदेवने शिष्य-संतोषार्थ अपने अशोद्भूत सुग्रीवकी सुरक्षाकी कामना की । हनुमान्‌जीने गुरुजीकी इच्छा पूरी करनेकी प्रतिज्ञा की और सुग्रीवके पास पहुँचे—

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ ।
मातुराज्ञामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥
(—शतरुद्रसं० ३ । २० । १२)

वे सुग्रीवके साथ छायाकी भाँति रहकर उनकी सुरक्षा और सेवामें तत्पर रहे । श्रीभगवान्‌के

*—संग्रह एक लाख श्लोकोंका महान् व्याकरणका ग्रन्थ था जो अब उपलब्ध नहीं है ।

राज्याभिषेकके बाद जब सब वानर अपने-अपने स्थानको भेजे जाने लगे, तब हनुमान्‌जीने सुग्रीवसे प्रार्थना की कि श्रीभगवान्‌की सेवामें केवल दस दिन और रहकर पुनः आपके पास पहुँच जाऊँगा। सुग्रीवने उन्हें सदाके लिये श्रीभगवान्‌की सेवामें ही रह जानेका आदेश दे दिया।

सुग्रीव अब निर्भय और सुरक्षित थे। सुग्रीवका उपकार कर हनुमान्‌जीने अपने गुरु भगवान् सूर्यकी दक्षिणा पूरी की। अध्येता हनुमान्‌के अध्यापक आचार्य सूर्यदेव हमारे अध्ययनको तेजस्वी बनायें—**'तेजस्वि नावधीतमस्तु'**!

साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र साम्ब महारानी जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें इन्होंने बलदेवजीसे अस्त्रविद्या सीखी थी। बलदेवजीके समान ही ये बलवान् थे। महाभारतमें इनका विस्तृत वर्णन मिलता है।* ये द्वारकापुरीके सप्त अतिरथी वीरोंमें एक थे, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरमें आये थे। इन्होंने वीरवर अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने शल्यके सेनापतित्वमें क्षेमवृद्धिको युद्धमें पराजित किया था और वेगवान् नामक दैत्यका भी वध किया था।

भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि साम्ब बलिष्ठ होनेके साथ ही अत्यन्त रूपवान् थे। अपनी सुन्दरताके अभिमानमें वे किसीको कुछ नहीं समझते थे। यही अभिमान आगे इनके पतनका कारण बना। अभिमान किसीको भी गिरा देता है।

हुआ यह कि एक बार वसन्त ऋतुमें रुद्रावतार दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरते हुए द्वारकापुरीमें आये। उन्हें तपसे क्षीणकाय देखकर साम्बने उनका परिहास किया। इससे दुर्वासा मुनिने क्रोधमें आकर अपने अपमानके बदलेमें साम्बको शाप दिया कि 'तुम अति शीघ्र कोढ़ी हो जाओ।' उपहास बुरा होता है वही हुआ। साम्ब शप्त होनेपर संतप्त हो उठे।

साम्बने अति व्याकुल हो कुष्ठ-निवारणार्थ अनेक प्रकारके उपचार किये; परंतु किसी भी उपचारसे उनका कुष्ठ नहीं मिटा। अन्तमें वे अपने पूज्य पिता आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके पास गये और उनसे विनीत प्रार्थना की कि 'महाराज! मैं कुष्ठरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। मेरा शरीर गलता जा रहा है, स्वर दबा जा रहा है, पीडासे प्राण निकले जा रहे हैं, अब क्षणभर भी जीवित रहनेकी क्षमता नहीं है। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं प्राण त्याग करना चाहता हूँ। आप इस असह्य दुःखकी निवृत्तिके लिये मुझे प्राण त्यागनेकी अनुमति दें।'

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण क्षणभर विचारकर बोले—'पुत्र! धैर्य धारण करो। धैर्य त्यागनेसे रोग अधिक सताता है। मैं उपाय बताता हूँ, सुनो। तुम श्रद्धापूर्वक श्रीसूर्यनारायणकी आराधना करो। पुरुष यदि विशिष्ट देवताकी आराधना विशिष्ट ढंगसे करे, तो अवश्य ही विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। देवाराधन विफल नहीं होता।

साम्बके संदेह करनेपर श्रीकृष्ण पुनः बोले—शास्त्र और अनुमानसे हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है,

---

* आदिपर्व १८५। १७, सभा० ३४-३५ १४, ५७, ३४। १६, वन० १६। ९–१६-१७-२०, १२०। १३-१४, विराट्० ७२। २२, आश्व० ६६। ३, मौसल० १। १६–१७। १९। २५। ३। ४४, स्वर्गा० ५। १६–१८।

किंतु प्रत्यक्षमें सूर्यनारायणसे बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं है। सारा जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और इन्हींमें लीन हो जायगा। ग्रह, नक्षत्र, राशि, आदित्य, वसु, इन्द्र, वायु, अग्नि, रुद्र, अश्विनीकुमार, ब्रह्मा, दिशा, भूः भुवः, स्वः आदि सब लोक, पर्वत, नदी-नद, सागर-सरिता, नाग-नग एवं समस्त भूतग्रामकी उत्पत्तिके हेतु सूर्यनारायण ही हैं। वेद, पुराण, इतिहास सभीमें इनको परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादित किया गया है। इनके सम्पूर्ण गुण और प्रभावका वर्णन सौ वर्षोंमें भी कोई नहीं कर सकता। तुम यदि अपना कुष्ठ मिटाकर संसारमें सुख भोगना चाहते हो और मुक्ति-भुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दुःख तुमको कभी नहीं होंगे।' (सूर्यदेवकी समाराधना स्वस्थ-सुखी बनाती है।)

पिता श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्य कर साम्ब चन्द्रभागा नदीके तटपर जगत्प्रसिद्ध मित्रवन नामक सूर्यक्षेत्रमें गये। वहाँ सूर्यकी 'मित्र' नामक मूर्तिकी स्थापनाकर उसकी आराधना करने लगे। जिस स्थानपर इन्होंने मूर्तिकी स्थापना की थी, आगे चलकर उसीका नाम 'मित्रवन' हुआ। साम्बने चन्द्रभागा नदीके तटपर 'साम्पुर' नामक एक नगर भी बसाया, जिसे आजकल पंजाबका मुलतानगर कहते है। (साम्बरी नामकी एक जादूगरी विद्या भी है, जिसका आविष्कार साम्बने ही किया था।) मित्रवनमें साम्ब उपवासपूर्वक सूर्यके मन्त्रका अखण्ड जप करने लगे। उन्होंने ऐसा घोर तप किया कि शरीरमें अस्थि-मात्र शेष रह गया। वे प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभावसे गद्गद होकर—**'यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं चाजर-मव्ययम्'**—इस प्रथम चरणवाले स्तोत्रसे सूर्यनारायण-की स्तुति करते थे। इसके अतिरिक्त तप करते समय वे सहस्रनामसे भी सूर्यका स्तवन करते थे।*

इस आराधनसे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्‌ने स्वप्नमें दर्शन देकर साम्बसे कहा—'प्रिय साम्ब! सहस्रनामसे हमारी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम अपने अत्यन्त गुह्य और पवित्र इक्कीस नामोंका पाठ तुम्हें बताते हैं† जिनके पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठ करनेका फल मिलता है। हमारा यह स्तोत्र त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध है। जो दोनों सन्ध्याओंमें इस स्तोत्रका पाठ करते हैं वे सब पापोंसे छूट जाते है और धन, आरोग्य, संतान आदि वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं।' साम्बने इस स्तवराजके पाठसे अभीष्ट फल प्राप्त किया। यदि कोई भी पुरुष श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करे, तो वह निश्चय ही सब रोगोंसे छूट जाय।

साम्ब भगवान् सूर्यके आदेशानुसार इक्कीस नामोंका पाठ करने लगे। तत्पश्चात् साम्बकी अटल भक्ति, कठोर तपस्या, श्रद्धायुक्त जप और स्तुतिसे प्रसन्न होकर सूर्यनारायणने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'वत्स साम्ब! तुम्हारे तपसे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं, वर माँगो।' देवता प्रसन्न होनेपर अभीष्ट सिद्धि देते हैं।

अब साम्ब भक्तिभावमें अत्यन्त लीन हो गये थे। उन्होंने केवल यही एक वर माँगा—'परमात्मन्! आपके श्रीचरणोंमें मेरी दृढ भक्ति हो।'

भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर कहा—'यह तो होगा ही, और भी कोई वर माँगो।' तब लज्जित-से होकर साम्बने

* सूर्यसहस्रनामस्तोत्र गीताप्रेससे प्रकाशित है।

† इक्कीस नाम ये हैं—

ॐ विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुर्महेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
....। गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः॥ (—भविष्यपुराण)

दूसरा वर माँगा—'भगवन्! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे शरीरका यह कलंक निवृत्त हो जाय।' कुष्ठ जीवनका सबसे बड़ा पाप-फल समझा जाता है।

सूर्यनारायणके 'एवमस्तु' कहते ही साम्बका रूप दिव्य और स्वर उत्तम हो गया। इसके अतिरिक्त सूर्यने और भी वर दिये; जैसे कि—'यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। हम तुमको स्वप्नमे दर्शन देते रहेंगे; अब तुम इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मन्दिर बनवाकर उसमे हमारी प्रतिमा स्थापित करो।'

साम्बने श्रीसूर्यके आदेशानुसार चन्द्रभागा नदीके तटपर मित्रवनमें एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करायी।

इसके बाद मौसल-युद्धमें साम्बने वीरगति प्राप्त की। मृत्युके पश्चात् भगवान् भास्करकी कृपासे ये विश्वदेवोमें प्रविष्ट हो गये।

[साम्बकी कथा और भक्ति-पद्धतिसे हजारों—लाखों लोगोने लाभ उठाया है और सूर्याराधनासे स्वास्थ्य और सुख प्राप्त किया है। साम्बपुराण (उपपुराण)में साम्बकी कथा, उपासना और उससे सम्बद्ध ज्ञातव्य बातें विस्तारसे वर्णित हैं। अन्य पुराणोमे भी साम्बकी कथा और उपासनाकी चर्चा है।]

भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०)

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी, सदाचारी और धर्मके अवतार थे। महान्-से-महान् संकट पड़नेपर भी उन्होने कभी धर्मका त्याग नहीं किया। ऐसा सब कुछ होते हुए भी राजा होनेके नाते दैवात् वे द्यूतक्रीड़ामे सम्मिलित हो गये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूरस्थ देशमें अपने शत्रुओंके विनाश करनेमे लगे हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरको जूएमें अपना राज्य, धन-धान्य एव समस्त सम्पदा गँवानी पड़ी। अन्तमे उन्हे बारह वर्षोंका वनवास भी जूएमें हार-स्वरूप मिला। महाराज युधिष्ठिर अपने पाँचो भाइयोंके साथ वनवासके कठिन दुःखको झेलने चल पडे। साथमे महासती द्रौपदी भी थीं। महाराज युधिष्ठिरके साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणोंका वह दल भी चल पडा, जो अपने धर्मात्मा राजाके बिना अपना जीवन व्यर्थ मानता था। उन ब्राह्मणोंको समझाते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणो! जूएमे मेरा सर्वस्व हरण हो गया है। हम फल-फूल तथा अन्नके आहारपर रहनेका निश्चय कर संतप्त-हृदयसे वनमें जा रहे हैं। वनकी इस यात्रामे महान् कष्ट होगा; अतः आप सब मेरा साथ छोड़कर अपने-अपने स्थानको लौट जायँ।' ब्राह्मणोंने दृढता-के साथ कहा—'महाराज! आप हमारे भरण-पोषणकी चिन्ता न करे। अपने लिये हम स्वयं ही अन्न आदिकी व्यवस्था कर लेगे। हम सभी ब्राह्मण आपका अभीष्ट-चिन्तन करेंगे और मार्गमें सुन्दर-सुन्दर कथा-प्रसङ्गसे आपके मनको प्रसन्न रक्खेंगे, साथ ही आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन-विचरणका आनन्द भी उठायेंगे।' (महाभा० वनपर्व २। १०-११)

महाराज युधिष्ठिर उन ब्राह्मणोके इस निश्चय और अपनी स्थितिको जानकर चिन्तित हो गये। उनको चिन्तित देखकर परमार्थ-चिन्तनमे तत्पर और अध्यात्म-विषयके महान् विद्वान् शौनकजीने महाराज युधिष्ठिरसे सांख्ययोग एवं कर्मयोगपर विचार-विमर्श किया और धनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए बोले—'जो मानव धर्म करनेके लिये धनके उपार्जनकी कामना

करता है, उसकी वह इच्छा ठीक नहीं है, अतः धनके उपार्जनकी इच्छा नहीं करना ही उचित है। कीचड लगाकर पुनः उसके धोनेसे कीचड नहीं लगाना ही ठीक है, श्रेयस्कर है—

धर्मार्थस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥

(—महाभा० वनपर्व २। ४९)

शौनकजीने वन-यात्रामें युधिष्ठिरको आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये एक विचित्र त्यागीका मार्ग अपनानेके लिये बताया था। फिर भी किसी सत्पुरुषके लिये अपने अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करना परम कर्तव्य है, तो ऐसी स्थितिमे स्वागत कैसे किया जा सकेगा? युधिष्ठिरके इस प्रश्नपर शौनकजीने कहा—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

(—महाभा० वनपर्व २। ५४)

'हे युधिष्ठिर! अतिथियोंके स्वागतार्थ आसनके लिये तृण, बैठनेके लिये स्थान, जल और चौथी मधुर वाणी—इन चार वस्तुओंका अभाव सत्पुरुषोंके घरमे कभी नहीं रहता।' इनके द्वारा अतिथि-सेवाका धर्म निभ सकता है।

महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यकी सेवामे उपस्थित हुए और उनकी सलाहसे सूर्यभगवान्‌की उपासनामे जुट गये। पुरोहितने भगवान् सूर्यके अष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्र (एक सौ आठ नामोंका जप) का अनुष्ठान बताया और उपासनाकी विधि समझायी। महाराज युधिष्ठिर सूर्योपासनाके कठिन नियमोका पालन करते हुए सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि इत्यादि एक सौ आठ नामोका जप करने लगे। महाराज युधिष्ठिरने सूर्यदेवकी प्रार्थना करते हुए कहा—

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्।
त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्॥
त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्।
अनावृतार्गला द्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम्॥
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाशते।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया॥

(—महा०, वन० ३। ३६-३८)

'हे सूर्यदेव! आप अखिल जगत्‌के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंकी आत्मा है। आप ही सब जीवोंके उत्पत्ति-स्थान हैं और सब जीवोके कर्मानुष्ठानमे लगे हुए जीवोंके सदाचार हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सम्पूर्ण सांख्ययोगियोंके प्राप्तव्य स्थान है। आप ही मोक्षके खुले द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सारे संसारको धारण करते हैं। सारा संसार आपसे ही प्रकाश पाता है। आप ही इसे पवित्र करते है और आप ही इस संसारका बिना किसी स्वार्थके पालन करते हैं।'

इस प्रकार विस्तारसे महाराज युधिष्ठिरने भगवान् सूर्यकी प्रार्थना की। भगवान् सूर्य युधिष्ठिरकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गये और उनके मनोगत भावको समझकर बोले—

यत्तेऽभिलषितं किञ्चित्त्वं सर्वमवाप्स्यसि।
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः॥

(—महा० वन० ३। ७१)

'धर्मराज! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है, वह तुमको मिलेगा। मै बारह वर्षोतक तुमको अन्न देता रहूँगा।'

भगवान् सूर्यने इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरको वह अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया, जिसमें बना भोज्य पदार्थ 'अक्षय्य' बन जाता था। भगवान् सूर्यका वह अक्षयपात्र ताम्रकी एक विचित्र 'बटलोई' थी। उसकी विशेषता यह थी कि उसमे बना भोज्य पदार्थ तबतक अक्षय्य बना रहता था, जबतक सती द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थीं। पुनः जब वह पात्र माँज-धोकर पवित्र कर दिया जाता था और पुनः उसमे भोज्य पदार्थ बनता था तो वही अक्षय्यता। उसमे आ जाती थी

गृह्णीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप ।
यावद् वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत ॥
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे ।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति ॥
(—महा०, वन० ३ । ७२-७३)

इस प्रकार भगवान् सूर्यने धर्मात्मा युधिष्ठिरको उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया और युधिष्ठिरकी मनःकामना सिद्ध करके भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये ।

महाभारतमें उसी प्रसङ्गमें यह भी लिखा है कि जो कोई मानव या यक्षादि मनको संयममें रखकर—चित्त-वृत्तियोंको एकाग्र करके युधिष्ठिरद्वारा प्रयुक्त स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अति दुर्लभ वर भी माँगेगा तो भगवान् सूर्य उसे वरदानके रूपमें पूरा कर देंगे—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन् ।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम् ॥
(—महा०, वन० ३ । ७५)

सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा

(लेखक—साधु श्रीबलरामदासजी महाराज)

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम् ॥
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान् ।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ॥
(हरिवंशपु० १ । ३८ । १३-१४)

प्रसेन द्वारकापुरीमे विराजमान थे । उन्हे स्यमन्तक नामकी एक दिव्य मणि अपने बडे भाई सत्राजित्से प्राप्त हुई थी । वह सत्राजित्को समुद्रके तटपर भगवान् भुवन भास्करसे उपलब्ध हुई थी । सूर्यनारायण सत्राजित्के प्राणोके समान प्रिय मित्र थे ।

सुप्रसिद्ध महाराज यदुकी वंशपरम्परामे अनमित्रके पुत्र निघ्न नामक एक प्रतापी राजा हुए, जिनसे प्रसेन और सत्राजित् नामक दो पुत्रोकी उत्पत्ति हुई । वे शत्रुओकी सेनाओको जीतनेमें पूर्ण समर्थ थे ।

एक समयकी बात है—रथियोमे श्रेष्ठ सत्राजित् रात्रिके अन्तमे स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्रके तटपर गये थे । जिस समय सत्राजित् सूर्योपस्थान कर रहे थे कि उसी समय सूर्यनारायण उनके सामने आकर खडे हो गये । सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डलके मध्यमे विराजमान थे, जिससे सत्राजित्को सूर्यनारायणका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था । इसलिये उन्होंने अपने सामने खड़े हुए भगवान् सूर्यसे कहा—'ज्योतिर्मय ग्रह आदिके स्वामिन् ! मै आपको जैसे प्रतिदिन आकाशमे देखता हूँ; यदि वैसे ही तेजका मण्डल धारण किये हुए आपको अपने सामने अब भी खडा देखूँ तो फिर आप जो मित्रतावश मेरे यहाँ पधारे—इसमे विशेषता ही क्या हुई* ?'

इतना सुनते ही भगवान् सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे उस मणिरत्न स्यमन्तकको उतारा और एकान्तमे अलग स्थानपर रख दिया । तब राजा सत्राजित् स्पष्ट अवयवों-वाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने उन भगवान् सूर्यके साथ मुहूर्तभर (दो घड़ी) वार्तालाप किया । बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण वापस लौटने लगे, तब राजा सत्राजित्ने

* ....। यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषाम्पते ॥
तेजोमण्डलिनं देव तथैव पुरतः स्थितम् । को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै ॥
(—हरिवंशपु० १ । ३८ । १७-१८)

उनसे प्रार्थना की—'भगवन्! आप जिस दिव्यमणिसे तीनो लोकोको सदा प्रकाशित करते रहते हैं, वह स्यमन्तकमणि मुझे देनेकी कृपा कीजिये*।

तब भगवान् सूर्यनारायणने कृपा करके वह तेजस्वी-मणि राजा सत्राजित्को दे दी। वे उसे कण्ठमें धारण कर द्वारकापुरीमे गये। 'ये सूर्य जा रहे हैं'—ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य उन नरेशके पीछे दौड़ पड़े। इस प्रकार नगरवासियोको विस्मित करते हुए सत्राजित् अपने रनिवासमे चले गये।

वह मणि वृष्णि और अन्धककुलवाले जिस व्यक्तिके घरमे रहती थी, उसके यहाँ उस मणिके प्रभावसे सुवर्णकी वर्षा होती रहती थी। उस देशमे मेघ समय-पर वर्षा करते थे तथा वहाँ व्याधिका किंचिन्मात्र भय नहीं होता था। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी†।

जब भगवान् भी ससारी लोगोके साथ क्रीड़ा करनेके लिये अवतार धारण करते है तो सर्वसाधारण अल्पज्ञ व्यक्ति उन नटनागरको अपने समान ही कर्मवन्धनमे बँधा हुआ समझते है। वे उनके कार्योंपर शङ्का करते हैं, लाञ्छन लगनेवाली समालोचना भी कर बैठते है। जब भगवान्को नरनाट्य करना होता है तो वे अपनी भगवत्ताका प्रदर्शन नहीं करते।

लोभका ऐसा घृणित प्रभाव है कि उसके कारण भाई-भाईमे विरोध उत्पन्न हो जाता है, अपने पराये हो जाते हैं तथा मित्र शत्रु बन जाते है। इसी भावको प्रदर्शित करनेके लिये भगवान् श्यामसुन्दरने स्यमन्तकमणिके हरणकी लीला दिखायी थी। इस स्यमन्तक-मणिके हरण एवं ग्रहणकी लीलाका कथा-प्रसङ्ग विस्तृतरूपसे श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके ५६-५७ अध्यायोमे आया है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि भाद्रमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिमे उदित चन्द्रमाका दर्शन होनेसे मनुष्यमात्रको कलङ्क लगनेकी सम्भावना होती है। चन्द्र-दर्शन हो जानेपर कलङ्कका निवारण हो जाय, इसके लिये श्रीमद्भागवतके इन दो (५६-५७) अध्यायोका कथाप्रसङ्ग पढना एव सुनना अत्यन्त लाभप्रद है।

इस स्यमन्तकोपाख्यानकी फलश्रुतिका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोसे परिपूर्ण यह पवित्र आख्यान समस्त पापो, अपराधों और कलङ्कोका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोसे छूटकर परम शान्तिका अनुभव करता है।‡

---

* तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि॥ (—हरिवंशपु० ३८। २१)

† चार धानकी एक गुञ्जा या एक रत्ती होती है। पॉच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल (जो ढाई छटॉकके लगभग होता है), सौ पल-(सोलह सेरके लगभग-)की एक तुला होती है, बीस तुलाका एक भार होता है अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है।

‡ यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहर सुमङ्गल च।
आख्यान पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥ (—श्रीमद्भा० १०। ५७। ४२)

सूर्यभक्त ऋषि जरत्कारु

(—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महाभारतके आदिपर्वमें जरत्कारु ऋषिकी कथा आती है। वे बडे भारी तपस्वी और मनस्वी थे। उन्होंने सर्पराज वासुकिकी बहिन अपने ही नामकी नागकन्यासे विवाह किया। विवाहके समय उन्होंने उस कन्यासे यह शर्त की थी कि यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूँगा। एक बारकी बात है; ऋषि अपनी धर्मपत्नीकी गोदमें सिर रक्खे लेटे हुए थे कि उनकी आँख लग गयी। देखते-देखते सूर्यास्तका समय हो आया; किंतु ऋषि जागे नहीं, वे निद्रामें थे। ऋषिपत्नीने सोचा कि ऋषिकी सायंसन्ध्याका समय हो गया; यदि इन्हें जगाती हूँ तो ये नाराज होकर मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो सन्ध्याकी वेला टल जाती है और ऋषिके धर्मका लोप होता है। धर्मप्राणा ऋषिपत्नीने अन्तमें यही निर्णय किया कि पतिदेव मेरा परित्याग चाहे भले ही कर दें, परंतु उनके धर्मकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। यही सोचकर उसने पतिको जगा दिया। ऋषिने अपनी इच्छाके विरुद्ध जगाये जानेपर रोष प्रकट किया और अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाकर पत्नीको छोड़ देनेपर उतारू हो गये। जगानेका कारण बतानेपर ऋषिने कहा—'हे मुग्धे! तुमने इतने दिन मेरे साथ रहकर भी मेरे प्रभावको नहीं जाना। मैंने आजतक कभी सन्ध्याकी वेलाका अतिक्रमण नहीं किया। फिर क्या आज सूर्य-भगवान् मेरा अर्घ्य लिये बिना ही अस्त हो सकते थे! कभी नहीं'—

शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः।
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते॥

(—महा० आदि० ४७। २५-२६)

सच है, जिस भक्तकी उपासनामें इतनी दृढ निष्ठा होती है, सूर्यभगवान् उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य कर नहीं सकते। हठीले भक्तोंके लिये भगवान्को अपने नियम भी तोडने पडते हैं!

(—'तत्त्व-चिन्तामणि भाग ५' से)

मानवीय जीवनमें सुधा घुल जाये

(डॉ० श्रीछोटेलालजी शर्मा, 'नागेन्द्र', एम्० ए०, पी-एच्० डी०, बी० एड्०)

अन्धकारके विकट वैरी अंशुमाली विभो!
मेटि भव-जड़ता प्रकाश विकसाइये।
दौर्बल्य-दुरित-मलिन-हीन मानसमें
प्रखर-मरीचि-सुख वीचि सरसाइये।
भवज-निशीथिनीमें कबसे भटक रहे
दीजिये प्रकाश राशि नहीं तरसाइये।
मानवीय जीवनमें सुधा घुल जाये देव!
नीरस रसा पै ऐसा रस बरसाइये॥

कलियुगमें भी सूर्यनारायणकी कृपा

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि')

आप विश्वास करे, इस कलियुगमें भी देवगण कृपा करते हैं तथा समय पड़नेपर वे साक्षी भी देते है। 'भक्तमाल'मे वर्णित प्रसिद्ध श्रीजगन्नाथधामके पास श्रीसाक्षीगोपालजीके मन्दिरके विषयमे तो सभी जानते ही है, परंतु कच्छकी यह एक नवीन घटना भी श्रद्धा बढानेवाली वस्तु है।

कच्छके राजाओमे राव देशलकी श्रद्धा तथा भगवद्-भक्ति लोकविश्रुत है संवत् १८०५मे वैशाख शुक्ला १, शुक्रवारसे 'भुज'मे 'शिवरामण्डप'के उत्सव-प्रसङ्गमे आपने सवा लाख सतोकी लगातार दस दिनोंतक सेवा की थी। निम्नलिखित घटना उसीसे सम्बद्ध है, जो सत्यको प्रोत्साहित तथा श्रद्धाभावनाको दृढ़ करती है। सक्षेपमें घटना इस प्रकार है—

एक दिन कच्छकी राजधानी 'भुज'मे एक अद्भुत वाद (फरियाद) आया। एक साहूकारने एक पटेलपर दावा दायर कर दिया। वह दस्तावेज लिखकर देनेवाला किसान गरीब था—उसने उसमे लिखा था कि—'कोरी (स्थानीय रजतमुद्रा) रावजी (तत्कालीन राजा) के छापकी एक हजार रोकडी मैने तुम्हारे पाससे व्याजपर ली है। समयपर ये कोरियाँ मै आपको व्याजके साथ भर दूँगा। दस्तावेजके नीचे साक्षियोके नाम हैं। सबसे नीचे 'साख श्रीसूरजकी' लिखा है।'

आज उसी दस्तावेजने राजदरबारके सामने एक विकट समस्या खड़ी कर दी है। किसान कहता है—एक हजार कोरियाँ व्याजसहित साहूकारको भर दी है।

साहूकार कहता है—'बात असत्य है। हमको एक कोरी भी नहीं मिली है। यह झूठ बोलता है। मेरे पास पटेलकी सहीवाला दस्तावेज मौजूद है।'

इधर दस्तावेज कहता है—'किसानको एक हजार कोरियाँ भरनेको हैं।' किसानने कोरी चुकती कर दी, इस बातका कोई साक्षी नहीं है—कागजपर ऐसा कोई चिह्न भी नहीं है। अदालतने साक्षी, तर्क एव कानूनके आधारपर पूरी छानवीनकर सभी प्रमाण किसान पटेलके विरुद्ध प्राप्त किये। कोई भी बात किसानके पक्षमे नहीं है। प्रमाणसे सिद्ध होता है—'किसान झूठा है' और पटेलके विरुद्ध फैसला भी सुना दिया जाता है।

'भुज'की राजगद्दीपर उस समय राव देशलजी बावा विराजमान थे। प्रखर मध्याह्नका समय था। सूर्य मानो अग्निकी ज्वाला बरसा रहे थे। वे भुजके पहाड़को प्रचण्ड उत्तप्त तापसे तपाकर अपनी सम्पूर्ण गरमी भुज नगरीपर फेक रहे थे। ऐसी गरमीमे कच्छके रावजीकी ऑखें अभी जरा-सी ही मिली थीं कि बाहरसे करुण-क्रन्दन सुनायी पड़ा—

'महाराज! मेरी रक्षा करो—रक्षा करो, मै गरीब मनुष्य बिना अपराधके मारा जा रहा हूँ।'

किसानकी करुण चीख सुनकर रावजीकी ऑखे खुल गयीं। कच्छका मालिक नंगे पॉव यकायक बाहर आया। राजधर्मका यही तकाजा है।

'कौन है भाई?' महारावकी शान्त, मीठी वाणीने वातावरणमे मधुरता भर दी।'

'चिरंजीव हो रावजी!' किसानका कण्ठ छलाछल भर गया। वह धैर्य धारण कर बोला—'मै एक हजार कोरीके लिये ऑसू नहीं बहाता हूँ। मेरे सिरपर झूठ बोलनेका कलङ्क आता है, वह मुझसे सहा नहीं जाता; धर्मावतार! मुझे सच्चा एव उचित न्याय चाहिये, गरीबनिवाज!'

पटेलने अपनी सारी राम-कहानी कच्छके अधिपति देशलजी बावाके चरणोमे निवेदित की। महारावने सभी कागजात भुजकी अदालतसे अपने पास मॅगवाये। उसके एक-एक अक्षरको ध्यानपूर्वक पढ़ा। किसानकी सचाई कागजोमे

तो कहीं दीख न पडी, किंतु उसके नेत्रोंमें निर्दोषता झाँक रही थी।

कागजोंको देखकर कच्छके अधिपतिने निराशापूर्ण निःश्वास लेते हुए कहा—'क्या करूँ भाई! तूने कोरियाँ भर दी हैं, पर इसका कुछ भी प्रमाण इन कागजोंमें उपलब्ध नहीं हो पा रहा है।'

'प्रमाण तो है, अन्नदाता! मैंने अपने हाथसे ही इस दस्तावेजपर काली स्याहीसे चौकडी (× ऐसे निशान) लगाये हैं'—किसानने अपनी प्रामाणिकताका निवेदन करते हुए कहा।

'चौकडी!' महाराज देशलजी बावाने चौंककर कहा। 'हाँ धर्मावतार! चौकडी!! काली रोशनाईकी बडी-सी चौकडी!!! चारो कोनोंपर कागजके चारों ओर मैंने अपने हाथसे लगायी हैं, चार काली चौकडियाँ।'

'अरे, चौकडी तो क्या, इसपर तो काला बिन्दु भी कहीं दिखायी नहीं देता'—राजाने कहा।

'यह सब चाहे जैसे हुआ हो, राजन्! आपके चरणोंपर हाथ रखकर मैं सत्य ही कहता हूँ'—किसानने बावाके दोनो चरणोपर अपने दोनो हाथ रख दिये।

पटेल (कलबी)की वाणीमें सचाई साफ-साफ झलकती थी। यह समस्या अब और भी कठिन हो गयी। महाराओके सिरपर पसीना आ गया, आँखोकी त्योरियाँ चढ गयीं। तुरंत उस साहूकारको बुलाया गया। वह राजाके सम्मुख उपस्थित हुआ। अब तो कचहरीके सभी लोग भी आकर बैठ गये थे तथा किसानके न्यायको तौलते हुए इस संत आत्मा न्यायमूर्ति राजाके न्यायको देख रहे थे।

'सेठ! मनमें कुछ भी छल-कपट हो तो निकाल देना।' राजाने साहूकारको गम्भीरतापूर्वक कहा।

'अन्नदाता! जो कुछ होगा, वह तो यह कागज स्वय ही कहेगा, देख लीजिये।'

राजाने पुनः दस्तावेज हाथमें लिया। राजाकी दृष्टि कागजके कोने-कोनेपर सीधी चली जा रही थी। परंतु 'चौकडी'के प्रश्नका उत्तर किसी प्रकार नहीं मिल रहा था। इतनेमें राजाकी दृष्टि कागजके अन्तिम अक्षरोंपर पडी—'साख श्रीसूरजकी'।

अब विचार राजाके मस्तिष्कमें चढ गये—सूरज सत्य साक्षी देंगे? और उन्होंने वह दस्तावेजका कागज सूर्य भगवान्‌के सामने रख दिया।

'हे सूर्यदेव! इस दस्तावेजमें आपकी साक्षी लिखी है। मैं 'भुज'का राजा यदि आज न्याय न कर सका तो दुनिया मेरी हँसी उडायगी। राजाने मन-ही-मन श्रीसूर्यनारायणसे बुद्धिदानकी प्रार्थना की और कागजको सूर्यके सम्मुख रख दिया। फिर वे टकटकी लगाकर ध्यानपूर्वक कागजको देखने लगे। एक चमत्कार उभरा! एक हल्की-सी पानीके दाग-सरीखी स्पष्ट चौकडी दस्तावेजके कागजपर दीखने लगी। फिर तो कच्छाधिपति ऐसे आनन्दसे हर्षित हो गये मानो उन्होने किसी महान् देशको जीत लिया हो। आकाशमें जगमगाते हुए सूर्यनारायणके सामने उनके दोनो हाथ जुड़ गये।

अब राजाने किसानसे पूछा—'तुमने कागजपर चौकड़ी लगायी, उसका कोई साक्षी भी है?'

'काला कौआ भी नहीं गरीब-निवाज! साक्षी तो कोई भी नहीं था'—पटेलने निवेदन किया।

'परंतु इसमें तो लिखा है न कि—'साक्षी श्रीसूर्यजी।' 'हाँ हाँ—अन्नदाता!' साहूकारने उत्तर दिया।

'यह तो ऐसा लिखना पूर्वपरम्परासे चला आता है, रिवाजमात्र है। भला, सूर्य कभी साक्षी देते हैं?' राजाने किसानसे हँसकर पूछा।

'देवता तो साक्षी दे सकते है, राजन्!' परतु अब तो कलियुग आ गया है। दुनियाके मनुष्योकी